परिमल संस्कृत ग्रन्थमाला संख्या - ११३

श्रीभुवनदेवाचार्योक्ता सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशापरनामधेया

अपराजितपृच्छा

(बृहच्छिल्पस्थापत्यशास्त्रञ्च)

(संस्कृत मूल, 'मोहनबोधिनी' हिन्दी व्याख्या एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित)

प्रथम भाग

(सूत्र : १-१३८ तक)

M.Katyayana

सम्पादक एवं अनुवादक

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

प्रो. भँवर शर्मा

परिमल पब्लिकेशन्स

दिल्ली

प्रकाशक :

परिमल पब्लिकेशन्स

२७/२८ शक्ति नगर

दिल्ली - ११०००७

दूरभाष : २३८४५४५६, ४७०१५१६८

ई-मेल : order@parimalpublication.com

ISBN : 978-81-7110-386-7 (सेट)

978-81-7110-387-4 (भाग-१)

प्रथम संस्करण : वर्ष २०११

मूल्य - १८५०.०० रुपये (भाग १-२)

मुद्रक

विशाल कौशिक प्रिंटर्स

नजदीक जी.टी.बी. हॉस्पिटल,

जगतपुरी विस्तार, दिल्ली-११००९३

Parimal Sanskrit Series No. 113

Bhuvanadevācārya's Sūtrasantānaguṇakīrtiprakāśāparanāmadheyā

APARĀJITAPṚCCHĀ

(Treatise of Housing, Architecture, Mathematics, Iconography, Music and Dance etc.)

[Along with Sanskrit Text & 'Mohanabodhinī' Hindi commentary]

Vol. I

(Sūtra : 1-138)

M.Katyayana

Translated & Edited with scholarly notes
by
Dr. Shri Krishna 'Jugnu'
Prof. Bhanwar Sharma

PARIMAL PUBLICATIONS
DELHI

Published by

PARIMAL PUBLICATIONS

Office : 27/28, Shakti Nagar, Delhi-110007 (INDIA)

Retail Outlet : 22/3, Shakti Nagar, Delhi-110007 (INDIA)

ph. : +91-11-23845456, 47015168

e-mail : order@parimalpublication.com

url : http://www.parimalpublication.com

First Edition : Year 2011

ISBN : 978-81-7110-386-7 (Set)

978-81-7110-387-4 (Vol. I)

PRICE : Rs. 1850.00 (Set of 2 Vols.)

Printed at

Vishal Kaushik Printers

Near G.T.B. Hospital, Jagat Puri Vistar, Delhi-93

अलख, आनन्द, लक्ष्मी

अध्यात्म गुरु एवं माता-पिता की स्मृति में

शिल्पशास्त्र के अनुवाद का यह पुष्प...

–भँवर शर्मा

परम श्रद्धेय पिताश्री एवं सद्गुरु

नित्यलीलालीन पण्डिततुल्य

श्रीमद् मोहनलालजी चौहान

की पुण्य स्मृति में...

–श्रीकृष्ण

उपोद्घात

कला किसी भी सभ्यता और संस्कृति की जीवन्त साक्ष्य होती है। मानवीय मन्तव्य और मनन के मूर्त-स्वरूप के रूप में कला ही किसी क्षेत्र की विरासत और थाती को स्वर देती प्रतीत होती है। कलारूपों ने ही किसी भूखण्ड और उसके कालखण्ड के मानकीकरण का आदर्श प्रस्तुत किया है। ज्यों-ज्यों कला में निखार आता गया, वह आदिम राहों से निकलकर लोक की पगडण्डी पर अग्रसर होती हुई अभिजनीय शास्त्रोचित राजमार्ग के निर्देशक-स्तम्भ के रूप में सम्मान प्राप्त करती चली गई। इस प्रकार हम कल्पनाओं की प्रसूती से लेकर प्रौढ़ावस्था तक की यात्रा का अवलोकन करते आए हैं। देववाद के विकास के साथ ही कलाओं के प्रवर्तनकर्ता के रूप में शिल्पदेव विश्वकर्मा का आविर्भाव कुछ ऐसे ही सोपानों से होकर सम्मान के सिंहासन तक पहुँचा है। वेदों में यह कामना की गई है कि हम सुखकर, रमणीय और ऐश्वर्ययुक्त स्थान प्राप्त करें। हमारी प्राप्तियाँ और प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ धन-वैभव का आप रक्षण करें। हमें सदैव कल्याणकारी साधनों-उपस्करों से सुरक्षित रखें : वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या। पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ *(ऋग्वेद 7, 54, 3)*

वैदिक काल में यद्यपि इस मान्यता के बीजों को देखा जा सकता है किन्तु उत्तरवैदिक काल में स्पष्टतः शिल्प के देवता के रूप में विश्वकर्मा सुस्थापित हुए हैं। यद्यपि कई विद्वानों ने दो-तीन विश्वकर्माओं की मान्यताओं का विचार भी दिया है किन्तु इसमें दो मत नहीं हो सकते हैं कि कलाओं के रूपों में ज्यों-ज्यों विकास हुआ, विश्वकर्मा की परम्परा को बल मिला और एक अजस्र धारा के रूप में यत्र-तत्र ही नहीं, सर्वत्र उनकी उपस्थिति को स्वीकारा गया। पुराणों में सर्वत्र ईश्वरीय रचनाओं के लिए विश्वकर्मा का स्मरण किया गया है, चाहे वह सूर्य को उचित स्वरूप देने का ही विचार क्यों न हो। प्रभासपुत्र के रूप में विश्वकर्मा की मत्स्यपुराणोक्त विचारधारा के मूल में ऐसा जान पड़ता है कि धातु-रत्नादि के व्यापार के लिए आने-जाने वालों ने प्रभास-सौराष्ट्र ही नहीं, मेवाड़ क्षेत्र को भी बहुत प्रतिष्ठा और समृद्धि प्रदान की और वहाँ जिस शिल्पी समुदाय की उन्नति हुई, वह विश्वकर्मा की परम्परा का पोषणकर्ता सिद्ध हुआ। यह परम्परा मौर्यकाल से ही देखने में आती है क्योंकि तब थल ही नहीं, जल स्थापत्य तक का वहाँ विकास हो चुका था। ज्यों-ज्यों इस समुदाय का महत्व बढ़ा, वह अनेक क्षेत्रों में शासकों ही

नहीं, सामन्तों और सर्वसामान्य द्वारा भी ससम्मान निमन्त्रित किया जाने लगा और ये शिल्पी अपने साथ अपनी कलाओं को ले गए। इसलिए पश्चिमी भारत में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में 10वीं सदी तक की अनेक निर्मितियों में अद्भुत एकता का दर्शन होता है।

विक्रम की पहली सदी पूर्व सम्पादित माने जाने वाले भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनेक स्थलों के गहन अवगाहन के आधार पर यह प्रतीत होता है कि जिन दिनों रत्न-धातु आदि के व्यापारियों और विक्रेताओं के लिए अगस्तिमत जैसे ग्रन्थ सम्मान्य थे, तब ही विश्वकर्मा का कोई विशाल ग्रन्थ अस्तित्व में आ चुका था और उनमें जनोपयोगी समस्त शिल्प सामग्रियों के संयोजन से लेकर निर्माण और न्यास तक की विधियों को विस्तार से वर्णन था। भरताचार्य ने उसी आधार पर नाट्यशाला सहित वास्तुकर्म की विधि को उद्धृत किया, इन्द्रध्वज सहित रत्नाभूषणों, आयुधों का निर्माण-निरूपण को अङ्गीकार किया। यह निश्चित ही पश्चिमी भारत में रचा गया था क्योंकि जितने प्रकार के भूरूपों भाषाओं, भूवासी-जातियों की भूषाओं का उसमें प्राथमिकताओं के साथ वर्णन है, वह विविधता इस क्षेत्र में प्रथमतया विद्यमान रही है। इसी आधार पर मैंने 'वास्तुतन्त्र' जिसे बाद में विश्वकर्माप्रकाश नाम दिया गया, के आद्यरूप की रचना इसी क्षेत्र में होना स्वीकारा है, गर्गसंहिता के वास्तु विषयक अध्याय और उसी आधार पर रचित 'बृहत्संहिता', 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण', 'मत्स्यपुराण' इत्यादि भी इस विचार का पोषण करने वाले हैं। इसी क्षेत्र में 'जयपृच्छा' का प्रणयन हुआ जिसके विस्तृत रूप में 'प्रतिष्ठालक्षणसारसमुच्चय' और 'समराङ्गणसूत्रधार' का सम्पादन हुआ और इसी विषय-वस्तु के आश्रय में 12वीं सदी में अपराजितपृच्छा का प्रणयन हुआ।

यह ग्रन्थ मूलतः भारतीय शिल्पियों के उस सोच और सङ्कल्प का सजीव साक्ष्य है जबकि सोमनाथ मंदिर पर हमला हो चुका था और पश्चिम से लेकर सिन्धु-सागर सङ्गम तक के प्रदेश के अनेक शिल्पधाम आक्रान्ताओं की चपेट में आ चुके थे। मानवीय क्रूरता ही नहीं, अकाल जैसी प्राकृतिक त्रासदियों से भी तत्कालीन भारत के अनेक प्रदेश आहत हो रहे थे, नगरों की स्थिति भयावह थी अथवा पतनोन्मुखी हो चुकी थी, ऐसे में जल संरक्षण, जीर्णोद्धार जैसी आवश्यकताओं के साथ ही आस्थाओं के केन्द्र-स्थलों के शिलान्यास सहित विविध देव स्वरूपों की प्रतिष्ठा सुखद हो सकती थी। गुरु-शिष्य जैसे सम्बन्धों की स्थापना और संहार के देवता शिव का सहायक स्वरूप अभीष्ट था। शिल्पियों ने भारतीय ज्ञान-सम्पदा सहित कला के प्रत्येक स्वरूप को संरक्षित करने का सङ्कल्प

किया— अपराजितपृच्छा के सूत्र सर्वत्र यह संकेत करते चलते हैं। सोलंकी ही नहीं, गुहिल कला के विकास में इस ग्रन्थ का बड़ा योगदान रहा। गुहिल राजाओं के शिल्पी तो प्रायः इसी ग्रन्थ के निर्देशों के अनुसरणकर्ता रहे। महाराणा कुम्भा के शिल्पी मण्डन के रचनाकर्म पर इस ग्रन्थ का सर्वत्र प्रभाव परिलक्षित होता है।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अंशों को प्रकाश में लाने का कार्य 'बृहच्छिल्पशास्त्र' के प्रणेता जगन्नाथ अम्बाराम सोमपुरा, वढवाण ने 1933 ई. में किया किन्तु, श्लोक प्रायः अशुद्ध थे। इसे समग्रतः प्रकाशित करने का श्रेय गायकवाड़ ऑरियण्टल इंस्टिट्यूट, बडोदरा को जाता है। 1950 ई. में जूनागढ़ रियासत के अभियन्ता श्रीमान् पोपटभाई अम्बाशंकर मंकड़ ने दो पाण्डुलिपियों के आधार पर इसका पाठ तैयार किया। श्री मंकड़ जोधपुर-मारवाड़ में मुख्य अभियन्ता रहे और हैदराबाद में मुख्याधिकारी रहे थे। उन्हें सिविल अभियान्त्रिकी का अच्छा अनुभव था। उन्होंने बहुत धैर्य और परिश्रम के साथ इसका पाठ तैयार किया और विस्तृत भूमिका लिखी किन्तु इसके कुछ ही स्थलों को स्पष्ट कर पाए, इसका अनुवाद नहीं हुआ। इस दिशा में कोई प्रयास भी कहीं नहीं हुआ, हाँ कुछ विद्वानों ने इस पर शोधपत्र अवश्य लिखे और प्रो. लालमणि दुबे ने इसका आलोचनात्मक अध्ययन किया; विगत साठ वर्षों से विद्वज्जगत को इस ग्रन्थ के अनुवाद की प्रतीक्षा रही है। यह विडम्बना ही कही जाएगी कि भारत के अधिकांश तकनीकी ग्रन्थ प्रकाशन के बाद अनूदित नहीं हुए। ऐसा क्यों? एक दिन यह प्रश्न मैंने उदयपुर के शिल्पी परिवार में जाये-जन्मे आदरणीय प्रोफेसर श्री भँवरलालजी शर्मा से इस रूप में किया कि कई लोगों के पास प्राचीन वैज्ञानिक, तकनीकी ग्रन्थ हैं किन्तु अर्थ क्यों नहीं करते? उन्होंने सहजता से कहा कि प्रथमतः इसकी शब्दावली का लुप्त होना है और फिर यह भी कटु सच है कि ऐसे ग्रन्थों का मिलना और अपने पास होना तो गौरवस्पद समझा जाता है किन्तु अध्येता को नहीं देने की मानसिकता ने इन ग्रन्थों को ताक में ही सजाये रखा; पुस्तकालयों से ऐसे ग्रन्थ सबसे पहले गायब हुए और यहाँ तक भी हुआ कि भाई ने भाई तक को अपने ऐसे ग्रन्थ नहीं दिखाए, भले ही उन्हें बाद में दीमक ने अपना आहार बना डाला...।

इसी विचार ने हम दोनों को उद्विग्न कर दिया और संकल्प किया कि हमें ऐसे तकनीकी ग्रन्थों का अनुवाद करना चाहिए। मैं सूत्रधार मण्डन, चक्रपाणि मिश्र, सूत्रधार नाथा, सूत्रधार गोविन्द, बहुरी महाराणा आदि के कोई डेढ़ दर्जन ग्रन्थों पर कार्य कर चुका था किन्तु अपराजितपृच्छा को देखकर ही भय लगता था कि इतना बड़ा ग्रन्थ कैसे अनूदित होगा किन्तु बहुत सुनियोजित रूप से इसका अर्थ हुआ,

श्रीमान् शर्मा साहब ने बहुत मनोयोग से इसके कई सूत्रों के भाव को ग्रहण किया और मैंने इसकी विषय वस्तु सहित आधारभूत ग्रन्थों पर ध्यान दिया। उनके द्वारा अनुवाद रूप में यह प्रथम ग्रन्थ था किन्तु मुझे अनेक स्थलों के अनुवाद को लेकर भय था और जब समराङ्गणसूत्रधार का अनुवाद सम्पन्न हुआ तो आत्मविश्वास हो गया कि इसका अनुवाद ठीक हो गया है। समराङ्गण. का सम्पादन-अनुवाद करते-करते ही इस ग्रन्थानुवाद का संशोधन भी होता चला गया। इसलिए इसके प्रकाशन में भी किञ्चित विलम्ब हुआ, अन्यथा यह अनुवाद 2007 ई. में ही प्रकाशित हो जाता। मैं मानता हूँ कि भगवान् विश्वकर्मा ने ही स्वयं इस ग्रन्थ की गुत्थियों को खोला है क्योंकि अनेक स्थल ऐसे थे जो बहुत जटिल थे और प्रकाशित पाठ में अनेकत्र त्रुटियाँ थी, कई स्थलों पर प्रश्नवाचक चिह्न थे। इसे एक प्रकार से पुनर्सम्पादित किया गया है। पाठकों और विद्वानों को ऐसा सर्वत्र प्रतीत होगा, इसमें कई श्लोक नए भी जुड़े हैं जिन्होंने खण्डित पाठ की पूर्ति की है, इस सम्बन्ध में भूमिका में चर्चा की गई है और सूत्रस्थलों पर भी यथोचित पाद टिप्पणियाँ दी गई हैं।

मैं श्रीमान् शर्मा साहब का आभार मानूँ या उनको धन्यवाद दूँ, कह नहीं पा रहा हूँ। यह तो अनुग्रह ही है कि विश्वकर्मा-वंशज स्वयं इस महत् कार्य में सूत्रधार बने। मैं उनके ऋणि होने की बात कहता हूँ तो वे कहते हैं कि आपके अभियान के साथ जुड़कर मुझे अपना जीवन सार्थक होता प्रतीत हो रहा है। उनकी पहल ने इस ग्रन्थ के अनुवादोद्धार की दिशा में एक सशक्त ताल दी तो मैंने और मेरे परिवार के सदस्यों ने भी कदम बढ़ाए। अनुदित स्वरूप को मैंने उत्स ढूँढ़कर पूर्णतः शास्त्र-सम्मत स्वरूप देने के लिए जीतोड़ प्रयास किया है, मेरी कनिष्ठ पुत्री अनुकृति चौहान ने इसका मूलपाठ टंकित किया तो इसकी टिप्पणियों को खोजने का श्रम ज्येष्ठ पुत्री आयुष्मति अनुभूति चौहान और अनुज अरविन्द चौहान ने किया है। सहधर्मिणी पुष्पा चौहान भी बहुत मददगार रही, पुत्र गौरव चौहान ने भी सहयोग किया। यह एक समूह-श्रम ही कहा जाएगा। मैं परिजनों के स्नेहाधीन और श्रीमान् शर्मा साहब के अनुग्रह से अभिषिंचित हूँ।

इस क्रम में मैं बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टिट्यूट के निदेशक प्रो. मुकुन्दलालजी वाडेकर का भी आभार मानता हूँ कि जिन्होंने इसके अनुवाद की सदिच्छा प्रकट की और प्रोत्साहन दिया। उन्होंने इस ग्रन्थ की मातृकाओं के पृष्ठ भी उपलब्ध करवाए और यह कहा कि इस अनुवाद से इस ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापन और अभ्यास का कार्य आगे बढ़ेगा। मैं डूंगरपुर (राजस्थान) के वयोवृद्ध शिल्पी श्रीमान्

रघुनाथजी सोमपुरा का भी आभार मानता हूँ जिन्होंने अपने संग्रह से इसकी एक मातृका उपलब्ध करवाई। इसी प्रकार राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के अधिकारियों के प्रति भी धन्यवाद, जहाँ से इसकी खण्डित मातृका मिली। मनीषी आदरणीय डॉ० महेन्द्र जी भानावत सदैव की तरह मेरे प्रेरक बने रहे, उनके प्रति आभार।

इसके प्रकाशन की पहल करने के लिए परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली के संस्थापक संस्कृतविद् श्रीमान् कन्हैयालालजी जोशी का स्मरण करता हूँ, जिन्होंने इसकी पाण्डुलिपि देखकर सन्तोष किया और कहा था कि इसका प्रकाशन निश्चित ही गौरवशाली कार्य होगा। वे गत दिनों नित्यलीलालीन हो गए, उन स्मृतिशेष, यशात्मकाय के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ...। उनके पुत्र चि. श्री परिमल जोशी ने इस कार्य को आगे बढ़ाया। वे इसका पहला संस्करण बहुत समर्पित भाव से प्रकाशित कर रहे हैं। वे धन्यवादार्ह है। इस ग्रन्थ का पाठ तैयार करने में जिन ग्रन्थों की सामग्री का सहयोग लिया और चित्रादि का उपयोग हुआ, उनके लेखकों, सम्पादकों और प्रकाशकों का आभार।

इस ग्रन्थ की जो भी अच्छाइयाँ हैं, वे आनन्द-कन्द-नन्द-नन्दन प्रभुप्रवर श्रीनाथजी की कृपा का प्रसाद है और जो त्रुटियाँ हों, वे मुझ अल्पज्ञ की हैं। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि विद्वज्जनों के बीच इस ग्रन्थानुवाद को आदर और सम्मान मिलेगा तथा शोधजगत में इसकी विषय-वस्तु पर पुनः वैज्ञानिक शोधानुसन्धान होगा...

विदुषां वशंवद
श्रीकृष्ण 'जुगनू'

40 राजश्री कॉलोनी, विनायकनगर,
उदयपुर (राजस्थान)

राधाष्टमी विक्रम संवत् 2067
15 सितम्बर, 2010 ईस्वी

भारतीय कला ग्रन्थ और अपराजितपृच्छा

भारतीय कला के मूल ग्रन्थों में अपराजितपृच्छा का अप्रतिम स्थान माना जाता है। नाट्यशास्त्र के लिए जो विश्वकर्मीय शास्त्र द्वितीय अध्याय से लेकर कई स्थलों पर उपस्कारक रहा, उसी प्रकाशमयी परम्परा की कीर्ति-रश्मियाँ अपराजितपृच्छा तक पहुँची जिसके आधार पर मध्यकाल में विश्वकर्मीयशिल्प, ज्ञानप्रकाश दीर्पाणव, वृक्षार्णव, वास्तुसार समुच्चय, स्तम्भराज जैसे अनेक शिल्प ग्रन्थों की रचना हुई और सूत्रधार मण्डन, उसके अनुज सूत्रधार नाथा और मण्डन के पुत्र सूत्रधार गोविन्द आदि कृत लगभग दो दर्जन ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं। भुवनदेवाचार्य कृत अपराजितपृच्छा केवल ग्रन्थ नहीं है बल्कि हजारों सूत्रधारों, शिल्पकारों के कार्य-सम्पादन का निर्देशक रहा है। इसलिए इसे शिल्पी समुदाय में गुरु-गौरव का स्थान प्राप्त है। विशेषकर, उत्तर और पश्चिमी भारत में इस ग्रन्थ के आधार पर अष्टांग वास्तु रचनाओं का न्यास-विन्यास हुआ है। सूत्रधार समुदाय में इस ग्रन्थ के पूजन-सबद के उच्चारण के बाद अपने कार्य के श्रीगणेश की परम्परा रही है, ऐसा गौरव सम्भवत: अन्य किसी शिल्प-ग्रन्थ को नहीं मिला।

ग्रन्थ का स्वरूप विशिष्टताएँ :

यह ग्रन्थ केवल वास्तु-स्थापत्य पर आधारित नहीं है बल्कि इसमें कई विषयों का वर्णन है और 12वीं सदी के समय के पश्चिम भारत में प्रचलित विभिन्न सामाजिक परम्पराओं तथा आवश्यकताओं सहित राजाज्ञाओं अथवा शासकोचित संकल्पों का भी सम्यक् विवरण प्रस्तुत करता है। अपराजित के प्रश्न पर विश्वकर्मा ने स्थल-स्थल पर ऐसे निर्देश किए हैं जो तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं और अनुकरण योग्य प्रवृत्तियों का द्योतक है। 'शस्यावतार सूत्र' में नित्य सुकाल के ध्येय से जल की बचत के लिए गाँव-गाँव जलाशयों की शृंखला खड़ी करने के मूल में रचनाकार समकालीन स्थितियों का सन्दर्भ ही प्रस्तुत करता है। संयोग से यह निर्देश कालजयी हो गया है। इसके पठन-पाठन और निर्देशों को राजा-प्रजा के लिए अनुकरण योग्य बनाने के उद्देश्य की पूर्ति का ग्रन्थकार ने सूत्र-दर-सूत्र ध्यान रखा है। विषय-विवरण के पार्थक्य के परम्परित 'अध्याय' संज्ञा के विपरीत 'सूत्र' नामकरण के मूल में भी यह ध्येय लक्षित है। इसमें सूत्र वह है जो श्लोक रूपेण मुक्ताओं को पिरोये हुए है और वह सूत्र अपने-आप में गुर (टिप्स, नियम) का स्वरूप लिए हुए है। चरक ने सूत्र को गम्भीरता के साथ किसी वेद की शाखा, विद्या, ज्ञान, शास्त्र, लक्षण और तन्त्र के पर्याय और समानार्थी के रूप में स्वीकृत

किया है : तत्रायुर्वेदः शाखा विद्या सूत्रं ज्ञानं शास्त्रं लक्षणं तन्त्रमित्यनर्थान्तरम्॥ *(चरक. सूत्रस्थान 30, 31)* इस प्रकार इसके अर्थ-गाम्भीर्य को लक्षित किया जा सकता है।

इस ग्रन्थ में भारत में प्राचीन काल से ही चली आ रही वैज्ञानिक कलाओं का सम्यक् विवेचन मिलता है, चूँकि विश्वकर्मा ही इन कारू व चारू कलाओं के प्रवर्तक माने जाते हैं, अतः वे ही इसमें प्रवक्ता के स्वरूप में हैं। ग्रन्थ पूरी तरह उद्देश्यमूलक है और ग्रन्थकार ने इसकी संकल्पना के मूल में कलाओं के संरक्षण सहित उनके सम्पादन का विचार अपने सम्मुख रखा है। यह ग्रन्थ शास्त्रों का शास्त्र है, समकालीन समाज में जो कुछ कौतुक था अथवा जिन बातों को लेकर जन-मन में कुतूहल था, वह सब इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है। यह कारू-कर्मनों का ही मैन्यूअल नहीं है, बल्कि पुराविदों के लिए पौराणिक प्रसंगों की पूर्ति का प्रकाशपुंज है; दैवज्ञों के लिए साक्षात् ज्योतिर्ज्ञान है; सूत्रधारों के लिए स्थापत्य-शास्त्र है, मूर्तिकारों के लिए प्रतिमाशास्त्र, चित्रकारों के लिए चित्रकर्मशास्त्र है; तन्त्रज्ञों के लिए तन्त्रागम हैं; पटवों-आभूषणकर्मियों के लिए प्रसाधनीय आभरण-निर्देशिका, गजपालकों और अश्वपालकों के लिए पशुपालन है; सिकलीगरों-शस्त्रकारों के लिए आयुध-ज्ञानावली और गायकों-वादकों, नट-शैलूषों के लिए गान्धर्व-ज्ञानकोश है— जो जिस ज्ञानानुशासन का पण्डित है, यह उसके पूर्णतः पठन-पाठन योग्य प्रमाण-पुस्तक है, क्योंकि सब कोई विश्वकर्मा की सन्तान है और इससे उनके गुण-कौशल में अभिवृद्धि होती है, यह उनके लिए गुणमञ्जरी है।

विषय-वस्तु के आधार पर इस ग्रन्थ में लोक-मान्यताओं सहित कई शास्त्रों का स्वरूप दिखाई देता है और उसे निम्न शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

1. पुरागमशास्त्र : ग्रन्थारम्भ में गन्धमादन पर्वत के वर्णन से लेकर अट्ठासी तपस्वियों की तपश्चर्या, विश्वकर्मा के दिव्याश्रम और उनके स्वरूप का वर्णन और सूत्रधारों के लिए ज्ञातव्य विषयों का विवरण देते हुए ग्रन्थकार ब्रह्माण्डोत्पत्ति से अपने विषयों का चयन और उनका सम्यक् परिपाक करता हुआ बढ़ता है। इस क्रम में पातालों, द्वीपों, समुद्रों, पर्वतों, ऊर्ध्वाध लोकों का वर्णन एकदम पौराणिक शैली में करता है। इसमें प्रकृति, गुण, विप्रादि वर्णों, उनके गोत्रों, संसारावतरण और लोकों सहित जम्बूद्वीप, नव-वर्षों में निवास करने वाली प्रजा का वर्णन ज्ञेय है। इसके अन्तर्गत गन्धर्वादि संस्थान, संसारभूत ग्रामोत्पत्ति, गर्भ विकास, पञ्चतत्त्व, पञ्चगुण, गर्भविज्ञान, अठारह गुण-दोष, शिव-शक्ति ब्रह्मज्ञान और गीता के

महत्वपूर्ण विषयों के प्रतिपादन के साथ ही सत्त्व-रज-तम गुणों के लक्षणों का वर्णन भी ज्ञातव्य है। देश जाति, कुल, स्थान, वर्ण भेद तत्कालीन स्थितियों का द्योतक है।

2. कल्प व अवतारशास्त्र : इस क्रम में कल्पान्त क्रम, कल्प के देवता, पञ्चलिंग, हरिक्षेत्र, मत्स्यादि दस अवतारों का वर्णन, एकादश रुद्र, विश्वकर्मा, बारह शिवरात्रि निर्णय, शिव पूजन विधि व माहात्म्य वर्णित है। इसी में विश्वकर्मावतार के साथ ही पृथु-पृथ्वी संवाद में पृथ्वी की रचना और जय-विजय-सिद्धार्थ पृच्छा और अपराजित के प्रश्न से पुन: पौराणिक विषयों का वर्णन ज्ञेय है। इसमें सप्तद्वीप, सागर, पर्वत, महाशैल, भारत के ग्रामों, नृपराज्यों का प्रमाण, महावन, उपवन एवं वनयात्रा का रोचक विवरण है।

3. ज्योतिषशास्त्र : इस क्रम में विष्णु व लिंगादि महापुराणों के अनुसार ग्रहादि ध्रुव मण्डल, सूर्यादि नव ग्रहों के बिम्बों के मान, ग्रहादिकों की ध्रुव प्रदक्षिण गति, काल-संख्या प्रमाण, तिथियों, कलाओं, पक्ष, मास, ऋतु, साठ संवत्सरों, युगों के भेद, चौदह मन्वन्तर का वर्णन और फिर ज्योतिष पञ्चाङ्ग वासना के अन्तर्गत आवश्यक निर्देश एवं नष्ट ध्रुवक ज्ञात करना, तिथि भुक्ति, संक्रांति, दिन नक्षत्र, महा नक्षत्र भुक्ति, योग निकालना, करण, सात वार, तिथि, अश्विनी आदि नक्षत्रों, योगों के नाम, अवकहोडा ज्योतिष चक्र, नक्षत्र देवताओं के नाम, योनि वैर, आठ वर्ण, सूर्यादि ग्रहों की दशाओं के फलाफल, चन्द्रमा की बारह अवस्था व उसके फल और ज्योतिष लक्षण वर्णित है।

4. गणित-मपितशास्त्र : ग्रन्थ में संख्याओं की गणना व पहचान दी गई है वहीं गणित शब्द निघण्टु आया है। शिलामान निकालने, वृत्तफल, गोलफल, अष्टकोण फल, षट्कोण क्षेत्रफल, धनुषाकार क्षेत्रफल, त्रिकोणादि आकार सहित पिण्ड के क्षत्रफल को निकालने के सूत्र दिए गए हैं। आयादि वास्तु-गणित भी ज्ञातव्य है।

5. वास्तुशास्त्र : इस क्रम में मानव वास्तु और देववास्तु का प्रधानता से वर्णन अवलोकनीय है। इसमें क्रमश: भूमि परीक्षण, शकुन निरीक्षण, ग्रह पूजा, वास्तुपूजा, आचार्यादि पूजन, सूत्रधार परीक्षा, भूपरिग्रह, कीलकारोपण, कूर्मप्रमाणपद प्रतिष्ठा, वास्तु की उत्पत्ति का आख्यान, देवता न्यास, सोलह सन्धि, अष्टाङ्ग, अष्टसूत्र पञ्चक्षेत्र का वास्तु स्वरूप एवं वास्तुदेवता निघण्टु ज्ञेय है। इसमें स्वस्तिकादि विभिन्न वास्तु क्षेत्रों, उनके पदों की संख्या, स्थान, चतुरश्रादि क्षेत्र व उनके प्रयोजन, वास्तु मर्म निर्णय, दिक्पालादि वास्तुदेव पूजा-बलि कर्मयुक्ति,

आचार्य-सूत्रधार पूजा निर्णय, वास्तु परिभ्रमणादि गुण-दोष, प्रशस्त मास, प्राची साधन, आय-व्ययादि विचार, मेरु आदि छन्द और विकाश संख्या, विविध प्रकार के गृह, शाल, राजवेश्म, नगरों के प्रमाण, वहाँ निवेश योग्य रचनाओं की विधि, प्राकार के ऊपर स्थापनीय सूर्य यन्त्र, भैरवादि यन्त्र, विविध पुर-कूट-खेटक, ग्रामादि के स्वरूप और जलस्रोतों की रचना का वर्णन ज्ञेय है। इसी प्रकार त्रिविध राजालय, महामण्डेश्वरादि के राजगृहों के प्रमाण, प्रतोली, एक से लेकर पाँच पोलें, धारागृह, जलयन्त्र, वेद्यशाला, ध्रुवादि षोडश गृह, गृहों के छह प्रकार के छन्द, हवेलियों के गुणदोष, एक से लेकर दशशाल भवन, शुद्धा-सम्बद्धा-संयुता, परिभ्रम चार शालाएँ, छन्दभिन्ना, सम्पुटा, प्रतिक्रम जैसी अन्य शालाएँ, गृहमाला, गृहनाभि, गृहसंघट्ट, गृहाण आदि चार गृह भेद, खण्ड, पाण्डु, वाजिपूर्ण, तृणच्छन्द, पट्टक नामक गृहकर्म षट्च्छन्द, बत्तीस देवताओं के पदानुसार द्वार के शुभाशुभ, राश्यानुसार द्वारमुख और महाराज प्रसादायतन निवेश, राजपुर-ब्रह्मपुर-शूद्रपुर के प्रमाण नामक सूत्रों में मनुष्य वास्तु का विवेचन है।

इसी प्रकार देववास्तु के अन्तर्गत त्रैलोक्य दीक्षा का वर्णन, वैराज्यादि पाँच नागर प्रासाद, प्रासादों की संख्या, चौदह प्रकार के प्रासादों की उत्पत्ति, स्वस्तिकादि द्राविड प्रासादों की उत्पत्ति और उनके लक्षण, रुचकादि लतिन प्रासाद के भेद, उनकी उत्पत्ति व संख्या, वराट प्रासाद, विमान प्रासाद, केसरी प्रासाद, मिश्रक प्रासाद, भूमिज प्रासाद, विमान नागर प्रासाद, विमान पुष्पक प्रासाद, वलभी प्रासादों की उत्पत्ति, सिंहावलोकन प्रासाद, दारुज प्रासाद एवं फांसनाकार प्रासादों की उत्पत्ति का वर्णन ज्ञातव्य है। इसी प्रकार नागर-द्राविड-भूमिज-वराट-विमान प्रासादों के लक्षण, मिश्रक-सान्धार-विमाननागरादि प्रासाद और उनके प्रमाण, प्रासाद हर्म्य भेद, द्वार मान, प्रतोली मान, शिवतीर्थोदक का वर्णन, देवता प्रदक्षिणा, जीर्ण वास्तु चालन पर शुभाशुभता, वृष प्रकार दृष्टिस्थान, जीर्णवास्तु गुणदोष, प्रासाद देशानुक्रम, न्यूनाधिक लक्षण, सप्तपुण्याह व उनका माहात्म्य, चौदह शान्तियाँ, चौदह प्रकार की जगती, शिवालय, ब्रह्मालय, विष्णवालय, सूर्यालय, गौर्यालय, जिनालय के साथ-साथ बलाणक के मान व भेद, भिट्ट का मान व लक्षण, पीठ का मान इत्यादि अनेक विषयों का वर्णन अवलोकनीय है। इसी में कलाओं का विचार बहुत वैज्ञानिक रूप से दिया गया है। प्रासादों के विभिन्न अङ्गों के विवरण सहित यज्ञ-मण्डप विचार, मण्डल विधि, प्रतिष्ठा के लिए रत्नादि न्यास, महोत्सव, प्रासादाङ्गों में देवताओं का न्यास और सात प्रकार के मठों का वर्णन भी ज्ञातव्य है।

6. **कृषिशास्त्र** : इसके अन्तर्गत जलाशय माहात्म्य, कलियुग और लोकोत्तर प्रश्न, सुभिक्ष-दुर्भिक्ष लक्षण, कलियुग में तारण के लिए शस्योद्भव, जलोत्थान यन्त्र और जल बचत के निर्देश अध्ययन-अनुसरण के योग्य हैं।

7. **पशुपालनशास्त्र** : इस विषय के अन्तर्गत भद्रादि जातियों के गज और उनके उत्पत्ति एवं विहार योग्य वन तथा अश्व और उनकी विप्रादि प्रजातियों सहित दन्तिन्यादि गजशालाएँ एवं अश्वशाला बनाने के नियमों के निर्देश ज्ञातव्य है। यह वर्णन परम्परित रूप से संहिता ग्रन्थों के अनुसार मानक है। शस्यावतार सूत्र में बैलों की महिमा भी आई है।

8. **शिल्पशास्त्र** : राजोपस्कारक वस्तुओं के अन्तर्गत आसन व मसूरक, गदिका एवं पट्टगद्दी, राजच्छत्र, सिंहासन, नौ प्रकार के रथ, नन्दादि सभाष्टक लक्षण, चतुर्विध वेदी, कवच-आयुध आदि का निर्माण निर्देश ज्ञातव्य है।

9. **प्रतिमाशास्त्र** : इस शास्त्र के अन्तर्गत लिङ्गार्चादि उपयोगी शिलाओं के लक्षण, हस्त-कम्बी प्रमाण, परमाणु प्रमाण, उत्तम-मध्यम-अधम हस्त मान, कम्बिका के वास्तु देवता, उत्तम-मध्यम-अधम कम्बिका और उसका पूजन, शल्यदोष, विविध प्रकार के लिङ्गों व उनकी पीठिकाओं के लक्षण और शिव सहित विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, देवियों और जिन देवताओं उनके लाञ्छनों, यक्षों, शासन देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का वर्णन भी ज्ञातव्य है। स्वच्छन्द भैरव के अवतार व उनके रूप-आयुधों का वर्णन पठनीय है। इसी प्रकार प्रतिमाओं के ताल-मान, पूजा-मन्त्र आदि का विवरण भी पठनीय है।

10. **चित्रशास्त्र** : इसके अन्तर्गत चित्रों व पत्रों की उत्पत्ति, पत्रजाति, कण्टकभेद जीव सूत्र निर्णय, जातिक्रम छन्द से आठ कण्टक, पत्राकारादि का वर्णन, पट्ट, पत्र, वर्तना निर्णय, लेपकर्म विधि, गुरु-शिष्य सम्बन्ध व उनके लक्षण, रूपालङ्कार संयुत् चित्रकर्म कथन, षोडश व्यालों, स्त्री-पुरुष के लक्षण आदि ज्ञातव्य है।

11. **आयुध-आभरणशास्त्र** : इस विषय के अन्तर्गत कवच और आयुधों की संख्या एवं लक्षणादि का वर्णन तथा सोलह आभूषणों का वर्णन ज्ञातव्य है।

12. **गान्धर्वशास्त्र** : नाट्य शास्त्रसम्मत इस विषयानुशासन में ताल एवं वादित्र लक्षण, ताल के प्रकार, वाद्यों के प्रकार, सात स्वर, राग और रागिनियाँ, चौदह प्रकार के गीतों के दोष और नौ प्रकार के ताण्डव नृत्यों का वर्णन पठनीय है।

इस प्रकार अनेकानेक शास्त्रीय विषयों की पृष्ठभूमि पर इस अपराजितपृच्छा का न्यास-विन्यास हुआ है। लोकावश्यकताओं की पूर्ति के लिए इसमें यथेष्ट शास्त्रीय निर्देशों से पूर्णता प्रदान की गई है। रचनाकार इस ग्रन्थ की संकल्पना से लेकर समाहार तक पूरी तक केन्द्रीय-चित्त रहा है। उसके ध्येय में अबोध शिल्पी से लेकर पाण्डित्य-प्रतिभा सम्पन्न सुजन तक के लिए इसकी उपादेयता सिद्ध करना रहा है और इसमें वह सर्वाङ्गतया सफल रहा है।

नामकरण, आशय और पृष्ठभूमि :

जैसा कि कहा गया है कि अपराजितपृच्छा अनेक शास्त्रों का सूत्रित-स्वरूप है। इससे ग्रन्थकार के अध्ययन-आसमान का अवज्ञान तो होता ही है जो कि बहुत विस्तृत एवं व्यापक है, साथ ही उसके विषय चयन और उसे सूत्रित करने के कौशल का बोध होता है— एक गुरुकुल के परिवेश रूप में वह ग्रन्थ की संकल्पना करता है और जनता की ओर से की जाने वाली जिज्ञासाओं को वह अपराजित के मुख से प्रश्न के रूप में प्रस्तुत करता है और उनका उत्तर-प्रत्युत्तर स्वयं विश्वकर्मा प्रस्तुत करते हैं।

अपराजित के प्रश्नों के कारण ही यह 'पृच्छा' संज्ञाभिधान लिए हुए है। प्रश्न या पृच्छा की परम्परा हमारे यहाँ ब्राह्मण और उपनिषद-काल से तो रही है ही उत्तर-बौद्धकाल में ग्रन्थों के नामकरण के रूप में भी ज्ञातव्य है। 'मिलिन्दपञ्ह' ग्रन्थ तो बहुत प्रसिद्ध है ही जिसमें भिक्षु नागसेन और मिलिन्द का संवाद है, इसमें मिलिन्द जिसे यवन मिनेण्डर के रूप में पहचाना गया है, के प्रश्नों का विवरण मात्र नहीं है बल्कि उसके प्रश्नों का समाधान इसका मुख्य विषय है, इसी ग्रन्थ में लक्खणपञ्ह, विमतिच्छेदनपञ्ह, मेण्डकपञ्ह, योगिकथापञ्ह, अनुमानपञ्ह और ओपम्मकथापञ्ह जैसे प्रश्नों की शृङ्खला है और इन सबमें मिलिन्द के अनेक प्रश्नों का समाधान है। *(विशेष विवरण : आर. डी. वाडेकर सम्पादित मिलिन्दपञ्ह, मुम्बई विश्वविद्यालय, मुम्बई, 1940 ई.)* शब्दकोशों में 'प्रच्छ जिज्ञासायाम् + गुरोश्च हल:' के रूप में इस शब्द पर विचार हुआ है। अमरकोश में इसे प्रश्न का पर्याय कहा है। *(शब्दकल्पद्रुम खण्ड 3, पृष्ठ 224)* चरक के सूत्रस्थान में कहा गया है कि शास्त्र में जो विषय जिस प्रकार से कहा गया है, उसे उसी रूप में विधिपूर्वक पूछना प्रश्न कहलाता है : पृच्छा तन्त्राद्यथाम्नायं विधिना प्रश्न उच्यते। प्रश्नार्थो युक्तिमांस्तस्य तन्त्रेणैवार्थनिश्चय:॥ *(चरकसंहिता सूत्र. 30, 69)*

भरत के नाट्यशास्त्र में आया है कि जब कोई जिज्ञासुभाव से अपनी अभीष्ट वस्तु की तलाश करते हुए अनुनय-विनयपूर्वक प्रश्न करता हो तो **उसे पृच्छा**

समझना चाहिए : यत्रान्वेषणमर्थानां वाक्यैरभ्यर्थनापरैः। जिज्ञासुः पृच्छति परं सा पृच्छा त्वभिधीयते॥ *(नाट्य. 17, 32; एवं नाटक लक्षणरत्नकोश, 179)* कतिपयों का यह मत भी है कि जब कोई व्यक्ति स्वयं से या दूसरे से प्रश्न करते हुए किसी भावना एवं रस से पूर्ण तथ्य को कहता हो तो उसे पृच्छा समझना चाहिए : यत्र भावरसोपेतमात्मात्मानमथवा परम्। पृच्छन्निवाभिधत्तेऽर्थं सा पृच्छेत्युच्यते यथा॥ *(तत्रैव)* इस प्रकार अपराजितपृच्छा में अपराजित के प्रश्न ही नहीं है अपितु उसके प्रश्नों का सारगर्भित समाधान है। इसमें अपराजित पुत्र के रूप में और विश्वकर्मा पिता के रूप में हैं। जैसे पिता वात्सल्य भाव के साथ अपने पुत्र की प्रत्येक जिज्ञासा के शमन का प्रयत्न करता है, वैसा ही प्रयास इसमें हुआ है। अपराजित निश्चित ही गुणग्राहक होकर उभरते हैं। यह इसके 'सूत्रसन्तान गुणकीर्ति' के नाम को भी सार्थक करता है।

फिर, यहाँ सूत्रसन्तान से आशय सूत्रधार है— वह नाटक से लेकर स्थापत्य शास्त्र तक अपनी ज्ञानात्मक धारणा के लिए प्रसिद्ध है, उनका ज्ञानकोश केवल कल्पना तक सीमित नहीं हैं बल्कि वह कलम और करनी की करामात दिखाने में सुकान्त होता है। भरताचार्य की परिभाषा पर विचार करें तो सूत्रसन्तान या सूत्रधार वह है जो चारों प्रकार के वाद्यों के वादन में प्रवीण होता है, जिसे अनेकानेक व्यावहारिक कार्यों का अनुभव होता हैं, जिसे अनेक धार्मिक परंपराओं और धर्मों-मतों का व्यवहार विदित हो, जो नीति व अर्थशास्त्र का ज्ञाता हो, वेशोपचार का जानकार हो, जिसे कामशास्त्र का व्यवस्थित ज्ञान हो, पात्रों की अनेक प्रकार की गतियों व उनके रङ्गमञ्च पर चलने के परम्परागत आचार का जिसे भली प्रकार परिचय हो, जिसे रस और भावों का पूर्णतः ज्ञान हो, प्रस्तुति-प्रदर्शन में जो दक्ष हो, सभी शिल्प और कलाओं का सम्यक् वेत्ता हो, जिसे पदों व छन्दों का विभाग विदित हो, जो अनेक शास्त्रों का जानकार हो, जिसे ग्रह, नक्षत्र आदि विज्ञानों की तत्त्वतः जानकारी हो, जिसे शारीर-शास्त्र तथा शारीरिक गतियों का व्यवस्थित ज्ञान हो, जो पृथ्वी पर विद्यमान द्वीप, वर्ष, पर्वत, वहाँ के निवासीगण और उनके उचित आचार-विचार, वेशभूषा आदि का प्रामाणिक ज्ञान रखता हो, जिसे अनेक राजवंशों की परंपराओं व इतिवृत्त का ज्ञान हो, जिसने शास्त्रों में प्रतिपादित गुण, आचार और कार्यों का व्यवस्थित रूप से श्रवण किया हो और उन तत्त्वों को सम्यक् रूप से हृदयङ्गम किया हो और इन्हीं तत्त्वों का जो दूसरों को शिक्षण या उपदेश देने में भी समर्थ हो तो इन गुणों से युक्त पुरुष सूत्रधार होता है : चतुरातोद्य कुशलः नानाकर्मसु शिक्षितः। नानापाषण्डकार्यज्ञो नीतिशास्त्रार्थतत्ववित्॥ वेशोपचारनिपुणः

कामशास्त्रविचक्षणः। नानागतिप्रचारज्ञ रसभावा विशारदः॥ नाट्यप्रयोगकुशलो नानाशिल्पसमन्वितः। पदच्छन्दोविधानज्ञः सर्वशास्त्रविचक्षणः॥ ग्रहनक्षत्रतत्त्वज्ञो देहव्यापारपण्डितः। पृथिवी द्वीपवर्षाणां पर्वतानां जनस्य च॥ प्रमाणाचरितज्ञश्च राजवंशप्रसूतिवित्। श्रोता शास्त्रार्थकार्याणां श्रुत्वा चैवावधारकः॥ अवधार्य प्रयोक्ता च शक्तश्चैवोपदेशने। एवं गुणस्तथाचार्यः सूत्रधारो विधीयते॥ *(नाट्यशास्त्रम् 35, 66-71)* देखा जाए तो भरतोक्त ये सारे ही विषय अपराजितपृच्छा में विद्यमान हैं। निश्चित ही यह सूत्रसन्तान-गुणकीर्तिप्रदायक है।

रचनाकाल और रचना स्थल :

अपराजितपृच्छा के रचनाकाल को लेकर विद्वानों में निश्चित ही उहापोह की स्थिति रही है। इस ग्रन्थ के बड़ौदा संस्करण के सम्पादक, जूनागढ़ रियासत सहित जोधपुर और हैदराबाद व अन्य म्यूनिसिपलटीज में इंजीनियर रहे श्री पोपटभाई अम्बाशङ्कर मंकड; स्थापत्य शास्त्र के विद्वान मधुसूदन अमीभाई ढाकी, एम. पी. वोरा आदि ने इस समस्या के निस्तारण की दिशा में अपने कतिपय प्रयास किए हैं और इन्हीं मतों की समीक्षा इस ग्रन्थ के शोधार्थी प्रो. लालमणि दुबे ने भी की है।

श्री मंकड ने माना है कि इसका रचनाकाल 12वीं और 13वीं सदी के मध्य रखा जाना उचित है। *(अपराजित. बड़ौदा, भूमिका पृष्ठ 12)* श्रीवोरा और श्रीढाकी ने कतिपय उद्धरणों के आधार पर इसके रचनाकाल के पुनर्निधारण का प्रयास किया व कहा कि पीठ के जाड्यकुम्भ, वाजीपीठ जैसी गुजरात के देवालयों के निर्माण में प्रचलित इस पीठ की परम्परा इसे 12वीं सदी में प्रवर्तित बताती है क्योंकि सोमनाथ में 1169 ई. की ऐसी रचनाएँ सामने आई हैं। इसी प्रकार 1140 में सिद्धपुर-गुजरात में बने रुद्रमातरालय में यह विधान परिलक्षित होता है। भित्ति में मञ्चिका, शिरावटी और कूटछाद्य जैसी रचनाएँ 11वीं सदी से पहले सामने नहीं आती और इनका वर्णन अपराजितपृच्छा में हुआ है। इस आधार पर इस ग्रंथ का रचनाकाल 12वीं सदी कल्पित किया जा सकता है। इसी प्रसङ्ग में केसरादि, श्रीधरादि, सुरटर्वादि, सागरतिलकादि और मेरु शैली के मन्दिर गुजरात व राजस्थान में इसी काल में दिखाई देते हैं। *(द डेट ऑफ अपराजितपृच्छा, जर्नल ऑफ ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बडौदा, भाग 9, पृष्ठ 426-431)*

यही नहीं, साधारण शैली के चार स्तम्भों वाले प्राग्ग्रीव मण्डप एवं कई स्तम्भों वाले सभागारों का जो वर्णन अपराजितकार ने किया है, वैसे 11वीं सदी से ही बनने आरम्भ होते हैं। घट-पल्लवों से युक्त स्तम्भों का विधान जो कि इस ग्रन्थ में आया है, वह 12वीं सदी के बाद दिखाई नहीं देता है, ऐसे में भी इस ग्रन्थ का

रचनाकाल 12वीं सदी के समापन से पूर्व का ही निर्धारित होता है। यही स्थिति मण्डपादि में स्वास्तिकाकार संवराणाओं की हैं जो कि उक्त अवधि में ही गुजरात, राजस्थान सहित मध्य भारत में प्रचलित रही हैं। चतुर्भुजी दिक्पालों की मूर्तियाँ और उनमें आयुध-न्यास का जो वर्णन अपराजितकार ने किया है, वह 11वीं सदी और अधिकतम 12वीं सदी में गुजरात में निर्मित देवालयों में ही सामने आता है। *(उपर्युक्त)*

उक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि यह ग्रन्थ 11वीं-12वीं सदी के मध्य आकार ले चुका था। चूँकि इस ग्रन्थ पर 'समराङ्गणसूत्रधार' का पूरा प्रभाव है, ऐसे में यह ग्रन्थ समराङ्गण के रचयिता धाराधिप भोजराज (1010-1053 ई.) के बाद ही अस्तित्व में आया होगा। प्रो. ढाकी ने अपराजितपृच्छा पर समराङ्गणसूत्रधार के प्रभाव की चर्चा अपने एक आलेख में की है *(द इन्फ्लुएंस ऑफ समराङ्गणसूत्रधार ऑन अपराजितपृच्छा, जर्नल ऑफ ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, भाग 10, पृष्ठ 231-234)* किन्तु, यह भी प्रतीत होता है कि समराङ्गण व अपराजित दोनों ही ग्रन्थों के सामने कोई अन्य विश्वकर्मीय ग्रन्थ भी रहा होगा और उसी से इन ग्रन्थकारों ने सामग्री और विषय को उद्धृत किया है। समराङ्गणसूत्रधार के पहले ही अध्याय में विश्वकर्मीय ग्रन्थ-परम्परा का उल्लेख किया गया है और अपराजितकार ने भी जय, विजय, सिद्धार्थ आदि के नाम से ग्रन्थों के विद्यमान रहने और उनके विषयों की सूची भी दी है।

बहुत सम्भव है कि उस काल में कोई विश्वकर्मीय मत-ग्रन्थ प्रधान स्रोत के रूप में या आदर्श के रूप में सबके लिए ज्ञातव्य था। हालांकि भुवनदेवाचार्य ने कहीं भी समराङ्गणसूत्रधार का स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया है, हाँ अनेकत्र विश्वकर्मा के मुख से भी 'आद्य विश्वकर्मा' का उल्लेख अवश्य करवाया है। यह विश्वकर्मीय ग्रन्थ कहीं विश्वकर्मा प्रकाश या वास्तुतन्त्र प्रतीत होता है तो कहीं-कहीं 'जयपृच्छा' (विद्यमान अहमदाबाद संस्करण से भिन्न और 10वीं सदी में प्रचलित आधारभूत पाठ जिसे भोज, सूत्रधार नकुल, हेमाद्रि पण्डित, महाराणा कुम्भा आदि ने उद्धृत किया है) का प्रभाव जान पड़ता है। स्कन्दपुराण, बृहद्देशी, नारदपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, लिङ्गपुराण, नन्दीकेश्वरपुराण, शिवधर्म और शिवधर्मोत्तर, सुप्रभेदादि शैवागम आदि का प्रभाव भी अनेकत्र दिखाई देता है। स्कन्दपुराण के श्लोक ग्रन्थकार ने 'स्कन्दागम' के नाम से स्मरण भी किए गए हैं। भुवनदेवाचार्य की यह सूचना भी महत्वपूर्ण है कि उस काल तक छिन्न-भिन्न हो चुके स्कन्दपुराण को पुनर्संस्कारित किया जा रहा था। वास्तव में यह वही काल है जबकि पाटन-

गुजरात के राजा कुमारपाल चालुक्य (1140-1174 ई.) का चरित्र भी स्कन्दपुराण में *(ब्राह्मखण्ड, धर्मारण्य माहात्म्य अन्तर्गत)* स्थान पा चुका था।

यह सङ्केत स्कन्दपुराण के स्वरूप को लेकर विद्वानों के उन प्रश्नों का उत्तर भी देता है कि इस पुराण के दो स्वरूप है—संहितात्मक और खण्डात्मक; यह पुराण वर्तमान में खण्डात्मक (माहेश्वरखण्ड, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, आवन्त्य, नागर एवं प्रभास) ही मिलता है जबकि संहितात्मक स्कन्दपुराण से केवल 'सूतसंहिता' लब्ध होती है शेष सनत्कुमारसंहिता, शाङ्करी, वैष्णवी, ब्राह्मी एवं सौरसंहिता अनुपलब्ध है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री का कथन है कि संहितात्मक स्कन्दपुराण की एक प्रति नेपाल दरबार पुस्तकालय में 7वीं सदी की प्राप्त होती है। प्रो. पी. वी. काणे ने इस समस्या के उत्तर में कहा है कि यह स्कन्दपुराण 7वीं सदी के पूर्व नहीं रखा जा सकता है और न ही नवीं सदी के पश्चात् का हो सकता है। *(धर्मशास्त्र का इतिहास खण्ड 4, पृष्ठ 428)* इन मतों के विपरीत अपराजितकार के सङ्केत और कुमारपाल चरित्र का इस पुराण में मिलना इसे 12वीं सदी तक ले जाता है।

कुमारपाल चालुक्य के चरित्र-मूलक ग्रन्थों पर विश्वास करें तो सहज विश्वास होता है कि गुर्जर-चालुक्य चक्रवर्ती इस नृपति के जीवन प्रसङ्गों को समकालीन और परवर्ती विद्वानों को बहुत प्रभावित किया। तभी तो अज्ञातकर्तृक ने पुरातन संक्षिप्त कुमारपालदेव चरित की रचना की, सोमतिलक सूरि ने कुमारपालदेवचरित रचा, जिनमण्डन ने कुमारपाल प्रबन्ध लिखा, किसी अन्य ने कुमारपाल-प्रतिबोध की रचना की। इसी प्रकार चतुरशीतिप्रबन्ध में कुमारपालदेवप्रबन्ध का निबन्धन किया वहीं हीरकलश, देवप्रभगणि, ऋषभदास व जिनहर्ष ने कुमारपालरास नाम से पृथक्-पृथक् काल में कृतियों का प्रणयन किया तो सोमप्रभाचार्य ने कुमारपालप्रतिबोध को उद्धृत किया। तीर्थकल्प, मोहपराजय नाटक, प्रभावकचरित्र, प्रबन्धचिन्तामणि, उपदेशतरङ्गिणी, उपदेशप्रसाद सहित कई प्रशस्तियों में कुमारपाल का वर्णन आया है। *(कुमारपालचरित्र संग्रह, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, क्रमाङ्क 41)* इसी प्रकार चित्रकूट (चित्तौड़गढ़) के समीधेश्वर महादेव मन्दिर से उसका शिलालेख 1141 ई. का मिला है। उस समय तक वह शैव मतावलम्बी था और विक्रम संवत् 1216 के मार्गशीर्ष की शुक्ल पक्ष की द्वितीया (दिसम्बर 1160 ई.) को कुमारपाल ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था, जैसा कि प्रो. पीटर पीटर्सन का मत भी है।

अपराजितकार उस समय के जैनधर्म के प्रसार-प्रभाव से अनभिज्ञ नहीं था। उसने यदुवंशी श्रीकृष्ण के नेमिनाथ के रूप में गिरनार-रैवताचल या उज्जयन्त पर्वत

पर प्रकट होने की सूचना दी है। ऐसा प्रतीत होता है कि यदुवंश में माण्डलिक राजा के गुरु हेमाचार्य ने उक्त पर्वत पर नेमिनाथ या नेमनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित की थी। *(कर्नल जेम्स टॉड कृत पश्चिम भारत की यात्रा, जोधपुर 1965, परिशिष्ट पृ. 540)* कदाचित इसी प्रसङ्ग को अतिशयोक्ति के रूप में ग्रन्थकार ने दिया हो। इस उज्जयन्त पर्वत के श्रीनेमिनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार विक्रम संवत् 1333 (1276 ई.) के ज्येष्ठ की चतुर्दशी को हुआ था। संवत् 1227 (1170 ई.) के एक अभिलेख में आया है कि तब तक नेमीश्वर तीर्थ बहुत प्रसिद्ध हो चुका था और अनेक प्रकार के ऐसे रत्नों से विभूषित था जिनको धनिक व्यापारी दूर-दूर के समुद्र-तटों से लेकर आए थे।

इससे पूर्व संवत् 1204 (1147 ई.) के फाल्गुन मास की षष्ठि, बुधवार के तेजपाल और बसन्तपाल बन्धुओं द्वारा स्थापित एक लेख में कहा गया है कि पवित्रता के सागर के समान यदुवंश में इन्दु नेमीश्वर हुए जिनके चरण कमलों का अनुसरण करते हुए परमोच्च उज्जयन्ति तक चढ़कर यदुवंशियों के समूह के समूह युग-युग से नेमिनाथ के चरणों में शीश नवाते आए हैं। *(वही, पृष्ठ 524-526)* इस प्रकार अपराजितकार इससे पूर्व हो चुका था और तब तक गिरनार पर नेमिनाथ-तीर्थ की मान्यता का विकास हो चुका था।

अन्त:साक्ष्य के अन्तर्गत ही ग्रन्थकार ने महाग्रावभी रत्नकूट, मेरुतिलकादि संज्ञक जिन देवालयों के स्वरूपों का वर्णन किया है, वे अन्यान्य वास्तु विधियाँ 12वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक समाज में प्रचलित थी। इनमें से कई नाम वलभी संवत् 850 तद्नुसार 1169 ई. के कुमारपाल चालुक्य के एक अभिलेख में आए हैं। यथा— बस्तियों में ब्रह्मपुर, राजाओं के मण्डल, यतियों के मठ, नृपशाला, कूपिका, रौप्यप्रणाल, मण्डुकासन, पट्टशालिका, सोपान, महागृह, वापिका आदि मुख्य हैं। मन्दिरों के लिए कैलाश-शैल के समान जैसी तुलनाएँ आई हैं। मेरु के समान मन्दिर को खड़ा करवाना, जीर्णोद्धार कार्य की प्रशंसा, देवालयों पर स्वर्ण-कलश की स्थापना, जल-कुल्याएँ बनवाना और देव प्रतिमाओं के लिए सिंहासन निर्माण जैसे प्रसङ्ग तत्कालीन परम्परानुसार अपराजितपृच्छा में आए हैं। फिर, तब तक सोमनाथ-प्रभास क्षेत्र का महत्व उजागर हो चुका था। अपराजितकार ने विस्तार से सोमनाथ का वर्णन किया है। वहाँ तब शिल्पियों का बृहद् समूह विद्यमान था और उक्त मन्दिर के लिए विशिष्ट कार्य के सम्पादक होने के कारण उनकी ख्याति सोमनाथपुरवासी होने से सोमपुरा के रूप में ख्यातिलब्ध हुई।

ऐसा प्रतीत होता है कि संक्रमण युग में जबकि कला की काया ऐसे दौर में थी

जिसमें भाव पुरातन थे और विचार नए रूप में थे, यह ग्रन्थ लिखा गया। यह पश्चिमोत्तर भारत में गुर्जर-गुहिल काल में प्रवर्तित प्रवृत्तियों का ग्रंथन है जिसमें कला का प्रवाह कुछ आहत हुआ, शिल्पी समुदाय सताया गया, उन्हें ग्रामादि से विमुख किया गया था और तब उन्हें एक शास्त्र की जरूरत पड़ी। दिक्पालों को विशेष प्रतिष्ठा देने के लिए चारभुजा सहित मूर्त्यांकन किया गया — यह पश्चिमी भारत के राजाओं और राजन्यशक्ति की अभिवृद्धि के ध्येय का भी सूचक है क्योंकि इसी ओर से अरबों की आक्रमणकारी गतिविधियाँ निरन्तर थी और दिक्पाल के रूप में राजाओं को सशक्त करने का विचार शिल्पियों के मानस में भी जन्म ले चुका था। फिर प्रतिहार युगीन शिल्प के शिखर अल्पवय में ही झूलते दिखाई दे रहे थे। ऐसे में रेखावर्णन का विन्यास किया गया — अपराजितपृच्छा की रचनात्मक पृष्ठभूमि में इन बातों का भी विचार किया जाना चाहिए।

ऐसे ही विभिन्न वर्णनों के आधार पर इस ग्रन्थ का रचनाकाल 12वीं सदी निर्धारित होता है। प्रो. ढाकी ने भी ऐसे ही प्रमाणों की बुनियाद पर विभिन्न मारु-गुर्जर शिल्प ग्रन्थों का परीक्षण करते हुए इसे कुमारपाल चालुक्य की शासनावधि की देन सिद्ध किया है। इस प्रसङ्ग में कुमारपाल के अभिन्न, मन्त्रियों में प्रधान गुरु भावबृहस्पति ने इस काल में जीर्णोद्धार के कार्यों को प्रमुखता दी। कुमारपाल ने उसे अपनी मुद्रा, कोष और सर्वस्व दे दिया और कहा कि जाओ एवं देवपत्तन के तीरन (देवसमुद्र-तटवर्ती) मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाओ। वहाँ उत्सव हुआ, प्रथमतः चन्द्रमा ने स्वर्णमन्दिर खड़ा किया, फिर रावण ने चाँदी का मन्दिर बनवाया। बाद में कृष्ण, भीमदेव ने इसका पुनर्निर्माण करवाया। इसमें जवाहरात जड़वाए। एक बार पुनः कुमारपाल के प्रयासों से यह मेरु संज्ञक प्रासाद के समान बनाया गया...। इसे भावबृहस्पति ने कैलास के समान बनवा दिया और राजा को अपने कार्यों के अवलोकन के लिए आमन्त्रित किया। कुमारपाल ने जब उनको देखा तो प्रशंसापूर्वक कहा कि मेरा हृदय आनन्दित है, मैं तुम्हें और तुम्हारी सन्ततियों को मेरे राज्य में प्रधानता प्रदान करता हूँ। जैसा कि 1169 ई. के एक अभिलेख में आया है—

एवं राज्यमनारत विदधति श्रीवीरसिंहासने
श्रीमद्वीरकुमारपालनृपतौ त्रैलोक्यकल्पद्रुमे।
गण्डो भावबृहस्पतिः स्मरपिपोरुद्वीक्ष्य देवालये
जीर्णं भूपतिमाह देवसदनं प्रोद्धर्तुमेतद्वचः॥

आदेशात् स्मरशासनस्य सुबृहत्प्रासादनिष्पादकं
चातुर्जातकसम्मतं स्थिरधियं गार्गेयवंशोद्भवम्।
श्रीमद्भावबृहस्पतिं नरपतिः सर्वेशगण्डेश्वरं
चक्रे तं च सुगोत्रमण्डलतया ख्यातं धरित्रीतले॥
दत्वालङ्करणं करेण तु गले व्यालम्ब्य मुक्त्या... प्रणम्याग्रतः।
उत्सार्यात्म महत्तमं निजतमामुच्छिद्य मुद्रामदात्।
स्थानं भव्य पुराणपद्धतियुतं निस्तन्त्रभक्त्यव्ययम्॥
प्रासादं यदकारयेत् स्मररिपोः कैलासशैलोपमं
भूपालस्तदतीवहर्षमगमत् प्रोवाच चेदं वचः।
श्रीमद्गण्डमहामतिं प्रति गण्डत्वमेतत्तव प्रत्तं
सम्प्रति पुत्रपौत्रसहिताया चन्द्रतारारुणम्॥
सौवर्णं सोमराजो रजतमयमथो रावणोदारवीर्यः
कृष्णश्रीभीमदेवो रुचिरमहाग्रावभी रत्नकूटम्।
तं कालज्जीर्णमेष क्षितिपतितिलको मेरुसञ्ज्ञं
चकार प्रासादं सप्रभावः सकलगुणनिधेगण्डसर्वेश्वरस्य॥
पश्चाद् गुर्जरमण्डलक्षितिभुजा सन्तोषहृष्टात्मना
दत्तो ब्रह्मपुरीति नामविदितो ग्रामः सवृक्षोदकः।
कृत्वा त्रैपुटताम्रशासनविधिं श्रीमण्डलीसन्निधौत्वत्पुत्रैसतदनुव्रतैः
स्वकुलजैः सम्भुज्यतां स्वेच्छया॥ *(भावनगर प्राचीन संस्कृत इंस्क्रिप्शंस, पृष्ठ 185, श्लोक 11-16)*

लगभग यही वर्णन कुमारपाल के चरित्र संग्रह में भी आता है : बृहस्पत्यभिधानेन गण्डेनानुगतो नृपः। गाढं सोमेश्वरं लिङ्गमालि लिङ्गानुरागवान्॥ श्रीजैनादपरं देवं नामी वन्दन्त इत्यसो। मिथ्यादृग्वचसा भ्रान्तो भूपः सूरीनभाषत॥ भगवन्! यदि युज्यते तदेतैर्बलिभिः स्वयम्। अर्चयन्तु प्रभुं शम्भु समयज्ञस्ततो गुरुः॥ तदैवोद्गमनीयेन भूपादिष्टेन भूषितः। आरुह्य चैत्यदेहल्यां शम्भुं दृष्ट्वेदमभ्यधात्॥ *(कुमारपालदेव चरितम् : सोमतिलकसूरीकृत, मुनि जिनविजय सम्पादित कुमारपालचरित्रसंग्रह में संकलित, द्वितीय संस्करण श्रुत रत्नाकर, अहमदाबाद, 2008 ई., पृष्ठ 48, श्लोक 358-361)*

ग्रन्थकार ने भी प्रासादोत्पत्ति के प्रसङ्ग में इस प्रकार से प्रासादविधान का वर्णन

किया है और सम्मान स्वरूप दानादि का विधान भी वर्णित किया है। प्रतीत होता है कि अपराजितकार उस घटना का दर्शक रहा होगा और यह ग्रन्थ 1150 ई. के आसपास लिखा जा चुका था अथवा लिखा जा रहा था। किन्तु, यह सन्देह स्थल-स्थल पर प्रकट होता है कि भुवनदेव गुजरात से लगे प्रदेश मेवाड़ से परिचित था। यद्यपि कुमारपाल ने मेवाड़ को विजित किया था, ऐसे में धारानगरी के परमारों के पश्चात् मेवाड़ गुजरात के चालुक्यों के अधिकार में रहा। कुमारपाल ने चित्तौड़गढ़ स्थित परमार भोज के बनवाए समीधेश्वर मन्दिर में पूजन किया था और वहाँ स्वर्णकलश चढ़ाकर भूमिदान किया—

सन्निवेश्य शिविरं पृथु तत्र त्रासिता सहनभूपतिचक्रम्।
चित्रकूटगिरि पुष्कलशोभां द्रष्टुकुमारनृपतिः कुतुकेन॥
यदुच्चसुरसद्माग्रोपरिष्टात् प्रपतन् सदा।
रथं नयत्यलं मन्दं मन्दं भङ्गभयाद्रविः॥
यत्सौधशिखरारूढकामिनीमुखसन्निधौ।
वर्तमानो निशानाथो लक्ष्यते लक्ष्मलेखया॥ *(प्रो. कीह्लोर्न सम्पादित चित्तौड़गढ़ स्थित कुमारपाल का अभिलेख : इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग 2, पृष्ठ 521)*

इस समस्त पृष्ठभूमि में मेरा विचार है कि यह ग्रन्थ निश्चित तौर पर 1140 से लेकर 1150 ई. तक तैयार हो गया था। इसके तैयार होते ही इसकी प्रतिलिपियों का देशभर में आदान-प्रदान हुआ। देवगिरिराज्य के यादववंशीय नरेश महादेव (1260-1271 ई.) के धर्मशास्त्री हेमाद्रि पण्डित ने अपराजितपृच्छा के श्लोक प्रथमतया: ग्रन्थ के नामोल्लेख के साथ अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' के परिशेषखण्ड के तीसरे भाग कालनिर्णयोक्त 'प्रासादाद्यारम्भकाल:' के प्रसङ्ग में प्रमाण के रूप में उद्धृत किए। इससे इस ग्रन्थ के 12वीं सदी के बाद लिखे जाने की धारणा निर्मूल हो जाती है। ये श्लोक हैं —

रवौ कन्यातुलालिस्थे वास्तौ पूर्वे शिरः स्थितम्।
चापे च मकरे कुम्भे दक्षिणेन व्यवस्थितम्।
आदित्यवारयोगेन स वास्तुः सरति भ्रमात्॥
यत्र भानुः शिरस्तत्र लक्षितव्यं रविक्रमात्।
देवागारं गृहश्चैव न कुर्याच्छीर्षसन्मुखम्॥
मृत्युरोगभयानि स्युः प्रशस्तं कुक्षिसन्मुखम्।

तुला-वृश्चिक-कन्यासु भास्करो यदि संस्थितः।
न तदा प्राङ्मुखं कुर्यात् गृहं भवति निष्फलम्॥
धनुर्मकरकुम्भेषु यदि तिष्ठति भास्करः।
तदा याम्यमुखं वेश्म राजचौराग्निभीतिदम्॥
मीने मेषे वृषे प्रत्यङ्गमुखं स्त्रीकलहावहम्।
मिथुने कर्कटे सिंहे न कुर्याच्चोत्तराननम्।
तथा कृतं भवेद्वेश्म दोष-शोक-भयावहम्॥ *(हेमाद्रि : चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड कालनिर्णय अध्याय 15, पृष्ठ 819-820)*

अपराजितपृच्छा के वर्तमान पाठ में ये श्लोक निम्नांकित क्रम और पाठान्तर के साथ प्राप्त होते हैं—

रवौ कन्यातुलालौच पूर्वे शिरः समाश्रितः।
धनोश्च मकरे कुम्भे दक्षिणे तु व्यवस्थितः॥
मीने मेषे वृषे चैव पश्चिमे तु समाश्रितः।
मिथुने सिंहकर्के च ह्युत्तरेण व्यवस्थितः॥
सर्वकालक्रमोऽयं च राशिमध्ये ह्यतः शृणु।
देवताश्च क्रमयोगेन स वास्तुः सरते महीम्॥
यत्र भानुस्तत्र शिरं लक्षितव्यं रविक्रमात्।
अन्यथा कुरुते दुःखं शिरो वास्तावलङ्कृतम्॥
देवागारं गृहं यत्र न कुर्याच्छिरः सन्मुखम्।
मृत्युरोगभया नित्यं शस्तं च कुक्षिसन्मुखम्॥
कन्यातुलावृश्चिके च भास्करो यदि संस्थितः।
पूर्वे मुखं न कर्त्तव्यं गृहं भवति निष्फलम्॥
मकरे चैव धनुषि कुम्भे वा च दिवाकरे।
याम्यादिशि मुखं कुर्याद्राजचौराग्निजं भयम्॥
मीने मेषे वृषे चेव पश्चिमा दिग् च दूषिता।
स्त्रीणां रोगं महाघोरं भवति ह्यतिदारुणम्॥
मिथुने सिंहकर्के च वेश्म नैवोत्तराननम्।
दोषशोकभयं तत्तु न कुर्याच्च विचक्षणैः॥ *(अपराजित. 62, 3-11)*

इससे यह भी प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ रचनाकाल के बाद पुनर्संस्कारित या पुनर्सम्पादित हुआ है क्योंकि श्लोकों के बीच-बीच भी अन्य पङ्क्तियाँ मिलती हैं और पाठ भेद भी है। इसके अतिरिक्त भुवनदेव ने शिवरात्रि का विस्तृत वर्णन किया है, वर्ष की सभी शिवरात्रियों का नामोल्लेख किया है। उसके काल में शिवरात्रि का महत्व इस बात से भी प्रतीत होता है कि किराडू-जोधपुर के 1152 ई. के एक अभिलेख में कुमारपाल के एक सामन्त आह्लणदेव द्वारा एक आज्ञा से शिवरात्रि पर पशुवध निषेध करने का निर्देश दिया गया है। *(एन्यूअल रिपोर्ट ऑफ राजपूताना म्यूजियम 1931)* हमें याद रखना चाहिए कि शिवरात्रि के व्रत की कथा आबू से जुड़ी हुई है और उस कथा में मूलतः शिकारी द्वारा मृग-मृगी का वध नहीं करने का वर्णन ही है।

ग्रन्थ के साङ्गोपाङ्ग अध्ययन से प्रतीत होता है कि भुवनदेव जितना गुजरात से परिचित था, उतना ही वह गुजरात से लगे मेवाड़ क्षेत्र से भी परिचित था। बहुत सम्भव है कि वह सोमपुरा हो किन्तु बहुत विद्वान था। वह कुमारपाल के साथ मेवाड़ आया हो जैसा कि कुमारपाल के साथ दण्डपाल सज्जन भी आया था जिसे पाटी सहित चित्तौड़ दिया और वहाँ का राजा किया *(जैसा कि कुमारपालदेव प्रबन्ध गाथा 14 में आया है)* अथवा भुवनदेव मेवाड़ में उस काल में चल रही शिल्प गतिविधियों के क्रम में निमन्त्रण पर आया हो किन्तु जब परमारों के प्रभाव से मेवाड़ में समराङ्गणसूत्रधार जैसे ग्रन्थ प्रचलित रहे होंगे तो ऐसे में अपराजितपृच्छा जैसे ग्रन्थ की क्या आवश्यकता रही होगी ?

ऐसे में कुछ कारण दिखाई देते हैं —

1. प्रथमतः चालुक्यों का परमार भोज के साथ वैर-भाव था। भोज के पूर्वजों ने गुजरात पर अधिकार के लिए चढ़ाई की थी और वहाँ पर्याप्त रक्तपात हुआ था। इसके बदले में चालुक्यों ने भोज की राजधानी को रौंद डाला था, जैसा कि विक्रमाङ्कदेवचरित *(अध्याय प्रथम)* आदि से विदित होता है। ऐसे में चालुक्य नहीं चाहते थे कि वे परमार शासकों के किसी मत को स्वीकार करें। ग्रन्थों और विचारधारा के प्रसङ्ग में यह विचार कुछ अधिक ही चरितार्थ होता है। इसलिए भुवनदेव ने भोजकृत समराङ्गणसूत्रधार के श्लोकों को ज्यों-का-त्यों लिया भी है किन्तु कहीं भी भोज का नामोल्लेख नहीं किया है बल्कि उन्हें विश्वकर्मा-वचन कहा है।

2. द्वितीयतः समराङ्गणसूत्रधार के निर्देश लगभग एक सदी पुराने हो चुके थे और कला में नवीनता देना अपरिहार्य हो चुका था। फिर मालवा व गुजरात में

भौगोलिक स्थितियाँ पृथक् भी थीं। ऐसे में नवीन कला परम्परा का प्रवर्तन होना प्रासङ्गिक ही था। अरबों के हमले में विनाश को प्राप्त सोमनाथ व अन्य देवालयों के जीर्णोद्धार के साथ ही कला में नवीन धारा का प्रवाह अनिवार्य था।

3. सोमनाथ पर आक्रमण के साथ ही कई सोमपुरा शिल्पी वहाँ से तत्काल मेवाड़ आदि की ओर पलायन कर गए हों और उनमें से किसी को अपने सूत्रसन्तानों के लिए निर्देश तैयार करने हों और उसने अपनी स्मृति के अनुसार भोज के मतों को लिखते हुए नवीन ग्रन्थ की रचना की हो।

बहुत सम्भव है कि इस ग्रन्थ की रचना चित्तौड़गढ़ स्थित समीधेश्वर (समाधीश्वर) मन्दिर में हुई हो क्योंकि वह भोजकृत रहा है और वहाँ चालुक्यों का अधिकार और परमारों की प्रभुत्व के अवसान के बाद भुवनदेव निश्चिन्त रहा हो। इस क्रम में मेवाड़ के शिल्पियों का वह प्राचीन 'सबद-सूत्र' उद्धृत करना अप्रासङ्गिक नहीं होगा जिसमें समीधेश्वर मन्दिर में विश्वकर्मा-अपराजित संवाद के रूप में इस ग्रन्थ की रचना का उल्लेख आता है। यह कहना न होगा कि जहाँ इतिहास के अन्य स्रोत मौन होते हैं, तब एक वातायन लोकसाहित्य भी खोलने का यत्न करता है। इस सबद-सूत्र में अपराजितपृच्छा की न केवल विषय-वस्तु दी गई है, बल्कि भुवनदेवाचार्य का परिचय भी है। भुवनदेव की शिल्पविद्या का प्राचीन 'सबद' (कण्ठ-दर-कण्ठ) स्मृत्यमान चम्पूतुल्य यह रचना इस प्रकार हैं—

ॐ गुरुजी! विद्या में सिलपविद्या जो साधे सो पावै अमरापुरवास। जो भणै सो सधैरै जावै कैलासवास॥ चितरकोट समाधीसर बैठ भणै चेजारो भवनदेव, गंधमंगरे वराज्या मादेव, रिसी वन्दावै। विस्क्रमाजी भाषै हुणै अपराजित- अगम, पछम, स्त्रस्टि री उतपत-लोप, जडखान, पिण्डखान, परेवखान, बीजखान, चार समन्द सतखण्डी प्रथ्वी, सात लोक, नौ नाथ, साम्भरूं मेवाड़। रिश्यां री सन्ताण। गणतभणै, जोतीस भणै, भणत भणै, गड़त भणै, जोऊं लेयर हाथ तईं नापै, मिण्डीऊं करोड़ नापै। आवक आछौ लागै, जावतो रंज लागै। भाण्डता देवल जोड़े, नवा करै। चोथ, सिवरात, मैल-माळिया, तळाब-नाड़ी-बावड़ी-कूड़ा-निवाण, नीम-सीम, इण्ड-मीण्ड, देवळ-मूरत, पूजा-परसाद, राग-रागणी, नरतन-किरतन कोइ भेद बाकी नहीं। आठ सेहस गरन्थ माण्ड्या, दो पोटी पानड़ा। जदी चाल्या चीरवे ने नागदा ने धोके है। कैलास नगरी में राजा वैसळ सन्माने। आबू रे मथारे हुणै टंकोड़, पाथोड़, राठौड़ चाक दे, क्रमचारो देवळ बांधता। अठी नाळे तो मारवाड़, वठी जावै तो गुजरात। वणै सूरी जो चेला वदावै। करै भगती वदावै

अगती। भवनदेव री वात कुण भणै। मैल वणातो राजा, देवळ बांधतो सूतरपत, मठ वणातो जत्ती, मूरत घड़तो रूपौ, चणतो चेजारो, पीणतो पिंजारो, गावतो गवैयो, नाचतो नच्चयौ, कटार-तरवार-नेजो चलावतो सूर, वणती विंदणी, ओतरतो भेरू रो भोपो। भवन सुधर्‌यां भव सुधरे, सुधरे भजन भाव। विस्क्रमाजी ते ऽप्रराजित सुत सन्ता (न) रे ग्यान॥ इति सिलप-सबद सम्पूर्ण भयो, अनन्त क्रोड़ सिद्धां में गादी बैठ गुरु माराज भाषिया। साईं ने सलाम, गुरांजी ने परणाम, नाथजी कूं आदेस, सब सन्तां ने हरे हर।

(सांवरियाजी मन्दिर मण्डफिया के शिल्पी कजोड़ीदास से 1989 में सङ्कलित)

अर्थ :— ॐ गुरुजी, विद्याओं में शिल्पविद्या प्रमुख है। इसकी जो साधना करता है, वह देवलोक में निवास करता है। जो इसे पढ़ता है, वह कैलासवास प्राप्त करता है। चित्रकूट (चित्तौड़गढ़) के समाधीश्वर मन्दिर में बैठकर स्थपति भुवनदेव रचना-पाठ करता है। गन्धमादन पर्वत पर विराजित शिव की ऋषि वन्दना करते हैं। विश्वकर्मा कहते हैं और अपराजित सुनते हैं। वे पूर्व मत, परवर्ती मत, सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय, जड़ योनि, पिण्डयोनि, श्वेदज, बीज योनि कहते हैं। चारों समुद्र, सप्तखण्डा पृथ्वी, सप्त लोक, नौ नाथ के बारे में बताते हैं। साम्भर से लेकर मेवाड़ तक का देश-वृतान्त कहते हैं। ऋषियों की वंश परम्परा बताते हैं। इसी क्रम में गणित का वर्णन, ज्योतिष का वर्णन, शिक्षा-व्याकरण का वर्णन, प्रस्तर व उसकी गड़ाई का वर्णन करते हैं। यव से लेकर हस्त का प्रमाण बताते हैं। शून्य से लेकर कोटि तक गणना बताते हैं। वास्तु में आय श्रेष्ठ व व्यय अनुचित होता है। जीर्ण देवालय का उद्धार, नवीनीकरण बताते हैं। चतुर्थी व्रत, शिवरात्रि, महल-हवेली, तालाब, जलाशय, बावड़ी, कूप, शस्य, शिलान्यास, शिखर, आमलक, कलश, देवालय, मूर्ति, पूजा-विधि, प्रसाद बताते हैं। इसी क्रम में राग-रागिनी, नृत्य, कीर्तन मिलाकर कोई शिल्प विद्या का भेद शेष नहीं रहता। आठ हजार (श्लोकों) का ग्रन्थ प्रमाण लिखते हैं। दो बैलों पर उठाने योग्य भार प्रमाण के पत्रों पर यह शास्त्र लिखा गया। भुवनदेव (चित्तौड़गढ़) से निकलकर चीरवा होकर नागदा (मेवाड़ की प्राचीन राजधानी) जाते हैं। कैलासपुरी में राज वैजल (विजयसिंह) सम्मानित करता है। आबू के पर्वत पर इस ग्रन्थ को टाँकी चलाने वालों ने सुना, पत्थर तोड़ने वालों ने सुना। राठौड़ों ने सुना व तलच्छन्द बनवाया। वहाँ देवालय निर्माण में जुटे कर्मचारियों ने सुना। इधर देखें तो मारवाड़, उधर देखें तो गुजरात तक इस ग्रन्थ का परिचय फैला। इसके बाद भुवनदेव तत्कालीन सूरीश्वर का शिष्य होता है, शिष्यों को बढ़ाता है। भक्ति करता है, जन्म सुधारता है। इस भुवनदेव की वार्ता को कौन

सुनता है? महल बनाने वाला राजा, देवालय बनाने वाला स्थपति, मठ बनाने वाला यति, मूर्ति तैयार करने वाला रूपाङ्कनकर्ता, भित्ति की चुनाई करता चेजारा, रूई की पिंजाई करने वाला पिंजारा, गाने वाला गायक, नाचने वाला नर्तक, कटार-तलवार, भाला चलाने वाला शूरवीर, शृङ्गार करने वाली दुल्हन, भावाविष्ट होकर देवाराधना करने वाला भोपा सुनता है। यदि भवन सुधर जाता है तो भव (संसार) सुधर जाता है। भजन-भाव सफल-सार्थक हो जाते हैं। विश्वकर्माजी से अपराजित की ज्ञान-सन्तानों (मानसपुत्रों) का यह ज्ञान है। इस प्रकार शिल्प सबद पूर्ण हुआ। अनन्त करोड़ सिद्धों के बीच विराजित गुरु महाराज ने इसे कहा है। सांई का सलाम, गुरुदेव का प्रणाम, नाथजी को आदेश, सभी सन्तों से कहना हरे-हर।

इस ग्रन्थ के मेवाड़ में रचित होने के कई प्रमाण इसी में अन्त:साक्ष्य के रूप में प्राप्त होते हैं जिनको यथास्थान पाद टिप्पणियों के रूप में दिया गया है। इसको अपराजित के नाम लिखने के मूल में यह कारण स्पष्ट होता है कि मेवाड़ को शिल्पधाम के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय गुहिल वंशी अपराजित को ही दिया जाता है। प्रो. डी. आर. भाण्डारकर *(इपिग्राफिया इण्डिका जिल्द 39, पृष्ठ 190)*, कविराजा श्यामलदास *(वीरविनोद भाग 1, पृष्ठ 252)* आदि इतिहासकारों ने मेवाड़ के गुहिल राजवंश के राजा शील या शीलादित्य (शिलालेख 646 ई.) के पुत्र के रूप में अपराजित (शिलालेख 661 ई.) को परिगणित किया है। यद्यपि बापा रावल का आद्य-पुरुष के रूप में नाम लिया जाता है किन्तु इतिहासविदों में यह विवाद ही है कि बापा किसी का नाम है अथवा विरुद? क्योंकि कई प्राचीन शिलालेखों में बापा, बाष्प, बप्प आदि नामाभिधानों का प्रयोग हुआ है। *(नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग 1, पृष्ठ 248-50 एवं टिप्पणियाँ)*

इसी प्रकार कुम्भलगढ़ की महाराणा कुम्भाकालीन (1433-1468 ई.) प्रशस्ति में आया है— तस्मिन् गुहिलवंशेद्भूद्भोजनामावनीश्वरः। तस्मान्महीन्द्रनागाह्वो बप्पाख्यश्चापराजितः॥ (श्लोक 139) यहाँ बप्पा नाम वाले राजा के बाद अपराजित का वर्णन आया है, ऐसे में शीलादित्य का नाम बप्पा होने का मत कर्नल जेम्स टॉड ने प्रतिपादित किया। *(कर्नल जेम्स टॉड जिल्द 1, पृष्ठ 259-69)* किन्तु, शीलादित्य के सामोली अभिलेख (643 ई.) में उसके लिए यह अपर नामाभिधान नहीं आया है, इसी आधार पर इतिहासकार गौरीशङ्कर ओझा ने इस तर्क को निर्मूल कह दिया। *(उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ 104)*,

तथापि यहाँ यह अवश्य हो सकता है कि अपराजित का यह अपरनाम रहा हो; चूंकि एकलिंग माहात्म्य के आधार पर बप्पा रावल का समय 734-753 ई. का

निर्धारित किया गया है, ऐसे में अपराजित से पूर्व बप्पा का होना अथवा अपराजित व बप्पा का अभिन्न होना बताने के लिए अन्य कोई प्रमाण नहीं है और फिर शीलादित्य की प्रशस्ति गुजरात की सीमा वाले सामोली से मिली है जबकि अपराजित की प्रशस्ति नागदा से। नागदा मेवाड़ की प्राचीन राजधानी रहा है, ऐसे में मेवाड़ के प्रथम प्रतापी शासक के रूप में अपराजित का होना प्रतीत होता है बहुत सम्भव है कि उसने नागदा-कैलाशपुरी क्षेत्र को अधिकृत रखने वालों से घोर सङ्घर्ष किया हो और इस क्षेत्र को गुहिलाधिकृत किया हो। इसी के वंशधर बापा ने 734 ई. में मान मौर्य से चित्तौड़गढ़ का राज्य लिया एवं पूरे मेवाड़ को गुहिल वंशाधिपत्य करने का यत्न किया। सम्भवतः भुवनदेवाचार्य इस तथ्य से परिचित था, ऐसे में उसने मेवाड़ में गुहिल राज्य के प्रवर्तक अपराजित को प्रश्नकर्ता के रूप में प्रस्तुत किया हो। इस क्षितिभृत अपराजित ने मेवाड़ की प्राचीन राजधानी में स्थापत्य की परम्परा का प्रवर्तन किया, उसी के दरबारी वराहसिंह की पत्नी यशोमति ने कुण्डा ग्राम (उदयपुर जिलान्तर्गत बड़गाँव पंचायत समिति) में कैटभ-रिपु विष्णु का जहाज-आकार में मन्दिर बनवाया था।

अपराजित की उदयपुर जिलान्तर्गत कुण्डेश्वर से प्राप्त 661 ई. की प्रशस्ति में कहा गया है कि गुहिल वंश के तेजस्वी राजा अपराजित ने सब दुष्टों का विनाश किया, अनेक राजा उसके आगे शिरावनत थे। उसने शिवात्मज पुत्र महाराज वराहसिंह को, जिसकी शक्ति का भञ्जन कोई नहीं कर सका और जिसने भयङ्कर शत्रुओं को परास्त किया तथा जिसकी यशकीर्ति दिग्दिगन्त तक प्रसारित थी, अपना सेनापति बनाया। अरुन्धती के समान विनयवाली उस वराहसिंह की पत्नी यशोमती ने लक्ष्मी, यौवन और वित्त को क्षणिक मानकर संसार रूपेण विषय समुद्र को तैरने के निमित्त नाव रूपी कैटभ-रिपु विष्णु का मन्दिर बनवाया। यह लेख इस प्रकार हैं—

ॐ नमः स्पृष्ठा वक्षसि लीलया कररुहैः काचित्कचाकर्षणादन्या कामपरेण पादपतनैः कण्ठग्रहेणापरा धन्यास्ता। भुवने सुरेन्द्रतनयो याः प्रापिता निर्वृति स्मृत्वेत्थं स्पृहयन्ति गोपवनिता यस्मै सपायाद्धरि॥ लक्ष्मीलीलोपधानं प्रलयजलनिधिस्थायिनो- गण्डशैलादर्षोद्धृत्ता सुरेन्द्रद्रुम गहनवनच्छेददक्षाः कुठाराः। संसारापारवारि प्रसररयमुत्तारणे बद्धकुक्ष्याः दोर्दण्डाः पान्तुशौरेस्त्रिभुवन भवनोत्तम्भस्तम्भभूताः॥ राजा श्रीगुहिलान्वयामल पयोराशौ स्फुरद्दीधिति धवस्तध्वान्त समूहदुष्टसकलव्यालावलेपान्तकृत्। श्रीमानित्यऽपराजितः क्षितिभृतामभ्यर्चितो मूर्धभिः वृत्तस्वच्छतयैव कौस्तुभमणिर्ज्जातो जगद्भूषणम्॥ शिवात्मजो

खण्डितशक्तिसम्पद्धर्यः समाक्रान्तभुजङ्गशत्रू तेनेन्द्रवत्स्कन्द इव प्रणेता वृत्तो महाराज वराहसिंहः॥ जनगृहीतमपि क्षयवर्जितं धवलमप्यनुरञ्जितभूतलं स्थिरमपि प्रविकासि दिशोदशभ्रमति यस्य यशो गुणवेष्ठितम्॥ तस्य नाम दधति यशोमती गेहिनी प्रणयिनी यशोमती चित्तमुत्पथगतं निरुन्धती सा बभूव विनयादरुन्धती॥ श्रीर्व्वन्धकी स्थागुणरता च गौरी वैधव्यदुःखोपहता रतिश्च...॥ *(जे. ए. एस. बी. 1935, पृष्ठ 122, इपिग्राफिया इण्डिका भाग 4, पृष्ठ 31-32)*

वैसे अपराजित को विश्वकर्मा का मानसपुत्र समराङ्गणसूत्रधार में कहा गया है— आययुर्विश्वकर्माणं चत्वारो मानसाः सुताः॥ जयो विजयसिद्धार्थौ चतुर्थश्चापराजितः। *(समराङ्गण. 2, 2-3)* फिर जय, विजय व सिद्धार्थ के नाम से ग्रन्थों का प्रणयन हो चुका था, जैसा कि भुवनदेव ने भी सूचित किया है, ऐसे में अपराजित के नाम पर ही ग्रन्थ रचना शेष रही होगी। यह नामाभिधान मेवाड़ाधिपति अपराजित से मेल भी खाता था, फिर भुवनदेव के जीवनकाल में अपराजित नाम विशेषतः चलन में रहा था, जैसा कि जालोर-भीनमाल से प्राप्त 1108 ई. के ताम्रपत्र में देवराट् के पुत्र के रूप में अपराजित का नाम आया है— चन्दनोमहीपस्तन्नन्दनो देवराट्। तत्सूनुश्चपराजितः...; जालोर के तोपखाना से प्राप्त 1117 ई. के अभिलेख में भी ये ही नामाभिधान आए हैं। *(शोधपत्रिका भाग 1, अङ्क 2, 1956, पृष्ठ 1-12 एवं इपिग्राफिया इण्डिका भाग 42, पृष्ठ 41)* इसी प्रकार राजस्थान के जालोर के निकटस्थ सुन्धा चामुण्डा माता की 1262 ई. प्रशस्ति में अपराजितेश के मन्दिर का वर्णन आया है— प्रोत्तुङ्गेप्यपराजितेश भवने सौवर्णकुम्भध्वजारोपी रूप्यमेखला वितरणस्तस्यैव देवस्य यः॥ चक्रे श्रीरपराजितेश भवने शाला तथास्यां रथः कैलाश प्रतिमस्त्रिलोक कमलालङ्कार रत्नोच्चयः। येन क्षोणि पुरन्दरेण कृतिना मानन्द संवित्तये भाग्यं वा निजमेव पर्वततुलां नीतं समनतादपि॥ *(इपिग्राफिया इण्डिका भाग 5, पृष्ठ 74)* इस प्रशस्ति के अनुसार वहाँ पर चाचिगदेव ने स्वर्ण कलश और ध्वजा चढ़ाई, चाँदी की मेखला-लेन का वितरण किया, अपराजितेश के भवन की शाला के लिए रथ बनवाया जो कैलाश के समान प्रतीत होता था और उस पर रत्न-कमलों का अलङ्करण था।

यह अपराजितेश मन्दिर के जीर्णोद्धार और उसके लिए व्यवस्थाओं का सशक्त सन्दर्भ देता है। यह मन्दिर लगभग एक शताब्दी पूर्व बना होगा और यह प्रतीत होता है कि वह काल अपराजितपृच्छा की रचना का ही रहा होगा। लोक-सबद में भुवनदेव का आबू गमन का सङ्केत है और तत्कालीन जाबालीपुर (जालोर) वहाँ से अधिक दूर भी नहीं है जो कि तब ज्ञान-विज्ञान के केन्द्र के रूप में ख्यात था। उक्त

सबद में ही भुवनदेव के सूरीश्वर से दीक्षित होने का सङ्केत भी हैं किन्तु इस सम्बन्ध में समकालीन स्रोत मौन हैं। उदयपुर जिलान्तर्गत चीरवा ग्राम जिसका कि सङ्केत उक्त सबद में भुवनदेव की यात्रा के प्रसङ्ग में आया है, से प्राप्त 1273 ई. की प्रशस्ति में अवश्य भुवनचन्द्र सूरी का नाम आया है। यह प्रशस्ति भुवनचन्द्र सूरी के शिष्य रत्नप्रभसूरी ने चित्तौड़गढ़ में रहते हुए रची थी। *(इपिग्राफिया इण्डिका भाग 27, पृष्ठ 285-92 एवं वियना ऑरियण्टल जर्नल जिल्द 21, पृष्ठ 155-162)*

किन्तु, इस प्रशस्ति में अन्य किसी भुवनचन्द्र सूरी का वर्णन रहा हो क्योंकि इतने वर्षों तक भुवनदेवाचार्य के शिष्य का रहना सम्भव प्रतीत नहीं होता तथापि चीरवा का महारावल पद्मसिंह द्वारा तत्कालीन तलारक्ष योगराज को मिलना और वहाँ पर योगेश्वर शिव व योगेश्वरीदेवी के मन्दिर के निर्माण, उसके पिता द्वारा उद्धरण स्वामी-विष्णु के मन्दिर की प्रतिष्ठा और पुत्र मदन द्वारा प्रायश्चित स्वरूप योगेश्वर व योगेश्वरी के मन्दिर के जीर्णोद्धार एवं उक्त देवालयों के नैवेद्यार्थ कालेला सरोवर के पृष्ठभाग की गोचर भूमि से दो खेतों के भेंट करने का वर्णन आया है और यह वर्णन भुवनदेव के ग्रन्थोक्त निर्देश के समरूप ही है।

इसी प्रकार मेवाड़ के आड़ा-अवला पर्वत *(आड़ावल या अरावली पर्वतमाला, तुलनीय : दृश्यते पर्वतो यत्र ह्यनेकशिखराकृतिः। राजा सेनावधं कुर्यान्मासेनाऽत्र न संशयः॥ सूत्र 203, 8)*, जावर जैसे खदान क्षेत्र, वर्तना जैसे कला-संसाधनों आदि से भुवनदेव का परिचित होना उसकी इस क्षेत्र से सम्बद्धता को दर्शाता है फिर इस रूप में भी वह मेवाड़ का स्मरण करता है कि तीन भूमिमध्य मालिका-हर्म्य वह बनवा सकता है जो सूर्यवंशी हो और शिव का आराधक हो *(त्रिभूमिमध्यकर्त्तव्या मालिका क्रमतः स्थिता। सूर्यवंशोद्भवाः शैवा वतरन्ति यदा महीम्॥ तेषां वेश्मानि कार्याणि नान्येषां तु कदाचन। सूत्र 69, 43-44)* यह पहचान भी मेवाड़ के राजवंश की रही है, जिसे रघुकुल के समान कीर्ति-प्रसारकर्ता और सूर्यवंशी माना जाता है और वह एकलिंगजी का आराधक रहा है, तथापि इस दिशा में पर्याप्त शोध की सम्भावना अभी समाप्त नहीं हुई है।

प्रस्तुत पाठ के सम्पादन के आधार :

अपराजितपृच्छा का प्रस्तुत संस्करण पूर्ववर्ती प्रकाशित पाठ का अनुवाद नहीं है बल्कि इसमें कई नवीन पाण्डुलिपियों का सहयोग भी लिया गया है। उल्लेखनीय है कि इस ग्रन्थ के प्रथम संस्करण के लिए पोपटभाई अम्बाशङ्कर मंकड ने निम्न मातृकाओं का सहारा लिया था—

बी-1 पाण्डुलिपि और बी-2 पाण्डुलिपि। ये दोनों ही मातृकाएँ बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट में क्रमशः 3587 एवं 9214 पंजीकृत संख्या पर विद्यमान हैं। इनमें से पहली मातृका में 238 सूत्र पूर्ण एवं 239वाँ सूत्र अपूर्ण रूप से प्राप्त होता है और यह अधिक पुरानी नहीं है जबकि दूसरी मातृका में 225 सूत्र मिलते हैं जिनमें से 101 से 156 सूत्र नदारद हैं। इनमें लगभग 7500 श्लोक प्राप्त हुए।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के बाद एक मातृका प्रसिद्ध शिल्पशास्त्री प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा और मधुसूदन ढांकी को अहमदाबाद के श्रीमनसुखलालभाई सोमपुरा से प्राप्त हुई थी। मुझे अपराजितपृच्छा की एक पाण्डुलिपि क्रमशः प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के जोधपुर मुख्यालय से (संख्या 18078-12) और एक इसी प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा से भी मिली जिनमें एक-दो अध्याय ही मिले जबकि एक अपूर्ण मातृका डूँगरपुर जिले के सागवाड़ा निवासी वयोवृद्ध स्थपति श्री रघुनाथ सोमपुरा से साभार प्राप्त हुई। इसमें 137 अध्याय हैं। देवालय शिखर विधान सम्बन्धी कुछ अध्याय बड़ौदा में विद्यमान सूत्रधार गोविन्द कृत् 'कलानिधि' (संख्या 8276 पृष्ठ 9, 11001 पृष्ठ 11 तथा 11069 पृष्ठ 23) में प्राप्त हुए जिनका सम्पादन और उपयोग मैंने पूर्व में उस ग्रन्थ के लिए किया था। कई श्लोकों का संशोधन, परीक्षण गुजराती में प्रकाशित 'बृहच्छिल्पशास्त्र' एवं 'प्रासादमण्डनम्' के आधार पर किया गया है। इनके अतिरिक्त इस ग्रन्थ के मुख्य उपस्कारक समराङ्गण सूत्रधार के आधार पर भी सैकड़ों श्लोकों का परीक्षण कर यथास्थल उनका सम्पादन कर, पाद टिप्पणियाँ दी गई हैं। इसके कई श्लोक ज्ञानप्रकाश दीपार्णव में भी मिलते हैं।

इस प्रकार अपराजितपृच्छा के प्रकाशित पाठ में जहाँ कहीं खण्डित और भ्रष्ट श्लोक थे, उनकी पूर्ति और संशोधन सम्भव हुआ वहीं कई नवीन श्लोक भी प्राप्त हुए। इस प्रयास में लगभग पाँच सौ श्लोकों की पूर्ति भी हुई है। हालांकि ग्रन्थकार ने शिव के नौ ताण्डवों का सन्दर्भ कहाँ से उद्धृत किया, यह पता नहीं चल सका किन्तु नाट्यशास्त्र, मयमतादि के आधार पर क्षेपक रूप में उनकी किञ्चित पूर्ति का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार स्त्री-पुरुष लक्षणाध्याय में खण्डित श्लोकों की पूर्ति बृहत्संहिता की भट्टोत्पलीय विवृत्ति और स्कन्दपुराण आदि के सहारे की गई है किन्तु सर्वत्र यह ध्यान रखा गया है कि श्लोकों की पूर्ति इस ग्रन्थ की अपेक्षा प्राचीन पाठों के सहारे ही की जाए। यथास्थान सन्दर्भ इस ग्रन्थ को हमारी ग्रन्थ परम्परा से संयुक्त करता हुआ प्रतीत होगा, ऐसा मैंने अपनी समझ के अनुसार प्रयत्न किया है।

विषयानुक्रमणिका

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीभुवनदेवाचार्योक्ता

सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशापरनामधेया

अपराजितपृच्छा

गन्धमादनो नाम प्रथमं सूत्रम् ॥ 1 ॥

अथ ग्रन्थस्य निर्बाधपरिसमाप्त्यर्थं परम्परानुमितश्रुतिबोधितकर्त्तव्यताकं स्वाभीष्ट गणाधीशादिदेवानामाशीर्वादस्वरूपं मङ्गलम् —

अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरैरपि।
सर्वविघ्नच्छिददे तस्मै गणाधिपतये नमः ॥ 1 ॥

अपने अभीष्टार्थ की सिद्धि के निमित्त देवगण जिनका पूजन करते हैं जो समस्त विघ्नों का उच्छेदन करने वाले है, उन गणाधिपति को नमस्कार है।

चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम (-र्सम!)।
मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥ 2 ॥

चतुर्मुख ब्रह्माजी के मुखरूपी कमलों के वन को हंसवधू अर्थात् हंसिनी के समान अनुरागपूर्ण भाव से निहारती हुई, ब्रह्माजी के मन रूपी मानसरोवर में नित्य रमण करने वाली सर्वशुक्ला अर्थात् श्वेतपुष्प माला व वस्त्रों को धारण करने वाली निर्मल, उज्ज्वल सरस्वती को प्रणाम है।

ग्रन्थार्थ गन्धमादनपर्वताश्रये प्रवर्तनमाह —

अथ श्रीहिमान्तभागे पर्वते गन्धमादने।
विचित्रशिखराकीर्णे चित्रस्फटिकशोभने ॥ 3 ॥
चन्द्रकान्तशिलारम्ये सेव्यामृतनिवासिने।
सिद्धामरकन्याकीर्णे क्रीडामणिगुहागृहे ॥ 4 ॥

अब हिमाचल के अन्तिम भाग में विद्यमान गन्धमादन पर्वत का वर्णन किया जा रहा है जो अपने विचित्र शिखरों से युक्त, स्फटिक चित्र-सा शोभित होता है। वहाँ रमणीक चन्द्रकान्त शिला है जो कि देवताओं का निवास है। वहीं पर सिद्ध, देव-कन्याओं के निमित्त क्रीडामणि गुहागृह विद्यमान है।

हंसकारण्डवाकीर्णे चक्रवाकोपशोभिते।[1]
नीलजीमूतसङ्काशे तरुणादित्यसप्रभे॥ 5॥
उच्छ्रयाकाशशिखरे रत्नधातूपशोभिते।
अनन्तगह्वरे रम्ये यथाख्यातात्य (ह्र?) हासके[2]॥ 6॥

हंस और बतखों के समूहों से भरपूर और चक्रवाकों के शोभित नीले वर्ण के बादलों के समान शोभित और मध्याह्न के सूर्य के समान तेज प्रभावाले ऊँचे-ऊँचे गगनचुम्बी शिखरों वाला, रत्न और धातुओं से उपशोभित, अनेकों गह्वर गुहाओं से रमणीयता को वैसे ही लिए हुए हैं जैसे कि इतिहासों में उसकी ख्याति है।

महाद्रुमलताकीर्णे वनोपवनकानने।
दिव्यासनसभारम्ये सरितां तटवासिते॥ 7॥
इदं वै आश्रमं रम्यं पर्वते गन्धमादने।
भूर्भुवनेश्वरं देवं तच्छिलापृष्ठशायिनम्॥ 8॥

वहाँ महावृक्षों, लताओं से युक्त वनोपवन वाले देवकानन हैं। वहाँ प्रवाहमान सरिता के तट पर दिव्यासन वाली सुन्दर सभा है। रम्य गन्धमादन पर्वत पर इस रम्य आश्रम में भू सहित अन्य समस्त लोकेश्वर के देव उक्त शिला के ऊपर [illegible]नासन में थे।

नद्युद्गमैर्नगस्थैश्च सुद्रुमैः समलङ्कृतम्।
अनाश्रयाम्बुपतितं महानगशिखोत्थितम्॥ 9॥
तच्च शैलशिखोद्भूतं प्रस्थितं सागरावधि।
शोभितं भिल्लशबरैर्भूतं स्याच्छरपुङ्खजम्॥ 10॥

वहाँ नदियों के उद्गम स्थानों पर और पहाड़ों के शिखरों पर सुन्दर वृक्षों से अलंकृत शोभा थी। बड़े-बड़े पहाड़ों के ऊँचे शिखरों से लगातार जल के झरने गिरकर प्रपात का रूप ले रहे थे और वे सब शैल शिखर से निकलकर महासागर तक बह रहे थे। उनके आसपास शर के पङ्खों से बने हुए अलङ्करणों से शोभित भिल्ल व शबर जातियों के लोग बसे हुए थे।

तत्रोद्भूत सरितादीनां —

गङ्गासरस्वती पुण्या देवका (वेदिका) मधुमती तथा।
पारा सिन्धुश्च कावेरी गोमती चन्द्रतारका॥ 11॥

---

1. तुलनीय— स्कन्दपुराण (प्रभासमाहात्म्य 22, 8)
2. 'इत्यहासके' इति स्यात्।

इन पर्वत शिखरों से निकलकर बहने वाली नदियों के नाम हैं— गङ्गा, सरस्वती, पुण्यवती वेदका (वेदिका) मधुमती, पारा, सिन्धु, कावेरी, गोमती और चन्द्रतारका।

मज्जन्मातङ्गगण्डच्युतमदमदिरामोदमत्तालिमालं
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम्।
सायं प्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयच्छिन्नतीरस्थनीरं
पायान्नो गाङ्गमम्भः करिमकरकराकान्तरं हस्तरङ्गम्॥ 12॥

इन नदियों के जल में स्नान-मज्जन करने वाले मदमाते हाथियों के गण्डस्थल, कपोलों से बहने वाले हस्तिमद रूपी मदिरा के जल में घुलने से फैली सुगन्ध के मोद में मस्त भँवरों के झुण्ड चारों ओर सर्वत्र उड़ते दिखाई देते हैं। इसी प्रकार इन नदियों के प्रवाह के जल में सिद्ध और महात्माओं की रमणियों के स्नान करने से उनके कुच युगल अर्थात् दोनों स्तनों पर चिपके हुए कुङ्कुम-केसर के लाल रङ्ग के पानी में गलकर बहने से अपूर्व शोभा और सुगन्ध फैल रही है। इसके साथ ही मुनियों द्वारा अपने सायंकाल और प्रातःकाल के स्नान करते समय पूजा-अर्चना में प्रयुक्त कुश, कुसुमादि चयनित पुष्पों के नदियों के किनारे ठहरे हुए जल में एकत्रित हो जाने से वहाँ की वायु में अपूर्व सुरभि का वास मिलता है। गङ्गा नदी के जल में हाथियों के मस्ती में स्नान करने और मकर, सारस आदि जन्तुओं के तैरने और उछालने से जो अन्तरङ्ग जल राशि की उत्ताल तरङ्गें प्रसारित होती हैं, वे ऐसे लगती हैं मानो ओले वाली वर्षा हो।

दंष्ट्रिगजेन्द्रवनजाः सिंहव्याघ्रगुहास्तथा।
गण्डभल्लूकशार्दूलाः शूकरा महिषा मृगाः॥ 13॥
शुककोकिलकुलायै रम्भं शीशि(चीचि)रवोद्भवैः।
वदन्त्येतैते (रे ?) व गिरा तपोवननदीस्वराः॥ 14॥

इन विशाल वनों और पहाड़ों की उपत्यकाओं में जंगली हाथियों, गजेन्द्रों, सिंहों, व्याघ्रों को यहाँ की गुहाओं में बसे हुए देखा जा सकता है। इनके साथ ही यहाँ के वनों में गेण्डे, भालू, शार्दूल, शूकर, भैंसे, मृग, तोते, कोयलों के समूहों के गान और चहचहाहट से शिशिर अर्थात् ठण्ठ के मौसम का आभास होने लगता है। इन पशु-पक्षियों की वाणी व नदियों के बहने के स्वरों से यहाँ के तपोवन जीवन्त बने रहते हैं और बड़े ही आनन्दप्रद लगते हैं।[1]

1. उक्त श्लोकों में ग्रन्थ रचनाकार भुवनदेव की कल्पना ही नहीं, प्रासाद और माधुर्य शब्दशक्ति के प्रयोग के साथ-साथ साहित्य और अलङ्कारिक वर्णन की क्षमता परिलक्षित होती है।

इत्यमनन्तर अष्टाशीतितापसानां तपश्चर्या —

अगस्त्यः कश्यपश्चैव याज्ञवल्क्योऽथ कौशिकः।
भारद्वाजो वैश्रवणो वसिष्ठो नारदस्तथा॥ 15॥
पाराशरो जमदग्निर्मार्कण्डेयानकौ तथा।
मरीचिर्गौतमोऽग्निश्च भृगुर्वै एकशृङ्गकः॥ 16॥
कपिलः पुलमाहेन्द्रौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
वसुदेवश्च दुर्वासाः कनकः शौनकस्तथा॥ 17॥
भार्गवोऽर्थ सुराचार्यो ह्याङ्गिरा मनुजल्मुकः।

वहाँ अगस्त्य, कश्यप, याज्ञवल्क्य, कौशिक, भारद्वाज, वैश्रवण, वसिष्ठ, नारद, पराशर, जमदग्नि, मार्कण्डेय, मरीचि, गौतम, अग्नि, भृगु, शृङ्गी, कपिल, पुलमाहेन्द्र, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसुदेव, दुर्वासा, कनक, शौनक, भार्गव, सुराचार्य शुक्र, अङ्गिरा, मनुजल्मुक थे।

अन्यदप्याह —

हरितोत्सङ्गनागेन्द्रा देवन्यः किंशुकस्तथा॥ 18॥
पद्मकः पार्श्वकः संपदङ्ग ईक्षण एव च।
विश्वामित्रश्च जनको व्यासवाल्मीकिनौ तथा॥ 19॥
मैत्रेयो धर्मकश्चैव प्रचेता वैजयन्तकः।
शान्तः समुद्रकश्चैव वैशम्पायनपाचकौ॥ 20॥
जीवध्वनो बाल्यषष्टिः शम्भुश्चर्णक एव च।
शुकात्रियमकाश्चैव विशाला ब्रह्मतेजसा॥ 21॥
शान्तोऽथ विद्रुमश्चैर बहुधान्यो वो (भ ?ग) व्यस्तथा।
गर्गोऽथ लम्पटः ख्यातो नीलश्च सत्य एव च॥ 22॥
मृगाक्षो वृषचक्रश्च शङ्खवर्णोऽर्थ लोमशः।
चन्द्रभानुर्वज्रसूचिः किरातश्चाथ सम्भ्रमः॥ 23॥
सुपर्णः श्यामतुङ्गश्च हेमकान्तिश्च देवलः।
शिखिध्वजो महाकान्तिः शिवात्मा चन्द्रशेखरः॥ 24॥
जयश्च विजयश्चैव सिद्धार्थश्चापराजितः।
अष्टाशीतिः$_{88}$ समाख्याता ऋषयो ब्रह्मतेजसः॥ 25॥
अधः शीर्षोर्ध्वपादाश्च वर्षाणां शतसङ्ख्यया।
हृष्टास्तुष्टास्तु सर्वेषु ज्ञानध्यानपरायणाः॥ 26॥

(इनके अतिरिक्त) हरित, उत्सङ्ग, नागेन्द्र, देवन्य, किंशुक, पुद्मक, पार्श्वक, संपदङ्ग, ईक्षण, विश्वामित्र, जनक, व्यास, वाल्मीकि, मैत्रेय, धर्मक, प्रचेता, वैजयन्तक, शान्त, समुद्रक, वैशम्पायन, पाचक, जीवध्वन, बाल्यषष्टि, शम्भु, चर्णक, शुक, अत्रि, यमक, विशाला, ब्रह्मतेजस्, शान्त, विद्रुम, बहुधान्य, गव्य, गर्ग, लम्पट, ख्यात, नील, सत्य, मृगाक्ष, वृषचक्र, शङ्खवर्ण, लोमश, चन्द्रभानु, वज्रसूचि, किरात, सम्भ्रम, सुवर्ण, श्यामतुङ्ग, हेमकान्ति, देवल, शिखिध्वज, महाकान्ति, शिवात्मा, चन्द्रशेखर, जय, विजय, सिद्धार्थ, अपराजित व अठासी महाख्याता ब्रह्मतेजस् ऋषिगण, नीचा सिर और ऊपर पाँव करके सैकड़ों वर्षों तक शीर्षासन की तपस्या करते हुए, सभी ज्ञान ध्यान परायण महात्माओं को प्रसन्न किया और सन्तुष्ट किया।

तत्र वनस्पतिवर्णनं —

केचित्कन्दफलाहाराः पञ्चगव्योपजीविताः।
केचिद् विस्तृतपथ्याश्च केचिन्नक्षत्रभोजनाः॥ 27॥

इनमें से कोई तो कन्द और फलाहारी थे। कोई पञ्चगव्य पर जीवित थे। कोई बहुत ही पथ्यों को पालन करने वाले थे। कोई-कोई नक्षत्रानुसार भोजन करने वाले थे।[1]

तत्र विश्वकर्मदिव्याश्रमवर्णनम् —

इत्येते ऋषयः सर्वे पृष्ठे वै गन्धमादने।
भूर्भुवः स्वर्भृतश्चैव वने दिव्यावतोत्तमे॥ 28॥

ये सभी ऋषिगण गन्धमादन पर्वत के पृष्ठभाग में रहते थे। इनके द्वारा उच्चारित गायत्री मन्त्र जाप के भूः भुर्वः स्वः के उच्चारण से वन दिव्य और उत्तम हो रहे थे।

अनेकधा वने तत्र चन्दनागरुपादपाः।
पुन्नागनागबकुला विविधा वृक्षजातयः॥ 29॥
जातीचम्पकमन्दारा नीलरक्तोत्पलं तथा।
कङ्कोलकलवङ्गादि कर्पूरोद्गमपादपाः॥ 30॥
अतीवफलसंयुक्ता लताभिर्विविधाः कृताः।
रक्तचन्दनवृक्षाश्च प्रभूततृणपादपाः॥ 31॥

उक्त वन में अनेक प्रकार के चन्दन, अगरु के पेड़, पुन्नाग, नाग, बकुल आदि

---

1. तुलनीय— केचित्पुष्पफलाहाराः शीर्णपर्णाशिनस्तथा॥ केचिद्गोमयभक्षाश्च जलाहारास्तथा परे। साग्निहोत्राः सुविद्वांसो मोक्षमार्गार्थचिन्तकाः॥ (स्कन्द. प्रभास. 22, 21-22)

के विविध जातियों के वृक्ष थे। जाति-चमेली के पुष्प, चम्पक, मन्दार, नीलकमल, रक्तकमल, कङ्कोल, लवङ्गादि, कर्पूर देने वाले पादप और बहुत ही फलों से लदी विविध प्रकार की लताएँ थीं। रक्तचन्दन के वृक्ष और बहुत से तृण-पादप थे।

अगस्त्याम्बुरुहाशोकबिल्ववृक्षाः सचन्दनाः।
नागकेसरपनसा द्राक्षाखर्जुरदाडिमाः॥ 32॥
शालतालतमालाश्च हिन्तालमधुपादपाः।
कर्णिकारद्रुमा रम्या नानापुष्पफलान्विताः॥ 33॥

इसी प्रकार अगस्त्य, अम्बु वृक्ष, अशोक, बिल्व के वृक्ष चन्दन सहित थे। नागकेसर, पनस, द्राक्षा, खर्जुर, दाड़िम, शाल, ताल, तमाल, हिन्ताल, मधुक के वृक्ष और कर्णिकार के रमणीय वृक्ष नाना पुष्पों और फलों से लकदक थे।

चन्द्रकान्तकलाभूमिः क्वचिन्मरकतप्रभा।
प्रवालकसमाम्या क्वचित्स्फटिकनिर्मला॥ 34॥
कर्पूरकुङ्कुमसमपुष्पप्रकरसङ्कुला।
सधूपामोदबहुला कुङ्कुमैरिव सिञ्चिता॥ 35॥

वह भूमि चन्द्रमा के कलाओं-सी दीप्तिमान और कदाचित मरकत की प्रभा जैसी प्रतीति देती थी। वह प्रवालक के समान रम्य और कदाचित स्फटिक के समान मल रहित थी। वहाँ कर्पूर, कुङ्कुम के समान वर्ण वाले पुष्पों का पुञ्ज था और धूपादि से सदा आमोदित रहता था तथा कुङ्कुम की भाँति प्रभविष्णुता से सिञ्चित प्रतीत होता था।

इत्येवं भवनं दिव्यं दशयोजन$_{10}$विस्तरम्।
गवाक्षचन्द्रिकोपेतं वातायनसमन्वितम्॥ 36॥

वहाँ पर दिव्य भवन था जो दस योजन विस्तार लिए हुए था। वह भवन गवाक्ष, चन्द्रिका के साथ ही वातायनों से युक्त था।

अभ्रंलिहैर्ध्वजैश्चित्रैश्चामरैश्च विभूषितम्।
घण्टाकोटिनिनादाढ्यनैकवादित्रसङ्कुलम्॥ 37॥

वह मेघों तक समुन्नत ध्वज-पताका, चित्रादि से अलङ्कृत चामरों से युक्त था। वहाँ कोटि-कोटि घण्टाओं का निनाद होता था। नाना वाद्य वादकों का सङ्कुल वहाँ विद्यमान था।

किङ्किणीरावणोपेतमर्धचन्द्रैर्विभूषितम्।
वितानसाहस्त्रयुतं चित्रपट्टादिशोभितम्॥ 38॥

प्रवेशनिर्गमोपेतं नरनारीजनाकुलम्।

वे ध्वजादि किङ्किणियों से युक्त और अर्द्धचन्द्रों से विभूषित थे। वहाँ नाना कोणों वाले वितानों की निर्मितियाँ थीं जो चित्रपट्टादि से शोभित थीं। वहाँ प्रवेश और निर्गम मार्ग पर नर-नारियों के समूहों का आना-जाना लगा रहता था।

तत्र सङ्गीतादीनामाह —

महामुरजशब्दैश्च गीतैश्च विविधैः पुनः ॥ 39 ॥
मनोहरं गृहं दिव्य देवानामपि दुर्लभम्।
लास्यहास्यैश्च विविधाः क्रीडन्ते रुद्रकन्यकाः ॥ 40 ॥
देवकन्याश्च विविधा ऋषिनार्यस्तथोत्तमाः।
सहिता नृत्यमानाश्च मङ्गलैः कौतुकैः सह ॥ 41 ॥

महामृदङ्गों के निनाद के साथ नाना प्रकार के गीत मनोहर, दिव्य गृहों में गाए जा रहे थे जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ थे और उन गीत, वाद्यों के साथ कई रुद्र कन्याएँ अपने लास्य नृत्य और हास्य से विविध प्रकारेण कीड़ा कर रही थीं। वे आमोद-प्रमोद में तत्पर थीं। उक्त रुद्रकन्याओं के सङ्ग में विविध देवकन्याएँ तथा उत्तमोत्तम ऋषि नारियाँ, महिलाएँ भी माङ्गलिक कौतुकों के साथ नृत्य में उनका साथ दे रही थीं।

त्रिसङ्गीतैश्च विविधैः प्रेक्षणीयं गणेश्वरैः।
गणाः किलकिलायन्ति प्रवल्गन्ति मुहुर्मुहुः ॥ 42 ॥

इधर, इस प्रकार नाच-गान की तरह ही त्रिसङ्गीत (गायन, वादन व नर्तन) के विविध प्रकारों से दर्शनीय गणेश्वरगण भी बारम्बार किलकिलाकर उछलते-कूदते हैं और हंसते हुए नृत्यादि में मग्न थे।

भवनशोभावर्णनमाह —

इदं च भुवनं नित्यं शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
वज्रवैडूर्यखचितं रत्नप्राकारशोभितम् ॥ 43 ॥

इसी तरह वहाँ के भवनों की शोभा बहुत रमणीक प्रतीत होती थी। मानो वे शुद्ध स्फटिक से निर्मित हो। यह भी लगता था कि मानो उनकी सुन्दरता में उनमें हीरे, वैदूर्य, मणियाँ और नाना प्रकार के रत्नादि विजड़ित हों, ऐसी वहाँ की भित्तियाँ थीं।

तोरणैर्दिव्यमाख्यातं पूर्वापरयाम्योत्तरम्।
तन्मध्ये दिव्यपर्यङ्कं सिंहव्यालैरलङ्कृतम् ॥ 44 ॥
हंसतुल्यं समारूढं शिरोद्धारद्वयान्वितम्।

उक्त भवनों के पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण में चारों ही ओर दिव्य तोरणों की शोभा है व उनके मध्य में दिव्य पर्यङ्क-शय्या सजी हुई है जिसे सिंह-व्याल आदि के चित्र-कौशल से अलङ्कृत किया हुआ है। इन पर्यङ्कों पर स्वच्छ, श्वेतवर्ण के मसनद (सिरहाने) रखे हुए हैं जो ऐसे दिखाई देते हैं मानो दो हंस वहाँ पर विराजित हों।

तत्र भगवान् विश्वकर्मावर्णनमाह —

तत्रस्थं सुखमासीनं विश्वकर्ममहौजसम्॥ 45॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम्।
सर्व विज्ञानवन्तं च सर्वज्ञं मानसागरम्[1]॥ 46॥

(उन शिरोद्धारों के सहारे ही) वहाँ पर महाओजस् तेजस्वी भगवान विश्वकर्मा सुखासन अवस्था में विराजमान है। भगवान् विश्वकर्मा वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) एवं वेदाङ्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष एवं छन्द) और तत्त्व (कूटस्थ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, हस्त, पाद, जिह्वा, लिङ्ग, गुह्याङ्ग, श्रवण, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण तथा मन[2]) के मर्मज्ञ और सर्वशास्त्रों के विशारद है, सर्वविज्ञानवन्त है और मानादि प्रमाणों के अगाध सिन्धुरूपेण ज्ञान के भी सर्वज्ञ है।

चतुर्भुजं ब्रह्मतेजस्तप्तकाञ्चनसन्निभम्।
दीप्तकुण्डलशोभाढ्यं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम्॥ 47॥
अक्षसूत्रं वामहस्ते दक्षिणे तु कमण्डलुम्।
पुस्तकं वामहस्तोर्ध्वे जपमाल्यां तु दक्षिणे॥ 48॥

उनका तेजोमय स्वरूप चतुर्भुज हैं और ब्रह्मतेज से तप्त होकर तपाए गए स्वर्ण, हेमकुन्दन के समान जगमगाहट कर रहा है। उनके कानों में दीप्त कुण्डलों की शोभा वृद्धिस्पद है और उनके विशाल ललाट पर ज्ञान-चक्षु त्रिनेत्र और सिर पर चन्द्रमा का दिव्य दर्शन हैं। उनके वाम हाथ में अक्षसूत्र हैं और दक्षिणी हाथ में कमण्डलु है। इसी प्रकार उनके ऊपर के बाँये हाथ में (शिल्पविज्ञान की) पुस्तक और ऊपरी दायें हाथ में वे जपमाला को धारण किए हैं।

ज्ञानदं मोक्षदं चैव विश्वहा सृष्टिकारकम्।
तिष्ठन्तं च विनोदेन ह्यनेकैश्च कुतूहलैः॥ 49॥

---

1. यहाँ मानसागर से आशय रचनाकार के समय में प्रचलित कोई गणित-मपित ग्रन्थ भी हो सकता है।
2. शुक्रनीति (4, 48); तुलनीय सांख्यदर्शन।

ऐसी सुख मुद्रा में भगवान् विश्वकर्मा ज्ञानप्रदाता, मोक्षप्रदाता ओर विश्व के दुखों के निवारक और सृष्टिकर्ता के रूप में अनेकों कुतूहल, आश्चर्यजनक कार्यों को करते हुए विनोदपूर्वक, प्रसन्नचित्त से विराजित है।

अथ विश्वकर्मानामपर्यायदीनां —

विश्वकृद्विश्वकर्माणं त्वष्टारं देववर्धकिम्।
भूर्भुवर्भुवनेशस्य स्वर्गदेवस्य विश्रुतम्॥ 50॥

भगवान् विश्वकर्मा के अनेक नाम विश्रुत हैं। जैसे— विश्वकृत, विश्वकर्मा, त्वष्टा, देववर्द्धिकी, भूर्भुव: भुवनेश, स्वर्गदेव आदि।[1]

पुनरुच्चार्य नामाथ प्रभासवसुनन्दनम्।
दण्डवत् प्रणतो भूत्वा जानुभ्यां धरणीतले॥ 51॥
भक्तिमान् भो महाभूत पृच्छति त्वपराजित:।

और भी, कहें तो तो वे प्रभावसुनन्दन हैं। अस्तु, इन परमप्रभु विश्वकर्मा को भूमि पर साष्टाङ्ग प्रणाम करके, दण्डवत् लेटकर, प्रणत होकर भक्तिभाव से अभिभूत होकर अपराजित उनसे प्रश्न करते हैं।

अथापराजित प्रश्नं —

समचित्तं च सम्बोध्य ह्यज्ञानां ज्ञानदो भवान्॥ 52॥
सूत्रशास्त्रार्णवमध्यादुद्धृतं सारबीजकम्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं गुह्यं मध्यादुद्धरतो यथा॥ 53॥

अपराजित बोले कि हे (महाभूत) प्रभु! आप मुझे समचित्त होकर सम्बोधित करके मेरे अज्ञान को हटाते हुए मुझे ज्ञान प्रदान करें जिससे मैं समस्त सूत्रशास्त्रों को, शिल्पज्ञान के शास्त्रों के महासागर के मध्य से अद्भुत सार बीज निकाल सकूँ जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर होने और गुह्य होने पर भी मैं उसका उद्धार करके समझ सकूँ।

निशाकरे चास्तमिते उदिते च दिवाकरे।
सूत्रार्थस्य प्रवक्तुवै ज्ञानं चक्षु: प्रकाशनम्॥ 54॥

---

1. तुलनीय : विश्वकार्म विमना आद्विहाया धाता च विधाता परमोत संदृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषिन् पर एक माहु:॥ (ऋगवेद 10, 82, 2) देखें यास्क भाष्य : विश्वकर्मा विभूतमना: व्याप्ता धाता च विधाता च परम: च संद्रष्टा भूतानां। तेषां इष्टानि वा। कान्तानि वा। गतानि वा। मतानिं वा। नतानि वा। अद्भि: समोदन्ते। यत्र एतानि सप्त ऋषीणानि ज्योतींषिं। तेभ्य: पर: आदित्य। तानि एतस्मिन् एकं भवन्ति। इति आदि दैवतम्। (निरुक्त : यास्कभाष्य 10, 26)

जिस प्रकार निशाकर के अस्त होने पर दिवाकर भगवान् सूर्य के उदित होने से सर्वत्र प्रकाश प्रसारित हो जाता है, वैसे ही मेरे ज्ञान चक्षुओं में सूत्रार्थ का प्रकाश प्रसारित हो जाएँ।

यद्यत्पृच्छामि तदहं सूत्रशास्त्रप्रकाशकम्।
देहि ज्ञानं प्रसादेन तारा तिमिरहरं यथा॥ 55॥[1]

हे प्रभु! मैं जो-जो भी प्रश्न सूत्रशास्त्र के प्रकाश करने के सम्बन्ध में करूँ, उस पर कृपा करके मुझे ऐसा उज्ज्वल ज्ञान प्रदान करें जैसे तारों के प्रकाश को सूर्य का प्रकाश हर लेता है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रो(प्रयो)कृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजित पृच्छायां गन्धमादनाधिकारो नाम प्रथमं सूत्रम्॥ 1॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में गन्धमादन अधिकार संज्ञक पहला सूत्र समाप्त हुआ॥ 1॥

सूत्रलक्षणं[2] द्वितीयं सूत्रम्॥ 2॥

अथ सूत्रधारेण ज्ञातव्य विषयाः। अपराजित उवाच —

सृष्टिकौतूहलं देव उत्पत्तिर्भूतधातृभिः।
ब्रह्माण्डं च कथं प्रोक्तं केन सङ्ख्या प्रमाणतः॥ 1॥

अपराजित (विश्वकर्मा के प्रति कहने लगे) हे देव! आप इस सृष्टि के कुतूहल, ब्रह्मा ने उसकी उत्पत्ति कैसे की, ब्रह्माण्ड की रचना कैसे हुई, उसका संख्या प्रमाण क्या है, यह सब बताएँ।

कया युक्त्या समुत्पन्नं वर्द्धितं केन हेतुना।
विकासः केन सञ्जातः कैराधारैश्च धार्यते॥ 2॥
धरायाः केचिदाधारा आकाशस्य कथं विदुः।
के च मेर्वादयः शैलाः कैराधारेः कुलाचलाः॥ 3॥

किस युक्ति से ब्रह्माण्डादि की रचना हुई, किस हेतु से उसका विस्तार होता है,

---

1. 'यछत्पृच्छामि तव्यं हं सूत्रशास्त्र प्रद्योतक। तासु ज्ञानं प्रज्ञाहेन तारातिमिहरं यथा' इति 'न' पाठः।
2. इस अध्याय में ग्रन्थ में प्रतिपादित विषयों के बारे में कहा गया है। एक प्रकार से यह इस ग्रन्थ की विषय सूची भी है। संयोग से किञ्चित विषयों को छोड़कर प्रस्तुत पाठ में समस्त विषय आ गए हैं। जहाँ कहीं विषय खण्डित मिला है, प्रस्तुत पाठ में अन्य पाठ या ग्रन्थान्तर से उक्त विषय की पूर्ति का प्रयास किया गया है।

किस प्रयोजन से विकास होता है और उसको कौन धारण करता है, धरती का आधार कौन है, आकाश किस प्रकार स्थित है, मेरू आदि पर्वत और कुलाचल शैल का आधार क्या है, यह भी कहें।

किं धरित्र्याः प्रमाणं च सप्त$_{7}$द्वीपा वसुन्धरा।
समुद्राश्च कथं प्रोक्ता वनोपवनकाननम्॥ 4॥
द्वीपद्वीपेषु क्षेत्राणां प्रमाणानि कथं विदुः।
जम्बूद्वीपस्य मध्ये तु नवक्षेत्राणि$_{9}$ कानि च॥ 5॥

सात द्वीपों को धारण करने वाली वसुन्धरा का प्रमाण क्या है, इस पर विद्यमान समुद्र, वन-उपवन, कानन, द्वीप, उपद्वीप के क्षेत्रों का प्रमाण भी कहें। इस जम्बूद्वीप के बीच कौन-कौन से नवद्वीप हैं, बताएँ।

उत्तमं भारतं क्षेत्रं तत्प्रमाणं च ख्यातु मे।
स्वेदाण्डोर्ध्वजरायुजो भूतग्रामः कथञ्चन॥ 6॥
को धर्मः कुत्र क्षेत्रेषु रम्यकादौ वदेद्भवान्।
ये देशा भारते क्षेत्रे आश्रमा ग्रामसङ्ख्यया॥ 7॥

इस उत्तम भारत क्षेत्र का प्रमाण क्या है, बताइए। स्वेदज, अण्डज, पिण्डज और जरायुज जैसे भूत प्राणियों के विषय में बताएँ। किस क्षेत्र का क्या धर्म है, कौन क्षेत्र रमणीय है, हे भगवान्! आप बताएँ। इस देश की आश्रम व्यवस्था, ग्राम संख्या आदि को भी स्पष्ट करें।

को धर्मः कुत्र देशे तु भरतक्षेत्रमध्यतः।
कृतत्रेताद्वापरे तु चतुर्थे$_{4}$ वा कलौ युगे॥ 8॥
युगान्ते च कथं धर्मो युगरूपानुदेवताः।
धर्मः कृतयुगादीनां द्विजदेवयज्ञादयः॥ 9॥

इस भरत क्षेत्र के बीच के किस देश का कौनसा धर्म है, कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापर और चौथे कलियुग के विषय में, युगान्त के धर्म, युगानुरूप देवताओं और कृतयुगादि के धर्म, द्विज, देवयज्ञादि के विषय में भी कहें।

कश्च धर्मः कथं कीर्तिर्द्विजदेवालयादितः।
आलयः सर्वसत्त्वानां वेश्महर्म्यप्रसाधनम्॥ 10॥
वास्तूत्पत्तिः कथं तात देवादेश्च निघण्टुकम्।
एकपादादिकं वास्तु यावत्पदसहस्त्रकम्॥ 11॥

हे तात! इसी प्रकार धर्म के विषय में भी कहो और द्विजों की कीर्ति, देवालयों,

समस्त लोगों के लिए भवन, हवेलियों व प्रसाधनों, वास्तु की उत्पत्ति को भी कहो। इसी प्रकार निघण्टु और एक पद से लेकर हजार पद तक के वास्तु पद विन्यास को भी कहो।

मर्मोपमर्मवंशाश्च रेखाषट्कसंख्यादिकम्।
वज्रत्रिशूललाङ्गूलं हस्तसूत्रादिपद्मकम्॥ 12॥
बलिकर्मविधिं ब्रूहि वास्तुपादनिवासिनाम्।
विद्यात् स्थानानि सर्वाणि प्रासादभवनादितः॥ 13॥

इसी प्रकार मर्म, उपमर्म, वंश, रेखा षटक, संख्याओं, वज्र, त्रिशूल, हल, हस्त सूत्रादि पद्मक, बलिकर्म की विधि भी कहो। वास्तुपदानुसार वहाँ न्यसित देवताओं के विषय में कहो और समस्त प्रासाद, भवनों के स्थानों के विषय में कथन करें।

हस्तलक्षणमानं च देवतापादसम्भवम्।
मानोन्मानप्रमाणं च सर्वकर्मादिकारणम्॥ 14॥
सूत्रधारो हि जानीयाद्वर्णकं रुतमेव च।

इसी क्रम में हस्त लक्षण, हस्तमान, हस्त के पदानुसार वहाँ के देवताओं, मान-उन्मान के प्रमाण और उनका समस्त कर्मों में उपयोग, सूत्रधार की परीक्षा, वर्णादि के विषय में भी कहें।

भूपरीक्षां शल्योद्धारं कीलिकारोपणादिकम्॥ 15॥
वर्णगन्धरसास्वादप्लवादिभूमिलक्षणम्।
दीपवर्त्तिप्राग्विशुद्धिं दिशां च साधनादिकम्॥ 16॥

भूमि की परीक्षा, शल्योद्धार, कीलिकारोपणादि के साथ ही वर्ण, गन्ध, रस, स्वाद, प्लवादि के अनुसार भूमि के लक्षण, दीये की बाती के अनुसार पूर्वादि दिशाओं का ज्ञान जिस विधि से सम्भव हो, उसको भी कहें।

प्रस्तारक्रमसूत्रं च राजधान्याः पुरादिकम्।
पुरग्रामनगराद्यं खेटं कूटं च कर्वटम्॥ 17॥
पुरप्राकारपरिखाप्रतोलीमार्गगोपुरम्।
वेश्मानि राजवेश्यामानि सभां शालां गजाश्वयोः॥ 18॥

भवनादि के लिए प्रस्तार क्रमसूत्र, राजधानी योग्य पुरों के अतिरिक्त जनवास के उपयोगी पुर, ग्राम, नगर, खेट, कूट, कर्वट के विषय में कहें। पुर की चहारदिवारी, परिखा, प्रतोली, मार्ग, गोपुर, योग्य महल, राजभवन, सभा, अश्व-गजशालाओं के बारे में कथन करें।

सूत्रपातविधिं ज्ञात्वाऽऽयव्ययादेश्च लक्षणम्।
ज्योतिषे केवलं ज्ञानं स्त्रीपुरुषादिलक्षणम्॥ 19॥

निर्माण कार्य के लिए सूत्रपात की विधि और आय-व्ययादि के लक्षण, ज्योतिष, स्त्री-पुरुष लक्षणों के विषय में भी कहें।

प्रासादप्रतिमालिङ्गःजगतीपीठमण्डपान्।
प्रासादान् विविधाकारान् वैराज्यकुलसम्भवान्॥ 20॥
अष्टजातिक्रमच्छन्दो देशानुरूपसूत्रणे।

प्रासाद, प्रतिमा, लिङ्ग, जगती, पीठ, मण्डप, वैराज्यादि कुलों से बनने वाले नाना प्रकार के प्रसादों, आठ जाति के छन्द और देशानुरूप सूत्र-प्रमाण के विषय में भी कहने का कष्ट करें।

रेखाश्च विविधास्तत्र प्रासादे शिखरे मताः॥ 21॥
घण्टाकलशध्वजानां प्रमाणं सृष्टिसम्भवम्।
प्रतिष्ठा सप्तधा ख्याता कूर्माद्या च ध्वजान्तगा॥ 22॥

प्रासादों के शिखरों के लिए प्रयुक्त होने वाली नाना प्रकार की रेखाओं, शिखरोपयोगी घण्टा, कलश, ध्वजादि के निर्माण के प्रमाण, कूर्मादि सहित सात प्रकार की प्रतिष्ठा और ध्वजान्तगामी विधियाँ कहें।

प्रासादे गर्भद्वारे च देवतानामनुक्रमः।
द्वारदृष्टिपदस्थानं दिग्द्वारं च कथञ्चन॥ 23॥

प्रासाद के गर्भद्वार और देवता नामानुक्रम, द्वार दृष्टि, पद स्थान, दिशाओं के द्वार के विषय में भी कहने की कृपा करें।

द्वारलक्षणं प्रोक्तव्यं दारुकर्मरथारुहे (त्मके)।
सिंहकर्णकपोतालीनिर्यूहच्छाद्यकं लुमम्॥ 24॥
वितानानि विचित्राणि क्षिप्तान्युत्क्षिप्तकानिं च।
पद्मकं नाभिच्छन्दं च सभामार्ग मन्दारकम्॥ 25॥

इसके अतिरिक्त, द्वार के लक्षण, काष्ठादि के लक्षण, सिंहकर्ण, कपोताली, निर्यूह, छाद्यक, लुमा, वितान, चित्र-विचित्र क्षिप्त-अनुक्षिप्त, पद्मक, नाभिछन्द, सभा, मार्ग, मन्दारक आदि के विषय में भी बताएँ।

प्रतिमालक्ष्मस्थानानि दृष्टिस्थानादिकं तथा।
भृत्यचारप्रभेदाश्च स्वस्वयानादिकं तथा॥ 26॥

प्रतिमा, लाञ्छन के स्थान, दृष्टिस्थानादि, सेवकाचार के भेद और उनके यानादि, वाहनों के विषयों में भी कहें।

तालप्रस्तारगीताद्यं वादित्रैः स्याच्चतुर्विधम्।
चित्रपट्टप्रभेदाश्च रेखाचित्रसमुद्भवाः ॥ 27 ॥

इसी प्रकार सङ्गीत में ताल, प्रस्तार छन्द, गीतादि, चार प्रकार के वाद्यों (तत्, सुषिर, घन, आबद्ध), चित्रपट्ट के भेद, रेखाचित्रों के बनने की विधि कहें।

वर्णरूपरसवृत्तिभावानुभावकोद्भवाः।
शुद्धाबद्धानि चित्राणि पत्राणि पञ्च एव च ॥ 28 ॥
शालभञ्जी प्रतांचारी लास्यताण्डवकादिकम्।

वर्ण, रूप, रस, वृत्ति, भाव, अनुभाव से बनने वाले, शुद्ध, आबद्ध चित्रों, पाँच पत्रों, शालभञ्जिका, नृत्य में चारी, लास्य, ताण्डवादि नृत्यों के विषय में कहें।

भूषणानि विचित्राणि देवासुरनृणां किल ॥ 29 ॥
छत्रं सिंहासनं शय्यां यानानि चायुधानि च।
वेदिकानामलङ्कारं रत्नधातूद्भवं तथा ॥ 30 ॥

देवताओं, असुरों और मनुष्यों के नाना आभूषणों, छत्र, सिंहासन, शय्या, यान-विमान, आयुध, वेदिका, अलङ्कार, रत्नों-धातुओं की उत्पत्ति के विषय में कहें।

एतत्सर्वं प्रसादेन कथय स्वयमीश्वर।
भक्तवत्सल देव त्वं प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ 31 ॥

हे स्वयं ईश्वर! भक्त वत्सल देव!! उक्त समस्त विषयों के विषय में आप प्रभु! मेरे प्रति कहने का अनुग्रह करें।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां सूत्रलक्षणाधिकारो नाम द्वितीयं सूत्रम् ॥ 2 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में सूत्र लक्षण अधिकार नामक द्वितीय सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 2 ॥

ब्रह्माण्डोत्पत्तिर्नाम तृतीयं सूत्रम् ॥ 3 ॥

विश्वकर्मोवाच —

शृणु वत्स प्रयत्नेन यत्त्वया परिपृच्छितम्।
कथयामि न सन्देहस्तव भ्रान्तिहरं च तत् ॥ 1 ॥

(अपराजित के प्रश्न करने पर) विश्वकर्मा बोले— सुनो पुत्र! तुमने परिश्रम से जो-जो प्रश्न किए हैं, मैं तुम्हारा सन्देह और भ्रान्ति दूर करने को कहता हूँ।

ब्रह्माण्डोत्पत्ति वर्णनमाह —

पूर्वं ब्रह्माण्डमुत्पन्नं संसाराधारकं च तत्।[1]
ततस्तस्मिन् समस्तं च जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ 2॥

पहले ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई और संसार को धारण करने वाले की उत्पत्ति हुई। इसके बाद उस पर समस्त स्थावर, जङ्गम जगत की उद्भावना हुई।

आद्योद्भवसृष्टिसूत्रं ब्रह्मज्ञानादिकोद्भवम्।
तदनुक्रमयुक्ती च कथयामि च साम्प्रतम्॥ 3॥[2]

आदिकाल में सृष्टि किस रीति से उत्पन्न हुई, वैसे ही किस प्रकार ब्रह्मज्ञान का उद्भव हुआ, ऐसी ही समस्त युक्तियों का मैं यहाँ अब कथन कर रहा हूँ।

नैव भूर्वायुराकाशं नैव चन्द्रार्कतारकम्।
देवासुरमनुष्याणां नोत्पत्तिं प्रलये विदुः॥ 4॥[3]

पूर्वकाल में न तो पृथ्वी थी, न वायु न ही आकाश था, न चन्द्रमा था, न सूर्य और न ही तारागणादि थे। इसी प्रकार न तो देवता थे, न असुर; मनुष्यों की उत्पत्ति भी नहीं हुई थी, ऐसा विद्वज्जन कहते हैं।

न पृथ्वी सागरा द्वीपाः शैला मेर्वादयस्तथा।
भूतग्रामः समस्त्वेवं स्वेदाण्डोद्भिज्जरायुजाः॥ 5॥[4]

तब पृथ्वी पर न सागर थे न द्वीप और न ही मेरु आदि पर्वत ही थे। इसी प्रकार न कोई ग्रामादि बस्ती थी। इसके बाद, यहाँ समस्त स्वेदज (पसीने से उत्पन्न होने वाले जीव), अण्डज (अण्डों से पैदा होने वाले जीव), जरायुज (जर से उत्पन्न होने वाले जीव) पैदा हुए।

अन्ये च बहवो जीवाः कीटसर्पपतत्रिणः।
चतुरशीति लक्षाणि जीवयोनिरनेकधा॥ 6॥[5]

---

1. पूर्व ब्रह्माण्डत्पत्ति संसारोधारकोद्भवं इति पाठः।
2. आद्योद्भवसृष्टिसूत्रं (स्तत्र) ब्रह्माण्डादिकटोद्भवम् (?)। तस्यायुक्ति अनुक्रमेण कथयामि च साम्प्रतमिति पाठः।
3. न च भूमि चराकाशान् चन्द्रादितारकान् च। देवासुरमनुष्याणां तस्योत्पत्ति प्रलायाम्विभू इति पाठः।
4. न च पृथ्वी सागरोविद्व पमेवीदि शिलोद्भवान्। भूतग्रामोग्राममस्त्व वंस्वेत जाण्डद्विजा रज इति पाठः।
5. अन्येषां बहवोजीवाकीट सर्पपतङ्गादयः। चतुराशी तीगणानि जीवयोनि अनेकधा इति पाठः।

इसी प्रकार कीट, सर्प, पतङ्गादि बहुत प्रकार के जीव हुए— कुल चौरासी लाख जीव योनियाँ कही गई हैं।

सृष्ट्यनन्तरे सम्भूताः सर्वे जीवानुरूपकाः।
सृष्टिस्तत्र यथान्यायं कथ्यते च यथाक्रमम्॥ 7॥

सृष्टि निर्माण के अनन्तर समस्त जीवरूपों की उत्पत्ति हुई, इस सृष्टि के विषय में जैसा न्याय में कहा गया है, मैं यथाक्रम कहता हूँ।

कल्पान्तसम्भवा सृष्टिः संसारसृष्टिसञ्ज्ञिता।
मन्वन्तरमनुक्रान्तं युगान्तं चैव यादृशम्॥ 8॥[1]

कल्प के अन्त में सृष्टि की उत्पत्ति हुई जिसको संसार नाम से कहा गया है। इस मन्वन्तर के क्रम से, युगान्त की क्रिया को मैं कहता हूँ।

वर्षान्ते भावरूपाश्च ऋत्वन्ते तामसोद्भवाः।
पक्षान्ते च सिताः कृष्णा दिनान्ते शर्वरी यथा॥ 9॥[2]

यहाँ वर्ष के अनन्तर (प्रकृति के) भावरूप ऋतुओं, (उजाले व) अन्धेरे की उत्पत्ति हुई। पक्ष में शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष हुए और दिन के साथ ही रात्रि आदि हुए।

एतद् दृष्ट्वा विशेषेण कल्पान्त एवमुद्भवः।
कल्पे कल्पे पुनः सृष्टिर्जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ 10॥

इस प्रकार अनेक विशेषताओं के साथ कल्पान्त में रचना होती है। प्रत्येक कल्प के अन्त में पुनः पुनः स्थावर-जङ्गम वाली जगत सृष्टि होती है।

अपराजित उवाच —

आदिसृष्ट्युद्भवो देव ब्रह्माण्डादिसमुद्भवः।
ब्रह्माण्डं कथमुत्पन्नं कथं च द्वीपशैलयोः॥ 11॥
ब्रह्मा विष्णुः शशी सूर्य इन्द्रः स्कन्दो हुताशनः।
नैव भूर्वायुराकाशं न देवासुरमानुषाः॥ 12॥
वेदोद्भवा च या सृष्टिः कर्म चैव सनातनम्।
अस्माकं भक्तियुक्तानां कथयस्व परेश्वर॥ 13॥

अपराजित बोले— हे परमेश्वर! मैं भक्तिपूर्वक आपसे निवेदन करता हूँ कि मुझे आदिकाल में सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई; ब्रह्माण्डादि का उद्भव कैसे हुआ और इस ब्रह्माण्ड

---

1. कल्पान्तोद्भवासृष्टी संसारासृष्टीकोद्भवा। मन्तरस्तनुकान्ता युगान्तामेव याद्गुशी इति पाठः।
2. वर्षान्तो भावरूपाश्चरित्वर्तो मासोद्भवा। पक्षान्त शित कृष्णादि दिनान्ते शर्वशा यथा इति पाठः।

में कैसे द्वीप-पर्वतादि उत्पन्न हुए; कैसे ब्रह्मा, विष्णु, चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, अग्नि हुए? तब न तो भूमि थी, न वायु न ही आकाश और देव-असुर और मानव ही थे फिर वेदोद्भवा यह सृष्टि कैसे सनातनतः कर्म वाली हुई, कृपया इस विषय को कहिए।

विश्वकर्मोवाच —

अनादेरादिसम्भूतादन्धकारोद्भवं तमः।
आदौ तथान्धतमसं निराधारं निरन्तरम्॥ 14 ॥[1]

अनादि काल में यह सृष्टि उत्पन्न हुई। लय के बाद जब इसकी उत्पत्ति हुई तब अन्धकार ही था, अन्य कोई नहीं। आदिकाल में यह अन्धकार ही था जो निराधार और निरन्तर था।

निराकारादकारश्च अकारादम्भउद्भवः।
अम्भसो रूपमाख्यातमम्बुदो रूक्षसुदूर्ध्वतः ?॥ 15 ॥[2]

उस काल में निराकारादकार से ही आकाराद का उद्भव हुआ था। तब जलार्णव से रूप सम्भूत रूप हुआ जो रुक्षरूप (जलाण्ड या बुलबुला) में उठा हुआ था।

अव्यक्ताद् व्यक्तमापन्नमवर्णो वर्णतां विदुः।
व्यक्ताख्यं वर्णरूपं च फेनस्थानसमुत्थितम्॥ 16 ॥[3]

उक्त अव्यक्त से व्यक्त बुद्बुद अवर्णवत् हुआ, जैसा कि मनीषियों ने वर्णन किया है, वह बाद में व्यक्त नाम से वर्णरूप हुआ और फेन के स्थान पर उठा हुआ दिखाई देता था।

फेनवर्णो निबद्धं च ह्यण्डके रूपमाश्रितम्।
शनैः शनैः प्रवर्द्धन्ते लोलकाकाररूपिणः॥ 17 ॥[4]

वह अण्ड फेन के ही वर्ण से निबद्ध होने लगा और रूपाश्रित होने लगा। धीरे-धीरे वह बड़ा होने लगा और दोलायमान रूप में आया।

वृद्धेर्वृद्धिः पुनस्त्वेवं शनैश्चापि महोद्भवः।
महोद्भवो महावृद्धिः शनैश्चापि विवर्द्धते॥ 18 ॥[5]

---

1. अनाद्यानादि सम्भूता तमध्वजान्धकोद्भवा। यदा अन्धतमन्धश्च निरन्धाश्च निरन्तरा इति पाठः।
2. निरन्धारे अकारेश्च अंकारेशुं भुकोद्भवा। अम्भोद्भवरुपाख्याता आशुकोद् इत उध्वंत इति पाठः।
3. अव्यक्ताव्यक्तोपमानां अवर्णे वर्णित विभु। वर्णरूपं व्यक्ताकारं च फनस्थाने च सम्भवम् इति पाठः।
4. फवर्णेन विबन्धश्च अण्डकं रुपमा स्थितः। शनैशनै प्रवर्द्धन्तो गोलाकाररुपिणः इति पाठः।
5. वृद्धि पुस्त्वं शतैश्चापि महोद्भवम्। वृद्धते महतोद्भग विअधोदे पृष्ठमावृत्तमिति पाठः।

ज्यों-ज्यों समय बीता, वह वृद्धि को प्राप्त होता रहा और महारूपवान् होता चला गया। महोद्भव के साथ-साथ वह महावृद्धि को प्राप्त हुआ अर्थात् विशालकाय होता चला गया।

क्रमसंवर्धनात्त्वेवं विकाशं प्राप्त सर्वथा।
वर्धते च महाभावर्ब्रह्माण्डं पृथुतां गतम्॥ 19॥

वह क्रमशः बढ़ता हुआ, विकास को प्राप्त हुआ अपने महाभाव में ब्रह्माण्ड तुल्य पृथुता की गति को पाने लगा।

अण्डव्यासपृथुमानं योजनैः शतकोटिभिः।
सुनिष्पन्नाण्डकं यातं विकाशं वै द्विधा स्थितम्॥ 20॥[1]

धीरे-धीरे उस अण्ड का व्यास और विस्तार का मान योजन से शतकोटि तक होता चला गया। वह इससे भी दोहरे विकास को प्राप्त होता हुआ, अर्णव पर स्थित था।

अर्धस्योर्ध्वे तथाकाशमर्धस्याधस्तु मेदिनी।
तन्मध्ये वै समस्तं च येषां शम्भुकोद्भवात्?॥ 21॥

उसी अण्ड के ऊपरी स्वरूप से आकाश और नीचे के स्वरूप से पृथ्वी की रचना हुई। इसके बीच समस्त चराचर था जो कि शम्भू से उत्पन्न हुआ था।

स्वर्गलोकार्णवद्वीपाः शैलाः शम्भुसमुद्भवाः।
वनोपवनकाननं यथा रचितसम्भवम्॥ 22॥

इसके साथ ही शिव ने स्वर्गलोक, समुद्र, द्वीप, पर्वत, वनोपवन, कानन आदि की रचना की।

महामेरूद्भवमध्ये रचितं शम्भुकोद्भवम्।[2]
तस्योर्ध्वे तु परं देवं संसारसृष्टिकारणम्॥ 23॥

इसी प्रकार पृथ्वी पर महामेरु की रचना हुई, यह शम्भू द्वारा रचित हुआ। उसके ऊपर ही देव ने सांसारिक सृष्टि की।

एकविंशति$_{21}$ स्वर्गाश्च मेरुव्यङ्गसमुद्भवाः?।
[3]**शम्भूद्भवाः क्रमेणैव पात्रे पात्रमिवापरम्॥ 24॥**

---

1. कस्याण्डकष्ट गमनं योजनै शतकोटिभिः। सुष्यैनिन्नन्त्पऽकं जातं विकाशंवैद्विधास्थितमिति पाठः।
2. महामेरुद्भवं मध्ये अपरचि सम्भूद्भवा इति पाठः।
3. महामेरुद्भवं मध्ये योगे पात्रेपात्रभिवातपरमिति पाठः।

इसी प्रकार शिव ने इक्कीस स्वर्गों की रचना की और मेरु सहित अन्य अङ्गों को उत्पन्न किया। ये लोक क्रमशः एक पात्र के ऊपर रखे अन्य पात्र की भाँति स्थित हैं।

पातालं सप्तधा$_7$ ख्यातं सप्तद्वीपा$_7$ वसुन्धरा।[1]
सप्त$_7$लोकास्तथा चोर्ध्वे स्वर्गाणां त्वेकविंशतिः$_{21}$ ॥ 25 ॥

इसी तरह सात पाताल[2] और सात प्रसिद्ध द्वीपों[3] वाली वसुन्धरा की रचना की। इसमें सात लोक[4] और ऊपर इक्कीस स्वर्गलोकों की रचना की।

ततः सरांसि प्रतिमा जलस्य तु यानिकाः।
पुष्पावाटी प्राकारो शाला द्विनयमुपवनं वेदिकान्त ध्वजा ?॥ 26 ॥

इसके बाद, सरों, तालाबों, जलाशयों का स्वरूप (प्रतिमा) बना। साथ ही उनमें तैरने वाले यानों (नौका, जहाजादि) की रचना हुई। इसी प्रकार पुष्पवाटिकाएँ अपना आकार ग्रहण करने लगीं और, परकोटा, शालाएँ बनने लगीं। इसी प्रकार विनय, उपवनयुक्त वेदिकाओं (चबूतरों) पर ध्वजाएँ फहराने लगीं।

शालकल्पद्रुमाणां [5]परिवर्ति वनान्तदूप[6]हम्या ?।
वली च पातालस्फटिकोपेतं वृसुरमुनिसुरा पीठिकार्गस्वर्गभूः ?॥ 27 ॥

इसी प्रकार शाल जैसे विशाल कल्पद्रुमों के ऊपर की ओर हर्म्यावली अर्थात् हवेलियों की पङ्क्तियुक्त भवनों की कतार जो अपने ऊपर तल से लेकर ऊपर तक स्फटिक से ही निर्मित थी। यह वसुओं, मुनियों, सुरों, देवताओं की पीठिका आवास रूपी स्वर्गभूमि जैसी प्रतीत होती थी।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
ब्रह्माण्डोत्पत्त्यधिकारो नाम तृतीयं सूत्रम्॥ 3 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति अधिकार नामक तृतीय सूत्र पूर्ण हुआ॥ 3 ॥

---

1. पातालसप्तमाख्याता सप्तद्वीपा वसुन्धरा। सप्तलोकोर्द्धमाख्याता स्वर्गाणां चैकविंशति इति पाठः।
2. अतलं वितलं चैव सुतलं च तलातलम्। महातलं च पातालं रसातलमधस्ततः ॥ (ब्रह्माण्डपुराण ब्रह्मखण्ड 7, 13)
3. जम्बू, शाल्मलि, क्रौञ्च, कुश, शाक, पुष्कर तथा प्लक्ष द्वीप।
4. भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक व सत्य या ब्रह्मलोक।
5. 'परिवर्ति' प्रकाशित पाठः।
6. 'हर्म्या' स्यात्।

पातालद्वीपार्णवसूत्रणं(सूचनं)चतुर्थ सूत्रम्॥ 4॥

अपराजित उवाच —

काचिच्छम्भूद्भवा सृष्टिः काचिद्देवांशसम्भवा।
काचित्सृष्टिसमुद्भूता काचित्तद्वरदानतः॥ 1॥
केचिच्छम्भूद्भवा वर्णा वनादीनां क्व चोदयः।
निशासृष्ट्युद्भवाः केचिद् वनोपवनकाननम्॥ 2॥

अपराजित बोले— हे प्रभु! यह बताइएगा कि कौनसी सृष्टि शम्भु के द्वारा और कौनसी देवांश द्वारा सम्भूत हुई है? कौनसी सृष्टि स्वयं हुई और कौनसी सृष्टि वरदान से हुई? इसी प्रकार शम्भु से कितने वर्ण उत्पन्न हुए और वनादिकों की उत्पत्ति **कैसे** हुई तथा कोई वन, उपवन और कानन निशाचरों, राक्षसों व पिशाचों द्वारा भी **कैसे** उत्पन्न किए गए हैं?

अथ पातालद्वीपार्णवसूत्राणं विश्वकर्मोवाच —

शम्भुजा भूधरा लोकाः पातालतलवासिनः।
तथै (त्रै) सागरद्वीपाः शम्भुना रचिताः पुरा॥ 3॥
पातालः सप्तधा त्वेवं ब्रह्मभागव्यवस्थितः।
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च आख्याता विष्णुसम्भवाः॥ 4॥

विश्वकर्मा बोले— इस लोक में समस्त भूधर अर्थात् पहाड़ शम्भु द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार समस्त पाताल तल के निवासी और समस्त सागरों के द्वीप भी शम्भु द्वारा ही पूर्वकाल में रचित है। पहले के समय में पातालों के सात भाग स्वयं ब्रह्मा द्वारा व्यवस्थित किए गए थे और सातों समुद्रों के सातों विख्यात द्वीपों की रचना भगवान विष्णु द्वारा की गई।

रुद्रभागोद्भावालोकादीनां —

सप्तोर्ध्वलोकाश्च$_7$ ख्याता रुद्रभागसमुद्भवाः।
स्वर्गश्च मर्त्यपातालौ स्वर्गाणां त्वेकविंशतिः$_{21}$॥ 5॥

इसी प्रकार सात ऊर्ध्वलोक जो विख्यात हैं, उनको स्वयं भगवान रुद्र ने ही उत्पन्न किया। इस प्रकार से देखने पर हम पाते हैं कि स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताल लोकादि स्वर्गों की संख्या इक्कीस है।

पातालः स्वर्ग आख्यातो मर्त्यो द्वीपार्णवात्मकः।
स्वर्गश्च लोक आख्यातस्त्रैलोक्यं नाम प्रोच्यते॥ 6॥

महोमेर्वादयः ख्याताः शम्भुना रचिताः किल।

अब मैं पाताल स्वर्ग कहलाने वाले, मृत्युलोक के द्वीपार्णव तथा स्वर्गलोक नाम से कहे जाने वाले तीनों ही लोकों के नाम कहता हूँ। महामेरु आदि नाम से विख्यात सभी पहाड़ भगवान शम्भु द्वारा रचित है।

अथ पृथ्वीविस्तारवर्णनं —

तेषामनुक्रमश्चात्र कथ्यते त्वपराजित॥ 7॥

ब्रह्माण्डान्ते तु या पृथ्वी योजनैः शत$_{100}$कोटिभिः।

विनसन्त्यन्तरे लोका भुवनानि निवासिनाम्॥ 8॥

हे अपराजित! मैं उन सभी को अनुक्रम से तुम्हें यहाँ कहता हूँ। यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड के अन्त तक सौ करोड़ योजन तक फैली हुई है। इनके अनन्तर में अनेकों भुवनों में निवास करने वाले लोक बसते हैं।

सरितश्च समुद्राश्च शैलाश्चैवं प्रकीर्तिताः।

तडागा विविधास्तत्र तीर्थश्च धर्मकीर्तनः॥ 9॥

उन सभी में विविध प्रकार की सरिताएँ, समुद्र, शैल-पहाड़ जो ख्याति प्राप्त हैं तथा विविध तड़ाग, तीर्थ आदि धर्मकीर्ति के स्थान पाए जाते हैं।

पातालान्ते च या पृथ्वी योजनैर्दशकोटिभिः।

तस्या अग्रं सहस्त्राणामेकोनविंशति स्तथा॥ 10॥

देवाग्निगुरुपूजा च धर्मतीर्थमहोत्सवः।

नदीसमुद्रदेवाश्च तीर्थादिपुण्यनिर्मलाः ?॥ 11॥

अब देखिए कि पाताल के अन्त तक भी इस पृथ्वी की सीमा दस करोड़ योजनों की हैं। उससे भी आगे उन्नीस हजार देवाग्निपूजा, गुरुपूजा व धर्म तीर्थ के महोत्सव के स्थान तथा नदी और समुद्र देवताओं के निर्मल पुण्य तीर्थ हैं।

तथा च पातालवर्णनं —

पातालभूधरा लोकास्तीर्थाणि पुण्यसागराः।

संस्थिताः कर्मयोगेन पात्रे पात्रमिवापरम्॥ 12॥

अतलो वितलश्चैव सुतलो नितलस्तथा।

तलातलश्च विज्ञेयः ? (पातालः) सप्तमोऽथ रसातलः:॥ 13॥

ये सभी पाताल के पहाड़ों के लोक, तीर्थों के लोक पुण्य सागरों के लोक कर्मयोग के द्वारा एक दूसरे पर इसी प्रकार बने हुए हैं जिस प्रकार घड़ों पर घड़े

रखे गए हों। इनके नाम हैं— (1.) अतल, (2.) वितल, (3.) सुतल, (4.) नितल, (5.) तलातल (6. पाताल) और 7. रसातल।

पातालाः सप्तधा ख्याताः पात्रे पात्रमिवापरम्।
अविरचित **विना शास्त्रे** सृष्टिकालसमुद्भवाः ॥ 14 ॥

इस प्रकार सप्त पाताल एक दूसरे पर रखे गए पात्रों परिपात्रों के अनुसार विख्यात हुए और ये सृष्टिकाल के समय ही बिना किसी शास्त्रीय आधार के निर्मित हुए हैं।

आदिपीठोद्भवं **मानं द्वि** ? सहस्त्रैर्लक्षयोजनैः।
तलसङ्ख्यान्तरे **विद्यात् पाताले** सप्तधोच्छ्रिते ॥ 15 ॥
ततो द्विगुणविस्तीर्णाः क्रमेणापि सुसंस्थिताः।
ब्रह्मासृष्ट्युद्भवांशे तु पातालतलमेव च ॥ 16 ॥

सबसे आदि में जो पीठ बनी, वह दो सहस्र लाख योजनों की थी। उसके ऊपर एक-एक तल संख्या के अन्तर पर सात पाताल बनते गए। इससे भी दोगुनी विस्तार वाली क्रमवार सुसंस्थित ब्रह्मा की सृष्टि में बने हुए पातालों के तल हैं।

तदूर्ध्व सागरा द्वीपाः [1]शैलेश्चापि भूसंस्थिता।
जम्बूद्वीपादिमानेन **सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ 17 ॥**
तथा सप्तसमुद्राश्च प्रमाणेन प्रकीर्तिताः।

इन सबके ऊपर सागर और द्वीप तथा पहाड़ों की भूमि पर स्थिति बनी हुई है। इस भूमि पर यहाँ जम्बू द्वीपादि के मान से सात महाद्वीप इस वसुन्धरा पर बने हुए हैं तथा सात समुद्र भी इनके ही प्रमाणानुसार बने हुए हैं।

अथ द्वीपनामवर्णनञ्च —

जम्बूः प्लक्षः कुशक्रौञ्चौ शाल्मलिश्च तथैव च ॥ 18 ॥
शाकस्तथा समाख्यातः पुष्कराख्यश्च सप्तमः।
द्वीपाः सप्त समाख्याता अकृता शम्भुना हि ते ॥ 19 ॥

(उक्त द्वीपों के नाम हैं—) (1.) जम्बू, (2.) प्लक्ष, (3.) कुश, (4.) क्रौञ्च, (5.) शाल्मलि, (6.) शाक और सातवाँ (7.) पुष्कर। ये सातों विख्यात द्वीप शम्भु के द्वारा निर्मित हैं।

जम्बूद्वीपो लक्षमेकं योजनानां **तु सङ्ख्यया।**
तत्परमर्णवा जाताः सप्तसृष्टिविरजिताः ॥ 20 ॥

---

1. 'शनैश्चापि भू (त ?) संस्थिता' प्रकाशित पाठः।

सातश्च ? सप्तमां यान्ति क्रमेणापि सुसंस्थिताः।

क्षारार्णवक्रमेणैव संस्थिताः सप्त सागराः ॥ 21 ॥

यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन का है। इसके बाद ये सात सृष्टियों में बने समुद्र आते हैं। ये सातों ही समुद्र सातवें तक क्रमवार सुसंस्थित है और क्षारार्णव (लवणसागर) के क्रम से ये सातों सागर संस्थित है।

सागरान्ते भवेद् द्वीपो द्वीपान्ते चैव सागरः।

समुद्राः संस्थिताः सर्वे नगरान्तेषु च विश्रुताः ॥ 23 ॥

अयुतायुतयोजनाः पृथगेकैकसागराः।

विपुलागाधगम्भीरा आवर्तबहुलाकुलाः ॥ 24 ॥

इन सागरों के अन्त में अन्य द्वीप होते हैं और उन द्वीपों के अन्त में अन्य सागर होते हैं। ये समुद्र इसी प्रकार एक दूसरे के बाद स्थित है जैसे किसीनगर के बाद दूसरा नगर स्थित होता है। पृथक्-पृथक् ये सागर अयुतायुत योजनों अर्थात् अरबों योजन के विस्तार में विस्तृत हैं और एक दूसरे से अलग-अलग भी हैं। ये सभी सागर बहुत बड़े, बहुत गहरे, बहुत गम्भीर और बहुत ही भ्रमरियों युक्त उत्ताल लहरों से आकुल-व्याकुल रहते हैं।

सागरनामानि —

क्षारः क्षीरोदधिः सर्पिमधुरिक्षूरसोदकः।

समुद्राः सप्तधेत्युक्ताः सन्ति विष्णुसमुद्भवाः ॥ 25 ॥

(इन सागरों के नाम हैं—) (1.) क्षार, (2.) क्षीरोद, (3.) दधि, (4.) सर्पि, (5.) मधु, (6.) इक्षु, (7.) रसोदक। ये सातों ही समुद्र भगवान् विष्णु द्वारा रचित है।

कुलादीनां शैलनामानि —

नैकशैला कुलारम्या पृथ्वी च द्वीपसागराः।

पृथुमानाः स्थिराः सर्वे शम्भोश्चाऽथ समुद्भवः ?॥ 26 ॥

इस पृथ्वी पर अनेकों प्रकार के रम्य पहाड़ों के कुल समूह, द्वीप, सागर विशाल प्रमाणयुक्त और स्थित है। ये सभी शम्भु की रचना हैं।

मेरुश्च मन्दरश्चैव तृतीयो गन्धमादनः।

हिमवान् हेमकूटश्च निषधो नील एव च ॥ 27 ॥

श्वेतश्च शृङ्गवांश्चैव जाता अन्ये कुलाचलाः।

इनके नाम हैं— (1.) मेरु, (2.) मन्दर, (3.) गन्धमादन, (4.) हिमालय, (5.) हेमकूट, (6.) निषध, (7.) नील, (8.) श्वेत, (9.) शृङ्गवान एवं (10.) कुलाचल।

तदाश्रित्य वना ख्याता वनोपवनकानना: ॥ 28 ॥

माहेन्द्रो मलयश्चैव सह्यो विन्ध्यस्तथैव च।

हेमन्त: पारिजातश्च श्रीशैलश्च तथाऽर्बुद: ॥ 29 ॥

उदयाद्रिस्त्रिकूटश्च द्वीपशैलो विन्ध्याजल:।

मैनाको भूपरीषश्च कङ्कत: प्रान्तकोद्भव: ॥ 30 ॥

इन पहाड़ों के आश्रित जो वन, उपवन व कानन हैं, उनके नाम हैं — (1.) माहेन्द्र, (2.) मलय, (3.) सह्य, (4.) विन्ध्य, (5.) हेमन्त, (6.) पारिजात, (7.) श्रीशैल, (8.) आबू, (9.) उदियाद्रि, (10.) त्रिकूट, (11.) द्वीपशैल व (12.) विन्ध्याजल। मैनाक इस भूभाग पर परिखा की भाँति कङ्क से प्रान्त तक रचित है।

एते शम्भूद्भवा: सृष्ट्यां कुलशैलाश्च चला: स्थिरा:।

विष्णुऽरचिता ह्येते संस्थिता: कुलशैलका: ॥ 31 ॥

क्वचित्पर्वतरम्या च क्वचित्सागरशोभिता।

क्वचित्सरिद्द्रुमै रम्या तडागै: शोभिता क्वचित् ॥ 32 ॥

ये सब शम्भु के द्वारा रचित सृष्टि के कुलपर्वत, अचल व चल शैल है। विष्णु के द्वारा रचित शैलादि भी इतने ही हैं। (इस सृष्टि में) कहीं सुन्दर रम्य पर्वत हैं तो कहीं सुन्दर रम्य सागर हैं। कहीं सरिताओं के किनारे रम्य द्रुमों की पङ्क्तियाँ हैं तो कहीं सुन्दर तड़ागों की शोभा हो रही है।

एवं मही महारम्या शम्या शस्यै: संशोभिता क्वचित्।

मुख्यै: काञ्चनपुष्पैश्च रम्यासुरनरोरगै: ॥ 33 ॥

इस प्रकार यह पृथ्वी बहुत ही रमणीय सौन्दर्य से युक्त है जिसमें शम्या शान्तिदायक सभी प्रकार के धान्य कहीं-कहीं सुशोभित हो रहे हैं। यहाँ कहीं पर कई मुख्य-मुख्य प्रकार के काञ्चन के समान सुन्दर पुष्प पाए जाते हैं जो सुर, नर और नागों को भी बड़े सुन्दर और प्यारे लगते हैं।

रचिता विरचिताख्या योजनै: कलितोन्नति:।

यथोक्तेन प्रमाणेन द्वीपशैलार्णवादिकम् ॥ 34 ॥

इस प्रकार की योजनों तक के विस्तार में रचित कलित विरचित यथोक्त प्रमाणानुसार बनी द्वीप, शैल, अर्णव-सागरादिक यहाँ हैं।

अथाङ्गुलात्योजनप्रमाणम् —

वेदयुग्माङ्गुलैर्हस्तो दण्डो वेदकरैर्मतः।

द्विसहस्रदण्डैः क्रोशो योजनं वेदक्रोशकैः॥ 35॥

(वेदयुग्माङ्गुलैर्हस्तो अर्थात्) चौबीस अङ्गुल के गज से और चार गज के दण्ड के नाप से बने दो हजार दण्डों से एक क्रोश बनता है और ऐसे चार क्रोश से एक योजन होता है। यह सब अङ्गुल से क्रमानुसार योजन तक का प्रमाण जानना चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां पातालद्वीपार्णव सूत्रणा (संचरा)धिकारो नाम चतुर्थ सूत्रम्॥ 4॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में पातालद्वीपार्णव सूत्र (संचर) अधिकार नामक चतुर्थ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 4॥

सप्तोर्ध्वलोको नाम पञ्चमं सूत्रम्॥ 5॥

अपराजित उवाच —

पातालमर्त्यलोकौ च कथितौ हि प्रमाणतः।

स्वर्गान्कथत मे तात प्रसादं कुरु मे प्रभो॥ 1॥

अपराजित बोले— पाताल, मर्त्यलोक और स्वर्गों के बारे में हे प्रभु! आप प्रमाणतः बताने की कृपा करें और मुझ पर अनुग्रह करें।

अथ सप्तोर्ध्वलोकवर्णनं विश्वकर्मोवाच —

जम्बूत ऊर्ध्वमाख्याता स्वर्गलोकाश्च सप्तधा।

सप्तैते कथिताः स्वर्गा देवानामालयाः स्मृताः॥ 2॥

विश्वकर्मा बोले— जम्बूद्वीप से ऊपर की ओर सात प्रकार के स्वर्गलोक विख्यात हैं। ये सातों ही कहे गए स्वर्गदेवताओं के रहने के आवास माने जाते हैं।

संस्थिताः क्रमयोगेन पात्रे पात्रमिवापरम्।

सृष्टिः शम्भूद्भवा स्वर्गः कथ्यते तव साम्प्रतम्॥ 3॥

ये सभी एक पात्र के ऊपर रखे हुए पात्र के ऊपरोपर रखे समान स्थित हैं। अब मैं इन सृष्टि में उद्भूत स्वर्गों के विषय में कहता हूँ।

भुवर्लोकश्च स्वर्लोको महोलोकश्च तत्परम्।

तुरीयो जनलोकश्च तपोलोकश्च पञ्चमः॥ 4॥

सत्यलोकः सत्यगामी ज्ञानलोकोऽत्र सप्तमः ॥

विना विरचिताः शस्त्रै ?र्लोका वै शम्भुसम्भवाः ॥ 5 ॥

इनमें से पहला भुवर्लोक है, फिर स्वर्लोक, तीसरा महर्लोक उससे भी ऊपर है। चौथा जनलोक और पाँचवाँ तपःलोक है। छठवाँ सत्यलोक है जहाँ सत्यानुगामी पहुँचते हैं। सातवाँ ज्ञानलोक है। ये सब बिना ही विरचित सातों ही लोक शम्भू या स्वयम्भू सम्भव हुए हैं।

तदूर्ध्व मेरुराख्यात एकविंशदिवाधिपः[21] ।

ब्रह्माण्डमध्ये मेरुर्वै त्रैलोक्यस्तम्भकः स्मृतः ॥ 6 ॥

निर्गन्धाः कल्पदेव्यः परिचिता देवतात्मकाः ।

प्रद्योतकं समस्तं तज्जगदाल्हादकारकम् ॥ 7 ॥

उसके ऊपर इक्कीस स्वर्गों का अधिपति मेरु विख्यात है जो एक प्रकाश के ब्रह्माण्ड का मध्य स्तम्भ मेरु होकर तीनों ही लोकों का स्तम्भ माना जाता है। वह निर्गन्धा कल्पदेव परिचित देवात्मा होकर प्रभविष्णुमय है और समस्त जगत को आनन्द देने वाला है।

स्वर्गे चाग्निः ? (चाग्र) स्थिता देवास्तेषां पृथ्व्युद्भवाः ।

सप्त चिन्तात्मका लोकाः संसारहितकाम्यया ॥ 8 ॥

स्वर्ग में आगे जो देव हैं, उनमें जो देव पृथ्वी पर उत्पन्न हुए हैं, उनके सात चिन्तात्मक लोक हैं जो संसार के हित की कामना करने के लिए हैं।

स्वर्गतो यो भवेद्वातस्तदूर्ध्व सप्तमालिकाः ।

एकैकास्तेजोरूपाढ्याः स्वर्ग ?(सूर्य)कोटिसमुद्भवाः(समप्रभाः)॥ 9 ॥

इन स्वर्गों के ऊपर भी सात मालिकाएँ हैं जिनमें एक से एक बढ़कर तेजोमय हैं और करोड़ों सूर्यों की प्रभा से युक्त हैं।

प्रथमा काञ्चनसमा ह्यन्या स्फटिकनिर्मला ।

तृतीया त्विन्द्रनीला च वैडूर्य्या च चतुर्थिका ॥ 10 ॥

पञ्चमी पद्मरागा च षष्ठी वै वज्रका मता ।

सप्तमी सर्वरत्नाढ्या ब्रह्मातेजस्तदूर्ध्वके ॥ 11 ॥

इनमें पहली मालिका स्वर्ग की-सी चमक से युक्त है। दूसरी स्फटिक जैसी निर्मल है। तीसरी इन्द्रनीलमणि के समान कान्तिवाली है। चौथी वैदूर्यमणि के समान, पाँचवीं पद्मरागमणि के समान, छठी हीरे के समान और सातवीं समस्त रत्नों की चमक से युक्त है। इनसे ऊपर ब्रह्मतेज है।

तेजसोऽम्भोभवो ज्योतिः संसारसृष्टिकारणम् ?।
तदुद्भवं समं चेदं जगत्स्थापरजङ्गमम् ॥ 12 ॥

तेज-अग्नि से ही जल हुआ। इस प्रकार यह ज्योतिष्मय तेज ही संसार की सृष्टि का कारण हुआ जिससे यह सारा स्थावर-जङ्गम जगत् हुआ।

त्रैलोक्यप्रभवं ज्योतिर्जगदाल्हादकारकम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां **सम्भवा** ज्योतिषस्तथा ॥ 13 ॥

तीनों लोकों को बनाने वाली यह ज्योति जगत को आनन्द प्रदान करने वाली है और इसी ज्योति से धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के चारों पदार्थ उत्पन्न हुए हैं।

तेजो ज्ञानोद्भवं ज्योतिः कोटिसूर्यसमप्रभम्।
तदुद्भवं महारूपं संसारमोक्षसौख्यदम् ॥ 14 ॥

तेज से ही ज्ञान रूप ज्योति उत्पन्न हुई जो करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान प्रकाशमान हैं। इस ज्योति से ही यह महारूप विशाल संसार उत्पन्न हुआ जो मोक्ष-सुख का देने वाला है।

कालागिरवि **सम्भूतं रुद्ररूपं** महाभयम् ?।
रुद्रत्वं ? कलते काल महाकालो **मुहुर्मुहुः** ॥ 15 ॥

इसी से कालाग्नि के समान महामय कारक रुद्ररूप उत्पन्न हुआ। यही रुद्रतत्त्व क्षण-क्षण करके काल की रचना करते हुए महाकाल सिद्ध हुआ।

ज्योतीरूपं **भवेद् व्योम्नि** कल्याग्निज्योतिसद्भवम् **(रुद्भवम ?)**।
व्योम्नि सद्योजातमूर्तिः **शक्तिः** स्याज्ज्योतिसद्भवा ॥ 16 ॥

व्योम आकाश में यह ज्योति स्वरूप ही कल्पाग्नि ज्योति को भी उत्पन्न करता है जिससे ही सद्योजात मूर्ति शिव-शक्ति आकाश में उत्पन्न हुई है।

शिवशक्तिसमायुक्तमुद्भवेद्रुद्ररूपकम्।
शम्भो रुद्रोद्भवः प्रोक्तो ब्रह्मविष्णु तदुद्भवौ ॥ 17 ॥

इसी शिव-शक्ति से मिलकर शिव का रुद्र रूप समुद्भव हुआ। इस प्रकार शम्भू रुद्र से उत्पन्न हुए और कहा जाता है कि ब्रह्मा व विष्णु भी इसी रुद्र से हुए।

ततः शम्भूद्भवा सृष्टिर्जगत् स्थावरजङ्गमम्।
देवासुरमनुष्याश्च पशुपक्षिशरीरिणः ॥ 18 ॥

इनसे यह सारी स्थावर, जङ्गम सृष्टि उत्पन्न हुई जिनमें देव, असुर, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि शरीरधारी हुए।

शम्भोर्मनोभवा रम्या परब्रह्मात्मचेतसः।

तदुद्भवा ततः सृष्टिः पञ्चतत्त्वयुता परम्॥ 19॥

शम्भू की मानसी सुन्दर रचना में परब्रह्मचित्त उत्पन्न हुआ। उससे ही यह परम पञ्चतत्त्वों से युक्त सृष्टि उत्पन्न हुई।

हरचित्तोद्भवाद् भव्यो ? नाम ? (भव्यस्तथा) विश्वाधिपो हरिः।

ततस्तदुद्भवा सृष्टिस्त्रैलोक्ये सचराचरे॥ 20॥

हर-शिव के चित्त से ही विश्व के स्वामी हरि-विष्णु उत्पन्न हुए। इसके ही पश्चात् इनसे ही चराचरयुक्त यह त्रैलोक्य सृष्टि हुई।

तदुद्भवं रजः सत्त्वं तमश्चापि तृतीयकम्।

तत्र सृष्टिरनेकाऽभूज्जनसन्तानकारिणी॥ 21॥

इससे ही सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी रचना हुई जिससे अनेक जीवों की सन्तानकारिणी अनेकों सृष्टियाँ उत्पन्न हुईं।

रजो ब्रह्मा तमो विष्णुः सत्त्वं चैव महेश्वरः।

ते चक्रयोद्भवं सत्त्वं सृष्टिसंसारसम्भवम्॥ 22॥

रजोगुण से ब्रह्मा, तमोगुण से विष्णु और सतोगुण से महेश्वर उत्पन्न हुए। इन तीनों के चक्र से ही सत्व रूपा यह सांसारिक सृष्टि सम्भव हुई है।

रजसो रचना ख्यातिः संसारसृष्टिकोद्भवा।

चतुरशीतिलक्षाणि जीवयोनिरनेकशः॥ 23॥

रजोगुण से रचना विख्यात है जिससे यह संसार रूपी सृष्टि हुई। इसमें चौरासी लाख संख्या में विविध योनियों के जीवों की सृष्टि अनेकों प्रकार की हुई।

तमसस्तामसी शक्तिस्तमसा तेजोवर्द्धिनी।

माया मोहमयी कामं वैष्णवी मोहनाशिनी॥ 24॥

तमोगुण से तामसी शक्ति उत्पन्न हुई और तमस से तेज को बढ़ाने वाली मोहमयी माया उत्पन्न हुई जिससे कामनाएँ बढ़ती हैं और तेज तमस से ही वैष्णवी शक्ति उत्पन्न होती है जो मोह का नाश करने में सक्षम है।

सत्त्वशान्तिकशक्तिश्च सत्यज्ञानाद्ब्रह्मात्मजा।

संसारपापमुक्तानां मोक्षार्थं सत्त्वशान्तिकी॥ 25॥

सत्वगुण से शान्तगुण वाली शक्ति का उद्भव हुआ और सत्व की ज्ञान और ब्रह्म को उत्पन्न करने व संसार के पापों से मुक्त हुए जीवों को मोक्ष प्राप्ति के लिए

शान्ति प्रदान करने वाली शक्ति होती है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां सप्तोर्ध्वलोकाधिकारो नाम पञ्चमं सूत्रम्॥ 5॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में सप्त ऊर्ध्वलोक अधिकार नामक पाँचवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 5॥

अष्टशक्त्युद्भवो नाम षष्ठं सूत्रम्॥ 6॥

अपराजित उवाच —

उत्पत्ति कथ्यतां सर्वा देवानां च नृणां तथा।
दैत्यरक्षोऽसुराणां च पशुपक्षिशरीरिणाम्॥ 1॥
के ते ब्रह्मसमुद्भूताः के ते विष्णुसमुद्भवाः।
कस्माद्देवाच्च के जाताः संसारे रूपधारिणः॥ 2॥

अपराजित बोले — आपने सभी देवों, मनुष्यों तथा दैत्यों, राक्षसों और असुरों और पशु-पक्षी देहधारी जीवों के विषय में उनकी उत्पत्ति का वर्णन तो किया, परन्तु कितने जीव ब्रह्मा से उत्पन्न हुए, कितने जीव विष्णु से उत्पन्न हुए तथा किस प्रकार किस देव से कौन-कौन उत्पन्न हुए और इस संसार में रूप धारण कर सके?

विश्वकर्मोवाच —

ब्रह्मणो हृदयाज्जातः काश्यपो मुनिपुङ्गवः।
कश्यपप्रभवा सृष्टिस्त्रैलोक्योदयशालिनी॥ 3॥
कश्यपस्य परा ह्याष्टावादित्याद्याश्च शक्तयः।
जनन्यो जगतस्ताभ्यः संसारसृष्टिकोद्भवः॥ 4॥

विश्वकर्मा बोले — ब्रह्मा के हृदय से मुनिपुङ्ग, मुनियों में राजा काश्यप मुनि उत्पन्न हुए। इन कश्यप से ही तीनों लोकों को बढ़ाने वाली सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ। कश्यप की पत्नी अदिति से निरन्तर आठ पराशक्तियाँ ही इस जगत की जननियाँ हैं और इनसे ही संसार की समस्त सृष्टि उद्भूत हुई है।[1]

---

1. विष्णपुराण में दक्ष कन्याओं, कश्यप की स्त्रियों के नाम क्रमशः अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि आए हैं— कश्यपस्य तु भार्या यास्तासां नामानि मे शृणु। अदितिर्दितिर्दनुश्चैवारिष्टा च सुरसा खसा॥ सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा। कद्रुर्मुनिश्च धर्मज्ञ तदपत्यानि मे शृणु॥ (विष्णु. 1, 15, 124-125) इसी पुराण के पहले अंश के 21वें अध्याय में इनकी सन्तानों का भी वर्णन उपलब्ध होता है।

अथाष्टशक्तिनामावलिः —

दित्यासुर्यौ च गन्धर्वी यक्षी विद्याधरी तथा।
नरेन्द्री नागराजेन्द्री ह्यदितिश्चाष्टमी मता॥ 5॥

इन आठों के नाम क्रमशः (1.) दिति, (2.) आसूर्या, (3.) गन्धर्वी, (4.) यक्षी, (5.) विद्याधरी, (6.) नरेन्द्री, (7.) नागराजेन्द्री और (8.) अदिति है।

तस्यवंशाः —

दित्या दैत्याश्च सम्भूता आसुर्या असुरास्तथा।
गन्धर्व्याश्चैव गन्धर्वा यक्ष्या यक्षास्तथा स्मृताः॥ 6॥
विद्याधर्या विद्याधरास्तथाऽऽदित्याश्च देवताः।
जाता नागाश्च नागेन्द्रा नागेन्द्रो वासुकी मतः॥ 7॥
(नागेन्द्राश्च विहङ्गाश्च नागराजेन्द्रिकोद्भवाः)

दिति से दैत्य उत्पन्न हुए, आसुर्या से असुर, गान्धर्वी से गान्धर्व, यक्ष्या से यक्ष, विद्याधरी से विद्याधर, अदिति से देवता, नागेन्द्री से नाग एवं नागेन्द्रवासुकी नागेन्द्र और विहङ्ग पक्षीगण नागराजेन्द्री से उत्पन्न हुए।

नरेन्द्याश्च नरा जाता विप्रशूद्रानुर्मातः।
अष्टादश$_{18}$ प्रकृतीनां कुलीनानामनेकशः॥ 8॥

नरेन्द्री से समस्त नर उत्पन्न हुए जो विप्र से लेकर शूद्र के मार्गानुसार हुए। इन अठारह प्रकृतियों के अनेकों कुलीन नाम है।

दैत्यानां नवभेदाः$_9$ स्युः पञ्च$_5$भेदास्तथासुराः।
चतुर्भेदाश्च$_4$ गन्धर्वास्त्रिभेदा$_3$ यक्षकाः स्मृताः॥ 9॥
विद्याधराः पञ्चभेदा$_5$ वैदेवीं च गुरोत्तमा ?।

दैत्यों के नौ भेद है तथा असुरों के पाँच भेद है। गन्धर्वों के चार, यक्षों के तीन और विद्याधरों के पाँच भेद कहे गए हैं।

द्विधाश्च नागराजेन्द्रा नरेन्द्राणामनेकधा ?(नरेन्द्रास्तु ह्यनेकधा)॥ 10॥
शशाङ्कश्च तथा सूर्यस्ताभ्यां नृपकुलोदयः।
विश्वेदेवाश्च वस्वाद्याः सन्ति विश्वासमुद्भवाः॥ 11॥

इसी प्रकार नागराजेन्द्रों के दो भेद है और नरेन्द्रों के अनेकों प्रकार के भेद हैं। शशाङ्क–चन्द्रमा से और सूर्य से कई नृपकुलों (चन्द्र और सूर्यवंश) का उदय हुआ। विश्वा से वसु आदि विश्वेदेवा उत्पन्न हुए।

देवानामङ्गिराणां च मातृणां च तथापरम्।

दैत्यादिषु च सर्वेषु पूजिताश्च तदन्वये॥ 12॥

देवों में अङ्गिरागणों में एवं उनके बाद मातृगणों में, दैत्यों आदि के भी सभी वंश पूज्य है।

असुरो दानवो दैत्यः शुक्रो राहुश्च पञ्चमः।

गन्धर्व्याश्चैव चत्वारस्तौर्यत्रिकप्रकाशकाः॥ 13॥

असुर, दानव, दैत्य तथा शुक्र और पाँचवाँ राहु गन्धर्वों के चार-चार त्रिक् प्रकाशकों के हैं।

कुबेरः कङ्कतो यक्षो यक्ष्या जातास्त्रयः $_3$ किल।

समस्ता दैत्यपालानां दैत्या भक्तवशानुगाः॥ 14॥

तुम्बरुर्नारदश्चैव नटेशः कात्यकोद्भवः।

आसुर्याश्च समुत्पन्नाः पञ्चैते $_5$ सुरसम्भ्रमाः॥ 15॥

कुबेर, कङ्कत, यक्ष ये तीनों सभी यक्ष्या से उत्पन्न हुए तथा सभी दैत्यपालगण दैत्या के भक्त व अनुचर हैं। तुम्बरु, नारद और नटेश कात्यका से उत्पन्न हुए। आसुर्या से ये पाँचों देवों को भ्रमित करने वाले उत्पन्न हुए।

मन्मथः पौरुषं लोभो मोहः क्रोधश्च पञ्चमः।

विद्याधरीसमुत्पन्नाः पञ्चैते वीरविक्रमाः॥ 16॥

भैरवः क्षेत्रपालश्च गणो वै दूतसम्भवः।

वैदेवीजाश्च चत्वारः सदा पूज्याश्च मानुषैः॥ 17॥

मन्मथ या कामदेव, पौरुष-कटुवचन, लोभ, मोह और पाँचवाँ क्रोध तथा विद्याधरी से पाँच वीर विक्रम उत्पन्न हुए। भैरव, क्षेत्रपाल व गण दूत से उत्पन्न हुए और वैदेवी से उत्पन्न होने वाले चारों सदा मनुष्यों के द्वारा पूज्य माने जाते हैं।

उत्पन्ना नागराजेन्द्र्या वासुक्याद्या उरङ्गमाः(विहङ्गाः पन्नगास्तथा)।

वासुकी पन्नगः प्रोक्तो विहङ्गा विनतात्मजाः॥ 18॥

नागराजेन्द्री से वासुकी आदि सर्प और पक्षिगण और नाग उत्पन्न हुए। वासुकी नाग को गरुड़ादि पक्षियों को विनता से उत्पन्न कहा गया है।

नरेन्द्रीभ्यः समुत्पन्ना विख्याता वै नरोत्तमाः।

तदनुक्रमयुक्ती च कथयामि समासतः॥ 19॥

अब नरेन्द्री से उत्पन्न होने वाले विख्यात नरोत्तमों के बारे में समास रूप से अनुक्रमपूर्वक कहता हूँ।

विप्रक्षत्रियवैश्यशूद्राणां गोत्रसंख्या: —

प्रथमो ब्राह्मणो जातः क्षत्रियस्तु द्वितीयकः।
वैश्यो जातस्तृतीयो वै शूद्रश्चैव चतुर्थकः॥ 20॥
अष्टाशीति सहस्राणि विप्रगोत्राणि वै विदुः।
षट्त्रिंशच्च क्षत्रियाणां कुलीनानां तथैव च॥ 21॥
चतुर्विंशति वैश्यानां शूद्राणां नैकधा तथा।

पहले ब्राह्मण, दूसरे क्षत्रिय, तीसरे वैश्य और चौथे शूद्र उत्पन्न हुए। विद्वानों ने अस्सी हजार गोत्र ब्राह्मणों के माने हैं। क्षत्रियों के छत्तीस हजार और वैसे ही कुलीनों के कहे गए हैं। वैश्यों के चौबीस हजार और शूद्रों के तो अनेक प्रकार के गोत्र माने गए हैं।

एते वंशाः समाख्याता यथाकल्पं भवन्ति ते॥ 22॥
कल्पान्ते च विशीर्यन्ते ?(विनश्यन्ति) सर्वे रूपसमुद्भवाः।
समुद्भवन्ति ते सर्वे कल्पादौ च पुनः पुनः॥ 23॥

इस तरह ये इतने अपने-अपने कर्म के अनुसार कल्पित वंश हुए जो विख्यात हैं। ये सभी कल्प के अन्त में नाश को प्राप्त होंगे और सभी नाम रूप मिट जाएँगे। इसी प्रकार ये सब कल्प के आरम्भावसर पर बारम्बार उद्भव को प्राप्त होते रहते हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छा-
यामष्टशक्त्युद्भवाधिकारो नाम षष्ठं सूत्रम्॥ 6॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में अष्ट शक्ति उद्भव अधिकार नामक छठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 6॥

सृष्टिसंसारावतारणं सप्तमं सूत्रम्॥ 7॥

अपराजित उवाच —

मूर्धजास्तृणधान्यानि वृक्षाश्चैवमनेकधाः।
तदुत्पत्तिः कथं नाम(थ) पशुपक्षिशरीरिणाम्॥ 1॥
कृमिकीटपतङ्गाश्च ये च जीवानुरूपकाः।
कथयस्व प्रसादेन संसारे सृष्टिसम्भवाः॥ 2॥

अपराजित ने पूछा— तृण और धान्यों में मुख्य-मुख्य तथा वृक्षों के भी अनेक प्रकार और पशु-पक्षी शरीरधारी जीवों की उत्पत्ति कैसे हुई? हे नाथ! यह कहें।

इसी तरह कृमि, कीट-पतङ्गादि जो ये जीव अनुरूप संसार की सृष्टि में उत्पन्न हुए हैं, उनके बारे में भी आप कृपा करके अवश्य कहें।

विश्वकर्मोवाच —

काश्यपस्य हृदुत्पन्ना मानस्यः पञ्च कन्यकाः।
तदुत्पन्ना च या सृष्टिः कथये तां च साम्प्रतम्॥ 3॥
अश्वी गजी नखी चैव शृङ्गी शुकी तु पञ्चमी।
पृथगेकैकसम्भूतिं कथयामि यथाश्रुतम्॥ 4॥

विश्वकर्मा बोले — कश्यप मुनि के हृदय से पाँच मानसी कन्याएँ उत्पन्न हुईं जिनके द्वारा जो सृष्टि उत्पन्न हुई, उसके बारे में अब मैं तुम्हें कहता हूँ। इनमें अश्वी, गजी, नखी, शृङ्गी तथा शुकी पाँचवीं कन्या है। इसमें से प्रत्येक के पृथक-पृथक जीव जैसे उत्पन्न हुए, उनके विषय में जैसा मैंने सुना, उन्हें यथावत कहता हूँ।

वृक्षा श्चैवाम्बुकी जाता आम्बुकाः पञ्चमूर्धजाः।
अम्बो जम्बूस्तथाऽश्वत्थो वटश्चोदुम्बरस्तथा॥ 5॥

इसी प्रकार आम्बुकी से वृक्षों में पाँच मुख्य-मुख्य अम्बुक उत्पन्न हुए **जो इस प्रकार हैं**— (1.) आम, (3.) जामुन, (3.) अश्वत्थ, (4.) वट और (5.) **उदुम्बर।**

आम्बकात् सरलोजातस्तस्यैव सप्तपुत्रिकाः।
ताली चैव तदुद्भूताः तमालतालवृक्षकाः॥ 6॥
धान्यकी च तृणी चैव व्याख्याताः सप्तपुत्रिकाः।
शाली च व्यन्तरी चैव लता चैवौषधिस्तथा॥ 7॥

आम्बका से सरल उत्पन्न हुआ जिसके सात पुत्रियाँ हुईं। ताली और उससे उत्पन्न हुए तमाल और ताल वृक्ष, धान्यकी, तृणी, शाली, व्यन्तरी, लता और औषधि।

व्यन्तर्याश्च समुद्भूता व्यन्तराश्चैव "मूर्धजाः"?।
लताश्चैव लतोद्भूताः शैलाद्यं भूतले यथा॥ 8॥
औषध्यश्चौषधीजाता लक्षाणि वै समुद्भवाः।
धान्यकी धान्यसम्भूतिः सङ्ख्याताष्टादशात्मिका 18 ॥ 9॥

व्यन्तरी से मुख्य-मुख्य व्यन्तरा वृक्ष उत्पन्न हुए। इसी तरह लता से भी भूतल पर लता से उत्पन्न होने वाले शैलाद्य उत्पन्न हुए। औषधि से उत्पन्न लाखों औषधियाँ पैदा हुईं। धान्यकी से भी अठारह प्रकार की संख्या के धान्य उत्पन्न हुए।

तृण्यास्तृणानिजातानि चतुरशीतिः सङ्ख्यया।
तृणानां दूर्विकादीनां समस्तानां ततो भवः॥ 10॥

तृणी से चौरासी की संख्या के तृण उत्पन्न हुए। उन तृणों में समस्त प्रकार की दुर्विका-दूब उनसे उत्पन्न हुई।

शृङ्ग्याश्चैव प्रवक्ष्यामि मानसीः समपुत्रिकाः।
वृषी महिषी मेषी च ह्यजा मृगी च शम्बरी॥ 11॥
गण्डकी सप्तमी जाता गण्डक्याश्चैकशृङ्गकाः।
शम्बर्याः शम्बरा जाता मृग्या श्चैवं मृगा मताः॥ 12॥
मेष्या मेषाः समुत्पन्नास्तथाजाया अजोद्भवः।
वृष्या वृषाश्च सञ्जाता महिष्या महिषोद्भवः॥ 13॥

शृङ्गी के भी सात मानसी पुत्रियाँ हुई जिनके विषय में अब कहता हूँ। उनमें (1.) वृषी, (2.) महिषी, (3.) मेषी, (4.) अजा, (5.) मृगी, (6.) शम्बरी और (7.) गण्डकी। गण्डकी से उत्पन्न होने वाले एक सींग वाले गेण्डे तथा शम्बरी से शम्बर उत्पन्न हुए और मृगी से मृग उत्पन्न माने गए। मेषी से मेष-भेड़ें उत्पन्न हुई और अजा से बकरी उत्पन्न हुई। वृष्या से वृष-बैल उत्पन्न हुए और महिषी से महिष-भैंसे हुए।

पुत्रिकाश्चैव शुक्यास्तु शतान्यष्टौ$_{108}$ द्विधाश्च$_{2}$ ताः।
विहङ्गाश्च समस्तास्तु ह्यण्डजाः पक्षिणस्तथा॥ 14॥

इसी प्रकार शुकी के एक सौ आठ पुत्रिकाएँ हुईं जो दो प्रकार की हैं। उनसे ही सभी विहङ्ग और अण्डों से उत्पन्न होने वाले पक्षी उत्पन्न हुए।

एकैव च नखीजाता द्वात्रिंशच्च$_{32}$ तदात्मजाः।
ग्रामारण्यव्योमचराः सङ्ख्याताश्च समस्तकाः॥ 15॥

एक मात्र नखी के बत्तीस सन्तान हुई उनमें ग्रामवासी, अरण्यवासी, आकाशचारी आदि की समस्त संख्या आ जाती है।

गजा वराहाश्चैवं च एकान्वयसमुद्भवाः।
कथिता चान्वयोद्भूतिरश्वीनां तु ह्यतः परम्॥ 16॥

गज और वराह आदि दन्ति एक ही वंश से समुद्भूत हुए हैं। आगे मैं अश्वी के एक ही वंश में उत्पन्न होने वाले जीवों के बारे में कहता हूँ।

अश्वः खरश्च पौराश्च गैरा म (क)र्कटकादयः।
अन्ये च श्वापदाः सर्वे ह्यश्व्युत्पत्तिः प्रकीर्तिता॥ 17॥

अश्व, खर, पौर, गैर (गवय), मर्कट आदि अन्य श्वापद सभी अश्व से ही हुई उत्पत्ति में कहे गए हैं।

तिस्त्रः पुत्र्यः समुत्पन्ना मानस्यः कश्यपस्य तु।
पद्मा चाम्भोभवी क्रौञ्चा तिस्त्रश्चैवं प्रकीर्तिताः ॥ 18 ॥

कश्यप से त्रिस पुत्रियों से उत्पन्न होने वाले मानस्य और पानी से पैदा होने वाले पद्म, क्रौञ्च ये त्रिस ही क ्‍ गए हैं।

अम्भोभव्या जलचराः पद्मायाः पद्मसम्भवः।
कौञ्चात्मजाश्च शैवालास्त्रिधा चैवं समुद्भवम् ॥ 19 ॥

अम्भोभव्या— पानी में उत्पन्न होने वाले सभी जलचर और पद्म-कमल तथा कमल से उत्पन्न होने वाले, क्रौञ्च-सारस और तीन प्रकार के शैवाल जो पानी में उत्पन्न होते हैं।

चतुर्वर्णाः प्रकृतयो ह्यान्त्यजा नीचकोद्भवाः।
भौमाः कीटपतङ्गाश्चोष्मजा उरगव्यन्तराः ॥ 20 ॥
भूम्युदकेषु सम्भूता विख्याता बीजतस्तथा।
भूमौ समुद्भवं चैवं सम्योगे वारिणां खलु ॥ 21 ॥

चारों वर्णों की प्रकृति प्रजा व निम्न योनि में जन्म लेने वाले अन्त्यज, भूमि में पैदा होने वाले कीट-पतङ्ग जो गर्मी से उत्पन्न होते हैं तथा उरग-सर्पादि व्यन्तर जीव, भूमि और पानी से उत्पन्न होने वाले विख्यात बीज जो भूमि में पानी के संयोग से सभी उत्पन्न होते हैं।

उदके सर्वबीजानां सम्भूतिः सर्वतः स्मृता।
केचिदाकाश उत्पन्नाः केचित्पातालसम्भवाः ॥ 22 ॥
केचिद्भूम्युद्भवाश्चैव त्रिविधः$_3$ सृष्टिसम्भवः।
वर्षाकाले समुत्पत्तिर्हेमन्ते तु प्रवर्तनम् ॥ 23 ॥
प्रलयो ग्रीष्मसम्प्राप्तौ अजीर्णे ? पुनराव्रजेत्।
चतुरशीति$_{84}$ लक्षाणि जीवयोनिरनेकधा ॥ 24 ॥

जल से ही समस्त बीजों की उपज-निपज होती है, ऐसा सभी को ज्ञान है। कितनी ही आकाश में उत्पन्न होने वाली तथा कितनी ही पाताल में उत्पन्न होने वाली, कितनी ही भूमि में उत्पन्न होने वाली ऐसी तीन प्रकार की सृष्टि सम्भव होती है जो वर्षाकाल में उत्पन्न होकर हेमन्त ऋतु में प्रवर्तित होती है जबकि ग्रीष्मकाल के आने पर सूख जाती है परन्तु नष्टभूत नहीं होती और पुनः उत्पन्न हो सकती है।

इस प्रकार चौरासी लाख योनियाँ[1] हैं जो नाना प्रकार की होती है।

इति सूत्रसन्तागुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां-
सृष्टिसंसारावतारणधिकारो नाम सप्तमं सूत्रम्॥ 7॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में सृष्टि
संसार अवतारण अधिकार नामक सातवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 7॥

सप्तपातालराज्योद्भवो नामाष्टमं सूत्रम्॥ 8॥

अपराजित उवाच —

के च स्वर्गे कृता देवा के च पातालसम्भवाः।
मर्त्यलोके च भूतानि कथयस्व परेश्वर॥ 1॥

अपराजित बोले — स्वर्ग के कौन-कौन देवता है और पाताल में होने वाले देव कौन-कौन हैं, इसी प्रकार हे परमेश्वर! आप मुझे मर्त्यलोक में होने वाले प्राणियों के बारे में भी उपदेश कीजिए।

विश्वकर्मोवाच —

तलो वितलस्सुतलो नितलश्च तलातलः।
रसातलश्च पाताल उरगेशाश्च सप्त च॥ 2॥
उरगोद्भवपाताले सप्तपातालविक्रमम्।
पृथगेवं समुद्दिष्टा ? नवनागकुलानि च॥ 3॥

विश्वकर्मा बोले — तल, वितल, सुतल, नितल, तलातल, रसातल व पाताल- ये सात सर्पराजाओं के, उरगेशों के लोक हैं। इन उरगों-सर्पों के पातालों में सातों पाताल बड़े ऐश्वर्यवाले है। इनसे अलग नौ नागकुलों को बताया गया है।

नवकुलनागराजनामावली —

पद्मः कर्कोटकश्चैव पुण्डरीकोऽथ तक्षकः।

---

1. गरुडपुराण में आया है— चतुरशीतिलक्षाणि चतुर्भेदाश्च जन्तवः। अण्डजाः स्वेदजाश्चैव उद्भिजाश्च जरायुजाः॥ एकविंशति लक्षाणि ह्यण्डजाः परिकीर्तिताः। स्वेदजाश्च तथैवोक्ता उद्धभिजास्तत् प्रमाणतः॥ जरायुजाश्च तावन्तो मनुष्याद्याश्च जन्तवः। सर्वेषामेव जन्तूनां मनुषत्वं सुदुर्लभम्। (प्रेतकल्पोक्त धर्मप्रकटन नामक द्वितीय अध्याय)

बृहद्विष्णुपुराणे— जलजा नवलक्षाणि स्थावरा लक्षविंशतिः। कृमयो रुद्रसङ्ख्याकाः पक्षिणां दशलक्षकम्॥ त्रिंशल्लक्षाणि पशवश्चतुर्लक्षाणि मानुषां। सर्वयोनिं परित्यज्य ब्रह्मयोनिं ततोऽभ्यगात्॥ (शब्दकल्पद्रुम चतुर्थ

अनन्तः शङ्खचूडश्च वासुकिः सप्तमो मतः ॥ 4 ॥
सप्तपाताललोकेशो महावीर्या मदोत्कटाः।
रौद्राश्च विद्रुताः सर्वे ह्यमात्या वीरविक्रमाः ॥ 5 ॥

ये नौकुली नाग हैं- (1.) पद्म, (2.) कर्कोटक, (3.) पुण्डरीक, (4.) तक्षक, (5.) अनन्त, (6.) शङ्खचूड़, (7.) वासुकी। ये सभी सप्त पातालों के बड़े बलवान, मदोन्मत अधिपति, लोकेश हैं। ये बड़े भयङ्कर रौद्ररूप व शीघ्रगामी तथा सभी आमात्य वीर और पराक्रमी होते हैं।

तलेषु पद्मको राजा वितले च कर्कोटकः।
सुतले पुण्डरीकाक्षो नितले चैव तक्षकः ॥ 6 ॥
तलातले त्वनन्तश्च शङ्खचूडो रसातल।
वासुकिर्नागराजेन्द्रः पाताले सर्वतोऽधिपः ॥ 7 ॥

इनमें से तल नामक पाताल के राजा पद्मक हैं, वितल के कर्कोटक, सुतल के पुण्डरीकाक्ष और नितल के राजा तक्षक है। तलातल के राजा अनन्त, रसातल के शङ्खचूड़ और इन सब पर वासुकी नागराजेन्द्र समस्त पातालों के महाराजा है।

कुलानि नव$_9$ प्रत्येकं त्रिषष्टि$_{63}$ कुलपन्नगाः।
सप्त$_7$ पाताललोकेशोः संस्थिताः क्रमयोगतः ॥ 8 ॥

इन सातों में प्रत्येक के नौ-नौ कुल है और इस प्रकार ये सभी सात गुणा नौ मिलाकर कुल तिरसठ प्रकार के नाग उक्त सातों पातालों के लोकेश के रूप में क्रमशः संस्थित हैं।

पद्मेशराज्यवासिनामाह —

यत्पद्मेशस्य वै राज्यमाद्यपातालसञ्ज्ञितम्।
तत्रामर्त्यनिवासाश्च चन्द्रकान्तिसमा भुवः ॥ 9 ॥
दिव्यरूपधराः सर्वे दिव्याभरणभूषिताः।
स्वेच्छारूपं स्त्रीनराणां स्वेच्छागम्यास्तदात्मजाः ॥ 10 ॥

जो पद्मेश नाग का राज्य है, उसे आदिपाताल नाम से कहा गया है। वहाँ के रहने वाले मर्त्य लोग चन्द्रकान्ति वाले अर्थात् गौरवर्ण होते हैं। वे सभी दिव्य कान्ति वाले रूपयुक्त और दिव्य वस्त्राभरणों को धारण किए सुशोभित होते हैं। इन सब की यह विशेषता भी है कि ये सब नर-नारी अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले (इच्छाधारी) होते हैं और उनकी सन्तानें भी मनैच्छित ढंग से, स्वच्छन्द रूप से कहीं भी आ-जा सकती हैं अर्थात निरङ्कुश हैं।

रक्तोष्ठी कम्बुग्रीवा च कर्णपूरायतेक्षणा।
वर्णश्यामा क्षाममध्या दशनैर्मौक्तिकोपमा॥ 11॥
नीलोत्पलदलाभासा करवीरदलाकृतिः।
सारद्रुमनितम्बा च रम्भाजङ्घा तथैव च॥ 12॥

इनकी सन्तानों की विहारचर्या देखने योग्य है। ये ओठों को रक्तवर्ण से रङ्गे रखते हैं। इनकी गर्दन शङ्ख के समान सुडौल भरी हुई होती है और इनके विशाल नेत्रों की लम्बाई कानों तक पहुँचती भौंहों से युक्त होती है। इनका वर्ण साँवला होता है और इनकी कमर का मध्य प्रदेश बहुत क्षाम अर्थात् पतला होता है। इनकी दन्तपङ्क्तियाँ मोती की भाँति चमकदार होती है। इनका शरीर नीलकमल की पँखड़ियों जैसा सौन्दर्याभास देता है। इनका मांसल शरीर करवीर की पँखड़ियों जैसी भरी हुई आकृति वाला होता है। इनमें नवाङ्गना सुन्दरियों के नितम्ब भरे हुए पुष्ट, सुडौल सारद्रुम की भाँति मोटाई लिए हुए गोल होते हैं और इन सुन्दरियों की जङ्घाएँ बड़ी सुडौल भरी हुई केले के तने जैसी पुष्ट होती है।

एवं स्त्रियः पुमांसश्च स्वेच्छारूपधराः किल।
पद्मेशस्य महाराज्यं पूर्वं पातालवासिनाम्॥ 13॥

इस प्रकार इन नाग लोकों के समस्त स्त्री-पुरुष स्वेच्छा रूप धारण किए हुए, मनमाने ढंग से पद्मेश के राज्य के पहले के पातालवासी होते हैं।

कर्कोटकराज्यवासिनामाह —

दिव्यतेजोमयाश्चैवं शुद्धस्फटिककान्तयः।
तथा वायतनेत्राश्च प्रवालसदृशाधराः॥ 14॥
केतकीदलसारूपप्या करदग्रेन शोन्यता ?।
श्वेताः स्त्रियश्च पुरुषाः ख्याता वितलवासिनः॥ 15॥
ताम्बूलादिरसाहाराः शत्रुरूपा महाबलाः।
एवं कार्कोटकं राज्यं पाताले तु द्वितीयके॥ 16॥

दिव्य तेजयुक्त आभा वाले और शुद्ध स्फटिक के समान उज्ज्वल और पारदर्शी स्वभाव के और विशाल नेत्र व मूंगा जैसे लाल-लाल रङ्गों से रङ्गे ओष्ठ, अधर वाले केतकी के फूलों की पँखड़ियों के समान कोमल हाथों की शोण्यता युक्त सुन्दरता लिए हुए ये विख्यात वितलवासी नर-नारीगण गौर वर्ण के होते हैं। इस तरह के ये द्वितीय पातालवासी कर्कोटक के राज्य वाले ताम्बूलादि रसों के आहारी शत्रुओं के लिए महा बलवान् सिद्ध होने वाले लोग हैं।

पुण्डरीकराज्यनिवासिनामाह —

कुङ्कुमाङ्कितनागास्तु (सर्व)दाश्वासकोद्भवा।
पद्मपुष्परसाहाराः स्वेच्छारूपा महाबलाः ॥ 17 ॥
रक्तोष्ठनखपादाश्च तथा च रक्तपाणयः।
राज्यं च पुण्डरीकस्य पाताले तु तृतीयके ॥ 18 ॥

कुङ्कुम के तिलक लगाए, सर्वदा गम्भीर श्वास लेते हुए, कमल के पुष्पों का रसपान करने वाले, भ्रमरों की भाँति मनमौजी रूप बनाए हुए नवयुवतियों के कमलाननों के शौकिन, छैल-छबीले और महाबलवान, सुडौल लालिमायुक्त नख-ओष्ठ-पदतलों और कर-कमलों वाले लोग पुण्डरीक के राज्य, तीसरे पाताल के निवासी है।

तक्षकस्य तथा राज्यं कथयामि समासतः।
रक्ताक्षाश्च महोत्साहा दिव्यरूपास्तथोत्तमाः ॥ 19 ॥
रक्ताक्षं च महद्भूतं रक्तोत्पवलमिवांभसि।
सस्थाव (र) तीररेखामण्डितं स्त्रीणां तनुमावृते ? ॥ 20 ॥
रक्तोत्पलदलाभासा मध्यक्षामाः स्तनोन्नताः।
पूर्णचन्द्राननाश्चैवं स्त्रियस्सन्ति सुशोभनाः ॥ 21 ॥
एवं तक्षकराज्यं वै पाताले तु चतुर्थके।

अब मैं तक्षक के राज्य के निवासियों के विषय में संक्षेप से कहता हूँ। वहाँ के लोग मदमाते लाल रङ्गों वाली आँखों व दिव्य चमक वाले सुन्दर, उत्तम रूपवान और परम उत्साही होते हैं। जल सरोवर में जिस प्रकार से लाल कमल शोभायमान होते हैं, उसी प्रकार ये बड़ी-बड़ी अद्भुत लाल आँखों वाले छैले कामिनियों के सङ्ग रतिक्रीड़ा में आई अपने तन पर पड़ी खरोंचों से मण्डित छैल-छबीली नवयुवतियों के तनों से घिरे रहते हैं। जो लाल कमलदलों की आभा वाले सौन्दर्ययुक्त क्षीणकटि और पीन पयोधरों युक्त पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसे खिले-खिले सुशोभित मुख वाली रमणियाँ हैं और तक्षक के राज्य चतुर्थ पाताल की निवासी हैं।

अथानन्तराज्यनिवासिनामाह —

पञ्चमेऽनन्तको राजा तस्य वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ 22 ॥
नीलोत्पलदलाभासा अतसीपुष्पसन्निभाः।
मणिरत्नसुशोभाढ्या दिव्याभरणमण्डिताः ॥ 23 ॥

दिव्यरसाहारमाला दिव्यदेहा महोत्कटाः।
संसारामोघमालिन्यस्तद्राज्ये च स्त्रियस्तथा॥ 24॥
मोहिन्यो दिव्यदेहैस्तु मोहयन्ति जगद्गुरुम्।
एवं गुणैः समुद्भूता आनन्ते न तलातले॥ 25॥

अब मैं पाँचवें अनन्त नागराज के बारे में कहता हूँ। नीलकमल दलों के समान कान्तिवाले और अतसी पुष्पों के समान आभा वाले, मणिरत्नों से भरपूर शोभा वाले, दिव्य आभूषणों से सजे-धजे, दिव्यरसों का पान करने वाले दिव्य पुष्पहारों को धारण करने वाले, दिव्य देह युक्त ये महाबलवान उत्कट योद्धा होते हैं और वहाँ की स्त्रियाँ भी सांसारिक व्यर्थ की मलीनता से मुक्त भाव से अपनी दिव्य देह से और मोहिनी रूप से जगत के बड़े-बड़े गुणवानों को मोहित करने वाली एवं महान गुणवाली ये सन्नारियाँ अनन्त नाग के राज्य तलातल नामक पाताल की उत्तम उपज हैं।

रसातलनिवासिनामाह —

रसातले तु पाताले रसानां दिव्यदेहकम्।
यस्तच्चारसैर्दिव्यैर्शोभि वे दिस्य देहिनः ?॥ 26॥
दिव्यपरत्नोपमाः कान्ता दिव्यदेहाः सुरूपकाः।
नागकन्या महारूपाश्चूडामणिमहोत्सवाः॥ 27॥
श्वेतरक्तपीतकृष्णविचित्ररूपशोभिताः।
राज्ये वै शङ्खचूडस्य नागराजेन्द्रकन्यकाः॥ 28॥

रसातल नामक पाताल निवासी समस्त पृथ्वी (रसा) पर दिव्य गुणों (रसों) से युक्त व दिव्य शोभायुक्त देह वाले होते हैं। इनके स्वरूप की कान्ति दिव्य रत्नों के समान उपमा वाली, सुन्दर कान्ताओं, महा रूपवती महोत्सवों की चूड़ामणि रूप, सुन्दर नाग कन्याओं की गौरवर्णी, रक्तवर्णी, पीतवर्णी, कृष्णवर्णी विचित्र रूपवती इन सन्नारियों से शोभित नागराजेन्द्र शङ्खचूड़ के राज्य की ये सब नाग कन्याएँ हैं।

इत्यमनन्तर पातालनिवासिनामाह —

सप्तमं कथयिष्यामि पातालं च यथाक्रमम्।
पातालेु च सर्वेषु श्रेष्ठं नागसमाकुलम्॥ 29॥
समारूपैराकीर्णे श्वेतरक्तशरीरिभिः।
पद्मरागनिभाः सन्ति सर्वरत्नैश्च शोभिताः॥ 30॥

अब मैं सातवें पाताल लोक का यथाक्रम वर्णन करता हूँ जो समस्त पातालों में सर्वश्रेष्ठ नागों का समाकुल सङ्गठन है। यहाँ के नाग सभी समान रूपों से भरपूर है।

इनके स्वरूप गौरवर्ण, रक्तवर्ण, पद्मराग के समान वर्ण युक्त होते हैं और सभी प्रकार के रत्नों से ये शोभायमान होते हैं।

मोहमुद्रापमा दृष्टिः संसारफलदोपमाः।
तथा चूडोन्नताः केशाश्चित्ररत्नसमुज्ज्वलाः॥ 31॥
चन्द्रसूर्योपमैश्चैव कुण्डलैस्समलङ्कृताः।
नैकरत्नमयैश्चैव हारैः पापप्रणाशनैः॥ 32॥

इनकी मोहक दृष्टि से संसार में जन्म लेने का फल सार्थक लगने लगता है। इनके सिर के केश विचित्र रत्नों से जड़े हुए चमकदार ऊँचे जूड़ों में गूँथे हुए तथा चन्द्र, सूर्य की उपमा की शोभायुक्त कर्ण कुण्डलों से अलङ्कृत और अनेक रत्नों से निर्मित हारों को धारण करने से ये समस्त पापों, बुराइयों, कमियों को समाप्त कर देने वाली हैं।

मेखलाकटिसूत्राद्यैस्सर्वरत्नोपमैः सदा।
एवमाभरणैर्युक्ता दिव्यकान्त्या सुतेजसा॥ 33॥
स्वर्गादिदेवताभक्ताः पन्नगास्सुमहोत्सवाः।
देवाग्निगुरुभक्ताश्च संस्थिताश्चैव निश्चलाः॥ 34॥

ये सब रत्नों से भरपूर मेखला व कटिसूत्रादि से आभूषित सदा ऐसे उत्तम आभूषणों की दिव्य कान्ति और सुन्दर चमक-दमक युक्त रहकर स्वर्गादि देवताओं की भक्ति में देव, अग्नि और गुरु की भक्ति में, नागों के महोत्सवों में भाग लेती हुई नित्य निश्चल दृढ़ता के साथ संस्थित रहती हैं।

सहस्त्रफणसङ्कीर्णाः सहस्त्ररदशोभिताः।
स्वेच्छारूपधरा दिव्याः स्वर्गपातालगामिनः॥ 35॥
एवं वासुकिराज्यं च सप्तपातालकक्रमः।
वासुकिर्नागराजेन्द्र ईश्वरानन्यभक्तिमान्॥ 36॥

ये सभी हजारों फणों से युक्त, हजारों दांतों से शोभित, मन चाहा रूप धरने में समर्थ, दिव्य सन्नारियाँ हैं और स्वर्ग से लेकर पाताल तक आवागमन करने वाली हैं। इस तरह ईश्वर की अनन्य भक्ति में लीन वासुकी नाग राजेन्द्र की वासुकी राज्य की प्रजा सप्त पातालों के क्रम में वर्णित हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां सप्तपातालराज्योद्भवाधिकारो नामाष्टमं सूत्रम्॥ 8॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में सप्त पाताल राज्य उद्भव अधिकार नामक आठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 8॥

भूराज्यनिवेशनो नाम नवमं सूत्रम् ॥ ९ ॥

अपराजित उवाच —

के च देवाः स्थिता लोके सप्तद्वीपेषु के स्थिताः।
सिन्धूपकण्ठनिर्वासाः के च शैलाश्रमस्थिताः॥ 1 ॥
कानि क्षेत्राणि द्वीपेषु कास्तथा वासभूमयः।
राजानः के च तत्रोक्ताः कथयस्व जगत्प्रभो॥ 2 ॥

अपराजित बोले — सप्त द्वीपों तथा लोकों में कौन कौन से देवता निवास करते हैं तथा समुद्र के किनारे रहने वाले और पर्वतों के आश्रमों में रहने वाले कौन हैं, किन-किन क्षेत्रों और द्वीपों में रहने वालों की वासभूमि कैसी है, उनके राजा कौन हैं, हे जगत्प्रभो! आप यह सब कहिए।

विश्वकर्मोवाच —

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि द्वीपानां चैव लक्षणम्।
प्रमाणं च तथोक्तानां कथये तव साम्प्रतम्॥ 3 ॥
द्वीपांश्च कथयिष्यामि सप्तद्वीपा तु मेदिनी।
पृथक् पृथक् महाराज्यं कथयामि समाहितः॥ 4 ॥

विश्वकर्मा बोले — हे वत्स सुनो! मैं तुम्हें द्वीपों के लक्षण तथा उनके कहे गए प्रमाण, लम्बाई-चौड़ाई, विस्तारादि अब कहता हूँ। इस सप्तद्वीपा मेदिनी के पृथक्-पृथक् द्वीपों, महाराज्यों के विषय में विस्तार से कहता हूँ।

पृथुश्च कुशकोञ्चौ च शाकः शाल्मलिकस्तथा।
गोमेदः पुष्कराख्यश्च सप्तद्वीपा नृपैः कृता॥ 5 ॥
महाराजाभिधानैश्च सप्तद्वीपाभिधानकम्।

1. पृथु, 2. कुश, 3. क्रौञ्च, 4. शाक, 5. शाल्मलि, 6. गोमेद और 7. पुष्कर ये सात द्वीप राजाओं ने किए हैं। इन सप्तद्वीपों के अधिनायक महाराजा के अभिधान (उपाधि, पदवी) से सुशोभित होते हैं।

पुष्कराख्यो महाराजः सप्तमद्वीपदीपकः॥ 6 ॥
गोमेदस्य गोमेदः शाल्मलेः शाल्मलो नृपः।
शाकश्च शाकद्वीपे च कौञ्चः कौञ्चाधिपस्तथा॥ 7 ॥
कुशश्च कुशद्वीपे च महोत्कटा महाबलाः।
महारूपाश्च भूपालाः संस्थिता मेरुदक्षिणे॥ 8 ॥

सातवें द्वीप पुष्कर के कीर्तिमान महाराज पुष्कर (अधिपति) नाम से विख्यात है। इसी तरह से गोमेद द्वीप के महाराज गोमेद और शाल्मलि द्वीप के महाराज शाल्मलि नृप कहे गए हैं। शाकद्वीप के महाराज शाक और क्रौञ्च द्वीप के महाराजा क्रौञ्च के नाम से विख्यात है। कुश द्वीप के महाराज परमवीर महाबली कुश नरेश है। इस तरह मेरु के दक्षिणी भाग में महान् रूपों वाले भूपालगण महाराजा विद्यमान हैं।

अथ जम्बूद्वीपवर्णनमाह —

पृथुः पृथुमहीश्वरः जम्बूद्वीपाधिपः पृथुः।
मेरोः प्रदक्षिणे कुक्षौ जम्ब्वाख्यश्च महातरुः।
यस्य नाम्ना तु विख्यातो जम्बूद्वीपेतिसञ्ज्ञितम्॥ 9॥

जम्बू द्वीप के अधिपति महाराज पृथु है और ये पृथु महाराज इस समस्त पृथ्वी के महीश्वर, स्वामी है। मेरु पर्वत के प्रदक्षिण कुक्ष में जम्बू नाम का एक वृक्ष है, इसी के नाम से इस द्वीप का नाम जम्बू विख्यात हुआ है।

एकच्छत्रं पृथोराज्यं जम्बूद्वीपे बभूव तत्।
क्षारार्णवस्य मध्ये तु पृथुत्वे लक्षयोजनम्॥ 10॥
पृथोश्च नवपुत्राश्च जम्बूद्वीपाधिपा मताः।
तेषामेवाभिधानैश्च क्षेत्राणां नवधोच्यते॥ 11॥

(ऐसा सुना जाता है कि) इस जम्बूद्वीप के एकछत्र चक्रवर्ती राजा पृथु हुए जिनका साम्राज्य लवण समुद्रों के मध्य विस्तार से फैला हुआ लाखों योजन का यह जम्बू द्वीप है। इस जम्बू द्वीप के अधिपति महाराजा पृथु के नौ पुत्र बताए गए हैं। इनके ही नाम से नौ प्रकार के क्षेत्रों का नामकरण हुआ।

नवक्षेत्रनामानि —

इलावृतो रम्यकश्च केतुमाल्यो हरिस्तथा।
भारतः कुरुभद्राश्वौ किम्पुरुषहिरण्यकौ॥ 12॥
इत्युक्ताभिधानाः पुत्रा विभक्ताः पृथुभूपतेः।
तेषामेवाभिधानैश्च नवखण्डाः, प्रकीर्तिताः॥ 13॥

(1.) इलावृत्त, (2.) रम्यक, (3.) केतुमाल, (4.) हरि, (5.) भारत, (6.) कुरु, (7.) भद्राश्व, (8.) किम्पुरुष और (9.) हिरण्यक हैं। इन-इन अभिधान वाले पुत्रों में पृथु भूपति ने अपने राज्य को विभाजित कर दिया। अतः इन्हीं के नामाभिधान से उक्त नौ खण्ड विख्यात हुए।

मेर्वावृत्त्या प्रदक्षिणै रम्यको मुक्तिभूतल।
मेरोश्च पुरतो भागे इलाख्यः केतुमालिका॥ 14॥
दक्षे हरिर्भारतश्च किम्पुरुषश्च पुष्करे।
अब्ध्यन्तः कुरुभद्राश्वौ मेरोश्चैवोत्तरे स्थिताः॥ 15॥

मेरु के घेरे में दक्षिण की ओर भूतल पर मुक्ति का रम्यक धाम है। मेरु के अग्रभाग (पूर्व) में इला नामक केतुमालिका है। मेरु के दक्षिण में हरिभारत, किम्पुरुष और पुष्कर हैं। मेरु के उत्तर भाग में स्थित समुद्र के अन्त तक फैले हुए कुरु और भद्राश्व प्रदेश हैं।

तत्रैव गन्धर्वविद्याधराक्षनिवासिनामाह —

मेरुवृत्ताङ्के दक्षिणे रम्यकस्योर्ध्वमालिका।
गन्धर्वानगरी रम्या नाम्ना गन्धर्वमालिनी॥ 16॥
विद्याधरास्तदूर्ध्वे तु यक्षाश्चैवं तदूर्ध्वतः।
तदूर्ध्व वैदेवाः ख्याता देवाश्चैवं तदूर्ध्वतः॥ 17॥

इसी प्रकार मेरु के घेरे में दक्षिणी भाग में रम्यक पर्वतों की ऊँची-ऊँची पर्वत मालिकाएँ हैं जहाँ गन्धर्वों की नगरी बड़ी सुन्दर गन्धर्वमालिनी नाम से विख्यात है। मेरु से ऊपर की ओर विद्याधरों का वास है और इनसे भी ऊपर की ओर यक्षों का आवास है। इनके ऊपर की ओर वैदेवों का वास तथा फिर आगे देवों का आवास विख्यात है।

तथोर्ध्व सप्तलोकाश्च संस्थिताः क्रमयोगतः।
तदूर्ध्व मेरुराख्यात ऊर्ध्व शम्भूद्भवाः किल॥ 18॥
विचित्रशिखरे रम्ये रत्नधातूपशोभिते।
चन्द्रसूर्योपमः कान्तो नीलार्कसदृशस्तथा॥ 19॥

इनके ऊपर की ओर मेरु के विख्यात क्षेत्र से ऊपर की ओर क्रमयोग से सात लोक स्थित है जो सभी ऊपर की ओर भगवान् शम्भू शिव से उद्भूत हुए हैं। इनके तरह-तरह के सुन्दर पर्वत शिखर हैं जिनमें नाना प्रकार के रत्न और धातु पाए जाते हैं। इन पर्वतों की कान्ति चन्द्र और सूर्य के समान उपमा वाली और नीले सूर्य (या नीले मन्दार पुष्प) के समान दिखाई देती है।

वज्रवैडूर्यगोमेदैः पुष्परागेन्द्रनीलकैः।
द्वादशादित्यतेजोभिः सूर्यकोटिसमप्रभः॥ 20॥

तत्र शम्भुमहादेवो ह्यव्यक्तं परमं पदम्।
प्राचीना च भवेन्मूर्तिः सूर्यतेजरसमुद्भवा॥ 21॥

यहाँ पर सभी प्रकार के रत्न जैसे हीरा, वैदूर्य, गोमेद, पुष्पराग, इन्द्रनील आदि सब द्वादश आदित्यों के तेज से युक्त और करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश्यमान हैं। यहीं पर महादेव शम्भू अव्यक्त रूप से परमपद में अवस्थित है और यह मूर्ति अति प्राचीन है जो सूर्य के तेज से समुद्भूत हुई है।

ब्रह्मविष्णु ततो जातौ संसारसृष्टिकोद्भवौ।
ब्रह्मतेजस्समुत्पन्नः काश्यपो मुनिपुङ्गवः॥ 22॥
सृष्टिस्तदुद्भवा त्वेवं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
चतुर्विधो भूतग्रामः पृथक् पृथक् शरीरिणाम्॥ 23॥

इन्हीं शम्भू से ब्रह्मा और विष्णु का जन्म हुआ है जो संसार की सृष्टि के उद्भव के कारक हैं। ब्रह्मा के तेज से मुनि पुङ्गव काश्यप उत्पन्न हुए। उन्हीं से यह सृष्टि उद्भूत हुई है जिसमें स्थावर-जङ्गम जगत बना और चार प्रकार के प्राणी समूह अलग-अलग देहधारण किए उत्पन्न हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां भूराज्यनिवेशनाधिकारो नाम नवमं सूत्रम्॥ 9॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में भू राज्य निवेशन अधिकार नामक नवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 9॥

संसारभूतग्रामोत्पत्तिपञ्चतत्त्वनिर्णयो नाम दशमं सूत्रम्॥ 10॥

अपराजित उवाच —

केनोत्पत्तिः समस्तानां भूतानां च तथालयः।
केनासौ कलते कालो लयं यान्ति च सर्वशः॥ 1॥
केनासौत्र नाति कालन्यानास्यासः ? वद प्रभो।
ज्ञानं तनु युक्तोद्रव्यं पश्यन्ते च परस्परं विदुः ?॥ 2॥

अपराजित बोले— संसार में समस्त भूत प्राणियों की और उनके आवास की उत्पत्ति किसके द्वारा हुई तथा किसके द्वारा यह काल-कलित हो रहा है? किसके द्वारा ये सब पूरी तरह से विलीन होकर मिट जाते हैं? यहाँ कौन ऐसे हैं जो काल से भी प्रभावित नहीं होते? ऐसे ज्ञान स्वरूप तन युक्त द्रव्य को जो परम विद्वान परस्पर देखते हैं, उनके विषय में हे प्रभु! आप कुछ कहिए।

विश्वकर्मोवाच —

पञ्चात्मकं पञ्चसु वर्तमानं षडाश्रयं षड्गुणयोगयुक्तम्।
तं सप्तधातुविमलं तं योनिं चतुर्विधं हारमयं शरीरकम्॥ 3॥

विश्वकर्मा बोले — पाँच से पञ्चात्मक वर्तमान में, छह से छह गुणों का योग बनता है। उसी सप्तधातु रूपी विमल को तथा योनि को और चार प्रकार के मनोमय (यष्टि) शरीरों को समझो।

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
पञ्चात्मकमिति प्रोक्तं कथयामि गुणोद्भवान्॥ 4॥

(इस शरीर की रचना में) (1.) पृथ्वी, (2.) जल, (3.) तेज, (4.) वायु और (5.) आकाश— इनको पञ्चात्मक कहा गया है। अब इनसे उत्पन्न गुणों को कहता हूँ।

कठिना या सा तु पृथ्वी द्रवाश्चापस्तदुद्भवाः।
दीप्तं चत्तद्भवेत्तेजः चलं तत् पवनात्मकम्॥ 5॥
यच्छिद्रं तु तदाकाशं तेभ्यः सर्वसमुद्भवः।
इत्थं पञ्चात्मकं भूतं कथितं हि यथाक्रमम्॥ 6॥

जो कठिन या ठोस है, उसे पृथ्वी कहा गया है, जितने भी द्रव्य पदार्थ है, वे जल से उत्पन्न हुए हैं, जितने भी दीप्त स्वरूप पदार्थ हैं वे तेज या अग्नि से उत्पन्न हैं, जो हलचल या चलिष्णुता है वह पवनात्मक है जबकि जो छिद्र जैसी पोल है, वही आकाश है तथा उस आकाश से ही सब कुछ उत्पन्न या प्रकट हुआ है। इस प्रकार इसी को पञ्चात्मक भूतसृष्टि या पञ्चभूतात्मक सृष्टि कहा गया है, जिसे मैंने यथाक्रम कहा है।

पृथिवी धारणं कृत्वा द्रवीकरणं तथैव च।
तदुद्भवं तेजः पुञ्जस्तेजत्वेषु समुद्भवे ?॥
आकाशस्याधिकारश्च पञ्चात्मकःस्यादनुक्रमात् ?।

अब पृथ्वी द्वारा धारण किए गए गुण, जल से द्रवीकरण वाले गुण तेज से प्रकट होने वाले गुण, वायु से होने वाले गुण और आकाश के अधिकार में रहने वाले गुण के पञ्चात्मक को अपने अनुक्रम से कहता हूँ।

स्पर्शो रसश्च रूपं च गन्धः शब्दश्च पञ्चमः॥ 7॥
जिह्वयां रस आयाति स्वादस्यैव च कारणम्।
रूप च चक्षुषश्चैव गन्धो घ्राणात् तथा मतः॥ 8॥

शब्दो ब्रह्मादि ? सम्भूतः पञ्चतत्त्वानि वै विदुः।
गतिर्ग्राहस्स्तुतिर्व्याप्तिर्विसर्गश्चैव पञ्चकम्॥ 9॥

पृथ्वी से (1.) स्पर्श, जल से (2.) रस, तेज से (3.) रूप, वायु से (4.) गन्ध और आकाश से (5.) शब्द गुण उत्पन्न जानना चाहिए। जिह्वा से जो रस आता है, उसका कारण स्वाद है। आँखों से रूप का और नासिका से गन्ध का भान होता है, ऐसा माना जाता है। जिसे शब्द कहा है, वह ब्रह्म के आदि में आकाश से सम्भूत हुआ, इन्हीं को विद्वानों से पञ्चतत्त्व कहा है। (1.) गति, (2.) ग्रहण करना, (3.) स्तुति, (4.) व्याप्ति और (5.) विसर्ग— ये पाँच शारीरिक क्रियाएँ हैं।

पादैः स्याद् गतिसंयोगः हस्तैस्तु ग्रहणं भवेत्।
उपस्थानैर्व्यापयन्ति विसर्जन्ति गुदेन च॥ 10॥
श्रुतिः श्रोत्रेन्द्रियेणैव जिह्वया च तथा रसः।
एवं तत्त्वोद्भवा सृष्टिस्तन्मात्रादिकमुच्यते॥ 11॥

पाँव से गति का संयोग होता है और हाथों से ग्रहण करने का कार्य होता है। उपस्थान से व्याप्ति का कार्य एवं गुदा से विसर्जन का कार्य होता है। श्रोतेन्द्रिय, कानों से सुनने की क्रिया, जिह्वा से रस का बोध होता है। इस प्रकार से उन-उन इन्द्रियों से होने वाले ज्ञान की (तत्त्वोद्भव) सृष्टि को तन्मात्रादिक कहा जाता है।

आत्मा तन्मात्राण स ? मनः सङ्कल्पलक्षणम्।
व्यवसायो बुद्धिभावः प्रज्ञाहङ्कारकौ तथा॥ 12॥
तत्तथा तु तन्मात्रं बुद्धीन्द्रियक्रमस्फुटम्।
व्यवसायो बुद्धियोगः प्रज्ञा विकाशकोद्भवा॥ 13॥
अहङ्कारश्च विकृतो रागद्वेषाकुलो ध्रुवम्।
पञ्चपित्तोद्भवाश्चैवं आतपकुलसम्भवाः॥ 14॥

आत्मा की तन्मात्रा का ज्ञान सः (वह परमतत्त्व है?), मन की तन्मात्रा सङ्कल्प को तथा बुद्धि की तन्मात्रा व्यवसाय भाव, काम करने का तरीका है, बुद्धि की तन्मात्रा अहङ्कार का भाव है। इन-इन तन्मात्राओं से ही बुद्धि आदि इन्द्रियों का क्रम स्पष्ट हो पाता है। व्यवसाय से बुद्धियोग तथा विकाश से उत्पन्न होता है प्रज्ञा का परिचय। जब अहङ्कार में विकृति होती है, तब राग-द्वेष से दुखी होना तो निश्चित है। आतप या गर्मी के समूह से उत्पन्न होने वाले पाँच पित्त से होने वाले विकार हैं।

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
शब्दः स्पर्शो रसो रूपं गन्धश्च पञ्चकं त्विदम्॥ 15॥

गतिर्ग्राहः श्रुतिर्व्याप्तिर्विसर्गो दशपञ्चकम्$_{15}$।

(1.) पृथ्वी, (2.) जल, (3.) तेज (4.) वायु और (5.) आकाश— ये पाँच, (1.) शब्द, (2.) स्पर्श, (3.) रस, (4.) रूप (5.) गन्ध— ये पाँच और (1.) गति, (2.) ग्राह्यता, (3.) श्रुति, (4.) व्याप्ति, (5.) विसर्ग— ये पाँच मिलकर कुल पन्द्रह होते हैं।

अहङ्कारो रागद्वेषौ क्रोधोऽस्मिता प्रकृतयः ॥ 16 ॥
मनः प्रज्ञा बुद्धिचित्तभावाश्च पञ्चविंशतिः$_{25}$।
कामो मदो लोभमोहौ भयं तत्त्वानि त्रिंशतिः$_{30}$ ॥ 17 ॥

इनमें (1.) अहङ्कार, (2.) राग, (3.) द्वेष, (4.) अस्मिता, (5.) क्रोध, (6.) प्रकृतियाँ, (7.) मन, (8.) प्रज्ञा, (9.) बुद्धि और (10.) चित्त के भाव— मिलकर पच्चीस होते हैं। इनके अतिरिक्त (1.) काम, (2.) मद, (3.) लोभ, (4.) मोह और (5.) भय— ये पाँच और मिलते हैं तो तीस तत्त्व हो जाते हैं।

चित्तं चैतन्यरूपं च भाव एवमतः परम्।
तदुद्भवः समस्तोऽयं संसारो यो प्रवर्तते ॥ 18 ॥

इन सबमें चित्त चैतन्य रूप से मिलकर परम भाव को उत्पन्न करता है जिससे यह समस्त संसार उत्पन्न होकर सब प्रवृत्तियाँ सञ्चालित होती है।

अथ षडाश्रयाः —

पाणिपादौ च बुद्धिर्वाक् चक्षुः श्रुतिः षडाश्रयाः।
एते षडाश्रया नित्यं मूलसम्भाय तद्भवा ? ॥ 19 ॥
बुद्धिज्ञानं शास्त्रज्ञानं हेतुज्ञानं तृतीयकम्।
सहजं गुरुजं कार्यं षड्विधं ज्ञानमुच्यते ॥ 20 ॥

अब षडाश्रय के विषय में सुनो! (1.) हाथ, (2.) पाँव, (3.) बुद्धि, (4.) वाणी, (5.) आँख, (6.) कान— ये छहों षडाश्रय के मूल रूप हैं और इनसे बनने वाले नित्य भाव तद्भवा कहलाते हैं। इनमें (1.) बुद्धि ज्ञान, (2.) शास्त्र ज्ञान, (3.) हेतु ज्ञान, (4.) सहज या अपने आप होने वाला, (5.) बड़ों से होने वाला तथा (6.) कार्य से होने वाला— यह छह प्रकार का ज्ञान कहा जाता है।

एवं योगादीनामाह —

संयोगां योगयुक्तानां अयोगं योगयुक्तिदम् ?।
शिवशक्तिसमायोगं ब्रह्माविष्णु एवनात्मजम ? ॥ 21 ॥

ब्रह्मबिन्दुसमायोगं शिवशक्तिः परात्परम्।
संयुक्तयोग एवं यो योगयुक्तः स उच्यते॥ 22॥

योग युक्तियों के प्रयास से बनने वाले संयोगों, कामों में तथा योग युक्ति रहित (?) कामों में बनने वाले अयोगकारी काम आदि सब शिव-शक्ति के सम्मिलित प्रयास से होने वाले सफल काम की तरह एवं ब्रह्मा, विष्णु की सम्मिलित शक्ति अपने आप होने वाले काम की तरह संयोग ही है। ब्रह्म और नादबिन्दु के समायोग से जो परात्पर सर्वोच्च शिवशक्ति प्रकट होती है, उसे ही संयुक्तयोग तथा योगयुक्त—ऐसा कहा जाता है।

रक्तः पीतः श्वेतकृष्णौ श्यामो नीलस्तथा हरित्।
सप्तधास्तु इमे प्रोक्ताः सप्तस्थानादिकोद्भवाः॥ 23॥

सात स्थानों से उत्पन्न होने वाले (1.) रक्त-लाल, (2.) पीत-पीला, (3.) श्वेत-सफेद, (4.) कृष्ण, (5.) श्याम-सांवला (6.) नील-आसमानी, (7.) हरित्- हरा— ये सप्तधातु कहलाते हैं।

श्वेताः श्वेतसमुद्भूता रक्ता रक्तसमुद्भवाः।
पीताः पीतसमुत्पन्नाः कृष्णाश्च मेचकोद्भवाः॥ 24॥
श्यामाः श्यामसमुद्भूता नीलाश्च ज्योतिर्मण्डले।
निशा भासाद्भवोत्पन्नाः सङ्ख्याः सप्त प्रकीर्तिताः॥ 25॥

श्वेत सभी श्वेत वस्तुओं से बनते हैं, रक्त सभी लाल वस्तुओं से, पीत सभी पीली वस्तुओं से, कृष्ण काली वस्तुओं से बनते हैं। श्यामा-सांवले रङ्गों की वस्तुओं से तथा नीले नील की वस्तुओं से इस ज्योतिर्मण्डल में बनते हैं। इसी प्रकार (हरित) हल्दी जैसी वस्तुओं से होते हैं, इन सबकी संख्या सात कही गई है।

रागद्वेषालसाश्चैव विमला मतसम्भवाः।
चतुर्विधा भूतग्राम मेतसांनि चतुर्विधा?॥ 26॥
अण्डजा उद्भिजाश्चैव जरायुजाश्च स्वदेजाः।
चतुर्विधा योनिजाश्च संसारे सृष्टिसम्भवाः॥ 27॥

(1.) राग, (2.) द्वेष, (3.) आलस्य, (4.) विमल-निर्मलता और (5.) मल-मैल से उत्पन्न होने वाले चार तरह के प्राणी समूह होते हैं जो भी सब चार प्रकार के होते हैं। ये चारों (1.) अण्डज- अण्डों से उत्पन्न होने वाले, (2.) उद्भिज- पृथ्वी पर उगने वाले पेड़-पौधे, (3.) जरायुज- गर्भ में उत्पन्न होने वाले मनुष्य, पशु आदि और (4.) स्वेदज- पसीने से उत्पन्न होने वाले जूँ, खटमल आदि जीव। ये चार प्रकार

की योनियाँ हैं जिनसे यह संसार की सृष्टि सम्भव हुई है।[1]

कामक्रोधलोभमोहभयादि पञ्चकोद्भवाः।
एवमादि गुणोपेताः पञ्चकामेन्द्रियाणि च॥ 28॥

अब पञ्च कामेन्द्रियों से उनके गुणों से उत्पन्न होने वाले (1.) काम, (2.) क्रोध, (3.) लोभ, (4.) मोह और (5.) भय को समझें।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां संसारभूतग्रामोत्पत्तिपञ्चतत्त्वनिर्णयाधिकारो **नाम दशमं सूत्रम्॥ 10॥**

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में संसार भूतग्राम उत्पत्ति पञ्चतत्त्व निर्णय अधिकार नामक दसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 10॥

पञ्चतत्त्वपञ्चगुणनिर्णयो नामैकादशं सूत्रम्॥ 11॥

अपराजित उवाच —

कथं भवश्च जीवनां स्नेहः स्त्रीणां नृणां कथम्।
स्नेहात्त्वां परिपृच्छामि ह्लादयन्तं निजात्मजम्॥ 1॥

अपराजित बोले — इस भव-संसार में जीवों में स्नेह किस प्रकार बनता है और यहाँ के स्त्री-पुरुषों में भी लगाव किस प्रकार बनता है, यह सब मैं आपसे स्नेह होने के कारण बड़ी नम्रतापूर्वक पूछता हूँ, अतः इसका उद्बोधन करके आप अपने आत्मज मुझ अपराजित को आह्लाद-प्रसन्नता प्रदान करें।

विश्वकर्मोवाच —

शिवशक्तिस्नेहात्मकः कामश्च हृदयात्मजः।
ततः सम्युक्तयोगश्च शिवशक्ती परात्परे॥ 2॥
इति कामस्य संयोगाच्छिवशक्तिप्रभावतः।
स्वयं ब्रह्मरुतेनैव नादबिन्दुसमुद्भवः॥ 3॥

विश्वकर्मा बोले— शिव तथा शक्ति[2] के हृदय से उत्पन्न होने वाले काम से ही शिव-शक्ति में स्नेहात्मक भाव की उत्पत्ति हुई तथा इससे ही यह संयुक्तयोग बन

---

1. तथा च भागवतीगीतायां— अण्डजाः स्वेदजाश्चैवोद्भिज्जाश्चैव जरायुजा। अण्डजाः पक्षिसर्पाद्याः स्वेदजा मशकादयः॥ वृक्षगुल्मप्रभृतयश्चोद्भिज्जा हि विचेतनाः। जरायुजा महाराज मानुषाः पशवस्तथा॥ शुक्रशोणितसम्भूतो देहो ज्ञेयो जरायुजः। (महाभागवत अपरनाम देवीपुराण 17, 6-8)
2. अन्यच्च— शक्तिद्वयं हि मायया विक्षेपावृत्तिरूपकम्। विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादिब्रह्माण्डन्तं जगत्सृजेत्॥ अतर्दृग्दृश्ययोर्भेद बहिश्च ब्रह्मसर्गयोः। आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम्॥ (वेदान्तसारटीका)

सका जिससे शिव-शक्ति परात्पर, सबसे महान माने जाते हैं। यह सब काम के संयोग से शिव-शक्ति का ही प्रभाव है जिससे स्वयं ब्रह्मा के हृदय में इसी तरह का नाद और बिन्दू का समुद्भव हुआ।

एकीभूतं यदा काले त्वन्तकाले प्ररोहति।
सङ्क्रमच्छुक्ररक्तं तु ब्रह्मविष्णुशिवात्मजम्॥ 4॥

इस तरह जब जिस काल में यह नाद और बिन्दू एकीभूत हुआ या मिला और अन्त में जब वह एकीभूत स्वरूप शुक्र व रक्त के संक्रमण से मिलने से प्ररोहण करने लगा, बढ़ने लगा तो वह ब्रह्मा, विष्णु और शिव का ही आत्मज-सन्तान है, ऐसा समझना चाहिए।

पिण्डनिर्माणचरणमाह —

कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रैश्च बुद्बुदम्।
शोणितं दशरात्रैश्च मांसहीनं चतुर्दशैः॥ 5॥
घनं मांसं विंशतिभिर्गर्भस्थं वर्द्धते क्रमात्।
एकमासे च सम्पूर्णे पञ्चतत्त्वानि धारयेत्॥ 6॥

यह शुक्र-रक्त का एकीभूत रूप जब बढ़ता है तो एक रात्रि में उसका रूप कलल कहा जाता है और वही जब पाँच रात्रि का हो जाता है तब बुद्बुद कहा जाता है। दस रात्रि का हो जाने पर उसे ही शोणित कहते हैं और चौदह दिन का हो जाने पर उस मांसहीन कहते है। इस प्रकार वह बढ़ते-बढ़ते बीस दिन में घन मांसपिण्ड रूप बनकर गर्भस्थ होकर क्रमपूर्वक बढ़ता जाता है और पूरा एक मास का हो जाने पर पञ्चतत्त्वों को धारण कर लेता है।

मासद्वये च सम्पूर्णे मांसपिण्डः प्रजायते।
मज्जास्थिनी त्रिभिर्मासैः केशाङ्गुल्यश्चतुर्थके॥ 7॥
कर्णजिह्वानासिकाश्च रन्ध्रं मासे तु पञ्चमे।
कण्ठरन्ध्रोदरे षष्ठे गुह्यं चाण्डं च सप्तमे॥ 8॥
सर्वाङ्गसन्धिसम्पूर्तिरष्टमासैः प्रजायते।
मासे च नवमे प्राप्ते गर्भस्थः स्मरति स्वयम्॥ 9॥

यही जब दो मास का हो जाता है तो मांसपिण्ड बन जाता है। उसमें तीन मास में मज्जा, अस्थि आदि बनती है और चौथे मास में उसके केश और अङ्गुलियाँ भी बनने लगती है। इस तरह बढ़ते-बढ़ते पाँचवें मास में उसके कान, जिह्वा, नासिका आदि के रन्ध्र बनते हैं। छठे मास तक बढ़ने पर तो इसमें कण्ठ के और उदर के

रन्ध्र-छिद्र तथा सातवें माह में उसके गुप्ताङ्ग और अण्डकोश बनते हैं। इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते वह कलल आठवें मास तक सभी अङ्गों की सम्पूर्ति से युक्त हो जाता है और नवें मास में पहुँचने पर वह गर्भस्थ प्राणी स्वयं अपने आपको स्मरण करने लगता है।[1]

मातरं पितरं भ्रातृन् पुत्रपौत्रादिकं तथा।
ज्ञानतोऽथ प्रार्थयते धर्मं च देवतादिकम्॥ 10॥
येनाहं न पतेयं वै संसारयोनिसङ्कटे।
अहं तं च करिष्यामि निःसृतो गर्भवासतः॥ 11॥

इस प्रकार स्मरण करता हुआ वह अपने पूर्व के माता-पिता, भाई-बन्धु, पुत्र-पौत्रादिकों को याद करता हुआ अपने धर्म और देवताओं की प्रार्थना करता है कि जिससे मैं संसार में इस योनि सङ्कट गर्भवास में पुनः नहीं पड़ूँ, वही मैं करूँगा, यदि मैं गर्भवास से बाहर आ जाऊँ।

विकासो जायते तस्य गर्भवासं ततस्त्यजेत्।
योनेर्यो निस्सरेत्तिर्यक् मृत्युस्तस्य भवेद् ध्रुवम्॥ 12॥
बधिरो वा भवेदन्धो जायते मूर्च्छनादिकम्।
एवं विनिःस्त्रतो जन्तुः संसारे मुह्यते क्षणात्॥ 13॥

इस प्रकार पूर्ण विकास हो जाने पर वह गर्भवास को तत्काल त्याग देता है। इस अवस्था में यदि वह गर्भस्थ शिशु योनि से बाहर निकलते समय तिर्यक् अर्थात् आड़ा पड़ जाए तो उसकी निश्चित ही मृत्यु हो जाती है, यह ध्रुव सत्य है। यदि योनि से बाहर आते समय वह मूर्च्छित अवस्था में होता है तो बहरा अथवा अन्धा हो जाता है परन्तु इस प्रकार स्वस्थ जन्म लेने वाला जन्तु जीव संसार को तत्क्षण मोहित कर लेता है और सबको प्रसन्न कर देता है।

---

1. वराहमिहिर का मत है कि गर्भाधान के पहले मास से लेकर सातवें मास तक क्रमशः शुक्र, मङ्गल, गुरु, सूर्य, चन्द्र, शनि और बुध मासाधिपति होते हैं। इनके प्रभाव से पहले मास में गर्भ का रूप कलल अर्थात् शुक्र-शोणित मिश्रित झिल्ली का आकार, द्वितीय में पिण्डाकार (घन) तीसरे में अवयव, चतुर्थ में अस्थिवाला, पाँचवें में त्वचा, छठे में रोम और सातवें में स्मृतियुक्त होता है। इसके बाद, आठवें से दसवें मास तक क्रमशः लग्नेश, चन्द्र और सूर्य मासाधिपति होते हैं। उनके प्रभाव से आठवें मास में असन (मातृभुक्त-अन्नभोजन), नवें मास में उद्वेग और दसवें मास में प्रसव होता है— कललघनावयवास्थित्वग्रोमस्मृति समुद्भवाः क्रमशः। मासेषु शुक्रकुजजीवसूर्यचन्द्रार्कि सौम्यानाम्॥ अशनोद्वेगप्रसवाः परतो लग्नेशचन्द्रसूर्याणाम्। कलुषैः पीडा पतनं निपीडितैर्निर्मलैः पुष्टिः॥ (लघु जातकम् 5, 6-7)

इत्यमनन्तरमहाभूतादिकमाह—

अथ चैवं प्रवक्ष्यामि महाभूतविनिर्णयम्।
पञ्चात्मकः परो भावो ह्यपरं पञ्चभूतकम्॥ 14॥

अब मैं महाभूतादिकों के विषय में कहता हूँ। इन पञ्चभूतों का परोभाव पञ्चात्मक होता है, जो निम्नानुसार होगा—

त्वचामांसास्थिनखरा रोमाण्यत्राद्य पञ्चकम्।
क्षितेरेतान् गुणान् पञ्च वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥ 15॥

देह में (1.) त्वचा, (2.) मांस, (3.) अस्थि, (4.) नख और (5.) रोम— ये पाँचों पृथ्वी के गुण होते हैं, ऐसा ब्रह्मवादियों का कहना है।

लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तं च पञ्चमम्।
इमान्यपांव्यञ्जकानि वदन्ति ज्ञानिनः सदा॥ 16॥

इसी प्रकार (1.) लार, (2.) मूत्र, (3.) शुक्र, (4.) मज्जा और (5.) रक्त— ये पाँचों गुण जल से बनते हैं, ज्ञानियों का सदा से ही ऐसा कहना है।

क्षुधा तृषा तथा निद्रा चालस्यं कान्तिरेव च।
तेजस्तु समुत्पन्ना वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥ 17॥

इसके अतिरिक्त (1.) क्षुधा, (2.) तृष्णा, (3.) निद्रा, (4.) आलस्य और (5.) कान्ति— देह में इन पाँचों गुणों को तेजोत्पन्न जानना चाहिए, ऐसा ब्रह्मवादियों का कहना है।

धावनं प्लवनं चैव सङ्कोचनप्रसारणे।
निरोधः पञ्चमश्चैव वायोरेतत्तु पञ्चकम्॥ 18॥

वायु से उत्पन्न होने वाले गुण हैं— (1.) धावन या दौड़ना, (2.) प्लवन या बहना, (3.) सङ्कोचन या सिकुड़ना, (4.) प्रसारण या फैलना और (5.) निरोध।

रागद्वेषौ भयं मोहः प्रसादश्चैव पञ्चमः।
एते पञ्च गुणाः प्रोक्ता आकाशस्य व्यवस्थिताः॥ 19॥

इसी प्रकार (1.) राग, (2.) द्वेष, (3.) भय, (4.) मोह और (5.) प्रसाद या प्रसन्नता— ये पाँचों गुण आकाश की व्यवस्था में कहे गए हैं।

पञ्चतत्त्वैः समुत्पन्ना गुणानां पञ्चविंशतिः$_{25}$।
पृथक् पृथक् च प्रत्येकं पञ्च पञ्चकसम्भवः॥ 20॥

इस प्रकार इन पञ्चतत्त्वों से पच्चीस गुण उत्पन्न होते हैं। इन सबके पृथक्-

पृथक् प्रत्येक के पुनः पाँच गुण होते हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योपराजितपृच्छायां पञ्चतत्त्वपञ्चगुणनिर्णयाधिकारो नामैकादशं सूत्रम् ॥ 11 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति **प्रकाश या** अपराजितपृच्छा **में पञ्चतत्त्व** पञ्चगुण निर्णय अधिकार नामक ग्यारहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 11 ॥

गर्भविज्ञानोद्भवो नाम द्वादशं सूत्रम् ॥ 12 ॥

अपराजित उवाच —

पञ्चविंशगुणैर्युक्ताः पञ्चतत्त्वसमन्विताः।
वर्तन्ते संसृतौ ये तु तेषां मोक्षः कथञ्चन ॥ 1 ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तिरेषां कथं भवेत्।
किं तेषां च फलं लोके संसारसारसागरे ॥ 2 ॥

अपराजित बोले — पच्चीस गुणों से युक्त इन पञ्चतत्त्वों से समन्वित होकर जो **प्राणी** इस संसार में आते हैं, उनका मोक्ष, उद्धार कैसे होता है? कहें। इनको **धर्म, अर्थ,** काम और मोक्ष— इन पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति किस प्रकार होती है **और** उनको इस संसार रूपी भवसागर में आने का इस लोक में क्या फल मिलता है?

विश्वकर्मोवाच —

उत्पन्ना गर्भसम्भूतेर्निःसृता योनिसङ्कटात्।
अचैतन्या अस्मराश्च उद्भूता बधिरान्धकाः ॥ 3 ॥
तत्रैवं ते प्रवर्तन्ते संसारजालमोहिताः।
कामात्मानः प्रपीडयन्ते तृष्णाक्रान्तास्तथैव च ॥ 4 ॥

विश्वकर्मा बोले— गर्भवास मे आकर योनि सङ्कट से निकलने वाले प्राणी यदि अचेतन अवस्था में जन्मते हैं तो या तो बहरे हो जाते हैं या अन्धे होते हैं। इसी तरह से वे संसार जाल से मोहित होकर तृष्णाओं से घिरे हुए तरह-तरह की कामनाओं से पीड़ा पाते हुए प्रवृत्त होते हैं।

चक्षुर्भिः स्नेहपाशैश्च मोहं कुर्वन्ति कामिनः।
पुनः पतन्ति संसारे पतङ्गा दीपवर्त्तिषु ॥ 5 ॥
आत्मानं वेदचक्षुर्भिः पश्यन्ति ज्ञानदृष्टयः।
ते नराः परमं यान्ति न पतन्ति पुनर्भवे ॥ 6 ॥

अपनी आँखों के स्नेह-पाश से कामीजन मोह रूपी अज्ञान में पड़कर ऐसे कर्म कर बैठते हैं जिनसे वे इस संसार रूपी गर्त में वैसे ही गिरते हैं, जैसे कोई पतङ्गा दीप की बाती को जलते हुए देखकर स्नेह और मोहवश जलते हुए दीप की लौ में हठात् गिरकर अपने पङ्ख जला बैठता है और मृत्यु को प्राप्त करता है। इसके विपरीत जो लोग अपने को वेद की दृष्टि के अनुसार चलकर ज्ञान की दृष्टि से देखते हैं, वे लोग परमपद को प्राप्त करते हैं और पुनर्भव में नहीं पड़ते अर्थात् पुनर्जन्म नहीं लेते, उनकी सीधे ही मुक्ति हो जाती है।

उद्यमैः साहसैर्धैर्यैर्गुरुभक्तिपरायणाः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तिहेतुर्मनीषया॥ 7॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ 8॥

अतः मनीषियों, ज्ञानियों, समझदारों को चाहिए कि वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पदार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिए उद्यमपूर्वक, धैर्य और साहस के साथ गुरु-भक्ति परायण होकर सदाचरण युक्त जीवन व्यतीत करें। क्योंकि, अरबों-खरबों कल्पों में भोगे गए कर्मों का फल कभी भी क्षीण नहीं हो सकता और शुभ या अशुभ कर्म जो भी किए जा चुके हों, उनका शुभ या अशुभ फल भी अवश्य भोगना पड़ता है।

कृतयुगानुरूपेणज्ञानमाह —

कृतत्रेताद्वापरे च चतुर्थे वा कलौ युगे।
ज्ञानं धर्मो गुरुर्देवो युगानुरूपभावना॥ 9॥
कृते तु सहजं ज्ञानं त्रेताया कुलजं तथा।
द्वापरे शास्त्रजं ज्ञानं क्षेत्रजं तु कलौ युगे॥ 10॥
सहजं कुलजं चैव शास्त्रजं क्षेत्रजं तथा।
एवं चतुर्विधं ज्ञानं युगरूपानुमोदितम्॥ 11॥

(1.) कृतयुग, (2.) त्रेतायुग, (3.) द्वापरयुग और (4.) कलियुग में (1.) ज्ञान, (2.) धर्म, (3.) गुरु और (4.) देवता के प्रति अपने-अपने युग के अनुरूप ही लोगों की भावना होती है। इस नियमानुसार सतयुग में अपने सहज ज्ञान से; त्रेतायुग में अपने कुल की परम्परा के ज्ञान से; द्वापर में शास्त्रों के अनुसार प्रचलित ज्ञान से और कलियुग में अपने क्षेत्र के आसपास के रीति-रिवाजों के ज्ञान प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार सहज, कुलज, शास्त्रज और क्षेत्रज—इन चार विधियों का ज्ञान इन युगों के अनुरूप अनुमोदित किया गया है।

ज्ञानं गुरुमुखोद्भूतं संसृतेः पाशच्छेदनम्।
ये भजन्ति गुरुं भक्तया सूर्यं तमिहरं यथा॥ 12॥
लभन्ते ते ततो ज्ञानं धर्मे तीर्थे महात्मनि।
अर्थदानप्रभावेण ज्ञास्यन्ति तपसां क्रमम्॥ 13॥
ज्ञाने मोक्षं तपो राज्यं दाने भोग्यं महोत्कटम्।
एवं तु जायते मुक्तिर्यो जानाति स पण्डितः॥ 14॥

गुरुमुख से उद्भूत ज्ञान संसार रूपी भवसागर के पाशों को काटने वाला है और जो लोग भक्तिपूर्वक गुरु की पूजा और आज्ञा में रहते हैं, उनका अज्ञानान्धकार उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे सूर्य का प्रकाश अन्धकार को समाप्त कर देता है। ऐसे भक्त लोग इस ज्ञान को धर्मस्थानों में तथा तीर्थस्थानों में महात्मा स्वरूप गुरुओं से प्राप्त करते रहते हैं और अपने अर्थ के दान-पुण्य के प्रभाव से वे तपस्या के क्रम को जान लेते हैं। वे यह सम्यक् प्रकार से जान जाते हैं कि ज्ञान का फल मोक्ष है, तप का फल राजपद पाना है, दान का फल महान भोगों को भोगना है। इसी तरह से मुक्ति होती है। यह जानने वाला ही सही तौर पर पण्डित कहा जाता है।

यः करोति स कर्त्ता च भूतात्मा कथ्यते बुधैः।
जीवसञ्ज्ञो ह्यन्तरात्मा सहजः सर्वदेहिनाम्॥ 15॥
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु।
न भूत भूतसम्पर्कौ महाक्षेत्रज्ञ एव सः॥ 16॥

जो करता है, वही कर्ता है जिसे विद्वान लोग 'भूतात्मा' कहते हैं और सभी देहियों की सहज अन्तरात्मा को 'जीव' संज्ञा से कहा जाता है और जिससे जन्म लेने के उपरान्त के सभी सुख-दुःख जाने जाते हैं, उसे ही 'महाज्ञेत्रज्ञ' कहा गया है[1], उसे कोई भूत-प्राणी या भूत सम्पर्क-प्राणी का स्पर्श नहीं होता। वह तो केवल साक्षी और द्रष्टा मात्र है।

एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।
इदं शरीरं ज्ञानेन क्षेत्रमित्यभिधीयते॥ 17॥
आत्मैव चात्मचैतन्यमात्मना सृजति स्वयम्।
आत्मना कृतं नानात्वमात्मन्येव प्रलीयते॥ 18॥

वह ज्ञानी अपने सात्विक ज्ञान से इस शरीर को 'क्षेत्र' समझता है। उसे एक

---

1. श्रीमद्भगवद्गीतायां— इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥ (13, 1)

प्रकार से या बहुत प्रकार से वैसे ही देखता है जैसे एक चन्द्रमा जल ही लहरों पर अनेक रूपों में दिखाई देता है, फिर भी वह वास्तव में एक ही है। इसी जल-चन्द्रवत न्यायानुसार आत्मा ही आत्म चैतन्य को अपनी आत्मा में ही स्वयं सृजन करती है और अपनी स्वयं की की गई नानात्व की कृतियों को वही आत्मा स्वयं उन्हें प्रलीयते अर्थात् मिटा देती है।[1]

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ 19॥[2]

आकाश की ओर मूलवाले और नीचे की ओर शाखा वाले जिस संसार-रूप अश्वत्थ वृक्ष को अव्यय अर्थात् कभी व्यय नहीं होने वाला— ऐसा कहते हैं और वेद जिसके पत्ते हैं (अर्थात् विविध छन्दों के सृष्टि के रूप ऐसे ही असंख्य हैं जैसे किसी पीपल के असंख्य पर्ण हों), उस संसार-वृक्ष को जो तत्त्व से जानता है, वह सम्पूर्ण वेदों को जानने वाला है।

एकस्तम्भे नवद्वारे त्रिशूले पञ्चदेवताः।
क्षितिप्राकारसन्नद्धेऽनुपरिचारनायकाः॥ 20॥

यह जीवात्मा एक स्तम्भ पर टिका हुआ है, वह स्तम्भी ऐसा है कि जिसमें नौ द्वार हैं, तीन शूल हैं, पाँच देवता हैं और उसके भूमि पर परकोटे पर सन्नद्ध पहरेदार चार नायक सैन्य है।[3]

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां गर्भविज्ञानोद्भवाधिकारो नाम द्वादशं सूत्रम्॥ 12॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में गर्भविज्ञान उद्भव अधिकार नामक बारहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 12॥

---

1. श्रीमद्भगवद्गीतायां— क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा। भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥ (13, 34)
2. श्रीमद्भगवद्गीतायां (15, 1) तथा च कठोपनिषदे — ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः। तदेवं शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते॥ तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वैतत्॥ (2, 3, 1)
3. एक स्तम्भ अर्थात् यह शरीर। नवद्वार अर्थात् इस देह के नौ द्वार— दो आँखें, दो कान, दो नासिका, एक मुँह, एक उपस्थ और एक गुह्य। तीन शूल अर्थात् सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। पाँच देवता अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। चार सेनानायक अर्थात् धीरोदात्त, धीरप्रशान्त, धीरललित, धीरोद्धत (अग्निपुराण, काव्यशास्त्रीय भाग) या अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट अथवा चार अन्तःकरण— मन, बुद्धि, चित्त व अहङ्कार।

कर्मज्ञानोद्भवो नाम त्रयोदशं सूत्रम् ॥ 13 ॥

अपराजित उवाच —

केवलं कुलज्ञं ज्ञानं शास्त्रजं क्षेत्रजं तथा।
चतुर्मार्गबहिस्थं च कथय परमेश्वर ॥ 1 ॥
कष्टं साध्यं विना कष्टैरभ्यासं किल शाश्वतम्।
कथयस्व प्रसादेन ज्ञानाभ्यासस्तु वै यथा ॥ 2 ॥

अपराजित बोले — केवलज्ञान, कुल से प्राप्त होने वाले ज्ञान, शास्त्र से प्राप्त होने वाला ज्ञान और क्षेत्रीय परम्परानुसार होने वाले ज्ञान के अतिरिक्त जो बाहरी ज्ञान शेष है, उसे भी हे परमेश्वर! कहिए। यह सब ज्ञान प्राप्त करने का अभ्यास चाहे कष्ट साध्य हो अथवा बिना कष्ट साध्य, सारा शाश्वत ज्ञान आप कृपाकर जैसा भी हो, कहिए।

विश्वकर्मोवाच —

अग्निः काष्ठे तिले तैलं क्षीरमध्ये यथा घृतम्।
गुरुवत् कर्मयोगेन अभ्यासो ज्ञानदेहजः ॥ 3 ॥
यथा चात्यूर्ध्वसंस्थोऽपि दृश्यते जलचन्द्रमाः।
तथा सर्वत्रसंस्थोऽपि ह्यात्माल्पैरवे दृश्यते ॥ 4 ॥

विश्वकर्मा बोले — हे वत्स! जिस प्रकार अग्नि काष्ठ में, तेल तिल में और घी दूध में अदृश्य रूप में स्थित है, परन्तु अभ्यास से ये सब ही प्राप्त किए जाते हैं, उसी तरह ज्ञान भी देह में अदृश्य रूप में उपस्थित है जिसे गुरु के समान कर्मयोग के अभ्यास द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार अत्यन्त ऊँचे होने पर भी चन्द्रमा को हम जल में आसानी से निकट देख सकते हैं, उसी प्रकार सभी में सर्वत्र स्थित आत्मा को भी अपनी आत्मा द्वारा अल्प प्रयास मात्र से देखा जा सकता है।

अदृष्टरूपे दृष्टव्यं हस्तौ चापि तथा श्रुतिः।
अव्यक्ते व्यक्तरूपं च व्यक्ताव्यक्तस्य सम्भवः ॥ 5 ॥
क्षरं चैव परित्यज्य ध्यायेदात्मानमक्षरम्।
त्रिपदं(थं) स्यात्परं स्थानं परं ब्रह्मा तदुच्यते ॥ 6 ॥

जिस प्रकार हाथ से स्पर्श करके या या कान से सुनकर भी अदृष्ट वस्तु का ज्ञान दृष्ट रूप की तरह हो जाता है, उसी प्रकार अव्यक्त को भी व्यक्त रूप में और मिश्र रूप में व्यक्ताव्यक्त भाव को भी देखा जाना सम्भव है। व्यक्ति को चाहिए कि

क्षर अर्थात् नाशवान वस्तु का ध्यान करना त्यागकर अक्षर अर्थात् नित्य रहने वाले आत्मतत्त्व का ध्यान करें क्योंकि त्रिपदं- त्रिपदासावित्री के ध्यान करने से ऊँचा कोई स्थान नहीं है, उस परम ध्यान को ही परमब्रह्म कहा गया है।

ब्रह्मरन्ध्रं ततो मध्ये जलसूर्य पुरभेदकम ?।
तन्मध्ये च समस्तं तु जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ 7॥
ऊर्ध्वं चन्द्रो ह्यधः सूर्यो ब्रह्ममूलोद्भवान्तरम्।
वर्षन्त्यमोघमेघाश्च चन्द्रस्थानमतः परम्॥ 8॥

इस ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् ब्रह्माण्ड की पोल में जलसूर्य अर्थात् सूर्य की गर्मी से वाष्पीभूत हुआ जल, पुरभेदक अर्थात् पूरी तरह भेदकर पूर्णत: ब्रह्माण्ड में व्याप्त है और इसी के बीच में यह समस्त स्थावर जङ्गम जगत समाया हुआ है। ऊपर चन्द्रलोक स्थित है, उसके नीचे सूर्यलोक है और इनके बाद ब्रह्म का मूलोद्भव हुआ। चन्द्रस्थान अर्थात चन्द्रलोक से और उससे भी ऊपर से अमोघ मेघों से वृष्टि होती रहती है।

चन्द्रस्थं च महापद्मं बिन्दुं बिन्दुस्वरूपिणम्।
विचित्रपङ्क्तिपत्रस्थं महाकान्त्युपशोभितम्॥ 9॥
ध्यातव्यं पूर्वदेहैस्तु ह्यक्षरं नाऽत्र संशयः।
नाऽसौ लिप्तः पुण्यपापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ 10॥
ततः परतरं यान्ति न भवन्ति पुनर्भवे।
एवमभ्यासयोगैः स्यात्कर्मज्ञानसमुद्भवः॥ 11॥

चन्द्रस्थ अर्थात् चन्द्रलोक में महापद्म है जिस पर बिन्दू स्वरूपी असंख्य बिन्दू हैं जो विचित्र पङ्क्तियों में टिके हुए हैं और उनकी महान कान्ति अर्थात् उनसे महान प्रकाश फैल रहा है (यह एक प्रकार से ब्रह्माण्ड में व्याप्त तारा मण्डल की कान्ति की ओर सङ्केत है)। इसलिए आत्मा रूपी पूर्व देह से सदा ही अक्षरब्रह्म का ही ध्यान करते रहना चाहिए। इसमें तनिक भी संशय नहीं रखना चाहिए। कारण यह है कि यह आत्मा सदैव निष्कल, निर्मल और निष्पाप है। यह पुण्य-पाप से कभी भी लिप्त नहीं होता, जिस तरह कमलपत्र जल से कभी लिप्त नहीं होता है। अस्तु, ब्रह्म का ध्यान अर्थात् त्रिपदा सावित्री की उपासना से गायत्री वेदमाता की कृपा से ऐसे अभ्यास योग की साधना करते-करते साधक को कर्मज्ञान का समुद्भव स्पष्ट दिखाई देता है जिसके पुण्य प्रताप से साधक की आत्मा ब्रह्मलोक से परे पहुँच जाती है और उस आत्मा को पुनर्जन्म की पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती है।

अथ हंसयोगसाधनमाह —

हकारादि सकारान्तं संस्मरेत्तदहर्निशम्।
लक्षयेत्तत्र **सञ्चारं** वर्णोच्चारविवर्जितम्॥ 12॥
अनन्तं सहजं हंसं नित्याभ्यासपदे **स्थितम्।**
गमागमनयोगेन सप्तकोटिजपः **स्मृतः** ॥ 13॥
षट्त्रिंशदङ्गुलं **चारे** वामदक्षिणगोचरे।
स्वयमुच्चार्यते **हंसो हंसस्तेन स उच्यते**॥ 14॥

(उसके आगे) साधक को हंस-योग की साधना करनी चाहिए। इसके अभ्यास में हकार से आरम्भ करें और सकार से अन्त करें परन्तु ध्यान रखें कि यह प्राणायाम की साधना है जिसमें केवल प्राण के आवागमन को साक्षी भाव से लक्ष्य करके देखना है। आते श्वास में 'ह' की ध्वनि जैसा अभ्यास और जाते श्वास में 'स' की ध्वनि जैसा आभास मात्र करना है और किसी प्रकार का 'ह' वर्ण या 'स' वर्ण का वर्णोच्चार अर्थात् ध्वनि मुख उच्चारित नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार इस सहजयोग में अनन्त हंस के नित्याभ्यास से पद पर दृढ़ स्थिति प्राप्त होती है और इस सहजयोग में नित्य श्वास के आने-जाने के स्वरूप योग में सात करोड़ जप सहज ही प्रतिदिन होते रहते हैं— इस योग में मात्र श्वास पर आते-जाते समय लक्ष्य रखना है। इस सहजयोग के हंसं प्राणायाम में नासिका के वाम व दक्षिण गोचर से अर्थात् चन्द्रनाड़ी व सूर्यनाड़ी से सञ्चरित होने वाले श्वास की लम्बाई छत्तीस अङ्गुल की होनी चाहिए अर्थात् व्यक्ति को सदा दीर्घ श्वास लेने का अभ्यास होना चाहिए। जिससे वायु में स्थित प्राणी की पूर्ण प्राप्ति होती रहे। इस योग की सहज प्रक्रिया में 'हंसो', 'सोऽहं' की ध्वनि स्वयं ही उच्चारित होती रहती है, इसीलिए इसे हंस (योग) कहा जाता है।[1]

---

1. तथा च योगगीतायां — शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि हंसमन्त्रस्य साधनम्। यथोक्तं शम्भुना पूर्व गिरिजायै महात्मना॥ हृदयादुत्थितः प्राणो बहिर्याति महीपते। द्वादशाङ्गुलमानेन नासाद्वारा निरन्तरम्॥ परावृत्य ततस्तूर्ण हृदयं प्रति गच्छति। हृदयाम्भोजतः पश्चाद्बहिरायाति सत्वरम्॥ एवं पुनः पुनः प्राणः श्वासोच्छ्वासक्रमेण वै। सर्वेषामेव जन्तूनां बहिरन्तः प्रधावति॥ निर्गमेहं भवेच्छब्दः प्रवेशे सः प्रकीर्तितः। हंसो हंस इति प्राणी वारम्वारं जपेत्सदा॥ बहिरागमने हंसः सोहं स्यादन्तरागमे। हंसः सोहं जपो देहे स्वतो नित्यं प्रवर्त्तते॥ षट्शतानि च संख्या स्यात्सहस्राण्येकविंशतिः। जपस्याष्टसु यामेषु नित्यमेव दिने दिने॥ एकान्ते समुपाविश्य परेशं हंसविग्रहम्। ध्यायन्नेकाग्रचित्तेन पश्येत्प्राणगति बुधः॥ निर्गमे चप प्रवेशे च हंसः सोहं निरन्तरम्। चेतसा चिन्तयेन्मन्त्र वाचा नोच्चारयेत्क्कचित्॥ एवमभ्यासतो नित्यं जपकोटिर्यदा भवेत्। तदा प्रवर्त्तते नादः स्वयमेव न संशयः॥ (योगगीता 15, 65-74; तुलनीय **हंसोपनिषद् एवं** दत्तात्रेयसंहिता)

यावन्न चालयेद्योगी ह्यक्षसूत्रकरस्थितम्।
सप्तकोटिजपं **कृत्वा हंसस्त्वेवं निवर्तते॥ 15॥**
एवं विश्वगतश्चारः प्राणिनां शुभदायकः।
हंसरूपे स्थिताः प्राणाः प्राणास्तत्त्वैः प्रकीर्तिताः ॥ 16 ॥

इस प्रकार के हंसयोग के जाप में योगी अपने हाथ में अक्षमाला नहीं चलाता है तथापि उसके जाप सात करोड़ इस हंसत्व से पूरे निवर्त हो जाते हैं। इस प्रकार का विश्वगत सञ्चार समस्त प्राणियों के लिए शुभदायक है। इसीलिए हंस रूप में इन प्राणों के स्थित होने से ही इनको प्राणतत्त्व नाम से कहा गया है।

अथ हृदयकमलमाह —

हृदये सहजं पद्ममष्टपत्रं सबिन्दुकम्।
इच्छाशक्तिस्तथा **मध्ये दलान्ते** कुलदेवताः ॥ 17 ॥
शृङ्गारहास्यकरुणारौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतशान्ताश्चाल्पाष्टौ ? **कमले स्थिताः ॥ 18 ॥**
कुलदेव्यष्टकोपेतमिच्छाशक्तिर्हृदिस्थिता।

अब हृदय के भावों का विशेष परिचय दिया जा रहा है— हृदय में सहज ही आठ पँखड़ियों और मध्य में बिन्दू युक्त कमल कहा गया है। इसमें बिन्दू रूप मध्य में तो इच्छा शक्ति है और आठों दलों-पँखड़ियों में कुल देवता हैं। इस कमल में (1.) शृङ्गार, (2.) हास्य, (3.) करुणा, (4.) रौद्र, (5.) वीर, (6.) भयानक, (7.) वीभत्स, (8.) अद्भुत- ये आठ (अल्परूप से शान्त भी) रस और मध्य बिन्दु में कुल देवियाँ भी स्थित हैं तथा इच्छा शक्ति भी हृदय में ही स्थित हैं।

ऊर्ध्वाकारैः **स्थिता ख्यातेन्द्रियैर्बुद्धिरनुक्रमात्॥ 19 ॥**
शब्दः स्पर्शास्तथा रूपं रसो गन्धश्च पञ्चमः।
मनो बुद्धिरहंकारः सत्त्वं रजस्तमस्तथा॥ 20॥

इस हृदय में ही ऊर्ध्वाकार में स्थित इन्द्रियाँ भी बुद्धि के अनुक्रम में स्थित हैं। इसी हृदय-कमल में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पाँचवाँ गन्ध तथा मन, बुद्धि और आठवाँ अहङ्कार तथा सत्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण युक्त स्थित है।

कामः क्रोधश्च मोहश्च लोभो हर्षो मदो भयम्।
विषादश्चाष्टमः प्रोक्त इत्यष्टौ च गुणाः स्मृताः॥ 21॥

इसी प्रकार हृदय कमल की अष्ट पँखड़ियों में ही काम, क्रोध, मोह, लोभ, हर्ष, मद, भय और आठवाँ विषाद स्थित हैं। इन्हीं आठों को गुण भी कहा गया है।

शरीरस्थगुणदोषादीनां —

क्षुधा तृषा भयं द्वेषो मोहचिन्तानुरागकाः।
जरा मृत्युश्च दोषाश्च विस्मयं जननं तथा॥ 22॥
निद्रा शोकोद्वेग **परा** हीच्छाशक्तिसमुद्भवाः।
गुणदोषाः शरीरस्था **अष्टादश**$_{18}$ प्रकीर्तिताः॥ **23॥**

अब शरीरस्थ गुण-दोषों के विषय में कहा जा रहा है कि (1.) क्षुधा, (2.) तृषा, (3.) भय, (4.) द्वेष, (5.) मोह, (6.) चिन्ता, (7.) अनुराग, (8.) जरा, (9.) मृत्यु, (10.) दोष, (11.) विस्मय, (12.) जनन, (13.) निद्रा, (14.) शोक, (15.) उद्वेग, (16.) परा इच्छा, (17.) शक्ति और (18.) गुण-दोष ये अठारह इसी शरीर में स्थित कहे गए हैं।

इति सूत्रसन्तागुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां कर्मज्ञानोद्भवाधिकारो नाम त्रयोदशं सूत्रम्॥ 13॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में **कर्म ज्ञान** उद्भव अधिकार नामक तेरहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 13॥

शिवशक्तिब्रह्मज्ञानं चतुर्दशं सूत्रम्॥ 14॥

अपराजित उवाच —

कश्चन्द्रश्च कथं सूर्यः कथं ब्रह्मासनं स्मृतम्।
कथं कामाख्यनिलयोऽब्जनिलयं कथं विदुः?॥ 1॥
कथं ग्रहणसङ्क्रान्ती कथं कालकलास्तथा।
काम(य)रूपं कथं प्रोक्तं कामाख्यनिलयः कथम्॥ 2॥

अपराजित बोले — किसे चन्द्र, किसे सूर्य, किसे ब्रह्मासन कहा जाता है, किसे कामाख्य-निलय और किसे कमल-निलय जानें? किस प्रकार ग्रहण और सङ्क्रान्ति होती है और किस तरह काल के तहत कलादि की गणना होती है? काम (काय)रूप किसे कहते हैं और कामाख्यनिलय किसे कहते हैं, यह सब बताइए।

विश्वकर्मोवाच —

ब्रह्मरन्ध्रस्थितश्चन्द्रो ह्यग्निमध्ये रविस्तथा।
कामाख्यनिलयः प्रोक्तश्चन्द्रपीठे च संस्थिता?॥ 3॥

प्रविष्टा पद्मनालेऽपि सूर्यपीठे लयं गता।
संस्थिता कामरूपान्ते सूर्येन्दुग्रहणे रता॥ 4॥

विश्वकर्मा कहने लगे — ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् ब्रह्माण्ड की पोल में चन्द्रमा स्थित है और अग्नि के बीच में रवि या सूर्य विद्यमान है तथा जिसे कामाख्य निलय कहते हैं वह चन्द्र के पीठ के पीछे संस्थित है। पद्मनाल में प्रवेश करने पर भी वह सूर्य के पीछे ही लय हो गई। जब सूर्य और चन्द्र ग्रहण में रत होते हैं, तब उन्हें कामरूपान्त में संस्थित कहा जाता है।

रविचन्द्रयुते काले शक्तिः सङ्क्रमते यदा।
तत्काले ग्रहणं प्रोक्तं सङ्क्रान्तिर्विष्णुसम्भवा॥ 5॥
ग्रहणान्ते पराशक्तिः पद्मतन्तुनिभा स्थिता।
सृजति स्वेच्छया कामः भूतग्रामं चतुर्विधम्॥ 6॥

रवि-चन्द्र की युति होने के समय जब शक्ति का सङ्क्रमण होता है, उस समय को ग्रहण कहा जाता है और इससे सङ्क्रान्ति तो विष्णु से ही सम्भव होती है। ग्रहण के अन्त में पराशक्ति पद्मतन्तु के समान स्थित रहकर अपनी स्वयं की इच्छा से काम का सृजन करती है जिससे चार प्रकार के भूतग्राम अर्थात् प्राणियों के समूह उत्पन्न होते हैं।

कर्मकर्तृमणिर्बन्धुः करहीनाऽपि कर्षति।
सृजति ज्ञानतस्तद्वच्चक्षुर्हीना जगत्त्रयम्॥ 7॥
भ्रामको(की) भ्रामयेद् बन्धूः करहीनोऽपि भागशः ?।
सृष्टिमार्गस्थिता शक्तिः करहीना करोति च॥ 8॥

कर विहीन होने पर भी यह काम करने वाली कलाई (मणिबन्ध) पकड़कर खींचती है और चक्षु विहीन होने पर भी चक्षु वाले की तरह ज्ञान से ही तीनों लोकों की रचना कर देती है। यही भ्रामकी सभी बन्धुओं को स्वयं कर हीन होने पर भी उनकी कलाई पकड़कर भ्रामती, नचाती है। इस तरह यह पराशक्ति कर हीन होने पर भी अपने सृष्टि मार्ग पर चलती हुई सृष्टि की रचना करती है।[1]

चन्द्रः कोऽपि मणिर्बद्धो नष्टचन्द्रः प्रमुञ्चति ?।
मुखहीना तथा शक्तिर्वाङ्मयं दर्शयेत् खलु॥ 9॥

---

1. तथा चोपनिषद्वाक्यम्— 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः'— वे परमात्मा हाथ-पैरों से रहित होने पर भी ग्रहण करने में समर्थ और वेगपूर्वक चलने वाले हैं। वे नेत्रों के बिना ही देखते हैं और कानों के बिना ही सुनते हैं। (श्वेताश्वतरोपनिषद् 3, 19)

अद्रवाऽपि द्रावयति यत्किञ्चित्काञ्चनादिकम्।
ज्ञानशक्तिस्तथा चैवं निद्रवेत्सृष्टितोऽम्बरम्॥ 10॥

इसी तरह वह किसी चन्द्र को भी उनकी कलाई पकड़कर छुड़ाती है। यह पराशक्ति मुखहीन होने पर भी समस्त वाङ्मय साहित्य-शास्त्रादि को कहकर प्रकट करती है। यह पराशक्ति स्वयं अद्रवा होने पर भी काञ्चनादि जो कुछ भी धातुएँ हैं, उनको द्रवित करती हैं, पिघलाती है। यह पराशक्ति ही अपनी सृष्टि से समस्त ज्ञानशक्ति को आकाश में प्रसारित करती है।

अग्नितेजोगुणा यद्वत् सूर्यरश्मिगुणा यथा।
रवेरिव गुणास्तद्वत् सहजाः शक्तिसंस्थिताः॥ 11॥
निर्गुणाऽपि गुणैर्युक्ता रूपहीनाऽपि रूपिणी।
सञ्चरेत्पादहीनाऽपि कर्णहीना शृणोति च॥ 12॥
जिघ्रति घ्राणहीनाऽपि वक्त्रहीनाऽपि जल्पति।
चक्षुर्हीना लोकते च त्रैलोक्यं च करस्थितम्॥ 13॥

जिस प्रकार सूर्य की रश्मियों के साथ गुण का सम्बन्ध है, उसी प्रकार अग्नि का अपने तेज से गुण-सम्बन्ध है। रवि के समान ही सभी गुण उसी तरह शक्ति के साथ सहज ही स्थित है। यह पराशक्ति निर्गुणा होने पर भी गुणों के साथ है और रूप हीन होते हुए भी रूपवती है। यह पाँव विहीन होने पर भी चलती है और कानों के नहीं होने पर सुनती है। यह नासिका से विहीन होने पर भी सूँघती है और मुख हीन होने पर भी बोलती है। चक्षुहीना होकर भी यह देखती है और सारे तीनों लोक उसके कर-कमलों में स्थित है।[1]

एवं सा सर्वरूपस्था ह्यमूर्ता मूर्तिचारिणी।
पराशक्तिरितिख्याता ह्येका त्रैकोल्यनायिका॥ 14॥
एषा सा परमा शक्तिरिच्छाज्ञानक्रियात्मिका।
पृथगेकाष्टकैर्युक्ता ह्यज्ञानां ज्ञानदा स्मृता॥ 15॥

इस प्रकार वह पराशक्ति सभी रूपों में स्थित होकर अमूर्त होने पर भी मूर्ति रूप में चलने वाली है इसीलिए तो इसे पराशक्ति नाम से विख्यात किया जाता है

१. तथा च गीतायां— सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥ (13, 13-14)
गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है—बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिन करम करइ बिधि नाना॥ आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥ तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥ (रामचरितमानस 1, 118, 3-4)

जो तीनों लोकों— स्वर्गलोक, मर्त्यलोक व पाताललोक की नायिका अकेली एकछत्रा रूप में है। इस तरह की यह परमशक्ति इच्छा, ज्ञान और क्रियात्मिका है। यही पराशक्ति पृथक्-पृथक् अठारह रूपों से युक्त होकर ही सब अज्ञानियों को ज्ञान देने वाली मानी गई है।

अनेकभाविकं **कर्म** दग्धबीजमिवाम्भसि।
भविष्यदपि **संरुद्धं ज्ञानकं भुवि गोचरम्**॥ 16॥
सहजं भोगजं कर्मानर्गलं भविष्यत्तथा।
शक्तित्रयविभागेन **दद्यात् सर्वं** शुभाशुभम्॥ 17॥

अनेक भावों से उत्पन्न कर्म भी इस पराशक्ति की कृपा से वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे जले हुए बीजों को अङ्कुरण के अर्थ में जल से सींचना व्यर्थ है। इस महामाया की कृपा से बन्धे और अवरुद्ध कार्य भी होने लगते हैं और ऐसे दिखने लगते हैं मानो ये पहले ही हमारे ज्ञान में हों और हमें गोचर होते रहे हों। इस पराशक्ति की कृपा से जन्म के साथ उत्पन्न होने वाले तथा पूर्वजन्म के प्रारब्ध, भोग के कारण उत्पन्न होने वाले कर्म भी अनर्गल हो जाते हैं अर्थात् अर्गला, बाधा रहित हो जाते हैं और तीनों ही शक्तियों के विभागानुसार सभी शुभाशुभ फल देने में समर्थ हो जाते हैं।[1]

अथ शक्त्याप्रमाणानि —

कारणे च क्रियाशक्तिरिच्छाशक्तिः प्रवर्तने।
ज्ञानशक्तिस्तथाचारे सञ्चरेत्सचराचरम्॥ 18॥
सर्वाङ्गसन्धिसञ्चारे नखकेशाग्रमध्यके।
व्यापिनी संस्थिता देहे रेणुमात्रस्वरूपिणी॥ 19॥

ये शक्तियाँ इस प्रकार हैं— (1.) कारण में क्रियाशक्ति लगती है, (2.) प्रवर्तन या चलने में, बढ़ने में इच्छाशक्ति लगती है और (3.) आचरण में ज्ञानशक्ति लगती है। इस तरह ये तीनों ही शक्तियाँ समस्त चराचर जगत में सञ्चरित होती है। देह के सभी अङ्गों के सञ्चारण के लिए, सभी सन्धियों को गति देने के लिए जैसे नख व केश के अग्रभाग में, मध्यभाग में भी सञ्चरण के लिए यह पराशक्ति रेणु-मात्र स्वरूप की होकर समस्त देह में स्थित रहती है।

---

१. तथा च श्रीमद्भगवद्गीतायां— अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्। भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥ (13, 17)

पुराणेऽपि— सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्माविष्णुशिवात्मकः। स सञ्ज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥ **(पद्मपुराण सृष्टिखण्ड 2, 114)**

बीजरूपा तु सा देवी जगन्माता व्यवस्थिता।
तां ज्ञात्वा मुच्यते पाशैस्सर्वज्ञस्तु नरो भवेत्॥ 20॥
क्रियेच्छयोस्तथा ज्ञाने त्रिकरूपे व्यवस्थिता।
प्रातर्यस्तु प्रबुद्धात्मा विन्द्यात् शक्तिपतिं तु सः॥ 21॥

यह पराशक्ति बीज रूपा होकर ही जगन्माता के रूप में व्यवस्थित है। इस जगन्माता को ही सही-सही जान लेने पर सभी पाशों से मुक्ति मिल जाती है और इस प्रकार जान लेने वाला व्यक्ति सर्वज्ञ हो जाता है। क्रियाशक्ति, इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति के इस त्रिक् रूप व्यवस्था से वह सर्वज्ञ प्रबुद्धात्मा भवसागर को तैर जाता है और शक्तिपति को पाने का अधिकारी हो जाता है।

एवं शारीरिकं चक्रं शक्तित्रयसमन्वितम्।
शक्त्यन्ते च शिवं विद्याद्यो दशान्ते कलौर्विना ?॥ 22॥

इस प्रकार उक्त तीनों शक्तियों[1] के समन्वय को पाया हुआ यह शारीरिक चक्र शक्ति को जान लेने के अन्त में शिवतत्त्व को जान लेता है और इस तरह भवदशा के अन्त में बिना किसी कलह (कला ?) के भवसागर से तर जाता है, उसका मोक्ष हो जाता है।[1]

एकः शिवः परं ब्रह्मपदमेव निराश्रयम्।
पश्येत् संसारबीजं यो रम्भास्तम्भपुटं यथा॥ 23॥
यस्य शिवशक्तिज्ञानं तस्य मुक्तिर्विधीयते।
शक्तित्रयविमुक्तस्य भुक्तिर्मुक्तिविमोचनम्॥ 24॥
दर्पणेषु यथा छाया पिण्डः पिण्डाकृतिर्भवेत्।
तथा सर्वगतः शम्भुर्दृश्यते जलचन्द्रवत्॥ 25॥

एक ही शिव परम ब्रह्मपद है और वह निराश्रय है अर्थात् वह किसी के सहारे से नहीं है। जो इस संसार-बीज रूप शिव को केले के स्तम्भ की परतों की तरह देख लेता है, उसे ही शिव-शक्ति का ज्ञान प्राप्त कहा जाता है और उसकी मुक्ति निश्चित विधि के अनुसार हुई मानी जाती है क्योंकि शक्तित्रय के द्वारा हुए विमुक्त नर की प्रारब्ध भुक्ति भी और मुक्ति भी विमोचन को प्राप्त हो जाती है अर्थात् भुक्ति-मुक्ति भी छूट जाती है। उदाहरण के लिए जैसे दर्पण में अपनी परछाई भी पिण्ड शरीर की आकृति जैसी दिखाई पड़ती है, उसी तरह ऐसे जीवन्मुक्त पुरुष को समस्त चराचर में शिव ही दिखाई देते हैं; यह दर्शन जल की उर्मियों पर सर्वत्र चन्द्र ही चन्द्र की भाँति दृष्टिगोचर होता है।

---

1. **तथा च—** इच्छाज्ञानक्रियारूपास्त्रिशूलं शक्तयो मताः। उक्तास्ता एव खट्वाङ्गं शुद्धसत्त्वप्रवर्तिकाः॥

स्वयं देवी स्वयं देवः स्वयं शिष्यः स्वयं गुरुः।
स्वयं ध्यानं स्वयं धाता स्वयमेव परात्परम्॥ 26॥
यत्र यत्र मनो याति (यायात्) तत्र तत्र परः शिवः।
वेदो वेद्यं जपो मौनमाचारः प्रार्थना क्रिया॥ 27॥
व्रतं स्नानं तीर्थयात्रा चोपवास्यं त्रिरात्रिकम्।
इत्येतदाश्रयस्थानं मुक्तिस्थानं निराश्रयम्॥ 28॥

(इससे निष्कर्ष यह हुआ कि 'सोऽहं' का जाप करने वाला पराशक्ति को पाकर शिवतत्त्व को पा लेता है जिसमें) वह स्वयं को देवी तथा स्वयं को देव, स्वयं को शिष्य और स्वयं को गुरु, स्वयं को ध्यान और स्वयं को ध्यान करने वाला जानकर स्वयं को ही परात्परम् परमात्मा जान लेता है। ऐसी अवस्था में जहाँ-जहाँ उसका मन जाता है, वहाँ-वहाँ उसे परम शिव के ही दर्शन होते हैं और उसे समस्त वेद जाने हुए हो जाते हैं और उसके समस्त जप भी मौन में समा जाते हैं। उसके समस्त आचार-व्यवहार ही उसकी प्रार्थना की क्रिया बन जाती है। इस संसार के भवसागर में व्रत, स्नान, तीर्थयात्रा, उपवास, त्रिरात्रिक जपादि सब आश्रय के स्थान है, परन्तु जीवन्मुक्त को प्राप्त मुक्तिस्थान ही एक मात्र निराश्रय है अर्थात् स्वतन्त्र है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजिपृच्छायां
शिवशक्तिब्रह्मज्ञानाधिकारो नाम चतुर्दश सूत्रम्॥ 14॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में शिव शक्ति ब्रह्मज्ञान अधिकार नामक चौदहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 14॥

गीतासद्भावोऽपरेऽपराजितबोधनार्थं पञ्चदश सूत्रम्॥ 15॥

अपराजित उवाच —

बीजरूपा कथं जाता वृद्धिंयाता परेश्वर।
क्रियाशक्तिः कथं भूता बीजयोनिरथाम्भसि॥ 1॥

अपराजित बोले — हे परमेश्वर! यह प्राणी बीज रूप में कैसे जन्म लेता है, जन्म के बाद वृद्धि को कैसे प्राप्त करता है? इस प्राणी में क्रियाशक्ति कैसे होती है जो कि बीज योनि को जैसे जल से सींचने पर बीज बढ़ता है, वैसे ही बढ़ती है।

गुरुमार्गाः कथं प्रोक्ताः कुलाकुलोभयोद्भवाः ?।
कथयस्व महाभाग मम भ्रान्तिहरं प्रभो॥ 2॥

इसी प्रकार गुरु प्रदर्शित मार्ग किसे कहते हैं और कुल व अकुल इस भव में

उद्भव करने वाले क्या हैं ? हे महाभाग! यह सब ठीक-ठीक कहकर हे प्रभो, मेरी भ्रान्ति को दूर करें।

विश्वकर्मोवाच —

वटो यथा च बीजथस्तथा शुक्रगता तनुः।
सङ्घाटे काञ्चनं यद्वत् क्रियादीपेन दृश्यते॥ 3॥

हे वत्स! जिस प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म वट बीज में सम्पूर्ण वट वृक्ष समाया हुआ है उसी प्रकार जीव के शुक्र में उसका समस्त शरीर सम्पूर्ण रूप से समाया हुआ है। जिस प्रकार कञ्चन में स्थित आभूषण का घड़ा गया रूप क्रिया अर्थात् घड़ाई रूपी दीप से दिखाई पड़ता है, वैसे यह सब है।

क्रियामाध्यात्मिकीं विद्यात् क्रियाशक्तेरनुक्रमात्।
देहस्थं दीपकं दिव्यं शक्तिरूपण बोधितम्॥ 4॥
तेन बोधितमात्रेण पश्यन्ति भुवनत्रयम्।
त्रैलोक्यदीपकं दिव्यं तत्त्वोद्योतकरं परम्॥ 5॥

प्राणी की क्रिया शक्ति को आध्यात्मिक समझा जाता है। इसी क्रियाशक्ति के अनुक्रम से बढ़ते-बढ़ते देह में स्थित दिव्य दीपक प्रज्वलित हो जाता है, उसे ही शक्ति रूप से समझा जाता है। यह समझ में आते ही तीनों लोकों के चराचर जगत के प्राणी समूहों का ज्ञान से स्पष्ट दर्शन होने लगता है। इस तरह यह ज्ञान, तत्त्व को प्रकाशित करने वाला परम दिव्य त्रैलोक्य दीपक स्वरूप है।

मूढात्मानो न बुध्यन्ति गुरुमार्गविवर्जिताः।
गुरुवक्त्रे स्थितं तत्त्वं प्राप्यते तत्प्रसादतः॥ 6॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोराराधनं कुरु।

इस तत्त्व को गुरुमार्ग पर नहीं चलने वाले मूढ़ लोग नहीं समझ सकते क्योंकि यह परम तत्त्व तो गुरुदेव के मुख में ही स्थित होता है और वह गुरु की कृपा से ही प्राप्त हो सकता है। इसलिए यह तत्त्व प्राप्त करने के लिए सभी प्रयत्नों से गुरुदेव की आराधना करो।

गुरुपूजननिर्देशमाह —

गुरुपूजा प्रकर्त्तव्यागन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥ 7॥
पुष्पधूपैश्च नैवेद्यैर्वस्त्रालङ्कारभूषणैः।
गृहक्षेत्रपुरग्रामैर्गजाश्वशयनासनैः॥ 8॥

तस्मात् पूजा प्रकर्तव्या ह्यात्मना च धनेन च।

गुरुदेव की पूजा गन्ध, पुष्प, अक्षतादि से करनी चाहिए। गुरु पूजार्थ पुष्प, धूप, नैवेद्य, वस्त्रालङ्कार, गृह, खेत, नगर, ग्राम, हाथी-घोड़े, शयन-आसनों को समर्पित करना चाहिए। उन्हें यह सब भेंट में अर्पण करना चाहिए। इसलिए गुरुतत्त्व प्राप्ति के लिए स्वयं अपने आपको और धनादि को समर्पण करके गुरुदेव की पूजा करनी चाहिए।

गुरुमाहात्म्यमाह —

गुरुलोपो न कर्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत्॥ 9॥
यावत्कालं भवेद्देहस्तावदेव गुरुं स्मरेत्।
गुरुर्माता पिता देवो गुरुर्ज्ञानं कुलाकुलम्॥ 10॥

गुरु का लोप कभी नहीं करना चाहिए अर्थात् कभी भी गुरु विहीन नहीं रहना चाहिए। यदि कभी ऐसा अवसर भी आ जाए कि गुरु से दूर, स्वच्छन्द, अकेला रहना पड़े तो भी जब तक इस देह से जीवित रहो, तब तक गुरुदेव का सदा स्मरण करते रहो क्योंकि गुरुदेव ही माता, पिता, देव और सर्वस्व है, कुल और अकुल का बोधक भी गुरुज्ञान ही है।

यस्यैवं संस्थितो भावस्तस्य देवसमं कुलम्।
आसनं शयनं यानं मणिकाञ्चनभूषणम्॥ 11॥
साधकेन न कर्तव्यं गुरो (र्वै) चाधिकं ननु।

यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि जिस देव के प्रति आपका भाव दृढ़ता से संस्थित हो गया हो, उसी देव के समान कुल के आप हो जाते हैं। साधक को चाहिए कि वह अपने आसन, शयन, यान तथा मणिकाञ्चन, आभूषणादि को किसी भी प्रकार से गुरु से अधिक महत्व न दें। गुरु के सामने अपना वैभव प्रदर्शन नहीं करें।

गुरोः शय्यासने यानं पादुकोपानहौ पदम्॥ 12॥
स्नानोदकं तथाच्छायां लङ्घयेन्न कदाचन।
कर्मणा मनसा वावा यैश्च नाराधितो गुरुः॥ 13॥
तस्माद् ज्ञानं महारत्नमत्यन्तं गूढतां गतम्।
योगिनी शाकिनी कर्म ? यस्य भक्तिस्तु निश्चला॥ 14॥

गुरुदेव की शय्या, आसन, यान, पादुका, पनही-पगरखी, चरणचिह्न, स्नान का जल तथा गुरुदेव के शरीर की परछाई को कभी नहीं लाङ्घना चाहिए क्योंकि जिसने

मनसा, वाचा, कर्मणा गुरु तत्त्व की आराधना की है अर्थात् उसके लिए यह परम कर्त्तव्य है। इस तरह जिस साधक की गुरुतत्त्व में निश्चला, अडिग भक्ति है, वह योगिनी, शाकिनी क्रम के अत्यन्त गूढ़ता को पहुँचे हुए ज्ञान महारत्न का अधिकारी हो जाता है।

तस्य प्रवर्तते शीघ्रं निर्वाणं परमं पद्म।
इत्थं समययुक्त्या च गुरुभक्तो यतेन्द्रियः ॥ 15 ॥
दृढचित्तेन चादद्याद् ज्ञानं त्रैलोक्यपूजितम्।
मूलसूत्रमहारत्नं रत्नपीठविनिर्गतम् ॥ 16 ॥

ऐसा साधक शीघ्र ही निर्वाण के परमपद की ओर अग्रसर हो जाता है। यही यतेन्द्रिय गुरुभक्त के लिए युक्त समय समझना चाहिए और वह दृढ़चित्त से साधना करने से प्राप्त इस ज्ञान के बल पर त्रैलोक्य पूजित हो जाता है। यह ज्ञान मूलसूत्र रूपी महारत्न है जो गुरुतत्त्व रूपी रत्नपीठ से निकला हुआ समझना चाहिए।

सारभूतं महातत्त्वं मुक्तिमार्गप्रकाशकम्।
आदेयं गुरुभक्ताय वज्रकपाटमुत्तमम् ॥ 17 ॥

यही सारतत्त्व, महातत्त्व है जो मुक्तिमार्ग को प्रकाशित करने वाला है और गुरुभक्त को गुरुदेव के द्वारा दिया गया, उसकी रक्षा करने वाला, सर्वोत्तम वज्रकपाट रूप से मिला हुआ तत्त्वज्ञान है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां गीतासद्भावोऽपरेऽपराजितबोधनाधिकारो नाम पञ्चदश सूत्रम् ॥ 15 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में गीता सद्भाव अपरनाम अपराजितबोध अधिकार नामक पन्द्रहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 15 ॥

सत्वरजस्तमः षोडश सूत्रम् ॥ 16 ॥

अपराजित उवाच —

सत्त्वं रजस्तमः कीदृक् कथं तेषां समुद्भवः।
संसारस्य समस्तस्य जननी जगमालिनी ? ॥ 1 ॥
समुद्भूता कथं देव संसारसृष्टिमालिका।
सत्त्वं रजस्तमश्चैवं कथयस्व प्रसादतः ॥ 2 ॥

अपराजित बोले — सत्व, रज और तम (गुण) क्या हैं ? इनका उद्भव कैसे होता है ? इस समस्त संसार की जननी इन्हीं सत्व, रज, तम की शृङ्खला ही है ? हे

देव! यह संसार की सृष्टि शृङ्खला सत्व, रज, तम की किस प्रकार उत्पन्न हुई, इसके विषय में आप कृपा करके कहिए।

विश्वकर्मोवाच —

उत्पत्तिर्जगतो हेतुर्निर्मिता किल विष्णुना।
स्त्रष्टा वै सर्वशिल्पाना शङ्खशार्ङ्गादिधारिणा॥ 3॥
तत्रोद्भूतं रजः सत्त्वं तमश्चापि तृतीयकम्।
तदुद्भवा च सृष्टिस्तु जनसन्तानसन्ततिः॥ 4॥

विश्वकर्मा बोले — जगत की उत्पत्ति के लिए ही शङ्ख, शार्ङ्गपाणि भगवान् विष्णु ने इन सब सत्व, रज व तम का निर्माण किया है और वे विष्णु ही समस्त शिल्पों के सृष्टा है। श्रीविष्णु भगवान् से ही सत्व, रज और तीसरा तम उत्पन्न हुआ है और इनसे ही सृष्टि की जन सन्तान परम्परा का उद्भव हुआ है।

रजो ब्रह्मा तमो विष्णुः रात्त्वं चैव महेश्वरः।
ततस्त्रिकं समुत्पन्नं संसारसृष्टिकोद्भवम्॥ 5॥

इस सृष्टिक्रम में रज ब्रह्मा स्वरूप, तम विष्णु स्वरूप और सत्व महेश्वर रूप है। इस त्रिक् से समस्त संसार की सृष्टि का उद्भव हुआ है।

चतुरशीतिलक्षाणि जीवयोनिरनेकधा।
तमसस्तामसी शक्तिस्तपस्तेजोविवर्द्धिनी॥ 6॥

चौरासी लाख की संख्या में अनेक प्रकार की जीव योनियाँ हैं। तम से उत्पन्न होने वाली तामसी शक्ति तप और तेज को बढ़ाने वाली है।

रजसो राजसी ख्याता रजो ज्ञाने ब्रह्मात्मजा।
माया मोहश्च तत्कार्य वैष्णवी मोहशालिनी॥ 7॥

रजस से राजसी शक्ति विख्यात है। वह ब्रह्मात्मजा है और ज्ञान क्षेत्र का वर्द्धन करने वाली है। भगवान् विष्णु से उत्पन्न होने वाली तामसी शक्ति मोहशालिनी है और उसके कार्य माया और मोह है।

सत्त्वाच्च सात्त्विकी शक्तिः सत्त्वज्ञाने शिवात्मजा।
संसारप्रीतिमुक्तानां मोक्षदा सत्त्वसात्त्विकी॥ 8॥

सत्वगुण से सात्विकी शक्ति शिव से उत्पन्न हुई है और सत्वज्ञान का वर्द्धन करने वाली है। यह सत्वज्ञान शक्ति संसार की वासनाओं से मुक्तात्माओं को मोक्ष प्रदान करने वाली है।

तमः पिता रजो माता गुरुः सत्त्वं प्रतिष्ठितम्।
एवं प्रवर्तते सृष्टिः संसारे मोहशालिनी॥ 9॥
रजो रक्तं समाख्यातं तमः शुक्रं प्रतिष्ठितम्।
सत्त्वं पवन इत्युक्तं संसारे सृष्टिमालिनी॥ 10॥

तम पिता के रूप में, रज माता के रूप में और सत्व गुरु के रूप में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार इन तीनों से संसार में मोहशालिनी यह सृष्टि प्रवर्तित हुई है। रज रक्त रूप में विख्यात है और तम शुक्र के रूप में प्रतिष्ठित है। सत्व पवन रूप में कहा गया है। इस तरह इस संसार में सृष्टि होने से इन तीनों रज, तम और सत्व की शृङ्खला बनी हुई है।

रजः सूर्यः समाख्यातस्तमश्चैवं तु चन्द्रमाः।
सत्त्वं पवनमित्याहुः संसारमोघमालिका॥ 11॥

इसी प्रकार रज सूर्य के रूप में विख्यात है और तम चन्द्रमा के रूप में है जबकि पवन के रूप में सत्व है। इससे संसार में अमोघ शृङ्खला चलिष्णु है।

रजः पृथ्वी समाख्याता तमश्चाकाशसम्भवम्।
सत्त्वं पवनमित्युक्तं वर्तते मोघमालिनी॥ 12॥

पुनः देखें कि रज पृथ्वी कही गई है और तम को आकाश तथा सत्व को पवन कहा गया है। इस तरह यह पवन इस रज-तम की मोघमाला को वर्तता है अर्थात् चलाता है।

रज आपस्तथा ख्याता तमस्तेजः समुद्भवम्।
सत्त्वं मारुतमित्याहुस्त्रिभिः संसारसम्भवः॥ 13॥

रज जो जल के रूप में विख्यात है और तम अग्नि के रूप में उद्भूत है। सत्व मारुत के रूप में है। इन तीनों से ही यह संसार सम्भव हुआ है।

इच्छाशक्ती राजसी स्यात् तामसी तु क्रियात्मिका।
सात्त्विकी ज्ञानशक्त्याख्या शम्भुसंसारसम्भवाः॥ 14॥

इच्छा शक्ति को राजसी कहा है और क्रियात्मिका शक्ति को तामसी कहा है जबकि ज्ञानशक्ति को सात्विकी कहा है जो शम्भू स्वरूप है और इन तीनों से ही यह संसार हुआ है अर्थात् यह सृष्टि रचना हुई है।

शक्तिरूपे रजः ख्यातं शिवरूपे तमो मतम्।
बीजरूपे स्थितं सत्त्वं त्रिभिः संसारसम्भवः॥ 15॥

शक्ति रूप में रज विख्यात है और शिव रूप में तम विख्यात है, ऐसा समझें।

इनमें बीज रूप से सत्व स्थित है। इस प्रकार इन तीनों से इस संसार की उत्पत्ति सम्भव हुई है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां सत्त्वरजस्तमोऽधिकारो नाम षोडश सूत्रम्॥ 16 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में सत्व-रज-तम अधिकार नामक सोलहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 16 ॥

ग्रहादिध्रुवमण्डलं सप्तदश सूत्रम्॥ 17॥

अपराजित उवाच —

कथं दिनं कथं रात्रिः संसारसृष्टिकोद्भवः।
केन साऽऽक्रमते चेत्थं चन्द्रसूर्यभ्रमणे रता॥ 1॥
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव ध्रुवाद्याश्च समस्तकाः।
तेषां मृत्युः कथं प्रोक्तः कथयस्व प्रसादतः॥ 2॥

अपराजित बोले — इस संसार में दिन कैसे उत्पन्न हुआ और रात्रि कैसे हुई और किसके द्वारा इन चन्द्र-सूर्य को भ्रमण कराने में क्रम से शक्ति लगी हुई है? समस्त ग्रहों, नक्षत्रों और ध्रुवादिक की विलुप्ति कैसे होती है, इसे आप कृपापूर्वक कहिए।

विश्वकर्मोवाच —

तेजसः काश्यपस्यर्कचन्द्रमृत्युसमुद्भवः।
शिवशक्तिसमायोगात् संसारसृष्टिसम्भवः॥ 3॥
शिवः सूर्यः शशी शक्तिः संसारसृष्टिकोद्भवः।
दिवाकरः शिवो भूत्वा शशी चैव निशाकरः॥ 4॥
दिवारात्रिसमायोगो योगश्च चन्द्रसूर्ययोः।
तेजसो मृत्युसंयोगः संयोगः सृष्टिकारकः॥ 5॥

विश्वकर्मा बोले — काश्यप के तेज से सूर्य-चन्द्र और मृत्यु समुद्भूत हुए। शिव-शक्ति के सहयोग से ही यह सृष्टि सम्भव हुई है। शिव सूर्यरूप है और शक्ति चन्द्ररूप, इन दोनों से सृष्टि उत्पन्न हुई और दिवाकर सूर्य होकर तथा निशाकर शक्ति होकर दिन और रात्रि का समायोग करते हैं। यही योग सूर्य और चन्द्र दोनों का है। इसी तरह तेजस से मृत्यु का संयोग होता है और इस संयोग को सृष्टिकारक भी कहते हैं।

अथ सूर्यचन्द्रवंशानुकीर्तनम् —

सूर्यवंशोद्भवाश्चैव चन्द्रवंशोद्भवा नृपाः।
प्रवर्तते मही राज्य नृपश्च पृथिवीपतिः ॥ 6 ॥

(प्रारम्भिक वंशों में) सूर्यवंश में उत्पन्न होने वाले राजाओं और चन्द्रवंश में उत्पन्न होने वाले राजाओं ने इस पृथ्वी पर राज्य सञ्चालित किया और पृथ्वीपति कहलाए।

सूर्यवंशे पृथूराजा बुधः शशिकुलोद्भवः।
सूर्यवंशसमृद्धौ तु क्षीयते सोमवंशकः।
सोमवंशसमृद्धौ च क्षीयते सूर्यवंशकः ॥ 7 ॥
एकोत्तरशतं यावत् क्षीयते वंशकावुभौ।
पृष्ठोरुस्पर्शभूतश्च सम्प्रवेत द्वंसाधिपः ? ॥ 8 ॥

सूर्यवंश में राजा पृथु हुए और चन्द्रवंश में बुध राजा हुए। इस तरह जब-जब सूर्यवंश समृद्ध हुआ तब-तब चन्द्रवंश क्षीण हुआ और जब चन्द्रवंश समृद्ध हुआ तो सूर्यवंश क्षीण हुआ। इन दोनों ही वंशों में एक सौ एक वंशज जब तक क्षय होते हैं, तब उनके पीछे, उरुस्पर्शभूत अर्थात् अन्य वंशों के विकास के साथ-अन्य नए वंशाधिपति राजा होते हैं।

ब्रह्मापुत्रो मरीचिश्च तज्जातः कश्यपो मुनिः।
सूर्यो जातः कश्यपाच्च सूर्यपुत्रो मनुस्तथा ॥ 9 ॥
मनोश्चेक्ष्वाकुरुत्पन्नस्ततश्च कुक्षिसम्भवः।
कुक्षिपुत्रो विकुक्षिश्च विकुक्षेर्वेनसम्भवः ॥ 10 ॥

पितामह ब्रह्मा के पुत्र मरीचि हुए। मरीचि के कश्यप हुए जो मुनि हुए। कश्यप मुनि के सूर्य हुए और सूर्य के पुत्र मनु हुए। मनु के इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए और इक्ष्वाकु के कुक्षिवान् हुए। कुक्षिवान के विकुक्षि हुए जबकि विकुक्षि के वेन नामक राजा हुआ।[1]

---

1. चन्द्रगुप्त वेदालङ्कार ने अपने 'बृहत्तरभारत' में मेसोपोटामिया के सुमेर राजवंश और भारत के सूर्यवंशी राजवंश का एक तुलनात्मक परिचय देते हुए लिखा है कि सुमेर-सुराष्ट्र भारत से गए व्यापारी थे जिनके इतिहास में भारतीय राज्य के रूप में मेसोपोटामिया समाहित हुआ। इसी से वहाँ की वंशावली भारतीय वंशावली ही है:—

सुमेरिया की वंशावली भारत की सूर्यवंशावली

1...................... 1. वैवस्वत मनु

वेनो नाम महाराजो महावीर्यो महाबलः।
शरीरमथनात्तस्य तथा पृथुः समुद्भवः॥ 11॥
पृथुश्चैवं समुद्भूतस्तथा ख्यातः कुलाधिपः।
रामश्च रघुवंशेऽभूत् सूर्यवंशे महाबलः॥ 12॥

उक्त वेन नामक महाराजा महा पराक्रमी और महाबली थे। इनके शरीर के मन्थन से पृथु का जन्म हुआ। पृथु से कई एक विख्यात राजा इस कुल में हुए। सूर्यवंश में महा बलवान रघुवंश में राम का जन्म हुआ।

इत्यमनन्तरकेत्वादीनामाह —

सूर्यपुत्रः शनिजीतः केतुकश्च समुद्भव ?।
अष्टोत्तरशतं$_{108}$ चैव केतुकश्च ब्रह्मकोद्भवः ?(दण्डकौः)॥ 13॥
शम्भुतेजोभवं चोर्ध्वं दृश्यते ज्ञानचक्षुषा।

(अब केतु व ग्रहादि के विषय में कहा जा रहा है) सूर्य के शनि नामक पुत्र हुआ और केतु भी हुए। केतु ब्रह्मा से भी हुए। इनकी संख्या 108 हैं।[1] ये समस्त केतु शम्भू के तेज से ऊँचे आकाश में ज्ञानचक्षु से ही दिखाई देते हैं, सामान्य आँखों से नहीं।

---

2. उक्कुसी	2. इक्ष्वाकु
3. बक्कुस	3. विकुक्षि
4. पुनपुन	4. पुरञ्जय
5. (नक्ष) अनेना	5. अनेना (वेन)-पृथु.... राम

यह अनेना ही मेसोपोटामिया में ओनेस नाम से और भारत में वेन नाम से पुराणों में विख्यात हुआ है। मेसोपोटामिया के बोगजकोई नामक स्थान पर वक्कुस (विकुक्षि) की विशाल मूर्ति चट्टान पर खुदी हुई है जिसके एक हाथ में गेहूँ की बाली और दूसरे हाथ में हल धारण किया हुआ है। यह आर्यों का कृषि प्रचार है। वहीं 1360 ई. पू. का मितन्नी राजा दशरथ और मिस्र के फराहों के बीच हुआ सन्धिनामा लिखा हुआ शिलालेख ह्यूगोविकलर को खुदाई करते हुए मिला था जिसमें आर्यदेवता- मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य को साक्षी मानकर सन्धि की गई। ये लोग भारत से गए आर्य हैं। मोहनजोदाड़ा की खुदाई से भी यही लगता है। (बृहत्तरभारत, गुरुकुल कांगड़ी, 1939, पृष्ठ 470)

1. नारदीय मयूरचित्रकम् में सूर्यपुत्र केतु का वर्णन आया है जो मोती व सोने के समान पचीस संख्या वाले, पूर्व या पश्चिम दिखाई देने वाले है जिनके उदय होने पर भय होता है— मुक्ता कनक संकाशाः पञ्चविंशतिसंख्यकाः। प्राक् परस्याञ्च ते दृष्टाः सूर्यपुत्राः भयप्रदाः॥ (1, 6) 'ब्रह्मकोद्भव' या 'ब्रह्मदण्डको' भी केतु माने गए हैं जो ब्रह्मा के पुत्र हैं और क्रूर, तीन रङ्गवाले और तीन शिखा वाले तथा क्षयकारी कहे गए हैं— क्रूरस्त्रिवर्णस्त्रिशिखः क्रूरो ब्रह्मसुतः स्मृतः। सर्वास्वाशासु संदृष्टो ब्रह्मदण्डः क्षयावहः॥ (तत्रैव 1, 11) ग्रन्थकार ने यहाँ ब्रह्मा के पुत्र केतुओं की संख्या 108 बताई है जबकि मयूरचित्रकम् में इनकी संख्या 204 दी गई है।

अथ पञ्चाङ्गलक्षणानि —

नक्षत्रयोगा राशिश्च तिथयः करणादिकम्॥ 14॥
तारकालिङ्गमित्युक्तं मातृमण्डलसम्भवम्।
वैष्णवे च पदे चैव भ्राम्यतीत्थं ध्रुवावृतम्॥ 15॥

नक्षत्र, योग, राशि, तिथियाँ और पाँचवाँ करण— ये सभी पञ्चाङ्ग कहे जाते हैं। इन सबको तारक नाम से कहा गया है और ये सभी मातृमण्डल से उत्पन्न हुए हैं। ये समस्त तारक विष्णु के पद से ध्रुववृत्त के चारों ओर भ्रमणरत हैं।

ग्रहनामादीनां —

दिवाकरः शशाङ्कश्च भौमश्च बुध एव च।
त्रिदशाचार्यशुक्रौ च शनिश्च राहुकेतुकौ॥ 16॥
सूर्याद्यं च समं त्वेवं ध्रुवग्रहादिकं तथा।
भ्राम्यति दक्षिणावर्तमचाल्यं ध्रुवसत्पदम्॥ 17॥

सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहू और केतु ये ग्रह कहलाते हैं। सूर्य से लेकर सभी ग्रह समान रूप से अचल ध्रुव के चारों ओर प्रदक्षिणा क्रम से भ्रमण करते हैं।

प्रदक्षिणं तथर्क्षाणां सम्पूर्णा सप्तविंशतिः$_{27}$।
ऋक्षमध्ये यथा राशौ ग्रहास्तिथ्यादयस्तथा॥ 18॥
चारः क्रामति योगेन मेरुमावृत्य दक्षिणम्।

प्रदक्षिणा करने वाले सम्पूर्ण नक्षत्रों की संख्या 27 है। इन्हीं नक्षत्रों के बीच में ग्रह राशियाँ, तिथियाँ आदि होती हैं। ये सब मेरु पर्वत को दक्षिणावर्त करके विविध योगों में भ्रमण या चार करते हैं।

तत्रैव मण्डलपृथुत्वञ्च बिम्बमानमाह —

मण्डलानि पृथुत्वं च बिम्बमानं च कथ्यते॥ 19॥
क्षारार्णवोदकं भूमौ कथ्यते ग्रहमण्डलम्।
योजनैर्व्योमसङ्ख्यातं कथयामि समासतः॥ 20॥

अब मैं इनके मण्डल, प्रसार और बिम्बमान आदि के विषय में कहूँगा। भूमि पर लवणीय समुद्र के बारे में, ग्रहमण्डल के बारे में और असंख्य योजन की दूरी तक व्याप्त इस व्योम आकाश के बारे में भी संक्षेप से कहूँगा।

चतुर्दशलक्षाणां च योजनानां तु सङ्ख्यया।

ध्रुवचक्रसमुत्थाध्वा चक्षुर्ज्ञानेन व्योम्नि च॥ 21॥

सप्तलक्षार्धमादित्यं सहस्त्राणां द्विसप्ततिः।

भूमिक्षारार्णवोर्ध्वं च योजनान्यर्कमण्डलम्॥ 22॥

ब्रह्माण्ड के इस व्योमाकाश में चौदह लाख योजनों की संख्या तक असंख्य ध्रुवचक्र (निहारिकाएँ) फैले हुए हैं जो खुली आँखों से दिखाई देते हैं (अर्थात् दृग्गणित ज्योतिष के विषय हैं, दूरवीक्षण यन्त्रों की सहायतासे दिखाई सकने वाले ध्रुवचक्रों की तो बात नई नहीं है)। इन दिखाई देने वाले ध्रुवमण्डलों में साढ़े सात लाख तो आदित्य हैं, जो इस लवणीय समुद्र के ऊपर चौदह हजार योजनों की ऊँचाई पर स्थित अर्कमण्डलों अर्थात् सूर्यलोकों में फैले हुए हैं।

तत्परं चन्द्रमण्डलं पञ्चाशत्सहस्त्रैः स्थितम्।

अष्टाशीतिसहस्त्राणि भौमोर्ध्वे भौमसंस्थितिः॥ 23॥

इनके परे चन्द्र मण्डल अर्थात चन्द्रलोक है जो पचास हजार योजनों की दूरी पर स्थित है। इसी तरह चन्द्र मण्डल के ऊपर अठासी हजार योजन दूरी पर मङ्गल मण्डल की स्थिति है।

लक्षं त्रिषष्टिसहस्त्राणि भौमोर्ध्वे बुधमण्डलम्।

चतुर्विंशसहस्त्राणि बुधोर्ध्वे च बृहस्पतिः॥ 24॥

एक लाख तिरसठ हजार योजनों की दूरी पर स्थित, भौममण्डल से ऊपर बुध मण्डल है और बुध मण्डल से चौबीस हजार योजन ऊपर बृहस्पति मण्डल है।

सूर्योर्ध्वे चैव लक्षार्द्धं शुक्रस्य मण्डलं विदुः।

शुक्रलोकात्तथा चोर्ध्वं षट्षष्टिभिः सहस्त्रकैः॥ 25॥

सूर्यतश्च परे ख्यातः सूर्यपुत्रशनैश्चरः।

सूर्य के ऊपर आधे लाख योजन की दूरी पर शुक्र का मण्डल विद्यमान है। शुक्रलोक से ऊपर, छासठ हजार योजन दूरी पर सूर्य से परे सूर्यपुत्र शनैश्चर का मण्डल विख्यात है।

सूर्याधः षष्टिसहस्त्रै राहुमण्डलमास्थितम्॥ 26॥

रवेः समन्तात् केतुश्च रथपृष्ठेऽनुगच्छति।

शतकोटिर्योजनानां ब्रह्माण्डस्य प्रमाणकम्॥ 27॥

इसी प्रकार सूर्य से नीचे, साठ हजार योजन पर राहुमण्डल स्थित है और रवि या सूर्य के अन्त में साथ-साथ सूर्यरथ के पीछे-पीछे केतु जाता है। इस प्रकार इस ब्रह्माण्ड का विस्तार प्रमाण सौ करोड़ योजनों का है।

मेरुर्लिङ्गं समाख्यातं पृथ्वी च जलधारिका।
वितानं व्योमचाख्यातं लम्बतीत्थमुमापतिः ॥ 28 ॥

भूमण्डल में मेरु पर्वत शिवलिङ्ग के समान आख्यात है और यह पृथ्वी उस शिवलिङ्ग की जलधारिक स्वरूप है, यह व्योमाकाश विशाल वितान के रूप में आख्यात है जिसमें उमापति महेश्वर लम्बायमान रूप में मेरु स्वरूप स्थित है।

ध्रुवमण्डलमुत्पन्नं ब्रह्माण्डाकाररूपकम्।
तारामण्डलमित्युक्तं कथ्यते तच्च सङ्ख्यया ॥ 29 ॥
सप्तदशार्बुदमेव लक्षाणां षष्टिरेव च।
षष्टिश्च तारकायुक्तं खङ्ख्यातं ध्रुवमण्डलम् ॥ 30 ॥
अरुन्धती विष्णुपदी सप्तर्षयस्तथोत्तमाः।
ध्रुवाद्यं तारकालिङ्गमेतेषां बाह्यतो ध्रुवम् ॥ 31 ॥

ध्रुव मण्डल में ब्रह्माण्डाकार रूप में जो तारा मण्डल कहा गया है, उसकी संख्या सत्रह अरब, साठ लाख और साठ तारकों के साथ संख्या वाला यह ध्रुव मण्डल है। अरुधन्ती, विष्णुपदी, सप्तऋषि उत्तम और ध्रुव से आरम्भ होने वाले समस्त तारक लिङ्ग है जो ध्रुव के बाहर की ओर है अर्थात् ध्रुव केन्द्र में है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
ग्रहादिध्रुवमण्डलाधिकारो नाम सप्तदश सूत्रम् ॥ 17 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में ग्रहादि ध्रुवमण्डल अधिकार नामक सत्रहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 17 ॥

ग्रहगतिमानमुहूर्तादिप्रमाणमष्टादश सूत्रम् ॥ 18 ॥

अपराजित उवाच —

कथितानि मण्डलानि ध्रुवादेर्ग्रहसङ्ख्यया।
अतस्तेषां पुनस्त्वेवं बिम्बमानं निबोधय ॥ 1 ॥
बिम्बमानगतिश्चैव ग्रहाद्याः क्रमयोगतः।
भ्रमन्ति दक्षिणावर्ते ह्यध्वनि स्वप्रमाणतः ॥ 2 ॥
तिथिसङ्ख्याप्रमाणं च पक्षमासौ तथैव च।
ऋतुकालं वत्सरांश्च कथयस्व समासतः ॥ 3 ॥

अपराजित बोले — ध्रुवादि ग्रह मण्डलों की संख्या आपने कही, अब पुनः कृपा करके उनके बिम्बमानों के बारे में भी कुछ बताएँ। ग्रहों के क्रमवार बिम्बमान

और गति बताते हुए उनके किसी भी प्रकार की ध्वनि किए बिना अपने आप स्व प्रमाणतः दक्षिणावर्त भ्रमण करने के बारे में भी कहिए। हे प्रभो! तिथियों की संख्या, प्रमाण, पक्ष, मास, ऋतुकाल, वर्ष आदि के बारे में भी संक्षेप से बताइए।

विश्वकर्मोवाच —

बिम्बमानं ततस्तात शृणुचैकाग्रमानसः।
अनुक्रमेण कथये सूर्यादीनामथोऽधुना॥ 4॥
सूर्यादीनां ग्रहाणां तु कथ्यन्ते बिम्बकानि तु।
वृत्तव्यासौ बिम्बमाने कथयामि समासतः॥ 5॥

विश्वकर्मा कहने लगे — हे तात! मैं सूर्यादि से लेकर अभी तक के बिम्बमानों के बारे में अनुक्रम से कहता हूँ जिसे तुम एकाग्र मन से सुनो। सूर्यादि ग्रहों के बिम्बों के वृत्त और व्यास तथा उनके बिम्बमानों को संक्षेप से कहता हूँ।

सूर्यादिग्रहाणां बिम्बप्रमाणमाह —

षट्सहस्त्रपञ्चशतयोजनैः स्याच्च विस्तरः।
सूर्यबिम्बप्रमाणं तु विद्युत्कोटिसमप्रभम्॥ 6॥

सूर्य के बिम्बमान का विस्तार छह हजार पाँच सौ योजन का है और उसकी प्रभा अर्थात तेज चमक करोड़ों विद्युत तड़ितों के समान है।

चतुर्भिश्च सहस्त्राणां द्व्यष्टाशीत्या च योजनैः।
सोमबिम्बप्रमाणं तत् सुधातेजः समुद्भवम्॥ 7॥

चन्द्रमा का बिम्बमान चार हजार अठासी योजनों का है, उससे अमृत रूपी तेज निकलता रहा है।

भौमस्य बिम्बमानं तु पृथु योजनविंशतिः।
बुधस्य बिम्बमानं च विस्तृतं शतयोजनैः॥ 8॥

मङ्गल के बिम्बमान का प्रमाण बीस योजन के विस्तार का है और बुध के बिम्बमान का प्रमाण एक सौ योजन के विस्तार में है।

द्वाचत्वारिंशश्च सार्ध गुरुबिम्बं प्रमाणतः।
पञ्चसप्ततिः शुक्रस्य शतार्ध पञ्च वै शनैः॥ 9॥

साढ़े बयालीस योजन गुरु का बिम्बमान है और पिचहत्तर योजन शुक्र का बिम्बमान है। इसी प्रकार पचपन योजन का बिम्बमान शनि ग्रह का कहा गया है।

अष्टसहस्त्रयोजनप्रमाणं राहुमण्डलम्।

केतोश्च भौमतुल्यं स्यात् कथितं च प्रमाणतः ॥ 10 ॥

इसके अतिरिक्त राहु मण्डल का प्रमाण आठ हजार योजन का है तथा केतु का बिम्बमान मङ्गल के तुल्य अर्थात् बीस योजन का है। यह मैंने प्रमाणतः कहा है।

ध्रुवस्य प्रदक्षिणागतिक्रमाह —

गतिक्रमं च वक्ष्याति ध्रुवमेकं प्रदक्षिणम्।
योजनैश्च गतिस्त्वेवं गम्यते च प्रदक्षिणम् ॥ 11 ॥

अब मैं ध्रुव की एक प्रदक्षिणा के गतिक्रम तथा प्रदक्षिणा में जाते समय की उनकी योजनों में होने वाली गति के बारे में कहता हूँ।

निमिषे द्विशतं भानुः ग्लौः सार्धद्विसहस्त्रकम्।
त्रयस्त्रिंशदधिकशतयोजनैर्भौमगतिः ॥ 12 ॥
बुधश्च सूर्यमानेन भ्रमति ध्रुवदक्षिणम्।
गुरुश्च क्रमते चैव योजनैर्दशपञ्चभिः ॥ 13 ॥
शुक्रसूर्यगतिश्चैव द्विशतं निमिषान्तरे।
सप्तयोजनत्रिभागं निमिषात्तु शनैश्चरः ॥ 14 ॥
योजनरकादशभी राहोश्च निमिषे गातः।
केतुर्भानोः समन्ताच्च भ्रमते दक्षिणावृतम् ॥ 15 ॥

निमिष में सूर्य की गति दो सौ योजन और ग्लौ (चन्द्रमा) की एक निमिष में ढाई हजार योजन गति होती है। एक निमिष में ही मङ्गल की गति एक सौ तैंतीस योजन की होती है। बुध की गति सूर्य के मान के बराबर एक निमिष में दो सौ योजन होती है जो ध्रुव के दक्षिण में भ्रमण करता है। गुरु की भ्रमण गति भी एक निमिष में पन्द्रह योजन की होती है। शुक्र की भी सूर्य की गति के समान ही एक निमिष में दो सौ योजन की होती है तथा शनि की गति एक निमिष में पौने आठ योजन की होती है। इसी प्रकार राहु की गति एक निमिष में ग्यारह योजन और केतु का गतिमान भी राहु के समान ही ग्यारह योजन प्रति निमिष होता है जो दक्षिणावृत्त में भ्रमण करता है।

आमध्याह्नमुदयतो ह्यष्टधा च दिनार्धकम्।
चत्वारिंशत्त्वेकहीनं सहस्त्राण्याद्यसङ्क्रमे ॥ 16 ॥

सूर्योदय से मध्याह्न तक अष्टधा अर्थात् दिनार्द्ध होता है। इस अवधि से चालीस से एक कम अर्थात् उनतालीस हजार संक्रमण सूर्योदय से मध्याह्न तक होते हैं।

तदूर्ध्वं च षड्विंशत्या त्वेकत्रिंशत् सदा क्रमः।

चतुर्विंशतिरूपर्ध्वे तु दशपञ्च तथोत्तरे॥ 17॥

इससे ऊपर छब्बीस से लेकर इकतीस तक के सदाक्रम में, चौबीस से ऊपर पन्द्रह, इस प्रकार कुल उनतालीस उत्तर में भी होते हैं।

अग्रे गतिश्च दशभिः पञ्चभिर्मध्यमाश्रिते।

त्रिभिः सहस्रैर्मध्याह्ने योजनैर्गतिमादिशेत्॥ 18॥

इसके आगे की गति दस और पाँच के मध्य आश्रित रहती है। तीन हजार योजन की गति मध्याह्न तक (आदिशेत्) कही गई है।

पूर्वाह्ने च गतिं ज्ञात्वा विपरीता परेऽहनि।

एवं क्रमैः युक्तियोगो ग्रहाणां च गतिस्तथा॥ 19॥

पूर्वाह्न की गति जानने पर उससे विपरीत करके अपराह्न की गति लानी चाहिए। इस क्रम से युक्तियोग और ग्रहों की गति लाई जाती है।

भुक्तिमानं गतिश्चैवं सूर्यादिग्रहमण्डले।

प्रयुक्तश्च ध्रुवो मध्ये भ्रमते दक्षिणावृतम्॥ 20॥

सूर्यादि ग्रह मण्डल में जितनी गति भुक्तिमान हुई है, उसे प्रयुक्त करके वे ध्रुव के मध्य में दक्षिणावृत्त में भ्रमण करते हैं।

प्रदक्षिणीकृते तस्मिनहोरात्रमितिस्मृतम्।

प्रदक्षिणार्द्धमावृत्ते दृष्टे सूर्ये तथा दिवि॥ 21॥

तथा रात्रिरथाख्याता सूर्ये चादृष्टतां गते।

तस्यैव षष्टिकांशस्तु$_{60}$ प्रोच्यते घटिकाभिधा॥ 22॥

इस प्रकार के प्रदक्षिणा करने से इससे अहोरात्र अर्थात दिन-रात की संज्ञा से स्मरण किया जाता है। प्रदक्षिणा की अर्ध आवृत्ति में जब तक सूर्य दिखाई देता है, तब तक दिन कहा जाता है तथा सूर्य के अदृष्ट हो जाने पर (प्रदक्षिणा की दूसरी अर्ध आवृत्ति को) रात्रि कहा जाता है। इसी दिन और रात का साठवाँ अंश घटिका के नाम से जाना जाता है।

ताभिर्दिनं षष्टिभिश्च मासस्त्रिंशद्दिनैर्भवेत्।

घटिकाषष्टिपलैर्निमेषः पञ्चदशपलैः॥ 23॥

ऐसी साठ-साठ घटियों के योग से बनने वाले तीस दिनों का मास बनता है और घटिका साठ पल की तथा निमेष पन्द्रह पल का होता है।

निमेषषोडशांशस्तु कला कलार्ध लम्बकः।
लम्बकार्धे लम्बकाक्ष्यो लम्बकार्धे पादैस्त्रिभिः ?॥ 24॥

निमेष के सोलहवें अंश को कला कहते हैं और आधी कला को लम्बक तथा लम्बक का आधा लम्ब और लम्ब का आधा पाद होता है। तीन पाद से ?

उभौ करगृह्येत अलम्बं त्रुटिशब्दतः ?।
द्वे घट्यौ च मुहूर्त स्यात् लग्नं पञ्चघटीभवम्॥ 25॥

दोनों हाथों से अलम्ब त्रुटि शब्द से जाना जाता है ? दो घटी का मुहूर्त होता है और पाँच घटी का लग्न होता है।[1]

सूर्यादि सप्तवाराश्च क्रमेण तिथयस्तथा।
एवं प्रोक्तं मुहूर्तादि ह्यहोरात्रादिमध्यतः॥ 26॥
क्रमयुक्तिर्विधातव्या कालसङ्ख्यामतः परम्।

सूर्यादि से शुरू करते हुए सात (रविवार, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि) वार होते हैं और एक के क्रम से (पन्द्रह तक) तिथियाँ होती हैं। इस प्रकार से दिन और रात के मध्य मुहूर्त आदि कहे गए हैं। ऐसा क्रम युक्ति से बनाना चाहिए। इसके परे काल संख्या को कहा जाएगा।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्ताप[illegible]जितपृच्छां ग्रहगतिमान मुहूर्तादिप्रमाणनिर्णयाधिकारेऽष्टादश सूत्रम्॥ 18॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में ग्रहगतिमान मुहूर्तादि प्रमाण निर्णय अधिकार नामक अठारहवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 18॥

तिथिमासर्तुकालसंवत्सरो नामैकोनविंशं सूत्रम्॥ 19॥

अपराजित उवाच —

कालसङ्ख्या कथं देव ह्यष्टयामादिकं तथा।
तिथिसंवत्सराद्यं च कथयस्व प्रसादतः॥ 1॥
संवत्सराभिधानानि पृथक् चैवं प्रमाणतः।

---

1. विष्णुपुराण में 15 निमेष की 1 काष्ठा तथा 30 काष्ठा की 1 कला और 30 कला का 1 मुहूर्त कहा गया है, 30 मुहूर्त का 1 दिन एवं रात्रि बताई गई है और 30 अहोरात्र का एक मास कहा है— काष्ठापञ्चदशाख्याता निमेषा मुनिसत्तम। काष्ठा त्रिंशत्कला तास्ता त्रिंशन्मौहूर्त्तिको विधिः॥ तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्। अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः॥ तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे। अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम्॥ (अंश 1, 3, 8–10)

कथयस्व प्रसादेन विश्वेश जगतांपते ॥ 2 ॥

अपराजित बोले — हे देव! अष्टयामादिक काल संख्या कितनी है, आप कृपा करके तिथि, संवत्सरादि उन सबको कहें। सभी संवत्सरों के नामों को प्रमाणपूर्वक पृथक्-पृथक् समझाएँ। हे जगत्पते! विश्वेश!! इस बारे में आपका कृपा-प्रसाद चाहिए।

विश्वकर्मोवाच —

अहोरात्रादितः सङ्ख्या दृष्टे सूर्योदये मता।
अष्टौ यामाश्च सम्प्रोक्ता अहोरात्रसमुद्भवाः ॥ 3 ॥
जयो विजय अख्यातो महाशङ्कुश्च शङ्कुकः।
उदयाद्धि समाख्याताश्चत्वारश्च निशापतेः ॥ 4 ॥

विश्वकर्मा ने कहा — दिन-रातों की संख्या सूर्य के उदय होने के साथ देखकर मानी गई है। इन दिन-रातों में आठ याम होते हैं, ऐसा पहले (सूत्र 18) कहा गया है। उदयात् ही से निशापति या चन्द्रमा के चारों (1.) जय, (2.) विजय, (3.) महाशङ्कु, और (4.) शङ्कुक ये (याम) कहे गए हैं।

अथ तिथ्यादीनामाह —

अहोरात्रैस्तिथेर्नाम प्रोक्तं नन्दादिपञ्चकम्।
नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा वै पञ्चमी स्मृता ॥ 5 ॥
पञ्च पञ्च पुनः पञ्च मासार्धे तिथयस्तथा।
तिथिभिः पञ्चदशभिः पक्षो मासो द्विपक्षतः ॥ 6 ॥

दिन-रातों के तिथियों के नाम नन्दादि पाँच क्रम से कहे गए हैं— नन्दा (1, 6, 11), भद्रा (2, 7, 12), जया (3, 8, 13), रिक्ता (4, 9, 14) और पाँचवीं पूर्णा (5, 10, 15, 30) तिथियाँ हैं। इस प्रकार मासार्ध में ये पाँच-पाँच और पाँच तीन बार तिथियाँ होती हैं। ऐसी पन्द्रह तिथियों से पक्ष या पखवाड़ा बनता है और दो पक्षों से एक मास होता है।

तथा च स्पष्टाह—

आदौ नन्दादिकश्चैवं कालः स्याद् दशपञ्चभिः$_{15}$।
नन्दा प्रतिगदा$_{1}$ ज्ञेया द्वितीया$_{2}$ भद्रिका मता ॥ 7 ॥
तृतीया$_{3}$ च जया रिक्ता चतुर्थी$_{4}$ सम्प्रकीर्तिता।
तिथिः पूर्णा पञ्चमी$_{5}$ स्यादेवं हि तिथयो मताः ॥ 8 ॥

षष्ठी$_{6}$ च सप्तमी$_{7}$ चैव ह्याष्टमी$_{8}$ नवमी$_{9}$ तथा।
दशम्ये$_{10}$कादशी$_{11}$ चैव द्वादशी$_{12}$ च त्रयोदशी$_{13}$ ॥ 9 ॥
चतुर्दशी$_{14}$ पौर्णमासी$_{15}$ तिथयश्चन्द्रसम्भवाः।
चन्द्रस्तु षोडश$_{16}$कलस्तिथयो दशपञ्चभिः$_{15}$ ॥ 10 ॥

नन्दादिक से आदि करके काल पन्द्रह होते हैं। प्रतिपदा को नन्दा, द्वितीया को भद्रा, तृतीया को जय, चतुर्थी को रिक्ता और पञ्चमी को पूर्णातिथि कहा जाता है और ऐसे ही आगे (इसी क्रम से षष्ठ्यादि से न्यास करने पर) अन्य तिथियाँ होती है। षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णमासी तिथियाँ चन्द्रमा से बनती है। चन्द्रमा की सोलह कलाएँ हैं और तिथियाँ पन्द्रह हैं।

षोडशचन्द्रकलामाह —

शशिनी शान्तिनी चैव लक्ष्मिणी कामिनी तथा।
पुष्पिणी च शुभा शान्ता चाह्लादा कुमुदा तथा ॥ 11 ॥
शस्याशिनी मानिनी च तथा विद्याविशोधिनी।
महिषी द्वीपिनी सौम्या चामृता षोडशी तथा ॥ 12 ॥

चन्द्रमा की सोलह कलाएँ इस प्रकार हैं— (1.) शशिनी, (2.) शान्तिनी, (3.) लक्ष्मिणी, (4.) कामिनी, (5.) पुष्पिणी, (6.) शुभा, (7.) शान्ता (8.) आह्लादा, (9.) कुमुदा, (10.) शस्याशिनी, (11.) मानिनी, (12.) विद्या विशोधिनी, (13.) महिषी, (14.) द्वीपिनी, (15.) सौम्या और सोलहवीं (16.) अमृता।

सितपक्षे वर्द्धते च क्षीयते कृष्णपक्षके।
पूर्णिमा पूर्णचन्द्रेऽमावास्या क्षीणविधौ स्मृता ॥ 13 ॥

शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ बढ़ती हैं और कृष्णपक्ष में घटती जाती हैं। पूर्णचन्द्र होने पर पूर्णिमा कही जाती है और चन्द्रमा के क्षीण हो जाने को अमावस्या कहा जाता है।

मासनामानि —

पूर्णमासे उभौपक्षावथ मासाभिधेयकम्।
कार्तिको मार्गशीर्षश्च पौषो माघोऽथ फाल्गुनः ॥ 14 ॥
चैत्री वैशाखज्येष्ठौ च ह्याषाढश्चैव श्रावणः।

पूर्णमास दो पक्षों का होता है। इसे ही मास का नाम दिया गया है। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन— ये बारहों मासों के नाम हैं।

कार्तिक्यात्षड्ऋर्तुव: —

कार्तिकाद्या द्वादशस्युर्याभ्यां द्वाभ्यामृतूद्भवः।

अभिधानानि कथये षड्ऋतूनामनुक्रमात्॥ 16॥

कार्तिक आदि से आरम्भ करके बारहों मास में दो-दो मास की ऋतुएँ होती हैं। इन षट् ऋतुओं के नाम अनुक्रम से कहता हूँ—

वसन्तग्रीष्मौ वर्षाश्च शरद्धेमन्त एव च।

शिशिरश्च षड्ऋतवश्चैत्रिकादिद्विमासकाः॥ 17॥

(1.) वसन्त, (2.) ग्रीष्म, (3.) वर्षा, (4.) शरद, (5.) हेमन्त और (6.) शिशिर— ये दो-दो मास की ऋतुएँ चैत्रादि मास से क्रमशः होती है।

वार्षिकात्मकद्वैर्तुकालमाह —

द्वौ ऋतू भवतः कालः शीतोष्णवार्षिकात्मकः।

दो ऋतुओं का काल भी होता है जो एक वर्ष में शीत और ग्रीष्म ऋतु दो नामों से जाना जाता है।

त्रयर्तुकालमाह —

कीर्तिकादिभवः शीतो ग्रीष्मः फाल्गुनतः स्मृतः॥ 18॥

तथाषाढादितः प्रावृट् सर्वबीजहितात्मिका।

एवं स्यात् त्रिविधः कालः शीतोष्णप्रावृडात्मकः॥ 19॥

कार्तिक से आरम्भ होने वाले को शीत एवं फाल्गुन से आरम्भ होने वाले काल को ग्रीष्म कहते हैं तथा आषाढ़ से आरम्भ होने वाली ऋतु को प्रावृट् या वर्षाकाल कहा जाता है जो कि समस्त बीजों के लिए हितकारी है। इस तरह शीत, ग्रीष्म और वर्षाकाल— ये तीन काल होते हैं।

कालत्रयं षड्ऋतबो माससङ्ख्यातु द्वादश$_{12}$।

चतुर्विंशति$_{24}$ पक्षाश्च षष्ठ्युत्तरशतत्रयम्$_{360}$॥ 20॥

दिनानि स्युस्तथा चैवं वर्ष चैव प्रवर्तते।

इत्यादियुक्तियोगेन प्रोक्तः संवत्सराभिधः॥ 21॥

जैसा कि कहा गया है कि काल तीन है, ऋतुएँ छह हैं और मास बारह हैं जबकि पक्ष चौबीस। इनमें सामान्यतः तीन सौ साठ दिन होते हैं। इतने ही दिनों से

अर्थात् तीन सौ साठ दिनों से (सौर) वर्ष बनता है[1] और इस तरह पूरे युक्तिक्रम से संवत्सर के नामों को बताया गया है।

अथ प्रभवादिषष्ठिसंवत्सरनामानि —

संवत्सराभिधानानि षष्टिः स्युः प्रभवादितः।
प्रभवो विभवश्चैव शुक्लो मोदः प्रजापतिः॥ 22॥
अङ्गिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथेश्वरः।
बहुधान्यः प्रमाथी च विक्रमो वृष एव च॥ 23॥
चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवो व्ययः।
सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः॥ 24॥
नन्दनो विजयो जयो मन्मथो दुर्मुखस्तथा।
हेमलम्बो विलम्बश्च विकारी शार्वरी तथा॥ 25॥
प्लवश्च शुभकृच्चैव शोभनः क्रोधनस्तथा।
विश्वावसुः पराभवः प्लवङ्गः कीलको मतः॥ 26॥
सौम्यः साधारणश्चैव तथैवं च विरोधकृत्।
परिधावी प्रमादी च ह्यानन्दो राक्षसोऽनलः॥ 27॥
पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थो रौद्रदुर्मती।
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः॥ 28॥
इत्थं संवत्सराणां च षष्टीभेदाः प्रकीर्तिताः।

प्रभवादि से कुल साठ संवत्सर होते हैं जिनके नाम क्रमशः निम्न हैं— (1.) प्रभव, (2.) विभव, (3.) शुक्ल, (4.) मोद, (5.) प्रजापति, (6.) अङ्गिरा, (7.) श्रीमुख, (8.) भाव, (9.) युवा, (10.) धाता, (11.) ईश्वर, (12.) बहुधान्य, (13.) प्रमाथी, (14.) विक्रम, (15.) वृष, (16.) चित्रभानु, (17.) सुभानु, (18.) तारण, (19.) पार्थिव, (20.) व्यय, (21.) सर्वजित्, (22.) सर्वधारी, (23.) विरोधी, (24.) विकृत, (25.) खर, (26.) नन्दन, (27.) विजय, (28.) जय, (29.) मन्मथ, (30.) दुर्मुख, (31.) हेमलम्ब, (32.) विलम्ब, (33.) विकारी, (34.) शार्वरी, (35.) प्लव, (36.) शुभकृत्, (37.) शोभन, (38.) क्रोधी, (39.) विश्वावसु, (40.) पराभव, (41.) प्लवङ्ग, (42.)

---

1. कुल 360 दिन का सौर वर्षमान होता है। ज्योतिर्विदाभरण में आया है ; सौरा नभोऽङ्गाग्नि मितानी वासरा। (ज्योतिर्विदाभरण प्रथम प्रकरण, 25)

कीलक, (43.) सौम्य, (44.) साधारण, (45.) विरोधकृत, (46.) परिधावी, (47.) प्रमादी, (48.) आनन्द, (49.) राक्षस, (50.) नल, (51.) पिङ्गल, (52.) कालयुक्त, (53.) सिद्धार्थ, (54.) रौद्र, (55.) दुर्मती, (56.) दुन्दुभि, (57.) रुधिरोद्गारी, (58.) रक्ताक्ष, (59.) क्रोधन तथा (60.) क्षय— ये साठ संवत्सर के नाम कहे गए हैं।[1]

एतद्विंशत्यानि —

ब्रह्मसृष्टिर्विंशतिश्च प्रभवादि व्ययान्तगा ॥ 29 ॥
विष्णोः सर्वजिदाद्याश्च विंशतिश्चापराभवम्।
प्लवङ्गादि क्षयान्त च तथास्याद्रुद्रविंशतिः ॥ 30 ॥
गुणा यथाभिधानं च शस्ताशस्ते विदुर्बुधाः।

(इनमें से बीस-बीस संवत्सर क्रमशः ब्रह्म, विष्णु व रुद्रबीसी संज्ञक है) प्रभव से लेकर व्यय तक के बीस संवत्सरों को ब्रह्मसृष्टिर्विंशति या ब्रह्म-बीसी कहा जाता है। सर्वजित से पराभव तक बीस संवत्सरों को विष्णुसृष्टिर्विंशति या विष्णु-बीसी और प्लवङ्ग से क्षय संवत्सर तक की गणना रुद्रसृष्टिर्विंशति या रुद्र-बीसी के अन्तर्गत होती है। इन संवत्सरों के जैसे नाम हैं, वैसे ही इनके प्रशस्त-अप्रशस्त गुण भी होते हैं, ऐसा विद्वान जानते हैं।

युगमानं च कल्पान्तमथ मन्वन्तरं तथा।
दिनसङ्ख्या प्रमाणेन तथा युगचतुष्टयम् ॥ 31 ॥

कल्पान्त से आरम्भ करके मन्वान्तर तक की दिन संख्या को युगमान प्रमाण

---

१. तथा च ज्योतिषरत्नमालायां— प्रभवविभवाख्यशुक्लाः प्रमोदनामा प्रजापतिरथाब्दः। परतोऽङ्गिरास्ततश्च श्रीमुखभावौ युवाख्योऽन्यु॥ धातेश्वरव्यहुधान्यौ प्रमाथिनामाथ विक्रमाख्यातः। सवृषोऽथ चित्रभानुरस्मात्सुभानुरथ तारणाख्यश्च॥ पार्थिवनामाव्यय इति सर्वजिदाख्यो सर्वधारी च। तदनु विरोधी विकृतः खरनन्दनजयविजयसञ्ज्ञाः॥ मन्मथदुर्मुखसञ्ज्ञावथापरौ हेमलम्बकविलम्बौ। तद्वद्विकारिनामाथ शर्वरी प्लव इति च शुभकृच्च॥ शोभनकृदथ परः क्रोधीविश्वावसुरनुपराभवाख्यश्च। परतः प्लवङ्गनामाकीलक इति सौम्यसञ्ज्ञश्च॥ साधारणो विरोधकृदथपरिधा विप्रमादिनामानौ। आनन्दराक्षसाख्यौ नलपिङ्गलकालयुक्ताश्च॥ सिद्धार्थरौद्रदुर्मति दुन्दुभयोवत्सराः क्रमादपरे। रुधिरोद्गारीरक्ताक्ष सञ्ज्ञकः क्रोधनः क्षयकृत्॥ (ज्योतिषरत्माला 1, 4-10)
श्रीपति का मत है कि गुरु के मध्यम गति से एक राशि के भोग समय को वत्सर माना गया है अर्थात् गुरु अपनी मध्यम गति से चलता हुआ एक राशि का जब तक उपभोग करता है, उतने समय तक एक प्रभवादि संवत् का समय होता है। गुरु के मान से ही प्रभवादि साठ वर्षों की गणना प्रवृत्ति को स्वीकारा गया है— इयं हि षष्टिःपरिवत्सराणां बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात्। उदाहृता पूर्वमुनिप्रवर्य्यैर्नियोजनीया गणना क्रमेण॥ (तत्रैव 1, 11)

बताकर युग चतुष्टय— कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग कहे गए हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां तिथिमासर्तुकालसंवत्सराद्यधिकार एकोनविंशं सूत्रम्॥ 19॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में तिथि, मास, ऋतुकाल, संवत्सरादि अधिकार नामक उन्नीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 19॥

कल्पान्तो नाम विंशं सूत्रम्॥ 20॥

अपराजित उवाच —

संवत्सरास्तु कथिता मन्मनोभ्रान्तिहारकाः।
युगानां तु प्रमाणं च कथयस्व परेश्वर॥ 1॥
मन्वन्तरप्रमाणं किम् कथं युगचतुष्टयम्।
कल्पान्तं च कथं देव प्रसादं कुरु मे प्रभो॥ 2॥

अपराजित बोले— हे परमेश्वर! आपने संवत्सरों के बारे में कहकर मेरे मन की भ्रान्ति का निवारण कर दिया है। अब कृपा करके युगों के प्रमाण कहिए। मन्वन्तरों का क्या प्रमाण है, चारों युगों का प्रमाण क्या है, कल्पान्त किसे कहते हैं। हे प्रभु! कृपा करके मुझे कहिए।

विश्कर्मोवाच —

अतस्तात प्रवक्ष्यामि प्रमाणं तु युगोद्भवम्।
चतुर्दशमन्वन्तरैः कल्पमेकं तु सङ्ख्यया॥ 3॥
येन सङ्ख्याप्रमाणं च वत्सरादि प्रवर्तते।
अनुक्रमेण वक्ष्यामि यथा प्रोक्तं पृथग्विधम्॥ 4॥

विश्वकर्मा ने कहा — हे प्रिय! अब मैं तुम्हें युगोद्भव के प्रमाण के बारे में कहता हूँ। पहले यह समझ लो कि चौदह मन्वन्तरों की संख्या से एक कल्प होता है। जिन संख्या प्रमाणों से इनके वर्ष आदि होते हैं, उनके विषय में भी मैं यहाँ अनुक्रम से कहता हूँ।

युग प्रमाणमाह —

अष्टाविंशतिसहस्राण्यग्रे चाष्टशतानि च।
संवत्सरैश्च गुणयेत् कृतसङ्ख्याप्रमाणतः॥ 5॥

एक गणना के अनुसार 28 हजार को 8 सौ से गुणित करने पर (22, 40000) कृतयुग अर्थात् सतयुग की वर्ष प्रमाण संख्या होती है।

सहस्त्राण्यष्टाविंशतिर्लक्षाणि दशसप्त च।
प्रमाणं कृतयुगस्य दैवज्ञैश्च प्रभाषितम्॥ 6॥

(किन्तु) दैवज्ञों ने 17, 28, 000 की वर्ष संख्या को भी कृतयुग की वर्ष संख्या माना है।[1]

तस्य पादत्रयं त्रेता द्वापरं तत्पदद्वयम्।
पादमेकं कलियुगं प्रमाणमुदितं त्विदम्॥ 7॥

उक्त संख्या के तीन पाद (अर्थात् 17, 28, 000 × 3/4 = 12, 96, 000 वर्ष) त्रेतायुग की, इसके दो पाद के बराबर अर्थात् (17, 28, 000 × 1/2 = 8, 64, 000 वर्ष) द्वापर की तथा इसके एक पाद के बराबर अर्थात् (17, 28, 000 × 1/4 = 4, 32, 000 वर्ष) कलियुग का वर्ष संख्या का प्रमाण कहा है।[2]

तथा युगचतुष्कं च चतुर्भिश्च युगैर्भवेत्।
चतुष्कस्य प्रमाणं च कथयामि यथाक्रमम्॥ 8॥

इस प्रकार इन चारों की वर्ष संख्या को जोड़ने पर युगचतुष्क बनता है जिसकी प्रामाणिक वर्ष संख्या मैं यथाक्रम से कहता हूँ।

त्रिचत्वारिंशल्लक्षाणि सहस्त्राणां च विंशतिः।
चतुष्कस्य प्रमाणं च सृष्टिकालसमुद्भवम्॥ 9॥

---

१. युगादि के कालमान को लेकर कई मत है, उक्त गणना सिद्धान्तशिरोमणि के अनुसार हैं जबकि विष्णुपुराणकार ने माना है कि पुराविदों ने सतयुग आदि का परिमाण क्रमशः चार, तीन, दो एवं एक हजार दिव्य वर्ष बतलाया है। प्रत्येक युग के पूर्व उतने ही सौ वर्ष की सन्ध्या बताई जाती है और युग के पीछे उतने ही परिमाणवाले सन्ध्यांश होते हैं। इन सन्ध्याओं व सन्ध्यांशों के बीच का जितना काल होता है, उसे ही कृतादि नाम वाले युग जाने— दिव्याब्दानां सहस्राणि युगेष्वाहुः पुराविदः॥ तत्प्रमाणैः शतैः सन्ध्या पूर्वा तत्राभिधीयते। सन्ध्यांशश्चैव तत्तुल्यो युगस्यानन्तरो हि सः॥ सन्ध्यासन्ध्यांशयोरन्तर्यः कालो मुनिसत्तम। युगाख्यः स तु विज्ञेयः कृतत्रेतादिसञ्ज्ञितः॥ (विष्णुपुराण 1, 3, 12–14)
उक्त श्लोक ब्रह्मगुप्त के मत से तुलनीय है। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में आया है— प्राणैर्विनाडिकार्क्षी षड्भिर्घटिका विनाडिका षष्ट्या। घटिका षष्ट्या दिवसो दिवसानां त्रिंशता मासाः॥ मासा द्वादशवर्षं विकलालिप्तांशराशिभगणान्तः। क्षेत्रविभागस्तुल्यः कालेन विनाडिकाद्येन॥ स्वचतुष्टयरदवेदा रविवर्षाणां चतुर्युगं भवति। 4320000 सन्ध्या सन्ध्यांशै सह चत्वारि पृथक्कृतादीनि॥ युगदशभागो गुणितः कृतं चतुर्भिस्त्रिर्गुणस्त्रेता। द्विगुणो द्वापरमेकेन सङ्गुणः कलियुगं भवति॥ (ब्राह्मस्फुट. पूर्वादशाध्याय्यां, मध्यम., 5-8)

2. भोजराज का मत है कि उनको चार से गुणा किया जाए तो कृतयुग का प्रमाण होगा, तीन से गुणा करने पर त्रैता, दो से गुणा करने पर द्वापर और एक से गुणा करने पर कलियुग होगा : तद्दशगुणितं कृतं चतुर्भिस्त्रिभिस्त्रेता। द्विगुणो द्वापरं एवं कलिरेकगुणः समाख्यातः॥ (राजमार्तण्ड 1440)

तियालीस लाख बीस हजार वर्ष संख्या का प्रमाण अर्थात् (43, 20, 000 वर्ष) सृष्टि के आरम्भ काल से एक चतुर्युग या एक युगचतुष्क पूरा होने तक समझें।

द्वासप्ततिचतुष्काणि मनुश्चैव प्रवर्तते।

कालसङ्ख्या मनोः प्रोक्ताः पृथक् सङ्ख्या चतुर्दश$_{14}$ ॥ 10 ॥

ऐसी बहत्तर (अन्य ज्योतिषीय गणनानुसार 71)[1] चतुर्युगियों में 14 मनु की स्थिति है जिनकी यह काल संख्या चौदह मनुओं की है।

संभूक्षे तलाभिधानं च प्रारमुनिस्तृतीयकम ?।

सङ्कल्पभाव सांतश्च सावर्णिकस्यानु सप्तमम् ?॥ 11 ॥

समनु प्लवसौम्याश्च आह्लादश्च सूर्यात्मकः।

त्रिदशाक्ष पूर्णस्य तु सप्तभि र्न चतुर्दश ?॥ 12 ॥

(दोनों श्लोकों का पाठ भ्रष्ट होने से विष्णु व मार्कण्डेय पुराणों के प्रमाणानुसार) चौदह मनुओं के नाम इस प्रकार हैं— (1.) स्वायम्भुव, (2.) स्वारोचिष, (3.) उत्तम, (4.) तामस, (5.) रैवत और (6.) चाक्षुष। वर्तमान मन्वन्तर (7.) वैवस्वत है जबकि भविष्य के मनु हैं—(8.) सावर्णि, (9.) दक्षसावर्णि, (10.) ब्रह्मसावर्णि, (11.) धर्मसावर्णि, (12.) रुद्रसावर्णि, (13.) रुचिसावर्णि और (14.) भौमसावर्णि।[2]

---

1. पौराणिक गणनाओं में कृतादि चतुर्युगों के एक हजार चतुर्युग का ब्रह्मा का एक दिन होता है। इस एक दिन में चौदह मनु होते हैं। सप्तर्षि, देवगण, इन्द्र, मनु और मनु के पुत्र राजालोग एक ही काल में रचे जाते हैं और एक ही काल में उनका संहार होता है। इकहत्तर चतुर्युग से कुछ अधिक काल का एक मन्वन्तर होता है। इकहत्तर चतुर्युग की गणना से चौदह मन्वन्तरों में 994 चतुर्युग होते हैं और ब्रह्मा के एक दिन में एक हजार चतुर्युग होते हैं, अतः छह चतुर्युक शेष रहते हैं। छह चतुर्युग का चौदहवाँ भाग कुछ कम पाँच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्ष होता है, इस प्रकार से एक मन्वन्तर में इकहत्तर चतुर्युग के अलावा इतने दिव्य वर्ष और अधिक होते हैं। विष्णुपुराण में आया है— कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चैव चतुर्युगम् L.. सप्तर्षयः सुराः शक्रो मनुस्तत्सूनवो नृपाः। एककाले हि सृज्यन्ते संह्रियन्ते च पूर्ववत्॥ चतुर्युगाणां सङ्ख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः। मन्वन्तरं मनोः कालः सुरादीनां च सत्तम॥ (विष्णुपुराण 1, 3 15 एवं 17-18)
2. विष्णुपुराण (1, 3, 1-2 एवं 6, 3, 6-11); मार्कण्डेयपुराण (53वें अध्याय) में भौम का नाम भौत्य भी आया है और अन्यत्र इसका नाम इन्द्रसावर्णि भी मिलता है। इस सम्बन्ध में सामान्यतया गणनाएँ इस प्रकार की गई है— मानव का 1 मास = पितृ का एक दिन-रात। मनुष्य का एक वर्ष = देवता का 1 दिन-रात। मनुष्य के तीन वर्ष = देवता का 1 मास। मनुष्य के 360 वर्ष = देवता का एक दिव्य वर्ष। 432000 मानव वर्ष = 1200 दिव्य वर्ष = 1 कलियुग। 864000 मानव वर्ष = 2400 दिव्य वर्ष = 1 द्वापर। 1296000 मानव वर्ष = 3600 दिव्य वर्ष = 1 त्रेतायुग। 1728000 मानव वर्ष = 4800 दिव्य वर्ष

मनुभिश्चतुर्दशभिः कल्पसङ्ख्या प्रमाणतः।

एवमुक्तं च कल्पान्तं पुनरेवं समुद्भवः॥ 13॥

इन चौदह मनुओं की कुल वर्ष संख्या को एक कल्प की संख्या का प्रमाण कहा है। इस प्रकार कहे गए कल्प के अन्त में यह सृष्टि पुनः उत्पन्न होती है।

अपराजित उवाच —

कल्पान्तश्च कथं तात कैश्चिह्नैरुपलक्षितः।

देवेशाहं न जानामि कल्पान्ते सृष्टिच्छन्दकम्॥ 14॥

अपराजित ने पूछा कि हे तात! कल्पान्त के समय क्या-क्या चिह्न उपस्थित होते हैं? हे देवेश! कल्पान्त के बाद सृष्टि का कैसा छन्द होगा, कैसी रचना होगी, यह मैं नहीं जान पाता हूँ।

विश्वकर्मोवाच —

कल्पान्तो प्राप्यते वत्स ह्युल्कापातैरनेकशः।

तस्य चिह्नानि रूपाणि कथयामि समासतः॥ 15॥

विश्वकर्मा बोले — कल्पान्त आने पर अनेकशः उल्कापात होते हैं, उनके चिह्न और रूप मैं संक्षेप में कहता हूँ।

कल्पान्तचिह्नादीनामाह —

उल्कापाताद् वज्रघातादन्नाभावाज्जनात्ययः।

सादित्ये च विनामेघैर्वज्रविद्युत्पातोद्भवः॥ 16॥

अब्दान्ते भूमिकम्पश्च ह्यब्दार्धे तु पुनः पुनः।

पांशुवृष्टिश्च पतति सादित्ये रजनी यथा॥ 17॥

उल्कापात से, वज्राघात से अर्थात् बिजली गिरने से, अन्न के अभाव में प्रजा दुखी हो जाती है। सूर्य का आतप असहनीय हो जाता है और बिना मेघों के भी

= 1 कृत युग। इन सबको मिलाकर योग 43, 20, 000 मानव वर्ष = 12000 दिव्य वर्ष = 1 महायुग या चतुर्युगी। इस प्रकार एक चतुर्युगी में 12000 दिव्य वर्ष या 43 लाख 20 हजार मानव वर्ष होते हैं और इसी को महायुग कहा जाता है। यह भी स्पष्ट है कि प्रत्येक युग में सन्ध्या, मुख्यभाग और सन्ध्यांश नाम से तीन-तीन गणनाएँ होती है। यह गणना इस प्रकार होती है। जैसे— कृतयुग में सन्ध्या 400 वर्ष, मुख्यभाग 4000 तथा सन्ध्यांश 400 वर्ष का है। त्रेतायुग में सन्ध्या 300 मुख्यभाग 3000 तथा सन्ध्यांश 300, द्वापर में सन्ध्या 200, मुख्यभाग 2000 तथा सन्ध्यांश 200 और कलिकाल में सन्ध्या 100 मुख्यभाग 1000 तथा सन्ध्यांश 100 वर्ष का होता है। प्रो. ह्विटने का कथन है कि 12000 वर्षों को देववर्ष मानने की कल्पना मनु की नहीं है, बहुत बाद की है। (सूर्यसिद्धान्त : जे. बर्गेस द्वारा अनूदित पृष्ठ 10)

वज्र, विद्युत्पात होने लगते हैं। वर्ष के अन्त में भूकम्प होते हैं। कभी-कभी वर्ष के आधे में भी रह-रहकर भूकम्प पुनः होते हैं। दिन-रात धूल की वृष्टि होती है।

यमदंष्ट्रासमं रौद्रं भूतलं च प्रदृश्यते।
आन्ध्यं घोरं भवेन्मेघैः सर्पवृष्टिः प्रजायते ॥ 18 ॥
·स्वर्गतः पतति त्वेवं पुरुषो विकृताननः।
सर्वेशे सौरसम्भूया मनुजा वीरविक्रमाः ? ॥ 19 ॥

चारों ही ओर यम के दाढ़ों वाले रौद्र रूप भूतल पर दिखाई देने लगते हैं। घोर आँधियाँ चलती हैं और मेघों से सर्पों की वर्षा होती है। स्वर्ग से ऐसे-ऐसे विकृत मुँहों वाले लोग गिरते हैं जो सभी वीर विक्रम मनुष्य सौर सम्भूया अर्थात् उग्र प्रकृति लिए होते हैं।

यक्ष किन्नरगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः।
सर्वे ते प्रलयं यान्ति कल्पान्ते च समुत्स्थिते ॥ 20 ॥
पर्वताः सागरा द्वीपाः सरितः सागरादिकम्।
भक्षन्ति सर्वभूतानि कालाग्निश्च यमो यथा ॥ 21 ॥

कल्पान्त के होने पर यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस आदि सभी प्रलय में समाप्त हो जाते हैं। पर्वत, सागर, द्वीप, नदियाँ, सागरादि सब लोगों को ऐसे ही खा जाते हैं जैसे कालाग्नि में यम सब का भक्षण कर लेता है।

चतुर्दशमन्वन्ते च दिने प्राप्ते यथा ध्रुवम्।
रजन्यन्ते च सम्प्राप्ते ह्युदिते सूर्यमण्डले ॥ 22 ॥
बिम्बमध्यसमास्त्वेवं पुरुषाननसंनिभाः।
विकृताननरुपाश्च दंष्ट्रायुक्ताः करालिनः ॥ 23 ॥

चौदह मनुओं के अन्त में पुनः दिन यथा ध्रुवं- सदा की भाँति होने लगते हैं जैसे रजनी-रात्रि के अन्त होने पर सूर्य मण्डल का उदय होता है और सूर्य मण्डल के समस्त बिम्बों में कराल दांत किटकिटाते हुए विकृत, खूँखार मुँह वाले मनुष्यों के मुखों के समान दिखाई पड़ते हैं।

द्वौ सूर्यौ पूर्वदिग्भागे द्वो च दक्षिणदिक्स्थितौ।
सूर्यद्वयं पश्चिमे चोत्तरे सूर्यद्वयोदयः ॥ 24 ॥
द्वौ सूर्यौ नागलोकस्थौ द्वौ सूर्याबुपरि स्थितौ।
इत्थं ते द्वादशादित्याः कल्पान्ते सर्वतो दिशम् ॥ 25 ॥
दहन्ति पृथिवीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम्।

सर्वभूतानि दहति कालाग्निश्चापरस्तथा ॥ 26 ॥

कल्पान्त में सभी दिशाओं में भीषण सूर्यों का आतप फैल जाता है— पूर्व में दो सूर्य, दक्षिण में दो, पश्चिम में दो, उत्तर में दो सूर्य; नागलोक, पाताल में दो सूर्य और आकाश में ऊपर की ओर भी दो सूर्य— इस प्रकार बारहों आदित्य कल्पान्त में सभी दिशाओं से पृथ्वी को इस प्रकार जलाने लगते हैं मानों कालाग्नि में जल रहे हों।

देवदानवगन्धर्वान् पिशाचोरगराक्षसान्।
पृथिव्यां दह्यमानायां हविर्गन्धः प्रजायते ॥ 27 ॥
अस्तंगते सूर्यबिम्बे द्रोणमेघोद्भवस्तथा।
वर्षन्ते च महोमेघा धारा करिकरानिव ॥ 28 ॥

इस तरह देवों, दानवों, गन्धर्वों, पिशाचों, उरगों, राक्षसों और पृथ्वीवासी मनुष्यों के जलने से ऐसी दुर्गन्ध प्रसारित हो जाती है जैसी पशुओं की हवि देने पर फैलती है। सूर्य बिम्ब के अस्तंगत होने पर भयङ्कर द्रोण मेघों का उदय होता है। वे बहुत घनी वर्षा करते हैं। इन महामेघों से होने वाली भयानक वर्षा की झड़ी और धाराएँ ऐसी लगती है मानों विशाल हाथी अपनी सूण्ड से पानी की भयङ्कर बौछार कर रहे हों।

अष्टादशैव मेघाश्च महाद्रोणघनोदये।
पृथिवीत्थं समन्ताच्च समुद्रैश्चार्णवीकृता ॥ 29 ॥
चतुर्दशलक्षयोजनानि ध्रुवं रक्षतु उद्कोद्भवाम्।
तमस्त्रौ विशीर्यन्ते अम्भोर्भव तनो वृता ? ॥ 30 ॥
अन्धकारे तथा घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
चन्द्रार्कपवने नष्टे ज्योतिषि प्रलयं गते ॥ 31 ॥

इस तरह प्रलयङ्कारी महाद्रोण मेघों के उदय होने पर अठारहों प्रकार के मेघ चारों ओर से घिर आते हैं और समस्त पृथ्वी को भयानक वर्षा से आप्लावित करके एक तरह से चारों ओर समुद्र रूप में अर्णवीकृत कर देते हैं। जल ही जल का सागर बना देते हैं। चौदह लाख योजनों तक यह जल चारों ओर एक तरह से ध्रुव रूप से, स्थायी लगने लगता है और जब रात्रि की तमिस्रा अर्थात् अन्धकार मिटने लगता है और पुनः सूर्य बिम्ब का उदय होने लगता हे तो इस जल से आवृत्ता सभी स्थावर, जङ्गम जीव, चन्द्र, सूर्य, पवन, ज्योतियाँ आदि जो अन्धकार में नष्ट होकर प्रलय को प्राप्त हो गई थीं (पुनः सृष्टिभूत होने लगती हैं)।

एवं जाते तदाकाले **विष्णौ** क्षीरोदसंस्थिते।
क्षीरोदस्थितविष्णो**श्च** शेषपर्यङ्कशायिनः ॥ **32** ॥
नाभेर्ब्रह्मा **समुत्पन्नः पद्मयोनिश्च** सृष्टिकृत्।
ततः सर्वं समुत्पन्नं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ **33** ॥

ऐसे हो जाने पर तब क्षीरसागर में शेषनाग के पर्यङ्क पर सोने वाले विष्णु की नाभि से निकलने वाले कमल नाल से पद्मयोनि से जन्म लेने वाले ब्रह्मा पुनः सृष्टि की रचना करते हैं जिससे सभी स्थावर, जङ्गम जीवों की उत्पत्ति होती है।

योऽसौ क्षीरोदमध्ये **तु** सप्तलोकजलाम्बु**धौ**।
शेषे च नागपर्यङ्के शेषस्याहे**श्च तद्विधिः** ? ॥ **34** ॥
.... फणिमणिकिरणैर्व्यज्यते **श्वासवातैः**।
.... ऋषिमुनिगणैर्ऋग्यजुः **साममन्त्रैः**।
.... स्तूयमानो .... **ब्रह्मादि देवैः**।
विष्णुस्त्रैलोक्यनाथः कलिकलुषहरः **पातु वैः पद्मनाभः** ॥ **35** ॥

इस प्रकार ये सभी जीव क्षीर समुद्र में सप्तलोक में व्याप्त जलाम्बुधि अर्थात् सागर में शेषशय्या के नाग पर्यङ्क पर सोये हुए विष्णु भगवान् कलि-कलुष के हरने वाले प्रभु की सर्प तो अपने फणों मणियों से श्वासाघात से पँखा करके और ऋषि मुनिगण ऋक्, यजु और साम मन्त्रों से तथा ब्रह्मादि देवतागण उनकी स्तुतिगान करके, उन पद्मनाभ भगवान विष्णु से रक्षा की प्रार्थना करते हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
कल्पान्ताधिकारो नाम विंशं सूत्रम् ॥ 20 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में कल्पान्त अधिकार नामक बीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 20 ॥

अक्षयलिङ्गसृष्ट्युद्भवो नामैकविंशं सूत्रम् ॥ 21 ॥

अपराजित उवाच –

पूर्वसृष्ट्युद्भवो यद्वत्तथा तन्नाम देवता।
अन्यथा वा भवेदिन्द्रस्तथा **च** त्रिदशोद्भवः ॥ **1** ॥
उपस्थिते च कल्पान्ते किं पुनः सृष्टिरुद्भवेत्।
पूर्वाभिधानयुक्ता **चान्यथा वा कथय प्रभो** ॥ **2** ॥

अपराजित बोले — पूर्व में जिस प्रकार से सृष्टि उत्पन्न हुई और उसके नाम के जो-जो देवता हुए, क्या उनसे अन्यथा अर्थात् अन्य प्रकार के इन्द्र और देवता, कल्पान्त के उपस्थित होने पर पुनः उत्पन्न होते हैं ? हे प्रभु! क्या वे पहले का नाम, धाम वाले ही होते हैं या अन्य प्रकार के होते हैं, यह सब आप कहिए।

विश्वकर्मोवाच —

कल्पान्ते च गते त्वेवं जीवरूपा नु चेतसा।
सर्वे ते प्रलयं यान्ति गङ्गेव हरमस्तके॥ 3॥
कल्पे कल्पे प्रलीयन्ते यत्र यत्रापि देवताः।
आत्मरूपे पञ्चलिङ्गे सर्वभूतात्मकेषु च॥ 4॥

विश्वकर्मा ने कहा — कल्पान्त होने पर इस प्रकार समस्त जीव रूपी चैतन्य प्राणी प्रलय को प्राप्त हो जाते हैं जैसे शिव के मस्तक में गङ्गा समा गई थी। कल्प-कल्प में जहाँ कहीं भी देवता होते हैं, वे भी उसी प्रकार प्रलय में लुप्त हो जाते हैं तथा सभी भूतात्मकों में अर्थात् प्राणियों में सभी पाँच लिङ्गों की आत्मा-रूप में लीन हो जाते हैं।

अविमुक्तं च केदारं ओङ्कारामरकण्टके।
पञ्चमं श्रीमहाकालं कल्पान्ते लिङ्गमव्ययम्॥ 5॥
ततः काले समुद्भूता भरतक्षेत्रदेवताः।
बदरीमथुरायोध्या योगेशं विश्वसम्भवः॥ 6॥
पञ्चाक्षयानि कल्पान्ते हरिक्षेत्राणि वै विदुः।
एषु भव्यकलाः सर्वा विष्णोश्चामोघमालिनी॥ 7॥

पहला अविमुक्त, द्वितीय केदार, तृतीय ओङ्कारेश्वर, चतुर्थ अमरकण्टक और पञ्चम श्रीमहाकाल— ये पाँचों कल्पान्त में अव्यय लिङ्ग में समा जाते हैं। भरत क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले देवता, बदरीनाथ, मथुराधीश, अयोध्यापति, योगेश, द्वारकाधीश और विश्वेश्वर विष्णु क्षेत्रों के पाँचों देवता कल्पान्त में क्षय को प्राप्त होते हैं, ऐसा सभी जानते हैं और इन सभी की पुनः उत्पन्न होने की कला भगवान् विष्णु की अमोघमाला वाली अर्थात् कभी व्यर्थ नहीं होने वाली है।

केतुमालादि लिङ्गोद्भवक्षेत्राणि —

भूर्भुवं भुवनेशं च भवोद्भवं तृतीयकम्।
अट्टहासं तत्पुरुषं केतुमालं स्वयम्भुवम्॥ 8॥

(1.) भूर्भुव, (2.) भुवनेश, (3.)भवोद्भव, (4.) अट्टहास और (5.) तत्पुरुष— ये पाँचों यक्षलिङ्ग केतुमाल में उत्पन्न हुए।

ईश्वरं शङ्करं श्रेयं श्रीकण्ठं व उग्रोहरम्।
अक्षयपञ्चलिङ्गस्य इलावर्ते समुद्भवः॥ 9॥

(1.) ईश्वर, (2.) शङ्कर, (3.) श्रेय, (4.) श्रीकण्ठ और (5.) उग्रोहर— ये पाँच अक्षय लिङ्ग इलावर्त में उत्पन्न हुए।

पुष्करं पुष्कराख्यं च शङ्कुतेजं महाबलम्।
गोकर्णं पञ्चमं लिङ्गं पुष्कराख्येऽक्षयोद्भवम्॥ 10॥

(1.) पुष्कर, (2.) पुष्कराख्य, (3.) शङ्कुतेज, (4.) महाबल और (5.) गोकर्ण— ये पाँच लिङ्ग अक्षय होकर पुष्कर नामक क्षेत्र में उत्पन्न हुए।

सद्यं शान्तं महाकान्तं विश्वतेजो महोद्भवम्।
पञ्चाक्षयानां लिङ्गानां पौरुषे स्यात्समुद्भवः॥ 11॥

(1.) सद्य, (2.) शान्त, (3.) महाकान्त, (4.) विश्वतेज, (5.) महोद्भव— ये पाँचों लिङ्ग अक्षय पौरुष क्षेत्र में उद्भूत हुए।

शङ्कुं शशाङ्कशम्भू च सिद्धेशं चन्द्रशेखरम्।
पञ्चाक्षयानि लिङ्गानि शङ्कुक्षेत्राधिपानि च॥ 12॥

(1.) शङ्कु, (2.) शशाङ्क, (3.) शम्भू (4.) सिद्धेश और (5.) चन्द्रशेखर— ये पाँचों अक्षय लिङ्ग शङ्कु क्षेत्र में उत्पन्न हुए।

वामदेवं महादेवं कान्तं कमललोचनम्।
अक्षयं कल्पजं लिङ्गं सागराक्षे ? त्पराजित॥ 13॥

इसी प्रकार (1.) वामदेव, (2.) महादेव, (3.) कान्त कमललोचन (4.) अक्षय और (5.) कल्पज— ये पाँचों अक्षय लिङ्ग, हे अपराजित! सागराक्ष क्षेत्र में उत्पन्न हुए।

सद्योवामस्तथाघोरस्तत्पुरुष ईश एव च।
अक्षये वक्त्रजा देवा रम्यके सृष्टिसम्भवे॥ 14॥

इसके अतिरिक्त (1.) सद्योवाम, (2.) अघोर, (3.) तत्पुरुष, (4.) ईश और (5.) अक्षयवक्त्र— ये पाँचों अक्षय लिङ्ग रम्यक क्षेत्र में उत्पन्न हुए।

लीयन्ते सर्वदेवाश्च कल्पान्ते लिङ्गमध्यगाः।
कल्पान्ततोऽक्षयं लिङ्गं सागरे ? क्षेत्राधिपम्॥ 15॥

कल्प के अन्त में लिङ्ग के मध्य में सभी देवता प्रलय में लीन हो जाते हैं। कल्प के अन्त होने के साथ ही सागर में अक्षय लिङ्ग उत्पन्न हो जाते हैं।

द्वीपे द्वीपे पुनस्त्वेवं रुद्रलोकलिङ्गोद्भवम्।
तेभ्यो जाता पुनः सृष्टिर्जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ 16॥

प्रत्येक द्वीप में पुनः इसी प्रकार रुद्रलोक के लिङ्गों का उद्भव हो जाता है जिनसे पुनः जगत में स्थावर-जङ्गम सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

सजलाम्भोधिसंसारे एकार्णवीभूतसंस्थितौ।
विशीर्णानुमार्गाख्यात तत्प्रवाहेन **समुद्भवाः ?॥ 17॥**

प्रलयकाल में एकार्णवी भूत अर्थात् एक ही सागर में लीन हो चुकी समस्त सृष्टि इस सजलाम्भोधि संसार अर्थात् जल में डूबे हुए संसार के विशीर्ण होने के साथ-साथ ही उसके प्रवाह मार्ग से विख्यात होने वाले नए संसार की उत्पत्ति हो जाती है।

वर्षाश्रयासमुद्राश्च सृष्टिकालसमुद्भवाः।
प्रदक्षिणं स्थितास्त्वेवं **मेरोश्च** परिखार्णवाः॥ 18॥

वर्षा जल से भरने वाले समुद्र भी इस नई सृष्टि के उत्पन्न होते समय मेरु के चारों ओर प्रदक्षिणा क्रम से स्थित रहकर उसकी परिखा अर्थात् खाई का रूप ले लेने वाले सागर से बन जाते हैं।

क्षीरोदे संस्थितो विष्णुः सजलाम्भोदनिस्वनः।
शेषपर्यङ्कशयनः पादलग्नश्रि**योत्तमः॥ 19॥**[1]

क्षीरसागर में संस्थित विशाल समुद्र के जल पर शेषनाग के पर्यङ्क पर शयन किए भगवान् विष्णु जिनके पाँव श्रीलक्ष्मी की गोद में हैं।

ब्रह्माऽभवद् विष्णुनाभेः **स्वयम्भूः** सृष्टिकारणम्।
ब्रह्मासूनुस्ततो जातः काश्यपो मुनिपुङ्गवः॥ 20॥

भगवान् ब्रह्माजी विष्णु भगवान् की नाभि-कमल से स्वयंभू रूप से उत्पन्न होकर समस्त सृष्टि रचना के कारण बने। इन ब्रह्माजी के पुत्र मुनि पुङ्गव काश्यप हुए।

तथा च काश्यपीय सृष्टिवर्णनमाह —

ख्याता तदुद्भवा सृष्टिर्जगत् स्थावरजङ्गमम्।
ताभ्यां च शक्तिराख्याता संसारसृष्टिकोद्भवा॥ 21॥

---

1. प्रकाशित पाठे इत्यमनन्तर 'क्षीरोदसंस्थितो विष्णुः सजलाम्भोदनिस्वनः। शेषपर्यङ्कशयनः पादलग्नश्रियोत्तमः' श्लोक पुनप्राप्तव्यः। सम्भवः यह श्लोक पुनरुक्ति है जो भूल से पाण्डुलिपिकार ने लिख दिया है, इसमें क्रम 20 की अपेक्षा 27 दिया गया है। (सं.)

उन्हीं से यह स्थावर-जङ्गम सृष्टि इस जगत में उत्पन्न हुई है, ऐसी ख्याती है। उन्हीं काश्यप से इस संसार की सृष्टि करने वाली शक्ति रूपा प्रकृति भी हुई, ऐसा विख्यात है।

दैत्यासुरी च गन्धर्वी यक्षी विद्याधरी तथा।
वैदेवी नागराजेन्द्री नरेन्द्री नाम चाष्टमी॥ 22॥

उसी शक्ति से (1.) दैत्या, (2.) आसुरी, (3.) गन्धर्वी, (4.) यक्षी, (5.) विद्याधरी, (6.) वैदेवी, (7.) नागराजेन्द्री और (8.) नरेन्द्री मातृकाएँ उत्पन्न हुईं।

दितेश्च देवाः सम्भूता असुर्य्याश्चासुरोद्भवः।
गन्धर्वीजाश्च गन्धर्वी यक्ष्या यक्षसमुद्भवः॥ 23॥

इनमें से दिति से देवता उत्पन्न हुए, आसुरी से असुर हुए, गन्धर्वों से गन्धर्व और यक्षी से यक्ष उत्पन्न हुए।

विद्याधर्यास्तदभिधाः वैदेध्याश्चेव देवताः।
विहगा नागराजेन्द्रा जाता नागेन्द्रकास्तथा॥ 24॥

इसी प्रकार विद्याधरी से उत्पन्न विद्याधर नामधारी हुए। वैदेवी से देवता हुए, नागराजेन्द्री से समस्त पक्षीगण हुए और नाग, उरग सर्पादि भी हुए।

नरेन्द्राश्च नरा विप्रक्षत्रविट्शूद्रसञ्ज्ञकाः।
षट्त्रिंशच्च$_{36}$ कुलान्येवं प्रकृतीनामनेकधा॥ 25॥

इसी तरह नरेन्द्री से सभी नर— विप्र, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और मनुष्यों के छत्तीसों प्रकार के कुल व प्रकृति के अनुसार उनके अनेक प्रकार के प्राणी हुए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां अक्षयलिङ्गसृष्ट्युद्भवाधिकारो नामैकविंशं सूत्रम्॥ 21॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में अक्षय लिङ्ग सृष्टि, उद्भव अधिकार नामक इक्कीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 21॥

पञ्चलिङ्गोद्भवकाश्यपसृष्ट्युद्भवो नाम द्वाविंशं सूत्रम्॥ 22॥

अपराजित उवाच —

कथं लिङ्गभवा सृष्टिः समस्ता सचराचरा।
कथं ब्रह्मोद्भवा चैव कथयस्व प्रसादतः॥ 1॥
ब्रह्माद्यप्रभवाः के चाक्षयलिङ्गोद्भवाश्च के।
के च ज्योतिर्भवाश्चैव कथयस्व प्रसादतः॥ 2॥

अपराजित बोले — हे प्रभु! यह सचराचर सृष्टि किस प्रकार लिङ्ग से उत्पन्न हुई और किस प्रकार ये सब ब्रह्मा से उत्पन्न हुए, कृपा करके कहिए। ब्रह्मा से आरम्भ होने वाले कौन हैं, अक्षय लिङ्ग से उत्पन्न होने वाले कौन हैं और ज्योति से उत्पन्न होने वाले कौन हैं, इस सब को कृपाकर कहिए।

विश्वकर्मोवाच —

एकादशकोटिरुद्रा भैरवाश्चाष्टकोटयः।
योगिन्यो द्विरद कोटयो लिङ्गेभ्यश्च समुत्थिताः ॥ 3 ॥
खेचरी भूचरी विद्या स्तम्भिनी मोहिनी तथा।
विद्वेषिणी त्रोटिनी च एता लिङ्गसमुद्भवाः ॥ 4 ॥

विश्वकर्मा कहने लगे — हे पुत्र! अक्षयलिङ्ग से 11 करोड़ रुद्र, 8 करोड़ भैरव और 64 करोड़ योगिनियाँ उत्पन्न हुईं। इसी प्रकार खेचरी (आकाशगामी), भूचरी (भूगामी), स्तम्भिनी (स्तम्भन करने वाली), मोहिनी (मोहित करने वाली), विद्वेषिणी (वैरोत्पन्न करने वाली), त्रोटिनी (टोनाहिन)— सभी विद्याएँ अक्षयलिङ्ग से उत्पन्न हुईं हैं।

अणिमा लघिमा ख्याता महिमा सहजा तथा।
अष्टासिद्ध्युद्भवा विद्याक्षयलिङ्गसमुद्भवा ॥ 5 ॥

इसी प्रकार अणिमा, लघिमा, महिमा, सहजा आदि अष्ट सिद्धियों[1] से उत्पन्न होने वाली प्रसिद्ध विद्याएँ भी अक्षयलिङ्ग से उत्पन्न हुईं।

मन्त्रमुद्राः समस्ताश्च योगिनोर्योगनिर्मलाः।
अर्चा पूजा प्रतिष्ठाश्च सर्वा लिङ्गसमुद्भवाः ॥ 6 ॥

समस्त मन्त्र मुद्राएँ और योग से निर्मल योगिनियाँ, मूर्तियाँ और उनकी पूजा एवं प्रतिष्ठा विधि भी अक्षयलिङ्ग से उत्पन्न हुईं।

वेदागमपुराणानि अन्थादिदर्शनानि च।
अक्षयलिङ्गोत्पन्नानि तथान्यच्च वदामि ते ॥ 7 ॥

इसी प्रकार वेद, आगम, पुराण, दर्शनों के ग्रन्थादि भी अक्षयलिङ्ग से उत्पन्न हुए हैं। अन्य जो उत्पत्तियाँ हुई हैं उनको भी मैं कहता हूँ।

निघण्टुर्व्याकरणानि ह्यष्टौ स्थानानि वै तथा।
वेदोद्भवश्च लिङ्गेभ्यस्तथान्ये च दिवौकसः ॥ 8 ॥

---

1. अष्टसिद्धि— 1. अणिमा, 2. महिमा, 3. लघिमा, 4. गरिमा, 5. प्राप्ति, 6. प्राकाम्य, 7. ईशित्व एवं 8. वशित्व। (मार्कण्डेयादि पुराण)

समस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः।
एकोनपञ्चशत्तानाः सर्वे लिङ्गसमुद्भवाः॥ 9॥

अष्टाध्यायी व्याकरण और निघण्टु-शब्दकोश तथा आठों प्रकार के वेदोद्भव के स्थान (जटा माला शिला लेखा ध्वजो दण्डो रथो घन, अष्टोविकृतयः प्रोक्ता क्रम पूर्वा मनीषिभिः॥ विकृतवल्ली 1, 5) भी अक्षयलिङ्ग से उत्पन्न हुए तथा समस्त देवता भी इसी से उत्पन्न हुए। सङ्गीत के सातों स्वर, तीनों ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनाएँ[1] आदि तथा उनचास तानें[2] सभी अक्षयलिङ्ग से उत्पन्न हुईं।

सर्वाणि यानि तीर्थानि ह्युद्भवन्तीह भूतले।
तान्युत्पन्नानि लिङ्गेभ्यो वर्तन्ते सचराचरम्॥ 10॥

इस भूमितल पर जहाँ-जहाँ भी सब तीर्थ होते हैं, उनकी उत्पत्ति भी अक्षलिङ्ग से हुई, ऐसा सचराचर में व्यवहार किया जाता है।

मन्त्रसिद्धिक्रियायोग तीर्थधर्मसत्यानृतम्।
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च॥ 11॥
लिङ्गोद्भवानि चैतानि जगदुत्पत्तिकारणम्।
सर्वात्मलीला भूतानां लिङ्गानां लिङ्गतो भवः॥ 12॥

---

1. इक्कीस प्रकार की मूर्च्छनाओं में से सात-सात प्रति ग्रामाश्रित है। इनके नाम हैं- 1. सौवारी, 2. हारिणीश्वा, 3. कलोपनता, 4. शुद्धमध्यमा, 5. मार्गी, 6. पौरवी और 7. ऋषका। ये सात मध्यम ग्राम की हैं। इसके बाद 1. उत्तरमन्द्रा, 2. रजनी, 3. उत्तरायता, 4. शुद्धषड्ज, 5. मत्सरीकृता, 6. अश्वक्रान्ता और 7. उद्गता- ये षड्ज ग्रामिका की कही गई है। इसी प्रकार 1. आलापा, 2. कुन्तिमा, 3. शुद्धा, 4. उत्तरा, 5. षड्जा, 6. पञ्चायता और 7. उद्गता। ये सात गान्धार ग्रामाश्रित कही गई है। (विष्णुधर्मोत्तरपुराण तृतीय खण्ड, अध्याय 18)
2. वायुपुराण (86, 41-50) में आया है कि मध्यम ग्राम की तान संख्या 20, षड्ज ग्राम की 14 तथा गांधार ग्राम की 15 भी मानी गई है। इस प्रकार उनचास तानें होती हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराणकार की भी मान्यता यही है। इनके नाम किञ्चित पाठान्तर से इस प्रकार आए हैं— 1. अग्निष्टोमिक, 2. अति अग्निष्टोमिक, 3. वाजपेयिक, 4. पौण्डरीक, 5. आश्वमेधिक, 6. राजसूयिक, 7. बहुसुवर्णिक, 8. गोसविक, 9. महाव्रतिक, 10. ब्रह्मतान, 11. प्राजापत्य, 12. नागाश्रय, 13. यज्ञाश्रय, 14. गोदानिक, 15. हयक्रान्त, 16. अजक्रान्त, 17. विष्णुक्रान्त, 18. अरण्य, 19. मत्तकोकिल और 20. उज्जीविक — ये मध्यम ग्रामाश्रित हैं।

   चौदह तानें षड्ज ग्रामिका हैं- 1. प्रस्वापन, 2. पैशाच, 3. जीवन, 4. सावित्र, 5. अर्धसावित्र, 6. सर्वतोभद्र, 7. सुवर्ण, 8. विष्णु, 9. जिष्णुः, 10. विष्णुनर, 11. शारद, 12. विजय, 13. हंस और 14. ज्येष्ठ। इसी प्रकार गान्धार ग्रामाश्रिता पन्द्रह तानें कही गई हैं— 1. तुम्बुरुप्रिय, 2. महालक्ष्मण, 3. गन्धर्वानुमत, 4. अलम्बुसप्रिय, 5. नारदप्रिय, 6. भीमसेनप्रिय, 7. विनत, 8. मातङ्ग, 9. भार्गवप्रिय, 10. अभिराम, 11. संश्राव्य, 12. किन्नरप्रिय, 13. पुण्य, 14. मनोहर और 15. कल्याणकर। (विष्णुधर्मोत्तर. 3. 18 गद्य भाग)

मन्त्रसिद्धि, क्रियायोग, तीर्थ, धर्म, सत्य, झूठ, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदि सब अक्षयलिङ्ग से उत्पन्न हुए हैं जो जगत की उत्पत्ति के कारण होते हैं। इस प्रकार प्राणीमात्र की सभी सर्वात्म लीलाएँ और पहचान के चिह्न अक्षयलिङ्ग से ही उद्भूत हैं।

क्षेत्राणि च तथा द्वीपाः संसारसृष्टिकोद्भवाः।
एवमक्षयलिङ्गेभ्यः सर्वभूतालयस्तथा॥ 13॥

इस संसार की सृष्टि में उत्पन्न सभी द्वीप, क्षेत्र, जो सभी जीवों, प्राणियों के लिए रहने के स्थान बने हुए हैं, वे सब भी अक्षयलिङ्ग से ही उत्पन्न हुए हैं।

शेषोद्भवास्तथा पुत्र जीवा वै काश्यपादयः।
मानसेभ्यः समुत्पन्ना मानस्याः पुत्रिकादयः॥ 14॥
अश्वी गजा शुकी शृङ्गी वृक्ष्यम्बु सरली तथा।
स्थालिकां शालिधान्यं(ध्यानं ?) च तृणीव लतिकोद्भवाः॥ 15॥
शृङ्गी नखी मीन क्रोञ्चा पद्मान्तादिकसम्भवाः।
एवं काश्यपसम्भूताः सृष्टिजीवा अनेकधा॥ 16॥
कृमिकीटपतङ्गाश्च व्यन्तराश्चोरगादयः।
भूमिबीजोदकाद्यैश्च सम्भूता जीवयोनयः॥ 17॥

हे पुत्र! शेष सभी उत्पन्न जीव भी काश्यप की मानसी सृष्टि में उत्पन्न हुए हैं और काश्यप की मानसी सृष्टि की पुत्रिकाओं में अश्वी, गजा, शुकी, शृङ्गी, वृक्षी, अंबु, सरली, स्थालिका, शालिधान्या (साँवा धान्य), तृणी, लतिका, शृङ्गी, नखी, मीन, क्रौञ्चा, पद्मान्ता आदि काश्यप से उत्पन्ना अनेक प्रकार के सृष्टि जीव है। कृमि, कीट, पतङ्गा, व्यन्तर, उरगादि, भूमि के बीज व जलीय बीजों से अनेक प्रकार की जीव योनियाँ सम्भूत हुई हैं।

भूम्युच्छ्वासे समुद्भूते संयोगे तेजसस्तथा।
उदके सर्वबीजानि रूपतः सम्भवन्ति च॥ 18॥
केचिच्च काश्यपोत्पन्नः केचित्पातालसम्भवाः।
केचिद्भूम्युद्भवास्त्वेवं त्रिविधः सृष्टिसम्भवः॥ 19॥

भूमि के उच्छ्वास से उत्पन्न होकर, तेज-सूर्य के प्रकाश के संयोग तथा जल के सींचने से सभी बीज अपना रूप-आकार ग्रहण करते हैं। इन सबमें कितने ही तो काश्यप से उत्पन्न हुए हैं, कितने ही पाताल से सम्भव हुए हैं, कितने ही भूमि से पैदा हुए। इस प्रकार इनकी यह सृष्टि तीन प्रकार से सम्भव हुई है।

है। ऐसे विष्णु के जन्म रहस्य के बारे में तुम सुनो जो महाआनन्द देने वाला है। पठन पर यह दशावतार का उत्पत्ति प्रसङ्ग पापों का नाश करने वाला है, उस वैष्णव-स्वरूप के प्रादुर्भाव को मैं कहता हूँ जिसको भक्ति और प्रयत्न पूर्वक पढ़ने वाला व्यक्ति परमगति को प्राप्त कर लेता है।

दशावतारनामानि —

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश॥ 6॥

विष्णु के दस अवतार हैं— (1.) मत्स्य, (2.) कूर्म, (3.) वराह, (4.) नरसिंह, (5.) वामन, (6.) परशुराम, (7.) दाशरथीराम, (8.) श्रीकृष्णचन्द्र, (9.) बुध एवं (10.) कल्कि।

तस्मिन्नेकार्णवे घारे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
चन्द्रार्कपवने नष्टे ज्योतिषि प्रलयं गते॥ 7॥
एवं जाते तदा काले ध्यानयुक्तः पितामहः।
सम्भूतो दानवः शङ्खो हृतवान् वेदमर्णवे॥ 8॥

(पूर्वकाल की बात है जब सर्वत्र जल ही था) उस एकार्णव स्थिति में समस्त स्थावर-जङ्गम सृष्टि नष्ट हो गई थी। चन्द्र-सूर्य, पवन भी नष्ट हो गए और ज्योतिष या समस्त् तारागण भी प्रलय में तिरोहित थे। जब सब कुछ इस स्थिति में नष्टभूत थे, पितामह ब्रह्माजी ध्यानस्थ थे। तब शङ्ख नामक दानव उत्पन्न हुआ जो वेदों को चुराकर उस महासागर में डूबो देने को आतुर था।

गतश्च विष्णुपार्श्वे च क्षीराब्धौ च पितामहः।
महासुरोऽनन्तरूपो वेदान् हृत्वा गतोऽर्णवे॥ 9॥

वह शङ्ख दानव क्षीरसागर में अनन्त नाग की शय्या पर शयन किए भगवान् विष्णु और उनके नाभिकमल से उत्पन्न, ध्यानस्थ पितामह के पास गया और वह महा असुर अनन्त का रूप धरकर चारों ही वेदों को चुराकर महासागर में ले गया।

अवतीर्णकालावधिमाह —

कृतेऽष्टलक्षसहस्रशताब्देषु गतेषु च।
शताब्दान्ते यथा ख्याते माघे कृष्णप्रतिपदि॥ 10॥
पुष्यान्ते च मुहूर्ते च मनुर्नाम शुभप्रदः।
महामीनो भविष्यामि सहस्रयोजनायतः॥ 11॥

(भगवान् विष्णु की प्रतिज्ञा है कि उक्त स्थिति में) कृत अर्थात् सतयुग के आठ लाख एक हजार (80, 1000) वर्ष बीतने पर शताब्दी के अन्त में विख्यात माघ माह के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को पुष्य नक्षत्र के अन्तिम चरण में, शुभ मुहूर्त में मनुगणों को शुभफल देने वाले महामीन, एक हजार योजन के आकार वाले मत्स्यावतार के रूप में अवतरित होता हूँ।

घनवन्नीलवर्णश्च रताक्षश्च महोत्कटः।
भृकुटिस्फुरद्दशनः कृत्वा कोपं जनार्दनः॥ 12॥
क्रीडन्तमब्धिमध्यस्थं निहितां च कूपकर्तरि।
स्यात्कलित लग्नाम्बु पद्म पुष्पोद्भवमालिका ?॥ 13॥

उक्त महा मत्स्यावतार का गहरे नील वर्ण के बादलों के समान नीला वर्ण और महोत्कट— महाभयानक लाल-लाल आँखें, भृकुटि क्रोध से चढ़ी हुईं और दांत कटकटाते हुए भगवान् जनार्दन प्रकट हुए जो उस महासागर के जल के बीच में पुष्पों के बीच कलिका की भाँति क्रीड़ा करते दिखाई दिए।

मत्स्यपुच्छाच्च निहतस्तदा चोच्छलिता छटा।
छोग्र धाराकुलोत्तरं भगं सुरा कुलावर्तपद्म ?॥ 14॥
स्थललता फेनवर्णा ग्रन्थावर्णतकम् दोद्भव ?।
यथा अग्र कुलावर्त भङ्गात् पुरतो वनमालिका!॥ 15॥
हतो महासुरः शङ्खो हृतैर्वेदैस्ततस्तदा।
आसनं कृतमुत्सङ्गे ब्रह्माणश्चैव नन्दतः॥ 16॥

उन मत्स्य के पूँछ के झपट्टों से महासागर की जलराशि के उछाल की छटा अद्भुत थी, वे विराट उर्मियाँ बारम्बार तटों को स्पर्श करने के लिए उमड़ती थीं। सागर के स्थल पर चारों ओर फेन स्वरूपी बड़े-बड़े आवर्तक लहरों के उठे मानो अग्नि के झंझावाती कुलावर्तों, भँवरों से वनमालिका पूरी तरह भङ्ग हो गई हो। इस संघर्ष में शङ्खासुर मारा गया। तब उसके द्वारा चुराए गए वेद भी वे मत्स्यरूप भगवान् अपनी गोद में भली प्रकार रखकर लाए जिससे ब्रह्मा को भी बहुत आनन्द हुआ।

पटहाद्या अवाद्यन्त वेदे प्राप्तेऽनु पञ्चमम्।
महोत्सवे ब्रह्मलोके विष्णुलोके तथैव च॥ 17॥
धर्मः प्रस्थापितो लोके सत्यं ज्ञानं च भूतले।
लक्ष्म्यायुष्का नराश्चैवमक्लेशा दृढयौवनाः॥ 18॥

वेदों के प्राप्त हो जाने के हर्ष में पटहा आदि पाँचों प्रकार के वाद्यों का वादन कर ब्रह्मलोक व विष्णुलोक में महोत्सव मनाया गया। इस प्रकार शङ्खासुर के वध के उपरान्त पुनः लोक में धर्म की स्थापना हुई और भूतल पर सत्य व ज्ञान का विस्तार हुआ। इसके फल स्वरूप नर-नारी क्लेश रहित होकर दृढ़ यौवनयुक्त हुए और लाखों वर्षों की आयु प्राप्त करने में सक्षम हुए।

एकच्छत्रं नृपो राज्यं प्राप्तवान् वेदसङ्गतौ।
चक्रवर्तित्व विज्ञेयो शिवभटं सुदर्शनम्?॥ 19॥
देवाग्निगुरुपूजा च सतीसत्यं तथोत्तमम्।
अग्राह्यं च प्रजादण्डं अद्वास्यता कृषि वेश्मता?॥ 20॥

इस समस्त पृथ्वी पर वेद सङ्गत अर्थात् वेदों में दिए गए आदेशों का पालन करने वाला एकछत्र चक्रवर्ती राजा का राज्य प्राप्त हुआ। उस चक्रवर्तीत्व को पाने वाला लोकप्रिय सुदर्शन राजा शिवभट नाम से जाना गया। इस राजा के राज्य में देवपूजा, हवनादिक अग्निपूजा और गुरुपूजा तथा सर्वोत्तम सतियों का सत्य अर्थात् पातिव्रत्य पूरी तरह से व्याप्त था फलस्वरूप प्रजा धर्मानुसार चलने के कारण दण्ड प्राप्ति के लिए अग्राह्य हो गई अर्थात् तब दण्ड का प्रचलन नहीं था। सभी नागरिक स्वतन्त्रता से जीवन यापन करते थे। कोई भी व्यक्ति खेती के लिए अथवा गृहादि के लिए दास बनाकर नहीं रखा जाता था।

न शोकदुःखदुर्भिक्षं न चौराश्चाभवंस्तदा।
धर्मेण पालयन्धात्रीमाज्ञां चक्रे च मेदिनी॥ 21॥
ईप्सितोदकं च मेघात् सर्वसस्या च मेदिनी।
लक्षात्परेऽनल्पधना अतिरूपा नराः स्त्रियः॥ 22॥

उस काल में कोई शोक, दुःख, दुर्भिक्ष नहीं था तथा चोरों का भी कोई भय नहीं था। तब पृथ्वी का धर्म से पालन होता था और उस राजा की आज्ञा समस्त संसार में मानी जाती थी। इसी प्रकार के खुशहाल में मेघ भी आवश्यकतानुसार वर्षा करते थे और सारी धरती पर सभी प्रकार के धान्य उत्पन्न होते थे। फलतः यहाँ के नर-नारी अत्यन्त रूपवान और स्वस्थ होते थे और लखपति होते थे, अनल्पधनी होते थे अर्थात् बहुत समृद्ध होते थे।

कामिन्य ऋतुगम्याश्च ह्यायुष्काः कान्तिभिर्युताः।
लोकाः शास्त्रविशेषज्ञ अग्निहोत्रं गृहेगृहे॥ 23॥
त्रिदशतिथिपूजा च नित्यमेव प्रतिगृहम्।

न विषं नैव दुःस्थानं गृहे तु धनधान्यकम् ॥ 24 ॥

उस राज्य की कामिनियाँ अर्थात् ऋतुमति नारियाँ ऋतुकाल में ही सहवास करने वाली होने के कारण कान्तियुक्त, सौन्दर्य व तेजयुक्त तथा पूरी आयु तक जीवित रहने वाली होती थी। वहाँ के निवासी लोक और शास्त्रों के विशेषज्ञ होते थे और घर-घर अग्निहोत्र का प्रचलन था। प्रत्येक घर में देवता और अतिथि की नित्य पूजा अवश्य ही होती थी। कहीं भी विष का प्रयोग (नशा) नहीं होता था। इसलिए घरों में खटपट का दुःख भी नहीं था। सभी घर धन-धान्य से परिपूर्ण होते थे।

भुञ्जन्ते काञ्चने पात्रे उदते नास्ति गृह्णता ?।
सन्तुष्टाः सर्वलोकास्तु धनधान्यैश्च काञ्चनैः ॥ 25 ॥
ईप्सितं तु गवां क्षीरं क्षीरे सर्पिस्तथाधिकम्।
इच्छारसश्चेक्षुदण्डे षीधुपानं घटैस्तथा ॥ 26 ॥

उस समय लोग स्वर्णपात्रों में भोजन करते थे और दान देने वालों से भी दान लेने वाले कोई नहीं थे क्योंकि सभी सम्पन्न थे। कोई किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता था। सभी लोग धन-धान्य और स्वर्णादिक से पूर्णतया सन्तुष्ट थे। ऐसे ही धर्म सम्पन्न राज्य में गायें मनचाहा दूध देती थीं और उस दूध में घी भी बहुत होता था। ईखों में पर्याप्त रस होता था, जो इतना मीठा होता था मानो घड़ों में भरा हुआ गन्ने का रस नहीं होकर अमृत हो।

त्रिलक्षाब्दं मीनरूपो विष्णुः पर्येति सागरन्।
पुनर्जन्म करिष्यामि उद्धरिष्येऽमृतं यतः ॥ 27 ॥

इस प्रकार यह मत्स्यावतार रूपी विष्णु आगामी तीन लाख वर्षों तक सागर में समस्त दिशाओं में तैरते रहे। उन्होंने यह भविष्यवाणी भी की थी कि 'मैं पुनर्जन्म लूँगा और उसमें अमृत घट का उद्धार करूँगा।'

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां प्रथमहरि-मत्स्यावताराधिकारो नाम त्रयोविंशं सूत्रम् ॥ 23 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में प्रथम हरि-मत्स्यावतार अधिकार नामक तेईसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 23 ॥

कूर्मावतारे मन्दरार्णवमन्थनं चतुर्विशं सूत्रम्॥ 24॥

विश्वकर्मोवाच-

कल्पान्ते रत्नजातं यद् श्रीधेनुरमृतादिकम्।
अन्योपस्करजातानि क्षीराब्धौ स्थापितानि तु॥ 1॥
याचमानाः समस्तास्तु सुरासुरनरोरगाः।
ददस्व भो विभो सर्व स्थापितं विष्णुना च यत्॥ 2॥

विश्वकर्मा ने (विष्णु के अवतारों के प्रसङ्ग में अपराजित से आगे) कहा—कल्प का अन्त होने पर जिस भाँति से रत्नों की प्राप्ति हुई, जैसे कि श्री, सुरभि, अमृत, आदि और अन्य भी काम की वस्तुएँ प्राप्त हुई, जो क्षीरसागर में स्थित थी, इन सब रत्न राशियों को समस्त सुर, असुर, नर और उरगों ने प्रमुख माँग बना ली थी। इसलिए ये सभी मिलकर भगवान् विष्णु के पास गए और उनसे प्रार्थना करने लगे कि हे प्रभो! सागर में स्थित समस्त वैभव की वस्तओं को, रत्नों को हमें दिलाने की व्यवस्था करें।

इन्द्र उवाच —

काष्ठे चाग्निस्तिले तैलं क्षीरमध्ये यथा घृतम्।
उद्धरिष्यामि तान् सर्वान् क्षीराब्धित विष्णुना च यत्॥ 3॥

इन्द्र ने (देवों की ओर से विष्णु से) कहा— हे प्रभु! जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि छिपी हुई है और तिल में तेल छिपा हुआ है तथा दूध में घी छिपा है, उसी तरह समुद्र के गर्भ में भी समस्त उपस्कर अर्थात् जीवनोपयोगी वस्तुएँ छिपी हुई है, उन सबको मैं उद्धार करके निकालना चाहता हूँ।

चक्रुस्ते मन्थनारम्भं सुरासुरनरोरगाः।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वाऽथ वासुकिम्॥ 4॥[1]

इसी प्रयोजन से समस्त सुर-असुर, नर-उरगों ने मिलकर समुद्र का मन्थन करना आरम्भ किया। इस कार्य के लिए इन सब लोगों ने मन्दराचल पर्वत का मन्थान अर्थात् रवाई या मथनी बनाई और वासुकी नाग को उसे घूमाने के लिए नेत्र (नेतरा, रस्सी) के रूप में काम में लिया।

उद्धरिष्यति कस्तत्र क्षीरार्णवे तु मन्दरम्।
गतास्ते विष्णुपार्श्वे तु सुरासुरनरोरगाः॥ 5॥

---

1. तुलनीय विष्णुपुराणे— चकर्ष नागराजानं दैत्यमध्येऽपरेण च॥ (विष्णु. 1, 9, 89) मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम्॥ (तत्रैव 1, 9, 77 व 84)

तदोपरान्त ये सभी सुर, असुर, नर और उरगगण यह जानने के लिए भगवान् विष्णु के पास गए कि क्या वे वहाँ इस क्षीरसागर से मन्दर के प्रयोग द्वारा उन समस्त उपस्करों को, रत्नों को जो क्षीरसागर में स्थित है, उद्धरित करने, निकालने में समर्थ हो सकेंगे?

कूर्मावतारमासतिथ्यादीनां —

चतुर्लक्षसहस्त्रादि शतान्ताब्दे कृते गते।
फाल्गुने कृष्णपक्षे च द्वितीयायां तिथौ तथा॥ 6॥
मुहूर्ते कार्मुके चैव हस्तान्ते घटिकाद्वयम्।
कूर्मावतारो मेदिन्यां मुहूर्ते तत्र चाभवत्॥ 7॥

इस सबके उद्धार के लिए सतयुगके चार लाख, एक हजार एक सौ वर्ष बीत जाने पर, फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि के दिन, हस्त नक्षत्र के अन्तिम चरण में, दो घटी के बीत जाने पर कार्मुक मुहूर्त में इस मेदिनी पर (भगवान् विष्णु का) कूर्मावतार हुआ।

तले तु कूर्मरूपेण हेमकूटनिभं गिरिम्।
मन्दरं धारयिष्यामि ह्यमृतार्थेऽपराजित॥ 8॥

इस पर विष्णु भगवान् ने कहा कि 'मैं कूर्म रूप में सागर के तल में रहकर स्वर्ण के स्तम्भ के समान बने हुए इस मन्दराचल पर्वत को अपनी पीठ पर धारण करूँगा जिससे मेरा अमृतोद्धार का प्रयोजन सिद्ध हो सके।'

पीतवर्णो महादिव्यो दृश्यतेऽथानुवर्तुलम्।
हारिद्रकश्वेतपादैर्ज्योतिर्दृष्टोऽथ निर्मलैः ?॥ 9॥
शैलेन्द्रस्योत्तररे पार्श्वे क्षीरोदो नाम सागरः।
प्रारब्धं मन्थनं तत्र सुरासुरनरोरगैः॥ 10॥
मन्दरं मन्थनं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम्।
एकतश्च सुराः सर्वे बलिमेकत्र संस्थिताः॥ 11॥

पीले रङ्ग, महादिव्य वर्तुल की भाँति दिखाई देने वाला हल्दी जैसा, श्वेतपाद वाला निर्मल ज्योति वाले मन्दराचल नामक शैलेन्द्र के उत्तरी पार्श्व में यह क्षीरोद नामक क्षीरसागर था जिसे वहाँ सुर, असुर, नर और उरगों ने मथना प्रारम्भ किया। मन्दराचल को मथनी करके और वासुकी नाग को नेत्र बनाकर एक ओर तो सभी देवता एकत्र हो गए और दूसरी ओर बलि आदि असुरगण एकत्र होकर स्थित हो गए थे।

क्षीरार्णवात् निर्गतरत्नद्रव्यादीनां —

क्षीरार्णवे मथ्यमाने सफेनोर्मिमहोत्कटे।
समुद्भूतानि **रत्नानि** गुणतेजोमयानि **च**॥ 12॥
मौक्तिकं वज्रवैडूर्ये **पद्मरागश्च** नीलकम्।
हिरण्याद्यष्टलोहानि **मथ्यमाने तदुद्भवः**॥ 13॥

इस प्रकार दोनों ही ओर से सुरों और असुरों के प्रयास से क्षीरार्णव के मध्य में मन्दराचल के द्वारा मन्थन से फेनयुक्त ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगी। मन्थन के फलस्वरूप गुण और तेजों से युक्त रत्न निकलने लगे। उन रत्नों में मोती, हीरे, वैदूर्य, पद्मराग, नीलम, सोना आदि अष्टलोह धातुएँ समुद्र के बीच से निकलीं।

तदोद्भूता **कामधेनुर्घृतदध्युद्भवस्ततः**।
क्षीरं च गोमयं मूत्रं पञ्चगव्यं **प्रकीर्तितम्**॥ 14॥
सर्वसृष्ट्युद्भवा **धेनुः** सर्वकामफलप्रदा।
सर्वकाममवाप्नोति कामधेनुनमस्कृतिः॥ 15॥

उसी समुद्र मन्थन से कामधेनु निष्पन्न हुई जिससे घी, दही, दूध, गोमय, गोमूत्र निकले जो पञ्चगव्य नाम से जाने जाते हैं। यह कामधेनु सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली है इसलिए समस्त कामों को पूर्ण करने वाली कामधेनु नमस्कृत्य है।

ऐरावतो गजेन्द्राणां चन्द्रश्चाप्सरसस्तथा।
उच्चैश्रवास्तुरङ्गाणां सूर्यादीनां च वाहनम्॥ 16॥

इसके उपरान्त, समुद्र मन्थन से जो अन्य अन्य रत्न निकले वे हैं— गजेन्द्रों में ऐरावत हाथी, चन्द्रमा, अप्सराएँ और उच्चैश्रवा नामक अश्व जो सूर्यादि देवताओं के वाहन बने।

अमृतानां सप्तकुम्भा अमृतत्वं च दायिनः।
समस्थाली च पात्राणं तलिकातां वा (वो) लुकोद्भवाः ?॥ 17॥
पर्यङ्कमासनं चैव तथा सिंहासनानि च।
छत्रचामरालङ्कारा धूपामोद आरार्त्तिकम्॥ 18॥
सिंहासनरुद्रासनवेत्रासनमसूरकम्।
गदिका पट्टपं गिट्टि प्रोक्तान्यासनकानि च॥ 19॥
षोडशाभरणं दिव्यं पदादि मुकुटान्तकम्।
षट्त्रिंशच्चैव$_{36}$ **शस्त्राणां निर्गतानि क्षीरार्णवात्**॥ 20॥

इसी प्रकार अमरता देने वाले अमृत से भरे सात अमृतकुम्भ प्राप्त हुए। पकाने के लिए स्थाली- बटलोई आदि पात्र और ताम्बे की करधनी- कमरपेटी, कमरबन्ध, पर्यङ्क, आसन, सिंहासनादि, छत्र, चामर सहित अलङ्कार और आरती में प्रयुक्त होने वाले धूप-गन्धादि, सिंहासन, रुद्रासन, बेंत का आसन, मसूरक अर्थात् मसहरी या मच्छरदानी, गदला, पट्टप अर्थात् रेशम के महीन वस्त्र, गिट्टी आदि के अनेक आसन, सोलह प्रकार के दिव्य आभूषण जो कि पैर से सिर तक धारण करने योग्य थे और छत्तीस प्रकार के आयुध भी उस समुद्र से निर्गत हुए।

कवचानि च रत्नानि बलीवर्दोत्सवास्तथा।
पुष्पकादिविमानानि श्रीवत्सस्वस्तिकानि च॥ 21॥
क्षीरार्णवे मध्यमाने निमज्जद्भिः सुरासुरैः।
तत्रोत्पन्नो महावृक्षो नाम्नासुरतरुस्तथा॥ 22॥

इसी प्रकार कवच[1], अन्य रत्न, बैलों से होने वाले समस्त उत्सव, पुष्पकादि विमान, श्रीवत्स, स्वस्तिकादि प्राप्त हुए। इसी क्षीरसागर का सुर व असुरगणों द्वारा मन्थन किए जाने पर इसके बीच निमज्जित हुआ सुरतरु नाम का महावृक्ष उत्पन्न हुआ अर्थात् कल्पवृक्ष प्राप्त हुआ।

अथ कल्पवृक्षवर्णनमाह —

नानापुष्पसमाकीर्णो नानापत्रसमाकुलः।
नानाफलसमायुक्तो पञ्चशाखासमन्वितः॥ 23॥
पुण्यानि तस्य पत्राणि दृष्ट्वा तीर्थमहाफलम्।
तस्यानुक्रमरूपं च जातिभेदं च लक्षणम्॥ 23-1॥
देशजातिकुलस्थानं वर्णभेदमतः परम्।
शाखानुक्रमयुक्ती च कथयामि समासतः॥ 23-2॥

उक्त कल्पवृक्ष तरह-तरह के पुष्पों से लदा हुआ था और नाना प्रकार के पत्तों से पूरी तरह लकदक था। तरह-तरह के फल इसकी पाँचों शाखाओं में लगे हुए थे। इस कल्पवृक्ष के दर्शन करने मात्र से सभी तीर्थों की यात्रा का महापुण्य फल

---

1. कौटिलीय अर्थशास्त्र में पाँच प्रकार के कवचों का वर्णन हुआ है— लोहजाल (सिर से पाँव तक ढँकने वाला), लोहजालिका (सिर के अतिरिक्त शेष समस्त देह को ढँकने वाला), लोहपट्ट (भुजाओं को छोड़कर समस्त शरीर को ढँकने वाला), लोहकवच (केवल वक्ष व पीठ को ढँकने वाला), सूत्रकण्टक (सूत का कवच) और पँचचर्मवर्म (मत्स्य, गेंडा, नीलगाय, गज एवं वृषभ के चर्म, खुर व शृङ्ग से निर्मित कवच)। (अर्थशास्त्र अधिकरण 2, 34, 18)

मिल जाता है। उनका क्रमवार रूप, जाति भेद और लक्षण, इनके देश, जाति, कुल-स्थान, वर्णभेद ओर इसके बाद शाखा अनुक्रम से मैं संक्षेप से कहता हूँ।

नागरं द्राविडं चैव कालिङ्गं यामुनं तथा।
निश्चेश्वरं समाख्यातं पञ्चपत्रसमुद्भवम्॥ 23-3॥
नागरा चोत्तरा शाखा द्राविडा दक्षिणोद्भवा।
कालिङ्गा पश्चिमा शाखा यामुना पूर्वदिग्भवा॥ 24॥
विश्वेशा ऊर्ध्वशाखायां एञ्चजातिमहोत्सवाः।
एकैकं पञ्चभेदाश्च₅ कथयाम्यपराजित॥ 25॥

इसके पाँच पत्र भी उत्पन्न हुए जिनके 1. नागर, 2. द्राविड़, 3. कलिङ्ग, 4. यामुन और 5. विश्वेश्वर आदि पाँच नाम विख्यात है। इनमें नागर उत्तरी शाखा के हैं और द्राविड़ दक्षिणी शाखा से उत्पन्न हुए हैं। कलिङ्ग पश्चिम शाखा से और यामुन पूर्वी शाखा से उत्पन्न हुए हैं। विश्वेशा ऊर्ध्वशाखा से उद्भूत हुए। ये पाँचों जाति महोत्सवा रूप में मान्य हैं। इनके भी पाँच-पाँच भेद हैं जिन्हें हे अपराजित! मैं अब कहता हूँ।

पञ्च$_5$जातिर्दश$_{10}$भेदास्तथा षोडश$_{16}$ वै कलाः।
मासपत्रं चतुर्जातमर्बुदादिसमुद्भवम्॥ 26॥
जलजं स्थलजं पत्रं मेघजं गिरिकोद्भवम्।
जीवपत्रं निभाकारं भेदभिन्नं व्यवस्थितम्॥ 27॥

इनकी पाँच जातियाँ हैं जिनके दस भेद हैं और उनकी सोलह-सोलह कलाएँ हैं ओर इनके हर मास चारों से उत्पन्न होने वाले अर्बुदादि (अरबों की) संख्या में हैं। जल से उत्पन्न होने वाले, स्थल से उत्पन्न होने वाले, बादलों से उत्पन्न होने वाले, पहाड़ों में उत्पन्न होने वाले जीवपत्रों के समान भिन्न-भिन्न रूपों में व्यवस्थित हैं।

सर्वाभरणसंस्थानं हारकेयूरकादिकम्।
स्तम्भे द्वारे गृहे शुद्धं प्रासादेषु च सर्वतः॥ 28॥
× × × × × × × × × × × × × ॥ 29॥

इस कल्पवृक्ष के द्वारा उत्पन्न होने वाले सभी आभूषणों के संस्थान में हार-केयूर आदि हैं। सर्वतः स्तम्भ, द्वार, गृह सभी शुद्ध प्रासादों के उपयुक्त हैं। ××××।

यत्र तद् दृश्यते पत्रं स्त्रियस्तत्र हितेक्षणाः।
तत्रोत्पन्नं तु कलशमष्टामाङ्गल्यसम्भवम्॥ 30॥

जहाँ-जहाँ ये पत्र दिखाई देते हैं, वहाँ-वहाँ मनोहारी दृष्टि युक्त स्त्रियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और उनसे अष्ट माङ्गल्य प्रदान करने वाले कलश उत्पन्न हो जाते हैं।

संछन्नं फलपुष्पैश्च पत्रैश्च वलयीकृतम्।
अभिषेके पट्टबन्धे प्रतिष्ठोद्वहनादिषु॥ 31॥
प्रासादे राजभवने कलशं विनिवेदयेत्।
षोडशाभरणैर्युक्ता लक्ष्मीस्तत्र विनिर्गता॥ 32॥
द्वादशादित्यसङ्काशास्त्रैलोक्यम(पि)णिदीपिका।
[1](यस्य प्राप्ये न दारिद्र्यं सा देवी प्रकीर्तिता॥ 33॥)

(वे कलश) फल और पुष्पों से आच्छादित और उनके चारों ओर वलयाकार में पत्र से निर्मित सजावट लिए होते हैं, जो अभिषेक के अवसर पर, पट्टबन्ध के अवसर पर और प्रतिष्ठा के लिए कलशों में विवाह व गङ्गोज यात्रा आदि में, प्रासादों और राजप्रासादों में इन गङ्गाजल के कलशों को आदरपूर्वक स्थपित करें। उन पर से षोडशाभरणों से युक्त महालक्ष्मी वहाँ आ जाती है। जो बारहों आदित्यों के समान जाज्वल्यमान प्रकाश को प्रसारित करने वाली, तीनों लोकों को आलोकित करने वाली मणिदीप की भाँति शोभायमान होती है और जिसके प्राप्त होने पर दारिद्र्य नहीं रहता जो ऐसी देवी के रूप में प्रसिद्ध है।

अमृतं सर्वदेवेषु ह्यैरावतः सुराधिपे।
अश्वश्च भास्करे देवेऽपस्करः सर्वतः समः॥ 34॥

(मन्थन के उपरान्त) सभी देवताओं को अमृत दिया गया और इन्द्र को ऐरावत तथा सूर्य को (उच्चैश्रवा अश्व) दिया गया। ये वस्तुएँ सभी को समान रूप से दी गई।

पुनर्मन्थनात् अलक्ष्मीनिर्गतनं —

पुनश्च मन्थनं कृत्वा अलक्ष्मीस्तत्र निर्गता।
समुपेता पञ्चगुणैर्दत्ता, या तु पितामहे॥ 35॥
अतिक्षुधा च दीनत्वं याचनं भ्रमणं तथा।
अलक्ष्म्याः पञ्चमुद्राश्च करपात्रं च यष्टिकम्॥ 36॥

(जब देवासुरों ने) पुनः क्षीरसागर का मन्थन किया तो अलक्ष्मी सागर से निकली जिसको पितामह ने एक साथ पाँच गुण दिए। अतिक्षुधा, दीन-मलीन, याचना के लिए भटकाव और भिक्षापात्र तथा यष्टि— ये पाँचों मुद्राएँ अलक्ष्मी को

---

1. प्रकाशित पाठे न लभ्यते।

प्रदान की गईं।[1]

तथा च मन्थनै विषप्राप्तिं —

पुनर्मन्थनं कृत्वा तु विषं तत्र विनिर्गतम्।
न तद् गृह्णन्ति वै देवा दानवैर्नैवगृह्यते॥ 37॥
नीलकण्ठे मयूरे च तद्रूपं वृषभध्वजे।
तद्रूपेण तथेशेन तस्मात्तद्भक्षितं परम्॥ 38॥

(इसके उपरान्त) पुनर्मन्थन किए जाने पर उसमें से हलाहल विष निकला जिसे न तो देवताओं ने स्वीकारा न ही दानवों ने। ऐसे में वृषभध्वज भगवान् शिव और मयूर ने उसे ग्रहण किया। इससे शिव नीलकण्ठ हो गए और मयूर भी उस विष का भक्षण करने से नीलकण्ठ रूप हो गया।

इत्यमनन्तर वारुणी कलिकोद्भवं —

पुनर्विनिर्गता चैव मदिरा कलिकोद्भवा।

---

1. ऋग्वेदोक्त श्रीसूक्त में लक्ष्मी की ज्येष्ठभगिनी के रूप में अलक्ष्मी का उल्लेख है। उसका स्वरूप क्षुधा-तृष्णा से मलिन एवं क्षीण शरीर वाला बताया गया है। ऋषि ने उसके विनाश की कामना की है और लक्ष्मी से अपने घर की दरिद्रता व अपूर्णता को दूर करने की कामना की है— क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्। अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥ (श्लोक 8)
पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में शिवमुख से भगवती के प्रति ज्येष्ठा का परिचय दिलवाया गया है कि यह समुद्र मन्थन के दौरान उत्पन्न हुई जो रक्त-मांसादि से आवृत्त थी, उत्पन्न होते ही उसने पूछा कि मेरे लिए क्या कर्तव्य है? इस पर उसके लिए कलह योग्य गृह का आवास निश्चित किया गया— ज्येष्ठा देवी समुत्पन्ना रक्तस्रग्वाससावृत्ता। उत्पन्ना साब्रवीद्देवान् किं कर्त्तव्यं मयेति वै॥ तामब्रुवंस्तदा देवीं सर्व्वे देवगणा भृशम्। येषां गृहान्तरे नित्यं कलहं सम्प्रवर्त्तते॥ तत्ते स्थानं प्रयच्छामो वासस्तत्र शुभानने। (शब्दकल्पद्रुम भाग 3 पृष्ठ 549 पर उद्धृत)
पद्मपुराण में उसको कलिवल्लभा कहा गया है— इत्यादिश्य सुराः सर्वे ते ज्येष्ठां कलिवल्लभाम्। (तत्रैव)
हेमाद्रि ने विश्वकर्माशास्त्र से ज्येष्ठा को रक्तवस्त्रा, उग्र रूप वाली, कपाल, चमरी धारण करने वाली, काले मुख वाली और सुभीषण कहा है— रक्तवस्त्रा तथा रौद्री कपालचमरीकरा॥ शेषपूर्वा तु विज्ञेया कृष्णवक्त्रा सुभीषणा। (वृत्तस्था जटिला त्र्यक्षा वह्निज्वालासमप्रभा। कपालाभयहस्तोग्रा वामा वामफलप्रदा॥ द्विवाहुरेकवक्त्रैषा विधातव्या विपश्चिता।) (चतुर्वर्गचिन्तामणि व्रत. अध्याय 1, पृष्ठ 85)
हेमाद्रि ने रक्तज्येष्ठा व नीलज्येष्ठा का स्वरूप भी दिया है— तुङ्गनासा च लम्बोष्ठी लम्बमानस्तनोदरी। आलोहिता स्मृता ह्येषा ज्येष्ठा लक्ष्मीरिति श्रिये॥ उत्पलाभहस्तेयं द्विभुजा वीरवन्दिता। रक्तज्येष्ठा च नीला च भूतलन्वितपादिका॥ भूतलं स्पृशते दोर्भ्यां द्विभुजा वीरवन्दिता। (तत्रैव पृष्ठ 81)
इसी प्रकार मयमतम् में अलक्ष्मी को ज्येष्ठा कहा गया है। लम्बे, लटकते ओष्ठ, उठी हुई नासिका तथा लम्बमान स्तनों वाली ज्येष्ठा की प्रतिमा को लम्बे उदरवाली बनाने का निर्देश है। ज्येष्ठा महालक्ष्मी की ज्येष्ठ बहन या अलक्ष्मी है और हाथ में लाल कमल का पुष्प धारण करती है— लम्बोष्ठी तुङ्गनासी च लम्बमानस्तनोदरी॥ ज्येष्ठा ज्येष्ठा महालक्ष्म्या लोहितोत्पलपाणिका। (मयमतम् 36, 268-69)

तां च पीत्वा कलिर्जातो मथनस्य विसर्जनम् ॥ 39 ॥
अर्थक्षया शौचभ्रंशा गूढमन्त्रप्रकाशिका ।
नष्टकार्या तनुकृष्टा चागम्यागमपापदा ॥ 40 ॥

(एक बार) पुनः सागर का मन्थन किए जाने पर उसमें से कलियुग (क्लेश) स्वरूप मदिरा निकली जिसको पीने से कलियुग का प्रादुर्भाव हो गया और सागर मन्थन का अन्त हो गया। तब से मदिरा पीने वाले में कई अवगुण प्रकट होने लगे। यथा— वह व्यक्ति के धन का क्षय करती, उसकी पवित्रता का विनाश करती, उसके गुप्त विचारों को प्रकट कर देती और उसके समस्त कार्यों को नष्टकर डालती है, वह उसके विवेक का हरण कर लेती है जिससे वह बहन-बेटी, माता-गुरुपत्नी आदि अगम्या के साथ भी दुराचार करने में प्रवृत्त कर देती है और ऐसे जघन्य पाप करवाती है।

अधर्मकलिकोद्भावा गृहच्छिद्रादिकारिका ।
तथा त्यक्तोत्तमस्नेहा मृतनिर्गतचेतना ॥ 41 ॥
एवं निन्द्यगुणैर्युक्ता मदिरा पानतः कृता ।
मुक्ता यैः सा स्वहितैश्च तेषां श्रीर्बलवर्द्धिनी ॥ 42 ॥

इसी प्रकार कलियुग के सभी अधर्मों को कराने वाली, गृह की रहस्यों को खोलकर परिवार के स्नेह, प्रेम व्यवहार को छुड़ा देती है और मदिरा पीने वाले व्यक्तियों की चेतना को मृत कर देती है। इस प्रकार के निन्द्य गुणों से मदिरापायीयुक्त होकर बरबाद हो जाता है। इसके विपरीत, जो समझदार व्यक्ति इसके अवगुणों को समझकर इससे मुक्त हो जाता है, वह अपना स्वयं का ही हित कर लेता है और ऐसे लोगों का धन व बलवर्धिनी वह त्यागी गई मदिरा स्वयं बन जाती है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां कूर्मावतारे मन्दरमन्थनाधिकारो नाम चतुर्विंशं सूत्रम् ॥ 24 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में कूर्मावतार मन्दार मन्थन अधिकार नामक चौबीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 24 ॥

वराहावतारो नाम पञ्चविंशं सूत्रम् ॥ 25 ॥

अपराजित उवाच —

पृथिव्यां सागरा द्वीपाः सशैलवनकाननाः ।

अपराजित बोले— वन-जंगल और पहाड़ों सहित पृथ्वी इन सागरों और द्वीपों के लिए किस के आधार से घूर्णित होती है अर्थात् चक्र लगा रही है? हे परमेश्वर! इस बारे में कहिए।

विश्वकर्मोवाच —

नागराजधृताः शैलाः पृथिव्यां द्वभ्पसागराः।
भाराक्रान्ता च वसुधा भीता याता रसातले॥ 2॥

विश्वकर्मा ने कहा— नागराज के द्वारा यह समस्त पृथ्वी द्वीप, सागर और पहाड़ों सहित धारण की गई है और इस वसुधा के भार से आक्रान्त होकर वह नागराज रसातल में चला गया।

तदाक्षीरार्णवे सर्वे विष्णुपार्श्वे गताः सुराः।
रक्ष रक्ष परं विष्णो जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ 3॥
रक्षरक्षाऽऽर्यलोकांश्च पादोऽधर्मस्य वर्तते।
तेन सा च भराक्रान्ता भूतधात्री ह्यधोगता॥ 4॥

ऐसे में सभी देवतागण क्षीरसागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु के पास पुकार करने पहुँचे कि 'हे विष्णु! हमारे इस स्थावर जङ्गम, जीव सृष्टियुक्त जगत की रक्षा करें। हे प्रभु! अब धर्म केवल चतुर्थांश ही रह गया है। इसलिए धर्म की रक्षा और आर्य-लोकों की रक्षा करिए क्योंकि चतुर्थांश धर्म के रहने से और तीन चतुर्थांश पाप के भार से दबकर यह पृथ्वी पाताल में जा रही है।'

विष्णुरुवाच —

रसातले गमिष्यामि भूताधारधरा मही।
आत्मस्थाने स्थापयिष्ये तामधो गम्यते मया॥ 5॥

(इस पर विष्णु ने देवताओं से कहा कि) इस भूतमात्र की आधार पृथ्वी को मैं उद्धार करके उसके अपने सही स्थान पर स्थापना करने के लिए रसातल में जाऊँगा।

कृतार्धे च समायाते चैत्रकृष्णजयातिथौ।
सूर्यनाममुहूर्तान्ते हस्तान्ते घटिकाद्वयम्॥ 6॥
वराहरूपमास्थाय अप्रमाणं महोत्कटम्।
भृकुटिस्फुरद्दशनं तेजः पुञ्जसमुद्भवम्॥ 7॥
दंष्ट्राग्रे वसुधां धृत्वा सशैलद्वभ्पसागराम्।
सम्पूजितः सर्वदेवैरागतः पृथिवीधरः॥ 8॥

कृतयुग के आधे बीत जाने पर चैत्र मास के कृष्णपक्ष की जया तिथि (तृतीया) को सूर्य नामक मुहूर्त (तृतीय मैत्र[1] संज्ञक मुहूर्त) के अन्त में, हस्त नक्षत्र के अन्तिम चरण में, दो घटिका शेष रहते महोत्कट महाविशाल, अकल्पनीय प्रमाण वाले वराह के रूप में फड़कती हुई भ्रकुटी और किटकिटाते हुए दाँतों और अत्यन्त प्रकाशमान तेजपुञ्ज से समुद्भव अर्थात् उत्पन्न होकर इस शैल-द्वीप-सागर से युक्त पृथ्वी को अपने दाढ़ के आगे के भाग पर धारण करके सभी देवताओं से सम्पूजित होकर पृथ्वीधर होता हुआ पुनः आऊँगा।

तथा च वराहावतार वर्णनं —

पुष्करे परमेश्वरो नासाग्रे पवनात्मकः।
वलिका ऊर्ध्वकेशेषु शम्भुसृष्टिसमुद्भवा॥ 9॥

(देवताओं को इस आश्वासन के बाद) भगवान् विष्णु परमेश्वर जल के तालाब में नाक से आगे पवन की फुफकार छोड़ते हुए अपने आयाल के ऊँचे-ऊँचे केशों सहित भगवान् शिव की सृष्टि में उत्पन्न हुए।

अधरैश्चाधकोद्भूतं ? दंष्ट्रायां शैलसम्भवः।
सरस्वती च जिह्वायां तालुकेऽमरकोटयः॥ 10॥
ग्रीवायां सुरसङ्घाश्च ओष्ठयोश्चासुरास्तथा।
कपाले कार्मुककरश्चन्द्राकौं चेव नेत्रयोः॥ 11॥
कर्णयोश्चेव गन्धर्वास्त्रिकोटिः सार्धमस्तके।
पृष्ठोपरि तथा मेरुर्लिङ्गाकारेण संस्थितः॥ 12॥

अधरों के नीचे से निम्न भाग उद्भूत होता जान पड़ा तो दाढ़ों से पहाड़ बने हों, ऐसी छवि थी। जिह्वा में सरस्वती को बसाकर और तालू में करोड़ों देवताओं को बसाकर, गले में देवताओं के समूहों को बसाकर और ओठों पर असुरों को

---

1. मुहूर्ततत्त्व में आया है कि दिन के 15 मुहूर्तों के लिए दिनमान में 15 का भाग देकर एक मुहूर्त का घट्यात्मक मान निकाला जा सकता है। दिन के ये मुहूर्त-स्वामी क्रमशः निम्नलिखित हैं— 1. ईश, 2. सर्प, 3. मित्र, 4. पितृ, 5. वसु, 6. सलिल, 7. विश्वेदेव, 8. अभिजित् (विधि), 9. विधाता, 10. इन्द्र, 11. इन्द्राग्नि, 12. राक्षस अथवा निर्ऋति, 13. अम्बुनाथ, 14. अर्यमा और 15. भग— अह्नीशः सर्पमित्रौपितृवसुसलिलं विश्वकौकश्च वध्रीन्द्राग्नी रक्षोम्बुनाथार्यमभगमथोर्धेभिजिद्यान इष्टः। (मुहूर्ततत्त्व 1, 8) विष्णुधर्मोत्तरपुराण में वज्र के प्रश्न पर मार्कण्डेय का कथन है— दिनरात्र्योस्समारम्भे ह्यर्धं भवति पार्थिव॥ तयोर्मध्ये च सततमभिजिच्चाभिधीयते। तयोर्द्वित्वान्मया त्रिंशन्मुहूर्ता विहितास्तव॥ नक्षत्रैर्दैवतैस्तेषां देवताः परिकीर्तिताः। केवलं क्रमहानिश्च क्रमस्तेषां निबोध मे॥ रौद्रस्सार्पस्तथा मैत्रः पैत्रो वासव एव च। आप्यो वैश्वस्तथा राजन्केश्वरः शक्रदैवतः॥ ऐन्द्राग्नेयौ नैर्ऋतस्तु वारुणश्च महीपते।

बसाकर, कपाल में धनुषाकार को, चन्द्रमा व सूर्य को नेत्रों में धारण करके, कानों और मस्तक में साढ़े तीन करोड़ गन्धर्वों को, पीठ पर और मेरु पर्वत को लिङ्गाकार में स्थापित किया।

पञ्चवक्त्रो महादिव्यो व्योमव्यापी सदाशिवः।
तस्य प्रदक्षिण मेरुर्भुवनानि चतुर्दश$_{14}$ ॥ 13 ॥
स्थिताश्चैकादश$_{11}$ रुद्रा द्वादशादित्यकास्तथा$_{12}$।
चतुर्दशमन्वश्च$_{14}$ त्रिदशास्स्युरनेकधा ॥ 14 ॥

(इसी प्रकार) यह महान वराह का स्वरूप एक प्रकार से महादिव्य व्योम व्यापी सदाशिव का ही पञ्चवक्त्र स्वरूप है जिसके मेरु शिखर के चतुर्दिक चौदह भुवन प्रदक्षिणा करते हैं। इस वराह अवतार के स्वरूप में एकादश रुद्र और द्वादश आदित्य, चौदह मनु और अनेक देवता अवस्थित हैं।

उभयोर्गिरिगोत्राश्च भुजयोः शैलजास्तथ।
कर्णिकायां च संसारो मणिबन्धे महोत्कटाः ॥ 15 ॥
इन्द्रः खुरेषु गन्धर्वाः क्षुररन्ध्रुषु पन्नगाः।
क्षुराग्रे चाश्विनौ देवौ जानुसन्धौ च रुग्व्ययः ॥ 16 ॥
अहिला(?जा) हृदयदेशे जठरे जगतो धृतिः।
कुक्षौ सप्तार्णवाः प्रोक्ताः पुच्छे सृष्टिकरस्तथा ॥ 17 ॥

भगवान् वराह की दोनों भुजाओं में गिरिगोत्रा, पहाड़ों का समूह तथा शैलजा पहाड़ी चोटियों का समूह स्थित है। श्रीवराह के कानों में और कलाइयों में महोत्कट संसार स्थित है। उनके पाँवों के खुरों में इन्द्र और गन्धर्वों का वास है जबकि खुरों के मध्य में रन्ध्र, रिक्त स्थान में पन्नग-सर्पों का वास है। खुरों के अग्रभाग में अश्विनीकुमारों का वास है। जङ्घा के सन्धि में सभी रोगों का नाश करने वाले तत्त्वों का वास है। अहिला (जा) साँपों के वंशज वराह के हृदयदेश में और समस्त जगत को वराह ने अपने पेट में धारण कर रखा है। श्रीवराह के दोनों कुक्षों में सातों महासागरों का वास कहा है और श्रीवराह की पुच्छ में सृष्टिकर ब्रह्मा का वास है।

तदूर्ध्वं कूर्मरूपं तु कूर्मोर्ध्वे गरुडो मतः।
पञ्चद्वे$_{25}$ तत्त्वानि यतः स्मृतः सृष्टिसमुद्भवः ॥ 18 ॥
पञ्चतत्त्वोद्भवा सृष्टिः ख्यातः संसारसागरः।
एवमाद्योद्भवो देवः संसाराच्च समुद्धरेत् ॥ 19 ॥

पापात्समुद्धरेद्येन लीलया धार्यते महीम्।
खुणमध्यगतो यस्य मेरुः खुणखुणायते॥ 20॥

इससे ऊपर कूर्म रूप है और कूर्म के ऊपर गरुड़ माना गया है। इससे आगे पच्चीस (पञ्च द्वे 5 × 5 = 25) तत्त्व कहे गए हैं जिनसे सृष्टि उत्पन्न हुई है। यूँ पञ्चतत्त्वों से इस सृष्टि में संसार, सागरादि की उत्पत्ति विख्यात् है। उसी आदिकाल में उत्पन्न होने वाले संसार का श्रीवराहदेव ने बड़ी लीला से अर्थात् खेल-खेल में आसानी से मही अर्थात् पृथ्वी को धारण करके पाप से समुद्धरित किया।

पातालं यस्य कुक्षौ सकलशिखरिणो मन्दरो मेरुकाद्याः
दंष्ट्राग्रे यस्य लग्ना त्रिभुवनसहिता मेदिनी सागरान्ता।
आरक्ते यस्य नेत्रे सुरभिसुरदितं घर्घरं यस्य काले
द्वौ कर्णौ भुजगदृष्टि कपट तनुकृत ? पातु वः श्रीवराहः॥ 21॥

श्रीवराह के कुक्षों में पाताल के समस्त गिरि शिखिर मन्दराचल, सुमेरु आदि का वास है और श्रीवराह के दाँतली में त्रिभुवन सहिता यह सागरान्त महि-मेदिनी टिकी हुई है, लगी हुई है। श्रीवराह के लाल-लाल नेत्रों में सुरभि, सुर व दैत्य (?) वसते हैं और उनके घर्घर शब्द में, गुरनी में काल का वास है। दोनों कान ऐसे फैले हैं मानो फन फैलाई हुई भुजङ्ग की दृष्टि हो। इस प्रकार के कपट तनु, छलिया रूप वाले श्रीवराह हमारी रक्षा करें।[1]

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
वराहावतारनिर्णयाधिकारो नाम पञ्चविंशं सूत्रम्॥ 25॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में
वराहावतार निर्णय अधिकार नामक पचीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 25॥

1. मत्स्यपुराण में यज्ञवराह का स्वरूप इस प्रकार आया है— वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश् चितीमुखः। अग्निजिह्वो दर्भलोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः। अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिविभूषणः॥ आज्यनासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनो महान्। सत्यधर्ममयो श्रीमान् कर्मविक्रमसत्कृतः॥ प्रायश्चितनखो घोरः पशुजानुर्मखाकृतिः। उद्गीथहोमलिङ्गोऽथ बीजौषधि महाफलः॥ वाय्वन्तरात्मा यज्ञास्थितिविकृतिः सोमशोणितः। वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यविभागवान्॥ प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः। दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान्॥ उपाकर्मौष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्त्तभूषणः। नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः। छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः॥ (मत्स्य. आनन्द आश्रम संस्करण [illegible]

नृसिंहवामनावतारो नाम षड्विंशं सूत्रम् ॥ 26 ॥[1]

अपराजित उवाच —

हिरण्यकशिपुर्घोरो जातः कस्मादुपायतः।
अफलं वर्धितं केन? कथयस्व प्रसादतः ॥ 1 ॥

अपराजित बोले — महाघोर दुर्दान्त हिरण्यकशिपु किस उपाय से उत्पन्न हुआ? हे तात! कृपा करके इस बार में कहिए कि इससे क्या-क्या अफल-निष्फल कार्य हुए।

विश्वकर्मोवाच —

हिरण्यकशिपुं पूर्वं कथयिष्यामि साम्प्रतम्।
महोत्कटश्च येनाऽसाववध्यो देवदानवैः ॥ 2 ॥
तेनस्ववशमानीताः देवासुरनरोरगाः।
ससुतं वैष्णवं दिव्यं विष्णुपादसुचिन्तकम् ॥ 3 ॥
हिरण्यकशिपुर्हन्तुं प्रह्लादं प्राञ्जलिं सुतम्।
कृत्वा चैवाग्निमध्यस्थं पर्वताद् विनिपातितम् ॥ 4 ॥
निबध्य च जयस्तम्भे शुभं वै वज्रशृङ्खलैः।
तेनाऽसौ स्तूयमानश्च विष्णुः स्तम्भार्दनार्चितः ॥ 5 ॥

विश्वकर्मा बोले —अब मैं पहले संक्षेप में हिरण्यकशिपु के बारे में कहता हूँ। इस महोत्कट, भयङ्कर असुर के द्वारा अनेकों देव-दानवों का वध हुआ। उसने समस्त देवता, असुर, मनुष्यों और नागों को अपने वश में कर रखा था। इस दुष्ट ने, विष्णु भगवान् के चरणों में भक्ति रखने वाले अपने दिव्य वैष्णवपुत्र को भी वश में करने के लिए अग्नि के मध्य में जलाने, ऊँचे पर्वत शिखरों से गिराने, बड़ी सुदृढ़ साँकलों से जय खम्भ से बाँधकर तरह-तरह के कष्ट दिए परन्तु प्रह्लाद खम्भे से बन्धे हुए अपनी अञ्जलियों को भगवान् विष्णु की स्तुति करने में जोड़े हुए प्रार्थना करते रहे।

अथ नरसिंहावतार कालादीनां —

त्रयोदश$_{13}$लक्षाब्देषु गतेषु च कृते युगे।
राधशुक्लचतुर्दश्यां$_{14}$ ज्येष्ठान्ते च मुहूर्तके ॥ 6 ॥
ऊर्ध्वं सिंहतनुं कृत्वा चाधो नरतनुं तथा।
स्तम्भं संस्फोट्य तं घोरं सूदयिष्यति दानवम् ॥ 7 ॥

---

1. 'वामनावतारो नाम षड्विंशं सूत्रम्' इति प्रकाशित पाठः।

जब कृतयुग के तेरह लाख वर्ष व्यतीत हो जाएँगे, तब वैशाख मास शुक्ला चतुर्दशी (राध[1]शुक्ल चतुर्दशी), ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्तिम मुहूर्त में (मैं अवतार लूँगा)। मेरे देह के ऊर्ध्वभाग में सिंह का स्वरूप होगा और नीचे का भाग मानव स्वरूप में होगा। मैं उक्त विशाल स्तम्भ को फाड़कर विकराल रूप में निकलकर उस हिरण्यकशिपु को सूदयिष्यति— मारूँगा।

प्रह्लादस्य तथा राज्यं विष्णुर्दास्यति भूतले।
एकच्छत्रां स दत्तां च पालयेद्भूतधारिणीम्॥ 8॥

(हे अपराजित!) भगवान नरसिंह का रूप धारण करने वाले विष्णु इस भूतल का राज्य प्रह्लाद को देंगे जो समस्त पृथ्वी का एक छत्र राज्य करके धरती का पालन करेंगे।

नरसिंहवर्णनं —

यं दृष्ट्वा नारसिंहं विकृतनखमुखं तीक्ष्णदंष्ट्राकरालम्
पिङ्गाक्षं स्तब्धकर्णं हुतवहसदृशं कुञ्चिताग्रोऽग्रकेशम्।
भीतास्ते दानवेन्द्रा असुरवरभटाः शस्त्रमुद्गीर्यहस्तात्
हाहा किं किं किमेतत् क्षुभितजनपदः पातु वो नारसिंहः॥ 9॥

जिस नारसिंह रूप को भयानक नख-मुख, तीक्ष्ण और कराल दाँतों, लाल-लाल आँखों, चकित खड़े कानों, भयानक हुताग्नि जैसा और सिर के अयाल भाग के भयानक रूप में बिखरे उठे हुए बालों को देखकर वे सभी दानवेन्द्र, असुर वीर जिनके हाथों में गदा रूपी शस्त्र धारण किए हुए थे, भयभीत होकर हाहाकार करने लगे और डर से काँपते हुए समस्त जनपद के लोग, यह क्या है? यह क्या है?? पुकारने लगे— ऐसे नरसिंह भगवान हमारी रक्षा करें।

यः स्तम्भाद् गर्जमानो गगडगडगडदू बालचन्द्रार्कदंष्ट्रः
व्योमाभुव्याप्यमानः पपटपटपटत् पोट्यमानः शटाभिः।
दंष्ट्राभिः खाद्यमानः ककहकहकहत् स्तूयमानः सुरेन्द्रैः
निष्क्रान्तो हास्ययुक्तः ककहकहकहत् पातु वो नारसिंहः॥ 10॥

इति नृसिंहावतारश्चतुर्थः।

जो स्तम्भ फाड़कर उसमें से गर्जन करते हुए गगड-गडगडद शब्द ध्वनि करते

---

1. ग्रन्थान्तर में द्वादश माह के नाम पर्यायानुसार इस प्रकार आए हैं— मधु-चैत्र, माधव-वैशाख, ज्येष्ठ-शुक्र, शुचि- आषाढ़, नभ-श्रावण, नभस्य-भाद्रपद, इष- आश्विन, ऊर्ज-कार्तिक, सहा- मार्गशीर्ष, सहस्य-पौष, तप-माघ, तपस्य-फाल्गुन। ये क्रमानुसार चैत्रादि बारह महीनों के पर्याय हैं— मधुश्च माधवः शुक्रः शुचिश्चापि नभाह्वयः॥ नभस्य इष ऊर्जश्च सहाख्यश्च सहाख्यश्च सहस्यकः। तपस्तपस्यः क्रमशश्चैत्रादीनां तु संज्ञकाः॥ (नारदसंहिता 3. 81-83)

हुए और उदित होते बालचन्द्र, द्वितीया के चन्द्र की तरह तीखे दाँतों वाले, भूमि से लेकर व्योम तक विस्तीर्ण पपटपटपटत् फटकारते हुए भरपूर बालों से युक्त, तीक्ष्ण दाढ़ों से चबाकर खा जाने की तैयारी में दाँतों को ककटकटकटत् करते हुए भगवान नरसिंह है— उनकी सुरेन्द्र आदि ने भी निष्प्रभ होते हुए स्तुति की। इससे भगवान् नरसिंह की हंसी छूट गई और वे ककहकहकहत् खिलखिलाकर हंस पड़े— ऐसे नरसिंह भगवान हमारी रक्षा करें।

अथ पञ्चम वामनावतारणवर्णनम् —

सन्धौ च समनुप्राप्ते त्रेतायाश्च कृतस्य च।
अयुक्ताश्च नरा नार्यश्चाल्पशस्या तु मेदिनी॥ 11॥
तीर्थात् पुण्यानि गच्छन्ति लोको दानानि वाञ्छति।
दासन्ति विप्राः शूद्रेषु वैश्याश्च नृपपावनाः॥ 12॥

(अब विष्णु के पाँचवें वामन अवतार का वर्णन किया जा रहा है। यहाँ प्रथमतः युगवर्णन है) त्रेतायुग एवं सतयुग के सन्धिकाल के आते-आते नर-नारी के परस्पर सम्बन्ध टूटने लगेंगे और धरती पर कृषि की उपज क्षीण हो जाएगी। ऐसे समय में तीर्थ क्षेत्रों से पुण्य का लोप हो जाएगा। लोग दान एवं भिक्षा की वाञ्छा से भट जाएँगे, विप्र लोग शूद्रों के दास होकर उनकी सेवा में तत्पर होंगे जबकि वैश्यगण भी राजाओं के आदेश बजाने में लगेंगे।

भुञ्जते रौप्यपात्रेषु स्मरार्ता विप्रजातयः।
नैव साङ्ख्ययं नास्ति भाट्टं न दर्शनचतुष्टयम्॥ 13॥
नृपा युद्धानि कुर्वन्ति भूम्यर्थे च परस्परम्।
त्रिपादो वर्तते धर्मः पादश्चैकस्त्वकर्मणि॥ 14॥

(तब) स्वर्णपात्रों में खाने वाले विप्रगणों का इतना पतन हो जाएगा कि उनको चाँदी के पात्रों में भोजन करना पड़ेगा, वे स्मरार्ता (कामदेव के वशीभूत) हो जाएँगे। उनमें कथा-पुराण वाचक भट्टगणों के गुण नष्टभूत होंगे और वे दर्शनचतुष्टय[1] को विस्मृत कर जाएँगे। राजा लोग ऐसे समय में अतिक्रमण करने के

---

1. दर्शन चतुष्टय से आशय है— साक्षात्, पात्रिक (पत्राचार-जात), चित्र एवं स्वप्न। इनके प्रतिपाद्य भी चार हैं— हेय (त्याज्य), हेयहेतु (दुःखकारण), हान (दुःखनिवृत्ति), हानोपाय (दुःख से निवृत्ति के उपाय)। भाट्ट से यहाँ आशय नाट्यवृत्ति के उस तीसरे प्रकार से भी हो सकता है जिसके चार भेद हैं— संक्षिप्ति (संक्षिप्त वस्तु रचना), सम्फेट (दो पात्रों के बीच सक्रोध सङ्घर्ष), वस्तूत्थापन (मन्त्रबल और मायाजाल से प्रस्तुत दृश्य) एवं अवपात (किसी पात्र के मञ्च पर उपस्थित होने से भगदड़ मचना)। (दशरूपक 2, 57-59)

प्रयोजन से परस्पर युद्धरत रहेंगे और धर्म का एक चतुर्थांश घट जाएगा जिससे धर्म केवल तीन चौथाई ही रह जाएगा।

दैत्यवंशोद्भवो राजा बली स्याद् दानगर्वितः।
गर्वहा सम्भविष्यामि विष्णुर्वै बलिवञ्चने॥ 15॥
अदितेः कश्यपसुतः सम्भविष्यामि भूतले।
भाद्रशुक्लद्वादश्यां 12 वै श्रवणे सुमुहूर्तके॥ 16॥

उक्त सन्धिकाल में दैत्यवंश में उत्पन्न होने वाले राजा बलि दान देने के अपने गर्व में फूल जाएगा, अभिभूत हो जाएगा और उसके गर्व को चूर करने के लिए विष्णु के वामन अवतार रूप में बलि राजा को ठगने के लिए अदिति के गर्भ में कश्यप ऋषि के पुत्र के रूप में इस पृथ्वी पर अवतार लेंगे। यह अवतार भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को हस्त नक्षत्र में शुभ मुहूर्त में होगा।[1]

अदितेश्च समुत्पन्नो लघुकायो दृढात्मकः।
तत्रोद्भविष्यदेवं च विष्णुर्वै वामनाकृतिः॥ 17॥
ततो वामनरूपेण स्तूयमानो द्विजोत्तमैः।
स्वागतः सिंहद्वाराग्रे बलिर्यत्र धरापतिः॥ 18॥
समुच्चार्य वेदशास्त्रं द्विजसहस्त्रध्वनिर्यथा।
बलिस्तुष्टोऽथ विप्रेन्द्र ददामि यत्तवेप्सितम्॥ 19॥

(विष्णु की यह प्रतिज्ञा है कि) 'मैं अदिति के गर्भ से लघुकाय— वामन रूप में तथा दृढ़ात्मक अर्थात् दृढ़ आत्मबल वाला विष्णु वामनाकृति में इस प्रकार उत्पन्न होऊँगा। तब मैं वामन रूप में बड़े-बड़े उत्तम द्विजों के द्वारा बलिराजा के राज्यद्वार, सिंहद्वार के आगे पूजित होकर स्वागत पाऊँगा। वहाँ मैं मानो हजारों द्विजों की ध्वनि हो रही हो, ऐसी वेदशास्त्रों की ध्वनि का उच्चारण करूँगा जिससे बलि मुझसे सन्तुष्ट हो जाएगा और मुझे विप्रेन्द्र मानकर जो कुछ मैं चाहूँगा, (वह मुझे कहेगा कि) आप जो चाहते हैं, वह मैं प्रदान करता हूँ।'

विष्णुरुवाच —

ममपादत्रयं भूमेर्याचनीयं नृपोत्तम।
नैवाऽकाङ्क्षे च राजेन्द्र महादानानि भोगिनाम्॥ 20॥

---

1. भागवत में भी आया है— श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः। सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम्॥ द्वादश्यां सवितातिष्ठन्मंदिनगतो नृप। विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः॥ (भागवत 8, 18, 5-6)

हस्तोदकं मया दत्तं यावच्चन्द्रार्कतारकम्।
तं दिव्यरूपमास्थाय क्रमिष्यामि वसुन्धराम्॥ 21॥

विष्णु ने (अवतार के समय राजा से कहा था) 'हे नृपोत्तम! मुझे तो केवल तीन पाँवों जितनी ही भूमि याचनीय है। हे राजेन्द्र! मैं तो अन्य भोगवादियों की भाँति बड़े-बड़े दानों की तनिक भी आकांक्षा नहीं रखता हूँ।[1] इसलिए राजा बलि यह सङ्कल्प करेगा कि 'जब तक चन्द्रमा व सूर्य सहित तारागणों की स्थिति रहेगी, तब तक के लिए मेरे द्वारा यह दान दिया जा रहा है।' ऐसे में मैं दिव्यरूप होकर समस्त वसुन्धरा को नाप लूँगा।'

बलिं चैव करिष्यामि पातालतलवासिनम्।
देवांश्चैव करिष्यामि स्वस्वस्थानेषु **शाश्वतम्**॥ 22॥

'इसी बीच, भूमि का नाप पूर्ण नहीं होने पर बलि पर अधिकार कर उसे पातालवासी बना दूँगा और देवताओं को उसके पंजे से छुड़ाकर उनके अपने-अपने स्थानों पर शाश्वत रूप में स्थापित कर दूँगा।'

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
वामनावतारनिर्णयाधिकारो नाम षड्विंशं सूत्रम्॥ 26॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में
वामनावतार निर्णय अधिकार नामक छब्बीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 26॥

रामावतारो नाम सप्तविंशं सूत्रम्॥ 27॥

विश्वकर्मोवाच —

त्रेतार्द्धे चाब्द आद्ये च ह्याषाढे कृष्णाषष्ठिका।
नाम प्रोक्तं पुण्डरीकं धनिष्ठान्ते मुहूर्तके॥ 1॥
जमदग्निसुतो भूत्वा रामः शस्त्रभृतां वरः।
क्षत्रियांश्च वधिष्याभि पृथ्वी निःक्षत्रयी कृता॥ 2॥

विश्वकर्मा ने आगे कहा— त्रेतायुग के आधे व्यतीत हो जाने पर आने वाले अ द्यवर्ष की आषाढ़ माह की कृष्ण पक्ष की षष्ठितिथि को पुण्डरीक नामक धनिष्ठा नक्षत्र के अन्तिम मुहूर्त में शस्त्रधारियों में परमश्रेष्ठ, महर्षि जमदग्नि के पुत्र

---

1. वामनपुराण में आया है— गजाश्वभूमिहिरण्यादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्। एतावता त्वहं चार्थी देहि राजन् पदत्रयम्॥ अर्थात् हे राजन्, हाथी, घोड़े, भूमि, सुवर्ण आदि उन-उन वस्तुओं के याचकों को दीजिए, मैं तो इतने की ही याचना करता हूँ कि मुझे तीन पग भूमि प्रदान कीजिए। (वामन. 91, 16)

(परशु)राम हुए जिन्होंने क्षत्रियों का वध करके इस पृथ्वी को निःक्षत्रयी अर्थात् क्षत्रियों वे विहीन कर दिया।

परशुराममाहात्म्यमाह —

एकविंशतिवारांश्च$_{21}$ समुद्रान्ता च मेदिनी।
तेन दत्ता द्विजवरे कश्यपे च त्वकण्टका॥ 3॥
विप्रयुक्ताश्च राजेन्द्रा उत्पन्ना च वसुन्धरा।
समुद्रः शाम्यते येन आसिद् द्वादश$_{12}$ यौजनैः॥ 4॥

उन्होंने समुद्रान्त समस्त पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से शून्यकर निष्कण्टक भूमि द्विजवर कश्यप ऋषि को दान कर दी। तब से इस वसुन्धरा पर विप्रों से युक्त कराकर अर्थात् विप्रों से नियोग द्वारा नवीन राजेन्द्र उत्पन्न किए जिनसे बारह योजन तक की दूरी तक समुद्रों का शमन किया अर्थात् शासन किया।

प्रवृत्ताश्चैव देशाश्च कोङ्कणाश्च चतुर्दिशम्।
क्षत्रमुत्सादयिष्यामि सभृत्यबलवाहनम्॥ 5॥

उन्होंने कोङ्कण सहित कई देशों के चारों ओर से आगे बढ़कर क्षत्रियों का उनके नौकरों, सेना व वाहन सहित उत्साद अर्थात् सर्वविनाश कर दिया।

जमदग्निसुतो रामः पुनर्जन्म करिष्यति।
तेनाहं प्रहरिष्याभ्ययोध्यायां सप्तमो हरिः॥ 6॥
षष्ठं परशुरामं च हरिर्हन्ति च सप्तमः।
सन्धौ च समनुप्राप्ते त्रेताया द्वापरस्य च॥ 7॥

इति परशुरामावतार षष्ठः।

उक्त जमदग्निसुत (परशु)राम पुनः जन्म लेगा। (भविष्य में) उसको मैं सातवें विष्णु अवतार में राम के रूप में जन्म लेकर आहत करूँगा। इस प्रकार छठवें परशुराम का सातवें हरि (श्रीराम) त्रेता एवं द्वापर युग की सन्धि आने पर हनन करेंगे।

अथ दाशरथीरामचरित्रं —

रामोदाशरथिर्भूत्वा कौशल्यानन्दवर्धनः।
विश्वामित्रयज्ञधुर्यस्ताडकां राक्षसीं हत्वा
जमदग्निसुतं जित्वा धनुर्भङ्गे सीतापतिः॥ 8॥

(अब सातवें विष्णु के अवतार श्रीराम के चरित्र का वर्णन है) कौशल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले राम दाशरथी होकर तथा विश्वामित्र के यज्ञ की धुरी बनकर

ताड़का राक्षसी को मारकर और जामदग्न्य राम को जीत कर धनुर्भङ्ग करके सीता के पति होंगे।

वनवासं करिष्यामि सीतालक्ष्मणसंयुतः।
चित्रकूटे तथा सीता पर्ययुक्ता च लक्ष्मणैः ॥ 9 ॥[1]
रामगिर्य्याश्रमे प्राप्ते तत्र वै दण्डकावने।
लङ्केशेन हृता सीता कपटैर्मृगरूपतः ॥ 10 ॥

बाद में सीता और लक्ष्मण के साथ वनवासी होंगे और चित्रकूट से सीता, लक्ष्मण के साथ दण्डकवन में जाकर रामगिरि आश्रम बनाकर रहेंगे। वहाँ कपटमृग का रूप बनाकर मारीच के छल से लङ्केश रावण ने सीता का अपहरण किया।

हतो मृगश्च सीतार्थे त्रिशिराः खरदूषणा ॥
वेषमाना शूर्पणखा धृतासु राक्षसी कृता ॥ 11 ॥
सुग्रीवस्य समक्षं च हतो वाली महाबलः।
तैश्चापि वानरैः सार्धं करिष्यामि यथा सुखम् ॥ 12 ॥
दशयोजन$_{10}$विस्तीर्णमायतं शतयोजनैः।
सेतुबन्धनमावृत्तं जले शैलसमाकुलम् ॥ 13 ॥

राम ने सीता के लिए मायामृग को मार गिराया और सूर्पणखा राक्षसी जब अपमानित होकर त्रिशिरा खर और दूषण से लड़ने के लिए अपने साथ घर लाई तो राम ने खर-दूषण को भी मार दिया। बाद में राम ने सुग्रीव के समक्ष बाली जैसे महाबली को मार गिराया। इसके बाद, वानरों के साथ मिलकर आसानी से दस योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा शिखाखण्डों से निर्मित सेतु बाँधकर समुद्र के जल को आवृत्त किया।

हत्वा तु रावणं घोरं सभृत्यं देशकण्टकम्।
विभीषणाय दास्यामि राज्य निहतकण्टकम् ॥ 14 ॥
सीताशुद्धिं समानीय पुष्पवृष्टिः सुरैः कृता।
दत्ते विभीषणे राज्ये प्रत्यागच्छतृ स्वकां पुरीम् ॥ 15 ॥

इसके बाद, लङ्का पर चढ़ाई की और महादुष्ट रावण रूपी देशकण्टक को उसके समस्त सहायक अधिकारी, भृत्यों सहित मारकर विभीषण को निष्कण्टक राज्य प्रदान किया। इसके बाद सीता की मुक्ति मानकर देवताओं ने पुष्पवृष्टि की

---

1. 'चित्रकूटे तथा सीता पर्ययुक्ता न लक्षणैः ?' प्रकाशित पाठः। विशेष वाल्मीकि रामायण (२,५.६,२२-३१)

और राम विभीषण को राज्य देकर सीता के साथ अपनी स्वयं की अयोध्यापुरी की ओर अग्रसर हुए।

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
धर्मेण पालयेद् राज्यं समुद्रान्ता च मेदिनीम्॥ 16॥

इति रामावतारसप्तमम्।

अयोध्या में राजतिलक होने के बाद राम ने ग्यारह हजार वर्षों तक इस धरती पर आसमुद्र चक्रवर्ती राज्य किया और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन किया।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां रामावतारनिर्णयाधिकारो नाम सप्तविंशं सूत्रम्॥ 27॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में रामावतार निर्णय अधिकार नामक सत्ताईसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 27॥

हरेष्टमः कृष्णावतारो नामाष्टाविंशं सूत्रम्॥ 28॥

विश्वकर्मोवाच —

पुनर्जन्म करिष्यामि धर्मार्थे त्वपराजित।
मथुरायां चापरं तु द्वापरानते कलौ युगे॥ 1॥
जातोऽवतारो विष्णोश्च दानवानां वधार्थकः।
कृष्णपक्षे भाद्रपदे ह्यष्टम्यां च तिथौ तथा॥ 2॥
रोहिणी नाम नक्षत्रे ह्यर्धरात्रे तथागते।
वसुदेवसुतः श्रीमान् वासुदेव इति श्रुतः॥ 3॥

विश्वकर्मा बोले — (भगवान विष्णु की प्रतिज्ञा है कि) धर्म के लिए मैं द्वापर युग के अन्त में कलियुग के आरम्भ में, मथुरा नगर में पुनर्जन्म लूँगा। दानवों के वध के लिए विष्णु के अवतार के रूप में जन्म ग्रहण करूँगा। भाद्रपद माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि, रोहिणी नक्षत्र में आधी रात्रि बीत जाने पर वसुदेव के पुत्र श्रीमान् वासुदेव के नाम से ख्यात होऊँगा।

अवतारप्रयोजनोपरान्तकृष्णलीलावर्णनं —

तस्य कर्माणि चाख्यास्ये शृणु चैकाग्रमानसः।
पूतनां घातयिष्यामि दुष्टां वै बालघातकीम्॥ 4॥
गोकुले च गतो देवो वर्तमानं महाधनम्।
गवार्थे चाद्धरिष्येऽहं गिरिं गोवर्द्धनं तथा॥ 5॥

प्रवृत्तायां महावृष्टौ गिरिपृष्ठनिवासिनाम्।
कालीयकं वशीकृत्य यमुनायां महार्णवे ॥ 6 ॥

अब मैं उस अवतार में किए गए कार्यों के विषय में कहता हूँ, जिसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। सबसे पहले मैं बालधातिनी दुष्टा पूतना को मारूँगा और गोकुल में पूजनीय देवस्वरूप में जाकर वर्तमान युग के महाधन गौओं के लिए गोवर्द्धनगिरि का उद्धार करूँगा। साथ ही उस गोवर्द्धनगिरि पर रहने वालों की महावृष्टि से रक्षा करूँगा। यमुना नदी के महासागर रूपी ह्रद में निवास करने वाले कालीयक नाग को वश में करूँगा।

समानीष्ठा ? (हा)नि पद्मानि कंसस्यार्थे तु विग्रहे।
मल्लयुद्धं करिष्यामि सह तैस्तु महोत्कटम् ॥ 7 ॥
मथुरायां वधिष्यामि कंसं च केशिनं तथा।
चाणूरं च तथा बाहुं मुष्टिकं च महाबलम् ॥ 8 ॥
प्रलम्बं धेनुकं चैव ह्यरिष्टं वृषरूपिणम्।
कालनेमिं हनिष्यामि त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ 9 ॥

कंस के साथ विग्रह करने जाते समय मैं उसके लिए हानिकारक कमल के पुष्प लाऊँगा और कंस के महोत्कट, भीषण युद्ध करने वाले पहलवानों के साथ मल्लयुद्ध करूँगा। मथुरा नगरी में जाकर मैं कंस, केशी, चाणूर तथा महाबलवान् बाहु व मुष्टिक को मारूँगा। इसी प्रकार प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, अरिष्टासुर जो कि बैल के रूप में रहता है और कालनेमि जो तीनों लोकों में विख्यात है, को भी मारूँगा।

कुशस्थलीं गमिष्यामि तीर्थे चावन्तिकाश्रिते।
नरकं च वधिष्यामि कुण्डलार्थे महासुरम् ॥ 10 ॥
शोणिताख्यां पुरीं गत्वा करिष्ये कदनं महत्।
भुजच्छेदं करिष्यामि बाणस्य रणमूर्धनि ॥ 11 ॥
शङ्करं योधयिष्यामि बाणस्यार्थे परं तप।
शोणिताख्यां पुरीं गत्वा जरासन्धेन विग्रहः ॥ 12 ॥

इसके बाद मैं आवन्तिकापुरी के आश्रित कुशस्थली तीर्थ[1] को जाऊँगा। बाद में, कुण्डलों के लिए महानरकासुर का वध करूँगा। इसी प्रकार शोणितपुर नामक

---

1. कुशस्थली उज्जैन का भी पूर्वनाम है। स्कन्दपुराण के आवन्त्यखण्ड में इसके नामकरण व माहात्म्य का वर्णन मिलता है। ब्रह्मा ने यहाँ कुश की मुष्टि हाथों में लेकर स्थिर व अवस्थित जगत की सृष्टि का सङ्कल्प किया था। विष्णु ने इसको ब्रह्मा को प्रदान किया था। विष्णु स्वयं यहां कुशासन पर विराजित

बाणासुर की नगरी में जाकर भीषण रण-संग्राम मचाऊँगा और बाणासुर की भुजाओं को रणाङ्गन में काट गिराऊँगा। इस भयङ्कर युद्ध में परम तपस्वी शङ्कर भी अपने भक्त बाणासुर की सहायतार्थ आएँगे जिनके साथ मैं युद्ध करूँगा। शोणितपुर जाने के बाद जरासन्ध से विग्रह करूँगा।

जरासन्धो हतो भ्रात्रा शोणितस्थे जनार्दने।
जरासन्धभयत्रस्तान् रक्षिष्यति च पार्थिवान्॥ 13॥
जरासन्धसुतं बाला वृद्धा पृष्टाश्च यादवाः।
नव$_9$ कोटयः सङ्ख्ययया दन्तिनां लक्षविंशतिः$_{20}$ ॥ 14॥
रथानां सार्धकोटिश्च तदर्थं च पदातयः।
कोटयोऽष्टादश$_{18}$ तथाऽग्रे निगच्छन्ति यादवाः॥ 15॥

वहाँ मैं जरासन्ध का वध करूँगा। (विश्वकर्मा ने आगे कहा कि) इसी तरह शोणितपुरी में रहने वाले बाणासुर के भाई जरासन्ध को मारकर जनार्दन विष्णु अवतार जरासन्ध से भयत्रस्त समस्त राजाओं की रक्षा करेंगे। जरासन्ध के पुत्र के बालक, वृद्ध, अनुयायी यादवों की संख्या नौ करोड़ थी जिनके पास बीस लाख हाथी थे और डेढ़ करोड़ रथ थे और इनकी आधी संख्या में पदाती (पैदल युद्ध करने वाले) सैनिक थे। इसी प्रकार अठारह करोड़ यादव (योद्धा) उसके आगे चलते थे।

कृष्णाकुलमध्ये भवा मध्यतलान्तरस्थिताः।
तेभ्यो कपटचिताज्वालाय देवो(वां)भिधानको विदुः ?॥ 16॥
प्रविष्टस्तत्र वै काले प्रतिज्ञातो महारथी।

हुए जिससे इसका नाम कुशस्थली हुआ। पूर्वकाल में इसका नाम हेमशृङ्गा था— कुशस्थलीं संस्थित एवं देव इत्थं विधात्रा पुरुषोत्तमः स्तुतः। स्थलीं कुशैरास्तरितामुपाविशत्कुशस्थलीं देवमुनीन्द्र सेविताम्॥ समन्ततो योजनसङ्ख्ययावृत्तां ततो विधाता पुरुषोत्तमस्तथा। कुशस्थलीति प्रथितं जगत्त्रये प्रचक्रतुर्नाम च तावुभावपि॥ तत्र विश्वपतिः श्रीमान् विश्वेशो विश्वकृद्विभुः। विश्वं शशास विश्वात्मा सर्वविश्वस्य नायकः॥ एवं कुशस्थली ख्याता हेमशृङ्गेति या पुरा। स्तीर्णा कुशैर्यतो धात्रा कुशस्थली ततः स्मृता॥ (स्कन्द. अवन्तिक्षेत्र माहात्म्य, 41, 29-32)

इसके विपरीत हरिवंश में यह वर्णन है कि गरुड़ द्वारा पश्चिम दिशा में कुशस्थली को देखा गया जो रैवत की स्थली थी और वहाँ रमणीय रैवतगिरि और मनोहर वन थे। यह पर्वत व समुद्रतट का आशय लेकर अवस्थित थी— देव यास्यामि नगरीं रैवतस्य कुशस्थलीम्। रैवतं च गिरिं रम्यं नन्दनप्रतिमं वनम्। रुक्मिणोद्भासितां रम्यां शैलोदधितटाश्रयाम्। (हरिवंश, विष्णुपर्व 55, 7-8) स्कन्दपुराण से पता चलता है कि कुशस्थली का राजा रैवत मूलतः तक्षकनाग था किन्तु वह ब्राह्मणों के श्राप से प्रभास में राज करता था। (स्कन्द. नागर, अध्याय 116)

इसी बीच कृष्णकुल (ब्रज में) अन्तराल हुआ। यादवजनों में विछोह शुरू हुआ। वहाँ कपट की चिता की ज्वाला प्रज्वलित हुई जिसको विद्वानों ने दैव (देवक्लेश) नाम से कहा है।[1] उस क्षेत्र में काल का प्रतिज्ञान रखने वाला (कालयवन) महारथी चढ़ आया (?)।

शेषाश्च विनिवर्तन्ते जरासन्धभयार्दिताः ॥ 17 ॥
ये देवगिरिमाश्रित्य सौराष्ट्रदेशवासिनः।
वारुण्यां च दिशायां च प्रभासक्षेत्रमागताः ॥ 18 ॥

(वहाँ से) शेष सभी जन जरासन्ध के भय से दुखी होकर लौट गए जो देवगिरि होते हुए सौराष्ट्र के निवासी हुए और पश्चिम दिशा में प्रभास क्षेत्र तक पहुँचे।[2]

समुद्राभ्यर्थनं कृत्वा कृष्णो वा बलदेवकः।
सद्यो(द्रो ?)गेन्द्र भूमिसेना स्थितावुभौ दन्तकाष्ठादिभिः ॥ 19 ॥
वरुणेषु यत्र द्वारं चतुर्विंशति$_{24}$ योजनैः।

वहाँ श्रीकृष्ण और बलदेव ने समुद्र की पूजा की। दोनों ने अपनी पैदल सेना व गजों को ध्यान पूर्वक देखा अर्थात् सेना का निरीक्षण किया। वरुण या पश्चिम दिशा में जहाँ द्वार (समुद्र के बाद देश का द्वार होने से द्वारका की पहचान, समुद्र-द्वार) था, भूमि चौबीस योजन विस्तार था।

शक्रेन प्रेषितास्तत्र निधयो धनदेव च ॥ 20 ॥
तेभ्यः समुद्भवा सृष्टिः काञ्चनै रत्नसञ्चितैः।
दिनानां त्वेकविंशत्या$_{21}$ [3]सम्भवाः कुलयादवाः ॥ 21 ॥

---

1. हरिवंश में यवनाधिपति के लिए 'दैवादपुत्रः' शब्द का प्रयोग हुआ है जो देवयोग से पुत्र विहीन था और पुत्र की कामना रखता था। (हरिवंश विष्णुपर्व 57, 12) महारथी कालयवन गोपाली नामक अप्सरा से तपस्वी गार्ग्यमुनि के द्वारा नियोग से उत्पन्न हुआ— मानुष्यां गार्ग्यभार्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः। स कालयवनो नाम जज्ञे शूरो महाबलः॥ (तत्रैव 57, 15) कृष्ण ने मथुरा में वैर का अन्त कर डालने की इच्छा से द्वारकापुरी बसाकर वृष्णिवंशियों को आश्वासन दिया था— वैरस्यान्तं विधित्संस्तु वासुदेवो महायशाः। निवेश्य द्वारकां राजन् वृष्णीनाश्वास्य चैव ह॥ (तत्रैव 57, 39)
2. हरिवंश आदि में लोगों के उत्तर क्षेत्र से पलायन कर पश्चिम दिशावर्ती क्षेत्रों में जाकर बसने का वर्णन मिलता है। 'अन्तगिरिद्रोणी' सङ्केत पर विद्वानों ने विचार करते हुए कहा है कि लोग देश की सीमाओं पर स्थित पहाड़ी प्रदेशों की घाटियों की ओर पलायन करेंगे। लोग वनाञ्चलों, राजस्थान की लूणी नदी के तटवर्ती क्षेत्रों और हिमालय के पार्श्व में जाकर म्लेच्छों के साथ बस जाएँगे—कृत्स्नं वा हिमवत्पार्श्वं कूलं च लवणाम्भसः। अरण्येषु च वत्स्यन्ति नराः म्लेच्छगणैः सह॥ (हरिवंशपुराण भविष्यपर्व 3, 4, 32)
3. 'सम्बद्धाः कुलयादवाः ?' इति प्रकाशित पाठः। विशेष— महाभारत के खिल हरिवंश, ब्रह्मवैवर्तपुराण में द्वारकापुरी की रचना का विशेष वर्णन मिलता है।

तत्राष्टादशकोटीनां निवासाश्च महोत्सवाः।

वहाँ देवराज इन्द्र ने सहायता की और कुबेर ने निधियाँ अर्पित कीं। वहाँ भी सृष्टि से पूर्व सञ्चित रत्न और स्वर्ण सभी यादव कुलों के सामुहिक प्रयास से इक्कीस दिनों में बाहर निकला। इसी के बल पर वहाँ अठारह करोड़ निवास गृह बनाए गए और महोत्सव रखा गया।

अथ द्वारकापुरीवर्णनं —

सा पुरी च महारम्या हेमप्राकारसम्भवा॥ 22॥
पुर-प्राकार-परिखा-प्रतोली-मार्ग-गोपुरम्।
प्रासाद-प्रतिमा-सद्ममाडोत्तुङ्गमहोत्सवम्॥ 23॥

उस द्वारकापुरी की बसावट बहुत रमणीक थी जिसमें स्वर्ण से निर्मित परकोटे थे। उसकी रचना में पुर, प्राकार, परिक्खा (खाई), प्रतोली (लघु द्वार), महापथ, गोपुर, प्रासाद और उनमें प्रतिमाएँ, भवन, माड बहुत उन्नत थे जिनमें महोत्सव का माहौल था।

हिन्दोलकैस्तोरणैश्च रत्नैश्चैव विभूषिता।
रत्नोद्योतकुलाकीर्णा हेमरौज्यादितो भवा॥ 24॥
स्फटिकैर्दिव्यसोपानैस्तडागैर्विविधैस्तथा।
पुष्परागेन्द्रनीलाढ्यपदकैः सूर्यरश्मिभिः॥ 25॥

द्वारका नगरी को हिन्दोलों, तोरणों और नाना रत्नों से सजाया गया था जिससे असंख्य रत्नों के पुञ्ज की और सोने-चाँदी के उपकरणों की चारों ओर चमक-ही-चमक प्रसारित हो गई थी। द्वारका नगरी के तरह-तरह के जलाशयों के सोपान, स्फटिक से निर्मित बड़े दिव्य बने हुए थे जिन पर सूर्य की किरणों से पुष्पराग (पुखराज), इन्द्रनीलमणि (नीलम) आदि की शोभायुक्त छवि देखते ही बनती थी।

श्वेतरक्तहरित्पीतैः प्राकारैरैन्द्रकोपमैः।
अनेकोद्यानवाटीभिर्दिव्यवृक्षलतागृहैः॥ 26॥
एकोद्येकविंशत्यन्तभूम्युद्भवगृहाणि च।
मालमौलिशुद्धशृङ्गहर्म्याणि च तथैव च॥ 27॥

श्वेत, रक्त, पीत, हरित रङ्ग के परकोटे इन्द्रधनुष की छटा बिखरते थे। द्वारकापुरी में अनेकों उद्यान, वाटिकाएँ थीं जिनमें दिव्य वृक्ष और नाना कुञ्ज बने हुए थे। द्वारकापुरी के भवन एक तल से लेकर इक्कीस तल तक के थे। इनमें माल-मौली (पङ्क्तियों की कतारों) से शुद्ध कँगूरों वाली बड़ी-बड़ी हवेलियाँ थीं।

राजालयस्य मध्ये च सद्मानि विष्णुतेजसा ?।
तानि द्व्यष्टसहस्राणि माणिक्यादियुतानि च ॥ 28 ॥
मण्डपैः सुवितानैश्च चन्द्रार्कद्युतिसन्निभैः।
वसन्तोत्सवसम्प्राप्तौ गोपीक्रीडार्थमेव च ॥ 29 ॥

इसी प्रकार वहाँ राजालय थे जिनके बीच-बीच विष्णु के तेज के समान प्रकाशित होने वाले कक्षालय थे। इनमें सोलह हजार माणिक्यादि रत्नों से विजड़ित मण्डप बने हुए थे जिनके चन्दोवे, वितानों की शोभा सूर्य और चन्द्रमा की चमक के समान प्रतीति देती थी और जो वसन्तोत्सव आने पर गोपीजन के साथ क्रीड़ा अर्थात् रासलीला के निमित्त बनाए गए थे।

तथा त्रिवलिकैस्तालैस्तथा च पटहोत्तमैः।
स्वरैश्च मधुरैर्वंश्या हुडक्कैश्च सलीलया ॥ 30 ॥
विष्णोर्महोत्सवश्चैवं द्वारकापुरमण्डनः।
वर्णितो देवदैत्याद्यैर्विष्णुराजमहोत्सवः ॥ 31 ॥

वहाँ लीलाओं के बीच-बीच त्रिवलिका[1] की तालों पर और बड़े-बड़े नगारों का स्वर वंशी का मधुर निनाद और हुडक्का का वादन होता। उक्त विष्णु महोत्सव से द्वारकापुर की शोभा बढ़ती है। विष्णुराज महोत्सव का ऐसा वर्णन देवताओं व दानवों ने किया है।

ध्यष्टयोजनविस्तारा ह्यायता त्र्यष्टयोनैः।
समुद्रेण त तद्द्वारमुत्तमा द्वारिकाभिधा ॥ 32 ॥
सर्वश्रेष्ठा पूरीणां च द्वारिका विष्णुभक्तिदा।

वह सोलह योजन विस्तार और चौबीस योजन लम्बाई वाली जो द्वारका नामक की नगरी[2] है, वह वास्तव में समुद्र यात्रा करने वालों के लिए उत्तम समुद्र द्वार ही है। भगवान् विष्णु की भक्ति देने वाली जितनी भी सर्वश्रेष्ठ पुरियाँ हैं, उनमें द्वारकापुरी भी एक हैं।

तत्र बलादीनां वर्णनं —

चत्वारिंशत्सहस्राणि दन्तिनश्च महोत्कटाः ॥ 33 ॥

---

1. कृदिकारादिति पक्षे ङीपि त्रिवलीत्यपि। (शब्दकल्पद्रुम खण्ड 2, पृष्ठ 662)
2. वराहपुराण में इसको पाँच योजन विस्तृत एवं दस योजन लम्बी बताई गई है, इसको इन्द्रपुरी के समान व विश्वकर्मा द्वारा निर्मित कहा गया है—अस्ति द्वारवती नाम पुरी शक्रपुरी यथा। मत्प्रभावानुरूपा च निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ पञ्चयोजनविस्तारा दशयोजनमायता। (वराह. 147, 7-8)

चतुर्लक्षाणि सङ्ख्याता अश्वास्तेजस्विनस्तथा।
रथाः सपादकोट्यश्च चोष्ट्राः सार्धत्रिकोटिकाः॥ 34॥
तथाष्टादशकोट्यश्च यादवाश्च महाबलाः।
सुभटाश्च महावीरा असङ्ख्याताः पदातयः॥ 35॥

इस द्वारकापुरी में चालीस हजार महोत्कट अर्थात् महाबलवान दुर्दम हाथी हैं और चार लाख की संख्या में बड़े तेजस्वी अश्व भी हैं। इसके अतिरिक्त सवा करोड़ रथ और साढ़े तीन करोड़ ऊँट हैं। इस नगरी के निवासी यादवगण महाबलवान हैं जिनकी संख्या अठारह करोड़ हैं, ये सब के सब वीर योद्धा हैं और उनके साथ असंख्य पैदल सैनिक भी हैं।

द्वारिका या पुरी ख्याता पूज्या सुरनरोरगैः।
सिद्धचारणसङ्गीता ह्याप्सरोगणसेविता॥ 36॥
विद्याधरैश्च गन्धर्वैर्नागेन्द्रैश्चोपसेविता।
तपोधनैश्च दिव्यैश्च ऋषिवृन्दैः समावृता॥ 37॥
माया च मथुरा चैवायोध्या वाराणसी तथा।
काञ्ची जयन्ती द्वारका ह्येता मुक्तिप्रदायिका॥ 38॥

सुर, नर और उरग-नागों के द्वारा पूजित यह द्वारकापुरी बहुत प्रसिद्ध है। सिद्ध, चारणों द्वारा इसकी महिमा गायी गई है तथा अप्सरा व गणों के द्वारा यह सेवित है। विद्याधरों, गन्धर्वों, नागराजाओं आदि से यह उपसेवित है और यहाँ तपोधनी, दिव्य ऋषिगणों के समूहों की बहुतायत है। इसीलिए मुक्तिप्रदायिका नगरियों[1] में द्वारका भी माया, मथुरा, अयोध्या, वाराणसी, काञ्चीपुर, जयन्ती (अमरावती) इन सात पुरियों के साथ स्मरण योग्य है।

जरासन्धं वधिष्यामि हेतुमात्रेण भीमतः।
शिशुपालं वधिष्यामि यज्ञे धर्मसुतस्य वै॥ 39॥
ततः पश्चात्करिष्यामि साहाय्यमर्जुनस्य च।
विष्णोर्वाक्यसहायेन हनिष्यामि कुरून् रणे॥ 40॥

(कृष्ण पुनः स्मरण कराते हैं कि) मैं भीम के बहाने से जरासन्ध को मारूँगा और शिशुपाल को धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ के बहाने मारूँगा। इसके बाद, मैं अर्जुन का सहायक बनकर भगवान् विष्णु के वचनों के सहाय (श्रीमद्भगवद्गीता के

---

1. अन्यत्र 1. अयोध्या, 2. मथुरा, 3. माया, 4. वाराणसी, 5. काञ्ची, 6. अवन्ती और 7. द्वारका—सप्तपुरियों का यह क्रम मिलता है।

वचनानुसार) से अर्जुन को तैयार कर कौरवों का रणाङ्गन में संहार करूँगा।

शस्त्रहस्ता मृता ये ऽत्र स्वर्गं यास्यन्ति क्षत्रियाः।
कलौ च समनुप्राप्ते चतुर्थे युगपर्यये॥ 41॥
नेमिनाथाभिधानस्तु समुद्रविजयात्मजः।
गिरिमस्तकसम्भूतो द्वाविंशश्च[22] तीर्थङ्करः॥ 42॥

(उक्त महाभारत के रण में) जो क्षत्रिय हाथ में शस्त्र लिए हुए मरेंगे, वे सीधे स्वर्ग में जाएँगे। यह सब घटना कलियुग, चतुर्थ युग आते-आते ही हो जाएगी। इसके उपरान्त मैं समुद्रविजय राजा के पुत्र के रूप में नेमिनाथ नाम धारण करके गिरिनार पर्वत के मस्तक पर बाईसवाँ तीर्थङ्कर बनकर उत्पन्न होऊँगा।

पाण्डवांश्च करिष्यामि केदारे तु हिमाश्रयान्।
गमयिष्यति स्वर्गे तान् केदारः प्रकटीकृतः॥ 43॥

मैं पाण्डवों को हिमालय के आश्रय में भेजकर उन्हें केदार की ओर जाने को कहूँगा और वहाँ से जब वे स्वर्ग को जाएँगे, तो केदार तीर्थ को प्रकट करूँगा।

***अथ** केदारमाहात्म्य —*

पृथिव्यां यानि तीर्थानि यानि तिष्ठन्ति भूतले।
केदारं प्रति गत्वा च तदनुग्रहदायकम्॥ 44॥
भारते च महापुण्यं न तीर्थं केदारात्परम्।
यदिच्छन्ति नरा मोक्षमाश्रयन्तु हिमाचलम्॥ 45॥

पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ हैं और भूतल पर जितने भी तीर्थ हैं, उन सबमें से जो भी केदार तीर्थ की ओर जाएगा, उस पर केदार का अनुग्रह दान सदा ही बरसता रहेगा। समस्त भारत में केदारसे अधिक पुण्यवान् कोई तीर्थ नहीं है। जो भी व्यक्ति मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखता हो, उसे हिमाचल का आश्रय लेकर केदार तीर्थ में अवश्य आना चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां हरेरष्टमः कृष्णावतारनिर्णयाधिकारो नामाष्टाविंशं सूत्रम्॥ 28॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में हरि का आठवाँ कृष्णावतार निर्णय अधिकार नामक अठाईसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 28॥

विष्णोर्जन्मरहस्यदशमोऽवतारो नाम नवविंशं सूत्रम् ॥ 29 ॥

विश्वकर्मोवाच —

कलौ युगे तु सम्प्राप्ते आश्विने कृष्णपक्षके।
नवम्यां च तिथौ चैव मृगान्ते सुमुहूर्तके ॥ 1 ॥
शुद्धोदनसुतो भूत्वा मोहयिष्यामि मानवम्।
युगे तत्र भविष्यन्ति मुण्डाः काषायवाससः ॥ 2 ॥

विश्वकर्मा बोले— कलियुग के आ जाने पर आश्विन मास के कृष्णपक्ष की नवमी तिथि को मृग (मृगशिरा) नक्षत्र के अन्तिम चरण व शुभ मुहूर्त में, राजा शुद्धोदन का पुत्र होकर, मैं बुद्ध का अवतार लेकर संसार के मानवों को मोहित कर लूँगा अर्थात् उनको धर्म सम्बन्धी विवेकहीन कर लूँगा।[1] तब कलियुग के ऐसे समय में काषाय गेरुए वस्त्रधारी केशमुण्डित बौद्ध संन्यासी होने लगेंगे।

शूद्राः शूद्रेषु दास्यन्ति विष्णौ बुद्धत्वमागते।
तेषामल्पतो धर्म इह लोके परत्र च ॥ 3 ॥
दिगम्बरवृत्तिकास्तत्र बुद्धयुक्तकलौ युगे।
श्वेताम्बरास्तथान्ये च तथा नीलाम्बराः क्वचित् ॥ 4 ॥

इस प्रकार विष्णु के बुद्धत्व अवतार लेने पर उस युग में शूद्र शूद्रों को दीक्षा देंगे जिससे उनमें धर्म अल्पतर होता जाएगा और वे इस मृत्युलोक में और परलोक

---

1. इतिहास में वैशाख पूर्णिमा बुद्ध जयन्ती के रूप में मान्य है जबकि काशीनाथोपाध्याय कृत 'धर्मसिन्धु' में दशावतार जयंती निर्णय प्रकरण में आश्विन शुक्ल दशमी तिथि को सन्ध्या में बुद्धावतार होने की बात लिखी है— आश्विनशुक्लदशम्यां सायं बुद्धोऽभूत्।
विष्णुपुराण में इस अवतार को मायामोह कहा गया है। मायामोह के जैन और अन्य रूप धारण करने के प्रसङ्ग में बौद्धधर्म का उल्लेख है। वह जितेन्द्रिय मायामोह रक्तवस्त्र धारण कर अन्यान्य असुरों के पास पहुँचा और उनसे मृदु, अल्प और मधुर वाणी में बोला कि हे असुरगण! यदि तुम लोगों को स्वर्ग या मोक्ष की इच्छा है तो पशुहिंसा आदि दुष्टकर्मों का त्याग कर तुम बोध को प्राप्त करो— पुनश्च रक्ताम्बरधृङ् मायामोहो जितेन्द्रियः। अन्यानाहासुरान् गत्वा मृद्वल्पमधुराक्षरम् ॥ स्वार्गार्थं यदि वो वाञ्छा निर्वाणर्थमथासुराः। तदलं पशुघातादिदुष्टधर्मैर्निबोधत ॥ (विष्णु. 3.18.16–17)
रक्ताम्बरधारी मायामोह ने कहा कि यह सम्पूर्ण जगत् विज्ञानमय है- ऐसा जानो। मेरे वाक्यों पर पूरी तरह ध्यान दो। इस प्रसङ्ग में बुधजनों का ऐसा ही कहना है कि यह संसार अनाधार है, भ्रमजन्य पदार्थों की प्रतीति पर ही स्थिर है और रागादि दोषों से दूषित है। इस संसार-सङ्कट में जीव निरन्तर भटकता रहता है। इस प्रकार बुद्ध के ज्ञानसूचक शब्द भी पुराणकार ने दिए हैं- बुध्यत (जानिये), बुध्यध्वम् (समझिये), बुध्यत (जानिये)— विज्ञानमयमेवैतेदशेषमवगच्छ ॥ बुध्यध्वं मे वचः सम्यग्बुधैरेवमिहोदितम् ॥ जगदेतदनाधारं भ्रान्तिज्ञानार्थ तत्परम्। रागादि दुष्टमत्यर्थं भ्राम्यते भव सङ्कटे ॥ (तत्रैव 3. 18.18–19)

में दिगम्बर वृत्तियुक्त से बुद्ध वृत्तियुक्त और अन्य श्वेताम्बर युक्त रूप में तथा कहीं-कहीं नीलाम्बर रूप में कलियुग में दिखाई देंगे।

केवलिन चतुर्विंशतितीर्थङ्करा: —

जिनोक्ताः केवलिनश्च चतुर्विंशतितीर्थगाः$_{24}$।
अनन्तरं चर्षभाद्याश्चतुर्विंशति$_{24}$ रेव च॥ 5॥
हुताशनः पद्मनाभो जिनानां तु च सङ्ख्यया।
उक्ताः शासनदेव्यश्च यक्षाणां च तथैव च॥ 6॥
पृथगेकैकशः प्रोक्ता अष्टौ$_{8}$ वै प्रतिहारिणः।

(इनके अतिरिक्त मायामोह के रूप के ही अनुयायी ऐसे अन्य धार्मिक जन) जिन कहलाएँगे। वे केवली भी कहलाएँगे और चौबीस तीर्थङ्करों को मानने वाले होंगे। इनके ऋषभादि नाम वाले चौबीस तीर्थङ्कर हैं। उन सभी जिन तीर्थङ्करों की अपनी चौबीस संख्या के अनुसार अपने-अपने हुताशन, पद्मनाभ, शासनदेवियाँ, यक्षगण आदि कहे गए हैं। इसी प्रकार उनके एक-एक के पृथक्-पृथक् आठ-आठ प्रतिहारीगण भी होते हैं।

तस्यानुयायी कथनं —

वणिगधर्मेण मुदिता ज्ञानार्णव उदाहृताः॥ 7॥
तेषां न स्नानहोमानि पितृपिण्डो न दीयते।
पाखण्डिनो विकर्मस्याः पाणिपात्रेषु भक्षकाः॥ 8॥

इनके अनुयायी सभी वणिक् धर्म को मानने वाले मुनियों द्वारा मात्र कथा, प्रवचन सुनने के ज्ञानसागर में उदारता से लीन रहने और प्रसन्न रहने वाले होंगे। इनके अतिरिक्त उनमें स्नान, ध्यान, होम, पिण्डदान आदि का पूर्णतः लोप हो जाएगा। वे (परम्परित) धर्म के विपरीत और विकर्म या नहीं करने योग्य कर्मों में लिप्त रहेंगे और करपात्री या हथेली में लेकर अन्नाहार करने वाले होंगे।

दर्शनेऽपण्डिताश्चैव गमिष्यन्ति च नारकान्।
तेषां दत्तं च भुक्तं च भस्मीभवति काष्ठवत्॥ 9॥
स्वाध्याये चैव सीदन्ति ब्राह्मणाः शौचवर्जिताः।
वेदविक्रयिणश्चैव लोभिनोऽस्थिरचेतसः॥ 10॥

उनके दर्शनशास्त्र का आधार नहीं, इस दृष्टि से वे अपण्डित होंगे और दुष्कर्मों से नरकगामी होंगे क्योंकि उनके द्वारा दिया गया दान और उस दान का भोग करने वाले सभी काष्ठ की राख के समान निष्फल होंगे। वे अपना प्रभाव इस कलिकाल में इतना

फैला देंगे कि उनसे प्रभावित होकर ब्राह्मण लोग भी शौचाचार त्याग देंगे और उनमें वेदों का स्वाध्याय भी स्थगित हो जाएगा। यहाँ तक कि वे अपने पूर्वजों की परम्परा से प्राप्त वेद ग्रन्थों तक को बेच देंगे। इतने लोभी हो जाएँगे कि अस्थिर चित रहने लगेंगे।

न स्निह्यन्ति पिता पुत्रा योषितो भ्रातरस्तथा।
न भृत्या नैव मित्राणि भविष्यन्ति न शान्तिदाः ॥ 11 ॥
धर्मो जितो ह्यधर्मेण सत्यं चैवानृतेन च।
जिताश्चौरैश्च राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा जिताः ॥ 12 ॥

वे इतने स्वार्थी हो जाएँगे कि पिता-पुत्र, नारियाँ, भाई-भाई, नौकर, मित्रगणों आदि किसी में स्नेह सम्बन्ध नहीं रहेगा और पारस्परिक सम्बन्ध भी शान्ति देने वाले नहीं होंगे।[1] इस मायामोह के अवतार के प्रभाव से धर्म को अधर्म जीत लेगा। सत्य को झूठ पराजित कर डालेगा। चोर-तस्कर राजाओं को जीत लेंगे, स्त्रियाँ पुरुषों को जीत लेंगी।

अथ युगवर्णनमाह —

सीदन्ति चाग्निहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति।
दशमे$_{10}$ द्वादशे$_{12}$ वर्षे नारी गर्भवती भवेत्॥ 13 ॥
कन्याश्चैव प्रसूयन्ते तस्मिन्कलियुगे सदा।
सम्प्राप्ते षोडशे$_{16}$ वर्षे नरा गलितयौवनाः ॥ 14 ॥

(इसी प्रकार युग की दशा का वर्णन किया जा रहा है) कलिकाल के प्रभाव से अग्निहोत्र की वैदिक परम्परा विनष्ट हो जाएगी। गुरुपूजा की आश्रमीय प्रणाली नष्टभूत हो जाएगी और व्यभिचार, दुराचार इतना फैल जाएगा कि दस और बारह वर्ष की कन्याएँ भी इसका शिकार होकर गर्भवती होने लगेंगी। फलतः इस कलिकाल में ऐसी गर्भवती नारियाँ केवल कन्याओं को जन्म देने वाली होंगी और सभी नर विषयासक्त होकर सोलह वर्ष की आयु तक आते-आते गलित-यौवन हो जाएँगे अर्थात् वृद्ध-से प्रतीत होने लगेंगे।

अल्पोदकास्तथा मेघा अल्पशस्या तु मेदिनी।
अल्पक्षीरास्तथा गावः क्षीरे सर्पिर्न विद्यते॥ 15 ॥

---

1. महाभारत में आया है कि पुत्र पिता का और पिता पुत्र का वध करके भी उद्विग्न नहीं होंगे। अपनी प्रशंसा के लिए लोग बड़ी-बड़ी बातें बनाएँगे किन्तु समाज में उनकी निन्दा नहीं होगी। उस समय सारा जगत् म्लेच्छ हो जाएगा, इसमें संशय नहीं है। एक हाथ दूसरे हाथ को लूटेगा, सगा भाई भी भाई के धन को हड़प लेगा— पुत्रः पितृवधं कृत्वा पिता पुत्रवधं तथा। निरुद्वेगा बृहद्वादी न निन्दामुपलप्स्यते॥ म्लेच्छीभूतं जगत् सर्वं भविष्यति न संशयः। हस्तो हस्तं परिमुषेद् युगान्ते समुपस्थिते॥ (महा. वनपर्व 190, 28, 38)

एकवर्णीभविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च।
वर्णान्तराणि भिद्यन्ते यास्यन्ति प्रलयं प्रजाः॥ 16॥

कलिकाल की इस दुराचार की विभीषिका के फलस्वरूप मेघों में पानी की कमी से वर्षा कम हो जाएगी। वर्षा की कमी से धरती में अनाज की पैदावार घटेगी और गायों के दूध भी कम हो जाएगा या सूख जाएगा तथा कुछ दूध गायों से प्राप्त भी होगा तो उसमें घी नाम मात्र का भी नहीं रहेगा। समय इतना विकृत होगा कि चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) का लोप हो जाएगा और सभी लोग एकवर्णी हो जाएँगे तथा एक दूसरे वर्ण आपस में अन्तर्वर्णी सम्बन्ध स्थापित करके वर्णसङ्करी हो जाएँगे। इस प्रकार से प्रजा प्रलय को प्राप्त हो जाएगी।

दुर्भिक्षाणि भविष्यन्ति **राज्ञां** दुर्दयचेतसाम्।
वर्णान्तर वि राज्ञां ते विदुर्दुर्गे शून्यचेतसा ?॥ 17॥
अधर्मीभवत् **समस्तं** दयाधर्मविवर्जितम्।
कीर्तितो बुद्धावतारः **कलौ च नवमो हरिः॥ 18॥**

ऐसा समय भी आ जाएगा कि दुर्भिक्ष, अकाल पड़ते रहेंगे, राजा लोग भी दुर्दान्त और दुष्टचित्त वाले हो जाएँगे और राजा कई वर्णान्तरों के होने लगेंगे। विद्वान वर्गों में भी चेतना शून्यता इतनी बढ़ जाएगी कि वे भी अपना कर्त्तव्य भूल जाएँगे। सभी अधर्मी हो जाएँगे और दयाधर्म रहित हो जाएँगे। इस प्रकार की स्थिति इस कलिकाल में बुद्धावतार के रूप में आने वाले नवें विष्णु अवतार के बाद की होगी।

अथ कल्कि अवतारवर्णनं —

ततः कलियुगान्ते चोत्पत्स्यति दशमो हरिः।
ब्राह्मणो हरिपिङ्गलः **याज्ञवल्क्यपुरोहितः॥ 19॥**
ततो हरिः कलेरन्ते दशमः सम्भविष्यति।
कुम्भलग्नभवो देवो ह्यश्वारूढो जगत्पतिः॥ 20॥
म्लेच्छानां छेदनं कृत्वा यजेद् देवं सुवर्णकम्।
एकच्छत्रं धराराज्यं लक्ष्म्याः कृतयुगे पुरा॥ 21॥

ऐसे में दसवें अवतार के रूप में कलियुग के अन्त में विष्णु हरिपिङ्गल नामक याज्ञवल्क्य पुरोहित ब्राह्मण के घर जन्म लेंगे। वह कलियुग के अन्त में जन्म लेने वाले दशमें हरि होंगे जो कुम्भ लग्नोदय की वेला में अश्वारूढ़ होकर सारे जगत के पति होंगे। वे म्लेच्छों का नाश करके सुवर्णक देव की यज्ञ, पूजा प्रचलित करेंगे और इस पृथ्वी पर पुनः एकच्छत्र शासन की स्थापना करेंगे तथा पहले के सतयुग जैसी लक्ष्मी का पुनः प्रसार करेंगे।

वैष्णवावतारकीर्तन फलमाह —

इदं जन्मरहस्यं तु कीर्तयिष्यन्ति ये नरः।
सुलभश्च हरिस्तेषां नित्यं वै सर्वजन्मसु॥ 22॥
ॐ नमो वासुदेवाय नमो नारायणाय च।
नमः कृष्णायेतिमन्त्राः सर्वप्रापप्रणाशनाः॥ 23॥

हरि के इस प्रकार के जन्म रहस्य को जो लोग गाते रहेंगे, उनको सभी जन्मों में भगवान् विष्णु सदा सुलभ होंगे। उन हरि को कीर्तन द्वारा पाने का उपाय 'ॐ नमो वासुदेवाय', 'ॐ नमो नारायणाय', 'ॐ नमः कृष्णाय' आदि मन्त्र है जो समस्त पापों का प्रणाशन करने वाले, शमन करने वाले हैं।

शृणोति जन्मरहस्यं ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
स्त्रीबालघातकश्चैव सुरापो वृषलीपतिः॥ 24॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।
यः पठेत् परया भक्त्या विष्णुजन्मप्रकीर्तितम्॥ 25॥
मर्त्यलोकपरिभ्रष्टो विष्णुलोकं स गच्छति।
ईप्सितं लभते राज्यं स्वर्गे वा भूमिशासने॥ 26॥
गतागता निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः।
अद्यापि न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः॥ 27॥

श्री हरि के इस जन्म रहस्य को भी सुनते रहेंगे, वे ब्रह्मघाती या गुरुतल्पगामी पापी स्त्रीघाती, बालघाती, सुरापान करने वाला और कुलटा स्त्री के पति भी क्यों न हो, सभी पापों से मुक्त होकर वे विष्णुलोक में जाएँगे। अतः जो भी परम भक्तिपूर्वक इस विष्णु जन्म की कथा को पढ़ेगा, वह मर्त्यलोक में परिभ्रष्ट होने पर भी विष्णुलोक में ले जाने का अधिकारी हो जाएगा एवं पुनर्जन्म लेने पर वह अपनी इच्छानुसार चाहा हुआ भूमिशासन या स्वर्ग का राज्य प्राप्त करेगा। इस द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का जाप करने वाले को कोई ग्रहबाधा नहीं पहुँचा सकते, सूर्य-चन्द्रमा आदि ग्रहों की पूरी दशाएँ भी आई-गई हो जाती है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
विष्णोर्जन्मरहस्यदशावताराधिकारो नाम नवविंशं सूत्रम्॥ 29॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में विष्णु के जन्म रहस्य, दशावताराधिकार नामक उनतीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 29॥

विष्णुवाक्योद्भवारण्ये श्रीसोमेश्वरनिर्णयो नाम त्रिंशं सूत्रम् ॥ 30 ॥

विश्वकर्मोवाच —

अथातोऽनन्तरं तत्र पर्वते गन्धमादने।
आगतश्च स्वयं विष्णुर्जगदाल्हादकारकः ॥ 1 ॥
उद्धृत्याम्ब्वर्थपात्रं तु त्वष्ट्राद्यैर्मुनिसत्तमैः।
सुरासुरैः समस्तैश्च स्तूयमानं जगत्पतिम् ॥ 2 ॥
स्थित्वासने महोत्सवे सिंहरूपाद्यलङ्कृते।
प्रहृष्टं च जगन्नाथं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ 3 ॥

विश्वकर्मा बोले — इसके बाद, गन्धमादन पर्वत पर जगत को प्रसन्न कर देने वाले भगवान् विष्णु स्वयं पधार गए और त्वष्टादि मुनि सत्तमों ने अपने कमण्डलों को हाथ में उठाकर और सभी सुरों व असुरों ने जगत्पति भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे। भगवान् जगन्नाथ को शङ्ख-चक्र-गदादि धारण किए हुए प्रसन्न मुद्रा में सिंह की आकृतियों से अलङ्कृत सिंहासन पर विराजमान करते हुए बड़ा महोत्सव मनाया।

त्वष्ट्राद्याश्च मुनीन्द्राश्च हरिपार्श्वे तु संस्थिताः।
सिंहासने निविष्टं तमादितेजोभवं प्रभुम् ॥ 4 ॥
'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'
'ॐ नमो नारायणाय।'
'ॐ नमः कृष्णाय' इति
मूलमन्त्राः सर्वपापप्रणाशनाः ॥ तानुच्चार्य ॥

इसमें त्वष्टादि समस्त मुनिगण भगवान् विष्णु के पास में खड़े हो गए और उन आदि तेजोभव प्रभु को सिंहासन पर निविष्ट करके, आसीन करके 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय', 'ॐ नमो नारायणाय', 'ॐ नमः कृष्णाय' इत्यादि मूल मन्त्रों का उच्चारण आरम्भ किया जो सर्व पापों का नाश करने वाला है।

दण्डवत् प्रणतो भूत्वा पृच्छति त्वपराजितः।
दशावताराः श्रीविष्णोः कथिता विश्वकर्मणा ॥ 5 ॥
त्वष्टा चैव कथं देव कथं तस्य समुद्भवः।
कस्मिन्कालेवतारश्च कथयस्व जगत्पते ॥ 6 ॥

इसी बीच विश्वकर्मा ने दशावतार ग्रहण करने वाले भगवान् विष्णु की ओर सम्मुख हुए कहा कि दण्डवत प्रणाम करके अपराजित यह पूछता है कि हे

जगत्पते! त्वष्टा[1] कौन देवता है और उनका समुद्भव कैसे हुआ तथा उनका अवतार किस समय हुआ, यह कृपा कर कहिए।

विष्णुरुवाच —

सरस्वत्यर्णवाभ्यां च पुण्यप्रभास आश्रमः।
प्रयतात्मा महातीर्थं गत्वा तु हरजन्मदम्॥ 7॥
दृष्ट्वा तु हरते पापं स्नात्वा देवत्वदायकम्।
समागतः सोमराजो दृष्ट्वाश्रममथोत्तमम्॥ 8॥

(विश्वकर्मा के प्रश्न पर) भगवान् विष्णु कहने लगे— सरस्वती सागर[2] के पास प्रभास आश्रम का पुण्यक्षेत्र है। कोई यदि प्रयत्न करके उस महातीर्थ को जाए तो

---

1. यहाँ त्वष्टा के सम्बन्ध में पूछा तो गया है किन्तु इस सूत्र में वर्णन नहीं है। द्राविड़ वास्तुग्रन्थ 'मानसार' में आया है कि ब्रह्मादि के समान विश्वकर्मा चार मुख वाले हैं। चारों मुखों में से पूर्वमुख **विश्वभू** कहलाता है। दक्षिणमुख विश्वविद कहलाता है। उत्तरमुख विश्वस्थ कहलाता है जबकि पश्चिम मुख विश्वसृष्टा कहलाता है। इन्हीं चारों मुख से पहले चार विश्वकर्मा हुए। पूर्वी मुख के विश्वकर्मा, दक्षिण से मय, उत्तर से त्वष्टा तथा पश्चिमी मुख से मनु हुए। विश्वकर्मा का विवाह इन्द्र की पुत्री से, मय का विवाह सुरेन्द्र की पुत्री, त्वष्टा का विवाह वैश्रवण की पुत्री और मनु का विवाह नल की पुत्री से हुआ। विश्वकर्मा के पुत्र स्थपति कहलाए। मय के पुत्र सूत्रग्राही, त्वष्टा के पुत्र वर्धकी और मनु के पुत्र तक्षक कहलाए। ये ही आदि स्थपति है— **विश्वकर्मा** चतुर्वर्णजाति ब्रह्मादिवर्णवत्। पूर्वोक्तवर्ण चत्वारि नामं वक्ष्ये पृथक् पृथक्॥ विश्वभूरिति नामैतत्पूर्ववक्त्रं प्रकीर्तितम्। दक्षिणे विश्वविद्वक्त्रं विश्वस्थश्च तथोत्तरे॥ पश्चिमे विश्वस्त्रष्टाख्यं वक्त्रमेवं चतुर्विधम्। एतेभ्यः प्रथमो जातो विश्वकर्मा चतुष्टयः॥ पूर्वानने विश्वकर्मा जायते दक्षिणे मयः। उत्तरस्य मुखे त्वष्टा पश्चिमे तु मनुः स्मृतः॥ उपयेमे विश्वकर्मा इन्द्रस्य तनयां तदा। मयः सुरेन्द्रतनयामुपयेमे त्वनन्तरम्॥ त्वष्टा वैश्रवणसुतामुपयेमे त्वनन्तरम्। मनुर्नलस्य तनयामुपयेमे तु तुर्यकम्॥ विश्वकर्माख्यनाम्नोस्य पुत्रः स्थपतिरुच्यते। मयस्य तनयः सूत्रग्राहीति परिकीर्तितः॥ त्वष्टुर्देव-ऋषिः पुत्रो वर्धकीति प्रकथ्यते। मनोः पुत्रस्तक्षकः स्यात्स्थपत्यादि चतुष्टयमये॥ (मानसार 1, 3-10) मानसार के तहत वास्तुशास्त्र प्रणेताओं में भी त्वष्टा का नामोल्लेख हुआ है— अगस्त्यः काश्यपश्चैव भृगुगौतमभार्गवाः॥ गालव इति ऋषयः प्रोक्ताः कर्षणाद्यर्चनार्थकम्। तत्तत्तन्त्रवशात्सर्व कुर्यात् षट् सम्पादस्पदम्॥ तत्तत्तन्त्रविपरीतं चेद् विपत्यं नित्यमावहेत्। अनुक्तं तत्र तन्त्रैस्तु ग्राह्यं दोषो न विद्यते॥ विश्वकर्मा च विश्वेच विश्वसारं प्रबोधकः। वृतश्चैव मयश्चैव त्वष्टा चैव मनुर्नलः॥ मानविन्मानकल्पश्च मानसारो बहुश्रुतः। प्रष्टा च मानबोधश्च विश्वबोधो नायकश्च तथा॥ (तत्रैव 1, 2-6)
2. गुजरात में राजा सिद्धराज के समय में सरस्वतीपुराण का प्रणयन माना जाता है। इसमें सरस्वती के क्षेत्र में नाग जाति के बसी होने का विशेष विवरण मिलता है। यथा— एष उखर संगृह्य अन्धकूपान्महामनः। नागलोके स्वयं गत्वा नागान् सञ्जीवयिष्यति॥ (सरस्वती. अध्याय 15) स्कन्दपुराण के नागरखण्ड में चमत्कारपुर के पास सारस्वतहृद का वर्णन है जहाँ स्नान के लिए आने वाले विप्रों को नागजन त्रास देते रहते थे। (स्कन्द. नागर. 114, 17-18-83) इसी प्रकार प्रभासक्षेत्र माहात्म्य में आया है— सरस्वत्यां ब्रह्मकुण्डेऽसंख्याता मुनयः स्मृताः। दशार्बुदसहस्राणि कोटित्रितयमेव च॥ ऋषयस्तत्र तिष्ठन्ति यत्र प्राची सरस्वती। ब्रह्महत्या गता यत्र शङ्करस्य च तत्क्षणात्॥ कायः सुवर्णतां प्राप्तं कपालं पतितं करात्। ज्ञात्वैवं

तर, महादेव उसे नया जन्म प्रदान कर देते हैं। उस देवत्वदायक तीर्थ में स्नान करते ही और उसे देखने मात्र से समस्त पाप दूर हो जाते हैं। उस सर्वोत्तम आश्रम के अवलोकन मात्र से सोमराजा तुरन्त प्रकट हो गए।

अथाश्रमवर्णनमाह—

विविधैर्वनजैः कीर्णं तथा पुष्पैः समाकुलम्।
सुरभितामृतोपेतं नानाफलैश्च सङ्कुलम्॥ 9॥
पारिजातप्रभृतिभिः कङ्कोलैश्चैव पादपैः।
देवदारुभिराकीर्णं तथा वै रक्तचन्दनैः॥ 10॥
तालतमालाशोकैश्च रम्भाप्रियङ्गुचम्पकैः।
पुन्नागनागबकुलैः पाटलैर्बिल्वचन्दनैः॥ 11॥
जातीतगुरुकुमुदानेकपुष्पैः सुपुष्पितम्।
विविधैश्च तथा वृक्षैः शोभितं दिव्यमाश्रमम्॥ 12॥

वहाँ विविध प्रकार के वन पुष्पों के समूह थे जिनसे वह स्थान अमृत के समान सुरभित हो रहा था और वहाँ नाना प्रकार के फलों की भरमार थी। पारिजातादि स्वर्ग के वृक्ष और कङ्कोल के पौधे व देवदारु व रक्तचन्दन के पेड़ों से लकदक वह क्षेत्र ताल, तमाल, अशोक, रम्भा, केल, प्रियङ्गु, चम्पक पुन्नाग, नाग, बकुल, पाटल (गुलाब) और बिल्व व चन्दन, जाती, तगर, कुमुद आदि अनेक प्रकार के पुष्पों से सुपुष्पित विविध वृक्षावलियों से वह दिव्य आश्रम सुशोभित था।

विचित्रं हेमरचितं निर्मलं कुमुदेशवत्।
विपुलजलं- ? स्फटिकशङ्खवेदी ?॥ 13॥
तरङ्गभङ्गुरावर्तमुग्रं मीनैरनेकशः।
शिशुमारैश्च नक्रैश्चाऽनन्तं दुर्गं शुक्त्यादिभिः॥ 14॥
योजनायुतविस्तीर्णं भीषणीयं ग्रहाकुलैः।
भयावहं च गहनं गम्भीरावर्तव्याकुलम्॥ 15॥
इमं समुद्रतीरस्थं माहेन्द्रं विन्ध्यगामिनम् ?।
रम्याश्रमं प्रभासस्य प्रविष्टस्तारकाधिपः॥ 16॥

इसी प्रकार वहाँ विचित्र रूप से स्वर्ण से बनी हुई, शुद्ध विशाल कमल के

शङ्खिना पूर्वं कृतं तत्र महातपः॥ तुष्टः श्रीशङ्करो देवो लिङ्ग वासवरेण तु। कोटियज्ञफलं स्नाने प्राच्यां लिङ्गस्य पूजन॥ (स्कन्द. प्रभास. 5, 22-25)

समान अर्थात् कमल दलों में राजा की तरह शोभित, विपुल जलराशि से पूर्व सरोवर में स्फटिक से शङ्ख की रचना जैसी वेदी बनी हुई थी। उस सरोवर में अनेकों मछलियाँ आतुरता से तैरती हुई उग्र तरङ्गों की चक्रियाँ बना रही थीं और उस सरोवर में अनेक शिशुमार (जलमानुष, एक प्रकार का मत्स्य), मगर, और बड़े सीप आदि भी थे। यह सरोवर एक युत (अरब) योजन विस्तार वाला और भीषण, भयङ्कर ग्रहादि जल-जन्तुओं से भरा हुआ, बहुत गहरा और बड़ी-बड़ी विशाल लहरों के भँवरों से उद्वेलित था। इस समुद्र के किनारे विन्ध्याचल पर्वत पर बने सुन्दर आश्रम में तारकाधिप महेन्द्र प्रभास प्रविष्ट हुए।

प्रणिपत्य तदा देवं प्रभासं भुक्तिमाप्नुयात्।
अस्माकमीश्वरं भक्त्या राधयामि च संयतः ॥ 17 ॥
तदाज्ञया चाश्रमेऽस्मिन् निष्ठाराध्यमहेश्वरम्।
तदा लब्ध्याश्रमं श्रेष्ठं दत्तं प्रभासतुष्टिदम् ॥ 18 ॥

(प्रभास ने) वहाँ प्रणाम किया। इस पर वहां के (महेश्वर) देव ने प्रभास को भुक्ति-मुक्ति प्रदान की। प्रभास ने कहा कि 'आप मेरे ईश्वर है और मैं आपकी संयत चित्त से भक्तिपूर्वक आराधना करता हूँ।' 'इस आश्रम में स्थित महेश्वर की निष्ठापूर्वक आराधना करो'— ऐसी आज्ञा के साथ ही यह श्रेष्ठ आश्रम प्रभास को प्रदान किया जिसे पाकर उसे परम शान्ति हुई।

मन्वन्तरं शतं सार्धं सोमोऽकार्षीत् तपो नृपः।
तोषयित्वा महादेवं प्रत्यक्षं शिवसम्भवम् ॥ 19 ॥
आह्लादितमना भूत्वा दृष्ट्वा च परमेश्वरम्।
राजेन्द्र क्षिति कृत्वा तु निश्चलं देवसम्भवम् ? ॥ 20 ॥

इस आश्रम में एक सौ पचास मन्वन्तरों तक सोम राजा ने बड़ा ही कठोर तप किया जिससे उसने महादेव शिव को तप द्वारा सन्तुष्ट करके उनका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया। महादेव शिव स्वयं उस राजा के सामने प्रकट हुए। भगवान् महादेव शिव परमेश्वर को देखकर बड़े ही प्रसन्न मन वाला होकर उस राजेन्द्र सोम ने इस पृथ्वी पर भगवान् शिव के प्राकट्य को निश्चल (प्रतिमा रूप में साकार, स्थापित) किया।

ईश्वर उवाच —

तुष्टो ऽहं तव राजेन्द्र भक्त्या च परया त्वयि।
वरं ब्रूहि च दास्यामि यथेच्छं तारकाधिप ॥ 21 ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां ददामि यत्त्वदीप्सितम्।
नासत्यं नान्यथा चैवं त्वद्भक्त्या रोहिणीपते॥ 22॥

(इस पर) ईश्वर बोले— हे तारकाधिप सोमराजा! मैं तुम्हारी पराभक्ति से परम तुष्ट हुआ हूँ अतः तुम कोई वर माँगो क्योंकि मैं तुम्हें यथेच्छ वर देना चाहता हूँ। हे रोहिणीपति सोम, चन्द्रराजा तुम्हारी पर भक्ति के फलस्वरूप जिस तुम्हारे चाहे हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कराने वाला वर मैं तुम्हें दे रहा हूँ, वह कभी भी असत्य नहीं होगा न ही किसी तरह अन्यथा होगा।[1]

चन्द्र उवाच —

अस्माकमात्मनः पार्श्वे मानसाङ्गं सुधार्यकम्?।
ममाभिधानतश्चैवाऽवतारस्तव साम्प्रतम्॥ 23॥

(वर माँगते समय) चन्द्र बोले— हे प्रभु! मैं तो यह वर माँगता हूँ कि आप मेरे आत्मा के पास मानस अङ्ग धारण करके मेरे गात्र को ही अपना स्थान बनाते हुए तुरन्त अवतरित हों।

देव्युवाच —

शशाङ्क देवदेवेश तिलकत्ववाप्नुहि।
अथातस्त्वं तत्तिलके तथा तिष्ठ मम प्रिय॥ 24॥

(इस बीच पार्वती) देवी बोली— हे शशाङ्क! मैं तुम्हारे मस्तक पर देवदेवेश महादेव शिव का तिलक लगा देती हूँ जिससे ज्योंहि यह तिलक तुम्हारे मस्तक पर लगेगा, त्योंहि मेरे प्रिय स्वामी महादेव शिव तुम्हारे तिलक में स्थित हो जाएँगे।

ईश्वर उवाच —

त्वयेप्सितं वरं यच्च प्रयच्छामि हितैषिणे।
इच्छयात्ममुखनैवाऽसारसंसारमोक्षदम्॥ 25॥
निश्चितात्मसुखैरेवं शान्तावस्था मुखबोधिनी?।
स्वप्नावस्थायां न सौख्यमात्मनो राहिणीपतेः॥ 26॥
स्वप्नावस्थो यदा दृष्टो भस्मोदूधूलिततापसः।
स्कन्धारुह्य हतं चारै? अस्मत्त्वयि विनिवेदयेत्?॥ 27॥

---

1. आद्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने सोमनाथ की आराधना इस प्रकार की है— **सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम्। भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णं तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये॥ (द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्र)**

ईश्वर ने कहा कि तुम्हारे माँगे हुए जिस वरदान को मैं हित भावना से दे रहा हूँ, वह इस असार संसार से मुक्ति दिलाने वाला है। मेरे मुख से जो यह ज्ञान तुम्हें मिला है, यह निश्चित ही आत्मसुख एवं शान्तावस्था और हे रोहिणीपति सोम! तुम्हारी आत्मा को भी सुख देने वाला है परन्तु तुम्हारी स्वप्नावस्था में नहीं, जागृत रहने पर ही यह सम्भव है। यदि स्वप्नावस्था में तुम्हें भस्म-धूलि लगाए हुए कोई तपस्वी दिखाई पड़ जाए जो किसी मारे गए चोर को अपने कन्धे पर उठाए हुए हो और अपने बारे में तुम्हें ऐसा कहे कि—

तापस उवाच —

अहं सोम जगत्कर्ता **वैरं स्यात्तु** लङ्काधिपे।
त्वद्भतयाऽऽगतोऽहं **वत्स** चन्द्रनामाऽवतारतः ॥ 28 ॥
योगावस्थास्थितस्त्वेवं चिन्तात्मा रोहिणीपते।
उदकोल्लङ्घनं **कृत्वा ऐन्द्रीं गतो दिशां प्रति ॥ 29 ॥**

(उक्त तापस कहे कि)— हे सोम! मैं ही इस जगत का कर्ता भगवान् विष्णु हूँ जिसका लङ्काधिपति रावण से वैर हो गया था वही मैं तुम्हारी भक्ति से हे वत्स! चन्द्र नामावतार से आ गया हूँ। हे रोहिणीपति! इस प्रकार की योग स्थिति में चिन्तात्मा होकर समुद्र को लाङ्घकर मैं, पूर्वदिशा की ओर गया।

कैलासाल्लिङ्गमानीय दानवेन्द्रो लङ्काधिपः।
आगमिष्यामि ? क्षेत्रैषु तस्य वाचा प्रबलोद्भवम् ? ॥ 30 ॥
ददामि ते त्वहं सोम सोमे वदति दुर्धरः।
क्षणार्धं तु धृतं विप्र यदाहं भो क्षितौ ततः ? ॥ 31 ॥
गृहीत्वा सोमराजेन्द्रो लङ्कावधि वनैः स्थित ?।
उक्तं लिङ्गं तु राजेन्द्र क्षितौ भूत्वा तु निश्चलम् ? ॥ 32 ॥

वह दानवेन्द्र लङ्कापति रावण कैलाश पर्वत से शिवलिङ्ग लाकर समस्त क्षेत्र में उसकी प्रबल वाचा का उद्घोष करेगा कि मैं आ गया हूँ। हे सोम! वही शिवलिङ्ग मैं तुम्हें देता हूँ और वह सोम को बड़े ही भयानक उद्धत ढंग से कहता है कि हे विप्र! थोड़ी देर के लिए इस शिवलिङ्ग को थामे रहो जब तक कि मैं पृथ्वी पर खड़ा रहूँ। उसे ग्रहण करके सोम राजेन्द्र तब तक ठहरा रहा जब तक लङ्काधिपति रावण उस वन में स्थिर रहा और उसके आने की अवधि तक प्रतीक्षारत रहा परन्तु जब रावण बड़ी अवधि तक नहीं आया तो शिवलिङ्ग को सोम राजेन्द्र ने धरती पर रख दिया और निश्चल अर्थात् वहीं पर प्रतिष्ठित कर दिया।

पूजितं लिङ्गराजेन्द्रं लङ्कावधि स्वस्थचेतसा ?।
सोमाभिधानदेवत्वं सोमनाथ इति श्रुतम्॥ 33॥
शशाङ्कं मुकुटे धृत्वा तन्नाम शशिभूषणः।
ईश्वरः सोमनाथाख्योऽवतरितः सोमेश्वरः॥ 34॥

जब तक लङ्काधिपति रावण के आने की अवधि हो, तब तक उसकी प्रतीक्षा में वह सोमराजा बड़े स्वस्थचित से उस शिवलिङ्ग राज की पूजा में रहे। इसलिए सोमराज राजा के द्वारा पूजित होने के कारण शिव वहाँ सोमाभिधान देवत्व के रूप में सोमनाथ नाम से विख्यात् हुए। इस प्रकार चन्द्रमा को अपने मुकुट में धारण करके और उसके ही नाम से शशिभूषण अर्थात् सोमनाथ नाम धरकर स्वयं ईश्वर शिव ही सोमनाथ कहलाकर सोमेश्वर के रूप में अवतरित हुए हैं।

तदा सुरतरोर्वत्स प्रभासे भक्तिस्वागतः।
जगन्नाथः सोमनाथस्त्रैलोक्ये चाऽपि दुर्लभः॥ 35॥
आरामनगरे रम्ये जगदाह्लादकारकः।
जगन्नाथः सोमनाथस्त्रैलोक्ये चाऽपि दुर्लभः॥ 36॥

तब से ही हे वत्स! यह सुरतर देव प्रभास क्षेत्र में भक्ति के स्वागत से जगन्नाथ सोमनाथ से आए हैं जो तीनों ही लोकों में दुर्लभ है। अस्तु, यह सदा ध्यान में रखना चाहिए, बाग-बगीचों में, सुन्दर नगरों में ऐसे जगत को आनन्द प्रदान करने वाले जगन्नाथ सोमनाथ तीनों लोकों में भी दुर्लभ हैं।

नाम्ना कैलासनगरे सोमनाथो महेश्वरः।
संसारतारणो देवः संसारपाशछेदनः॥ 37॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां वाञ्छितार्थफलप्रदम्।
सर्वतीर्थं महोत्साहं स्वर्गादिभोगभुक्तिदम्॥ 38॥

कैलास नामक नगर में भी सोमनाथ नाम के महेश्वर देव हैं जो कि संसार से तारण करवाकर संसार में पुनरागमन के पाश को ही काट देते हैं। ये सोमनाथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के वाञ्छित फल के दाता हैं और समस्त तीर्थों में सबसे महान और स्वर्गादिक भोग और मुक्ति प्रदाता है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
विष्णुवाक्योद्भवारण्ये श्रीसोमेश्वरनिर्णयाधिकारो नाम त्रिंशं सूत्रम्॥ 30॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में विष्णु वाक्यानुसार अरण्य में उद्भूत श्रीसोमेश्वर निर्णय अधिकार नामक उनतीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 30॥

विष्णुवाक्योद्भवसोमनाथोक्तद्वादशशिवरात्रिनिर्णयो नामैकत्रिंशं सूत्रम्॥ 31॥

विष्णुरुवाच —

ततश्चानन्तरं वत्स प्रभासे भुक्तिमुक्तिदे।
कृत्वा सोमेश्वरे भक्तिं पूजा स्यात्तु महोत्सवः॥ 1॥
चन्दनागुरुकङ्कोलकर्पूरैः कुङ्कुमादिकैः।
पञ्चामृतादिस्नानैश्च धूपाद्यैश्च सुगन्धिभिः॥ 2॥
मन्त्रस्तोत्रगीतवाद्यैर्नृत्यैश्च सुरयोषिताम्।
इन्द्राद्याश्च सुराः सर्वे ब्रह्माद्याश्च मुनीश्वरः॥ 3॥
विष्णुश्च भगवान् देवो मरीचिः काश्यपो गणाः।
सूर्याद्याश्च ग्रहाश्चैव तथा चैवं गणोत्तमाः॥ 4॥
अष्टौ च वसवः सिद्धा वासुक्याद्याश्च पन्नगाः।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पार्थिवाश्चैव भूतले॥ 5॥
पातालस्वः सप्तके च पृथिव्यां सप्तकं तथा।
आनीताश्च त्रयो लोकाः सुरासुरनरोरगैः॥ 6॥
प्रभासेन कृता पूजा देवदेवजगद्गुरोः।
तुष्टः प्रभासं देवेशः पुत्रत्वं समुपागमत्॥ 7॥

विष्णु बोले — हे वत्स! इसके उपरान्त ही भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने वाले प्रभास क्षेत्र में भगवान् सोमेश्वर की भक्तिपूर्वक पूजा करके महोत्सव होने लगे। चन्दन, अगरु, कङ्कोल, कर्पूर, कुङ्कुम और पञ्चामृत आदि से स्नान, धूप, सुगन्धित द्रव्यों से, मन्त्र-स्तोत्र, गीत-वाद्य-नृत्यों से देवाङ्गनाएँ और इन्द्रादि देवगण, ब्रह्मादि मुनीश्वर, भगवान् विष्णु देव, मरीचि, काश्यप गण, सूर्यादि सभी ग्रह और ऐसे ही अनेक उत्तम गणों और आठों वसु, सिद्धगण, वासुकि आदि समस्त नाग पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ क्षेत्र और भूतल पर जितने भी राजा, सातों पातालों, सातों पृथ्वी मण्डलों और तीनों लोकों के सुर-असुर-नर और नागों को निमन्त्रित करके प्रभास क्षेत्रवासियों ने देव देव जगद्गुरु महेश्वर की पूजा की जिससे सन्तुष्ट होकर देवेश भगवान् शिव महेश्वर ने प्रभास को पुत्रत्व प्रदान किया।

वाचस्पतेर्भागिनेयं वसुहन्नन्द्ददायकम्।
प्रोवाच वचनं पुत्र एकादश ममांशकाः॥ 8॥

सोमनाथः प्रभासश्च कर्दमः शशिभूषणः।
निष्कदाख्यः सहस्त्राक्ष ऋणमुक्तिः पापान्तकः॥ 9॥
अर्कस्थाल्यमनार्कस्वरं ? तवपुत्रा एकादश।
एकादशैते रुद्राक्ष प्रभासक्षेत्रसम्भवाः॥ 10॥

इस प्रकार बृहस्पति के भानजे और वसु के हृदय को आनन्द देने वाले उनके पुत्र प्रभास को भगवान् शिव महेश्वर ने वचन दिया कि तुम्हारे ग्यारह पुत्र होंगे जो मेरे ही अंशरूप होंगे। इनके नाम होंगे— 1. सोमनाथ, 2. प्रभास, 3. कर्दम, 4. शशिभूषण, 5. निष्कद, 6. सहस्त्राक्ष, 7. ऋणमुक्ति, 8. पापान्तक, 9. अर्कस्थाली, 10. अनार्क और 11. स्वर। ये तुम्हारे ग्यारह पुत्र कहलाएँगे। ये सभी प्रभास क्षेत्र में उत्पन्न एकादश रुद्रों के ही समान समझें।[1]

विश्वकृद् विश्वकर्मा च त्वष्टा स्याद् देववर्धकिः।
भूर्भुवर्भुवनेशश्च तथा भुवनदेवकः॥ 11॥
पुनरुच्चार्य नामानि विश्वेशः त्रिदशेश्वरः।
विश्वश्च विश्वनिरतस्स्वयं च सृष्टिकोद्भवः॥ 12॥
नासत्यावश्विनौ दस्त्रौ प्रोक्तौ देवचिकित्सकौ।
जगत्कर्ता च रुद्रश्च प्रभासो वसुनन्दनः॥ 13॥
सृष्टा च सर्वशिल्पानां जगन्नेत्रस्तदुद्भवः।
चतुर्दश्यां समुत्पन्नः स्त्रष्टा विश्वपतिस्तथा॥ 14॥
कार्तिक्यां कृष्णपक्षे तु दीपोत्सवसमुद्भवः।
महोत्सवास्तथा पञ्च तृतीयो [2]यावतीदिनी॥ 15॥
स्वयं साक्षाद् रुद्रमूर्तिर्विश्वकृद् विश्वशेखरः।

विश्वकृद्, विश्वकर्मा, त्वष्टा, देववर्धकी, भूर्भुवः भुवनदेव, भुवनदेवक— इन नामों को पुनः कहते हुए विश्वेश, त्रिदशेश्वर, विश्व, विश्वनिरत और सृष्टिकोद्भव, नासत्य, अश्विनी, दस्त्र, देव चिकित्सक, जगतकर्ता, रुद्र, प्रभाव, वसुनन्दन, सृष्टा और सभी शिल्पियों के जगतनेत्र[3] स्वरूप आपकी उत्पत्ति चतुर्दशी को हुई। कार्तिकमास में

---

1. इन्हीं से सोमपुरा शिल्पियों की एकादश गोत्रों का प्रवर्तन माना जाता है।
2. 'यावनोदिनी ?' प्रकाशित पाठः। शब्दकल्पद्रुम में 'यावतिथः' शब्द के लिए कहा है— यावत्+ तस्य पूरणे डट्। ऐसे में मनुस्मृति का यह वचन प्रमाण है— आद्याद्यस्य गुणांस्त्वेषामवाप्नोति परःपरः। योयो यावतिथश्चैषां सस तावद्गुणः स्मृतः॥ (मनु. 1, 20)
3. ये विश्वकर्मा के नाम हैं। विश्वकर्मापुराण में विश्वकर्मा के सौ नामों की सूची है। यह यहाँ प्रासङ्गिक ही

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को उत्पत्ति हुई तब हे विश्वपति! दीपोत्सव मनाया गया और अन्य महोत्सव रूप में पाँच तृतीया भी अगली तिथि (के पूर्ण अथवा उदयव्यापिनी) सहित मानी गई है। आप स्वयं साक्षात् रुद्रमूर्ति विश्वकृत और विश्वशेखर है।

विश्वकर्मोवाच —

दीपोत्सवः कथं देव किमर्थश्च तदुद्भवः।
सुरोरगासुरनराः कुर्वन्ति कथमुत्सवम्॥ 16॥

विश्वकर्मा बोले — हे प्रभु! दीपोत्सव क्या है और इसका प्रचलन किसलिए है? देवता, नाग, असुर और मानवगण यह उत्सव कैसे मनाते हैं, सो कहिये।

ईश्वर उवाच —

द्वादश₁₂दीपोत्सवानां श्रेष्ठाः स्युः कार्त्तिकादितः।
शिवरात्रयो द्वादश व्रतानामुत्तमा मताः॥ 17॥
आद्या मार्गशिरे कृष्णचतुर्दश्यां तिथौ भवेत्।
त्रयोदश्यामेकभोजी ह्युपोष्या च चतुर्दशी॥ 18॥
स्नानं कृत्वा चोदकेन यस्तिष्ठेल्लिङ्गमाश्रितः।
दिनान्ते च निशाप्राप्तौ कुर्याद् वै दन्तधावनम्॥ 19॥

ईश्वर बोले — कार्तिकादित[1] या कार्तिक से आरम्भ होने वाले बारह (मासों के) दीपोत्सव श्रेष्ठ है और बारह शिवरात्रियों को व्रतों के लिए उत्तम माना गया है।

होगी— अज, अतुल, अधिकर्मिक, अधिनायक, अधिष्ठाता, अधीश्वर, अभिधेय, अभिनन्द्य, अभिरक्षक, अभ्युदयकारी, अमन्द, अर्चनीय, आढ्यङ्कर, आदिकर, आदिकर, आनन्त्य, आनन्दन, आय:शूलिक, आराधनीय, इरेश, ईक्षक, ईश्वर, उच्चण्ड, उत्तमश्लोक, उत्पादक, उद्यमी, एकाक्षर, एकान्त, ऐकात्म्य, ऐश्वर्यवन्त, ओजस्वी, औपमिक, क, कष्टक विशोधक, कल्याणक, कार्मुक, कालाध्यक्ष, कालक्ष, कीर्तिकीय, कुशाग्रबुद्धि, कृतकार्य, कृताभरण, कृतायास, कृतधी, कृतप्रतिज्ञ, कृतलक्षण, कृतसङ्कल्प, कृतहस्त, कृती, कृतु, कृपालु, केवक, केलिमुख, कौतुकप्रिय, क्रतुप्रिय, क्रतुपति, क्रियापटु, क्वाचित्क, क्षन्ता, क्षिप्रकारी, ख्यातिप्राप्त, गणितज्ञ, गण्डकघ्न, गमनीय, गुणी, चक्रवर्ती, चक्री, चञ्चुर, चण्ड, चण्डविक्रम, चारक, चित्रकार, चिन्मय, छत्वरक, जगतीश्वर, जगत्स्रष्टा, जनाश्रय, जागरूक, जिष्णु, तक्षक, तितिक्षु, तक्ष्णकर्मी, त्यागी, त्रिकालविद्, त्वष्टा (त्वष्टृ), दक्ष, दाता, दिव्य, दिष्णु, दस्र, देववर्धकि, धृतात्मा, नन्दक, नमस्य, नित्य, निपुण, नियामक, निरज, पटु, पारङ्गत, पृथु, ब्रह्मवत्, विश्वात्मा, विश्वकर्मा, सर्वेश्वर और सृष्टिकर्ता। (शिल्पशास्त्रम् : सम्पादक-अनुवादक : श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2008 ई., भूमिका, पृष्ठ 15)

1. यहाँ कार्तिकादि वर्षारम्भ का सङ्केत है जो कि मेवाड़ के बाद गुजरात आदि में अद्यावधि प्रचलन में है। अन्यत्र चैत्रादि या श्रावणादि वर्षारम्भ किया जाता है। ग्रन्थ के 19वें सूत्र (14-15) में भी इसी क्रम से गणना है। विष्णु आदि पुराणों से ज्ञात होता है कि पूर्व गुप्तकाल तक नक्षत्रों की गणना कृत्तिकादित थी, वराहमिहिर ने प्रथमतः अश्विन्यादित गणना की। यहाँ बारह शैवव्रतों का विधान किया गया है।

मार्गशीर्ष मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि आद्या होती है और उसके लिए त्रयोदशी को एकासन रखे तथा चतुर्दशी को उसका पारणा करें। जल से स्नान करके शिवलिङ्ग के आश्रय में रहे और दिन के अन्त में आने पर दन्तधावन करें।

ततः शिवालये गत्वा पुष्पधूपादिसंयुतः।
पञ्चामृतैः स्नापयित्वा धूपैर्वै लेपनादिभिः॥ 20॥
पूजां कृत्वा त्रिरात्र्यन्तं स्तोत्रमन्त्रकगीतकैः।
वादित्रैर्विविधैश्चैव स्वेच्छया चात्मशक्तितः॥ 21॥
स्वयंभुवि तथा बाणे घाट्ये स्वगृहलिङ्गे।
यामे यामे गते रात्रौ पूजां कृत्वा महोत्सवम्॥ 22॥

इसके बाद शिवालय में जाकर पुष्प, धूपादि से संयुक्त होकर, पञ्चामृत और धूप लेपनादि से स्नान कराके अपने सामर्थ्य के अनुसार पूरी श्रद्धा से तरह-तरह के स्तोत्र मन्त्र, गीत आदि वाद्यों से तीन रात्रियों के अन्त तक पूजा करके स्वयंभुवि लिङ्ग अथवा बाणलिङ्ग या फिर घड़े हुए अपने-अपने घर में पूजार्थ रखे शिवलिङ्ग की रात्रि के प्रत्येक प्रहर बीतने पर पूजा करते हुए यह महोत्सव मनाया करे।

शिवरात्र्योत्सवविधिं—

शिवरात्र्युत्सवे चाल्यं शिवं स्तुत्वा समस्तकम्।
पुराणश्रवणं कृत्वा दानं चैव समानयेत्॥ 23॥
प्रतियामोत्सवं कृत्वा स्वगृहं भावतो व्रजेत्।
दन्तधावनस्नानार्चाः कृत्वा चैव महोत्सवम्॥ 24॥
अग्निपूजां ततः कृत्वा दत्त्वा चाहुतिपञ्चकम्।
द्वे द्वे कृत्वा मण्डले च बाह्ये मध्ये गृहेऽथवा॥ 25॥
आत्मपादौ च प्रक्षाल्य तापसानां तथैव च।
भुक्तिस्थानं गृहमध्ये मण्डलेषु प्रदीयते॥ 26॥

शिवरात्रि के उत्सव में चलकर जाना चाहिए और शिव की स्तुति करके साष्टाङ्ग प्रणाम करें, पुराण (वायुपुराण, लिङ्गपुराण, शिवपुराणादि कथा) का श्रवण करना चाहिए। दानपुण्य भी करने चाहिए। प्रतिदिन भी अपने घर में हर प्रहर इसी

जाबालश्रुति के दस शैवव्रतों का वर्णन शिवपुराण की कोटिरुद्रसंहिता के अध्याय 37 में आया है। वहाँ पर माघ मास के कृष्णपक्ष में शिवरात्रि तिथि का विशेष महत्व बताया गया है। जिस दिन आधी रात के समय तक वह तिथि विद्यमान हो, उसी दिन उसे व्रत के लिए ग्रहण करना चाहिए। शुक्लपक्ष से मास का आरम्भ मानने से फाल्गुन मास की कृष्णपक्ष की त्रयोदशी माघ मास की कही जाती है।

भाव का आचरण करता रहे। दन्तधावन, स्नान, अर्चा-पूजादि महोत्सव करता हुआ हवन करे और पञ्चक आहुति प्रदान करें। इसके लिए घर में, घर के मध्य में अथवा घर के बाहर दो-दो मण्डल बनाए। (भोजन से पूर्व) पहले अपने पाँवों का प्रक्षालन करे। तदोपरान्त इस अवसर पर आमन्त्रित तपस्वी साधुओं के पाँवों का प्रक्षालन करके उन्हें घर मध्य में भोजनशाला में भोज-प्राङ्गण में ले जाना चाहिए।

सम्प्राश्य शिवनैवेद्यं ततो दद्यातु भोजनम्।
भोजनानन्तरं दद्याद् दक्षिणां वस्त्रसंयुताम्॥ 27॥
यज्ञोपवीतं पट्टं च पादुकां छत्रसंयुताम्।
क्षमापयेच्छिवं देवं मठं सम्प्राप्य तापसम्॥ 28॥

(इसके बाद) उन तपस्वीगणों को शिव-नैवेद्य का प्रसाद प्रदान कर बाद में सन्तोषपूर्वक भोजन करवाएँ और भोजनोपरान्त उन्हें वस्त्र के साथ दक्षिणा भी प्रदान करे। यज्ञोपवीत, पट्टवस्त्र, पादुका, छाता भेंटकर भगवान् शिव से क्षमापन करते हुए उन समस्त आगन्तुक तपस्वियों को उनके मठ तक आदरपूर्वक पहुँचाने जाए।

द्वादशोत्सवनामानि —

एवमुक्ता कृष्णचतुर्दशी मार्गशिरादिका।
मार्गादि कार्तिकान्तं च तासां नामानि द्वादश$_{12}$॥ 29॥

इस प्रकार से मृगशिरादिक कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के विषय में कहा गया है। यहाँ कहे गए मार्गादि से कार्तिकान्त तक आने वाले बारहों चतुर्दशी उत्सवों (शैवव्रतों) की नामावली इस प्रकार है—

शिवा शान्ता सिद्धिदा च जया चैव मनोरमा।
कान्ताह्लादा च सौम्या च शुभा स्यात्तु मणिप्रभा॥ 30॥
विश्वा विश्वकृदुद्भवा चेत्थं नामानि द्वादश$_{12}$।
मार्गादि कार्तिकान्तं च कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥ 31॥

(1.) शिवा, (2.) शान्ता, (3.) सिद्धिदा, (4.) जया, (5.) मनोरमा, (6.) कान्ता, (7.) आह्लादा, (8.) सौम्या, (9.) शुभा, (10.) मणिप्रभा, (11.) विश्वा और (12.) विश्वकृदुद्भवा— ये मार्गादि से आरम्भ होकर कार्तिक के अन्त तक, कृष्ण पक्ष की चतुर्दशियों के नाम हैं।

अथ मासानुसार चतुर्दश्यां सफलञ्च —

मार्गपौषयोर्मध्ये च शिवा स्वर्गादिभोगदा।
पौषमाघयोर्मध्ये च शान्ता कल्याणकारिणी॥ 32॥

मार्गशीर्ष और पौष के मध्य में पड़ने वाली शिवा संज्ञक चतुर्दशी स्वर्गादि भोग देने वाली है और पौष व माघ के मध्य पड़ने वाली शान्ता नामक चतुर्दशी कल्याणकारिणी है।

माघफाल्गुनयोर्मध्ये सिद्धिदा सर्वसिद्धिदा।
ख्याता जया फाल्गुनान्ते विजयस्वर्गराज्यदा॥ 33॥

माघ व फाल्गुन के मध्य में आने वाली सिद्धिदा चतुर्दशी समस्त सिद्धियों को देने वाली है और फाल्गुन के अन्त में आने वाली जय नाम से ख्यातिलब्ध चतुर्दशी विजय व स्वर्ग का राज्य देने वाली है।

मनोरमा च चैत्रार्धे मनोरथप्रदायिनी।
वैशाखज्येष्ठयोर्मध्ये कान्ता च स्वर्गभुक्तिदा॥ 34॥

चैत्र मास के मध्य में आने वाली मनोरमा चतुर्दशी मनोरथों को पूर्ण करने वाली और वैशाख व ज्येष्ठके मध्य में आने वाली कान्ता चतुर्दशी स्वर्ग और मुक्ति देने वाली कही गई है।

ज्येष्ठाषाढयोर्मध्ये च आह्लादाऽऽह्लाददायिनी।
आषाढार्धे तथा ख्याता सौम्या देवत्वदायिनी॥ 35॥

ज्येष्ठ व आषाढ़ के मध्य में आने वाली आह्लादा चतुर्दशी आह्लाद देने वाली है जबकि आषाढ़ के आधे में आने वाली सौम्या चतुर्दशी देवत्व देने वाली के रूप में प्रसद्धि है।

श्रावणार्धे शुभा ख्याता तेजः सौभाग्यवर्द्धिनी।
मणिप्रभा भाद्रपदे संसारे च मणिप्रदा॥ 36॥

श्रावण मास के आधे में पड़ने वाली शुभा चतुर्दशी तेज और सौभाग्यवर्द्धिनी के रूप में विख्यात है और भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी मणिप्रभा के नाम से संसार में मण्यादि रत्न प्रदान करने वाली है।

आश्विने च तथा मासे विश्वा त्रैलाक्यतोषदा।
कार्तिके कृष्णपक्षे तु तथा विश्वकृदुद्भवा॥ 37॥

इसी प्रकार आश्विन मास में पड़ने वाली विश्वा चतुर्दशी तीनों ही लोकों में सन्तुष्टि प्रदान करने वाली है जबकि कार्तिक मास के कृष्णपक्ष में पड़ने वाली चतुर्दशी को विश्वकृदुद्भवा कहा गया है।

तास्तु समस्तदेशेषु दीपोत्सवसमुद्भवाः।
कैलासे च पुरेरम्ये विख्याताश्च महीतले॥ 38॥

इन सभी चतुर्दशियों में समस्त देशों में दीपोत्सव मनाए जाते हैं जो कैलाश में, नगरों में और पृथ्वीतल पर सर्वत्र विख्यात हैं।

शिवरात्रिमाहात्म्यमाह —

शिवरात्रिसमं पुण्यं नास्ति यज्ञसहस्रकैः।[1]
मासे मासे कृष्णपक्षे या भवेच्चं चतुर्दशी॥ 39॥
शिवरात्रिस्तु सा ज्ञेया व्रतानामुत्तमोत्तमा।

शिवरात्रि के समान कोई भी पुण्य हजारों यज्ञ करने पर भी नहीं मिल सकता अतः प्रत्येक मास में जब-जब कृष्णपक्ष की चतुर्दशी हो, उसको शिवरात्रि के रूप में जाने (और व्रत करें) जो व्रतों में उत्तम व्रत है।

अन्यदप्याह —

त्रिरूपा कृष्णवर्णा सा देवी कल्याणवर्द्धिनी॥ 40॥
ललाटे मुकुटे लिङ्गे कर्णयोः स्कन्धयोस्तथा।
प्रकोष्ठे मणिबन्धे च कण्ठे ऊर्वोः स्तने तथा॥ 41॥
मेखलायां कटिसूत्रं कटिमालादितस्तथा।
लिङ्गाधारमयाः सर्वे ऊर्ध्वाः करपुटैः कृताः॥ 42॥
तंद्रूपा शिवसामर्थ्यात् शिवरात्रिः शिवशासना।
द्वादशोद्भवन्ति मर्त्ये नाम्नैवं शिवरात्रयः॥ 43॥

वह देवी तीन रूपों वाली, कृष्णवर्ण की है और कल्याणवर्द्धिनी है। उसके ललाट पर, सिर, कानों, स्कन्धों, प्रकोष्ठ, मणिबन्ध, कण्ठ, वक्ष, स्तनों पर मेखलाएँ हैं। वह कटिसूत्र व कटिमालादि सहित शिवलिङ्गाधारमय होती है। इसके करपुट ऊर्ध्वस्थ कल्पित किए जाएँगे। इस रूप में शिव के सामर्थ्यवशात् शिवरात्रि से शिवशासन सिद्धि होगी। (इस प्रकार यहाँ) बारह शिवरात्रियों को नामानुसार कहा गया जो कि मर्त्यलोक में होती है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां विष्णुवाक्योद्भवसोमनाथोक्तद्वादशशिवरात्रिनिर्णयाधिकारो नामैकत्रिंश सूत्रम्॥ 31॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में विष्णु के वाक्यानुसार उद्भूत सोमनाथोक्त बारह शिवरात्रि निर्णय अधिकार नामक इकतीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 31॥

---

1. यह श्लोक हेमाद्रि के निम्न श्लोक से तुलनीय है— शिवरात्रिसमं नास्ति कृत्वा यज्ञसहस्रकम्॥ न ते यमपुरस्थास्तेयैः कृतेयं शिवप्रदा। भुक्तिमुक्तिप्रदा देवि सत्यं सत्यं वरानने॥ (चतुर्वर्गचिन्तामणि व्रतखण्ड भाग 2, पृष्ठ 88)

विश्वकर्मावतारो नाम द्वात्रिंशं सूत्रम्॥ 32॥

विश्वकर्मोवाच —

नमस्कृत्वा सोमनाथमज्ञानां ज्ञानदो भवान्।
तव प्रसादाद् देवेश तथाऽस्माभिश्च दृश्यते॥ 1॥
कथं चान्यब्रह्माण्डसृष्ट्युत्पत्तिप्रलयादिकम्।
ब्रह्मा विष्णुः शशी सूर्य इन्द्राग्नी चान्यसम्भवः॥ 2॥
कुर्वेतं देवदेवेश प्रसादं पार्वतीपते।
ज्ञानोपदेशं सन्देहच्छेदनं च जगत्प्रभोः॥ 3॥

विश्वकर्मा बोले — हे सोमनाथ! आप अज्ञानियों को भी ज्ञान प्रदान करने वाले हैं, मैं आपको नमस्कार करके प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने ज्ञानरूपी प्रसाद से हमें दिखाएँ कि किस प्रकार इन अन्य ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति और प्रलय होता है और ब्रह्मा, विष्णु, शशि-सूर्य-इन्द्र-अग्नि और अन्य देवता कैसे उत्पन्न हुए? हे पार्वतीपति देव-देवेश! कृपा करके हे जगत्प्रभो हमारे सन्देह का निवारण कीजिए।

ईश्वर उवाच —

पूर्वं ब्रह्मभवा सृष्टिर्जगत्स्थावरजङ्गमम्।
समांशेन समुत्पन्नावुभौ ब्रह्मा तथा हरिः॥ 4॥
ब्रह्मा तु सृष्टिकर्ता च पालकस्तु जनार्दनः।
तस्मात्तथाऽपरे नैव ब्रह्माविष्णुसदाशिवाः॥ 5॥

पूर्व ब्रह्म में होने वाली यह सृष्टि जगत में स्थावर, जङ्गमयुक्त हुई और समान अंशों से दोनों ही ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न हुए। ब्रह्मा तो सृष्टिकर्ता हुए और इसके पालनकर्ता जनार्दन विष्णु हुए। इनसे बाद में इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, सदाशिव हुए।

गन्तव्यं ब्रह्मलोकेषु यत्र तौ परमेष्ठिनौ।
तत्रोद्भूता च या सृष्टिस्त्वमवाग्रतो भवेत्?॥ 6॥
पुष्पकारूढः स्त्रष्टा च युक्तः पुत्रैश्च मानसैः।
जयश्च विजयश्चैव सिद्धार्थश्चापराजितः॥ 7॥

(उक्त तीनों ही) परमेष्ठिगण जब ब्रह्मलोक की ओर जाने को तत्पर हुए तब आप ही इस सृष्टि के रचनार्थ उनके साथ अग्रसर हुए और पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर स्त्रष्टा के पद से युक्त होकर अपने मानस पुत्रों— जय, विजय, सिद्धार्थ और अपराजित को साथ ले गए।

पुष्पकस्य च स्रष्टा वै स्वयं त्वं सृष्टिसम्भवः।
पुष्पविमानमारूढश् छत्रादिझल्लरीयुत्॥ 7-1॥
कलशकनकदण्डै रत्नैर्नैकेर्विभूषितम्।
घण्टारवकोपेतं वै नैकविद्याधराकुलम्॥ 7-2॥
तरुणादित्यसङ्काशं तप्तकाञ्चनसम्प्रभम्।
प्रभासक्षेत्रसम्भूतं द्वितीयमिव भास्करम्॥ 8॥

पुष्पक विमान के स्रष्टा तो आप स्वयं हैं जिनसे समस्त सृष्टि रचना सम्भव होती है। पुष्पक विमान में आरूढ़ होने योग्य छत्रादि और झल्लरीयुक्त कलश, स्वर्णदण्ड, अनेकों रत्नों से विभूषित सजावट, घण्टाघोष आदि ध्वन्योपस्कर और अनेक विद्याधरों के समूह तरुण सूर्य के समान प्रकाशमान, जगमगाते हुए तथा तपाए गए सोने की चमक के समान, प्रभास क्षेत्र में उत्पन्न हुए। ऐसा लगता था कि दूसरे भास्कर ही हों।

विष्णुः शक्रश्च सूर्यश्च स्वामी चैव गणाधिपः।
रुद्रतेजः समुद्भूताः स्वयं वा सृष्टिकर्मणा॥ 9॥
जटामुकुटशोभाढ्यः कुण्डलाभ्यालङ्कृतः।
चतुर्भुजो महातेजा दिव्यहंसकवाहनः॥ 10॥
अक्षसूत्रं करे याम्ये वामे चैव कमण्डलुः।
पुस्तकं वामहस्तोर्ध्वे दक्षोर्ध्वे कम्बिका तथा॥ 11॥

वे विष्णु, इन्द्र, सूर्य, कार्तिकस्वामी, गणाधिप और रुद्र के तेज से समुद्भूत स्वयं सृष्टि कर्म करने वाले विश्वकर्मा जयमुकुट की शोभा से भरपूर और कानों में सुन्दर कुण्डलों से अलङ्कृत चतुर्भुज स्वरूप, महातेजस्वी, दिव्य हंस पर सवारी करने वाले, हाथों में अक्षमाला और सूत्र दाहिने हाथ में धारण किए हुए और बायें हाथ में कमण्डलु धारण किए हुए तथा बायें ऊपरी हाथ में पुस्तक (शिल्पवेद) तथा दायें ऊपर के हाथ में कम्बिका या हस्त-गज धारण किए हुए।

विश्वकर्मा सदागौरस्तेजः पुञ्जसमुद्भवः।
बृहस्पतेर्भागिनेयस्तेजः कूट इवापरः॥ 12॥
सम्प्राप्तो ब्रह्मलोके तु महौजा विश्वकर्मकः।
ब्रह्मणां चासनं त्यक्त्वा करयुग्मं च योजितम्॥ 13॥

भगवान् विश्वकर्मा सदा गौरवर्ण और तेजस्विता के पुञ्जरूप उत्पन्न होकर बृहस्पति के भानजे तेजस्विता के शिखर के समान होकर यहाँ से आगे ब्रह्मलोक में

पधारे जिनको आदर देने हेतु स्वयं ब्रह्मा भी आसन त्याग करबद्ध होकर खड़े हो गए।

तस्मै तदासनं दत्त्वा स्थितावासनयोरुभौ।
चत्वारो मानसाः पुत्रा विश्वकृत्पार्श्वतः स्थिताः ॥ 14 ॥
एकैके च यथाशक्ति स्वयं वै सृष्टिकारकाः।
जयो विजय आख्याताः सिद्धार्थश्चापराजितः ॥ 15 ॥

ब्रह्मा ने उन विश्वकर्मा को वह आसन दिया और दोनों ही एक साथ बैठे। अपने पास में ही विश्वकर्मा के उन चारों मानसपुत्रों को भी खड़ा किया जो अपने आपमें एक-एक भी स्वयं सृष्टिकर्ता के रूप में विख्यात हैं। वे जय, विजय, सिद्धार्थ और अपराजित नाम से विख्यात् हैं।

ब्रह्मोवाच —

स्वयं रुद्रस्त्वमाख्यातो मया सृष्टो महेश्वरः।
न्यूनाधिकां तथा सृष्टिं पूरयामि च साम्प्रतम् ॥ 16 ॥
स्वयं रुद्रो विष्णुः शिवो मम सृष्टिकृतोऽभिधाः।
त्रैलोक्येऽमरपदं च सृष्टव्यं विश्वकर्मणा ॥ 17 ॥

(इसके बाद ब्रह्मा कहने लगे कि) स्वयं महेश्वर ने आपको कहा है कि उन्होंने ही मेरी सृष्टि की है उसमें जो भी कमी-वेशी है, मैं उसे अब पूरी कर दूँगा। स्वयं रुद्र (का मत है कि) विष्णु, शिव भी मेरी ही सृष्टि के नामधारी है। अब तीनों लोकों में अमरपद देवताओं की सृष्टि विश्वकर्मा द्वारा होनी है।

त्रैलोक्ये चामरपदं सृष्टव्यं विश्वकर्मणा।
जानासि त्वं विश्वकर्मन् न किं ब्रह्मसमुद्भवम् ॥ 18 ॥

तीनों लोकों के अमरपद देवता स्वयं विश्वकर्मा के द्वारा की जाने वाली सृष्टि में होते हैं। हे विश्वकर्मा! आप यह सब जानते हैं। यह ब्रह्म किसी से उत्पन्न नहीं हुआ। यह सब आप ही की सृष्टि है अर्थात् आपसे ही उत्पन्न हुई है।

भुवनसृष्ट्यादिदेवो भुवर्देवस्स उच्यते।
समीपगताथ तत्र पृथिवी तु भयातुरा।
तत्पृष्ठतश्चागतो वै पृथुश्च पृथिवीपतिः ॥ 19 ॥

इस भुवनमय सृष्टि का आदिदेव भुवनदेव विश्वकर्मा को ही कहते हैं। एक बार पृथ्वी भयातुरा होकर भगवान् विश्वकर्मा के समीप पहुँची और उसके पीछे के पीछे पृथ्वीपति राजाधिराज पृथु भी पहुँच गया।

इत्युक्त विष्णुमाख्यातं **विश्वकर्म प्रकथ्यते।**
पक्षिराजं समारुह्या शङ्खशार्ङ्गादिधारिणम्॥ 20॥
सप्तकोटिगणैर्युक्तविमानैश्चैव सङ्कुलम्।
सिद्धचारणगन्धर्वैर्ऋषिभिः परिवेष्टितम्॥ 21॥
सुरदुन्दुभिसंनादैर्नैकवादित्रसङ्कुलम्।
पुष्पकैश्छत्रमाच्छाद्यं पृथिव्यान्तक्षीरार्णवम्॥ 22॥
अकस्मादागतो विष्णुर्ब्रह्मलोकेऽमृतार्णवात्।
गन्धमादनशैलेन्द्रे **विश्वकर्मा जगत्पतिः॥ 23॥**

ऐसा विष्णु द्वारा कहा प्रसिद्ध है।[1] विश्वकर्मा इसको ही पुनः कहते हैं कि विष्णु भगवान् शङ्ख–शार्ङ्गधनुषादि धारण करके पक्षीराज गरुड़ पर आरूढ़ होकर सात करोड़ गणों को साथ लेकर, जो कि विमानों के समूहों में आए थे और जिनमें सिद्ध, चारण, गन्धर्व ऋषिगण बैठे हुए थे और उन सबसे घिरे हुए स्वर्ग के दुन्दुभि आदि के निनाद से और अनेकानेक वाद्यों के समूह पुष्पक विमान के छत्र के नीचे आच्छादित होकर पृथ्वी के अन्त में क्षीरसागर में अकस्मात् आ गए। इस प्रकार विष्णु और ब्रह्मलोक के अमृतसागर से विश्वकर्मा जगत्पति के प्रभाव से पुष्पक विमान द्वारा तत्काल पृथ्वी के अन्तिम क्षेत्र में स्थित सागर में गन्धमादन पर्वत पर आकर उतरे।

पुनः पृच्छति तं पुत्रः कनिष्ठस्त्वपराजितः।
विश्वकर्मा पुनर्वाक्यं श्रुत्वोवाच मुनीन्द्रकः॥ 24॥

तब उन्हें पुनः उनके कनिष्ठपुत्र अपराजित ने प्रश्न प्रारम्भ किए और विश्वकर्मा ने उनको सुनकर हे मुनीन्द्रक! पुनः उत्तर देने आरम्भ किए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
विश्वकर्मावताराधिकारो नाम द्वात्रिंशत्तमं सूत्रम्॥ 32॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में विश्वकर्मा
अवतार नामक बत्तीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 32॥

---

1. यहाँ सम्भवतः 'विष्णुपुराण' की ओर सङ्केत है। पराशरकृत इस पुराण में कहा गया है कि महाराज पृथु अपरा आजगव नामक दिव्य धनुष और दिव्य बाण लेकर क्रुद्ध होते हुए पृथ्वी के पीछे दौड़े। तब भय से व्याकुल होकर पृथ्वी गौ का रूप धारण कर भागी और ब्रह्मलोकादि में पहुँची— ततस्तु नृपतिर्दिव्यमादायाजगवं धनुः। शरांश्च दिव्यान्कुपितः सोन्वधावद्वसुन्धराम्॥ ततो ननाश त्वरिता गौर्भूत्वा च वसुन्धरा। सा लोकान्ब्रह्मलोकादीनान् सन्त्रासादगमन्मही। यत्र यत्र ययौ देवी सा तदा भूतधारिणी। तत्र तत्र तु सा वैन्यं ददृशेऽभ्युद्यतायुधम्॥ (विष्णु. 1, 13, 69-71)

पृथुपृथिवीसंवादे भूर्लोके विश्वकर्मागमनं
त्रयस्त्रिंशं सूत्रम् ॥ 33 ॥

विश्वकर्मोवाच —

श्रृणु वत्स महाप्राज्ञं संवादं च पृथोः क्षितेः।
जम्बूद्वीपे पृथो राज्यमेकच्छत्रं समस्तकम् ॥ 1 ॥
तेनावलोकिता चैव समुद्रान्ता च मेदिनी।
पर्वतैः स्थलजैः सर्वैः सूत्रारम्भे समीकृता ॥ 2 ॥
रसवा सर्वबीजानि ह्यात्मन्येव धृतानि च।
प्रजाश्च क्लेशितास्तस्माद् गृहीतात्मेच्छया तु सा ॥ 3 ॥
तदुच्छेदे समारब्धे निःसृता सा भयातुरा।
ततः पृथ्वी भयोद्विग्ना पृथोश्च पृथिवीपतेः ॥ 4 ॥

विश्वकर्मा बोले — हे महाप्रज्ञ बुद्धिमान वत्स! पृथुराज का संवाद सुनो। समस्त जम्बूद्वीप पर पृथुराजा का एकछत्र सार्वभौमिक राज था। उनकी देखी गई समस्त भूमि को समुद्रान्त तक पर्वतों-पहाड़ियों की उबड़-खाबड़ स्थिति को सूत्रता, समतलता, समान सतह की बना दी गई थी (ताकि वहाँ कृषि-कार्य सरलता से हो सके)।[1] उस धरा पर सब प्रकार के बीजों को स्वयं अपने हाथ में लेकर प्रजा के क्लेश निवारणार्थ उन्होंने पृथ्वी को अपनी इच्छा के वशीभूत कर उसको इकसार करने को प्रवृत्त हुए तो वह पृथ्वी निःश्वास छोड़ते हुए भयातुर होकर और भय से उद्विग्न होकर पृथुराजा के पास पहुँची।

पृथ्वी उवाच —

तथागताऽब्रवीत्तत्र यत्र तौ परमेश्वरौ।
रक्ष रक्ष महाभूत त्वमेव शरणं प्रभो ॥ 5 ॥

पास आकर पृथ्वी बोली— आप मेरे परमेश्वर हो, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। हे प्रभु! आप ही मेरे लिए उपयुक्त शरण स्थल हो।

---

1. विष्णुपुराण में कहा गया है कि पृथु ने अपने धनुष की कोटि से सैकड़ों-हजारों पर्वतों को उखाड़ा व उन्हें एक ही स्थान पर इकट्ठा कर दिया। इससे पूर्व पृथ्वी के समतल न होने से पुर और ग्राम आदि का कोई नियमित विभाग नहीं था। उस समय अन्न, गोरक्षा, कृषि और व्यापार का कोई क्रम नहीं था। यह सब वेनपुत्र पृथु के समय से ही आरम्भ हुआ है— तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्रशः। धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः ॥ न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले। प्रविभागः पुराणां वा ग्रामाणां वा पुराऽभवत् ॥ न सस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक्पथः। वैन्यात्प्रभृति मैत्रेय सर्वस्यैतस्य सम्भवः ॥ (विष्णु. 1, 13, 82-84)

पृष्ठतश्च ततः प्राप्तः पृथुर्बाणधनुर्धरः।
ब्रह्मणश्चाग्रतः स्थित्वा धनुर्बाणौ निवेदितौ॥ 6॥
भूराज्यं च समस्तं च ह्यार्पितं ते हितैषिणः।
अस्माभिश्च परित्यक्ता सम्प्राप्ता चाऽत्र मेदिनी॥ 7॥
धनुर्बाणौ स्वर्पयित्वा पृथुस्त्वं पृथिविपतिः।
मा भीस्त्वं वत्स राजेन्द्र राज्यं च तव मेदिनी॥ 8॥

राजा पृथ्वी के पीछे (आजगव नामक) धनुष-बाण लिए आ रहे थे परन्तु उन्होंने ब्रह्माजी को आगे खड़ा हुए देखा तो अपने धनुर्बाण ब्रह्मा को समर्पित कर दिए तब उन्होंने पृथुराजा से कहा कि तुम्हारे हितैषी होकर ही तो समस्त भू राज्य को हमने परित्याग करके तुम्हें अर्पित कर दिया था। इसी कारण यह मेदिनी तुम्हें आज तुम्हें प्राप्त हुई है। इसलिए हे पृथुराजा, तुम धनुष-बाण को समर्पित करके भयभीत मत होना क्योंकि हे वत्स! राजेन्द्र पृथु अभी भी तेरा यह राज्य और तेरी ये पृथ्वी तेरी ही है।

धरित्री कम्पिता तत्र ब्रह्मा प्रोवाच सान्त्वयन्।
मा भीर्धरे च पुत्री त्वं ज्ञातं कष्टं निवेदितम्॥ 9॥
पृथो शृणु त्वं राजेन्द्र स्वयं रुद्रस्तु विश्वकृत्।
करिष्यति द्वयोर्योग्यं धात्री स्यादमरावती॥ 10॥

इस पर ब्रह्मा ने धरती को कम्पायमान देखकर उसे ढाढ़स बंधाते हुए कहा कि हे पुत्री धरा! डरो मत। तुम्हें जो भी कष्ट हो, वह पूरी तक मुझसे कहो। हे राजेन्द्र पृथु! तुम सुनो कि स्वयं रुद्रावतार विश्वकृत विश्वकर्माजी तुम्हारे और पृथ्वी के दोनों के बीच का निस्तारण बड़ी चतुराई के साथ करवा देंगे जिससे तुम्हारी यह धरती अमरावती (इन्द्रपुरी) के समान हो जाएगी।

त्वत्पार्श्वे पुत्रि बीजानि तिष्ठन्त्वाकल्पमेव च।
विषया रक्षणीयाश्च विश्वेश्वर तथा त्वया॥ 11॥
पालनीयावुभौ त्वेवं पृथू राजा च मेदिनी।
विश्वज्ञ हस्तकर्तस्त्वं श्रियमाधत्स्व चेतयोः॥ 12॥

इसके बाद, उन्होंने धरती को सम्बोधित करते हुए उसे आश्वस्त किया कि हे पुत्री! तेरे पास रखे गए समस्त बीज कल्पों तक विद्यमान रहेंगे।[1] इसलिए ये कृषि

---

1. अराजकता की स्थिति में पृथ्वी ने समस्त ओषधियों, बीजों को अपने में लीन कर लिया था, ऐसे में प्रजा क्षीणकाय हो गई— अराजके नृपश्रेष्ठ धरित्या सकलौषधीः। ग्रस्तास्ततः क्षयं यान्ति प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वर। त्वन्नो वृतिप्रदो धात्रा प्रजापालो निरूपितः। देहि नः क्षुत्परीतानां प्रजानां जीवनौषधीः॥ (विष्णु. 1, 13, 67-68)

के समस्त विषय विश्वेश्वर विश्वकर्मा तथा तुम्हारे द्वारा भी रक्षणीय है। पृथ्वीपति पृथुराजा और मेदिनी पृथ्वी तुम दोनों को यह मेरा आदेश पालनीय होना चाहिए जिससे कि विश्वज्ञ विश्वकर्मा के हाथ से किए गए तुम दोनों के कल्याण कार्य को चित्त लगाकर पूरा कर सको। इसलिए तुम दोनों ही मिलकर विश्वकर्मा जगतपति को इस प्रकार स्थापित कर दो, यह कहते हुए ब्रह्माजी ने उन दोनों को हस्त मिलाप करवाकर परस्पर प्रतिबद्ध कर दिया।[1]

उभावेवं च स्थाप्येतां विश्वकर्मन् जगत्पते।
ब्रह्मणे च तथोभाभ्यां करयुग्मे च योजिते॥ 13॥
विश्वकर्मा समुत्थाय चतुर्भिर्मानसैः सुतैः।
संस्थितः पुष्पविमाने पृथु धरे च मानसे ?॥ 14॥
जयो विजय आख्याताः सिद्धार्थस्त्वपराजितः।
ततो हिमवतः पृष्ठे भूर्लोके तु समागताः॥ 15॥

इसके साथ ही विश्वकर्मा को भी अपने चारों मानस पुत्रों के साथ उठने का कहकर पुष्पक विमान में राजा पृथु, धरा व मानस पुत्रों को उसमें बिठाया जिससे वे

1. समराङ्गणसूत्रधार में आया है कि ब्रह्मा ने पृथ्वी को अभयदान देते हुए पृथु से कहा कि यह पृथ्वी तुम्हारे द्वारा विधिपूर्वक पालन किए जाने पर ही उपायों के सहारे से धान्यादि से तुम्हारी भोग्या बनेगी और जो अभीष्ट स्थानादि निवेश का कार्य है, उसको त्रिदशाचार्य, सर्वसिद्धि प्रवर्त्तक, प्रभासवसु के पुत्र, बृहस्पति के भानजे, सम्पूर्ण विश्व में महाप्राज्ञ विश्वकर्मा महाराज सम्पादित करेंगे— अथैकदा जगज्जन्महेतुमम्बुरुहासनम्। पृथ्वी पृथुभभ्रान्ता चकिताक्षी समाययौ॥ प्रणम्य प्रणतिपह्वनिखिलत्रिदशेश्वरम्। सगद्गदमुवाचेति भूतधात्री पितामहम्॥ भगवन्नहंमेतेन पृथुना पृथुतेजसा। उप (द्र? द्रु) ता त्वां शरणं प्राप्ता त्रायस्व मां ततः॥ वदन्त्यामिति मेदिन्यामाविरासीदथो पृथुः। संरम्भमुक्तहृदयो ब्रह्माणं प्रणनाम च॥ जगादैनमथ स्निग्धध्वनिगम्भीरया गिरा। कुर्वंस्तद्यानहंसानां पयोदध्वनिशङ्कितम्॥ त्वयास्मि जगतां नाथ जगतोऽधिपतिः कृतः। स्थापितानि च भूतानि सर्वाण्यपि वशे मम॥ तेष्वियं मम विश्वेश कदाचिद् वशवर्तिमी। समीकरोमि पाषाणजालान्यस्याः किलाधुना॥ व्यस्तानि धनुषा तावद् गौर्भूत्वेयं पलायिता। दोग्धुकामोऽहमप्येनां चिरमन्वगमं महीम्॥ यत्रक्वापि प्रयात्येषा तत्र मामेव पश्यति। अपश्यन्त्यन्यत्रत्राणमदुग्धा त्वामुपस्थिता॥ अस्यां वर्णाश्रमस्थानविभागश्च विधास्यते। इयं च दुर्गमानेकक्षोणीधर कुलाकुला॥ विधास्येऽस्यां कथं त्वेतदिति मे शङ्कितं मनः। पृथुनेत्यथ विज्ञप्तो भगवानब्जसम्भवः॥ उवाच बोधयन्नेनं कृत्वा भूमिं च निर्भयाम्। इयं मही महीपाल विधिवत् पालिता सती॥ सस्यैरुत्पाद्य निष्पन्नैस्तव भोग्या भविष्यति। यच्च ते स्यादभिप्रेतं स्थानादिविनिवेशनम्॥ तदेष त्रिदशाचार्यः सर्वसिद्धिप्रवर्तकः। सुतः प्रभासस्य विभोः स्वस्त्रीयश्च बृहस्पतेः॥ विश्वाभिसायिधीः सर्वं विश्वकर्मा करिष्यति। राजन्नसौ महेन्द्रस्य विदधावमरावतीम्॥ अन्या अप्यमुना रम्याः पुर्यो लोकभृतां कृताः। त्वया क्षेत्रीकृतां मूर्त्तिं द्दष्ट्वा साद्रिदुमामसौ॥ सन्निवेशान् पुरग्रामनगराणां विधास्यति। तद् गच्छ वत्स लोकानामितस्त्वं हितकाम्या॥ भयोज्झिता त्वमप्युर्वि पृथोः प्रियकरी भव। काले स्मृतः स्मृतः पुण्यो राज्ञः प्रियचिकीर्षया॥ इत्युक्त्वा गमनमुपेयुषि प्रजेशे स्वं स्थानं क्षितिभुजि चाश्रिते मुदोर्व्याम्। प्रालेयावनिभृतमाजगाम खेलत्सिद्धस्त्रीपरिगतमाशु विश्वकर्मा॥ (समराङ्गण. 1, 6-24)

जय, विजय, सिद्धार्थ और अपराजित नाम से आख्यात मानस पुत्र हिमालय के पार्श्व में भूलोक में आ गए।

पृथिवी प्रेषिता स्थाने सम्बोध्य भूतधारिणि।
विना कष्टं त्वया ग्राह्यं कारयिष्ये **तु निश्चलाम्॥ 16॥**

इसके बाद, पृथ्वी को उस प्रेषित स्थान में सम्बोधित किया कि हे पृथ्वी! तुम प्राणिमात्र को धारण करने वाली हो, यह बात तुम्हें बिना किसी कष्ट के ग्राह्य होनी चाहिए अर्थात् तुम्हें स्वीकार लेनी चाहिए इसका तुम निश्चलमना होकर पालन करोगी।

नृपश्च प्रेषितः स्थाने पृथुः सम्बोधितस्तथा।
यथामरावती **चैव त्वदर्थे मेदिनी कृता॥ 17॥**
पृथो चागम्य स्वस्थाने यावत्त्वं पालयेर्महीम्।
निर्जलान् सजलान् देशांस्तावत्त्वमवलोकय॥ 18॥
पुष्पकेऽस्माकमारुह्य मेरुमावृत्य दक्षिणम्।
आलोकय भूतधात्रीमासमुद्रान्तमेदिनी॥ 19॥

राजा पृथु को भी प्रेषित स्थान पर पहुँचने पर ब्रह्मा ने सम्बोधित करते हुए कहा कि हे पृथुराजा! तुम्हारे लिए ही आज हमने इस मेदिनी को अमरावती के समान बना दिया है इसलिए हे पृथु अब तुम स्वस्थान को जाओ और जब तक तुम इस पृथ्वी का पालन करते रहेगो, तब तक तुम पाओगे कि तुम्हारे जो स्थान निर्जल थे, वे सजल हो गए हैं। अब तुम हम सब लोगों को पुष्पक विमान पर आरूढ़कर मेरुपर्वत के चारों ओर घूमाकर दक्षिण की ओर ले चलो और इस समस्त पृथ्वी को, जो कि प्राणीमात्र की माता के रूप में आसमुद्रान्त विस्तृत है, देख सको।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
पृथुपृथिवीसंवादे विश्वकर्मभूर्लोकागमनाधिकारो नाम त्रयस्त्रिंशत्तमं सूत्रम्॥ 33॥
इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में पृथु-पृथ्वी संवाद में विश्वकर्मा के भूलोकगमन अधिकार नामक तैंतीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 33॥

जयविजयसिद्धार्थपृच्छा नाम चतुस्त्रिंशं सूत्रम्॥ 34॥

अपराजित उवाच —

जयपृच्छागमश्चैव **कस्मिन् स्थाने जगत्पते।**
विजयपृच्छागमश्च कुत्रस्थाने **बभूव च॥ 1॥**
सिद्धार्थपृच्छागमश्च **किं स्थाने च तथाभवत्।**

एवमस्मत् प्रसादं तु कुरु शास्त्रार्थकौशल॥ 2॥

(शिल्पादि आगम शास्त्रों की उत्पत्ति के प्रसङ्ग में कहा गया है) अपराजित बोले— हे जगत्पते! जयपृच्छागम किस स्थान पर और विजयपृच्छागम किस स्थान पर हुए। इसी प्रकार सिद्धार्थपृच्छागम भी किस स्थान पर हुआ। इस विषय में हे शास्त्रार्थ कौशल गुरुदेव! हमें आप कृपाकर बताइए।

विश्वकर्मोवाच —

ततो हिमवतः पृष्ठे ब्रह्मालोकात्समागतौ।
शृङ्गाकुले घवनाकीर्णे हिमवन्तश्रियोद्भवे॥ 3॥
नैकगुहाश्रमरम्ये गन्धर्वगणसेविते।
सिद्धामरकुलाकीर्णे क्रीडामणिगुहागृहे॥ 4॥
जयः पृच्छति तत्रेदं वास्तुविद्योद्भवं तदा।
तदिदं कथनीयं च शृणु संवादमुत्तमम्॥ 5॥

उस समय हिमालय पर्वत की पीठ पर, पार्श्वभाग पर ब्रह्मलोक से आए हुए (देवादि से), मेघों के समूह से आच्छादित शिखरों के समूहों की शोभा से हिमालय पर्वत की श्रीवृद्धि हो रही थी। वहाँ पर गन्धर्वगणों से सेवित अनेकों रम्य गुहाश्रयों का समूह था जिनमें सिद्धगण, देवतागणों के कुलों के समूह उन मणिगुहागृहों में क्रीड़ा कर रहे थे। ऐसे में वहाँ जय ने वास्तुविद्या के उद्भव के विषय में प्रश्न किया जो यहाँ कहना प्रासङ्गिक है। इसलिए इस संवाद को सम्यक् प्रकार से सुनो।

जयपृच्छादीनां परिचयमाह—

चतुर्विंशति$_{24}$साहस्त्रसङ्ख्यग्रन्थस्तथा कृतः।
लिङ्गपीठार्चानिलयवेश्मराजवेश्मादिकम्॥ 6॥
पुरप्राकारपरिखाप्रतोलीमार्गगोपुरम्।
अन्योपस्करजातानि वास्तुवेदोद्भवानि च॥ 7॥
जयपृच्छादिशास्त्रं च विश्वकर्मप्रभाषितम्।
जयस्य कथितं चैतदू भक्तिवात्सल्यतः पुरा॥ 8॥

(उस ग्रन्थ के विषय में कहा गया है कि) उक्त वास्तुविषयक ग्रन्थ की ग्रन्थ संख्या 24 हजार थी। उसमें लिङ्ग, पीठ, प्रतिमा या अर्च्चा, निलय, वेश्म, राजवेश्मादि, पुर, प्राकार, परिक्खा, प्रतोली, मार्ग, गोपुर और भी अनेक उपकरण सामग्री जो कि वास्तुवेद के उद्भव में आवश्यक होती है, वे सब जयपृच्छादि शास्त्र

में भगवान् विश्वकर्मा द्वारा कही गई है।[1] यह विषय-वर्णन पूर्वकाल में जय के भक्तिवात्सल्य के कारण कहा गया था।

हेमकूटे महाशैले शतयोजनमुच्छ्रिते।
विरूपाख्याश्रमे **रम्ये** विचित्रशिखरोद्भवे ॥ 9 ॥
नानाद्रुमलताकीर्णे रत्नधातूपशोभिते।
सुरविद्याधरारम्ये गन्धर्वगणसेविते ॥ 10 ॥
विजयेन ततः पृष्टो वत्साहं भक्तवत्सलः।
श्लोका विजयपृच्छायां सहस्राणि **च द्वादश** 12 ॥ 11 ॥

हेमकूट महापर्वत पर, जो कि सौ योजन की ऊँचाई वाला है, उस पर विचित्र मनोहर शिखरों के बीच बना हुआ विरूपाख्य नामक आश्रम बड़ा ही सुन्दर है। वहाँ नाना वृक्ष, लतादि की भरमार है और तरह-तरह के रत्नों, धातुओं से शोभायमान है। वहाँ विजय ने भक्तवत्सल भगवान् विश्वकर्मा से प्रश्न किया कि हे प्रभु! आपका वत्स हूँ। आप मुझे उपदेश करे। इस पर विश्वकर्मा ने जो उपदेश किया, उससे विजयपृच्छा शास्त्र निर्मित हुआ इसमें बारह हजार श्लोक हैं।

ततघनमुरजादिवादित्रैर्विविधैस्तथा।
लास्यहास्यताण्डवाद्यैस्तालमूलसमुद्भवाः ॥ [illegible] ॥
सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः।
ताना एकोनपञ्चाशदित्येतत्स्वरमण्डलम् ॥ 13 ॥
रागाः षट् समुत्पन्नाः षट्त्रिंशच्चैव तत्स्त्रिम्।
एतत्सर्वं विजयस्य कथितं भरताभिधम् ॥ 14 ॥

---

1. इस ग्रन्थ का खण्डित पाठ वर्तमान में उपलब्ध है। हेमाद्रि कृत चतुर्वर्गचिन्तामणि में जयोपदिष्ट वास्तु, मूर्ति विषयक श्लोक उपलब्ध होते हैं। जयपृच्छा ग्रन्थ का सम्पादन प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा ने किया है किन्तु वह पूर्ण नहीं है। लगभग समस्त श्लोक भ्रष्ट हैं। 'देवतामूर्तिप्रकरणं' भी जय-विश्वकर्मा संवाद के रूप में लिखा गया है जिसका सम्पादन डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' ने किया है। इससे यह सङ्केत मिलता है कि यह ग्रन्थ जयपृच्छा के ही मूर्ति विषयक अधिकार या रूपाधिकार का अङ्ग है। 16वीं सदी में इसके पुनर्सम्पादन का श्रेय चित्तौड़गढ़-कुम्भलगढ़ के सूत्रधार मण्डन के पिता सूत्रधार खेता को दिया जाता है क्योंकि इसमें मस्जिद (रहमानप्रासाद) निर्माण तक के निर्देश मिलते हैं। जयपृच्छा नाम से ही एक अन्य पाठ भी मिलता है, इसका प्रचलन मालवा से हुआ माना जाता है। इसका खण्डित पाठ मिलता है। धाराधिप भोजराज के सूत्रधार मल्लकृत 'प्रमाणमञ्जरी' में उक्त ग्रन्थ का सङ्केत आया है— अथोच्यते सारतरस्य सारं काष्ठोदयालिन्दसमुद्भवं तम्। मानं समस्तं जयवीक्षदृष्टं सुशिल्पिकं सर्वजनोपकृत्यम् ॥ (प्रमाणमञ्जरी 2) चित्तौड़गढ़ के महाराणा कुम्भा (1433-68 ई.) ने कीर्तिस्तम्भ की एक शिला पर स्तम्भराज को उत्कीर्ण करवाया था जिसमें जयकृत ग्रन्थ का उल्लेख है— स्तम्भस्य लक्ष्मानुते नृपालः श्रीकुम्भकर्णे जयभाषितेन ॥ (डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' : प्रासादमण्डनम् की भूमिका)

(इस शास्त्र का सम्बन्ध सङ्गीत विद्या से है जिसमें) तत्, घन, मुरजादि विविध प्रकार के वाद्यों, नृत्य सम्बन्धी लास्य, हास्य, ताण्डव आदि तालमूल से उत्पन्न होने वाले सप्तस्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना, उनचास तान व स्वरमण्डल, छह राग, छत्तीस रागिनियों का वर्णन किया गया है। यह वर्णन विजय के प्रति 'भरत' के नाम से कहा गया था।[1]

मन्दरस्थं सुखासीनं सिद्धार्थः पृष्टवान् पुरा।
तालुकण्ठस्वरशास्त्र गणितं ज्योतिषं तथा॥ 15॥
निघण्टुश्च व्याकरणं छन्दोलङ्कारसंयुतम्।
मनुसाध्यसमुद्भूतं संसारपाशछेदनम्॥ 16॥
मुक्तिमार्गरहस्यं च कथितं भक्तवत्सलैः।
तुर्योऽयं मानसः पुत्रः पृच्छति त्वराजितः॥ 17॥

पूर्वकाल में मन्दर पर्वत पर सुखासन पर बैठे हुए सिद्धार्थ ने प्रश्न किया था। इस पर जिस ग्रन्थ का कथन हुआ[2] उसमें तालुकण्ठ से सम्बद्ध स्वरशास्त्र, गणितशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, निघण्टु-शब्दकोष, व्याकरण, छन्दालङ्कार भी रहे हैं। यह ग्रन्थ (सिद्धार्थ पृच्छा) मनुओं, साध्यों द्वारा संसार के सम्बन्धों को काटने (संसारपाश के छेदन) के प्रयोजन से रचा गया। इनमें इन भक्तिवत्सल भक्तों पर कृपा करने वाले महापुरुषों ने मुक्तिमार्ग का रहस्य भी कहकर समझाया है। अब चौथा मानसपुत्र अपराजित यह प्रश्न करता है।

ग्रन्थोत्पत्तिवर्णनं, अपराजित उवाच —

अस्मच्चिते प्रबोद्धव्यं जयाय पृच्छते च यत्।
विजयश्च सिद्धार्थश्च पृच्छायां यत्तथैतयोः॥ 18॥
भवान् पुष्पकमारुह्य प्रोक्तवान् यदनुग्रहात्।
पूर्वं सर्वं प्रसादेन कथयस्व जगत्पते॥ 19॥

अपराजित ने कहा— आपने कृपाकर मेरे चित्त को प्रबोध किया है। आपने पूर्व में कथित जयपृच्छा और उसी प्रकार विजयपृच्छा तथा सिद्धार्थपृच्छा के विषय

---

1. विजयपृच्छा नामक यह मूल ग्रन्थ वर्तमान में अनुपलब्ध हैं किन्तु नाट्यशास्त्र व उसकी वृत्ति, विष्णुधर्मोत्तर पुराणोक्त नृत्तसूत्राध्याय, सङ्गीतरत्नाकर, सङ्गीतराज, सङ्गीतमकरन्द आदि में उक्त समस्त विषय मिलते हैं।
2. सिद्धार्थपृच्छा संज्ञक ग्रन्थ अद्यावधि अनुपलब्ध, असूचित है। ये अधिकांश विषय नारदपुराण के पूर्वभाग में प्रकीर्णित हैं और अग्निपुराण में भी आए हैं। हेमाद्रि के व्रतखण्ड में सिद्धार्थपृच्छा के श्लोक मूर्तिलक्षणों के प्रसंग में उद्धृत हैं।

में भी मुझे समझाया है। अब हे जगत्पते! आप पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो जाएँ और मेरे पर अनुग्रह कर जो कुछ आपने पूर्व में कहा है, उस सब विषयों को मेरे प्रति यहाँ (इस ग्रन्थ के प्रयोजन से) पुनः कृपाकर कहें।[1]

पुष्पकं तु समारुह्य मेरुमार्गप्रदक्षिणम्।
अवालोकि तथा चैषा समुद्रान्ता च मेदिनी॥ 20॥

इस पर पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर मेरुपर्वत के मार्ग से प्रदक्षिणा करते हुए समस्त पृथ्वी को समुद्रपर्यन्त देखते हुए विश्वकर्मा आगे बढ़े।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां जयविजयसिद्धार्थपृच्छाधिकारो नाम चतुस्त्रिंशं सूत्रम्॥ 34॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में जय-विजय-सिद्धार्थपृच्छा अधिकार नामक चौंतीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 34॥

एकविंशतिस्वर्गा नाम पञ्चत्रिंशं सूत्रम्॥ 35॥

विश्वकर्मोवाच —

पुष्पकं तु समारुह्य मेरुमाश्रित्य दक्षिणम्।
विलोकिता भूतधात्री समुंद्रान्ता च मेदिनी॥ 1॥
अथातो भूतधात्रीणां प्रमाणं च प्रवक्ष्यते।
विष्कम्भः परिधिश्चेव बाहुल्यं (क्षेत्रणां) शृणु॥ 2॥

पुष्पक विमान पर आरुढ़ हो, सुमेरु पर्वत के आश्रय से प्रदक्षिणा करते हुए और समुद्रान्त तक के प्राणियों को धारण करने वाली धरती को देखते हुए भगवान् विश्वकर्मा ने कहा कि अब मैं प्राणीमात्र को धारण करने वाली इस पृथ्वी का प्रमाण बताता हूँ। तुम इसके विष्कम्भ या व्यास, परिधि और क्षेत्र के बाहुल्य के बारे में सुनो।

पृथ्वीप्रमाणमाह —

योजनानि तु विष्कम्भो दशकोट्यः प्रकीर्तितः।
लक्षस्याग्रे सहस्त्राणामेकोनाविंशतिस्तथा॥ 3॥

---

1. इस प्रकार इस ग्रन्थ में जयपृच्छा, विजयपृच्छा, सिद्धार्थपृच्छा के समस्त विषयों का वर्णन होना सिद्ध होता है। विमानारूढ़ होकर विषय वर्णन करने से यहाँ आशय ग्रन्थकार के यायावर होकर ग्रन्थ विषयों की संग्राहानुभूति भी सम्भव है। वैसे ग्रन्थकार ने एकाधिक देशों की यात्रा की और वहाँ के भूगोल, परम्पराओं को स्वयं जाना व तदोपरान्त ही उन्हें लिखित रूप दिया।

विष्कम्भे च त्रिगुणिते तदश्वांशसमन्विते।

परिधिश्च समस्तोऽसौ समुद्रान्तक्षितेः स्मृतः ॥ 4 ॥

एकविंशतिकोटीनां सप्तलक्षाणि चाग्रतः।

ततः परं सहस्राणि सङ्ख्यया सप्तविंशतिः ॥ 5 ॥

एवं समस्तपरिधिर्वृत्ताकारा च मेदिनी।

त्रैलोक्यमध्ये चैवं सा तलाद्याश्चैव बाह्यतः ॥ 6 ॥

इसका व्यास दस करोड़ योजनों का बताया गया है और एक लाख उन्नीस हजार विष्कम्भ के तिगुने तथा उसके सप्तांश युक्त परिधि की समुद्रान्ता पृथ्वी की कही गई है अर्थात् विष्कम्भ से $3^{1/7}$ परिधि है। इक्कीस करोड़, सात लाख, एक हजार- इस प्रकार समस्त परिधियुक्त वृत्ताकार में यह पृथ्वी है जो तीनों ही लोकों के मध्य में तलादि पातालों के बाहर है।

स्वर्गपातालनामादीनां —

एकविंशतिस्वर्गाश्च मेरुमावृत्य दक्षिणम्।

परितश्चार्णवाः सप्त रचिताश्च समस्तकाः ॥ 7 ॥

तलश्च वितलश्चैव सुतलो नितलस्तथा।

तलातलो रसातलः पातालः सप्तमस्तथा ॥ 8 ॥

इस प्रकार मेरु को आवृत्त करते हुए दक्षिण की ओर इक्कीस स्वर्ग है जिनके बाद में सात महासागर रचे गए हैं। अब पाताललोक के नाम सुनो जो इस प्रकार हैं— (1.) तल, (2.) वितल, (3.) सुतल, (4.) नितल, (5.) तलातल, (6.) रसातल और सातवाँ (7.) पाताल।

आदौ मेरुः कमोद्भूताः पात्रे पात्रमिवापरम्।

एते च सप्तपातालाः सृष्टिकालसमुद्भवाः ॥ 9 ॥

उद्भूतश्चादितो मेरुर्द्विसहस्रैश्च योजनैः।

द्विद्विसहस्रान्ते पुनः पातालाः सप्तधोदिताः ॥ 10 ॥

आदि में तो यह मेरु उत्पन्न हुआ और बाद के क्रम में जैसे घड़े-पर-घड़े रखे जाते हैं, वैसे ही एक दूसरे पर ये सातों पाताल भी क्रमानुसार सृष्टिकाल में उत्पन्न हुए। आदि में मेरु पर्वत पृथ्वी में से दो हजार योजन ऊँचा ऊठा और इसी प्रकार दो-दो हजार योजनों के अन्तर पर उसमें सातों पाताल नीचे की ओर से उठते चले गए।

अधस्तात्तु तथा द्व्यष्टसहस्त्रर्योजनैर्गतः।
मेरुर्वै चतुरशीतिसहस्त्रयोजनोच्छ्रितः॥ 11॥
पृथगेकैकपाताले नवनागकुलानि च।
नवकानि सप्त चेत्थं त्रिषष्टिः$_{63}$ कुलपन्नगाः॥ 12॥

इन नीचे वाले पातालों में सोलह हजार योजन तक जाने पर मेरु चौरासी हजार योजन ऊँचा उठा। इन पातालों में भी एक-एक पृथक् पाताल में नौ नागों के कुल कहे गए हैं और इनके भी इसी तरह सातों पातालों में 9 × 7 के हिसाब से नागों के कुल 63 कुल होते हैं।

नागकुलनामश्च —

प्रोक्तानि पृथगेवं च नवनागकुलानि च।
उरगाः सप्तपातालसंस्थिताः सप्त$_{7}$ वै क्रमात्॥ 13॥
पद्मः कर्कोटकश्चैव पुण्डरीकोऽथ तक्षकः।
आनकः शङ्खचूडश्च वासुकिः सप्तमस्तथा॥ 14॥

इस प्रकार पृथक् रूप में नौ नागकुल कहे गए हैं। सात पातालों में संस्थित सात उरग या नागों के क्रमानुसार नाम हैं— (1.) पद्म, (2.) कर्कोटक, (3.) पुण्डरिक, (4.) तक्षक, (5.) आनक, (6.) शङ्खचूड और सातवाँ (7.) वासुकि।

सप्तपातालाधिराजा महोत्कटमहाबलाः।
रौद्राश्च विद्रुताः सर्वे ह्यगम्या वीरविक्रमाः॥ 15॥

उक्त सभी सातों ही पातालों के अधिराज है और बड़े ही विकट, महाबलवान हैं। ये सभी बड़े भयानक, बड़े तीव्रगामी और इतने वीर विक्रम हैं कि इनको कोई पार नहीं पा सकता।

तले तु पद्मको राजा वितले स्यात्कर्कोटकः।
सुतले पुण्डरीकश्च नितले स्यात्तु तक्षकः॥ 16॥
तलातले आनकश्च शङ्खचूडो रसातले।
वासुकिर्नागराजन्द्रः पाताले सर्वतोऽधिपः॥ 17॥
एकैके नवकुलकास्त्रिषष्टिः$_{63}$ कुलपन्नगाः।

तल का राजा पद्मक$_{1}$ है, वितल का राजा कर्कोटक$_{2}$, सुतल का पुण्डरिक$_{3}$, नितल का तक्षक$_{4}$, तलातल का आनक$_{5}$, रसातल का शङ्खचूड$_{6}$ तथा वासुकि$_{7}$ नाग राजेन्द्र पाताल में सबके अधिपति कहे गए हैं। इस प्रकार एक-एक नौकुलों के तिरेसठ नागकुल होते हैं।

धरत्र्यां द्वीपनामानि —

सप्तपातालतश्चोर्ध्वं द्वीपाः स्युर्द्वीपतः परे॥ 18॥

जम्बूः प्लक्षः कुशः क्रौञ्चः शाकः शाल्मलिकस्तथा।

सप्तमः पुष्कराख्यश्च सप्तद्वीपा तु मेदिनी॥ 19॥

इन सात पातालों के ऊपर कई द्वीप हैं और इन द्वीपों के ऊपर (1.) जम्बू, (2.) प्लक्ष, (3.) कुश, (4.) क्रौञ्च, (5.) शाक, (6.) शाल्मलि तथा (7.) पुष्कर द्वीप है। इसी प्रकार यह पृथ्वी सप्तद्वीपा कही गई है।

नृपाभिधानतः प्रोक्तं सप्तद्वीपाभिधानकम्।

पुष्कराख्यो महाराजा द्वीपे सप्तमकेऽधिपः॥ 20॥

गोमेदेशश्च गोमेदः शाल्मलिके च शाल्मलिः।

शाकस्तु शाकद्वीपेशः क्रौञ्चः क्रौञ्चाधिपस्तथा॥ 21॥

कुशेशस्तु कुशः प्रोक्ता महोत्कटो महाबलः।

अब इन सात द्वीपों के क्रमवार नृपों के नामों के विषय में कहता हूँ। सातवाँ द्वीप पुष्कर नाम का है जिसके अधिपति महाराज पुष्कर है। गोमेद द्वीप के राजा गोमेद, शाल्मलि द्वीप के शाल्मलि, शाक द्वीप के शाक और क्रौञ्च द्वीप के क्रौञ्च अधिपति है। कुशद्वीप का अधिपति कुश नाम से है जो बड़ा ही विकट और महाबलवान है।

महाविक्रमभूपालाः संस्थिता मेरुदक्षिणम्॥ 22॥

मेरुदक्षिणकुक्षौ च महाजम्बुतरूद्भवः।

यस्य नाम्ना तु विख्यातो जम्बुद्वीपः स उच्यते॥ 23॥

इस मेरु के दक्षिण कुक्षों में महापराक्रमी राजा बसे हुए हैं। मेरु के दक्षिण में एक महान् जम्बूतरु या जामुन का वृक्ष है। इसी के नाम से विख्यात् होने से इसको जम्बू द्वीप कहा जाता है (जैसा कि वायुपुराण में भी आया है)।

एकछत्रं पृथो राज्यं जम्बुद्वीपे प्रकीर्तितम्।

क्षीरार्णवमध्ये चेवं पृथुत्वं लक्षयोजनः॥ 24॥

इस जम्बू द्वीप का एक छत्र राजा पृथु के नाम से विख्यात है। यह जम्बू द्वीप क्षीरार्णव के बीच में एक लाख योजन के विस्तार वाला है।

समस्ताः समभूयास्तु प्रयुक्ता द्वीपसागराः।

अभिधानानि चैतेषां कथ्यन्ते त्वपराजित॥ 25॥

ये समस्त सातों ही द्वीप समान भाव से सागरों में फैले हुए हैं जिनके नाम हे अपराजित! अब मैं तुम्हें कहता हूँ।

सागरनामानि —

क्षारोदं चैव क्षीरोदं सागरौ दधिसर्पिषो: ।
मध्विक्षूदं तथा ख्यातं रसोदं सप्तमं तथा ॥ 26 ॥
सप्तैते द्वीपान्तरेषु स्थिता मेरुप्रदक्षिणम् ।
सप्तद्वीपार्णवाश्चैवं सृष्टिकाले समुद्भवाः ॥ 27 ॥

(1.) क्षारोद, (2.) क्षीरोद, (3.) दधि, (4.) सर्पि, (5.) मधु, (6.) इक्षु तथा (7.) रसोद— ये सात सागरों के नाम विख्यात हैं। ये सभी सातों द्वीपान्तरों पर मेरु के प्रदक्षिण क्रम में बने हुए सप्तद्वीपार्णव सृष्टिकाल में ही उत्पन्न हुए थे।

स्वर्गनामानि —

भुवर्लोकश्च स्वर्लोको महर्लोकस्तथा जनः ।
तपश्च सत्यलोकश्च ज्ञानलोकश्च सप्तमः ॥ 28 ॥
इत्येकविंशतिस्वर्गा$_{21}$ अधिरचित ? शम्भूद्भवाः ।

(अब सात स्वर्गों के नाम सुनो) इनमें पहला (1.) भुवर्लोक, (2.) स्वर्लोक, (3.) महर्लोक, (4.) जनलोक, (5.) तपलोक, (6.) सत्यलोक और (7.) ज्ञानलोक है। ये सब इक्कीस स्वर्ग विधिरचित है और स्वयंभू है, शम्भु के द्वारा उद्भूत हुए है।

सृष्टिकाले सुदृष्टाश्च स्वर्गाणामेकविंशतिः ॥ 29 ॥
पातालाश्च ब्रह्मभागे सप्तैवं तु सुसंस्थिताः ।
तदूर्ध्वे सप्त चाख्याता विष्णुभागे द्वीपार्णवाः ॥ 30 ॥

सृष्टिकाल से ही ये भली प्रकार से देखे गए इक्कीस स्वर्ग है। सातों पाताल भी ब्रह्मभाग में इसी प्रकार सुसंस्थित है। इनके ऊपर विख्यात सात द्वीपार्णव विष्णुभाग में स्थित हैं।

पुष्करोर्ध्वे भुवर्लोकः स्वर्लोकश्च तदूर्ध्वतः ।
तथा चैवनन्यलोकाः शम्भुभागे व्यवस्थिताः ॥ 31 ॥
बाह्यतः सप्तलोकानां शिवलोकस्तदूर्ध्वतः ।
इत्युच्छ्रिते महामेरो स्वर्गा एवं सुसंस्थिताः ॥ 32 ॥

पुष्कर के ऊपर ही भुवर्लोक है, इसके ऊपर स्वर्लोक है। इसी प्रकार अन्य सभी लोक शम्भुभाग में व्यवस्थित हैं। इन सात लोक के बाहर शिवलोक इनसे ऊपर है,

इससे भी ऊँचा महामेरु है जहाँ स्वर्ग इसी प्रकार सम्यक् प्रकार से स्थित है।

लोकाश्च सप्त चाख्याता मृत्युलोके द्वीपार्णवाः।
पातालाः सप्तधा चैव त्रैलोक्यमिति प्रोच्यते॥ 33॥
एकविंशतिस्त्रैलोक्ये स्थिताः स्वर्गा यथाक्रमम्।
ऊर्ध्वं चैव भवस्थानं पात्रे पात्रमिवापरम्॥ 34॥

सात लोक विख्यात् है। मृत्युलोक में द्वीपार्णवों में पाताल भी सात और इन सबको त्रैलोक्य कहते हैं। इन इक्कीस त्रिलोकों में स्वर्ग क्रमवार स्थित है। ये सभी भवस्थान से ऊपर की ओर ऊपरोपरि इसी प्रकार स्थित हैं जैसे कि कलशों पर कलश होते हैं।[1]

मध्ये च जम्बुद्वीपस्य प्रमाणमपि कथ्यते।
मेर्वाद्या मुख्यशैलाश्च क्षेत्राणि च समासतः॥ 35॥

इस जम्बू द्वीप के मध्य का प्रमाण भी कहता हूँ। मेरु से लेकर मुख्य-मुख्य पर्वतों और क्षेत्रों के बारे में भी मैं आगे संक्षेप से कहूँगा।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
मेकविंशतिस्वर्गाधिकारो नाम पञ्चत्रिंशत्तमं सूत्रम्॥ 35॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में इक्कीस स्वर्गाधिकार नामक पैंतीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 35॥

महापर्वतप्रमाण षट्त्रिंशं सूत्रम्॥ 36॥

विश्वकर्मोवाच —

जम्बूद्वीपप्रमाणं च विस्तारे लक्षयोजनैः।
तस्यान्ते वृत्तपरिधौ समस्तं च क्षीरार्णवम्॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले— जम्बूद्वीप का प्रमाणतः विस्तार एक लाख योजन का है। इसके अन्तमें चारों ओर वृत्त की परिधि रूप में समस्त क्षीरार्णव है।

क्षेत्राणां क्षेत्रमानं च पर्वताश्च मेघोपमाः।
महापर्वतोद्भवाश्चाप्रमाणा मानवर्जिताः॥ 2॥

---

1. यही वर्णन ग्रन्थ के चौथे व अन्य सूत्रों में भी आया है— सप्तोर्ध्वलोकाश्च ख्याता रुद्रभागसमुद्भवाः। स्वर्गश्च मर्त्यपातालौ स्वर्गाणां त्वेकविंशतिः॥ (अपराजित. 4, 5) अर्थात्— सात ऊर्ध्वलोक जो विख्यात हैं, उनको स्वयं भगवान रुद्र ने ही उत्पन्न किया। इससे हम पाते हैं कि स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताललोकादि स्वर्गों की संख्या इक्कीस है।

इसके क्षेत्रों का क्षेत्रमान तथा इसके पर्वत विशाल मेघों, बादलों जितने बड़े हैं जिनका प्रमाण और उद्भव का मान बताना अत्यन्त दुष्कर है अर्थात् इनका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता है।

जम्बूद्वीपस्य मध्ये तु मेरुश्च पर्वतो महान्।
स्थितौ मेरोः पूर्वतश्च मन्दरो गन्धमादनः॥ 3॥

इस जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित है महान मेरुपर्वत जिसके पूर्व की ओर मन्दर और गन्धमादन पर्वत है।

हिमवान् हेमकूटश्च महोशैलस्य दक्षिणे।
पश्चिमे पर्वतौ रम्यौ निषधो नील एव च॥ 4॥

इसी तरह हिमवान, हेमकूट नामक महापर्वत मेरु के दक्षिणी ओर है और मेरु के ही पश्चिम में बड़े सुन्दर निषध और नील पर्वत हैं।

श्वेतश्च शृङ्गवांश्चैव मेरोरुत्तरतः स्थितौ।
एते चाष्टकुला रम्या दिक्षु चैवं व्यवस्थिताः॥ 5॥

श्वेत और शृङ्गवान पर्वत मेरु के उत्तर में स्थित है। ये सभी पर्वतों के आठों ही कुल बड़े सुन्दर है और अपनी-अपनी दिशाओं में व्यवस्थित है।

देशे समुद्रापकण्ठे महाशैलाः पुरोभवाः।
उदयाद्रिर्मलाशैलः पूर्वायां च बलादिषु ?॥ 6॥

जम्बूद्वीप के समुद्रों के उपकण्ठ अर्थात् किनारे के प्रदेश में जो महान पर्वत पहले उत्पन्न हुए हैं, उनमें उदयाद्रि नामक जो महाशैल है, वह पूर्व दिशा की ओर विस्तृत है (चलादिषु ?)।

वारुण्यां तु महावृद्धस्त्रिकूटाख्यश्च दक्षिणे।
उत्तरे द्विपशैलाख्यः संस्थिताः स्युरनुक्रमैः॥ 7॥

जम्बूद्वीप की वारुणी दिशा में महावृद्ध और दक्षिणी दिशा में त्रिकूट पर्वत है तथा उत्तर में द्विपशैलाख्य अर्थात् हाथियों का कदली वन वाला पर्वत है। ये सब अनुक्रम में स्थित है अर्थात् दिशावार अवस्थित है।

द्व्यष्टसहस्त्रमध्यस्थः सप्तपातालतो भवः।
सपद्मकर्णकाकारैर्मेरुः काञ्चनकन्दरैः॥ 8॥

सोलह हजार के मध्य में सप्तपाताल से उत्पन्न पद्म के सहित कर्णिका दण्डी के आकार में मेरु पर्वत सोने की-सी कन्दरओं से युक्त है।

योजनैर्दशसाहस्त्रैः पृथुत्वं मेरुमस्तके।
द्वात्रिंशद्भिः सहस्त्रैश्च जम्बूद्वीपस्य मस्तके॥ 9॥

वह दस हजार योजन के विस्तार वाला, मोटाई लिए हुए मस्तक अर्थात् शिखर वाला है और यह जम्बूद्वीप के मस्तक पर बत्तीस हजार योजन में फैला हुआ है।

मन्दरो हेमकूटश्च निषधश्च श्वेताचलः।
भूदण्डवत्प्रमाणाश्च सहस्त्रयोजनोच्छ्रिताः॥ 10॥

इस जम्बूद्वीप में मन्दर, हेमकूट, निषध तथा श्वेताचल इस भूमि को नापने वाले दण्ड की भाँति है और प्रमाण में एक हजार योजन ऊँचाई के हैं।

हिमवान् शृङ्गवांश्चैव नीलो वै गन्धमादनः।
प्रमाणं योजनैः ख्यातं सार्धद्वयं समुच्छ्रितेः॥ 11॥

इसी प्रकार हिमवान, शृङ्गवान, नील और गन्धमादन भी प्रमाण में ढाई हजार योजन ऊँचे हैं।

मन्दरस्य तुलोदयाक्ष चतुराशी त्रिकूटो द्युतः ?।
महाविन्ध्योदयतुल्यः शैलोऽन्यस्त्रिकूटस्तथा॥ 12॥
उच्छ्रयो द्विगुणस्तारात् तदर्ध मध्यतुङ्गता।
एवं मानं च शैलानां कथितं त्वपराजित॥ 13॥

मन्दर के तुलोदयाक्ष, चतुराशी, त्रिकूट और द्यूत हैं जो महा विन्ध्योदय के समान है और अन्य पर्वत त्रिकूट तथा ऐसे अन्य ऊँचाई में उनसे दुगुने हैं और ऊँचाई में उनसे आधे हैं। वे मध्यम तुङ्ग अर्थात् मध्यम ऊँचाई के पर्वत है। हे अपराजित! इस प्रकार का मान मैंने इन पर्वतों का कहा है।

मन्दरो गन्धमादश्च याम्योत्तरे च दण्डवत्।
हिमवान् हेमकूटश्च पूर्वापरे स्थितौ तथा॥ 14॥

मन्दर, गन्धमादन याम्योत्तर दिशा में लम्बाई में दण्डवत फैले हुए हैं और हिमवान, हेमकूट पूर्वापर लम्बाई में दण्डवत स्थित है।

उत्तरे ? नीलनिषधौ श्वेतशृङ्गी पूर्वापरौ ?।
कुलाचलाश्च कर्णस्था विदिशोद्भवसागरैः ?॥ 15॥

उत्तर की ओर नील और निषध; श्वेत और शृङ्गी पूर्व व पश्चिम की ओर; कुलाचल और कर्ण विदिशोद्भव होकर सागर के किनारे पर स्थित है।

इत्यमनन्तर क्षेत्रसीमाविस्तारमाह —

क्षेत्रसीमा प्रमाणाख्यं मेरुमावृत्य दक्षिणैः।

शैलान्तरेषु क्षेत्राणि कथयामि समासतः ॥ 16 ॥

अब मैं क्षेत्र सीमाओं का प्रमाण मेरु के चारों ओर दक्षिण के पहाड़ों के अन्तर में पड़ने वाले क्षेत्रों आदि का संक्षेप में कहता हूँ।

उदयाद्रिश्च पूर्वे तु त्रिकूटः स्यात्तु दक्षिणे।
महाविन्ध्योऽपरे चैवं द्वीपशैलाः पूर्वोत्तरे ॥ 17 ॥

पूर्व की ओर जो उदयाद्रि है और दक्षिण की ओर त्रिकूट पर्वत है तथा महाविन्ध्यों परे भी द्वीपशैल पर्वत पूर्वोत्तर दिशा में है।

तेषामन्ते समुद्राश्च संस्थिताः स्युः प्रदक्षिणम्।
तेषामन्ते पुनर्द्वीपो द्वीपान्ते चैव सागराः ॥ 18 ॥

इन सब के अन्त में समुद्र संस्थित है जो प्रदक्षिणा करता हुआ-सा प्रतीत होता है। इसके अन्त में पुनः द्वीप है और उन द्वीपों के अन्त में पुनः सागर है।

सप्तद्वीपाः समुद्राश्च क्रमेणापि सुसंस्थिताः।
जम्बूद्वीपप्रमाणेन द्विगुणा द्विगुणोत्तराः ॥ 19 ॥

इस तरह सात द्वीप और सात सागर क्रमवार बने हुए हैं जो जम्बूद्वीप के प्रमाण से प्रत्येक एक दूसरे से दुगुने होते जाते हैं।

इयं युक्तिर्विधातव्या द्वीपे द्वीपे तु शैलजाः ?।
संस्थिताः क्रमयोगेन पूर्वापरयाम्योत्तरे ॥ 20 ॥

इस युक्ति से द्वीप-द्वीप में शैल बने हुए हैं जो क्रमवार स्थित है। एक दूसरे के बाद दक्षिण से उत्तर दिशा तक विस्तार में फैले हुए हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोकृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
महापर्वतप्रमाणाधिकारो नाम षट्त्रिंशं सूत्रम् ॥ 36 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में महापर्वत प्रमाण अधिकार नामक छत्तीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 36 ॥

विश्वकर्मोवलोकितपृथ्वीनवखण्डानि सप्तत्रिंश सूत्रम् ॥ 37 ॥

विश्वकर्मोवाच —

राजेन्द्रस्य पृथोः पूर्वमष्ट8 पुत्रा प्रकीर्तिताः।
अष्टवर्षाधिपतय आत्मराज्यं तु मध्यतः ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि पृथु राजा के आठ पुत्र पूर्वकाल में कहे गए हैं जो आठ प्रदेशों के अधिपति बनाए गए और राजा पृथु ने अपना राज्य उन प्रदेशों के

मध्यवाले प्रदेश में रखा था।

तद्विभक्तानि क्षेत्राणि क्षारार्णवस्य मध्यतः।
शैलान्तरेषु ख्यातानि क्षेत्राणि नव सङ्ख्यया॥ 2॥

क्षारार्णव या लवण सागर के मध्य के इन क्षेत्रों को उन पुत्रों में विभक्त करके अलग-अलग पहाड़ों के अन्तर से सीमाबद्ध करके इस प्रकार से अपने राज्य सहित कुल नौ संख्या में क्षेत्रों का निर्माण किया।

इलाक्षं दिव्यकं चैव भारतं हरिवर्षकम्।
किम्पुरुषः केतुमालः सम्भवो मानदण्डकः॥ 3॥
रम्यकं मध्यक्षेत्रं च मेरुमावृत्य दक्षिणम्।
एतानि नवक्षेत्राणि जम्बूद्वीपस्य मध्यतः॥ 4॥

इलाक्ष, दिव्यक, भारत, हरिवर्ष, किंपुरुष, केतुमाल, सम्भव, मानदण्ड और नवाँ रम्यक— इस प्रकार ये सभी मध्य क्षेत्र और मेरु पर्वत की परिक्रमा करके दक्षिण में स्थित थे। ये सभी नवक्षेत्र जम्बूद्वीप के मध्य में थे।[1]

मन्दरो हेमकूटाख्यो निषधः श्वेतपर्वतः।
एतन्मध्ये रम्यकं च मेरुमावृत्य दक्षिणम्॥ 5॥

मन्दर, हेमकूट, निषध, श्वेतपर्वत और इनके मध्य में रम्यक है। ये सभी मेरुपर्वत के चारों ओर वृत्ताकार होते हुए दक्षिण में स्थित पर्वत है।

मन्दरगन्धमादनमध्ये चेलावृतोद्भवः।
गन्धमादनोदयाद्रिमध्ये दिव्यकमुच्यते॥ 6॥

मन्दर और गन्धमादन के मध्य में इलावर्त तथा गन्धमादन और उदयाद्रि के मध्य दिव्यक है।

हिमवद्धेमकूटान्तर्वर्षो नाम्ना हरिस्तथा।
त्रिकूटहिमवन्तर्वर्षो भारत उच्यते॥ 7॥

हिमवत् और हेमकूट के बीच के वर्ष अर्थात् क्षेत्र का नाम हरि है तथा त्रिकूट और हिमवन्त के बीच के वर्ष अर्थात् क्षेत्र का नाम भारत कहा जाता है।

निषधनीलयोर्मध्ये किम्पुरुषो नाम्नोत्तमः।
नीलाम्बुध्योर्मध्यतश्च केतुमालश्च नामतः॥ 8॥

---

1. विष्णुपुराण में आया है— इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान्॥ नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः। अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः॥ (2, 3, 6-7)

निषध और नील के मध्य के क्षेत्र को भी किम्पुरुष उत्तम नाम से जाना जाता है। नीलम्बुध के मध्य में केतुमाल नाम से जाना जाता है।

निषधनीलयोर्मध्ये किम्पुरुषः नाम्नोत्तमः।
नीलाम्बुध्योर्मध्यतश्च केतुमालश्च नामतः॥ 9॥

उक्त श्लोक पुनर्प्रकाशित हुआ है।

श्वेतशृङ्गवतोर्मध्येम्रम्यको नाम नामतः।
शृङ्गवद् द्वीपशैलान्तर्मानदण्डसमुद्भवः॥ 10॥

श्वेत और शृङ्गव के मध्य क्षेत्र को रम्यक् नाम दिया गया है। शृङ्गवद और द्वीप शैलान्त के बीच मानदण्ड का उद्भव हुआ।

शुद्धस्फाटिकसङ्काशा दिव्याभरणभूषिताः।
चन्द्रकान्त्यमृताहारा **नरा नार्योऽयुतायुषः॥ 11॥**
इलावर्ते ज्ञानयुता नरानारीस्वरूपिणः।

इन सभी क्षेत्रों के अरबों की संख्या में नर-नारी निवास करते हैं जो सब शुद्ध स्फटिक के समान गौर वर्ण के हैं और ये सभी जन दिव्याभरणों से विभूषित है तथा चन्द्रमा के समान शीतल कान्ति युक्त और अमृत का आहार करने वाले हैं। इलावर्त के सभी नर-नारी ज्ञानवान और स्वरूपवान है।

अथ दिव्यवर्षवर्णनम् —

अथातो दिव्यवर्ष च कथयामि समासतः॥ 12॥
धूलिता भस्माङ्गरागाः **कूरा उग्रा** मलीकृताः।
जटामुकुटशोभाढ्या दिव्यक्षेत्रेऽयुतायुषः॥ 13॥

अब मैं दिव्य वर्ष के अर्थात् क्षेत्र के बारे में संक्षेप से कहता हूँ। अङ्ग में भस्म, राग से धूलित, क्रूर स्वभाव के तथा उग्र रूपी मैले-कुचैले, जटामुकुट धरे लोग अरबों की संख्या में दिव्य क्षेत्र में बसते हैं।

शतायुषो हरिवर्षे बौद्धाख्या हीनतेजसः।
गौरश्यामा नरा नार्यो बुद्धधर्मप्रपालकाः॥ 14॥

सौ वर्ष की आयु पाने वाले बौद्ध नाम से विख्यात्, हीन तेज वाले, कुछ गोरे और कुछ काले श्यामवर्णी नर-नारी बुद्धधर्म को पालने वाले लोग हरिवर्ष में निवास करते हैं।

श्यामा गौराश्चतुर्वर्णो भरते च शतायुषः।
देवाग्निगुरुभक्ताश्च वेदशास्त्रदपारगाः॥ 15॥

श्याम वर्णी, गौर वर्णी चारों ही वर्णों के लोग सौ वर्ष तक की आयु तक जीने वाले भारत में रहते हैं। वे सभी देवता, अग्नि और गुरुभक्ति में लीन और वेद शास्त्रादि में पारङ्गत होते हैं।

चतुरशीतिविद्यासु सूत्रकर्मसु कौशलाः।
धर्मशास्त्रादिनिपुणा भोगयुक्ता विभूतिकाः॥ 16॥

ये सभी चौरासी प्रकार की विद्याओं में तथा सूत्रकर्म-शिल्प में कुशल और धर्म शास्त्रादि में निपुण तथा सभी भोगों से युक्त और विभूतियों से सम्पन्न हैं।

नराः श्वेताः किंपुरुषे महारूपास्तथा स्त्रियः।
युक्ताः केशाद्यलङ्कारै रमन्ते कामवन्दकाः॥ 17॥

किंपुरुष क्षेत्र के नर-नारी सभी गौरवर्ण और महान् रूपवाले होने से केशादि अलङ्कारों से युक्त रहते हुए तरह-तरह की काम-क्रीड़ा में मौज-मस्ती में रहते हैं।

केतुमाले किन्नराणां नार्यो रूपसमन्विताः।
सर्वे धर्मरताश्चैव त्रिशतायुष्कजीवनाः॥ 18॥

केतुमाल क्षेत्र में किन्नरगणों की नारियाँ बड़ी रूप-यौवना समन्वित है और सभी धर्मभावना में लीन रहते हुए तीन सौ वर्षों तक की आयु तक जीवित रहते हैं।

सम्भवे ब्रह्मतेजस्विवेदशास्त्रादिपारगाः।
पञ्चशतवर्षायुषः पद्मरागनिभोदराः॥ 19॥

सम्भव क्षेत्र के निवास ब्रह्मतेज से युक्त होते हैं और वे सभी वेद शास्त्रादि में पारङ्गत होते हैं तथा पाँच सौ वर्षों तक जीवन यापन करने वाले पद्मराग के समान उदर वाले होते हैं।

मानदण्डे प्रचण्डाश्च नरा नार्यो ज्ञानोद्भवाः?।
योगीन्द्राश्चायुतायुष्का दिव्या नार्योऽग्नितेजसः॥ 20॥

इसी प्रकार मानदण्ड क्षेत्र के नर-नारी बड़े ही प्रचण्ड और ज्ञानी होते हैं। यहाँ के योगीन्द्र तो अरबों वर्षों की आयुष्य वाले होते हैं। नारियाँ भी अग्नि के तेज के समान दिव्य होती है।

रम्यके दिव्यरूपाश्च नरा नारीगणास्तथा।
देवलोके तत्पराख्या देवरूपानुरूपकाः॥ 21॥

रम्यक क्षेत्र के नर दिव्यरूप होते हैं। नारियाँ भी वैसी ही होती हैं। देवलोक में तत्परता वाले ये देवरूप के अनुरूप ही होते हैं।

ग्रामाणां च तथा सङ्ख्या देशानां च प्रमाणतः।
राज्ञां च युक्तिमानं च अलङ्कारैस्तद्रूपतः॥ 2॥

अब यहाँ के ग्रामों तथा देशों की प्रमाणतः संख्या और यहाँ के राजागणों के युक्तिमान और उनके अनुरूप अलङ्करणों यानी पदवियों को बताता हूँ।[1]

कान्यकुब्जे ग्रामखङ्ख्या षट्त्रिंश$_{36}$लक्षकाणि च।
अष्टादश$_{18}$लक्षमानं राज्यं गौडेश्वरे मतम्॥ 3॥

कान्यकुब्ज की ग्राम संख्या छत्तीस लाख है और यहाँ के राजा गौड़ेश्वर की पदवी या उपाधि धारण करते हैं जिनकी आय अठारह लाख मान कही गई है।

तदर्ध$_{18}$ कामरूपाश्च तत्समं मण्डलेश्वरम्।
कार्त्तिकपुरे तत्सङ्ख्या चौडे लक्षद्वासप्ततिः$_{14}$॥ 4॥

इसका आधा कामरूप या आसाम है जहाँ के मण्डलेश्वर की पदवी प्राप्त राजा की आय भी इसी के अनुरूप आधी है। कार्तिकपुर में भी संख्या उतनी ही अर्थात् अठारह लाख है और यहाँ के अधीश्वर चौड़ कहलाते है जिनकी (वार्षिक) आय चौदह लाख है।

---

1. स्कन्दपुराण के माहेश्वरखण्ड-कुमारिकाखण्ड में राजा शतशृङ्ग के उत्तराधिकारियों के वर्णन में कुलदेवी कुमारी द्वारा भारतवर्ष के नौ खण्डों के बहत्तर विभाग करने का वर्णन है। इसमें मण्डल प्रदेश में चार करोड़ ग्राम व बालाक प्रदेश में ढाई करोड़ ग्राम निर्धारित किए गए। प्रदेशानुसार ग्रामों की संख्या इस प्रकार दी गई है—
खुरासाहणक = सवा करोड़ ग्राम, अन्धल = चार लाख, नेपाल = एक लाख, कान्यकुब्ज = छत्तीस लाख, जनक = बहत्तर लाख, गौड़ = अठारह लाख, कामरूप = नौ लाख, लाहर्व व भालदेश = नौ-नौ लाख, कान्तिपुर = नौ लाख, माचिपुर = नौ लाख, जालन्धर व लोहपुर = नौ लाख, पाम्बीपुर व रटराज = सात-सात लाख, हरिआल = पाँच लाख, इड् = साढ़े तीन लाख, षाम्भण वाहक = साढ़े तीन लाख, नीलपुर = इक्कीस हजार, अम्ल = एक लाख, नरेन्दु = सवा लाख, तिलङ्ग = सवा लाख, मालव = अठारह लाख बानवे हजार, सयम्भर = सवा लाख, मेवाड़ = सवा लाख, बागुरि = अस्सी हजार, गुर्जर = सत्तर हजार, पाण्डु = सत्तर हजार, तेजाकुति = बयालीस हजार, काश्मीर मण्डल = अड़सठ हजार, कौङ्कण = छत्तीस हजार, लघु कौङ्कण = चौदह सौ चालीस, सौराष्ट्र = पचपन हजार, ताड़ = इक्कीस हजार, अतिसिन्धु, अश्वमुख, सजानुहूति, वेणु, द्रविड़, भद्राश्व एवं देवभद्राश्व = दस-दस हजार, चिरायुष व यमकोटि = छत्तीस-छत्तीस हजार, रोमक = अठारह करोड़, कामरु, कर्णाटक तथा जाङ्गल = सवा-सवा लाख, स्त्रीराज्य = पाँच लाख, पुलस्ति = दस लाख, काम्बोज व कौशल = दस-दस लाख, वाह्लीक = चार लाख, लङ्का = छत्तीस हजार, वर्धमान = चौसठ हजार, सिंहलद्वीप = दस हजार, पाण्ड्य = छत्तीस हजार, भयानक = एक लाख, वरेन्दक = तीस हजार, मूलस्थान = पच्चीस हजार, यवन = चालीस हजार, पक्षबाहु = चार हजार ग्राम है। इस प्रकार बहत्तर देशों और उनके ग्रामों की संख्या है। भारतवर्ष के कुल ग्रामों की संख्या 96 करोड़, 72 लाख व 36 हजार है। (कुमारिकाखण्ड 39, 125-163)

दक्षराज्ये सार्धसप्तलक्षाणि चैव सङ्ख्यया।
अष्टादश च लक्षाणि सहस्त्राणि द्विनवतिः ॥ 5 ॥
उज्जयिन्यां वै सपादलक्षाणि च स्वयम्भरे।
ललाटे गुर्जरे कच्छे सौराष्ट्रे लक्षकद्वयम् ॥ 6 ॥

दक्षराज्य में ग्रामों की संख्या साढ़े सात लाख है और उनसे होने वाली आय भी साढ़े सात लाख ही है। उज्जयिनी के ग्रामों की संख्या अठारह लाख है और आय भी अठारह लाख है। स्वयम्भर (साम्भर) राज्य की ग्राम संख्या सवा लाख है तथा लाट, गुर्जर, कच्छ और सौराष्ट्र की ग्राम संख्या दो-दो लाख है।

सार्धत्रयं मरुकोटे लक्षाणां मरुमण्डले।
सिन्धुसागरदेशे तु सार्धलक्षत्रयं स्मृतम् ॥ 7 ॥

मरुकोट के ग्रामों की संख्या साढ़े तीन लाख है तथा मरुमण्डल, सिन्धुसागर देश के ग्रामों की संख्या भी साढ़े तीन लाख मानी गई है।

खुरषाणे चत्त्वारिंशल्लक्षाणि च तथैव च।
त्रिगर्तके द्विलक्षाणि तथा ग्रामास्तु सङ्ख्यया ॥ 8 ॥

खुरासान के ग्रामों की संख्या चार लाख है तथा इसी तरह त्रिगर्त के ग्रामों की संख्या दो लाख है और उनके आय भी उतनी ही है।

सूर्यलक्षाण्यहिराज्ये षट्सार्धानि गुडाद्वीपे।
जलन्धरे सार्धत्रयं तथा लक्षाणि सङ्ख्यया ॥ 9 ॥

अहिराज्य की ग्राम संख्या बारह लाख और गुडाद्वीप की साढ़े छह लाख, जालन्धर की साढ़े तीन लाख है।

ग्रामाः षष्टिसहस्त्राणि तथा षष्टिशतानि च।
षष्टित्रयस्तथा चैव चेत्थं काश्मीरमण्डलम् ॥ 10 ॥
स्त्रीराज्यं च त्रिकूटाख्यं काश्मीरपूर्वगणाधिपः ?(पञ्चलक्षाधिश्च)।[1]
हिमवान् दण्ड आख्यातो वर्षे भारतके तथा ॥ 11 ॥

काश्मीर मण्डल के ग्राम साठ हजार, साठ सौ तिरसठ है। काश्मीर के पूर्व में त्रिकूट नाम का स्त्री गणराज्य है जहाँ स्त्रियाँ ही राज करती है। यही हिमवान अर्थात् हिमालय पर्वत भारतवर्ष की दण्डमान दीवार की तरह स्थित है।

---

1. 'पञ्चलक्षाधिश्च' इति स्यात्। तथा च स्कन्दपुराणे माहेश्वरखण्डे— पञ्चलक्षाश्च ग्रामाणां स्त्रीराज्यं परिकीर्तितम ॥ (कुमारिकाखण्ड 39, 53)

महापर्वताश्रिताश्च सजलाशयवर्तिनः।
पर्वतार्णवमध्यस्थाः सजला देशसम्भवाः॥ 12॥

इस हिमालय महापर्वत के आश्रय में अनेकों सजल जलाशय है इसलिए यह भारत वर्ष हिमालय पर्वत और सागर के मध्य एक बहुत ही सम्पन्न सजल देश सम्भव हो सका है।

सिन्धुसागरतो देशाः काश्मीरान्ता जलैर्युताः।
गौडबङ्गकामरूपाः सजलाः कार्तिकेश्वरे॥ 13॥

इसी के फलस्वरूप सिन्धुसागर तक के देशों से लेकर काश्मीर के अन्त तक के देश सभी पूर्णतः जल से सम्पन्न है और गौड़, बङ्ग, कामरूप, कार्तिकेश्वर आदि भी सजल, सम्पन्न क्षेत्र है।

महापर्वताश्रमा वै हिमाद्रौ गन्धमादने।
श्वेतशृङ्गे हेमकूटे नीलनिषधमन्दरे॥ 14॥

इस हिमालय महापर्वत में अनेकों आश्रम है जिनमें गन्धमादन, श्वेतशृङ्ग, हेमकूट, नील, निषध, मन्दर विख्यात है।

सौराष्ट्रकच्छकलाटा कोङ्कणानि चतुर्दश।
श्रीशैलसमुद्रे च सजलाश्चोत्तमा मताः॥ 15॥

सौराष्ट्र, कच्छ, लाट, कौङ्कण के चौदहों प्रदेश, श्रीशैल आदि समुद्रपर्यन्त सभी देश उत्तम जल से भरपूर सम्पन्न माने गए हैं।

महाराष्ट्रे सुरराज्ये गौडे रत्नपुरादिकै।
डहाले कान्यकुब्जे च मध्यमाश्च जलाश्रयाः॥ 16॥

महाराष्ट्र, सुरराज्य, गौड़, रत्नपुर, डहाल, कान्यकुब्ज आदि मध्यम जलाश्रय वाले देश हैं।

कान्यकुब्जे मथुरायामवन्त्यां च कालञ्जरे।
गुर्जरे सौराष्ट्रादिके मध्यमा अम्बुकाश्रयाः॥ 17॥

कान्यकुब्ज, मथुरा, अवन्ती, कालञ्जर, गुर्जर, सौराष्ट्रादिक भी मध्यम जलराशि के आश्रित क्षेत्र है।

मरुकोटे मरुचण्ड्यां गुर्जरे सिन्धुपार्श्वगे।
सङ्कीर्णे जलमाख्यातमल्पवृष्टिः प्रवर्तते॥ 18॥

मरुकोट, मरुचण्ड, गुर्जर, सिन्धु नदी के पार्श्वभाग में बहुत ही सङ्कीर्ण जल, बहुत ही कम जल है क्योंकि वहाँ हमेशा अल्पवृष्टि होती रहती है।

आत्रिकूटं हिमाद्यन्तं योजनैः शतपञ्चभिः।
पूर्वापरौतोयनिधी हिमदण्डश्च भारते॥ 19॥

आत्रिकूट अर्थात त्रिकूट से लेकर हिमालय के अन्त तक की लम्बाई पाँच सौ योजन की कही गई है और पूर्वा-पर स्थिति में तोयनिधि, समुद्रपर्यन्त फैलकर भारतवर्ष के लिए एक हिमदण्ड अर्थात् हिमालय की दीवार बनकर खड़ा है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां भरतक्षेत्रग्रामसङ्ख्यानृपराज्यप्रमाणसङ्ख्याधिकारो नामाष्टात्रिंशत्तमं सूत्रम्॥ 38॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में भरत क्षेत्र की ग्राम संख्या, नृपराज्य प्रमाण संख्या अधिकार नामक अड़तीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 38॥

वनयात्रानामैकोनचत्वारिंशं सूत्रम्॥ 39॥

विश्वकर्मोवाच —

मेरुश्च मन्दरश्चैव पर्वतो गन्धमादनः।
हिमवान् हेमकूटश्च निषधो नील एव च॥ 1॥
श्वेतश्च शृङ्गवांश्चैव महाशैलाः प्रकीर्तिताः।
एते पर्वतराजाश्च महावननदीभवाः॥ 2॥

विश्वकर्मा बोले कि मेरु, मन्दर, गन्धमादन, हिमवान, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृङ्गवान आदि सब महाशैल कहे गए हैं। ये सभी पर्वतराज हैं और इनसे महावन और महानदियाँ उत्पन्न हुई हैं।

महेन्द्रौ मलयश्चैव महाविन्ध्यस्तथैव च।
हिमाद्रिः पारियात्रश्च श्रीशैलश्च तथाऽर्बुदः॥ 3॥
महावनानि ख्यातानि शृणु चोपवनानि च।
त्रिधोदितं च क्रमतो वनोपवनकाननम्॥ 4॥

महेन्द्र, मलय, महाविन्ध्याचल, हिमाद्रि, पारियात्र, श्रीशैल तथा अर्बुद ये सब महावनों के लिए विख्यात है। अब उपवनों के विषय में सुनो, जो कि तीन प्रकार के हैं। यथा— 1. वन, 2. उपवन और 3. कानन।

उपवनदीनां लक्षणं —

यत्र देशाश्च विरला वनकूलेषु संस्थिताः।
उपवनानि ज्ञेयानि येषु ग्राह्या द्रुमाः शिलाः॥ 5॥

जिन देशों में विरले वनों के समूह स्थित है, उन्हें उपवन समझना चाहिए। इनसे जलाऊ लकड़ी के पेड़ तथा वहाँ स्थित खदानों से शिलाएँ ली जा सकती हैं।

कीर्तिमान् कीर्तयेद्यत्र रोप्यमाना द्रुमैर्लताः।
काननं तच्च विज्ञेयं नृपक्रीडनहेतुकम्॥ 6॥

जिन प्रसिद्ध वनों में द्रुम, लतादि का रोपण किया गया हो और जिनको राजाओं की क्रीड़ा के लिए यथा मृगया, आखेटादि के लिए छोड़ा गया हो, उन वनों को कानन कहते हैं।

क्रमागतं शम्भुभवं वनोपवनकाननम्।
वनयात्रा तु कर्तव्या तेषां कूलसमाश्रितैः॥ 7॥

इन वन, उपवन और काननों में क्रमशः शम्भु, शिव की स्थापना करनी चाहिए और इन वन, उपवन, काननों के किनारे इन शिव स्थानों की स्थापना करके वहाँ इनके दर्शनार्थ वनयात्राएँ करना भी परम कर्त्तव्य समझना चाहिए।

योग्याः प्रासादप्रतिमालिङ्गगेहादिके तथा।
प्रशस्ता दारुशैलाश्च ग्राह्या यत्र सदा स्मृताः॥ 8॥

इन स्थानों में योग्यतानुसार प्रासाद, प्रतिमा, लिङ्ग, गृहादि प्रशस्त माने गए हैं। इनके निर्माण के लिए सदा ही पाषाण और पेड़, काष्ठादि ग्राह्य माने गए हैं।

अशोकशोकखदिराः कदम्बा देवदारवः।
श्रीपर्णास्तिनिशाश्चैव सरलाश्चन्दनास्तथा॥ 9॥
भूर्जत्रिमिसश्रेण्यश्च ? शाल्मलीरक्तचन्दनाः।
अन्येऽपि बहवो वृक्षा महत्यश्च शिलास्तथा॥ 10॥

इनके योग्य वृक्षों में अशोक, शाक, खदिर, कदम्ब, देवदारू, श्रीपर्ण, तिनिश, सरल, चन्दन, भूर्ज, त्रिमिस, श्रेणी, शाल्मली, रक्तचन्दन आदि अन्य भी बहुत से वृक्ष हैं। महान शिलाएँ भी ग्राह्य हैं।

संछन्ना बहुभिः पत्रैः प्रदेशा यत्र संस्थिताः।
सरित्तीरं समाश्रित्य रविरश्मिविवर्जिताः॥ 11॥

(शिला, काष्ठ ग्रहणावसर पर यह विचारणीय है कि) जिस स्थान के प्रदेश पूरी तरह बहुत से पत्रों से ढके हुए हों और नदी के किनारे के स्थान हों जहाँ इतनी छाया हो कि सूर्य की किरणें भी भूमि पर नहीं पहुँच पाती हों।

ईशान्यान्त वादिनेत्रं पूर्ववातैः प्रपादिताः।
अन्यवातैर्हताद्येषु अप्रशस्ताः शुभप्रदाः ?॥ 12॥

वन में जाते समय वायु प्रवाह पर विचार करना अपेक्षित है। ईशानकोण के अन्त से जब ध्वनि करती हुई जोर की हवाएँ बहती हुई आती है और उनके साथ अन्य हवाएँ भी आहत होती हो तो यह अनुचित और अशुभ है।

सुप्रदेशाः सुसङ्ग्राह्याः सर्वकानफलप्रदाः।
अप्रशस्ता अन्यकाले निमित्तं चोपलक्षयेत्॥ 13॥

जहाँ-जहाँ सुप्रदेश पाए जाएँ उन्हें सुसंग्रह पूर्वक ग्राह्य किया जाए जिससे सभी कामनाओं की शुभफलप्रद पूर्ति होती है तथा जो भी अप्रशस्त प्रदेश हों, उन्हें अन्य काल के निमित शकुन हेतु भी दरगुजर कर देना चाहिए।

दिव्यानि चेव भौमानि शुभानि चाशुमानि च।
प्रशस्तानि शुभान्यत्र चाशुभानि विवर्जयेत्॥ 14॥

दिव्यों की, देवतादिकों की भूमि शुभ और अशुभ होती है उनमें वही प्रशस्त हैं जो शुभ है, परन्तु जो अशुभ हो उन्हें छोड़ देना चाहिए।

नानाविधनिमित्तानि —

निमित्तानि गजश्चाश्वो वृषभश्च रथो विदुः।
घृतं पुष्पाक्षते विप्रः कन्या रम्भा च गौर्मृगः॥ 15॥
शतपत्रं च वैश्या च नृपः कुम्भश्च दीपकम्।
वस्त्रयुग्मं फलं छत्रं यानं झम्पानमासनम्॥ 16॥
वसुन्धरा धृत्यमानाय ? बहलं धान्यं पत्रादिकम ?।
एतेषु दृश्यमानेषु निष्पत्तिः सुश्रियस्तथा॥ 17॥

अब यात्राकाल में होने वाले निमित्तों या शकुनों के बारे कहता हूँ। गज, अश्व, वृषभ, रथ, विद्वान, धृत, पुष्प, अक्षत, विप्र, कन्या, केला, गाय, मृग, शतपत्र या तुलसीपत्र, वैश्या, राजा, घट, दीपक, दो वस्त्रों की जोड़ी, फल, छत्र-यान, पङ्खा, आसन, वसुन्धरा, धृतिमान, बहुत धान्य पत्रादिक— यदि ये सब यात्रा काल में दिखाई पड़े, तो अच्छे शकुन या श्रीवृद्धिकारक समझना चाहिए।[1]

---

1. पूर्वोक्त शकुन काश्यपशिल्पम्, समराङ्गण. आदि में भी आए हैं। ये श्रीपति के मत से तुलनीय है— भृङ्गाराञ्जनवर्द्धमान मुकुराबद्धेकपश्वा मिषोष्णीष क्षीरनृयानपूर्ण कलशच्छत्राणि सिद्धार्थकाः। वीणाकेतनमीनपङ्कज दधिक्षौद्राज्य गोरोचनाः कन्याशङ्खसितोक्ष वस्तुमनोविप्राश्वरत्नानि च॥ प्रज्वलज्वलनदन्ति तुरङ्गाभद्रपीड गणिकाङ्कुशमृत्स्नाः। अक्षतेक्षुफलचामरभक्षाण्यायुधानि च भवन्ति शुभानि॥ भेरिमृदङ्ग मृदुर्मद्दल शङ्खवीणा वेदध्वनिर्मधुरमङ्गलगीतघोषाः। पुत्रान्विता च युवतीः सुरभिः सवत्सा धौताम्बरश्चरजकोऽभिमुखः प्रशस्तः॥ (ज्योतिषरत्नमाला 15, 62-64)

तैलाभ्यक्तस्तथाहिश्च मुक्तकेशाः स्त्रियस्तथा।
काष्ठभारं चाग्रहीनं विधवा गुरुषादिकम्?॥ 18॥
उल्कापातो दिशादाहो महावातप्रवर्तनम्।
तारापातोऽशनिघातः परितः पांशुवर्षणम्॥ 19॥
एतेषु दृश्यमानेषु च भविष्यन्ति वै श्रियः।
न गच्छेत् पदमेकं तु यदीच्छेच्च निवर्तनम्॥ 20॥

अशुभनिमित्त के विषय में कहा जा रहा है। तैलाभ्यङ्ग किए हुए, सर्प, खुले केश वाली स्त्री, लकड़ी का भार लिए हुए सामने आता, आगे से हीन, विधवा, गुरुघाति, उल्कापात, दिशाओं का दाह, झंझावात चलना, तारा टूटना, गाज गिरना, इसके उपरान्त पत्थर बरसना— ऐसा यदि सामने दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि भला नही होने वाला है।[1] उपर्युक्त अपशकुन होने पर कहीं बाहर जाना हो तो भूल कर भी एक भी कदम आगे न बढ़ाएँ यदि इन अपशकुनों का निवर्तन करना चाहते हों तो।

मेघगर्जनवृष्टी च मत्स्योदयानि शोभनम्।
अन्तरिक्षे भवेच्छेदः फलपुष्पनिपातनम्॥ 21॥
वायुकां सुरङ्गिकं वागि वामे वृक्ष्याग्रसंस्थिताम्?।
कौशिको वामतः श्रेष्ठो ह्यशुभो दक्षिणे तथा॥ 22॥

इसी प्रकार यदि मेघ गर्जन के साथ वृष्टि होती हो, मीन राशि आदि का शुभ उदय हो, अन्तरिक्ष में छेद हो और उससे फल तथा पुष्प गिरते हों। वायुका सुरङ्गिक वागी (शकुन चिड़िया) वामभाग में वृक्ष पर बैठी हो, कौशिक या उल्लू बायीं ओर श्रेष्ठ और दक्षिण और अशुभ है।

कङ्कणं हारकेयूरौ मुकूटं कुण्डलादिकम्।
एतेषु दृश्यमानेषु सर्वकामफलं भवेत्॥ 23॥

---

1. वराह का मत है कि यात्रा में कपास, औषध, काला अन्न, नमक, नपुंसक व्यक्ति, अस्थियाँ, ताल-हरताल, अग्नि, साँप, कोयला, विष, कञ्चुली, मल, छुरा, रोगी, वमन करने वाला, पागल, पक्षाघातपीड़ित, अन्धा, तृण, तुस-भूसी, क्षुधापीड़ित, तक्र, शत्रु, मुण्डित सिर, तेल लगाया व्यक्ति, खुले केश वाला, पापी, लाल कपड़े पहने व्यक्ति आदि अशुभ होते हैं— कार्पासौषधकृष्णधान्यलवणक्लीबा-स्थितानलं सर्पाङ्गारगराहिचर्मशकृतः केशारिसव्याधिताः। वातोन्मत्तजडान्धकतृणतुष क्षुत्क्षामतक्रारयो मुण्डाभ्यक्तविमुक्तकेशपतिताः काषायिणश्चाशुभाः॥ (बृहद्योगयात्रा 27, 6; योगयात्रा 13, 14 एवं लघुटिक्कनिका 9, 15)

एवं शुभैश्च शकुनैः प्रविष्टो वनमध्यतः।
वृक्षं सम्पूज्य तु करे कुटारं पूर्वतो धरेत्॥ 24॥

इसी प्रकार कङ्कण, हार, केयूर, मुकुट, कुण्डलादि— इतने शकुन यदि दिखाई पड़े तो सर्वकामना की सिद्धि होती है। इस तरह के शुभ शकुनों को ध्यान में रखकर ही वन में प्रवेश करना चाहिए और पहले वृक्ष की अच्छी तरह पूजा सम्पन्न करके पूर्व दिशा की ओर मुँह किए हुए हाथ में कुल्हाड़े को ग्रहण करे।

अयं मन्त्रः —

''तत ओँ नमोरुद्राय पिङ्गलाय महात्मने।
विश्वेदेवा विश्वरूप विश्वकर्मणे वै नमः''॥ 25॥
अनेन चैव मन्त्रेण कुठारमभिमन्त्रयेत्।
तत्र क्षेत्रं बलिं दद्यात् समर्च्य सर्वदेवताः॥ 26॥

इसके उपरान्त इस मन्त्र से कुल्हाड़े को अभिमन्त्रित करें— 'ॐ नमो रुद्राय पिङ्गलाय महात्मने, विश्वेदेवा विश्वरूप विश्वकमणे नमः।' इसके उपरान्त उक्त क्षेत्र के सभी देवताओं की ठीक तरह से पूजन करके बलि का चरु निवेदित करे।

तदा च छेदयेद् वृक्षं पतितं चोपलक्षयेत्।
ईशानोत्तरपूर्वे च सर्वकामफलप्रदम्॥ 27॥

इसके बाद ही वृक्ष का छेदन करे और ध्यानपूर्वक यह भी देखें कि वृक्ष कटकर किस दिशा की ओर गिरता है? यदि कटा हुआ वृक्ष ईशान कोण अर्थात् उत्तर पूर्व की ओर गिरे, तो इसे सर्वकामफलप्रद समझना चाहिए।

अशुभश्चान्यदिशायां शाखापातस्तथोच्यते।
दिशायां चाप्रशस्तायां तच्छाखां वर्जयेद् बुधः॥ 28॥

अन्य दिशाओं में वृक्ष की शाखाओं का गिरना अशुभ कहा गया है। जो शाखाएँ अप्रशस्त दिशाओं की ओर गिरी हों, उन शाखाओं को काम में लेना विद्वानों[1] ने वर्जित किया है।

एवं संगृह्यते वृक्षमानयेन्नगरादिके।
वेशयेदुत्तरदिशि वादित्रैर्ब्रह्मघोषकैः॥ 29॥

इस प्रकार की सावधानीपूर्वक संग्रह किए हुए वृक्ष को नगर में गाजे-बाजे

---

1. यह विधि समराङ्गणसूत्रधार, विश्वकर्माप्रकाश, मयमतम्, मानसार, ईशानशिवगुरुदेवपद्धति, शिल्परत्नम्, वास्तुमण्डनम् आदि में भी आई है।

और ब्रह्म घोष के साथ लाकर उत्तर दिशा की ओर सम्भालकर उसको स्थान देना चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां वनयात्राधिकारो नामैकोनचत्वारिंशत्तमं सूत्रम् ॥ 39 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में वनयात्रा अधिकार नामक उनचालीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 39 ॥

वनयात्राशिलापरीक्षा नाम चत्वारिंशं सूत्रम् ॥ 40 ॥

विश्वकर्मोवाच —

लिङ्गार्चादिशिलानां च सम्प्रवक्ष्यामि लक्षणम्।
पूजा पूर्वविधानेन शिलोद्धारं तु कारयेत् ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि अब लिङ्ग, अर्चा-प्रतिमादि में प्रयुक्त होने वाली शिलाओं के लक्षण कहता हूँ। शिलोद्धार हेतु अर्थात अर्चा, लिङ्गादि के निर्माण में काम आने वाली शिला को भूमि से निकालने के लिए पहले वृक्ष लाने में जो (पूर्व अध्याय में) पूजा विधान कहा गया, वैसा ही पूजा विधान शिला के उद्धार के लिए भी करना चाहिए।

यो दक्षिणे शिलाभागस्तत्शीर्ष चोत्तरे पदम्।
पूर्वापरक्रमेणैव ह्यपरे शिर उत्तमम् ॥ 2 ॥

जो दक्षिण दिशा की ओर शिला का भाव हो और उसका शीर्ष भाग उत्तर के पद की ओर हो तो पूर्वापर क्रमानुसार ही उत्तर की ओर अपर शिर भाग उत्तम समझे।

उद्धरेत्तु शिलां तत्र पूर्वमन्त्राभिमन्त्रिताम्।
विलोकयेच्च तां प्राज्ञ मन्त्रैश्चापादमस्तकम् ॥ 3 ॥

उस शिला को पहले कहे गए मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित करके ही भूमि से निकालना चाहिए, उसका, उद्धार करना चाहिए। उस शिला को प्राज्ञ, समझदार शिल्पी मन्त्रों के साथ शिला के पाँव से लेकर मस्तक तक भली प्रकार से अवलोकन करता जाए, ठीक-ठीक निरीक्षण करता जाए और मन्त्र भी पढ़ता जाए।

पादोर्ध्वं कुक्षिदंशे च छेदं तत्र समारभेत्।
परीक्ष्य सूत्रे चाकारं छेदश्चेत् पुरुषाकृतिः ॥ 4 ॥

शिला के पाँव से कुक्षिदेश पर छेद बनाएँ और सूत्र से ठीक तरह से परीक्षा

करके उस शिला में पुरुषाकृति में (किस दिशा में सिर और किधर पैर होंगे, ऐसा देखकर) आकार के हेतु छेद करता जाए।

शिलालक्षणं, युवावृद्धाबालावयपरीक्षणम् —

निबिडा निर्व्रणा तीव्रगम्भीरमधुरान्विता।
शीतला च सुगन्धा च मृद्धी तेजसमन्विता॥ 5॥

अब योग्यायोग्य शिलाओं के गुण के बारे में कहता हूँ[1]— शिला निविडा हो अर्थात् गाँठ-गठीली न हो, निर्व्रणा हो अर्थात खाड़े खोचर युक्त न हो, तीव्र मधुर गम्भीर ध्वनि देने वाली हो अर्थात अच्छी टङ्कार ध्वनि वाली हो, ठण्डी हो, सुगन्ध वाली हो, मुदु हो, घड़ाई में सरल हो, तेज युक्त हो अर्थात आकर्षक हो।

युव नाम्नी शिला ज्ञेया सर्वकामफलप्रदा।
पूजिता सर्वलिङ्गेषु ह्यर्चना सर्वशोभना॥ 6॥

ऐसी शिला को युवा नाम की शिला कहते है जो सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली होती है। यह सभी लिङ्गों के निर्माणार्थ पूजित होती है और सभी अर्चाओं, मूर्त्तियों के निर्माण में भी सब तरह से शोभायमान होती है।

मत्स्यमण्डूकतरला यैतैश्चिन्हैः प्रदृश्यते।
वृद्धा सा तु शिला ज्ञेया सर्वकार्यविनाशिनी॥ 7॥

जिस शिला में मत्स्य, मेंढ़क और तरला या लहरों के चिह्न दिखाई देते हों, उस शिला को वृद्धा समझना चाहिए। यह सभी कार्यों में विनाशकारी है।

अतिमृद्धी भवेद् बाला मन्दपुष्पकवेष्टिता।
टङ्कघातैः साधनीया छेदाद्यं च परीक्षयेत्॥ 8॥

जो शिला बहुत मृदु या नरम हो, वह बाला शिला होती है। यह मन्दपुष्पों से ढकी हुई होती है। इसको टाँकी के आघात, छेदादि करके परीक्षा करने के बाद ही उपयुक्त हो तो काम में लिया जा सकता है।

विमलैर्दूषिता या तु वर्जयेत्तां शिलां बुधः।
विमलं त्रिविधं ज्ञेयं लोहकांस्यजहेमऽम्॥ 9॥

जो शिला विमलों से दूषित होती है, उसे समझदार लोग काम में लाने से मना करते हैं। ये विमल तीन प्रकार के होते हैं- लोहज, कांस्यज और हेमज।

लोहविमलैर्दुर्भिक्षमनावृष्टिश्च कांस्यजैः।

---

1. देवतामूर्तिप्रकरण और रूपमण्डनं में भी ये ही लक्षण आएँ हैं। इनका उत्स मयमतम् है।

हेमजैर्विमलैः पीडा ह्युदितं च त्रिधा क्रमात्॥ 10॥

जिस शिला में लोहज विमल पाया जाए, उससे दुर्भिक्ष होता है। जिसमें कांस्य विमल पाया जाता हो, उससे अनावृष्टि और हेमज विमल से पीड़ा पैदा होती है। इसी प्रकार इन तीन दूषित शिलाओं को फल सहित क्रम से कहा गया।

छेदनावसरेमण्डलादीनां दर्शनफलं —

छेदने च कृते तस्या मण्डलं यत्र दृश्यते।

तद् गर्भितं विजानीयात् जीवशिल्प-विचक्षणः॥ 11॥

जिस शिला के छेदन करते समय मण्डल बन जाते हों, उस शिला को गर्भित समझना चाहिए, ऐसा जीव-शिल्प के जानकार विद्वानों ने कहा है।[1]

माञ्जिष्ठे चैव मण्डूको हरिते कर्कटो भवेत्।

पीते गोधा विजानीयात् **कृष्णे विद्याद्** भुजङ्गमम्॥ 12॥

ऐसी गर्भित शिलाओं के रङ्ग भेद से भी विविध जीवों के होने के सङ्केत मिलते हैं जैसे मंजिष्ठ रङ्ग की शिला में मेंढ़क होगा और हरित वर्ण की शिला में केंकड़ा पाया जाएगा। पीले रङ्ग की शिला में गोह या गोधा का होना जाने जबकि काले रङ्ग की शिला में भुजङ्ग की स्थिति होती है।

पतिले मूषको ज्ञेयः कृकलाशश्च **श्यामके।**

अतिरक्तेन **वर्णेन** चेन्द्रगोपकामादिशेत्॥ 13॥

इसी प्रकार से पतिल वर्ण की शिला में मूषक जाने, श्याम वर्ण की शिला में कृकलाश या करगेंटिया अथवा गिरगिट और बहुत ही लाल वर्ण की शिला में इन्द्रगोप या वीरबहूटी (रामजी की गाय, मखमली जीव जो सावन के दिनों में खेतों में रक्त के छींटों की तरह दिखाई देता है) जाने।

किंशुकाभे **तु खर्जूरो**ऽतसीपुष्पे पिपीलिकाः।

गुडवर्णे तु पाषाणं कूर्म स्यादापसन्निभे॥ 14॥

पलाश के पुष्पों जैसी दिखाई देने वाली शिला में बिच्छू होगा और अलसी के पुष्पों जैसी प्रतीत होने वाली शिला में चींटियाँ होंगी और गुड़ के रङ्ग वाली शिला में पानी के साथ कछुआ हो सकता है।

भस्माभे तिमिरी ज्ञेयो वारला श्वेतभस्मभे।

विचित्रे वृश्चिकं विद्यात् खद्योतं मधुवर्णके॥ 15॥

---

1. यहाँ ग्रन्थकार का निश्चय ही सङ्केत जीवाश्म या फॉसिल्स की ओर है। पाषाणों में ही पूर्वकाल में जीवों के जीवन के लक्षण मिलते हैं।

राख जैसी शिला में तिमिरी (मत्स्य तुल्य रचना) हो सकती है और श्वेत भस्म के समान दिखाई देने वाली शिला में वारला अर्थात् बर्रे होते है और चितकबरी शिला में बिच्छू होता है। शहद जैसे वर्ण वाली शिला में जुगुनू होता है।[1]

पञ्चाल्यां खेचरा ज्ञेयाः श्वेतवर्णे नरो भवेत्।
एतैर्दोषैस्त्यजेल्लिङ्गं प्रतिमादोषमेव च॥ 16॥

पञ्चाली शिला में खेचर और श्वेतवर्णी में नर होता है। ये सभी शिलाएँ सदोष है और लिङ्ग एवं प्रतिमा निर्माण में दोषपूर्ण कही गई है। ऐसे में इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

उत्तमाधमवर्णैश्च पाषाणानुपलक्षयेत्।
श्वेतश्च पद्मवर्णश्च कुमुदो मुद्गसन्निभः॥ 17॥
पाण्डरो माक्षिकवर्णः कपोतो भृङ्गसन्निभः।

उत्तम, अधम रङ्गों के आधार पर ही शिलाओं की पहचान करनी चाहिए। सामान्यतया इनका रङ्ग श्वेत, पद्मवर्ण, कुमुद, मूँग जैसा, पाण्डुर, मधुमक्खी के शहद जैसा, कपोत जैसा, भँवरे जैसा होता है।

श्वेते विप्राश्च वर्द्धन्ते राजन्याः पद्मवर्णके॥ 18॥
वैश्याश्च कुमुदाभेन मुद्गभे शूद्रजातयः।
अन्ये तु शेषवर्णेषु वृद्धिमेवं तु लक्षयेत्॥ 19॥

श्वेत रङ्ग के पाषाणों का प्रयोग लिङ्ग, प्रतिमादि के लिए किया जाने पर ब्राह्मणों की वृद्धि होती है। पद्मवर्णी शिलाओं के प्रयोग से राजन्यवर्ग की वृद्धि होती है। कुमुद की आभा वाली शिलाओं के प्रयोग से वैश्य समुदाय की और मूँग के रङ्ग जैसी शिलाओं से शूद्र जाति की वृद्धि होती है। अन्य शेष वर्णों की शिलाओं से तो केवल वृद्धि मात्र लक्षित होगी।

आरोग्यं पाण्डुवर्णेषु माषाभे विजयः स्मृतः।
कपोते चार्थवृद्धिश्च भृङ्गाभेषु प्रजाश्रियः॥ 20॥

पाण्डु वर्ण की शिला से आरोग्य और उड़द के रङ्ग वाली शिला से विजय समझें और कपोत वर्ण की शिला से अर्थवृद्धि तथा भृङ्ग जैसी आभा वाली शिला से

---

1. विष्णुधर्मोत्तरपुराण में आया है— सगर्भां तां विजानीयाद् यत्नेन च विवर्जयेत्। माञ्जिष्ठवर्ण संकाशे गर्भे भवति दर्दुरः॥ पीतके मण्डले गोधा कृष्ण विद्याद्भुजङ्गमम्। कपिले मूषकं विद्यात् कृकलासं तथारुणे॥ गुडवर्णे तु पाषाणं कापोते गृहगोधिका। आपो निस्त्रिंशवर्णाभे भस्मे वर्णे तु वालुका॥ (तृतीयखण्ड ९0, 11-13; विशेष द्रष्टव्य — प्रतिष्ठा लक्षण सार समुच्चय, पूर्वार्द्ध)

प्रजा का भला होता है।[1]

अपराजित उवाच —

यदि तत्प्राप्यते चिह्नं यथोक्तं च द्रुमाः शिलाः।
तेषां विधिं क्रियायुक्तं कथयस्य परेश्वर॥ 21॥

अपराजित ने पूछा कि यदि आपने जितने चिह्न बताए हैं, वे चिह्न पेड़ों और शिला में पाए जाएँ तो हे परमेश्वर! उनकी दुरस्ती की विधि और क्रिया के बारे में भी बताने की कृपा करें।

विश्वकर्मोवाच —

पुनश्चेत्प्राप्यते चिह्नमानीत्वा नगरोत्तरे।
आरोपयेत्ततो वृक्षं क्षिपेद् भूमध्यतः शिलाम्॥ 22॥

विश्वकर्मा बोले कि पुनः यदि लाए गए वृक्ष नगर के उत्तर में रखे हों और उनमें ये चिह्न पाए जाएँ, उन वृक्षों को भूमध्य में डाली गई शिला के पास आरोपित कर दें।

शिलोपरि स्थण्डिलं च वृक्षं चोत्तरमाश्रितम्।
मृत्युञ्जयजपं चाष्टाधिकं कुर्यात्तथायुतम्॥ 23॥

और, शिला पर मिट्टी का ढेर लगा लें और वृक्ष को उस स्थण्डिल के ढेर के

---

1. शिला लक्षणों को उभारने की विधि विष्णुधर्मोत्तर व विवेकविलास में आई है। निर्मल कांजी के साथ बिल्वफल अथवा श्रीफल की छाल पीसकर पाषाण या काष्ठ पर लेप करने से उसका मण्डल (दाग) उजागर हो जाता है। जिसकी प्रतिमा बनानी हो उस काष्ठ या पाषाण पर लेपन करना चाहिए। लेप करने से यदि पाषाण में स्वाभाविक रूप से मधु जैसा रङ्ग दृष्टिगोचर हो तो उसमें जुगनू होगा, भस्म जैसा मण्डल दिखाई दे तो रेत, गुड़ के समान हो तो लाल मेंढ़क, अम्बर जैसा हो तो पानी, कबूतर जैसा वर्ण हो तो छिपकली, मञ्जीठ जैसा रङ्ग हो तो मेंढ़क, रक्त जैसा हो तो गिरगिट, पीले वर्ण का दीख पड़े तो गोह, कपिल वर्ण का हो तो चूहा, काले वर्ण का हो तो सर्प तथा चित्र-विचित्र मण्डल दृष्टिगोचर हो तो भीतर बिच्छू है— ऐसा जानना चाहिए। उक्त दाग वाले पाषाण या काष्ठ की प्रतिमादि बनाने से सन्तान, लक्ष्मी, प्राण और राज्य का विनाश होता है। प्रतिमा के काष्ठ में या पाषाण में कीला, छिद्र, पोलेपन, जन्तुओं के जाले, सन्धि, मण्डलाकार रेखा या गार हो तो बड़ा दोष समझना चाहिए। प्रतिमा के काष्ठ या पाषाण में जो किसी भी तरह रेखा पड़ी हुई हो तो वह मूल वस्तु के रङ्ग सम हो तो कुछ दोष नहीं और मूल वस्तु से यदि अन्य वर्ण की हो तो दोष जानना चाहिए— निर्मलेनारनालेन, पिष्ट्या श्रीफल त्वचा। विलिप्तेऽश्मनि काष्ठे वा, प्रकटं मण्डलं भवेत्॥ मधुभस्मगुडव्योम कपोतसदृशप्रभैः। माञ्जिष्ठैररुणैः पीतैः कपिलैः श्यामलैरपि॥ चित्रैश्च मण्डलैरैभिरन्तर्ज्ञेया यथाक्रमम। खद्योतो वालुका रक्तभेकोऽम्बुगृहगोधिका॥ दर्दुरः कृकलासश्च गोधाखुसर्पवृश्चिकाः। सन्तानविभवप्राण राज्योच्छेदश्च तत्फलम्॥ कीलिकाछिद्रसुषिरत्र सजालकसन्धयः॥ मण्डलानि च गारश्च, महादूषणहेतवे॥ प्रतिमायां दवरका भवेयुश्च कथञ्चन॥ सदृग्वर्णा न दुष्यन्ति, वर्णान्नत्वेऽतिदूषिताः॥ (विवेकविलास 1, 183-188)

उत्तर में आश्रित या खड़ा करें। इसके बाद एक अयुत से आठ अधिक अर्थात् दस हजार आठ महामृत्युञ्जय जप करने चाहिए।

अष्टोत्तरसहस्त्रं च हुत्वापामार्गसमिद्भिः।
दिक्षु चिन्हैः पूरितं च समुद्धरेत्पुनर्नवम्॥ 24॥

इसी प्रकार एक हजार आठ आहुतियाँ अपामार्ग या चिचड़ा की समिधा से हवन में देनी चाहिए। उनके सभी दिशओं में प्राप्त चिह्नों को पूरित करके उन सबको पुनः नए बनाकर उनका उद्धार कर लें।

अनेन विधिना वत्स उद्धरेच्च शिलाद्रुमम्।
अप्रशस्तं प्रशस्तं स्यादनेन विधिनान्वितम्॥ 25॥

हे वत्स! इस विधि से तुम शिला और वृक्षों के काष्ठ का उद्धार करके अप्रशस्त को भी प्रशस्त कर सकते हो। यह विधि अप्रशस्त को प्रशस्त करने वाली है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
वनयात्राशिलापरीक्षाधिकारो नाम चत्त्वारिंशत्तमं सूत्रम्॥ 40॥
इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में वनयात्रा
शिलापरीक्षा अधिकार नामक चालीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 40॥

हस्तकम्बीप्रमाणमेकचत्वारिंशं सूत्रम्॥ 41॥

विश्वकर्मोवाच —

हस्तलक्षणमानं च गायत्रीमानसम्भवः$_{24}$।
मानोन्मान-प्रमाणं च सर्वकर्मसु कारणम्॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि हस्त लक्षण मान अर्थात् गज के लक्षणमान गायत्री छन्द के चौबीस अक्षरों की तरह ही चौबीस खण्डों का होता है और यह गजमान, उन्मान, प्रमाण आदि के लिए सभी कर्मों में, कारणरूप में प्रयुक्त होता है।

विज्ञेयं सूत्रधारेण हस्तमानं च लक्षणम्।
मानोन्मानप्रमाणाख्यं वास्तुशास्त्रादिदीपकम्॥ 2॥

अतः सूत्रधार के हस्तमान अर्थात् गज के मान के लक्षण जानने चाहिए जो मान, उन्मान, प्रमाणादि वास्तुशास्त्र को प्रकाशित करने वाले दीपक के समान हैं।

भास्करोदयनाद् दिष्टः किरणैश्च प्रकाशितः।
जालान्तरगते रश्मौ सूक्ष्मरेण्वष्टमांशकः॥ 3॥

परमाणुः प्रमाणं तत् समुद्दिष्टं समन्ततः।
परमाणुरष्टगुणमेकत्र पिण्डलक्षणम्॥ 4॥
रजोभिरष्टगुणितं केशाग्रं च प्रसिद्ध्यति।
केशाग्रैरष्टगुणितैर्लिक्षाक्रमं तु योजयेत्॥ 5॥
केशाग्रैश्चाष्टगुणितैर्लिक्षा चैका तु सिद्ध्यति।
लिक्षाभिरष्टभिर्यूका यूकाभिश्चाष्टभिर्यवः॥ 6॥

किसी अन्धेरे कक्ष में सूर्योदय के बाद छप्पर के किसी जालान्तरगत छिद्र से जो रश्मि आती है, उस रश्मि में अन्धकार कमरे में सूक्ष्मातिसूक्ष्म धूलिकण प्रकाशित होते दिखाई पड़ते हैं, ऐसे सूक्ष्म धूलीकणों को परमाणु कहते हैं और इस तरह के आठ परमाणु की मात्रा का एक रेणु का प्रमाण कहा गया है। इस परमाणु का आठ गुणा एक पिण्ड अर्थात् एक रज कहा गया है। ऐसे रज का आठ गुना केशाग्र अर्थात् बाल की नोक प्रमाण प्रसिद्ध है। केशाग्र का आठ गुना एक लिक्षा बनती है तथा ऐसी लिक्षा का आठ गुना एक यूका होती है और यूका का आठ गुना यव अथवा जौ होता है।[1]

तथाष्टगुणितैश्चेव यवैर्मानं प्रसिद्ध्यति।
निर्दोषं मानमेतं च स्यात्परमाणुमूलकम्॥ 7॥

इस तरह आठ-आठ गुणित करते हुए रेणु से यव मान प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार यह परमाणु मूलक मान निर्दोष मान कहा गया है।

उत्तममध्यमाधमं त्रिविधो माननिर्णयः।
न्यूनाधिके कृते हस्ते दोषः स्याच्च महाभयम्॥ 8॥

ऐसे मानों के भी तीन प्रकार कहे गए हैं जिन्हें उत्तम, मध्यम तथा अधम त्रिविध मान

---

1. इसी प्रकार वराहमिहिर ने कहा है— जालान्तरगे भानो यदणुतरं दर्शनं रजो याति। तद्विन्द्यात् परमाणुं प्रथमं तद्धि प्रमाणानाम्॥ परमाणुरजो वालाग्रलिक्षयूकं यवोऽङ्गुलं चेति। अष्टगुणानि यथोत्तरमङ्गुलमेकं भवति संख्या॥ (बृहत्संहिता 58, 1-2) इसकी टीका में उत्पलभट्ट ने निम्न प्रमाण उद्धृत किया है— जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः। प्रथमं तत्प्रमाणां परमाणुं प्रचक्षते॥ तस्माद्रजः कचाग्रं च लिक्षा यूका यवोऽङ्गुलम्। क्रमादष्टगुणं ज्ञेयं जिनसङ्ख्याङ्गुले करः॥ (सविवृत्तिबृहत्संहितायाम् 57, 2) कौटलीयार्थशास्त्र में आया है— अष्टौ परमाणवो स्थचक्रविप्रुट। अष्टौ लिक्षा। ता अष्टौ यूकामध्यः। ते अष्टौ यवमध्यः। अष्टौ यवमध्या अङ्गुलम्॥ अर्थात्- आठ परमाणु एक स्थरेणु के बराबर होते हैं, आठ स्थरेणु एक लिक्षा, आठ लिक्षा एक यूकामध्य, आठ यूकामध्य एक यवमध्य तथा आठ यवमध्य एक अङ्गुलमान के बराबर होते हैं। इसी प्रकार मत्स्यपुराण में कहा गया है— जालान्तरप्रविष्टानां भानूनां यद्रजः स्फुटम्। त्रसरेणुः स विज्ञेयो बालाग्रं तैरथाष्टभिः॥ तदष्टकेन लिख्या तु यूका लिख्याष्टकैर्मता। यवो यूकाष्टकं तद्वष्टभिस्तैस्तदङ्गुलम्॥ (अध्याय 258, 17-18)

निर्णय किए गए हैं। अस्तु, हस्त में अर्थात् गज के प्रमाण में इनको बताए गए नियमों से न्यूनाधिक रखने पर महान भय उत्पन्न हो सकता है, अतः पूरा ध्यान रखना चाहिए।

ज्येष्ठादीना हस्तभेदाः —

ज्येष्ठं चाष्टयवैः$_8$ प्रोक्तं मध्यमं सप्तभिर्यवैः$_7$ ।
स्यात्कनिष्ठं षड्$_6$ यवैस्तच्चतुर्विंशतिभिः$_{24}$ करः ॥ 9 ॥[1]

आठ यव के प्रमाण के 24 भागों वाले गज को ज्येष्ठ गज कहा जाता है। सात यव के प्रमाण के चौबीस भागों वाले गज को मध्यम और छह यव के प्रमाण के चौबीस भागों वाले गज को कनिष्ठ गज कहा जाता है। यहाँ गज को ही कर अथवा हस्त या हाथ कहा है।

एवं मानोद्भवो हस्त उदितश्च त्रिधा क्रमात्।
अङ्गुष्ठाग्रे पर्वरेखा पुष्पकं त्रिभिरङ्गुलैः ॥ 10 ॥

इस प्रकार के मान अर्थात् नाप से ही उद्भव होने वाले अर्थात् बनने वाले हस्त का उदित भी तीन प्रकार का होता है— हस्त या गज के अङ्गूठे से दबे भाग के आगे से पर्व रेखाएँ आरम्भ होती है उनमें तीन अङ्गुल यव प्रमाणानुसार बने भाग पर पुष्पचिह्न बनाए जाते हैं[2] और निम्न रुद्र गायत्री मन्त्र के चौबीस अक्षरों के अनुसार ये चौबीस भाग बनते हैं—

अथ रुद्रगायत्री —

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्............. ॥ 11 ॥

(वह तत्पुरुष जिसका का कि रूप महादेव है, उसका ध्यान करते हैं, वह रुद्र हमारी बुद्धियों को आलोक के मार्ग पर प्रेरित करें।) इसमें चौबीस अक्षर हैं।[3]

---

1. यह श्लोक समराङ्गण. से तुलनीय है— अष्टाभिः सप्तभिः षड्भिरङ्गुलानि यवोदरैः। ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानि तच्चतुर्विंशतिः करः ॥ (समराङ्गण. 9, 5)

2. राजवल्लभ में कहा गया है कि एक मात्रा या अङ्गुल बिना छिलके के छह उत्तम यवों के मध्य को संयुक्त करने से होती है। हस्त के पूर्व भाग में एक-एक अङ्गुल की दूरी पर चार पुष्प, इसके बाद हस्त के मध्य से अङ्गुल आठों पर्व पर्यन्त पुष्प करने चाहिए— हस्तः पर्वाष्टयुक्तो मुनिवररचितः पर्व चैकं त्रिमात्रम् मात्रा षण्णां यवानामुदरविमिलिता निस्त्वचामुत्तमानाम्। (राजवल्लभ. 1, 33)

3. यह मन्त्र लिङ्गपुराण में (खण्ड 2, 27, 45; 2, 48, 7 तथा 2, 48, 7 पर) आया है। साधकों के लिए इसके जाप का नियम इस प्रकार कहा गया हैं— ॐ तत्पुरुषाय से अङ्गुष्ठ, विद्महे से तर्जनी, महादेवाय से मध्यमा, धीमहि से अनामिका, तन्नो रुद्रः से कनिष्ठिका का स्पर्श करें, प्रचोदयात् से करतलकर पृष्ठ स्पर्श करें। इसके लिए अङ्गन्यास - ॐ तत्पुरुषाय से हृदय, विद्महे से सिर, महादेवाय से शिखा, धीमहि से कवच, तन्नो रुद्रः से नेत्रत्रय, प्रचोदयात् से अस्त्र हथेली में दो अङ्गुली ताडन करे।

एते अङ्गुलाक्षराणि क्रमतश्चैव संस्थितः।
पुष्पके देवतास्तिस्त्रः प्रतिष्ठाप्या यथाक्रमम्॥ 12॥

ये इतने अङ्गुल अक्षरोंके अनुसार क्रमशः बनते हैं और प्रत्येक पुष्प चिह्न के स्थान पर तिस्त्र पर यथाक्रम देवताओं की प्रतिष्ठा करके स्थापना करनी चाहिए।

आदौ विष्णुरग्रे रुद्रो ब्रह्मा मध्ये च संस्थितः।
भूर्भुवः त्वर्बीजत्रयं स्युराद्यस्वरदेवताः॥ 13॥

हस्त-गज के अन्त में विष्णु, आगे की ओर रुद्र और मध्य में ब्रह्मा स्थित होते हैं तथा भूर्भुवः स्वः की बीजत्रयं की आद्यस्वर देवता रूप में प्रतिष्ठा है।

ईश्वरो वायुविश्वे च वह्निर्ब्रह्मा दिवाकरः।
रुद्रौ यमो विरूपाख्यो वसुरिन्द्रो जलाधिपः॥ 14॥
स्कन्द इच्छा क्रियाज्ञानं धनदो विजयस्तथा।
वासुदेवो बलभद्रः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः॥ 15॥
एते च वासुदेवांशाः कम्बिकानिश्चला स्मृताः।
आगमैर्वेदमन्त्रैश्च पूज्याश्च परमाः कलाः॥ 16॥

ईश्वर, वायु, विश्वेदेव, वह्नि, ब्रह्मा, दिवाकर, रुद्र, यम, विरुपाक्ष, वसु, इन्द्र, वरुण, स्कन्द, इच्छा, क्रिया, ज्ञान, कुबेर, विजय, वासुदेव, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध— इतने सभी वासुदेव के अंश इस कम्बिका, गज में निश्चल रूप से अवस्थित है, ऐसा माना जाता है। अस्तु, आगमों और वेद मन्त्रों से इस परमा शिल्प कला को पूजा जाता है।

रुद्रश्च पवनस्त्वष्टाऽनलो ब्रह्मा तथा यमः।
वरुणो धनको विष्णुर्मूलतश्चान्ततः स्थिताः॥ 17॥

रुद्र, पवन, त्वष्टा, अनल, ब्रह्मा, यम, वरुण, कुबेर, विष्णु आदि मूल से लेकर अन्त तक गज में स्थित है।

हस्तोपयोगीकाष्ठादीनां —

अञ्जनैः खदिरैर्वंशैः कनिष्ठाः सर्जपादपैः।
हेमरौप्यताम्रमयाः श्रेष्ठा लौहाश्च मध्यमाः॥ 18॥

हस्त जिन-जिन धातु, काष्ठादि से बनाए जा सकते हैं उनके नाम हैं— अञ्जन वृक्ष की लकड़ी, खदिर, बाँस तथा सर्जपादप या सहजना के कनिष्ठ तथा स्वर्ण, चाँदी, ताम्र के श्रेष्ठ और लोहे के हस्त-गज मध्यम कहे गए हैं।[1]

1. राजवल्लभ. में कहा गया है— पुष्पैः चत्वारि पूर्वं तदनु च विभजेद्बुलैः पर्वपुष्पैर्निर्ग्रन्थी रक्तकाष्ठो मधुमय

आयामश्चतुर्विंशत्या त्रिविधाङ्गुलतः स्मृतः।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानां प्रत्येकं हस्तसङ्ख्यया॥ 19॥

हस्त, गज की लम्बाई, आयाम को त्रिविध अङ्गुल मानों में भी चौबीस अङ्गुल का ही माना है। इनमें ज्येष्ठ, मध्यम, कनिष्ठ तीनों में प्रत्येक की संख्या गज में चौबीस ही होती है।

नगरादीनामानार्थहस्तप्रमाणम् —

नगरग्रामपुरः खेटकूटानां कर्वटस्य च।
मानसङ्ख्या योजनैश्च ज्येष्ठहस्तेन मापयेत्॥ 20॥

इस मान प्रमाण से नाप किए जाने वाले स्थानों के नाम इस प्रकार हैं— नगर, ग्राम, पुर, खेट, कूट, कर्वट आदि की मान संख्या योजनों में ज्येष्ठ गज से मापनी चाहिए।

प्रासादप्रतिमालिङ्गजगतीपीठमण्डपान्।
राज्ञां निवेशं भवनं मापयेन्मध्यमानतः॥ 21॥

प्रासाद, प्रतिमा, लिङ्ग, जगती, पीठ, मण्डप, राजा के निवास भवन के लिए मध्यम गज मान से मापना चाहिए।

शय्यासनं स्थालीपात्रं छत्रसिंहासनादिकम्
शस्त्रं ज्ञानं च झम्पानं नापयेच्च कनिष्ठतः॥ 22॥

शय्या, आसन-बाजोट-चौकी, स्थाली, पात्र, छत्र, सिंहासनादि, शस्त्र, यान, पङ्खे आदि को कनिष्ठ गज से मापना चाहिए।

सिद्धार्थाङ्गुलपृथुत्वे पिण्डं कुर्यात् तदर्धतः।
चतुर्विंशत्यङ्गुलानां क्रमेण नवदेवताः॥ 23॥

सिद्धार्थ अङ्गुल अर्थात् मध्यमा अङ्गुल के समान मोटाई का पिण्ड करके, उसके आधे से चौबीस अङ्गुल के क्रम से नव देवता हैं।

रुद्राद्या ब्रह्मापर्यन्तं देवाः स्थानेषु पुष्पके।
ब्रह्मतो विष्णुपर्यन्तं रेखाः स्युर्द्वादशाङ्गुलैः॥ 24॥

इनमें रुद्र से आरम्भ करके ब्रह्मा तक के देवों के पुष्पक होते हैं और ब्रह्मा से विष्णु पर्यन्त के बारह अङ्गुल में रेखा होती है।

उदितः खदिरो वंशधात्वोः॥ (राजवल्लभ. 1, 33)

समराङ्गण. में आया है— तस्य निर्माणदारूणि देवताश्च प्रचक्ष्महे॥ खदिराञ्जनवंशादिश्लक्ष्णरूपं मनोरमम्। सारवच्च भवेदिष्टं दारु हस्तप्रकल्पने॥ ग्रन्थिलं लघु निर्दग्धं जीर्णं विस्फुटितं तथा। अदृढं कोटराक्रान्तं दारु हस्ताय नेष्यते॥ (समराङ्गण. 9, 10-12)

ब्रह्मादिस्थानपञ्चकं द्विभक्तं चाङ्कितं त्रिधा।
अष्टतङ्गुलं कार्यं चतुर्धा द्वादशाङ्कितम्॥ 25॥

ब्रह्मा से आरम्भ होने वाले स्थान पञ्चक को दो भागों में बाँटे और अष्टम स्थान को तीन भाग में बाँटे तथा बारहवें अङ्गुल स्थान को चार भाग में बाँटकर अङ्कित कर देना चाहिए।

इत्युक्तमानप्रमाणं प्रयुक्तं वास्तुवेदिभिः।
वास्तोरुत्तपार्श्वेऽर्च्य कम्बिकाकलशादिकम्॥ 26॥

इस प्रकार मान प्रमाण को वास्तुशास्त्र के विद्वानों ने प्रयुक्त किया है। इस कम्बिका-गज की और कलशों की वास्तु के उत्तर की ओर स्थापना करके पूजा करनी चाहिए।

आच्छादयेद्वस्त्रयुग्मैः कम्बिकां कलशांस्तथा।
सुगन्धधूपपुष्पैश्च देवतार्थानादिकैः॥ 27॥

इसके बाद, दो वस्त्रों से कम्बिका-गज और कलश को अलग-अलग ढक दे और सुगन्धित धूप, पुष्पों से देवताओं का पूजन, अर्चादिक करें।

समुद्धरेत् पूजयित्वा स्तोत्रैर्याम्यकरोत्तमैः।
उच्चाटनं व्याधी रोगस्तथा सन्तापकारणम्॥ 28॥
अग्निभयं प्रजापीडा मृत्युर्व्याधिः पुनस्तथा।
निधनं नरकपातं रुद्रादि विष्णुतस्तथा॥ 29॥

इसी प्रकार स्तोत्र का पाठ करते हुए दाहिने उत्तम हाथ से उनको उठाएँ। कम्बिका-गज के रुद्र से आरम्भ करके ब्रह्मा भाग तक (पीड़ित होने पर) होने वाले विघ्न हैं— 1. उच्चाटन, 2. व्याधि, 3. रोग, 4. सन्ताप, 5. अग्निभय, 6. प्रजापीड़ा, 7. मृत्यु व्याधि, 8. निधन और 9. नरक में गिरना।

एकाङ्गुलौ मानप्रयोग एवं सङ्ख्याशब्दादिकोत्तमः ?।
पर्यायशब्दा व्यवहारयोगे समीरिताः सूत्रकलाप्रवीणैः॥ 30॥

एक अङ्गुल से बनने वाले मान, माप का प्रयोग एवं शब्दादिकों के द्वारा समझी जाने वाली संख्या के उत्तम पर्याय शब्द जो व्यवहार में लाने के योग्य हैं, ऐसे सूत्र कला के प्रवीण विद्वानों ने निर्धारित किए हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां हस्तकम्बीप्रमाणाधिकारो नामैकचत्त्वारिंशत्तमं सूत्रम्॥ 41॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में हस्तकम्बी प्रमाण अधिकार नामक इकतालीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 41॥

गणितशब्दनिघण्टुर्नाम द्विचत्वारिंशं सूत्रम् ॥ 42 ॥

विश्वकर्मोवाच —

शब्दा उक्ता अङ्गुलाद्या निघण्टौ भाषितानि च।
भूयोजनप्रमाणानि प्रवक्ष्यामि यथार्थतः ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि निघण्टु में भाषित जो शब्द अङ्गुल से आरम्भ करके भूमि के योजन प्रमाणों के लिए कहे गए हैं, उनको मैं ठीक-ठीक तरह से कहता हूँ।

अथाङ्कज्ञानमाह —

क्ष्माक्षितितनुशब्दरूप-मन्त्रचन्द्राश्चैकपर्यायाः।
पक्षयुग्मनेत्रद्वन्दगोलकं दस्त्राश्विन्यौविषाणचरणा द्वयोः ॥ 2 ॥

एकादि संख्याओं के पर्यायार्थक शब्द क्रमशः ये हैं— संख्या 1 के लिए क्षमा, क्षिति, तनु, शब्द, रूप, मन्त्र और चन्द्रमा शब्दों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार संख्या 2 के लिए—पक्ष, युग्म, नेत्र, द्वन्द, गोलक, हस्त, अश्विनौ, विषाण और चरण होते हैं।

अग्नयो गुणरामाश्च कालसङ्ख्याविधिस्तथा।
शक्तयो हरनेत्राणि त्रयाणां वाचका इमे ॥ 3 ॥

संख्या 3 के लिए अग्नि, गुण, राम, काल, संख्या, विधि, शक्ति-त्रिशूल, हरनेत्र— इतने तीन के पर्याय हैं।

कृतकोणयुगविध्यास्य तुर्याम्बुधि दिग्विदिग्मङ्गला।
गोचरणमार्गाख्यातं भागाः श्रुतयश्च सङ्ख्या चतुर्णाम् ॥ 4 ॥

संख्या 4 के लिए कृत, कोण, युग, विधिमुख या आस्य, तुर्य, अम्बुधि, दिक्-विदिक्, मङ्गल, गोचरण, मार्ग, भाग, श्रुतियाँ— ये संख्या चार के पर्याय हैं।

इषुविषयतत्त्वेन्द्रियधृषण ? (स्वर्द्धु!)शम्भुवक्त्र क्षेत्राणि।
वास्तुलिङ्ग प्रतीता द्दत ? (व्रत!)भवमुखानि च पञ्चानाम् ॥ 5 ॥

संख्या 5 के लिये इषु, विषय, तत्त्व, इन्द्रिय, (धृषण ? स्वर्द्धु), भूषण, शम्भुवक्त्र, क्षेत्र, वास्तुलिङ्ग, प्रतीत, द्दत ? भवमुख— ये पाँच के पर्याय हैं।

गायत्रीदर्शनखण्डरसर्तुयान कर्णिक ?(कोणक!) रागषणमिश्रम्।
द्विशक्ति काणगण रत्नशक्त्या ननामृत ग्रन्थ स्कन्दवक्त्रं षण्णाम् ॥ 6 ॥

संख्या 6 के लिए गायत्री, दर्शन, खण्ड, रस, ऋतु, यान, कर्णिक ? (कोणक), राग, षण, मिश्र, द्विशक्ति, काणगण, रत्नशक्ति, नानामृत, ग्रन्थ, स्कन्दवक्त्र (कार्तिकेय के मुख, षडानन)— इतने छह संख्या के पर्याय हैं।

समुद्राद्रिद्वीपनगा कन्या यक्ष स्वर नाद खण्डाग्रम ?(खण्डाङ्गम्)।
ऋषिमुनीन्द्रसप्तलोकसूर्याश्व(श्व ?) पातालानि सप्तानाम् ॥ 7 ॥

संख्या 7 के लिए समुद्र, अद्रि, द्वीप, नग, कन्या, यक्ष, स्वर, नाग खण्डाग्र ?, खण्डाङ्गम, ऋषि, मुनीन्द्र, सप्तलोक, सूर्याश्व, पाताल— ये सात संख्या के पर्याय हैं।

शैलान्वय वसुपद्मदल जातिक्रमच्छन्दांसि ?।
व्यक्तिगम स्वराम्रमानशंभव अष्टानाम् ? ॥ 8 ॥

संख्या 8 के लिए शैल, अन्वय, वसु, पक्षदल, जातिक्रम, छन्द ? व्यक्तिगम, स्वर, आम्रमान— ये संख्या आठ के पर्याय हैं।

अलङ्कार रन्ध्र प्रदेश अङ्गस्थान कत्याहस्ताङ्गलवण(?कुलमुद्रणां)।
भू वरिष्ठं ताराष्टैक क्रमोद्भव नवानाम ? ॥ 9 ॥

संख्या 9 के लिए अलङ्कार, रन्ध्र, प्रदेश, अङ्गस्थान, कत्या, हस्ताङ्ग, लवण, भू, वरिष्ठ, ताराष्टैक— ये संख्या नौ के पर्याय हैं।

निस्वरादिकविष्णवतारप्रदेशैकनखार्धस्वरताल दशानाम ?

संख्या 10 के लिए निस्वरादिक, विष्णु के अवतार, प्रदेश, नख, अर्धस्वर और ताल— ये दस की संख्या के पर्याय है।

दशैकरुद्रभूताद्विगोकर्णशातत्वेकादशानाम् ?

संख्या 11 के लिए दशैक (दस + एक), रुद्र, भूताद्विगोकर्णशतत्वे ?— ये ग्यारह के पर्याय हैं।

तालवितस्तिमुखवदनसूर्यमासा केशं च भानु
रुद्रैक शिव द्वादशानाम् ?

संख्या 12 के लिए ताल, वितस्ति, मुख, वदन, सूर्य, मास, केश, भानु, रुद्रैक व शिव— ये बारह संख्या के पर्याय हैं।

दैत्यादि सुरेन्द्रादित्या सूर्यैक खात त्रिदशास्त्रयोदशसुवाचका: ?

संख्या 13 के लिए दैत्य, सुरेन्द्र, आदित्य, सूर्येक, खात, त्रिदशा, त्रयोदश अर्थात् तेरह संख्या के पर्याय हैं।

भुवनमनुव्यक्ति शाक्तेन्द्र खण्डल द्विसप्तमन्वन्तर चतुर्दशानाम् ?

इसी प्रकार संख्या 14 के लिए भुवन, मनु, व्यक्ति, शाक्तेन्द्र, खण्डल, द्विसप्त और मन्वन्तर— ये चौदह संख्या के पर्याय हैं।

तिथिर्मासार्धं पञ्चदशानाम्।

संख्या 15 के लिए तिथि और मासार्ध को पर्याय कहा गया है।

कला द्विरष्ट तृपभृङ्गा पक्षैक बिन्दुषोडशानाम्।

संख्या 16 के लिए कला, द्विरष्ट, तृपभृङ्ग, पक्षैक, बिन्दु और षोडश ये सोलह के पर्याय हैं।

जन्मपक्षरंभोभ्यासश्चेति द्विरष्टैकन्यून सप्तदशानाम्।

संख्या 17 के लिए जन्मपक्षरंमोभ्यास? द्विरष्टैकन्यून (8 + 8 + 1 = 17)— ये सप्तदश संख्या के पर्याय (स्पष्ट नहीं है)।

वेदाङ्गस्मृति शान्ति विभूति पौराण्यभवोद्भव
महाव्रत मेघराजश्चाष्टादशानाम्।

संख्या 18 के लिए वेदाङ्ग, स्मृति, शान्ति (आहुति- वैष्णवी, ऐन्द्री, ब्राह्मी, रौद्री, वायव्या, वारुणी, कौबेरी, भार्गवी, प्राजापत्या, त्वाष्ट्री, कौमारी, वह्निदेवता, मारुद्गणा, गान्धारी, नैर्ऋतकी, आङ्गिरसी, याम्या, सर्वकामदा, पार्थिवी- अग्निपुराण 264, 7-9), विभूति, पुराण, भवोद्भव, महाव्रत, मेघराज— ये अठारह संख्या के पर्याय हैं।

अधृति अतृप्ति विफला अमोघात्वेकोनविंशतिः।

संख्या 19 के लिए अधृति, अतृप्ति, विफला, अमोघा— ये एकोनविंशति यानी उन्नीस के पर्याय हैं।

नखविश्वा विश्वपार स्वन्ती धृतीप्ति स्याद्विंशतिः।

संख्या 20 के लिए नख, विश्वा, विश्वपार, स्वन्ती, धृतिप्ति— ये बीस संख्या के पर्याय हैं।

त्रिषाक्रान्तामूर्च्छनास्तेकविंशतिः।
कृष्णाक्रान्ता भूर्ध्यानां त्वेकविंशतिः।

संख्या 21 के लिए त्रिषाक्रान्ता, मूर्च्छना, कृष्णाक्रान्ता, भूर्ध्याना— ये इक्कीस संख्या पर्याय है।

श्रुत्याऽहुत्याक्रमानां द्वाविंशत्तिः।[1]

संख्या 22 के लिए श्रुतियाँ (सङ्गीत में तीव्रा, कुमुद्वती, मन्दा, छन्दोवती, दयावती, रञ्जनी, रक्तिका, रौद्री, क्रोधी, वज्रिका, प्रसारिणी, प्रीति, मार्जनी, क्षिति, रक्ता, सन्दीपिनी, आलापिनी, मदन्ती, रोहिणी, रम्या, उग्रा एवं क्षोभिणी श्रुतियाँ

---

1. तृसृतां स्वामारोप्या द्वाविंशत्तिः ? इति प्रकाशित पाठः।

होती हैं) और आहुति क्रम (विष्णुस्मृति में आया है कि आहुति के क्रमशः बाईस क्रम हैं)— ये बाईस के पर्याय हैं।

त्रिकात्रीयंकास्तीर्णा त्रयोविंशतिः।

संख्या 23 के लिए त्रिकात्रीयं कास्तीर्णा— ये तेबीस के पर्याय हैं।

तीर्था जिनमहाद्रिशासनी चतुर्विंशतिः।

संख्या 24 के लिए तीर्थ, जिन, महाद्रिशासनी— ये चौबीस के पर्याय हैं।

तत्त्वगुणयुग्मात् पञ्चविंशतिः।

संख्या 25 के लिए तत्व, गुण$_5$ युग्म$_2$— ये पच्चीस के पर्याय हैं।

एकाङ्गुलादि हस्तान्ता समाः शब्दाः प्रकीर्तिताः।
निघण्टौ एतावन्तश्च पर्यायकाः सुदीपकः॥ 18॥

इस प्रकार एक अङ्गुल से आरम्भ करके हस्त-गज के अन्त तक के लिए समान शब्दों को कहा गया। निघण्टु[1] में इनको पर्याय शब्द से स्पष्ट किया जाता है।

---

1. 'सङ्गीतदामोदर' नामक ग्रन्थ में विस्तृत अङ्कप्रतीक कोष आया है। अपराजित. के प्रस्तुत अध्याय के खण्डित होने के कारण यह उद्धृत करना अप्रासङ्गिक नहीं होगा। संख्या सूचक पारम्परिक शब्द निम्नानुसार होंगे— एकः शान्तरसः शुक्लः रोचनी रजनीमणिः। आत्मा गजास्यवदनः स्वाराड् गजतुरङ्गमौ॥ द्वयं शृङ्गारपङ्कासिधारा श्रीरामनन्दनाः। आश्विनेय नदीकूलस्तनदन्तच्छदभ्रुवः॥ त्रयं वीरस्वरग्रामग्रीवारेखागुणाग्नयः। गङ्गाधरहरदृक् कालवलिशूलशिखाजगत्॥ वामनाङ्घ्रिमहीकोणरामज्वरशिरःपुरः। मेरुशृङ्गं कालिदासकाव्यं सन्ध्याथ पुष्करम्॥
अर्थात् : एक होता है— शान्तरस, शुक्ल (शिव), (रजनीमणि), आत्मा, गणेश (गजवदन), इन्द्र (स्वाराट्), गज (ऐरावत) तथा तुरङ्गम (उच्चैः श्रवा)। दो संख्या के सूचक है— शृङ्गार (द्विविध), पङ्क, असिधारा, राम के पुत्र (लव-कुश), अश्विनीकुमार, नदीकूल, स्तन, अधरोष्ठ, भौंहें। तीन हैं— वीर (त्रिविध), स्वरग्राम, गर्दन की रेखाएँ, गुण, अग्नियाँ, गङ्गाधर शिव के नेत्र, काल, वलि, शूल, शिखा जगत्, वामन के चरण, मही के कोण, राम, ज्वर, मस्तक, पुर, मेरु के शिखर, कालिदास के काव्य, सन्ध्याएँ तथा पुष्कर।
चत्वारि मार्गा वर्गाब्धिवेदब्रह्मामुखाश्रमाः। उपायवर्णसेनाङ्गयामविष्णुभुजायुगम्। पशुपादेन्द्रमातङ्गदन्तशास्त्रदशादयः॥ पञ्च हास्यरसस्वर्द्रुभूतरौद्रास्यपाण्डवाः। व्रताग्नीन्द्रियवर्गाङ्गानिलप्रेतमहामखाः॥ पुराणलक्षणं पूर्वमहापापेन्द्रियार्थकाः॥ षट् चक्रवर्तितर्काङ्गसेनानीमुखदर्शनम्। त्रिशिरोदृग्वज्रकोणो हास्यं रसगुणर्तवः॥
अर्थात्— चार होते हैं- मार्ग, बर्ग, समुद्र, वेद, ब्रह्मा के मुख, आश्रम, उपाय, सेना के अङ्ग, याम, विष्णु की भुजाएँ, युग, पशु के चरण, इन्द्र के मातङ्ग, उसके दाँत, शास्त्र और दशा आदि। पाँच के बोधक हैं— हास्य इस, स्वर्द्रु (स्वर्ग के वृक्ष), भूत, रुद्र के मुख, पाण्डव, व्रत, अग्नि, इन्द्रिय, वर्ग, अङ्ग, अनिल (प्राण), प्रेत, महायज्ञ, पुराण के लक्षण, पूर्व, महापाप एवं इन्द्रियार्थ। छह होते हैं— चक्रवर्ती, तर्क के अङ्ग, सेनानी-मुख, (कार्तिकेय के मुख), दर्शन, त्रिशिरा के नेत्र, वज्र के कोण, हास्य-भेद, रस, गुण तथा ऋतुएँ।

सप्त स्वराब्धिगमकपातालार्कतुरङ्गमाः। वारव्रीहिमुनिद्वीपराज्याङ्गत्रिदशालयाः। वैश्वानरशिखामुक्तिनगरीभुवनादयः॥ अष्टौ गीतगणब्रह्मकर्णयोगाङ्गिदिग्गजाः। कुलाचलव्याकरणवसुसिद्धिभुजङ्गमाः॥ दिक्कालशरभाङ्घ्रीशमूर्तयो गोखुरादयः। नवाङ्क रसभूखण्डपत्रीज्वरदृशो ग्रहाः॥ उत्कृत्तो रावणशिरोऽङ्गद्वाक्षकुलमुद्रणाः। सुधाकुण्डोपवीतीय-गुणव्याघ्रीस्तना निधिः॥

अर्थात्— सात के सूचक हैं— स्वर, समुद्र, गमक, पाताल, सूर्य के अश्व, वार, चावल (व्रीहि), ऋषि, द्वीप, राज्य के अङ्ग (सप्तप्रकृति), देवताओं के आलय, वैश्वानर की शिखाएँ, मुक्तियाँ, नगरी, भुवन आदि। अष्ट की संख्या के ज्ञापक है- गीत, गण, ब्रह्मा के कान, योग के अङ्ग, दिग्गज, कुलपर्वत, व्याकरण, वसु, सिद्धियाँ, भुजङ्ग (महानाग), दिक्, काल, शरभ के पैर (अष्टापद), ईश की मूर्तियाँ (अष्टमूर्ति), गाय के खुर आदि। नवाङ्क वाचक शब्द हैं- रस, भूखण्ड, पत्र, ज्वर, नेत्र, ग्रह, कटे हुए रावण के मस्तक, अङ्गद्वार, कुलमुद्रणा, सुधा-कुण्ड, उपवीती के गुण, व्याघ्री के स्तन तथा निधियाँ।

दशानङ्गदशहस्ताङ्गुलिरावणमस्तकाः। शङ्करश्रुतिदिग्विश्वेदेवशीतांशुवाजिनः। कृष्णावतारगिरिजाबाहुदायार्जुनाभिधः॥ एकादश महादेवाः सेनाः कुरुमहीपतेः॥ द्वादशादित्यसंक्रान्तिसारिकोष्ठकराशयः। सेनानीबाहुनयनमासक्षौणीशमण्डलाः॥

अर्थात्— दस की संख्या में हैं- अनङ्ग के दस हाथ, अङ्गुलियाँ, रावण के मस्तक, शङ्कर के कान, दिशाएँ, विश्वेदेव, चन्द्रमा के घोड़े, कृष्ण के अवतार, गिरिजा की भुजाएँ, दाय तथा अर्जुन के नाम। एकादश होते हैं-रुद्र (महादेव) तथा कुरुराज की सेनाएँ (ग्यारह अक्षौहिणी)। बारह हैं-आदित्य, उनकी संक्रान्तियाँ, सारियों (गोटियों) के कोष्ठक और राशियाँ, सेनानी (कार्तिकेय) की भुजाएँ और नयन, मास तथा राजा के मण्डल।

त्रयोदश स्युस्ताम्बूलगुणा दोहादितः कला॥ चतुर्दश स्युः सप्ताब्धिकूलेन्द्रध्रुवतारकाः। विद्याभुवनमन्वर्करथघोटकदृग्यमाः॥ पञ्चदश स्युस्तिथयः षोडशेन्दुकलाऽम्बिकाः। पृथ्वीचरणवर्णौघास्तथा सप्तदशोदिताः॥

अर्थात्— तेरह की संख्या के सूचक हैं- ताम्बूल के गुण तथा दोहा छन्द के आदिचरण की कला (मात्राएँ)।

चौदह होते हैं-सप्तसमुद्रों के किनारे, इन्द्र, ध्रुवतारक, विद्याएँ, भुवन, मनु, सूर्य-रथ के अश्वों के नेत्र तथा यम।

पन्द्रह की संख्या के बोधक है-तिथियाँ। षोडश हैं— इन्दु की कलाएँ तथा अम्बिकाएँ। पृथ्वी के चरण तथा वर्णों के समूह सत्रह कहे गए हैं।

अष्टादश द्वीपविद्यापुराणस्मृतिध्यान्यकम्। अक्षौहिण्यः कुरुक्षेत्रे पर्वाणि दीपकेश्वराः॥ महास्थानलक्षणानि कथितान्यूनविंशतिः॥ विंशती रावणभुजाङ्गुलीन्द्रहयलोचनम्। मूर्छनैकविंशतिः स्याद् द्वाविंशतिरपि श्रुतिः। जरासन्धे त्रयोविंशत्यक्षौहिण्यो रणानुगाः॥ चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा वैशेषिकगुणादयः॥

अर्थात्— अठारह होते हैं— द्वीप, विद्याएँ, पुराण, स्मृति, ध्यान्यक, कुरुक्षेत्र में खड़ी अक्षौहिणी सेनाएँ, पर्व (महाभारत के) तथा दीपकेश्वर। महास्थान के उन्नीस लक्षण कहे गये हैं। बीस हैं— रावण की भुजाएँ, अङ्गुलियाँ तथा इन्द्र के अश्व के लोचन। इक्कीस मूर्च्छना होती है। बाईस श्रुतियाँ हैं। जरासन्ध का रण में अनुगमन करने वाली तेईस अक्षौहिणी सेनाएँ थीं। वैशेषिक दर्शन में चौबीस गुणादि बताये गए हैं।

शतं शतभिषक्तारेन्द्रयज्ञपुरुषायुषम्। रावणाङ्गुल्यब्जदलधार्तराष्ट्राब्धियोजनम्॥ सहस्रं शेषाहिशिरोगङ्गास्यकमलच्छदाः। सूर्यरश्म्यर्जुनकरा वेदशाखेन्द्रदृष्टयः॥ द्विसाहस्रेण गणिता जिह्वा वासुकिशेषयोः॥ अयोध्यावासिनामायुरब्दो दशसहस्रतः। अयुतञ्च तनूजानां पुष्पवाहनभूपतेः॥ पुत्राः

वास्तुशास्त्रोद्भवं वेदेशे मानसङ्ख्या मानं सङ्ख्यायाश्च प्रमाणतः।

पद्मपद्देकः ? प्रमाणशास्त्रतः वास्तुशास्त्रार्थदीपकाः ॥ 19 ॥

वेदेश के द्वारा वास्तुशास्त्रोद्भव करते समय मापने के लिए प्रयोग करने हेतु प्रमाणतः मान संख्याओं को पद्म प(त्र)क रूप में प्रमाण शास्त्र को वास्तुशास्त्र के लिए अर्थ को समझने के लिए दीपिका या प्रकाश स्वरूप बनाया है।

हस्तः करो जिनाङ्गुलो द्वितालो मानदण्डकः।

वर्णवभुजोमाख्याता तमुशाश्वास्तुया ग्रहस्ताना ?॥ 20 ॥

हस्त, गज, कर आदि संज्ञा से कम्बिका मानदण्ड का जिनाङ्गुल अर्थात् 24 अङ्गुल प्रमाण का द्विताल अर्थात् 12 + 12 ताल अर्थात् 24 अङ्गुल प्रमाण का होता है। इसी को वर्णवभुज भी कहते हैं। इसी से ये शाश्वत हाथ-हस्त-गज-कर भी कहा जाता है।

(वर्णचतुष्क विख्यातः तत्तु शाखासु या गृहस्थानाम ?)

घन निबिड निर्घूट शिलार्ध ? द्विकरो दण्डार्धः युग्महस्तावदार्धा ?॥ 21 ॥

(यह वर्ण चतुष्क विख्यात है। इससे शा(स्त्रा)स्तु या ग्रहस्थों को)? घन निबिड़ निर्घूट शिलार्ध को? दो हाथ को दण्डार्ध युग्महस्ता, दो हाथ के बराबर अर्थात् आधा ?

द्विगुण द्विहस्तानां तुत्र इषु जिनन्य

इषु त्रिपाद दण्ड पा (प्रा) दु (द) नश्च।

षष्ठिसहस्राणि सगरस्य महात्मनः। लक्षमिन्दीवराक्षीणां शशबिन्दोरभूदिति। पूर्णं षष्ठिटसहस्रेण पुत्रलक्षं मुरद्विषः॥

अर्थात्— सौ की संख्या में सौ भिषक्, तारेन्द्र, यज्ञपुरुष की आयु, रावण की अङ्गुलियाँ, शतदल (कमल), धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव, समुद्र के योजन। हजार हैं— शेष नाग के मस्तक, गङ्गा के मुख, कमल के पत्र (दल), सूर्य की रश्मियाँ, सहस्रार्जुन के हाथ, वेद की शाखाएँ और इन्द्र की आँखें। दो सहस्र गिनी जाती है वासुकि और शेषनाग की जिह्वाएँ। अयोध्यावासियों की आयु दस हजार वर्ष की होती थी। पुष्पवाहन भूपति के पुत्रों की संख्या भी 'अयुत' (दस हजार) थी। महात्मा सगर के आठ हजार पुत्र थे। शशबिन्दु (विष्णु या चन्द्र) की एक लाख कमललोचना पत्नियाँ थीं। साठ हजार से पूर्ण एक लाख पुत्र मुररिपु (विष्णु) के थे। सङ्गीत में भरत का मत यही है।

लक्षाणि षट् प्रचक्ष्यन्ते काकायुर्वत्सराः किल। नवलक्षं रामरुद्रनरेन्द्रस्य धनुर्धराः॥ पुरोक्तः शशबिन्दुयों दशलक्षाणि तत्सुताः। रन्तिदेवस्य नृपतेः पुत्राः कोटितयोदिताः॥ छलात् प्रकाशिता संख्या प्रायो ज्योतिर्विदां मुदे॥

अर्थात्— कौए की आयु के वर्ष छह लाख कहे जाते हैं। राम और रुद्र नरेन्द्र के नौ लाख धनुर्धर थे। शशबिन्दु के दस लाख पुत्र थे। राजा रन्तिदेव के करोड़ पुत्र कहे गए हैं। इस प्रकार गणितज्ञों के चित्र के आनन्द हेतु ये संख्याएँ प्रकाशित की गई हैं। (पं. शुभङ्कर लाहिड़ी कृत सङ्गीतदामोदर स्तबक पञ्चम)

द्वासमम्याङ्गुलं प्रोक्तं पक्षहस्तनि

(द्वि) हस्तानाम ? ॥ 22 ॥

दो हाथ से दुगुना (यह श्लोक भ्रष्ट है।)

दण्डश्चापो धनुः स्मृतर्भुमाप्य बृहद्करशिलायाम् ?।

मविघ्न (धन) श्च (स्य) तु हस्तानामेव च ? ॥ 23 ॥

दण्ड को चाप और धनु भी कहा जाता है जिनसे भूमि और बड़ी-बड़ी शिला को मापते हैं......(शेष श्लोक भ्रष्ट होने से अर्थ अस्पष्ट है।)

अन्वयसन्ताकश्च सन्तानोद्भव मानतः।

सृष्टयुद्भवं दण्डाग्र आदिछन्द पर्वनिष्काशः ? ॥ 24 ॥

एकोद्भवमालाक्ष आद्योक्त माप्य घराक्ष घ (र) न्यम!।

करतलवंश विंशतिहस्तानां च ? ॥ 25 ॥

(उक्त दोनों श्लोक भ्रष्ट होने से अर्थ अस्पष्ट है।)

यवान्तं प्रमाणं मध्यं प्रयुक्तं परमाणुतः।

मध्याङ्गुलस्य कथये अंशाश्चैव प्रमाणतः ॥ 26 ॥

अङ्गुलस्याष्टमांशं यद् तन्मानं निन्यशो यवः।

द्विरष्टांशो भवेच्छिख्या ? अंशानां चतुर्विंशतिः ॥ 27 ॥

परमाणु को आधार मानकर यव-जौ मोटाई तक माप के प्रयोग से मध्यमा अङ्गुलि की मोटाई अंश का माप बना इस प्रमाण से मध्यमा अङ्गुलि के अष्टमांश से जो माप बनता है उसे यव कहते है। दो अष्टांश के बराबर शिख्या ? होती है। अंश चौबीस होते हैं।

अङ्गुलस्याष्टमांशेन यवो यूका तदंशतः।

लिक्षा यूकाष्टमांशेन केशं तदष्टमांशकम् ॥ 28 ॥

अङ्गुलि मध्यमा की मोटाई का अष्टमांश यव होता है, यव का अष्टमांश यूका तथा यूका का अष्टमांश लिक्षा और लिक्षा का अष्टमांश केशाग्र होता है।

रेणुः केशस्याष्टमांशः प्रमाणं तत्तदंशतः।

तस्याष्टमांशे छाया च कथिताश्च क्रमेण तु ॥ 29 ॥

उक्त केशाग्र का अष्टमांश रेणु और रेणु का अष्टमांश परमाणु तथा परमाणु का अष्टमांश छाया क्रमवार कह दिया गया है।

प्रयुक्तं मानमुद्दिष्टं प्रमाणशास्त्रदीपकम्।

निघण्टु भाषोत्तमाख्या प्रयुक्ता वास्तुवेदिभिः ॥ 30 ॥

ये मान अर्थात् माप करने की लम्बाई प्रमाण पूर्वक बता दी है। वास्तुशास्त्र के दीपक की तरह काम करके ज्ञान का प्रकाश होगा। इसी उद्देश्य से वास्तुवेत्ताओं ने भाषा में बड़े उत्तम तरीके से यह निघण्टु-शब्द पर्यायकोश प्रयुक्त किया है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां गणिशब्दनिर्घण्टवधिकारो नाम द्विचत्वारिंश सूत्रम्॥ 42 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में गणित शब्द निघण्टु अधिकार नामक बयालीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 42 ॥

ज्योतिषपञ्चाङ्गवासना नाम त्रयश्चत्वारिंशं सूत्रम्॥ 43॥

विश्वकर्मोवाच —

ज्योतिषं च प्रवक्ष्यामि [1]पञ्चपदार्थकोत्तमम्।
यतः समस्तमुत्पन्नं चन्द्रार्कद्रुतिवेदनम्॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं ज्योतिष के बारे में कहता हूँ जो उत्तम पाँचवें पदार्थ की तरह है (चार पदार्थ- धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष है), ज्योतिष इनमें पाँचवाँ कहा है जिससे चन्द्र, सूर्य आदि की द्रुत गति आदि जानने की समस्त जानकारी प्राप्त होती है।

अथ ज्योतिषमाहात्म्याह —

यथा दिनं विना सूर्य शशाङ्कं शर्वरी विना।
कुटुम्बिनो विना पुत्र शास्त्रं वै ज्योतिषं विना॥ 2॥

ज्योतिष का महत्व बताने के लिए कहा है कि जिस प्रकार सूर्य के अभाव में दिन का होना व्यर्थ है, चन्द्र के प्रकाश बिना रात्रि होना व्यर्थ है, कुटम्ब में पुत्र बिना सब व्यर्थ है उसी प्रकार समस्त शास्त्र भी ज्योतिष के अभाव में व्यर्थ लगते हैं।

तिथिर्वारश्च नक्षत्रं योगः करण एव च।
[2]चन्द्रार्कयोश्च सङ्क्रान्त्या वक्ष्ये पञ्चाङ्गवासनाः॥ 3॥

---

1. 'ज्योतिषं च प्रवक्ष्यामि पञ्चमादार्थकोत्तमम्। यतोद्भव समस्त्वेदं चन्द्रार्कमिववाछति' इति न. पाठः। इस श्लोक में 'पञ्चपञ्चाङ्गकोत्तमं' पाठ सम्भव है क्योंकि सूत्र का शीर्षक भी इसे कहता है। ज्योतिषपञ्चाङ्ग में तिथि, वार, योग, करण और नक्षत्रों की गणना होती है। महर्षि गर्ग का मत है— ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम्। ज्योतिर्ज्ञानं च यो वेद स याति परमां गतिम्॥ (मुहूर्तचिन्तामणि, पीयूषधाराटीका 1, 2)
2. 'सङ्क्रान्ति चन्द्रसूर्यश्च कथयपञ्चाङ्गसना' इति न. पाठः।

तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण में चन्द्र और सूर्य की जब-तब संक्रान्ति होती है, उसे ही पञ्चाङ्ग-वासना कहते हैं।

अथ संवत्सरानयनं —

कल्यन्तस्था कृताद्या च प्रतिष्ठाप्येव भुक्तिका।
संवत्सरैर्हरेद्भागं लब्धं शेषैक कृता: ?॥ 4॥
संवत्सरै: पुनर्भागं लब्धं सूत्र समुद्धरेत ?।
एकनवत्याष्टशताभिष्टश्रं ? तदाङ्क: शाक उच्यते[1] ॥ 5॥

कृत् अर्थात सतयुग से लेकर कलियुग के अन्त तक जितने वर्ष अर्थात् संवत्सर भुक्त हुए, उनको प्रतिष्ठित करें। भुक्त संवत्सर को घटाने-हरने से जो भाग शेष बचता है लब्ध होता है एक कृता ?। संवत्सरों, वर्ष के पुन: भाग करके जो लब्ध आए उससे सूत्र समुद्धरेत, बनाएँ। इससे जो मान बनता है वह एकानवे के ऊपर आठ सौ (891 इष्टश्र ?) होते हैं, इस अङ्क को 'शक' कहते है।[2]

तथाङ्कं नखाङ्गहीनमर्कगणचैत्रादियुक्[3] ?।
त्रिस्थानै: स्थापयेच्चैवं नन्दयुग्मयमैस्तथा॥ 6॥
फलवेदगुणा मध्या: पातं वाष्टनियोजिता:।
शून्यरामेन्दुभिर्भागैर्योजयेत् प्रथमं फलम्॥ 7॥
अनष्टकारे शेष: ? पञ्चरामनिशाकरा:[4]।
मासे धनोभ्यनष्टहीना षष्ठिभागै: शेषमृणम्॥ 8॥

---

1. 'कृतान्यो कृति क्रंतस्था उक्तिमेवं प्रतिष्ठयेत्। संवत्सरे हरेद्भागं लघुशेषा कृत कृता॥ संवत्सरो पुनर्भागं लब्धं सूत्रं समुद्धरेत्। एकनवत्याष्टाशतमिष्टेश्च तदशकंश उच्यते॥' इति न. पाठ:।
2. यहाँ पाठ भ्रष्ट होने से यह विधि युक्तिसंगत प्रतीत होती है कि कल्पोक्तगत वर्ष में 1972947179-1706430 घटाने पर 195583617 ये सृष्टि से शकादि तक सौर वर्ष हुए। इसमें इष्ट शक जोड़ने पर अभीष्ट शक के प्रारम्भ में सृष्टि से वर्ष संख्या होती है : नन्दान्द्रीन्दुगुणाष्टाष्टबाणपञ्चनवेन्दव: (1972947179)। संयुक्ता: शककालेन सृष्टिसंवत्सरा गता:॥ (बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 3, 28) श्रीपति के अनुसार शक संख्या जानकर बार्हस्पत्य संवत्सर की संख्या और वर्तमान नाम जानने की रीति यह है कि जिस शक में बार्हस्पत्य संवत्सर का नाम जानना हो उसे शाके की संख्या को पृथक रखकर, 22 से गुणा कर प्राप्त गुणफल में 4291 का योग करें उपरान्त उसमें 1875 का भाग दें। वर्ष-मास आदि जो प्राप्त हो उसको अलग रखे हुए शाक संख्या में जोड़े और 60 से तष्टित करने से शाकारम्भ समय में प्रभव आदि 60 संवत्सर के भुक्त वर्षादि समझना चाहिए। भुक्त वर्षादि को 60 में घटाने से भोग्य वर्षादि होते हैं— शकेन्द्रकाल: पृथगाकृतिघ्न:$_{22}$ शशाङ्कनन्दाश्वियुगै:$_{4291}$ समैत:। शराद्रिवस्विन्दु$_{1875}$ हृत: सलब्ध: षष्ट्याप्तशेषे प्रभवादयोऽब्दा:॥ (ज्योतिषरत्नमाला 1, 3)
3. 'तथायां ततथंणहीनं अर्कगणा चैत्रादिमासपूत्।' इति न. पाठ:।
4. 'अनष्टकारे शेष: सवरामनिशाकरा:। मासे धनो अनष्टं हीनां कष्टभोगकं सिखरिणं' इति पाठ:।

पूर्वोक्त अङ्क संख्या में नख (20) अङ्ग (9)अर्कगण से चैत्रादि युक् तीन स्थानों पर स्थापित करें और नन्द (9) युग्म (2) यम (1) फल वेद (4) गुण (3) घटाकर (पातं) आठ जोड़ दें। इसके बाद, शून्य, राम, इन्दुभि (130) भागों को जोड़ देने से प्रथम फल आता है। पुन: अनष्ट करे, शेष? पञ्चराम निशाकर (135) मान के घन नष्टहीन साठ भागों में शेष को ऋण करें।[1]

अमावास्या ध्रुवकस्य मासे मासे तथा पुनः।[2]
चारुभद्र ध्रुवकमासे द्विधा द्विरामधना ?॥ 9॥
वेदानवेन्दुभिर्भागैः **फलोनेक षष्ठिभाग-**
घटिकामाप्नोति तिथि विज्ञेय फलमासगुणामिश्रितः ?॥ 10॥

अमावस्या ध्रुवक संख्या प्रति मास अर्थात् हर एक मास में पुनः बारम्बार चारुभद्र ध्रुवक मासों में दो प्रकार से द्विराम (6) अथवा (32) धन बना? वेदानवेन्दु भिर्भागै (194) भागों में फलाने से षष्टिभाग (60) भाग की घटिका (आप्नोति) आती है, इसको तिथि कहते हैं, जिसमें फल मास गुणा मिश्रित (312) होगी।

सप्तमे स्थितारन्येन्द्र वार उदये यमहरे मासगणे ?।
द्विसङ्गच्छेद्विसार्धभाग पिण्डामग्निलबुद्वाद्विके।
युक्तोवसयमसेसा ?[3] **॥ 11॥**

इति नष्टध्रुवकायनम्।

इसी प्रकार सातवें अन्य इन्द्रादि से वार उदय होते हैं, यम हरे मासगणे? दो के साथ ढाई भाग को पिण्ड अर्थात् मिलाकर अग्नि (3) लव आदि युक्तो वस यम सेसा? होता है।

अमावास्या [4]ध्रुवमासे मासे मासे तथा पुनः।
एवं युक्तिर्विधातव्या वर्तते चाङ्गवासना॥ 12॥

मास-मास में अमावस्या को ध्रुवक मानें और इसी युक्ति से वासना अङ्गों का विचार किया जाता है।

---

1. पाठ भ्रष्ट होने से यह अर्थ अस्पष्ट है, केवल शब्दार्थ मात्र किया गया है। यदि 'चैत्रादियुक्' पाठ माना जाए तो मकरन्द (बृहद्दैवज्ञरंजनम् 4, 12-13) की तरह की गणित हो सकती है।
2. 'अमास्या ध्रुवस्य माध्यं मासे तथा पुनः। एवं युक्ति विधातव्या वर्तेपेत्येवांग वासना॥ कंसभदध्रूकमासं द्विधारामध्वाना इन्दुभिभागैः फलैःनि कष्टीभाग घटिका प्रोतिथी यज्ञेफल मासगुणामिश्रित।' इति न. पाठः।
3. 'सप्तासा सतारख्ये द्वार सदयेवसहाय। मासगणे द्विसंगस्थे सिद्धाभागपिडाग्निलबुध्वा। द्विके युक्ते वसुव मास सा। इति नष्टध्रुवकामयंत।' इति न. पाठः।
4. 'ध्रुवमासे न मासे मासे तथा पुनः। एवं युक्तिविध्यातवर्तावेत्पञ्चाङ्गवासिनी।' इति न. पाठः।

एकोत्तरे ध्रुवमध्ये द्वात्रिंशद् घटिकायुतम्।
पक्षपिण्डं च युग्धर्क्षं घटिके चन्द्रसङ्ख्यया[1] ॥ 13 ॥

इस अमावस्या से अमावस्या तक के स्थिर मान में ध्रुवमध्य से साठ घटिका युक्त दो पक्ष पिण्डों मे चौपन (युग्मर्क्षे) घटिका की चन्द्रसंख्या होती है।

प्रथमं स्थापयेद्वारं वारघट्यस्तदूर्ध्वतः।
पिण्डकेषु अधरताच्च ऋक्षं च घटिकार्धतः ॥ 14 ॥

पहले वार लिख कर स्थापित करें, उस वार की घटिका उसके ऊपर की ओर लिखें, इन दोनों के पिण्ड के नीचे नक्षत्र और उनकी घटिका आधी घटिका तक लिखें।

एवं भुक्ती रवेः ख्याता सङ्क्रात्याद्युपलक्षयेत्।
एषा त्वन्तरयुक्तीश्च लक्ष्याः पञ्चाङ्गवासनाः ॥ 15 ॥

इस युक्ति से सूर्य की संक्रान्ति आदि उपलक्षित होती है। इस प्रकार की अन्तर युक्तियों को लक्ष्य में रखकर पञ्चाङ्ग-वासना का विचार किया जाता है।

मासान्ते पूर्वध्रुवके योज्याऽमावास्यिकान्ततः।
वारसप्तभागं त्यक्त्वा घटिकाः षष्ठि वारोच्यते ॥ 16 ॥

मास के अन्त में पहले के स्थिरमान ध्रुवक अङ्क में इनको अमावस्या के अन्त तक जोड़ कर सात भागों मे वार को छोड़कर साठ घटिका को वार कहते हैं।

एवं वारो ध्रुवे साध्यो घटिकाः षष्ठिरग्रतः।
अष्टाविंशतिभिर्भाग्यं शेषैः स्याद् ध्रुवसाधका ॥ 17 ॥

इस प्रकार फिर वार स्थिर हो जाने पर आगे भी साठ साठ घटिका साधते जाए और अट्ठाईस से भाग देकर शेष को ध्रुव-स्थिर साधक बनाएँ।

अमावास्या ध्रुवमासे मासे मासे तथा पुनः।
एवं युक्तिर्विधातव्या वृत्ता पञ्चाङ्गवासना ॥ 18 ॥

इस तरह अमावस्या को ध्रुवक बनाकर प्रतिमास इसी तरह करते हुए आवृति से पञ्चाङ्ग-वासना का विचार किया जाता है।

सप्तविंशतिभागैस्तु घटिकाः षष्ठिरेव च।
एवमृक्षं साध्यं घटिकाषष्टिरग्रतः ॥ 19 ॥

सताईस भागों की साठ घटिकाओं वाले नक्षत्रों को स्थिर अङ्क साध्य बनाकर आगे की घटिका षष्टि इसी तरह बनाएँ।

---

1. 'वेकोतार ध्रुवकामध्या योज्या द्वाविंशघटिका युतां। क्षययन युग्मं रक्षं घटिकाचन्द्रसंख्यया' इति न. पाठः।

एवं ध्रुवः क्रमात्साध्यो मासान्तेषु पुनः पुनः।
अमान्ते च ध्रुवः साध्यस्तिथिं पश्चात् प्रवर्तयेत्॥ 20॥

इस प्रकार ध्रुव स्थिराङ्क क्रमपूर्वक, साधते हुए मास के अन्त में बारम्बार अमावस्या तक स्थिराङ्क बनाएँ जिससे तिथियाँ बनती हैं।

वारस्थाने तिथिर्योज्या ?[1] हरेद्भागं तु सप्तभिः।
यच्छेषं लभ्यते वारस्तेषु तिथिं तद्भाषिता ?॥ 21॥

वार के स्थान पर तिथि को लगाकर ? उसमें सात का भाग दें और जो शेष बचें उसे वार और उसी से तिथि कही जाती है ?।

तिथिपिण्डं पुनर्भक्त्या भागं स्याद्वै द्विसप्तभिः।
भागमध्ये धनं ख्यातं लब्धिमध्ये ऋणं तथा॥ 22॥

तिथियों की पिण्ड राशि बनाकर उसे चौदह से भाग दें और योग के बीच धन विख्यात् होता है और लब्धि मध्य में ऋण विख्यात होता है।

द्वितीयोर्ध्वं धनं ख्यातं तृतीयोर्ध्वमृणं तथा।
चतुर्थोर्ध्वे धनं चैव षष्ठात्परं न विद्यते॥ 23॥
भागात्परं वदेदूवाचः ? यच्छेषं तत्र तिष्ठति।
शब्दयोगं च सन्त्यज्य शब्दाख्यं चैव स्थापयेत्॥ 24॥

द्वितीया के ऊपर धन और तृतीया के ऊपर ऋण विख्यात् होता है, फिर चतुर्थी के ऊपर धन और छह से परे धन नहीं होता। भाग के बाद वाच कहे ? जहाँ चाहे वहाँ रखे और शब्दयोग को छोड़ कर शब्दाख्य को भी स्थापित करें।

नाडीज्ञानमाह —

आद्ये त्रयोदशे पञ्च द्वितीये द्वादशे दश।
एकादशे तृतीये च नाड्यः पञ्चदश स्मृताः॥ 25॥
चतुर्थे दशमे तु स्यादेकोनविंशतिस्तु ताः।
पञ्चमे नवमे नाड्यो द्वाविंशतिरुदाहृताः॥ 26-1॥

पहली से तेरह तक पाँच, दूसरी से बारह तक दस, तीसरी से ग्यारह तक नाड़ी पन्द्रह होती है। चौथे से दशम तक उन्नीस होती हैं। पाँचवें से नवें तक नाड़ी बाईस कही गई है।

षष्ठेऽष्टमे च घटिकाश्चतुर्विंशतिरीरिता:।

---

1. 'वारस्थानेर्विदैवोत्य' इति न. पा.।

प्रतिष्ठिता शब्दसञ्ज्ञा सप्तमे पञ्चविंशतिः ॥ 26-2 ॥

इसी प्रकार छठे-आठवें घटिक (घड़ियाँ) चौबीस होती है और इन शब्दों के नाम से प्रतिष्ठित सातवीं से पच्चीस होती है।

धनर्त्रृणकल्पनाह —

धनं चैव ऋणं वापि कल्पयेच्छब्दमर्थतः।
धने धनं प्रयोज्यं स्यान् मिश्रयेच्च ऋणे ऋणम् ॥ 27 ॥

धन से और ऋण से भी शब्द और अर्थ साथ-साथ कल्पित करें। धन में धन को जोड़ें और ऋण में ऋण का मिश्रण करें।

तिथिः सदा ऋणं प्रोक्ता वारघट्यः सदा धनम्।

यह ज्ञातव्य है कि तिथि को सदा ऋण ही कहा है और वार तथा घटियाँ सदा ही धन के रूप में कही गई हैं।

स्यात् कर्कटाभिधमृणं धनं मकरराशिकम् ॥ 28 ॥

कर्क राशि नाम से ऋण हैं और मकर राशि धन स्वरूप है।

धनवृद्धिस्तिथिभुक्त्वा ऋणवृद्धिरशोधिता।
शेषाख्याता तिथिभुक्तिरन्या वारेषु भाषिता ॥ 29 ॥

भुक्ता तिथि को धनवृद्धि होती है और ऋणि वृद्धि अशोधित होती है। शेष सभी तिथि भुक्ति नाम से और अन्य वारों से कही गई हैं।

धनाधिकेषु वारेषु तिथिभुक्तिरनुक्रमात्।
यदा षष्ठे धनाक्रान्तिर्वारवृद्धिस्तु भाषिता ॥ 30 ॥

वारों में धन अधिक होने से तिथि भुक्ति के अनुक्रम से यदि छठे में धन की क्रान्ति हो तो वारवृद्धि कही जाती है।

तिथिसंयोगभुक्ती च प्रयुक्ता विश्वकर्मणा।
तिथित्रयादिनक्षत्रं महापर्व च तत्स्मृतम् ॥ 31 ॥

तिथि के संयोग से भुक्ति को विश्वकर्मा ने प्रयुक्त किया है। तीन तिथियों आदि से नक्षत्र को महापर्व कहा गया है।

तिथित्रयादि वारादि नक्षत्रत्रयकं विदुः ?।
तिथित्रयं चैकवारे तद्वै तिथित्रयाभिधम् ॥ 32 ॥
एवमादिगुणोपेते भुक्त्यृद्धी तिथिवारयोः।

तीन तिथियों और वारादि को नक्षत्रत्रय समझें। तीन तिथि और एक वार को

तथा दो तिथियों को तीन से अधिक रखते हुए इस प्रकार आदि गुणों के साथ तिथि, वारों की भुक्ति एवं वृद्धि होती है।

अथार्कनाड्यानुक्रमाह —

त्रिषट्कं कर्कमकरे सिंहे कुम्भ चाष्टादश॥ 33॥
कन्यामीने रुद्ररुद्रास्तुलामेषे दशाष्टकम्।
अष्टषड् वृश्चिकवृषे धनुर्युग्मे त्रिशून्यकम्॥ 34॥
सङ्क्रान्तियोगे दातव्या रविका च विनिर्गता।
युग्मसिद्धार्थपक्षे तु द्वौ पक्षौ शब्दतो न्यसेत्।
एवमादिक्रमोक्तश्च रविनाड्या अनुक्रमः॥ 35॥

इति तिथिभुक्त्यधिकारः।

तीन षट्क कर्क और मकर राशि में और आठ दस सिंह व कुम्भ राशि में, ग्यारह ग्यारह कन्या व मीन राशि में और दस एवं आठ तुला व मेष राशि में, आठ और छह वृश्चिक एवं वृष राशि में, दो धनु में और तीन शून्यक होती है। संक्रान्ति योग में रवि के विनिर्गत यानी निकलने के अनुसार देनी चाहिए। सिद्धार्थ पक्ष में दो पक्षों को शब्द से रखें। इस प्रकार से आदि क्रमानुसार सूर्य-नाड़ियों का अनुक्रम होता है।

सङ्क्रान्तिवर्तमानाधिकारमाह —

युगादि साधयेत् पूर्वं नष्टानयनकं क्रमात्।
तदङ्कं स्थापयेदेवं सङ्क्रान्त्या ध्रुवसाधना॥ 36॥

संक्रान्ति मान के लिए पहले युगादि साधन करें, तदोपरान्त क्रम से नष्ट अयन को करें। पुनः उनके अङ्कों को स्थापित करें जिससे संक्रान्ति का ध्रुव साधन हो सके।

तदाकं षट् अग्नि ऋतुदं सन्निभिः स्थापयेत्?
अत्यंतिथी गुणमेर्थ अप्रयोजयेत् षष्टिभिर्भागः?॥ 37॥

उसके अङ्कों को छह, तीन, छह सत्रों में स्थापित करें? अन्त्य तिथि को इस तरह गुणित करें और साठ का भाग अप्रयोजित करें।

लब्धं फलं च मूलं च सर्वं शशिनियोजयेत्?।
समप्रेसित सङ्क्रान्तीवकयुगाद्याअङ्कतोद्भवा?॥ 38॥

इस तरह से लब्ध फल और मूल को सभी को एक नियोजित करके जोड़ें। सात संक्रान्ति को प्रेसित करें और वकयुगादि से अङ्कों का उद्भव लें।

वेदा दिशाश्च विषया मालाश्चैवाग्निभास्कराः ?।
ऋषयश्च तथादित्या अग्नयश्चर्त्विजश्चपरसम्मति-
इदम्पत्योरिवजश्चं वेदरोस्थलोचनाश्च ?॥ 39॥

वेद (4), दिशा (10), विषय (5), माला (?), अग्नि (3), भास्कर (12), ऋषि (7), आदित्य (12), अग्नि (3), ऋतु (6) चपर सम्मति इदम्पत्यो रिवजश्च वेद (4), उदरस्थ लोचना (2) ? (आशय अस्पष्ट है)।

सरदिसा$_9$ रसमादिनी$_{10}$ सत्यरजात्माश्च $_{11}$
विद्धिमासश्चदंशब्दार्थ-
आद्योतो पूर्वार्द्ध कटिकोत्तमौधिकारो यत्र
नं रणि वोषं धनं प्रकीर्तितम्॥ 40॥

सरदि (9), रसमादिनी (10), सत्यरजात्मा (11) को मास के अर्थ अंशों को शब्दों से जाने। आदि से पूर्वार्द्ध तक कटिकोत्तमो अधिकार जहाँ हो, उसे नरणिवोष (?) धन कहा गया है।

पूर्वा ध्रुवकं साध्यमानं च ... घो पुनः साधयेत् ?।
वर्णे वर्षे क्षिपेत्तार घटिकौ दशपञ्चाधिकम् ?॥ 41॥

पूर्वा को ध्रुवक साध्य मान करके पुनः साधन करें। तदोपरान्त वर्ण में वर्ष में चार को रखें तथा घड़ियों को 15 अधिक रखें।

शब्दार्थं च क्षिपेद्वारं सप्तभिर्भागमाहरेत्।
यच्छेषं लभ्यते वारः सङ्क्रान्तावेव भाषितम्॥ 43॥

शब्दार्थ के साथ वार को रखें और उसमें सात का भाग देकर आहरण करें जो शेष बचें, उसे वार समझना चाहिए। इस प्रकार से संक्रान्तियों को कहा गया है।

ऋणं वाऽपि धनं वाऽपि घटिका मध्यतः क्षिपेत्।
भुक्तिः ख्याता ऋणे त्यक्ते धनमिश्रे च सोत्तमा॥ 44॥

इति सङ्क्रान्तिवर्तमानाधिकारः।

ऋण हो अथवा धन हो, घटियों को मध्य में रखें। ऋण छोड़ने को भुक्ति कहते हैं और धन को जोड़ने से उत्तमा कहा जाता है।

दिननक्षत्राधिकारः —

उदयार्धे घटिकायाः पञ्चचत्वारिंशत्तमाः ?।
अभ्रमध्ये भवेत्तारा शेषं वै पूर्ववत्क्रमात्॥ 45॥

दिन नक्षत्र के विषय में कहा जा रहा है कि उदय के आधे में घटियाँ पैंतालीस होती है ? अभ्र के मध्य में तारा होती है और शेष पूर्ववत् क्रमानुसार ही होते हैं।

साध्यां तिथिं च द्विःकृत्य षड्भिर्भागैर्विवर्जिता।
तिथिभुक्तिसमायुक्ता **रविकां** विपरीततः ?॥ 46 ॥
ऋणं त्यक्त्वर्क्षघटिका **शेषा** भुक्तिरथोच्यते।
असाध्यघटिकामध्यं **त्यक्ता शेषा च भुक्तिका** ॥ 47 ॥

तिथि को साधकर उसका दुगुना करें और उसे छह से भाग नहीं दें तथा तिथि भुक्ति को समायुक्त करके रवि को विपरीत करके ?, ऋण छोड़कर नक्षत्रों की घटिका शेष भुक्ति कही जाती है। असाध्य घटिकाओं के मध्य में शेष को छोड़कर भुक्ति कहा जाता है।

ध्रुवं कृत्वा तिथिं युक्त्वा ऋक्षसङ्ख्याधिकं **यदि**।
षष्ठाधिके **ऋक्षं त्यक्त्वा** ऋणाधिको रिषवृद्धये ?॥ 48 ॥

इति दिननक्षत्राधिकारः।

ध्रुव को तिथि में जोड़कर यदि नक्षत्रों की संख्या अधिक हो तो साठ से अधिक नक्षत्र को छोड़कर ऋण अधिक करके ?

महानक्षत्रभुक्त्यधिकारः —

तिथिं चतुर्गुणीकृत्य ऋक्षघटीविमिश्रि**तम्**।
रथिका तिथिं क्रमतः ऋक्षभुक्तिं **प्रभाषते** ॥ 49 ॥

तिथि को चौगुनी करके नक्षत्र की घटी मिलाएँ। रथिका तिथि को क्रम से नक्षत्र युक्ति कहा जाता है।

षष्ठिभागे लब्धमृक्षं शेषा भुक्तिः प्रकीर्तिता।
ध्रुवं कृत्वा लब्धं योज्यं शेषं वै ऋक्षभुक्तिभिः ॥ 50 ॥

इति महानक्षत्रभुक्त्यधिकारः।

साठ का भाग देने पर जो नक्षत्र आए, उसमें शेष को भुक्ति कहा जाता है। ध्रुव में लब्ध को जोड़ने पर जो शेष बचे, उसे नक्षत्र में जोड़ें।

योग आनयनाधिकारः —

चन्द्रभुक्तिर्दिनर्क्षं **च** सूर्यस्यात महारिषम् ?।
सदा धनं चन्द्रभुक्ति ? सूर्यभुक्तिर्ऋणं **तथा** ॥ 51 ॥

चन्द्र की भुक्ति और दिन के नक्षत्र को सूर्य से महारिषम ? चन्द्र युक्ति सदा धन होती है ? और सूर्य की भुक्ति सदा ही ऋण होती है।

चन्द्रभुक्तेर्मध्यतश्च रथे(थ) युक्तिं विशोधयेत्।
चन्द्रसूर्यर्क्षमेकत्र योगसङ्ख्या ह्यनुक्रमात्॥ 52 ॥[1]

इति योग आनयनाधिकार:।

चन्द्र भुक्ति के मध्य और रथ युक्ति को विशोधित करें। इस तरह से चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रों को एकत्र करके योग संख्या अनुक्रम से होती है।

करणाधिकार: —

साध्यां तिथिं च द्विःकृत्य तदेक तु परित्यजेत्।
सप्तभिस्तु हरेद्भागं शेषं करणमुद्धरेत्॥ 53 ॥

इति करणाधिकार:।

(शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से आरम्भकर) साध्य तिथि को दो से गुणा करें तथा गुणनफल में से एक घटाकर शेष में सात का भाग देने से बवादि करण निकल आते हैं। (इनके नाम है—1. बवकरण, 2. बालवकरण, 3. कौलवकरण, 4. तैतिलकरण, 5. गरकरण, 6. वणिजकरण और 7 विष्टिकरण।[2])

सप्तैव$_7$ करणाः ख्याताः वाराः सप्तैव$_7$ कीर्तिताः।
तिथय पञ्चदश$_{15}$ च योगर्क्षं सप्तविंशतिः$_{27}$ ॥ 54 ॥

ज्योतिष की मान्यताओं में उपर्युक्त सात करण प्रसिद्ध हैं, सात ही वार (रवि से शनि तक), पन्द्रह तिथियाँ (प्रतिपदा से अमावस्या या पूर्णिमा तक), योग और सत्ताईस नक्षत्र (विष्कम्भादि एवं अश्विन्यादि) हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
ज्योतिषपञ्चाङ्गवासनाधिकारो नाम त्रयश्चात्वारिंशं सूत्रम्॥ 43 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में
ज्योतिषपञ्चाङ्गवासना अधिकार नामक तियालीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 43 ॥

---

1. योग ज्ञात करने की रीति चण्डेश्वर ने इस प्रकार बताई है कि जिस दिवस को योग का ज्ञान वाञ्छित हो, उस दिन सूर्य जिस नक्षत्र में हो, उसकी संख्या और चन्द्रमा जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र की संख्या को जोड़ें और उसमें से एक को घटाकर 27 से भाजित किए जाने पर जो शेष हो, उसे विष्कम्भादि क्रमानुसार योग जानना चाहिए— यस्मिन्नृक्षे स्थितो भानुर्यत्र तिष्ठति चन्द्रमाः। एकीकृत्य त्यजेदेकं योगा विष्कम्भकादयः॥ (बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 25, 1)
2. आचार्य श्रीपति का मत है— बवाह्वयं बालवकौलवाख्यं ततो भवेत्तैतिलनामधेयम्। गराभिधानं वणिजं च विष्टिरित्याहुरार्याः करणानि सप्त॥ (ज्योतिषरत्नमाला 6, 1)

अवकहोडाचक्रज्योतिषं चतुश्चत्वारिंशं सूत्रम्॥ 44॥

विश्वकर्मोवाच —

आदित्यसोमभौमाश्च बुधश्चाथ बृहस्पतिः।
शुक्रः शनिश्चरश्चैते सप्तसूर्यादिवासराः॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि सूर्य, सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि— ये सब रविवार के क्रम से सातों वार होते हैं अर्थात् रविवार, सोमवार, मङ्गलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार और शनिवार हैं।

तिथ्यादीनामाह —

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा स्यात् पञ्चमी तथा।
पञ्च पञ्च तथा पञ्च मासार्धेषु यथातिथि॥ 2॥

तिथियों की संज्ञाओं में 1. नन्दा (1, 6, 11), 2. भद्रा (2, 7, 12), 3. जया (3, 8, 13), 4. रिक्ता (4, 9, 14) और पाँचवीं तिथि की संज्ञा 5. पूर्णा (5, 10, 30, 15) है। इस प्रकार पाँच, पाँच और पाँच मिलकर मासार्द्ध अर्थात् एक पखवाड़े की तिथियाँ होती है।[1]

प्रतिपद्षष्ठ्येकादशी नन्दा भद्रा द्व्यश्वार्कका:।
जया त्र्यष्टत्रयोदश्यो रिक्ता वेदाङ्कशक्रतः॥ 3॥

प्रतिपदा, षष्ठि और एकादशी (1, 6, 11) को नन्दा तिथि कहा जाता है। द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी (2, 7, 12) को भद्रा तिथि कहते हैं। तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी (3, 8, 13) तिथियों की संज्ञा जया है और चतुर्थी, नवमी व चतुर्दशी (4, 6, 14) की संज्ञा रिक्ता है।

पञ्चमी दशमी चैव पूर्णमासी तथैव च।
एषा पूर्णा तिथिर्ज्ञेया दैवज्ञैर्जल्पिता हि सा॥ 4॥

इसी प्रकार से पञ्चमी, दशमी व पूर्णमासी (5, 10, 15 तथा अमावस्या) को पूर्णा तिथि कहा जाता है, ऐसा ज्योतिषियों ने कहा है।

अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा।
मृगार्द्रे च पुनर्वसुः पुष्याश्लेषा मघा तथा॥ 5॥
पूर्वोत्तरे च फाल्गुन्यौ हस्तश्चित्राथ स्वातिका।

---

1. ज्योतिषरत्नमाला में कहा गया है — नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति सर्वास्तिथयः क्रमात्स्युः। कनिष्ठमध्येष्ट फलास्तु शुक्ले कृष्णे भवत्युत्तममध्यहीनाः॥ (तत्रैव 2, 4)

विशाखानुराधाज्येष्ठा मूलं पूर्वोत्तराषाढे ॥ 6 ॥
श्रवणश्च धनिष्ठा च शतभिषा च पूर्विका।
उत्तराभाद्रपदा च रेवती सप्तविंशतिः$_{27}$ ॥ 7 ॥

इति नक्षत्र नामानि।

सत्ताईस नक्षत्र होते हैं — 1. अश्विनी, 2. भरणी, 3. कृत्तिका, 4. रोहिणी, 5. मृगशिरा, 6. आर्द्रा, 7. पुनर्वसु, 8. पुष्य, 9. आश्लेषा, 10. मघा, 11. पूर्वाफाल्गुनी, 12. उत्तरा, 13. हस्त, 14. चित्रा, 15. स्वाती, 16. विशाखा, 17. अनुराधा, 18. अनुराधा, 19. मूल, 20. पूर्वाषाढ़ा, 21. उत्तराषाढ़ा, 22. श्रवण, 23. धनिष्ठा, 24. शतभिषा, 25. पूर्वाभाद्रपद, 26. उत्तराभाद्रपद और 27. रेवती— इस प्रकार सत्ताईस नक्षत्र होते हैं।

अथ योगनामानि —

विष्कुम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनस्तथा।
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव च ॥ 8 ॥
गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चव व्याघातो हर्षणस्तथा।
वज्रसिद्धी व्यतीपातो वरीयान् परिधः शिवः ॥ 9 ॥
सिद्धः साध्यः शुभः शुक्लो ब्रह्मेन्द्रौ वैधृतिः क्रमात्।
सप्तविंशतिसङ्ख्याका योगाश्चन्द्रार्कयोगतः ॥ 10 ॥

इति योगनामानि।

(विष्कुम्भादि योग सत्ताईस होते हैं) 1. विष्कुम्भ, 2. प्रीति, 3. आयुष्मान्, 4. सौभाग्य, 5. शोभन, 6. अतिगण्ड, 7. सुकर्मा, 8. धृति, 9. शूल, 10. गण्ड, 11. वृद्धि, 12. ध्रुव, 13. व्याघात, 14. हर्षण, 15. वज्र, 16. सिद्धि, 17. व्यतीपात, 18. वरीयान्, 19. परिघ, 20. शिव, 21. सिद्धि, 22. साध्य, 23. शुभ, 24. शुक्ल, 25. ब्रह्म, 26. ऐन्द्र और 27. वैधृति। ये क्रम से सत्ताईस संख्यक योग चन्द्र और सूर्य के योग से बनते हैं।

अथ करणनामानि —

बवश्च बालवश्चैव कौलवस्तैतिलस्तथा।
गरो वणिजविष्टी च सप्तकरणाभिधाः स्मृताः ॥ 11 ॥

1. ववकरण, 2. बालवकरण, 3. कौलवकरण, 4. तैतिलकरण, 5. गरकरण, 6. वणिजकरण और 7. विष्टिकरण ये चर करण होते हैं, ऐसा जाना जाता है।

अथावहकडाचक्रमाह —

चुचेचोला चाश्विनी स्याल् लिलूलेलो भरण्यपि।
कृत्तिका स्यादईऊए रोहिण्यूवाविवु स्मृता॥ 12॥
वेवोकाकी मृगश्चार्द्रा कूघाङछा प्रकीर्तिता।

(अब राशि विचारार्थ नक्षत्र के चरणभेदानुसार उनके अक्षरों पर विचार किया जा रहा है) राशिचक्र में चू चे चो ला अश्विनी; लि ला ले लो भरणी नक्षत्र के अक्षर हैं। कृत्तिका के इ ऊ ए; रोहिणी के वा वि वु; मृगशिरा के वे वो का की और आर्द्रा नक्षत्र के कु घ ङ छ अक्षर कहे गए हैं।

केकोहाही पुनर्वसुर्हूदेहोढा च पुष्यभम्॥ 13॥
अश्लेषा तु डिडूडेडो मामीमूमे मघाह्वयम्।
मोटाटीटू तु पूर्वाख्या मुफाटेटो पपि स्मृता॥ 14॥
प्रोक्तः पूषणटो हस्तः पेपोरारी तु चित्रका।
रूरेरोता तथा स्वाती तितूतेतो विशाखिका॥ 15॥

इसी प्रकार के को हा ही पुनर्वसु के; हू हे हो ढा पुष्य; डि डू डे डो आश्लेषा; मा मी मू मे मघा; मो टा टी टू पूर्वाफाल्गुनी; मु फा टे टो उत्तराफाल्गुनी; पू ष णा टो हस्त; पे पो रा री चित्रा; रु रे रो ता स्वाती; ति तू ते ता विशाखा नक्षत्र के अक्षर हैं।

अनुराधा ननीनूने ज्येष्ठा नोयायियुर्मता।
तथा येयोभभी मूलं पूर्वाषाढा भुधाफढा॥ 16॥
भेभोजज्युत्तराषाढा जुजेजोषा तथाभिजित्।
खिखूखेखो श्रवो ज्ञेयो गगीगूने धनिष्ठिका॥ 17॥

न नी नू ने अनुराधा; नो या यी यू ज्येष्ठा; ये यो भ भी मूल; भू धा फ ड पूर्वाषाढ़; भे भो ज जु उत्तराषाढ़; जू जे जो ष अभिजित्; खी खू खे खो श्रवण; गा गी गू गे धनिष्ठा नक्षत्र के अक्षर होते हैं।

गोसासिसू शताख्यं च पूभा सेसोददी मता।
ऊभा दूधाझझा ज्ञेया देदोचाची च रेवती॥ 18॥

इसके अतिरिक्त गो सा सी सु शतभिषा नामक नक्षत्र के; से सो द दी पूर्वाभाद्रपद; दू धा झ झा उत्तराभाद्रपद और दे दो चा ची रेवती के अक्षर होते हैं।

अष्टोत्तरशतं वर्णाः (नक्षत्र चरणोद्भवाः।
सम्भवन्त्यवकहोडयचक्रानुक्रमतः किल)॥ 19॥

इस प्रकार 108 वर्ण इन नक्षत्रों के चरण के कहे जाते हैं जिससे सारा अवकहोडा चक्र पूरा क्रमवार बनता है।

अथ राशिचरणविचारमाह —

अश्विनीभरणीधिष्ण्ये कृत्तिकाप्रथमांघ्रिकम्।
मेषः स्यात् कृत्तिकापादत्रितयं रोहिणी तथा॥ 20॥
वृषभो मृगपूर्वार्धं तदर्धं च तथार्द्रभम्।
पादत्रयं पुनर्वस्वोः स राशिर्मिथुनाभिधः॥ 21॥
तदन्त्योंऽघ्रिस्तथा पुष्यो ह्यश्लेषा कर्कटाभिधः।
मघापूर्वोत्तराद्योंऽघ्रिः सिंहस्तच्चरणत्रयम्॥ 22॥

(उक्त चक्र के बाद नक्षत्रानुसार राशिज्ञान कहा जा रहा है) अश्विनी, भरणी और कृत्तिका के एक पाद या चरण पर्यन्त मेष राशि गिनी जाती है। कृत्तिका के तीन चरण, रोहिणी और मृगशिरा के दो चरण वृष राशि; मृगशिरा के दो चरण, आर्द्रा और पुनर्वसु के तीन चरण मिथुन राशि; पुनर्वसु का अन्तिम चरण, पुष्य और आश्लेषा से कर्क राशि; मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी के एक चरण से सिंह राशि होती है।

हस्तचित्राभपूर्वार्धं कन्या चित्रोत्तरं दलम्।
स्वातिभं च विशाखायाश्चरणत्रितयं तुला॥ 23॥
तदन्त्योघ्रयनुराधाख्ये ज्येष्ठाभं वृश्चिकः स्मृतः।
मूलं पूर्वोत्तराषाढाप्रागङ्घ्रिः कथितो धनुः॥ 24॥

उत्तराफाल्गुनी के तीन पाद, हस्त तथा चित्रा के दो चरण कन्या; चित्रा के अन्तिम दो चरण, स्वाती, विशाखा के तीन चरणों से तुला; विशाखा का अन्तिम चरण, अनुराधा और ज्येष्ठा से वृश्चिक; मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ का एक चरण धनु राशि होती है।

उत्तराङ्घ्रित्रयं कर्णे धनिष्ठाप्रथमार्धकम्।
मकराख्यो धनिष्ठाद्विर्दलं च शततारका॥ 25॥
पूर्वापादत्रयं कुम्भस्तदन्यश्चरणस्तथा।
ऊभाभं रेवती चैव मीनराशिः प्रकीर्तितः॥ 26॥

इसी प्रकार उत्तराषाढ़ के तीन चरण शेष, श्रवण और धनिष्ठा के दो चरण से मकर राशि; धनिष्ठा के अन्तिम दो चरण, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपद के तीन चरण कुम्भ और पूर्वाभाद्रपद का अन्तिम चरण, उत्तराभाद्रपद और रेवती से मीन राशि होती है।

राशिनामानि —

मेषो वृषोऽथ मिथुनं कर्कटः सिंहकन्यके।
तुलाथ वृश्चिको धन्वी मकरः कुम्भमीनकौ॥ 27॥
द्वादशेव राशयः स्युर्मेषाद्याः सम्प्रकीर्तिताः॥

इस प्रकार मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन— ये बारह राशियाँ मेषादि क्रम से कही गई है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योपराजितपृच्छायां
अवकहोडाचक्रज्योतिषाधिकारो नाम चतुश्चत्वारिंशं सूत्रम्॥ 44॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में
अवकहोड़ाचक्रज्योतिष अधिकार नामक चवालीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 44॥

अवकहोडाचक्रज्योतिषं ज्योतिषफलं पञ्चचत्वारिंशं सूत्रम्॥ 45॥

विश्वकर्मोवाच —

दस्त्रोयमोऽनलो धाता चन्द्रः शिवस्तथादितिः।
वाक्पतिर्नागपितरौ भगार्यमदिवाकराः॥ 1॥
त्वष्टा च वायुरिन्द्राग्नी मित्र इन्द्रश्च नैर्ऋतिः।
जलं च विश्वेदेवाश्च विधिर्विष्णुस्तथा वसुः॥ 2॥
वरुणाऽजैकपाच्चैव तथाहिर्बुध्न्यपूषणौ।
इत्यश्विन्यादिनक्षत्रदेवनामानि सन्ति हि॥ 3॥

(इस प्रकरण में अश्विन्यादि क्रम से नक्षत्रों के स्वामी के नाम कहे जा रहे हैं) 1. अश्विनी नक्षत्र का स्वामी दस्र या अश्विनीकुमार, 2. भरणी का यम, 3. कृत्तिका का अग्नि, 4. रोहिणी का धाता, 5. मृगशिरा का चन्द्र, 6. आर्द्रा का शिव, 7. पुनर्वसु का अदिति (देवमाता), 8. पुष्य का वाक्पति (बृहस्पति), 9. आश्लेषा का नाग, 10. मघा का पितर, 11. पूर्वाफाल्गुनी का भग, 12. उत्तराफाल्गुनी का अर्यमा, 13. हस्त का दिवाकर, 14. चित्रा का त्वष्टा, 15. स्वाति का वायु, 16. विशाखा का इन्द्राग्नि, 17. अनुराधा का मित्र, 18. ज्येष्ठा का इन्द्र, 19. मूल का नैर्ऋति (राक्षस), 20. पूर्वाषाढ़ा का जल, 21. उत्तराषाढ़ा का विश्वेदेव, 22. अभिजित् का विधि, 23. श्रवण का विष्णु, 24. धनिष्ठा का वसु, 25. शतभिषा का वरुण, 26. पूर्वाभाद्रपद का अजैकपाद, 27. उत्तराभाद्रपद का अहिर्बुध्न्य तथा 28. रेवती नक्षत्र का स्वामी पूषा है।[1]

---

1. दैवज्ञवल्लभ में श्रीपति भट्टाचार्य ने यही सूची दी है— भेशाः क्रमशोश्वनौयमाग्निः केन्दुशर्वोदिति

अथ योनिवैरमाह —

योनिवैरं च कथये गणानां च समुद्भवम्।
अश्वोगजश्छागसर्पौ सर्पश्वानबिडालकाः।
मेषो बिडालकश्चैव मूषको मूषकश्च गौः ॥ 4 ॥
महिषी च ततो व्याघ्रो महिषो व्याघ्रकः क्रमात्।
मृगो मृगस्तथा श्वा च कपिर्नकुल एव च ॥ 5 ॥
नकुलो वानरः सिंहस्तुरगो मृगराट् च गौः।
इभ एताः क्रमेणैव ह्यश्विन्यादिभयोनयः ॥ 6 ॥

अब मैं गणों से बनने वाले योनि वैर के विषय में कहता हूँ। अश्व, गज, छाग, सर्प मे; सर्प, श्वान, बिडाल में; मेष और बिडाल में; मूषक, मूषक में और गौ में; महिषी और व्याघ्र में; महिष और व्याघ्र में भी; मृग, मृग में और श्वान में; कपि और नकुल में; नकुल और वानर में; सिंह और तुरग में; मृगराज और गौ में, हाथी में— ये सब क्रम से अश्विन्यादि में भयोत्पादक कहे गए हैं।

स्थिरचरद्विस्वभावमृदूग्रातुरतेजसः।
अष्टाविंशतिकं[28] यावद् भचतुष्कनिबन्धनम् ॥ 7 ॥

स्थिर, चर, द्विस्वभाव, मृदु, उग्र, आतुर, तेजस— सभी अट्ठाईस नक्षत्र इन चार कोटियों में परिबद्ध होते हैं।

गोव्याघ्रं गजसिंहं च महिषाश्वं श्वहारिणम्।
बभ्रुसर्पं कीशमेषं बिडालोन्दुरकं तथा ॥ 8 ॥
चतुर्दश भद्विकानां योनिवैरं च सप्तधा।

जीवकाद्रूजेयाः। परनोथभगोर्यमाभिधानो मार्त्तण्डोमुखर्द्धकिः समीरः ॥ पुरहूतहुताशनौ च मित्रं शक्रोनिर्ऋतिरथोजलं च विश्वेक। हरिवसवोम्बुपाजपादोऽहिर्बुध्न्यः कथिनस्त तस्य पूषाः ॥ (दैवज्ञवल्लभ, बड़ौदा ऑरियंटल इंस्टीट्यूट में विद्यमान मातृका, 5, 1-2)

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कृतिका से नक्षत्र स्वामी की गणना की गई है। अश्विन्यादि के क्रम से गणना की देन वराहमिहिर की है। पुराणकार की मान्यता है— अतः परं प्रवक्ष्यामि तव नक्षत्रदैवताः। कृत्तिका चाग्निदैवत्या रोहिण्यर्केश्वरा स्मृता॥ इन्द्वर्क्षः सौम्यदैवत्यो रौद्री आर्द्रा तथा स्मृता। पुनर्वसुस्तथादित्यो पुष्यश्च गुरुदेवतः ॥ आश्लेषा सर्पदैवत्या मघा च पितृदैवता। भाग्याश्च पूर्वफाल्गुन्य आर्यमाश्च तथोत्तराः ॥ सावित्रश्च तथा हस्तश्चित्रा त्वाष्ट्री प्रकीर्तिता। स्वातिश्च वायुदैवत्यो मूलश्च तदुदाहतम्। आप्यस्त्वाषाढ पूर्वाः स्युश्चोत्तरा वैश्वदैवताः ॥ ब्राह्मी चैवाभिजित्प्रोक्ता श्रवणो वैष्णवः स्मृतः। वासवं च तथा ऋक्षं धनिष्ठा प्रोच्यते बुधैः ॥ तथा शतभिषक्प्रोक्त नक्षत्रे वारुणं नृप। आजं भद्रापदापूर्वा आर्हिर्बुध्न्यं तथोत्तरा॥ पौष्णं च रेवती चार्क्षमश्विनी चाश्विदैवतम्। भरण्यश्च तथा याम्य प्रोक्तास्ते ऋक्षदैवताः ॥ (विष्णुधर्मोत्तर. 1, 84, 13-21, तुलनीय — बृहत्संहिता 98, 4-5)

गौ-व्याघ्र में, गज-सिंह में, महिष-अश्व में, श्वान-हरिण में, नकुल-सर्प में, वानर-मेष में, बिडाल और उन्दर में— इन चौदहों में योनि वैर सात प्रकार का कहा गया है।

अथाष्टकवर्गमाह —

अष्टवर्ग तथा चैषां कथयाम्यपराजित॥ 9॥

अकचटतपयशा (इत्येते) अष्टवर्णाः।

आऽऽद्याः शान्ता अष्टवर्णा दैवज्ञवचनैः शुभाः।

अब हे अपराजित! मैं अष्टवर्ग के बारे में कहता हूँ। अकचट तपयश— ये अष्टवर्ण कहे जाते हैं। आ से आरम्भ होने वाले अष्टवर्णों को ज्योतिषियों के वचनों में शान्त और शुभ कहा गया है।

दम्पती स्वामिभृत्ये च ग्रहग्रामाधिपे गणाः॥ 10॥

साध्यवर्गे दशगुणे परवर्गेण मिश्रिते।

वसुभिश्च$_8$ हरेद्भागं यच्छेषं लभ्यमादिशेत्॥ 11॥

इनसे पति-पत्नी, स्वामी-सेवक, ग्रह और ग्रामाधिपतियों का गणन करते हैं। साध्व वर्ग में दश से गुणित करते हैं, परवर्ग में मिश्रित करके, आठ से भाग दें और जो लब्ध हो, उसे ग्रहण करें।

एवं वर्ग पुनः शोध्यमनेनानुक्रमेण च।

शेषोद्धरितमध्यपात्य वृद्ध्यर्थे दैवदैत्यकः ?॥ 12॥

तस्य लभ्यं च योऽग्रतः पृष्ठोऽसौ ददते ध्रुवम्।

लाभालाभौ चैव येषां कथये त्वपराजित॥ 13॥

इस प्रकार वर्ग को पुनः शोधन करके इसी प्रकार के अनुक्रम से शेष को उद्धरित करके मध्यमान करके बुद्धि के लिए दैव-दैत्य (?) उसके लब्ध को आगे रखें और पीछे को ध्रुव स्थिर देवें। इससे जो लाभ-हानि होती है, उसको हे अपराजित! मैं कहता हूँ।

अईऊए तार्क्ष्यः पूर्वे आग्नेय्यां च कखादिकाः।

दक्षिणे च छावर्गाश्च नैर्ऋते च टठादिकाः॥ 14॥

पश्चिमे तथादिवर्गा वायव्ये च पफादिकाः।

उत्तरे च यरलवा ईशाने शषासास्तथा॥ 15॥

इति वर्गाष्टकम्।

अ ई ऊ ए नक्षत्रों को पूर्वदिशा में, क ख आदि को आग्नेय दिशा में, छ वर्ग

को दक्षिण दिशा में, टठादि को नैर्ऋत्य दिशा में, त थ आदि वर्ग को पश्चिम दिशा में, प फ आदि को वायव्य दिशा में, य र ल व को उत्तर दिशा में और श ष स आदि को ईशान कोण में (न्यसित करें)।

अथोष्टतरीदशामाह —

रविचन्द्राङ्गारबुधशनिवाक्यपतिराहवः।
तथा शुक्रः समाख्याताः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणम्॥ 16॥
षट्$_6$ तथा तिथयश्चैव$_{15}$ वसवश्च$_8$ सप्तदश$_{17}$।
दश$_{10}$ चैकोनविंशति$_{19}$र्द्वादश$_{12}$ त्वेकविंशतिः$_{21}$॥ 17॥
सूर्यादेः क्रमयोगेन प्राच्यादिषु प्रदक्षिणम्।
भुक्तिमार्गदशाश्चैव वर्षाणां सङ्ख्यया तथा॥ 18॥

(अब अष्टोत्तरीदशा का वर्णन किया जा रहा है) सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, शनि, बृहस्पति, राहु तथा शुक्र— ये सब प्राची अर्थात् पूर्व दिशा से प्रदक्षिणतः रहते हैं। छह, पन्द्रह, आठ, सत्रह, दस, उन्नीस, बारह तथा इक्कीस सूर्य के आदि क्रम से पूर्व दिशा की ओर से प्रदक्षिणतः रहते हैं। इस प्रकार महादशाओं के भोग मार्ग के वर्ष की संख्या होती है।[1]

यस्य नामाक्षरं प्रोक्तं विभक्ती ? चर्क्षभुक्तया।
तेषामनुक्रमेणैव कथयेऽन्तर्दशाफलम्॥ 19॥

---

1. यहाँ ग्रन्थकार ने अष्टोत्तरी महादशा का वर्णन किया है। ज्योतिषशास्त्र में कहा गया है कि गुर्जर-मरु, कच्छ, सौराष्ट्र, पाञ्चाल, सिन्धु पर्वतादि क्षेत्र में अष्टोत्तरी दशा से जातक का विचार किया जाना चाहिए— गुर्जरे कच्छसौराष्ट्रे पाञ्चाले सिन्धुपर्वते। एतेष्वष्टोत्तरी श्रेष्ठाऽन्यत्र विंशोत्तरीयता॥ बृहत्पाराशर होराशास्त्र में महर्षि पराशर ने मैत्रेयी के प्रश्न पर विंशोत्तरी की श्रेष्ठता के साथ ही अष्टोत्तरी की दशा को भी स्वीकार्य किया है। 'मानसागरी' में कहा गया है कि शुक्ल पक्ष में जन्म हो तो अष्टोत्तरी तथा कृष्णपक्ष में जन्म हो तो विंशोत्तरी दशा से विचार करना चाहिए। साथ ही मानसागरीकार ने अष्टोत्तरी दशा का विवरण भी दिया है। (मानसागरी : मानसागरकृत व्या. विजयकान्त मिश्र शास्त्री, वाराणसी 1999, 5, 14–15 व 23)
   सूत्रधार मण्डन के अनुसार इस दशा में क्रमानुसार सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, शनि, गुरु, राहु व शुक्र— इन आठ ग्रहों को दशाधिप बताया है, इसमें केतु की दशा नहीं होती।(राजवल्लभ. 12, 35)
   इसकी विधि मानसागरी में आई है। पहले दशा को दशा से गुणा करें और 9 का भाग दें। इस प्रकार मास को निकालकर शेष को 30 से गुणाकर 9 का भाग दें, जिससे दिन निकलता है और पुनः शेष को 60 से गुणाकर यदि 9 का भाग दें तो घटी निकलती है। इस प्रकार दशा में अन्तर्दशा को जाना जा सकता है— नवभिर्वर्षैर्मासः शेषमर्कगुणं कुरु। मासान् क्षिप्त्वा ततास्त्रिंशद्गुणं तत्र दिन क्षिपेत्॥ अष्टोत्तरशतेनाप्तं 108 दिनं तद्ध्रुवका बुधाः। तच्च षष्टिगुणं कृत्वा तन्मध्ये घटिकाः क्षिपेत्॥ अष्टोत्तरशतैर्भागं 108 लब्धाङ्कं घटिका:वदेत्। शेषं षष्टि 60 गुणं कृत्वा स्वहरैर्भागमाहरेत॥ लब्धाङ्के च

एकैकदशयुक्तांश्च प्रवर्तन्ते चाष्टौ दशाः।
भुक्तमानभुक्तायुक्ता ? दशाश्चैव दशोद्भवाः ?॥ 20॥
वरिष्यन्ते दि(द)शासाध्य दिनान्ते चारुवर्द्धनम ?।
अष्टद(त्रिं)श कृत्वानां भक्ते ग्रहाष्टौ भुक्त व दशा ?॥ 21॥

जातक का जो नामाक्षर हो, उसके नक्षत्रों की भुक्ति देखकर, उसी के अनुक्रम से अन्तर्दशा और उसका फल कहा जाना चाहिए।[1] एक-एक दशा में आठों ही अन्तर्दशाएँ चलती हैं और भुक्ता व भुक्तमान दशा दस प्रकार की होती है। दशासाध्या का वरण दिनान्त में ठीक वर्धन युक्त होता है(?)। अष्ट व त्रिंश का भाग देने से आठों भुक्त दशा निकल आती है।

अथ सूर्यदशाफलमाह —

सक्लेशाः कार्यहीनाश्च गृहसन्तापवर्द्धनम्।
शत्रुक्षयस्तेजोवृद्धिभास्करस्य दशाफलम्॥ 22॥

जातक के जब सूर्य की महादशा चलती हो तब क्लेश, कार्यहीनता, गृह सन्तापवर्द्धन लेकिन शत्रुओं का क्षय और तेजस्विता में वृद्धि होती है।

चन्द्रदशाफलमाह —

शत्रुश्च जायते मित्रममृतवाग् जनप्रियः।
लभते चोत्सवं नित्यं शैत्यं चन्द्रदशाफलम्॥ 23॥

जातक के जब चन्द्र की महादशा चलती है तब शत्रु भी मित्र बन जाते हैं, वाणी में अमृत तुल्य मधुरता आती है। लोकप्रियता बढ़ती है। उत्सवधर्मिता होती है एवं शान्ति रहती है।

अथाङ्गारकदशाफलमाह —

क्रूररोगा जनाः सर्वे ह्यग्निदाहोद्भवादिकम्।
अर्थक्षयो दिने नित्यमङ्गारकदशाफलम्॥ 24॥

---

1. इसको निम्न सारणी से समझा जा सकता है—

दशेश	सू.	चं.	मं.	बु.	श.	बृ.	श	शु.
वर्ष	6	15	8	17	10	19	12	21
नक्षत्र	आ.	म.	ह.	अनु.	पू.षा.	ध.	उ.मा.	कृ.
	पुन.	पू.फा.	चि.	ज्ये.	उ.षा.	श.	रे.	रो.
	पुष्य	उ.फा.	स्वा.	मू.	अभि.	पू.भा.	भ.	मृ.
	श्ले		विशा.		श्रवण			

मङ्गल की महादशा में लोग क्रूर रोगों से ग्रस्त होते हैं। अग्निदाह की सम्भावना रहती है। धन का क्षय होता है।

बुधदशाफलमाह —

बुद्धिवृद्ध्यर्थवृद्धी च सस्नेहं शोकशान्तिकम्।
धनपुत्रभार्यामित्रं बुधग्रहदशाफलम्॥ 25॥

बुध की महादशा में बुद्धि बढ़ती है। स्नेह बढ़ता है और शोक का निवारण होकर शान्ति की प्राप्ति होती है। धन, पुत्र, भार्या, मित्र सभी अनुकूल होते हैं।

अथ शनिदशाफलमाह —

देशत्यागो भय पीडा मित्रैः सह विरोधनम्।
पुत्रबन्धुस्त्रीवियोगः शनिश्चरदशाफलम्॥ 26॥

शनि की महादशा में अपना देश त्यागना पड़ता है। भय बढ़ता है। पीड़ा होती है, मित्रों से विरोध हो जाता है और पुत्र, बन्धु व स्त्री से वियोग हो जाता है।

गुरुदशाफलमाह —

आरोग्यं राज्यसन्मानमर्थवृद्धिः सदाजयः।
पूज्यन्ते गुरुतुल्याश्चाशोका गुरुदशाफलम्॥ 27॥

जब गुरु की महादशा आरम्भ होती है तो आरोग्य में वृद्धि होती है। राज्य से सम्मान मिलता है। धन की वृद्धि होती है और सदा विजय मिलती है। लोग जातक की गुरु तुल्य भाव से पूजा आरम्भ करते हैं। कोई शोक नहीं रहता।

राहवादशाफलमाह —

सदा पीडा गृहबन्धुस्थानत्यागोऽथ जायते।
राजगृहदण्डदुःखं प्रोक्तं राहुदशाफलम्॥ 28॥

राहु की महादशा नित्य कष्ट पीड़ा बनाए रखती है। गृहत्याग, बन्धु त्याग और स्थान त्याग सम्भव है। राजदण्ड की आशंका भी रहती है और दुःख-पीड़ा की वृद्धि होती है।

शुक्रदशाफलमाह —

तेजः सदा च सन्मानं पुत्रलाभो धनागमः।
सुखमाप्नोति शारीरं शुभं शुक्रदशाफलम्॥ 29॥

इति दशाफलम्।

शुक्र की महादशा में सदा तेज में वृद्धि होती है। सम्मान मिलता है। पुत्र जन्म का लाभ मिलता है। धन की प्राप्ति होती है। सुख मिलता है व शरीर स्वस्थ रहता है।[1]

अथ चन्द्रस्य द्वादशावस्थामाह —

चन्द्रस्यापि तथावस्था द्वादशैव$_{12}$ भवन्ति च।
तथा राशिगते चन्द्रे रुद्रघट्यः सपादिकाः$_{111}$ ॥ 30 ॥
प्रवासा च तथा नष्टा मृता जया च हसिता।
कम्पिता ज्वरिता स्वस्था भुक्तस्वप्ना जाग्रता ? भोग्या ॥ 31 ॥

चन्द्रमा की बारह दशाएँ होती हैं। जब-जब किसी राशि में चन्द्रमा का प्रवेश होता है, तब वह सवा ग्यारह घटिका तक रहता है। चन्द्रमा की द्वादश अवस्थाएँ हैं— 1, प्रवासावस्था, 2. नष्टावस्था, 3. मृतावस्था, 4. जयावस्था, 5. हसितावस्था, 6. कम्पितावस्था, 7. ज्वरितावस्था, 8. स्वस्थावस्था, 9, भुक्तावस्था 10. स्वप्नावस्था, 11. जाग्रतावस्था एवं 12. भोग्या।[2]

तस्यफलमाह —

प्रवासायां प्रवासः स्यात् नष्टायां हानिमोदिशेत्।
मृतायां मृत्युसम्भूतिर्जयायां जयमादिशेत् ॥ 32 ॥

---

1. गरुडपुराण में ग्रहों की महादशा का फलाफल बताया गया है कि सूर्य की दशा दु:ख देने वाली होती है और उद्वेग पैदा करती है तथा राजा का नाश करती है। चन्द्र की दशा ऐश्वर्य देने वाली, सुख पैदा करने वाली तथा मनोनुकूल अन्नदायक होती है। मङ्गल की दशा दु:खदायिका, राज्यादि विनाशकारक होती है। बुध की दशा दिव्य स्त्री का लाभ, राज्य प्राप्ति व कोष वृद्धिकारक है। शनि की दशा राज्यनाशक और बन्धु-बान्धवों को कष्टदायक होती है। बृहस्पति की दशा राज्यलाभ व सुखसमृद्धि तथा धर्मदायक होती है। राहु की दशा राज्य का नाश करती है, व्याधिकारक तथा दु:खदायक है। शुक्र की दशा में गज, अश्व, राज्य तथा स्त्री का लाभ होता है। (गरुडपुराण अध्याय 60)
2. प्रथम प्रवास, द्वितीय नष्ट, तृतीय जय, चतुर्थ अमृत, पञ्चम हास्य, षष्ठ रति, सप्तम क्रीडित, अष्टम सुप्त, नवम भुक्त, दशम ज्वर, एकादश कम्पित और द्वादश सुस्थिर अवस्था होती है। ये अपने नाम के अनुसार ही फल प्रदान करती है—प्रवासनष्टाख्यजयामृताख्या हास्यारतिः क्रीडितसुप्तभुक्ता। ज्वराह्वया कम्पित सुस्थिरा च द्विषट् च सङ्ख्या हिमगोरवस्था॥ (ज्योतिषरत्नमाला 11, 8) नारद ने अवस्थाएँ ज्ञात करने के लिए कहा है कि अश्विनी आदिगत नक्षत्रों की संख्या को साठ से गुणाकर वर्तमान नक्षत्र घटी प्रमाण जोड़ दें और उसमें चार का गुणाकर 45 से भाजित करने से जो शेष रहे, उसमें 12 का भाग देने पर प्रथम से शून्य या द्वादश तक अवस्थाएँ स्वीकारनी चाहिए— चन्द्रस्य द्वादशावस्था दिवा रात्रौ यथाक्रमात्। यत्रोद्वाहादिकार्येषु संज्ञातुल्यफलप्रदा॥ षष्टिघ्नं चन्द्रनक्षत्रं तत्कालघटिकान्वितम्। वेदघ्नमिषुवेदाप्तमवस्था भानुभाजिताः॥ प्रवासनष्टाख्यमृता जयाहास्यारतिर्मुदा। सुप्तिर्भुक्ति ज्वराकम्पसुस्थितिर्नामसंनिभाः॥ (नारदसंहिता 13, 6-8)

हसितायां च हास्यं स्यात् कम्पितायां च कम्पनम्।
ज्वरितायां ज्वरपीडा स्वस्थायां स्वस्तिकोद्भवः ॥ 33 ॥
भुक्तायां भोजनप्राप्तिः सुप्तायां चैव निद्रितम्।
जागर्तिर्जागृतायां च भोग्यायां बहुभोग्यता ॥ 34 ॥

इनके नामानुसार ही चन्द्रमा की प्रवासावस्था में प्रवास होता है, नष्टावस्था में हानि, मृतावस्था में मृत्यु की आशंका रहती है। जयावस्था में विजय होती है और हसितावस्था में प्रसन्नता होती है। कम्पितावस्था में भय से कम्पन होता है और ज्वरितावस्था में ज्वर पीड़ा होती है। स्वस्थावस्था में स्वस्त्यायन का उदय होता है। भुक्तावस्था में भोजन की प्राप्त और सुप्तावस्था में निद्रा होती है। जाग्रतावस्था में जाग्रति बनी रहती है। भोग्यावस्था में जातक को बहुत प्रकार के भोगों का सुख सुलभ होता है।

पञ्चत्रिंशोत्तरशतं घटिका राशिकोद्भवाः।
राशिद्वादशके चैव शुभश्चन्द्रो यथाबलम् ॥ 35 ॥

राशियों से 135 घटिकाएँ उत्पन्न होती हैं। इन बारह राशियों में शुभ चन्द्र हो तो वह बलवान होता है।[1]

जन्मानुसारेणचन्द्रदशासफलमाह —

जन्मस्थः कुरुते पुष्टिं जन्मनक्षत्रवर्जितम्।
तथानुक्रमतश्चैव द्वितीये नैव निर्वृतिः ॥ 36 ॥

जन्मस्थ बलवान चन्द्रमा पुष्टि करता है चाहे जन्म नक्षत्र कोई भी हो, उससे कोई तात्पर्य नहीं है। इसी अनुक्रम में दूसरे गृह में शुभ चन्द्रमा बलवान हो तो काम-धन्धे में कोई कमी नहीं होती, धनागम बना रहता है।

तृतीये राजसन्माजं चतुर्थे कलहागम्।
पञ्चमेऽर्थपरिभ्रंशः षष्ठे चैव धनागमः ॥ 37 ॥

यदि तृतीय स्थान में चन्द्रमा हो तो राज्य की ओर से सम्मान मिलता है किन्तु

1. मुहूर्तकल्पद्रुम में कहा गया है कि मेष आदि द्वादश राशियों में क्रम से अपने नामानुसार फल देने वाली चन्द्रमा की अवस्थाएँ हैं— 1. प्रवासावस्था (11.15 घटी-पल)2. नष्टावस्था (22.30 घटी-पल) 3. मृतावस्था (33.45 घटी-पल) 4. जयावस्था (45.00 घटी) 5. हास्यावस्था (56.15 घटी-पल) 6. प्रीति या कामोपभोग (67.30 घटी-पल) 7. क्रीड़ावस्था (78.45 घटी-पल) 8. सुप्तावस्था (90.00 घटी) 9. भुक्तावस्था (101.15 घटी-पल)10. ज्वरावस्था (112.30 घटी-पल)11. प्रकम्पावस्था (123.45 घटी-पल) और 12 स्थिरावस्था (135.00 घटी)— प्रवासनष्टे च मृता जया च हास्या च मुत्क्रीडनसुप्तभुक्ताः ॥ ज्वरप्रकम्पस्थिरनामधेया नाम्ना समं तासु फलं शुभेषु। (मुहूर्तकल्पद्रुम 10, 25)

चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा कलहकारी होता है। पाँचवें गृह में चन्द्रमा धननाश करता है और छठवें स्थान में चन्द्रमा हो तो धनागम होता है।

सप्तमे राजपूजा च ह्यष्टमे प्राणनाशनम्।
नवमे शोच्यता चैव दशमे कार्यसिद्धिदः ॥ 38 ॥

सातवें स्थान का चन्द्रमा राजपक्ष से आदर दिलवाने वाला है परन्तु आठवाँ चन्द्रमा सदा ही प्राणघातक होता है। नवम चन्द्रमा पवित्रता वर्द्धक होता है और दशम चन्द्रमा सदा ही कार्य सिद्धि कराता है।

बलं च बुद्धिं सन्मानं चन्द्र एकादशे स्थितः।
द्वादशस्थे शशाङ्के च मृत्युरेव न संशयः ॥ 39 ॥

एकादश स्थानस्थ चन्द्रमा बल, बुद्धि और कीर्तिवर्धक है जबकि यदि बारहवें स्थान में चन्द्रमा हो तो निश्चय ही मृत्युकारक, महान हानि करने वाला होता है।[1]

अथ चन्द्र-ताराबलमाह —

शुक्लपक्षे चन्द्रबलं कृष्णे ताराबलं शुभम्।
द्विपञ्चनवमे चन्द्रः शुक्लपक्षे तु कामदः ॥ 40 ॥

शुक्लपक्ष में चन्द्रमा का बल बढ़ा हुआ होता है जो शुभ है परन्तु कृष्णपक्ष में तारा बल प्रशस्त माना जाता है। दूसरे, पाँचवें और नवें भाव में चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में बड़ा ही लाभप्रद और कामनापूर्ति करने वाला होता है।[2]

---

1. यवनाचार्य ने चन्द्राचार के शुभाशुभ फल को इस प्रकार स्पष्ट किया है- स्वस्थानगो भोजनगन्धमाल्यनारीसुहृद्वस्त्ररतिप्रदः स्यात्। चन्द्रो द्वितीयर्क्षगतस्तु तस्माद् बहुव्ययायासविवादकारी॥ तृतीयगो वस्त्रहिरण्ययोषित्सुहृद्यशोभोजनदो हिमांशु। स्वबन्धुपीडाधननाशजानि कुर्वीत दुःखानि चतुर्थसंस्थः॥ धनक्षयाजीर्णरुगध्वदैन्यविक्षोभकृत् पञ्चमगः शशाङ्कः। क्षुडव्याधिचिन्ताकलहार्थनाशो मृत्युक्षयोपद्रवन्दोऽष्टमस्थः॥ धनक्षयारिव्ययमानभङ्ग रोगादिकारी नवमः शशाङ्कः। मेपूरणोस्थो बहुमानहर्षचेष्टाफलौदार्यविरोधकारी॥ एकादशः स्निग्धविवाहशय्यास्त्रीभोजनप्राप्तिसुखार्थकारी। निशाकरो द्वादशगस्तु दैन्यमालस्यमीर्ष्यापि चयं च कुर्यात्॥ (सविवृत्तिबृहत्संहितायाम् 103, 10 पर उद्धृत)
2. चन्द्रमा तीसरा, दसवाँ व छठा शुभ होता है। इसी प्रकार शुक्लपक्ष में दूसरा, पाँचवाँ तथा नवाँ शुभ होता है। अन्यत्र दोनों पक्षों में साधारण शुभ माना गया है किन्तु बुध से अतिरिक्त छठे, आठवें और चौथे में स्थित किसी ग्रह से विद्ध नहीं होना चाहिए— गोचरेण नवमो द्वितीयगः पञ्चमोऽपि शुभ कृन्निशाकरः। वर्द्धमाननुरीष्यते बुधैर्वेधमन्त्रि सदशः फलेनसः॥ (ज्योतिषरत्नमाला 11, 3)
नारदसंहिता में भी कहा गया है— शुक्लपक्षे शुभश्चन्द्रो द्वितीयनवपञ्चके। रिपुमृत्युम्बुसंस्थश्च न विद्धो गगनेचरैः॥ (नारदसंहिता 13, 2)
लल्लाचार्य का मत है— न कृष्णपक्षे शशिनः प्रभावो ताराबलं तत्र शुभं प्रदिष्टम्। देशान्तरस्थे विकले च पत्यौ सर्वाणि कार्याणि करोति नारी॥ अत्रापि तारापतिवीर्यमेव वदन्ति पक्षद्वितयेऽपि केचित्। केचिच्च तासां बलयुक्तमिन्दोर्बलं सदा देयमिति ब्रुवन्ति॥ (ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 49, श्लोक 8-9)

तिथिस्त्वेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रञ्च चतुर्गुणम्।
करणः षोडशगुणो वारश्चाष्टगुणो मतः ॥ 41 ॥

इनमें भी तिथि का बल मात्र एक गुण ही होता है जबकि नक्षत्र सदा ही उससे चौगुना फलदायी होता है। इससे सोलह गुणा फल करण बल का कहा है और वार बल इससे आठ गुना फल देता है।[1]

द्वात्रिंशद्गुणको योगस्ताराश्चतुःषष्ठिगुणाः।
चन्द्रः शतगुणः प्रोक्तस्तस्माच्चन्द्रबलं बलम् ॥ 42 ॥[2]

इसी प्रकार बत्तीस गुणा फल योग से और ताराओं से चौंसठ गुणा फल का लाभ होता है परन्तु ध्यान रहे कि चन्द्रमा का फल सदा ही सौ गुणा माना गया है। इसीलिए चन्द्रबल को ही सही तौर पर बल कहा गया है।

न सूर्यवेधो दशचक्रसङ्कुलम् गण्डेऽतिशूले परिधे च वैधृते।
न राहुपृथ्वीग्रहयोग... ...(यद्यैव) हनते चन्द्र सहस्त्रदोषम् ॥ 43 ॥

सूर्यवेध, दशचक्र समूह का गण्ड, अतिशूल, परिघ, वैधृति, राहु-पृथ्वी योग ग्रहणादि कोई भी दोष नहीं होते क्योंकि केवल एक चन्द्रमा के बलवान शुभ होने पर हजारों दोषों को अकेला ही हर लेता है।

इति सूत्रसन्तागुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योपराजितपृच्छायां
ज्योतिषलक्षणाधिकारो नाम पञ्चचत्वारिंश सूत्रम् ॥ 45 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में ज्योतिष लक्षण अधिकार नामक पैंतालीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 45 ॥

---

1. राजमार्तण्ड में यह श्लोक इस प्रकार आया है— तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रञ्च चतुर्गुणम्। वाराश्चाष्टगुणश्चैव चन्द्रः शतगुणः स्मृतः ॥ (ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 62, श्लोक 25) राजमार्तण्ड के मूल पाठ में 41-42वें श्लोक इन श्लोकों का पाठान्तर इस प्रकार आया है— तिथिरेकगुणा प्रोक्ता वारश्चैव चतुर्गुणः। ऋक्षं षोडशमित्याहुर्योगश्चैव शताधिकः ॥ सहस्त्रांशा रविः प्रोक्तश्चन्द्रो लक्षगुणाधिकः। वर्जयित्वा बलं सर्वं तस्माच्चन्द्रबलाबलम् ॥ (राजमार्तण्ड 596-597)
2. उक्त दोनों श्लोक नारद के हैं, अत्यल्प पाठान्तर के साथ ये तुलनीय हैं— तिथिस्त्वेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रं च चतुर्गुणम्। वारश्चाष्टगुणः प्रोक्तः करणं षोडशान्वितम् ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणो योगस्तारा षष्ठिगुणा स्मृता। चन्द्रे शतगुणं पुंसां तस्माच्चन्द्रबलं बलाधिकम् ॥ (बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 27, 10-11 पर उद्धृत)

ज्योतिषलक्षणात्मकं षट्चत्वारिंशं सूत्रम् ॥ 46 ॥

विश्वकर्मोवाच। नक्षत्रसञ्ज्ञा च प्रत्येकनक्षत्रंकृत्यानि। तत्रैव पार्श्वतोमुखीनक्षत्रं —

रेवती चाश्विनी चित्रा हस्तः स्वातिपुनर्वसू।
अनुराधा मृगो ज्येष्ठा नवैताः, पार्श्वतोमुखाः ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले— रेवती, अश्विनी, चित्रा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, अनुराधा मृगशिरा और ज्येष्ठा— ये नौ नक्षत्र पार्श्वतोमुखी कहे जाते हैं।

गजोष्ट्राश्वाजमहिषवृषादेर्दमनं शुभम्।
कुर्याद्वेश्मप्रवेशादि गमनागमने तथा ॥ 2 ॥

इन नक्षत्रों में हाथी, ऊँट, घोड़े, अज, महिष, वृष आदि का दमन (बधियाकरण) शुभ है। घर में आते-जाते समय भी इनका मिलना शुभ हैं।

अरहट्टचक्रयन्त्रं रथप्रभृतियापनम्।
प्रमाणं प्रेरणं चैव कार्यं वै पार्श्वतोमुखैः ॥ 3 ॥

इसी प्रकार रहट या जलोत्थान यन्त्र का सञ्चालन, रथादि वाहनों को चलाना, इनको प्रमाणित करना, प्रेरित करना आदि सभी कार्यं इन पार्श्वतोमुखी नक्षत्रों में करना हो तो ठीक रहता है।

अधोमुखीनक्षत्रं —

कृत्तिका भरणी चैव मघा मूलविशाखिके।
तिस्रः पूर्वास्तथाश्लेषा ह्यधोवक्त्राः प्रकीर्तिताः ॥ 4 ॥

कृतिका, भरणी, मघा, मूल, विशाखा, चित्रा, पूर्वा, आश्लेषा— ये सब अधोमुखी नक्षत्र माने जाते है।

वापी कूपतडागानि तथा भूमिगृहाणि च।
विद्यारम्भं निधानं च पातालादिप्रवेशनम् ॥ 5 ॥

इनमें वापी, कूप, तड़ाग, भूमिग्रहण, विद्यारम्भ, निधान (पूँजी गाड़ना), पाताल-गुहादि में प्रवेश कार्य किए जाते हैं।

ऊर्ध्वमुखीनक्षत्रं —

पुष्यार्द्रे रोहिणी चैव धनिष्ठा चोत्तरात्रयम्।
श्रवणं शतताराश्च नवैवोर्ध्वमुखाः स्मृताः ॥ 6 ॥

पुष्य, आर्द्रा, रोहिणी, धनिष्ठा, उत्तरात्रय (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ व उत्तराभाद्रपद), श्रवण, शतभिषा— ये नौ ऊर्ध्वमुखी नक्षत्र कहे जाते हैं।

आसु राजाभिषेकं च पट्टबन्धं महोत्सवम्।
प्रासादं च गृहं चैव पताका छत्रचामरम्॥ 7॥
आरामनगरारम्भं निधीनां तु निषेचणम्।
ऊर्ध्ववक्त्रेषु कर्माणि तानि सर्वाणि कारयेत्॥ 8॥

इन नक्षत्रों में जो कार्य होते हैं उनमें राज्याभिषेक, पट्टबन्ध, महोत्सव, प्रासाद, गृह, पताका, छत्र, चामर, बगीचे, नगर-निवेशारम्भ, राशि निवेशन मुख्य हैं अर्थात् ऊर्ध्वमुखी नक्षत्रों में उक्त कार्य करने चाहिए।[1]

राक्षसगुणप्रधाना: —

मघाश्लेषा विशाखा च कृत्तिका शततारका।
चित्रायुक्ता धनिष्ठा च ज्येष्ठा मूलं च राक्षसः॥ 9॥

मघा, आश्लेषा, विशाखा, कृतिका, शतभिषा, चित्रा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा और मूल— ये नक्षत्र राक्षस गुण प्रधान होते हैं।

मनुष्यगुणप्रधाना: —

पूर्वास्तिस्त्रो रोहिणी च ह्यार्द्रा च भरणी तथा।
तिस्त्रश्चैवोत्तराश्चैवं मनुष्यः सम्प्रकीर्तितः॥ 10॥

तीनों पूर्वा, रोहिणी, आर्द्रा, भरणी और तीनों उत्तरा— ये नौ नक्षत्र मनुष्य गुण (गण क्रम से) प्रधान माने जाते हैं।

देवगुणप्रधाना: —

मृगाश्विनी रेवती च हस्तः स्वातिपुनर्वसू।
पुष्यानुराधाश्रवणमिति देवगणः स्मृतः॥ 11॥

---

1. राजवल्लभ. में भी यह वर्णन आया है। इसे इस तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है—

क्रम	संज्ञा	नक्षत्रों के नाम	करणीय कार्य
1.	अधोमुख	पूर्वात्रय, आश्लेषा, मघा, कृतिका, मूल, भरणी, विशाखा	भूमिखात, विधिरोपण, उग्रकार्य
2.	पार्श्वमुख	चित्रा, अश्विनी, अनुराधा, पुनर्वसु, स्वाती, ज्येष्ठा, मृगशिरा, रेवती, हस्त	वाहन, यन्त्र, हलारोहण, पशुकृत्य
3.	ऊर्ध्वमुख	पुष्य, उत्तरात्रय, आर्द्रा, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, शतभिषा	गृहप्राकार, देवगृह, उच्चहर्म्य, छत्र-चामर, राज्याभिषेक

मृगशिरा, अश्विनी, रेवती, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा और श्रवण— ये नौ देवगण प्रधान नक्षत्र माने जाते हैं।

स्वगणे चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमा देवमानुषे।
देवासुरे च कलहो मरणं नरराक्षसे॥ 12॥

उक्त नक्षत्रों में अपने गण वाले नक्षत्रों में उत्तम प्रीति होती है। देवगण और मनुष्यगण नक्षत्रों में मध्यम प्रीति होती है। देवगण और राक्षसगण नक्षत्रों में कलह होता है और राक्षसगण तथा मनुष्यगण में मरण की आशंका रहती है।

सूर्यपातस्ययोगमाह —

आदित्ये द्वादशे ऋक्षे वर्जयेद् रविपातशः।
मृत्युरष्टादशाश्चैव कम्पो वै एकोनविंशतिः ?॥ 13॥

सूर्य अपने से बारहवें नक्षत्र पर रवि पातशः योग बनाता है। अतः ऐसे योग में काम नहीं करना चाहिए। इसी तरह सूर्य अठारहवें नक्षत्र पर मृत्युयोग और उन्नीसवें नक्षत्र पर कम्पयोग बनाता है। अतः ये योग भी वर्जित है, शुभ नक्षत्रों को ही ग्राह्य समझें (?)।

एकविंशतिमे ऋक्षे निर्घातं पतते सदा।
योगानेतान् रविपातान् वर्जयेच्छुभकर्मसु॥ 14॥

इक्कीसवें नक्षत्र पर सूर्य आने पर सदा निर्घातपात् योग होता है। अतः इन सभी रविपात योगों को शुभ कर्म अवसर पर वर्जनीय कहा गया है।

ग्रहाणां जन्मनक्षत्रं वर्जयेच्छुभकर्मसु।
एते कलङ्क योगाः स्युर्गृहजन्मसु दूषिताः॥ 15॥

जन्म नक्षत्र के ग्रहों को भी शुभ कर्म में वर्जनीय कहा है। ये सभी कलङ्क योग कहे गए हैं, जो गृहजन्म से दूषित है।

त्रीणि च त्रीणि चार्क्षाणि रविभौमशनिश्चराः।
आलिङ्गितं धन्विनं चैव ? तृतीयमवलोकितम् ?॥ 16॥

सूर्य, मङ्गल और शनिश्चर— ये तीनों जब तीन नक्षत्रों से आलिङ्गित या साथ, धन्विन तथा तृतीय अवलोकित-दृष्टि सम्बन्ध बनाते हों तो ये भी कलङ्क योग हैं, जो शुभ कर्म में वर्जित माने जाते हैं (?)।

अथ क्षेत्राधिपत्याह —

मेषवृश्चिकयोर्भौमः शुक्रो वृषतुलाधिपः।
बुधः कन्यामिथुनयोः सोमो वै कर्कटाधिपः॥ 17॥

सूर्यक्षेत्रं भवेत्सिंहो धनुर्मीनाधिपो गुरुः।
शनिर्मकरकुम्भेश एते क्षेत्राधिपा ग्रहाः॥ 18॥[1]

ग्रह स्वामी रूप में मङ्गल मेष और वृश्चिक का; शुक्र वृष और तुला का; बुध कन्या और मिथुन का; चन्द्रमा कर्क का; सूर्य सिंह राशि का; गुरु धनु और मीन राशि का; शनि मकर और कुम्भ राशि का स्वामी अर्थात् क्षेत्राधिपति ग्रह होते हैं।

न पीडयन्ति स्वक्षेत्रे स्वमित्रे च ग्रहास्तथा।
विषमस्थाः पीडयन्ते भस्मीकुर्वन्ति विग्रहे॥ 19॥

जब कोई ग्रह स्वक्षेत्र में हो और स्वमित्र के क्षेत्र में हो तो कभी भी पीड़ा नहीं पहुँचाते, परन्तु विषम ग्रह के क्षेत्र में हो तो बड़े विग्रहकारक बन जाते हैं और इतनी पीड़ा पहुचाते हैं कि वे भस्मसात कर देते हैं।

ग्रहमैत्री —

सोमश्च सूर्यभौमौ च त्रिदशाचार्य एव च।
स्नेहानुगाश्च चत्वारो मैत्री स्यात्तु परस्परम्॥ 20॥

सोम, सूर्य, मङ्गल और गुरु— ये चारों परस्पर मित्र भाव में स्नेहपूर्वक रहते हैं।

भार्गवः सूर्यपुत्रश्च बुधश्चापि तृतीयकः।
स्नेहानुगास्त्रयः प्रोक्ता मैत्री स्यात्तु परस्परम्॥ 21॥

शुक्र, शनि और बुध— ये तीनों भी परस्पर स्नेह रहने से मित्रभाव वाले कहे गए हैं।

ग्रहा एकत्र चत्वारिस्त्रिभिरेकत्र संस्थिताः।
तेषां मध्ये रौद्रं घोरं महद्वैरस्य कारणम्॥ 22॥
रविक्षेत्रे गते जीवे जीवक्षेत्रे गते रवौ।
विवाहं व्रतबन्धं च कुर्याद्देशान्तरं तथा॥ 23॥

यदि तीन या चार ग्रहों की युति एक क्षेत्र में हो तो यह स्थिति उनमें महान् रौद्र रूप में घोर वैर का कारण बनती है, रवि के क्षेत्र में गुरु हो या गुरु के क्षेत्र में रवि हो तो ऐसे समय में विवाह, व्रतबन्ध और देशान्तर गमन वर्जित है।

(द्विर्द्वादशे त्रिकोणे च न कदाचित्षडष्टके)।[2]
उद्वेगं कलहो हानिः सुखं नैव कदाचन॥ 24॥

---

1. ये श्लोक नारद से तुलनीय है— मेषवृश्चिकयोर्भौमः कन्यामिथुनयोर्बुधः। धनुर्मीन द्वयोर्मन्त्री शुक्रो वृषतुलेश्वरः॥ शनिर्मकरकुम्भेश इत्येते राशिनायकाः। (नारदसंहिता 29, 32-33)
2. प्रकाशित पाठे नोपलभ्यते।

द्विर्द्वादश, त्रिकोण और षडष्टक हो तो सम्बन्ध नहीं करें क्योंकि, ऐसे अवसर पर उद्वेग, कलह और हानि होती है और सुख तो कभी भी सुलभ नहीं होता।

लग्नघटिकाप्रमाणं —

वक्ष्ये द्वादश लग्नानि घटिकानां प्रमाणतः।
सप्तपञ्चाशत्पलानि त्रिघट्यो मीनमेषयोः ॥ 25 ॥

(विश्वकर्मा बोले कि) अब मैं बारह लग्नों को उनकी घटिकाओं तक सप्रमाण कहता हूँ। मीन, मेष की घटिकाएँ 3 घड़ी और 57 पल की होती हैं।

वृषे कुम्भे चतस्त्रश्च षड्विंशति पलानि च।
मिथुन मकरे पञ्च घट्यो नव पलानि च ॥ 26 ॥

वृष व कुम्भ की 4 घड़ी और 26 पल होती हैं। मिथुन और मकर की 5 घड़ी और 9 पल होती हैं।

धनुः कर्कटयोः पञ्च सप्तत्रिंशत् पलैः सह।
सिंहवृश्चिकयोः पञ्च द्वात्रिंशच्च पलानि च ॥ 27 ॥

धनु और कर्क की 5 घड़ी और 37 पल की होती है। सिंह और वृश्चिक की 5 घड़ी और 32 पल की होती है।

पञ्चैव कन्यातुलयोरेकोनविंशतिपलैः।
इत्थं लग्नप्रमाणानि प्रोक्तानि द्वादशैव च ॥ 28 ॥

कन्या तुला की भी घटिकाएँ 5 घड़ी और 19 पल की होती हैं। इतने ये लग्न प्रमाण बारहों लग्नों के कहे गए हैं।

दिवानिशालग्नानि —

कर्कटानि निशालग्नं नक्रादि दिनलग्नकम्।
लग्नानि षट् तथा रात्रौ दिने स्युः षट् तथैव च ॥ 29 ॥

कर्कादि से रात्रि के लग्न और मकरादि से दिन के लग्न— इस तरह छह लग्न रात्रि के और छह लग्न दिन के होते हैं।

अथ विप्रादीनाभिधानं —

वृश्चिकः कर्कटो मीनो ब्राह्मणाः परिकीर्तिताः।
धनुर्मेषस्तथा सिंहो राजानश्च शुभाः स्मृताः ॥ 30 ॥
कन्या वृषश्च मकरश्चैते वैश्या उदाहृताः।
मिथुन च तुला कुम्भः शूद्रा एते प्रकीर्तिताः ॥ 31 ॥

वृश्चिक, कर्क और मीन राशि की ब्राह्मण संज्ञा कही है। धनु, मेष और सिंह राशि की क्षत्रिय संज्ञा; कन्या, मकर और वृष राशि की वैश्य संज्ञा और मिथुन, तुला एवं कुम्भ राशि की शूद्र संज्ञा कही गई है।[1]

विप्रः कार्यो द्वादशभिः क्षत्रियो नवभिस्तथा।
षड्लग्नैश्च भवेद् वैश्यस्त्रिभिः शूद्रः प्रशस्यते॥ 32॥

सामान्यतया बारह लग्नों से विप्र (ब्राह्मण) कार्य होते है। नौ लग्नों से क्षत्रिय कार्य; छह लग्नों से वैश्य कार्य और तीन लग्नों से शूद्र कार्य प्रशस्त कहे गए हैं।

सिंहाली च घटवृषौ लग्नवेलासु चोत्तमाः।
प्रासादप्रतिमालिङ्गजगतीपीठमण्डपात्॥ 33॥

प्रासाद, प्रतिमा, लिङ्ग, जगती, पीठ और मण्डप के लिए सिंह, वृश्चिक, कुम्भ और वृष राशि के लग्न उत्तम माने गए हैं।

नगरारामनिर्वेशं प्रतिष्ठाऽम्बुनिधेस्तथा।
गढदुर्गाणि[2] गृहाश्च स्थिरलग्नेऽतिशोभनाः॥ 34॥

नगर, बाग-बगीचे का निवेश, मकान, तालाब, गढ़, दुर्ग और गृह की प्रतिष्ठा हेतु स्थिर लग्न बड़े शुभ माने गए हैं।

कन्याधनुर्मीनयुग्मे स्वभावा लग्न वै दिवे ?।
महोत्सवाभिषेकं च विवाहव्रतबन्धनम्॥ 35॥

कन्या, धनु, मीन और मिथुन— ये दिन के स्वाभाविक लग्न हैं ? इन्हें महोत्सव, अभिषेक, विवाह, व्रतबन्ध, गृहप्रवेश आदि शुभ कर्मों के लिए प्रशस्त कहा है।

तुलाकर्कमेषनक्रे लग्नाश्चत्वार उत्तमाः।
यात्राद्या विविधा एषु राजकटकोदिशोभनाः॥ 36॥

तुला, कर्क, मेष, मकर— ये चारों लग्न विविध यात्राओं, राजा की सेना के प्रयाण और स्कन्धावार (राजकटक) हेतु उत्तम कहे गए हैं।

---

1. नारद का मत है— झषालिकर्कटा विप्रास्तदूर्ध्वाः क्षत्रियादयः। पुंवर्णराशौ स्त्रीराशौ समेहीने तथा शुभम्॥ (नारदसंहिता 29, 140) कन्या का वर्ण वर के वर्ण से सम या न्यून हो तो शुभ होता है।
2. यहाँ 'गढ़' शब्द का प्रयोग रचनाकार को मेवाड़ (राजस्थान) या गुजरात क्षेत्र का होना बताता है क्योंकि गढ़ दुर्ग के पर्याय के रूप में यहाँ की देशज भाषा मेवाड़ी, गुजराती में व्यवहृत है। इसी आधार पर सूत्रधार मण्डन ने भी राजवल्लभ. में गढ़ शब्द का प्रयोग किया है। भोजराज ने दुर्ग शब्द का ही प्रयोग किया है किन्तु भोजदेव के नाम से लिखित 'युक्तिकल्पतरु' में 'द्वन्द्व' (देखिए— युक्तिकल्पतरु के अन्तर्गत द्वन्द्वयुक्ति) शब्द का प्रयोग किया है जो निश्चित ही किसी अन्य रचनाकार भोज की ओर सङ्केत करता है।

सप्तपञ्चशलाकाश्च मद्रभिश्चककोत्तमम् ?।

स्वरे स्वामिकान्तारेषु ग्रहवेधविशोधनम्॥ 37॥

इसी प्रकार वेध दर्शन के लिए ग्रहों की स्थिति पञ्चशलाका और सप्तशलाका चक्रों से उत्तम प्रकार से देखी जा सकती है। स्वर (वर = चुनाव) में स्वामी और कान्तार (अपने एवं पराए एवं पति-पत्नी) क्षेत्र में ग्रह वेध विशोधन करना चाहिए।

रविवेधे च वैधव्यं चन्द्रे भृत्यं न जीवति।

कुजे प्रजाक्षयं विद्याद् वन्ध्या सोमसुते मता॥ 38॥

रवि वेध से वैधव्य, चन्द्र वेध से सेवक की मृत्यु, मङ्गल वेध से प्रजा को क्षति जानना और सोमसुत अर्थात बुध के वेध से वन्ध्यत्व सूचित होता है।

प्रव्रज्या गुरुवेधे तु अपुत्रा शुक्रवेधतः।

दुःखदा सूर्यपुत्रेण ग्रहवेधविशोधनम्॥ 39॥

गुरु का वेध होने से प्रवज्या करनी पड़ती है। शुक्र वेध से सन्तानहीनता होती है तथा शनि के वैध से निश्चय ही दुःख आता है। इस प्रकार से यहाँ यह ग्रहों का वेध विशोधन कहा गया।

इति सूत्रसन्तागुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां ज्योतिषलक्षणाधिकारो नाम षट्चत्वारिंशं सूत्रम्॥ 46॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में ज्योतिष लक्षण अधिकार नामक छिलीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 46॥

गणितक्षेत्रनिर्णयो नाम सप्तचत्वारिंशं सूत्रम्॥ 47॥

विश्वकर्मोवाच —

उद्धृत्य गणितात्सारं सर्वशास्त्रादिदीपकम्।

वेदाश्रः क्षेत्रवास्तुश्च वृत्तश्चाष्टाश्र एव च॥ 1॥

ज्ञेयो द्वात्रिंशदश्रश्च शिलायां विविधोत्तमः।

षट्कोधश्च त्रिकोणश्च चन्द्रार्धो गोलकः परम्॥ 2॥

विश्वकर्मा बोले कि सभी शास्त्रों के दीपक-तुल्य माने जाने वाले गणितशास्त्र का सार उद्धृत करके चतुरश्रक्षेत्र वास्तु, वृत्तक्षेत्र वास्तु, अष्टाश्रक्षेत्र वास्तु, बत्तीसकोणीयक्षेत्र वास्तु को विविध प्रकार की उत्तम शिलाओं से षट्कोण, त्रिकोण, अर्धचन्द्राकार तथा गोलाकार तक कहूँगा।

अथ गणितपादं —

आदौ गणितपादं च कथयिष्याम्यनुक्रमात्।
तदन्तराणि क्षेत्राणि कथये विविधानि च॥ 3॥

इसमें सबसे पहले 'गणित पाद' भाग को अनुक्रम से कहता हूँ, उसके बाद विविध प्रकार के क्षेत्रों के विषय में कहूँगा।

एकात्पद्मादीनां गणनामाह —

एकं दश शतमस्मात् सहस्रमनु चायुतम्।
नियुतं प्रयुतं तस्मादर्बुदन्यर्बुदे अपि॥ 4॥
वृन्दं खर्वनिखर्वाणि शङ्कुपद्माम्बुराशयः।
ततः स्यान्मध्यमन्त्यं च परं चापरमप्यतः॥ 5॥
परार्धं चेति विज्ञेयं दशवृद्ध्योत्तरोत्तरम्।[1]

संख्या-स्थानानुसार मान इस प्रकार बताया है कि एक (1), दस (10), शत (100), सहस्र (1000), अयुत (10000), नियुत (100000), प्रयुत (1000000), अर्बुद (10000000), अन्यर्बुद (100000000), वृन्द (1000000000), खर्ब (10000000000), निखर्ब (100000000000), शङ्कु (1000000000000), पद्म (10000000000000) और इसके बाद अम्बुराशि (100000000000000) मध्य (1000000000000000), इसके उपरान्त अन्त्य (10000000000000000), पुनः पर (100000000000000000), अपर (1000000000000000000) तथा इसी प्रकार परार्ध (10000000000000000000) संज्ञक इन संख्याओं को उत्तरोत्तर दस-दस की वृद्धि से जानना चाहिए।

अधोयोगे सङ्कलितास्तत् सङ्कलितमुच्यते॥ 6॥

एक के नीचे एक संख्या रखते हुए उन्हें योग से सङ्कलित करने को सङ्कलित अर्थात् जोड़ कहते हैं।

---

1. इस प्रकार से एक, दश, सौ, हजार, दस हजार, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, अन्यर्बुद वृन्द, खर्व, निखर्व, शङ्कु, पद्म राशियाँ, संख्याएँ होती है। इनमें भी मध्यम, अन्त्य और परं और ऊपरं तथा उनसे परे भी परार्ध आदि तक इन संख्याओं को समझना जो एक एक से दस गुनी वृद्धि को प्राप्त होती है। उक्त श्लोक ज्यों के त्यों समराङ्गणसूत्रधार (9, 47-49) में आए हैं। अपराजित के इस अध्याय पर भास्कराचार्य कृत लीलावती का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। यही अध्याय सूत्रधार मण्डन कृत राजवल्लभ के 11वें अध्याय का मूल उत्स रहा है। नारदपुराण में यह क्रमवार गणना इस प्रकार आई है— एकं दश शतं चैव सहस्रायुतलक्षकम्॥ प्रयुतं कोटिसंज्ञां चार्बुदमब्जं च खर्वकम्। निखर्वं च महापद्मं शङ्कुर्जलधिरेव च॥ अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च संज्ञा दशगुणोत्तराः। (नारद. पूर्व. 54, 12-13)

अग्रेऽङ्काङ्क स्थापनीयस्तद्गुणैः पृष्ठपादतः।
ऊर्ध्वमूर्ध्व क्रमान्मूलं सङ्ख्या सङ्कलिता भवेत्॥ 7॥

आगे-आगे अङ्कों की स्थापना करते हुए पीछे की संख्याओं के ऊपर से ऊपर की मूल से क्रमवार जोड़ते जाने से (या गुणा से) संख्या सङ्कलित होती है।

एवं पादाश्च चत्वारो गणिताङ्कसमुच्यते।
सङ्कलितं करणसूत्रामार्याद्वयंत्तेको वृद्धिश्च ?।
अधोयोगे सङ्कलीकृता तस्माद्भेदशोत्तरां च ?॥ 8॥

इस प्रकार गणिताङ्क कहलाने वाले चार पाद होते है। सङ्कलित, करण सूत्र को, आर्याद्वय अन्त में एक की वृद्धि ? नीचे योग करे सङ्कलित करें, उसके भेदशः उत्तराच ?।[1]

अथ संख्यापद नामानि च —

अग्रपृष्ठो अग्रकोत्तरा वा शून्यपृष्ठोक्त ?।
भवेद् दशोत्तरा वृद्धी........ ?॥ 9॥
एकराशिस्तु गणिते मूलं वर्गो द्विराशिकः।
त्रिराशिकोऽथवोक्तश्च घनो वै कर्णसम्पुटे॥ 10॥

आगे पीछे के आगे के बाद वा शून्य पृष्ठोवत्त ?। दशोत्तरा वृद्धि होती है ? एक ही संख्या से मूल संख्या को गणित करने से 'वर्ग द्विराशिक' बनता है। इसी तरह एक ही राशि को मूल से तीन बार गणित करने से घन संख्या बनती है, जो 'कर्ण सम्पुट' कहलाती है।

पदद्वयं हते पादे पदैस्तद् गुणितं तथा।
पदघ्नं च पदहतमित्यभिख्यं च राशिकम्॥ 11॥

दो पाद को एक पाद से भाग देने पर जो संख्या आए, उसे पुनः पाद से गुणित करे तो उसे 'पदघ्न' तथा 'पदहत राशि' कहते हैं।

---

1. यहाँ पाठ भ्रष्ट होने से नारदीय निर्देश को देखना चाहिए। यथास्थानीय अङ्कों का योग या अन्तर क्रम या व्युत्क्रम से करें। गुण्य के अन्तिम अङ्क को गुणक से गुणा करें। इसके बाद उसके पार्श्ववर्ती अङ्क को भी उसी गुणक से गुणा कर दें। इस प्रकार आदि से अङ्क तक गुणा करने पर गुणनफल लब्ध हो जाता है। इसी प्रकार भागफल जानने के लिए भी प्रयास करना चाहिए। जितने अङ्क से भाजन के साथ गुणा करनेपर भाज्य में से घट जाए, वही अङ्क लब्धि अर्थात् भागफल होता है। दो समान अङ्कों के गुणनफल को वर्ग कहा गया है। ज्ञानियों ने उसे ही कृति कहा है— क्रमादुत्क्रमतो वापि योगः कार्योत्तरं तथा॥ हन्याद्गुणेन गुण्यं स्यात्तेनैवोपान्तिमादिकान्। शुद्धेद्धरोयद्गुणश्च भाज्यान्त्यात्तफलं मुने॥ समाङ्कतोऽथो वर्गः स्यात्तमेयाहुः कृतिं बुधः। अन्त्यात्तु विषमात्यक्तवा कृतिं मूलं न्यसेत् पृथक्॥ इत्यादि... (नारद. पूर्व 54, 14-16)

द्वाभ्यां तु द्विगुणीकृत्य मूलभागोद्भवं पदम्।
एवं मूलाभिधानं च वास्तुविद्भिरुदाहृतम्॥ 12॥

दोनों को दुगुना करके मूल भाग से निष्पन्न पद को 'मूलाभिधान' नाम से वास्तुशास्त्री जानते हैं।

एवं यद् द्विगुणीकृत्य चतु? र्द्विगुणमेव च।
प्रख्यातं द्विगुणं चेति प्रयुक्तं गुणितादिके॥ 13॥

इस प्रकार जब दुगुने किए जाए चार को? इस द्विगुण राशि को गुणित करने वाले विद्वान 'द्विगुण' (पहाड़े की तरह) नाम से जानते हैं।

कर्मान्तर व्यवहार क्षेत्रं चाऽपि प्रदापयेत्।
दीर्घ हन्यात्पृथुत्वेन वेदाश्रस्य फलं भवेत्॥ 14॥

कार्य करते समय व्यवहार क्षेत्र में भी इसे प्रयोग में लाना करना चाहिए। लम्बाई को चौड़ाई से गुणा करके चतुर्भुज क्षेत्र का फल प्राप्त होता है।

सूत्र इस प्रकार है— लम्बाई × चौड़ाई = क्षेत्रफल।

खातमानं तु पाषाणे गोलपिण्डैस्तु ताडयेत्।
तदसङ्ख्याता कर्माणं पाषाणस्य तदन्तरम्?॥ 15॥

पाषाण को खात-मान से अर्थात् खान से निकालते समय गोलपिण्ड से चोट करनी चाहिए, इसके लिए संख्या अंकित कर ही कार्य में लेना चाहिए।

नवत्यङ्गुलदैर्घ्ये च पृथुत्वे चतुर्विंशतिः।
द्वादशाङ्गुलपिण्डं च शिलामानप्रमाणतः॥ 16॥

नब्बे अङ्गुल की लम्बाई और चौबीस अङ्गुल की चौड़ाई (मोटाई) से बारह अङ्गुल का पिण्ड शिलामान प्रमाण से कहा है।

यच्छिलायाः समानं च गणित्वा क्रमयोगतः।
तेषां गुणितसङ्ख्याश्च पाषाणाश्च क्रमोदिताः॥ 17॥

जिस शिला के समान ही क्रम योगानुसार गणित करके जो गुणित संख्या आए, उसे पाषाण की क्रमोदिता संख्या कहते है।

दीर्घ द्वादशको भागः षड्भागश्चैव विस्तरः।
पिण्डस्य तुर्यो भागश्च अन्योन्मपि ताडयेत्॥ 18॥

बारह भाग की लम्बाई और छह भाग की चौड़ाई से पिण्ड के चार भाग को एक दूसरे से ताड़न करें।

दीर्घहस्तान् पृथुत्वेन पुनः पिण्डेन ताडयेत्।
द्व्यष्टाशीतिशतैर्भागं लब्धिरङ्गुलसङ्ख्यका ॥ 19 ॥
पृथुपिण्डे ताड्यमाने वृद्धिह्रासमुद्भवे।
शिलानां क्रमयोगे तु खातमानं तथोच्यते ॥ 20 ॥

दीर्घस्थान बड़े गज की संख्या 24 की मोटाई पुनः 24 से ताड़न करने पर एक सौ बयासी (182) भाग को अङ्गुल संख्यिका कहते है। मोटाई पिण्डमान को ताड़न से वृद्धि और ह्रास बनता है, उसे शिलाओं के क्रमयोग से 'खात-मान' कहा जाता है।

पिण्डाङ्गुलैर्दीर्घहस्ता गुणितव्याः प्रयत्नतः।
पृथुह्रस्ववृद्ध्यार्धा च धत्ते मानं शिलादिकम् ॥ 21 ॥

इति शिलामानः।

दीर्घहस्त-गज के 24 अङ्गुल पिण्ड से गुणित करके मोटाई के ह्रस्व, दैर्घ्य को आधा करने पर शिलादिक मान लब्ध होता है।

वृत्तदीनां फलानयनं —

व्यासे त्रिगुणे परिधिः षष्ठभागविमिश्रिते।
व्यासार्धं च परिध्यर्धं गुणे वृत्तफलं भवेत् ॥ 22 ॥

व्यास की तिगुनी परिधि षष्ठांश युक्त होती है। व्यासार्ध और परिधि का अर्ध गुणा करने पर किसी भी वृत का क्षेत्रफल आता है।

समस्ता वृत्तपरिधिर्गुणिता व्यासपादतः।
हरेच्चतुर्विंशतिभिर्लब्धमङ्गुलतत्फलम् ॥ 23 ॥

समस्त वृत्त की परिधि को व्यास के चतुर्थांश से गुणित करके चौबीस अङ्गुल से भाग देने पर जो लब्धि आए उतने अङ्गुल उसका फल समझना चाहिए।

व्यासे वर्गस्य ? गुणिते चतुर्थांशं तु पातयेत्।
शेषेऽष्टादशके भागे क्षिप्ते वृत्तफलं भवेत् ॥ 24 ॥

व्यास को वर्ग गुणित करके चतुर्थांश घटा दे, फिर शेष के अठारह भाग करने पर वृत्तफल बनता है।

व्यासवर्गहस्तैकोनपञ्चाङ्गुलानि पातयेत्।
शेषं यल्लभ्यते तच्च वृत्तस्यापि फलं भवेत् ॥ 25 ॥

वर्ग हस्त 24 × 24 को व्यास से एक कम पञ्चाङ्गुली (चतुर्थांश) से भाग दे, जो शेष प्राप्त हो, वह वृत्त का फल होता है।

तस्यास्तु(स्तु)वौलेनहितं खातकूपफलं भवेत्।
पाषाणपिण्डहतं वा शिलामानं तु सङ्ख्यया ॥ 26 ॥

उपर्युक्त विधि से कूप के खात परिणाम प्राप्त होता है। जो पाषाण पिण्डमान से भाग देने पर शिला मान की संख्या आती है।

भूवदन समासार्ध च लम्बकेनात्र गुणितम ?।
कुद्दलं लम्बहतं च जायते क्षेत्रफलम् ॥ 27 ॥

भूवदन के समान ही आधा और ले और उसे लम्बक से गुणित करे (?), तो कुद्दल लम्बहत क्षेत्रफल आता है।

तविवेधगुणितं च खातफलं प्रसिद्धयेत्।
समविषमाधवेधैः पदैर्विषमवेधकैः ॥ 28 ॥

इस प्रकार से वेध के गुणित करके खातफल आता है। सम-विषम आध वेधों में पदों में विषम वेध कहा है।

गोलव्यासवर्गगुणं ताड्यं व्यासार्धपिण्डकम्।
द्विशताष्टाशीतिहृतं लब्धं गोलफलं भवेत् ॥ 29 ॥

गोल और व्यास के वर्ग को गुणित कर व्यासार्ध पिण्डक को भाग दें। उससे दो सौ अस्सी (280) निकाल लें तो गोलफल की लब्धि होती है ॥ 29 ॥

व्यासवर्गे तु गुणितं फलमेकं ? प्रकीर्तितम्।
षड्भागं द्विरसं त्यक्त्वाऽष्टाश्रे क्षेत्रफलं भवेत् ॥ 30 ॥

इत्यष्टाश्रक्षेत्रम्।

व्यास के वर्ग को गुणित करके एक फल कहा जाता है। इसके बारह (द्विरसं) के छह भाग को छोड़ने पर अष्टाश्र क्षेत्र का क्षेत्रफल आता है।

षडंशमेकशेषं च त्यक्त्वा सूत्रापरः शिखा ?।
दीर्घ पृथुत्वे गुणितं षडश्रे क्षेत्रजं फलम् ॥ 31 ॥

इति षडश्रक्षेत्रम्।

षडंश में एक शेष को अर्थात 1 1/6 छोड़कर सूत्रा पर शिखा ? लम्बाई को मोटाई से गुणित करने से षडश्र क्षेत्रफल बनता है।

वर्गमूलफलं त्यक्त्वा षड्भागं शक्रांशं त्यजेत्।
शेषं फलं विजानीयात् क्षेत्रे वै षोडशाश्रके ॥ 32 ॥

इति षोडशाश्रक्षेत्रम्।

वर्गमूल फल को छोड़कर छह भाग शक्रांश (14वाँ या 13वाँ) भाग या 1/13 छोड़ दे, शेष को षोडशाश्र का क्षेत्रफल समझे।

चापाकारे यदा क्षेत्रे पृथुत्वं मध्यपादतः।
त्रिभागं द्विगुणं कृत्वा पृथुत्वं चैव साधयेत्॥ 33॥

जब धनुषाकार क्षेत्र हो और मोटाई मध्य पाद जितनी हो तो उसके तीन भागों को दुगुना करके मोटाई को ज्ञात करना चाहिए।

पादान्तं गुणिताग्रं च मध्ये गुणं पृथु मध्यम ?।
वामे च द्विगुणं दीर्घ चापाकारे क्षेत्रफलम्॥ 34॥

इति चापाकारक्षेत्रम्।

पादान्त तक गुणित करके मध्य में मध्यम गुणित कर? बायीं ओर दुगुनी चौड़ाई वाला चापाकार क्षेत्रफल बनता है।

षड्बृहद्भुजार्धवासं भिन्नैः शीर्ष शिखान्तकैः।
पृथुदीर्घगुणिते त्रिकोणे क्षेत्रफलं भवेत्॥ 35॥

इति त्रिकोणक्षेत्रम्।

बृहद् भुजार्धवास को अर्थात 24/2 को छह से गुणित करके शिखान्त तक मोटाई व लम्बाई को गुणित करके त्रिकोण क्षेत्रफल बनाएँ।

दीर्घं समभुजान्ते च पृथुत्वं मध्यस्थाके।
पृथुपादं परित्यज्य षडंशं च पुनर्ददेत्॥ 36॥

इत्यर्धचन्द्रक्षेत्रम्।

समभुजान्त तक लम्बाई और मध्य स्थान तक की चौड़ाई का चतुर्थांश छोड़कर षष्टांश को पुनः जोड़ दें।[1]

इति सूत्रसन्तागुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
गणितक्षेत्रनिर्णयाधिकारो नाम सप्तचत्वारिंशं सूत्रम्॥ 47॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में
गणितक्षेत्रनिर्णय अधिकार नामक सेंतालीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 47॥

---

1. गणित का यह वर्णन पर्याप्त रूप से त्रुटित है। इसे विशेष रूप से भास्करकृत लीलावती नामक ग्रंथ में देखना चाहिए। इसके लिए श्रीपति कृत गणिततिलक और सिद्धान्तशेखर ग्रंथ भी देखे जा सकते हैं।

भूपरीक्षाग्रहपूजा नामाष्टचत्वारिंशं सूत्रम् ॥ 48 ॥

विश्वकर्मोवाच। ग्रहणयोग्यपर्वताश्रितभूप्रदेशमाह —

महेन्द्रो मलयश्चैव सिंहश्च विक्रमस्तथा।
समुद्रः पारिजातश्च श्रीशैलश्च तथार्बुदः ॥ 1 ॥
नीलश्च श्वेतशृङ्गश्च चन्द्रः प्रभाससम्भवः।
गन्धमादनोजयन्तौ प्रामा श्वेतसम्भवः ? ॥ 2 ॥

विश्वकर्मा बोले कि पर्वतों में (1.) महेन्द्र, (2.) मलय, (3.) सिंह, (4.) विक्रम, (5.) समुद्र, (6.) पारिजात, (7.) श्रीशैल, (8.) अर्बुद, (9.) नील, (10.) श्वेतशृङ्ग, (11.) चन्द्र, (12.) प्रभाससम्भव, (13.) गन्धमादन और (14.) जयन्त— ये श्वेत से उत्पन्न हुए हैं। (इनके क्षेत्रों को ग्रहण की दृष्टि से विचारणीय जानना चाहिए।)

गङ्गाया यमुनायाश्च नर्मदायास्तटे तथा।
गोदावर्याः सरस्वत्याः सिन्धौ पृष्ठे तथैव च ॥ 3 ॥
तापी मही तुङ्गभद्रा कावेरी चन्द्रभागिका।
पयस्वती साभ्रमती कृष्णा नीरा च निर्मला ॥ 4 ॥
भीमाक्षी सिंहिका ख्याता नीलोद्भवा च वेत्रकी।
रेवती मधुरा ख्याता विश्वामित्री च मूलका ॥ 5 ॥

(ग्रहणयोग्य नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों के विषय में कहा जा रहा है) गङ्गा के, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, सरस्वती, सिन्धु, तापी, मही, तुङ्गभद्रा, कावेरी, चन्द्रभागा, पयस्वती, साबरमती, कृष्णा, नीरा, निर्मला, भीमाक्षी, सिंहिका, नीलोद्भवा व वेत्रकी के, रेवती, मधुरा नाम से विख्यात विश्वामित्री और मूलका (के क्षेत्र परीक्षण के योग्य हैं।)

नद्यादीनां भूक्षेत्रं —

कुरुक्षेत्रे च गङ्गायामन्र्वेद्यां तथैव च।
नैमिषे कुब्जाम्रकेषु महाकालवने तथा ॥ 6 ॥
सिद्धायतनतीर्थेषु नदीनां सङ्गमेषु च।
उर्वरीषु श्मशानेषु चत्वरे उदकाश्रिते ॥ 7 ॥
सुप्रदेशे शुभ रम्ये गह्वरे गिरिमाश्रिते।
वने चोपवने चैव यत्र वा रोचते मनः ॥ 8 ॥

इसी प्रकार कुरुक्षेत्र में, गङ्गा के अञ्चलों, नैमिषारण्य, कुब्जक्षेत्र, आम्रक (उत्कल क्षेत्र) तथा महाकाल[1] के वनों में, सिद्धायतन, तीर्थों में और नदियों के संगमों पर, उर्वरी में, श्मशानों में, चौराहों पर, जलाशयों के निकट, सुन्दर भूभागों पर तथा पहाड़ियों में स्थित गुफाओं में, वनों तथा उपवन-बाग-बगीचों और जहाँ कही भी मन लग जाय ऐसे सुलभ स्थान पर (भूमि को ग्रहण करने पर विचार करना चाहिए।)

नगरग्राममपूर्मध्ये खेटके चैव कर्वटे।
तडागकूपमाश्रित्य प्रसिद्धनृपमार्गके॥ 9॥
प्रपादे कुलसम्भवे कुर्याद्वैशवमण्डपम्।
जनालयदिक्कुड्यानि वापिर्द्वारयुता तथा॥ 10॥

कोई नगर-पुर या ग्राम हो, खेटक (खेड़ा) अथवा कर्वट हो, उनके बीच और प्रसिद्ध राजमार्ग पर तालाब और कूपों को बनाया जाना चाहिए। यदि राजकुलों के अपने शवमण्डप या समाधियों का क्षेत्र हो तो वहाँ पर बावड़ी हो और जनालय (लोगों का आवास और धर्मशाला हो) या चारदिवारी हो तो द्वारों सहित बावड़ी बनवाएँ।[2]

शुभे दिने शुभे ऋक्षे सुलग्ने सुमुहूर्तके।
आदौ च भूपरीक्षायां शकुनं हि विलोकयेत्॥ 11॥

---

1. महाकाल के वनों का वर्णन स्कन्दपुराण के आवन्तिखण्ड में सम्यक् प्रकार से आया है।
2. देवालयचन्द्रिका में कहा गया है कि किसी तीर्थ की सीमा में, नदी के तट पर, सरोवर के तीर पर, नदियों के सङ्गम पर, पर्वतों व पहाड़ों के आगे, वन-उपवन, उद्यानों में और सिद्धों के आश्रम या गुरुकुल, ग्राम, पुर, पत्तन अथवा देश में कहीं सुन्दर स्थल पर देवताओं के लिए प्रासाद निर्माण के लिए भूमि का चयन करना चाहिए। ऐसी भूमि देवालयों के निर्माण की दृष्टि से श्रेष्ठ है जहाँ पर कर्पूर, अगरु, नारियल, तिलक, दर्भ, कदम्ब, अर्जुन, मालेय, क्रमुक या सुपाड़ी, इक्षु, केतकी, कुश, कुन्द, कमल, उत्पलादि की उपज होती हों। ऐसा स्थल जहाँ पर कि जल का प्रवाह पूर्व की ओर होता हो अर्थात् भूमि का प्लव पूर्व की ओर हो, जो भूमि बहुत जल वाली हो अथवा जहाँ उचित सुविधाएँ हों, शान्ति हों, देवाधिपति का यजन होता हो और कमलों से परिपूर्ण पृथ्वी हो, वह देवालय के लिए सर्वथा उचित है— तीर्थान्ते तटिनीतटे जलनिधेस्तीरे सरित्सङ्गमे शैलाग्रेऽद्रितटे वनोपवनयोरुद्यानदेशे तथा। सिद्धाद्यायतनेषु वा गुरुवरो ग्रामे पुरे पत्तने देशेऽन्यत्र मनोरमे सुरसमिज्यायै क्षितिं कल्पयेत्॥ कर्पूरागरुनालिकेर तिलकैर्दर्भैः कदम्बार्जुनैर्मालेयैः क्रमुकेक्षुकेतककुशैः कुन्दारविन्दोत्पलैः। पूर्वोदक्प्लवशालिनी बहुजला वा या दरीदृश्यते सेयं शान्तिकरी सुरेशयजने सूक्ता सुपद्मा मही॥ तीरं वारिनिधेः श्रिताथ सरितस्तीर्थस्य वा दक्षिणे व्रीहि- क्षेत्रविचित्रिताप्यदिशि यज्ञार्हाङ्घ्रिपैरङ्किता। कीर्णा पूर्वफलप्रसूतनरुभिर्योद्यानहृद्यापि वा भद्रा सा परिगीयते वसुमती प्रीतिप्रदा यज्वनाम्॥ (देवालय. 2-4 एवं तन्त्रसमुच्चय 1, 28, 39-40)

(अब भूमि परीक्षाविधि के प्रसङ्ग में कहा जा रहा है) इस शुभ कार्य के लिए शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, सुलग्न और सुमुहूर्त का अवश्य ध्यान रखें। पहले भूपरीक्षा के लिए शकुनों को अच्छी प्रकार से देख लें।

पूजाबलिविधानेन शकुनेशं तथा परम्।
दुर्लभं लभते वत्स विश्वकर्मप्रभाषितम्॥ 12॥

शकुन के लिए भी पूजा बलि विधानपूर्वक शकुनेश का तथा परमतत्त्व का ध्यान करें। हे पुत्र! समझ लो कि विश्वकर्मा के द्वारा कही गई यह शिक्षा बड़ी दुर्लभ है जिसका तुम्हें लाभ मिलेगा।

आदावुत्तरतो वत्स पश्चाद्दक्षिणतो भवेत्।
उत्तरे सिद्धिसम्पत्तिः क्षेमलाभस्तु दक्षिणे॥ 13॥

हे पुत्र! इसके लिए पहले उत्तर दिशा और बाद में दक्षिण दिशा की ओर जाना चाहिए। उत्तर में सिद्धि, सम्पति और दक्षिण में क्षेम-कुशल का लाभ होता है।

पुनः शब्दोत्तरे स्थाने शकुनस्यापराजित।
सर्वकामफलं तत्र शकुनेशे न संशयः॥ 14॥

हे अपराजित! पुनः यदि शब्द उत्तर दिशा से आता हो तो उस स्थान का शकुन सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला, फलदायक है, ऐसा शकुनेश का निश्चित सङ्केत समझना चाहिए।

प्राप्ते शकुनराजे तु सुलग्ने सुमुहूर्तके।
आचार्ये चागमैर्युक्ते बलिपूजां निवेदयेत्॥ 15॥

इस प्रकार से सर्वोतम शकुनराज को प्राप्त करके, सुलग्न और सुमुहूर्त में आचार्य के आगमन पर उन्हें बलि-पूजा निवेदित करें।

सूत्रधारलक्षणम् —

सूत्रधारः शास्त्रयुक्तो वास्तुवेदोपलक्षकः।
सूत्रकम्बीसमायुक्तः सर्वशास्त्रसुकौशलः॥ 16॥
तदा क्षेत्रे प्रतिष्ठा तु पुण्यस्थाने सुशोभने।
आचार्यसूत्रधारैश्च कृता पूजा महोदिता॥ 17॥

इस अवसर पर समस्त शिल्पशास्त्रों में कुशल, वास्तु वेद में वर्णित समस्त उपलक्षणों को समझने वाला, सूत्र और गज के सही-सही प्रयोगकर्त्ता सूत्रधार शिल्पशास्त्री को उस स्थान में पवित्र और शोभायमान मञ्च पर प्रतिष्ठित करके अन्य सभी सूत्रधार, आचार्यों के साथ महापूजा, सम्मान करना चाहिए।

आदौ तु पूजयेद् देवं गणनाथं विनायकम्॥

सिद्धिबुद्धिसमायुक्तं मुदा विधिविधानतः॥ 18॥

इस क्रम में सर्वप्रथम गणनाथ विनायक का पूजन करें जिनके साथ में सिद्धि व बुद्धि भी विराजमान हो। इस पूजा को बड़े आनन्द और प्रसन्न मन से विधि-विधान पूर्वक करना चाहिए।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः।

येषां स्मरणमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते॥ 19॥

तदन्तर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रदेव की प्रेम-प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिए जिनके स्मरण मात्र से सब प्रकार की सिद्धि हमें मिलती है।

क्षेत्रपालं ततोऽभ्यर्चेत् लाभार्थी सुजटाधरम्।

योगिनीर्बटुकं देवीः कुमारीः सविशेषतः॥ 20॥

फिर, लाभार्थी यजमान सुजटाधर, क्षेत्रपाल की अभ्यर्चना करें तथा सभी चौंसठ योगिनियों, बटुकों, देवियों और कुमारियों की विशेष तौर पर पूजा-अर्चना करें।

सर्वदेवास्ततः पूज्या दिक्पालांश्च ततोऽर्चयेत्।

प्रतिदिक्पालदेवांश्च तज्जातीयसपर्यया॥ 21॥

इसके बाद सर्व देव पूजा, दिक्पाल, प्रतिदिक्पालों की और उनकी जाति और नाम-पर्याय के साथ पूजन करे।

वास्तुपूजाविधानं तु कर्तव्यं दिशकोत्तमैः ?।

निर्विघ्नं च भवेतत्र हेतुकादिः समर्चने॥ 22॥

वास्तुपूजा विधान को सभी उत्तम दिशाओं में सम्पादित करना चाहिए क्योंकि इस प्रकार के पूजार्चन से वहाँ के सभी कार्य-कारण आदि निर्विघ्न पूरे होते हैं।

वरुणार्चाविधानं तु विशेषात्कारयेत्ततः।

आचार्य पूजयेद्वत्स विप्रैश्च सह सुन्दरम्॥ 23॥

इस सब के उपरान्त हे वत्स! वरुणार्चा विधान से (वरुणपूजा अथवा गङ्गोज यात्रा) विशेष रूप से करके सभी आचार्यों का, विप्रों का ठाठ-बाट से बड़ी ही सुन्दरता और प्रीतिभोज पूर्वक पूजन समारोह करना चाहिए।

सूत्रधारं ततोऽभ्यचेदष्टसूत्रप्रबोधकम्।

हस्तपूजाविधानं तु कर्त्तव्य त्वपराजित॥ 24॥

हे अपराजित! इसके बाद कार्यारम्भ के पूर्व समारोह पूर्वक शिल्पशास्त्र के अष्ट

सूत्रों[1] के जानकार सूत्रधार, गजधर कर्मान्त्रि का पूजन करना चाहिए और उनके प्रयोग में आने वाले गज (हस्त) का भी पूजन करना चाहिए।

भूमिदानं ततो दद्याद् गोमहिष्यश्वसंयुतम्।
हिरण्यवस्त्रछत्राद्यैर्महादानैः क्षमापयेत्॥ 25॥

इस अवसर पर सूत्रधार को भूमिदान, गो-महिष-अश्वयुक्त स्वर्णाभूषण, वस्त्र-पेरावणी, छत्रादि महादान श्रद्धापूर्वक देना चाहिए।

वन्दितान् पूजयेद्वत्स सुभक्त्या क्षितिपालकैः।
कृपा च सर्वजन्तूनां कर्त्तव्या सिद्धिमिच्छतैः॥ 26॥

इसी तरह हे वत्स! इस अवसर पर क्षितिपालक, भू स्वामी यजमान द्वारा सभी आगन्तुक वन्दनीय महानुभावों, अतिथियों की भक्तिपूर्वक पूजा-अर्चना करनी चाहिए और समस्त जीव-जन्तुओं पर दया-करुणा का भाव रखते हुए सिद्धि की आकांक्षा रखनी चाहिए।

पश्चाद् दानं तथा कुर्याद् दीनान्धकृपणेषु च।
ततः कामं समारभ्य चाष्टसूत्रं विधिक्रमम्॥ 27॥

इसके बाद में दीन-अन्ध और निर्धन व्यक्तियों को दान-पुण्य करके ही अष्टसूत्र विधि-क्रमानुसार शिल्प कर्म का समारम्भ करना चाहिए।

पूजा बलिविधानं च कृत्वा दीनान्धकृपणेषु च।
सर्वं सिद्ध्यति तत्कर्म सर्वकामफलप्रदम्॥ 28॥

पूजा, बलि-विधान के साथ जो काम किए जाते हैं, वे सभी काम सिद्ध होते हैं और ऐसे काम सभी कामनाओं की पूर्ति करते हैं।

स्थिरे चित्ते सुधीस्तत्र स्फुरति विपुलाऽमला।
नित्यं पुंसां यदुक्तं गुरुणा विधानं दैवेन या निर्मिता?॥ 29॥

इस प्रकार पूजन विधान के समारोह और उत्साह से, स्थिरचित से आरम्भ किए गए कार्य में समय-समय पर बड़ी ही विमल बुद्धि भी आवश्यकतानुसार स्फुरित होती रहती है। इससे हमेशा गुरुजनों द्वारा कही गई, देवताओं द्वारा निर्मित विधान के अनुसार लोगों को नित्य नई दृष्टि मिलती रहती है।

शास्त्रगणितमूर्ध्नि मपरे स्वस्थे बुद्धिशोभना।

---

1. अष्टसूत्रों में 1. दृष्टिसूत्र, 2. गज, 3. मूँज की डोरी, 4. सूत की डोरी, 5. अवलम्ब या साउल, 6. गुणिया, 7. साधणी और 8. परकाल या विलेख्य को गिना गया है। शिल्पस्मृति में कहा गया है- दृष्टि : करस्तथा मौञ्जं कार्पासञ्चावलम्बकम्। काष्ठसृष्टिविलेख्यानि सूत्राण्यष्ट वदन्ति च॥ (शिल्प. 2, 107)

नित्यं स्फुरति दर्पणे मनःस्था महतामपि न विसाद्भुताः ?॥ 30 ॥

यह एक महत्वपूर्ण नियम है कि महात्मा लोगों में बड़े ही अद्भुत ढङ्ग से शास्त्रगणित के मूर्धन्य जानकारों और दूसरे स्वस्थ बुद्धि शोभन महानुभावों के सभी गुण नित्य नए-नए स्फुरित होते रहते है, मानो ये सभी विचार उनके मन रूपी दर्पण में उन्हें दिखाई पड़ते हैं।

तेनेदं सिद्ध्यते सर्वं वास्तुस्थानपरिग्रहम्।
पूजादानैश्च सूत्रश्च संयोगैः प्रभुरभूत्तयोः ?॥ 31 ॥

इन्हीं स्फुरित विचारों से समस्त वास्तुशास्त्र के परिग्रह, काम-काज सिद्ध होते हैं। पूजा, दान, सूत्रादि तो इस संयोग में प्रभुतापूर्वक विशेष लाभदायक हैं।

सर्वार्थे पोषयेद् भृत्यो ये केचित् कर्मदायकाः।
कर्मकरांस्ततो वत्स सर्वार्थे नित्यं पोषयेत्॥ 32 ॥

अन्त में, कार्य सिद्धि का मूल मन्त्र देते हुए श्रीविश्वकर्मा भगवान् अपराजित को कहते हैं कि हे पुत्र! जो भी कोई भृत्य कैसे भी काम में लगाया गया है, उसे सभी तरह से पोषण देना, अच्छा भर-पूर वेतन देना और समस्त कर्मकारों, कारीगरों को भी पूरा-पूरा वेतन देकर उनके पोषण हेतु उनके सभी अर्थों की नित्य पूर्ति करते रहना सदा ही लाभप्रद रहता है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
भूपरीक्षाग्रहपूजाधिकारो नामाष्टचत्वारिंशं सूत्रम्॥ 48 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में
भूपरीक्षाग्रह पूजा अधिकार नामक अड़तालीसवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 48 ॥

सूत्रधारपरीक्षा नामैकोनपञ्चाशं सूत्रम्॥ 49॥

विश्वकर्मोवाच —

कर्माधिपस्य कर्तव्या परीक्षा शिष्यवत्तथा।
त्रिभावे निःस्पृहो दक्षः कर्तव्यः कर्मनायकः॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि जिस व्यक्ति को कर्माधिप नियुक्त किया जाता है अर्थात् वास्तुकर्म के लिए गजधर बनाया जाता है, उसकी परीक्षा उसके शास्त्रज्ञान, कर्म, कर्त्तव्य, ईमानदारी, दक्षता आदि के बारे में एक शिष्य की परीक्षा की भाँति ही तीन भावों से की जानी आवश्यक है।

चतुर्विधपरीक्षणं —

यथा चतुर्भिः कनकं शिष्यवच्च परीक्ष्यते।
ताडनच्छेदतापैश्च घर्षणैः पुरुषस्तथा॥ 2॥

जिस तरह सोने को और शिष्य को चार प्रकार से परीक्षा करके देखा जाता है, यथा— ताड़न, छेदन, तपाना और घिसना, उसी प्रकार पुरुष की भी इन चार प्रकारों से परीक्षा करनी चाहिए।

भृत्यलक्षणं —

उद्यमः साहसं धैर्य बलं बुद्धिः पराक्रमः।
यस्मिन् भृत्ये चिह्नषट्कं तस्माद् देवोऽपि शङ्कते॥ 3॥

जिस भृत्य में अर्थात कर्म कार्य में नियुक्त कर्मकर में उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम— ये छह चिह्न पाए जाते है, उससे तो देवता भी भय खाते हैं अर्थात् आशङ्कित रहते हैं।

पूर्व परीक्षितो भृत्यस्तस्य द्रव्यं निवेदयेत्।
स्वामिकार्यकरो नित्यमसाध्यं साधयेद् ध्रुवम्॥ 4॥

पहले कर्मकर या भृत्य की ठीक परीक्षा कर लेनी चाहिए। उसमें यदि वह पूर्णतः सफल सिद्ध होता है, तो उसको उसका वेतन अवश्य बता देना चाहिए जो उसकी योग्यता के उपयुक्त हो क्योंकि समुचित एवं पुष्कल वेतन पाने वाले कर्मकर सदा स्वामीभक्त, स्वामी के कार्य को कुशलता से पूरा करने वाले, प्रत्येक अवसर पर उपलब्ध रहकर काम को सफल बनाने वाले, असाध्य कामों को भी अवश्य ही साधने वाले और निश्चयपूर्वक कर दिखाते हैं।

सुशीलः सुगुणो भृत्यः सुकुलः सत्यताधिकः।
सोद्यमो विनयैर्युक्तो विभवे निःस्पृहो ध्रुवः॥ 5॥
परदारधनत्यागी प्रियालापी च देशजः।
स्वामिकार्यकरो नित्यं त्रैलोक्यं तस्य शङ्करम्॥ 6॥

जिस कर्मकर में सुशीलता, सुगुण, सुकुल, सत्यवादिता, उद्यमिता, विनय और वैभव में भी सरलता, निस्पृहता दृढ़ हो, वह पराई स्त्रियों, पराए धन का त्यागी एवं प्रियवाणी बोलने वाला होता है। मुख्य बात यह कि वह उसी क्षेत्र का निवासी अर्थात् देशज हो जो क्षेत्र की पूरी जानकारी रखता है। वह स्वामी का कार्य सदा सफल करके दिखाता है और तीनों लोकों में शान्तिकारक होता है।

सुभृत्यः सुगुणैर्युक्तः **शीलवांश्च** विवेकवान्।
क्रमजातकुले **जातो** महासत्यप्रियंवदः ॥ 7 ॥

अच्छा कर्मकर या भृत्य, सुगुणों से युक्त हो, शीलवान, विवेकवान, उत्तम कुल में जन्मा हो, महा सत्यवादी और मधुरवाणी में बोलता हो।

संयमैर्नियमैर्युक्तस्त्रिभावे **निःस्पृहो ध्रुवम्।**
स्वामिकार्यकरो **नित्यं त्रैलोक्यं तस्य गोचरम्** ॥ 8 ॥

वह संयम, नियम से रहता है और स्त्री जाति के प्रति सदा दृढ़ता पूर्वक निस्पृही हो, वह एक ऐसा स्वामी का कार्य करने वाला व्यक्ति होता है जिसे तीनों ही लोकों के बारे में सही, सूझबूझ वाली दृष्टि हो।

प्रारब्धं तु भवेद् यावत्तावद् **वन्द्येषु भावना।**
तादृशं कारयेद्भावं **खलु देवेषु यादृशम्** ॥ 9 ॥

प्रारब्ध तो तभी तक काम करता है जब तक कि आपकी भावना वन्दनीय लोगों के प्रति भक्ति और प्रेमपूर्वक है। यह नियम ही समझो, आप जिस तरह की भावना देवताओं के प्रति रखेंगे, उसी तरह वे भी आप पर भी अनुकम्पा करते हैं।[1]

देवपादे स्वरूपेण पूर्णभावे सदास्थितः।
अर्थसामर्थ्यदानेन स्वामिपुण्यं **तु धार्यते** ॥ 10 ॥

जो देवता के चरणों में और स्वरूप में पूर्णश्रद्धा भाव से हमेशा स्थिता रहता है और अपने सामर्थ्यानुसार अर्थ का दान करके वह स्वामी के पुण्यों को धारण करने का अधिकारी हो जाता है।

सुदानेषु रतो नित्यं सुभृत्यः प्रभुकाम्ययोः ?।
स्वामी सुहृत्संयोगे **तु जल्पे** किंकरतां **व्रजेत्** ॥ 11 ॥

जो सुभृत्य, कर्मकर नित्य सुदान में लगा रहता है और अपनी स्वामी की सेवा पूरी करता है, तो इससे स्वामी-सेवक को आपसी प्रेम संयोग शीघ्र ही हो जाता है। वह कर्मकर, सेवक अपने स्वामी के साथ बातचीत करने में सदा नम्रता, आदरयुक्त व्यवहार करता है।

स्वयं धराधिपो वत्स बहुकर्मसु **संस्थितः।**
नित्यं सन्मानोद्यमनधर्मकर्मादिकारकः ॥ 12 ॥

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो मुझे जिस भाव से भजता है, मैं भी उसे उसी भाव से भजता हूँ— ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ (गीता 9, 29)

स्वयं क्षेत्र का स्वामी तो हे वत्स! बहुत से कार्यों में व्यस्त रहता है, अतः उसे नित्य धर्म, कर्मादि करने वाले कर्मकारों का सम्मान का उद्यम करते रहना चाहिए।

दातव्यं वस्त्रताम्बूले खाद्यं पानं दिने दिने।
सन्मानं जन्मतो दद्यात् प्रियालापैः सुनित्यशः॥ 13॥

उनको वस्त्र, ताम्बूल, खाद्य वस्तुओं और पान योग्य पेय पदार्थ प्रतिदिन देते रहकर खुश रखना चाहिए। (व्यवहार के रूप में) किसी जन्म से कुलीन व्यक्ति को सम्मान देकर, किसी से मधुरवाणी में बात करके तो किसी किसी के कार्य की प्रशंसा करके सदा प्रसन्न रखना चाहिए।

इत्यमनन्तर सुभाषितानि —

असहाये कुतः सिद्धिर्धनहीनः पराजितः।
पुष्कलं साधनं यस्य सिद्धिस्तस्य करे स्थिता॥ 14॥

क्योंकि, यह नियम है कि सहायकों के अभाव में सिद्धि कैसे मिल सकती है और धन के अभाव में व्यक्ति सदा पराजित होता रहता है। इसलिए जिसके सहायक और धन का पुष्कल साधन है, सिद्धि भी उसके ही हाथ में आती है।

बहुवित्तचयो वत्स बुद्धिसोद्यमसाहसैः।
सूत्रमन्त्रं सुभृत्यैश्च स्यात्सदा च सुखी नृपः॥ 15॥

इसलिए हे वत्स! अपार धन का संग्रह करो और इसी में अपनी बुद्धि और साहस को उद्यमपूर्वक लगाओ जिससे शिल्पशास्त्र के सभी सूत्र, मन्त्रादि और अच्छे कर्मकर, भृत्य सदा ही उपलब्ध होते रहे, जिससे राजा भी सुखी रहे और कर्मकर भी सुखी रहे।

सर्वकार्येषु निबन्धं त्रिकालज्ञः सदा भवेत्।
वर्तमानं तथातीतं भाव्यं नित्यं विलोकयेत्॥ 16॥

सभी कार्यों पर पूरा प्रबन्ध बनाए रखना चाहिए, सदा ही व्यक्ति को त्रिकालज्ञ या भूत-भविष्य-वर्तमान का ज्ञानवान होना चाहिए ताकि वर्तमान को अतीत की तुलना में देखते हुए भविष्य की पूरी तैयारी हो सके।

प्रारम्भे सर्वकार्याणां सर्वोपकरणैर्युतः।
आदिमध्यान्ततः पृष्ठा कृत्यान्तं कारयेद् बुधः॥ 17॥

समझदार व्यक्ति सदा सभी कार्यों के प्रारम्भ करने के समय सभी प्रकार के उपकरणों का संग्रह कर लें जिससे कार्य को आदि से लेकर मध्य और अन्त तक पहुँचाकर कृत-कृत्य हो सके।

बुद्धिकामी भवेन्नित्यं सर्वत्रैवापराजित।
व्यवहारे निर्मला ये ते भृत्या वसुधाधिपाः ॥ 18 ॥

हे अपराजित! सर्वत्र जो व्यक्ति बुद्धि का सदा प्रयोग करता रहे और अपना व्यवहार निर्मल रखे, वे ही अपने सेवक और वसुधा के स्वामी कहे जा सकते हैं।

अर्थेन वर्धते चार्थ सन्मानैर्वन्दिता भया ?।
व्यवहारे वर्धते लोकश्चतुरङ्गः प्रियागमः ॥ 19 ॥

यह तो एक ध्रुव सत्य है कि अर्थ से ही अर्थ की वृद्धि होती है और सम्मान से और वन्दन से निर्भयता बढ़ती है। इसी तरह सद्व्यवहार से परस्पर प्रेम और निर्मलता बढ़ती है और लोक के चारों अङ्ग— धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि तथा प्रियजनों का आगमन बना रहता है।

तेषां सुसिद्ध्यति सर्वमसाध्यं साध्यं नित्यशः।
दानसन्मानमात्रेण दैवोऽपि च सन्मानयेत् ॥ 20 ॥

ऐसे ही मनुष्यों के सब साध्य और असाध्य काम नित्य साध्य होते रहते हैं क्योंकि दान और सम्मान मात्र ही देवताओं का भी सम्मान हो जाता है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां सूत्रधारपरीक्षाधिकारो नामैकोनपञ्चांशं सूत्रम् ॥ 49 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति **प्रकाश या** अपराजितपृच्छा **में सूत्रधार** परीक्षा अधिकार नामक उनचासवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 49 ॥

सूत्रधारलक्षणात्मकं पञ्चांशं सूत्रम् ॥ 50 ॥

विश्वकर्मोवाच —

शृणु वत्स यथान्यायं सूत्रधारस्य लक्षणम्।
शास्त्रज्ञः कुशलो दक्षो वास्तुविद्याविबोधकः ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा ने कहा— हे वत्स! न्यायतः सूत्रधार के जो लक्षण होते हैं उन्हें सुनो! सूत्रधार शास्त्रज्ञ हो, कुशल हो, दक्ष हो और वास्तुविद्या को समझने-समझाने वाला होना चाहिए।

सूत्रधारो महाप्राज्ञः षट्कर्मसु निरन्तरम्।
यो नित्यं त्यमरतत्त्वं [1]साद्दष्टोऽपि महालयम् ॥ 2 ॥

---

1. 'सामुष्टोऽपि तद्यालयम् ?' इति प्रकाशित पाठः।

सूत्रधार महाप्राज्ञ होना चाहिए। वह निरन्तर षट्कर्म में संलग्न रहकर नित्य आत्मतत्त्व को अपने हृदय मन्दिर में अमरतत्त्व के रूप में दर्शन करता रहे।

माधुर्यवांस्तथालापे वास्तुविद्यादिकौशलः।
ज्ञानचक्षः सुहृदयः प्रारम्भादिरुजापहः॥ 3॥

उसका वार्तालाप माधुर्यतायुक्त हो, वह वास्तुविद्यादि शास्त्रकर्म में कुशल हो, उसमें ज्ञानचक्षु की अन्तःचेतना दृष्टि की सूझ-बूझ हो, वह सरल हृदय हो और प्रारम्भ से ही निरोगी स्वस्थ देह वाला हो।

हस्तलाघवसम्पन्नो घाट्यचित्रादिकौशलः।
चक्षुः प्रत्यक्षकृच्चैव ह्यदृष्टं ज्योतिषो यथा॥ 4॥

सूत्रधार में अपनी हस्तकला में अनन्य कुशलता ऐसी हो कि वह अपने हाथ से घड़ी गई मूर्ति अथवा चित्रकला से ऐसा प्रभाव उत्पन्न कर दें कि उन्हें देखने वाला - मानो उन वस्तुओं को नहीं वरन उनमें प्रतिबिम्बित रूपों को साकार प्रत्यक्ष देख रहा हो, जिसका प्रकाश उसके हृदय में भी ज्योतिस्वरूप में प्रकट हो रहा है।

ग्रन्थार्थगुणसम्युक्तो वास्तुमर्मादिबोधकः।
आत्ममत्युद्भवं रूपं ससूत्रं स च कर्मणा॥ 5॥

सूत्रधार की प्रमुख विशेषता यह होनी चाहिए कि वह शिल्प-वास्तुग्रन्थों के ठीक-ठीक अर्थ को समझने के गुण से सम्पन्न हो तथा वास्तु में जो भी मर्म-दोष होते है, उनको बता सकने में समर्थ हो, इस तरह से वह अपने आत्मोद्भव ज्ञान को स्वरूप देकर उसे अपनी कार्य कुशलता से ससूत्र, सटीक सिद्ध कर सके।

सूत्रधारोपयोगार्थं[1] वास्तुशास्त्रादिबोधनम्।
भुवनकोशविज्ञानं प्रमाणं सूत्रकर्मणि॥ 6॥

वास्तुशास्त्रादि को समझने व समझाने के लिए सूत्रधारों के उपयोगार्थ अनेकों ग्रन्थ-विषय हैं यथा— भुवनकोश विज्ञान, प्रमाणसूत्रकर्मणि।[2]

समुद्रोपकण्ठदेशमहाशैलाश्रमादिकम्।
भूमिभागैरनेकैश्च परीक्षा सूत्रकर्मणाम्॥ 7॥

---

1. 'सूत्रधारोपचारोर्थं ?' इति प्रकाशित पाठः।
2. इस श्लोक से ग्रन्थकार वास्तु के जिन ग्रन्थों के विषयों, नामों का उल्लेख करता है, ऐसा लगता है कि वह समराङ्गणसूत्रधार की ओर सङ्केत कर रहा है क्योंकि वास्तुशास्त्रबोधन के बाद भुवनकोश, सूत्रकर्म के प्रमाणादि विषयों से ही समराङ्गणसूत्रधार का आरम्भ होता है। आगे के विषय भी समराङ्गणसूत्रधार के अनुसार ही है। वैसे भी अपराजितपृच्छा पर समरांगणसूत्रधार का पर्याप्त प्रभाव विद्यमान है।

मर्मोपमर्मवेधाश्च वंशोपवंशकानि च।
सन्धिरेखाषट्कशूलं लाङ्गलं पञ्चकादिकम्॥ 8॥

समुद्रोपकण्ठ प्रदेश, महाशैल, आश्रमादि भूमिभाग अनेक प्रकार के हैं जिनकी परीक्षा हेतु सूत्रकर्म के ग्रन्थ-विषय है। इसी प्रकार मर्म और उपमर्म, वेध जानने के ग्रन्थ, वंश एवं उपवंश जानने के ग्रन्थ-विषय, सन्धि, रेखादि षट्कशूल (छह प्रकार के शूल), लाङ्गल या हलकादि यन्त्रों का ज्ञान और पञ्चकादि जानने के साधन तन्त्र मूलक ग्रन्थ-विषय हैं।

षण्मर्मवेधा विज्ञेया वास्तुदेहसमुद्भवाः।
निघण्टुं देवतानां च जानीयात् सूत्रकर्मणि॥ 9॥

वास्तुदेह भवनादि में होने वाले छह मर्मवेध वास्तुशास्त्रों में बताए गए हैं तथा वास्तुपदीय देवताओं के बारे में जानने के लिए निघण्टु (शब्दकोष) बने हैं जिनकी जानकारी सूत्रकर्म करने वाले सूत्रधार को होनी ही चाहिए।

नगरग्रामखेटाद्यं वास्तुवेदसमुद्भवम्।
कूटकर्वटकूप्यादि ज्ञायते सूत्रकर्मणा॥ 10॥

सूत्रधार को इन वास्तुवेद से निर्मित नगर, खेट, ग्राम, कूट, कर्वट, कूपादि की भी पूरी जानकारी होनी चाहिए।

पुर-प्राकार-परिखा-प्रतोली-मार्ग-गोपुरम्।
गृहं च राजवेश्माद्यं ज्ञायते सूत्रकर्मणा॥ 11॥

पुर, प्राकार (नगरकोट), परिक्खा (नगर कोट के बाहर की खाई), प्रतोली (नगर की पोल), राजमार्ग, गोपुर (दरवाजे), गृह, भवन, राजप्रासाद (राजमहल) को भी जानकारी सूत्रधार के लिए आवश्यक होती है॥ 11॥

प्रासादप्रतिमालिङ्गजगतीपीठमण्डपम्।
वेदीकुण्डं स्रुचा चैव ज्ञायते सूत्रकर्मणा॥ 12॥

सूत्रकर्मी या सूत्रधार को प्रासाद, मन्दिर आदि, प्रतिमा, लिङ्ग, जगती, पीठ, मण्डप, वेदी, कुण्ड, स्रुचा (हवनार्थ स्रुवा) आदि का भी पूरा ज्ञान होना चाहिए।

प्रासादा विविधाकारा वैराज्यकुलसम्भवाः।
विभक्त्यूर्ध्वतलच्छन्दं ज्ञायते सूत्रकर्मणा॥ 13॥
रेखानां विविधाकारा प्रासादशिखरोत्तमाः।
घण्टाकलशध्वजाद्यं ज्ञायते सूत्रकर्मणा॥ 14॥

मन्दिर, प्रासाद विविध आकारों के होते है, जो वैराज्यादि जाति कुलों में वर्णित

है, उन सब प्रासादों के समस्त विभाग, उसके ऊर्ध्वरूप और तलछन्द (आधुनिक एलिवेशन प्लान्) को भी सूत्रधार को ठीक तरह से जानने चाहिए। प्रासादों के शिखरों की विविध आकारों की रेखाएँ बनती हैं, उनकी जानकारी तथा घण्टा, कलश, ध्वजा आदि की भी पूर्ण जानकारी सूत्रधार को होनी चाहिए।

द्वारशाखाविधिं **ज्ञात्वा** मूलप्रासादच्छन्दजम्।
द्वारपालविधि**श्चैव ज्ञायते** सूत्रकर्मणा॥ 15॥

इस तरह मूल प्रासाद के छन्द के अनुरूप ही प्रासाद की द्वार और द्वारशाखा निर्माण की विधि तथा द्वारों पर द्वारपाल की मूर्तियों के निर्माण की विधि भी सूत्रधार को अवश्य जाननी चाहिए।

द्वारदृष्टिपदस्थानं **तथाग्रे** वाहनादिकम्।
दृष्टिस्थानं **चान्तरं तु ज्ञायते** सूत्रकर्मणा॥ 16॥

प्रासाद में पूज्य मूर्ति की दृष्टि द्वार के किस-किस भाग तक की प्रशस्त मानी जाती है तथा प्रधान मूर्ति के वाहन को मूर्ति के आगे कहाँ स्थापित किया जाए, उनमें दृष्टि स्थान का कितना अन्तर होना चाहिए, ये सब बातें भी सूत्रधार को अवश्य जानना चाहिए।

लक्षणं च द्वासरविधिं शिवलिङ्गेषु **सर्वतः**।
मानोन्मानप्रमाणं **च ज्ञायते** सूत्रकर्मणा॥ 17॥

एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात है कि शिवलिङ्गों में सर्वत्र सभी जगह सब प्रकार से जो-जो लक्षण बताए गए हैं और उनके प्रासादों के भी द्वारों की जो-जो विधियाँ बताई गई हैं, उन सबका मान, उन्मान अर्थात् सही माप लम्बाई, ऊँचाई, चौड़ाई आदि प्रमाणों की जानकारी सूत्रधार के लिए परम आवश्यक है।

वितानानि विचित्राणि क्षिप्तान्युत्क्षिप्तकानि **च**।
मन्दारसभापद्मानि **ज्ञायन्ते** सूत्रकर्मणा॥ 18॥

प्रायः प्रासादों, मन्दिरों में तरह-तरह के वितानों भी छतों की रचना कही गई हैं जिसमें कई विचित्र प्रकार की है, जैसे कोई क्षिप्त और अनुक्षिप्त अर्थात् बाहर की ओर उभरी हुई और भीतर की ओर दबी हुई आकृति अलङ्करणों से युक्त बनती है। उनमें सभा मण्डप की वितानों, छतों में ही मन्दार, कहीं पद्म आदि अलङ्करणों की रचना भी होती है, इनकी जानकारी भी सूत्रकर्म करने वाले सूत्रधार को अवश्य होनी चाहिए।

वितानानां **संवरणा** घण्टाकूटसमाकुलाः।
सिंहसङ्घटनाकीर्णा **ज्ञायन्ते** सूत्रकर्मणा॥ 19॥

सूत्रधार को इन वितानों के ऊपरी भाग में निर्माण के काम जैसे संवरणा, घण्टा, कूट के समाकुलों की रचना, सिंहों की सङ्घटना के समूहों आदि की भी जानकारी होनी चाहिए।

शुक्लाम्बरधरः सूत्र स्वस्थचित्तः समाहितः।
पूजापरिग्रहं दद्यादात्मचिन्ता तु दैवते॥ 20॥

इसके अलावा स्वयं सूत्रधार की वेशभूषा, स्वभाव में भी कई विशेषताएँ होनी चाहिए, यथा— वह स्वच्छ श्वेत वस्त्रधारी हो, स्वस्थचित्त हो, समाहित हो, निर्लेप हो, पूजा और परिग्रह मूर्ति में आत्मचिन्तनपूर्वक देवता भक्ति हो।

तुष्टिदानं ततो दद्यात्सर्वकर्मसु वै तथा।
सुभृत्यांस्तोषयेत्तत्र कर्मकारापरैः सह॥ 21॥

सभी कर्मों में सदा सन्तुष्टि प्रदान करता हो तथा अपने आधीन काम करने वाले समस्त कर्मकारी भृत्यों को सन्तोष और प्रेम से साथ लेकर चलता है।

तोषितैः सर्वसूत्रैश्च गुरुतः क्षेममाप्नुयात्।
निर्विघ्नं च भवेत्तत्र सर्वकामफलं भवेत्॥ 22॥

क्योंकि, सभी सूत्रधारों, कर्मकरों के गुरु की भाँति अपने अनुग्रह में रखकर उनको सन्तुष्ट रखते हुए उनके क्षेम-कुशल का पूरा ध्यान रखने से सभी काम निर्विघ्न पूर्ण होते हैं और सभी कामनाएँ फलीभूत होती है।

सिद्धिं विनायकं चादौ क्षेत्रपालांस्ततोऽर्चयेत्।
पूजयेदुक्तविधिना योगिनीश्च कुमारिकाः॥ 23॥

अस्तु, जब भी कोई वास्तुकर्म का समारम्भ हो तो सदा ध्यान रखे कि सबसे पहले सिद्धि-विनायक की पूजा-अर्चना करें। इसके बाद क्षेत्रपाल की पूजा-अर्चना करें और बाद में उसी विधि से योगिनी और कुमारिकाओं की भी पूजा-अर्चना करें।

भूपरिग्रहणं प्रोक्तं शुभं धात्रीपरीक्षणम्।
पूर्वं त्वेवं प्रवक्ष्यामि शृणु चैकाग्रमानसः॥ 24॥

(हे अपराजित!) भू-परिग्रहण के लिए भी कहा है कि धरती की शुभ परीक्षा करके ही लेनी चाहिए जैसा पहले ही मैंने तुम्हें कहा, वही पुनः कहता हूँ जिसे एकाग्र मानस होकर सुनो।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
सूत्रधारलक्षणाधिकारो नाम पञ्चाशं सूत्रम्॥ 50॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति **प्रकाश** या अपराजितपृच्छा **में सूत्रधार**
लक्षण अधिकार नामक पचासवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 50॥

भूपरीक्षाग्रहकीलकारोपणमेकपञ्चाशं सूत्रम् ॥ 51 ॥

विश्वकर्मोवाच —

भूमेः परिग्रहं कृत्वा समावनिमितिक्रमैः ।
दिव्यानि वीक्ष्य भौमानि शुभान्यशुभकानि च ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि भूमि का परिग्रह करके निर्माणार्थ चयन करके सात प्रकार से भूमि परीक्षा क्रमानुसार करें। इस क्रम में पहले दिव्योत्पात, भौमोत्पात् आदि निमित्तों[1] का शुभाशुभ भी देख लेना चाहिए।

शुभेषु प्रस्थिते सिद्धिर्विजयः स्यान्महोत्सवः ।
अशुभेषु निवर्तेत न गच्छेत् पदमग्रतः ॥ 2 ॥

शुभ निमित्त होने पर काम शुरू करने पर सिद्धि और विजय मिलती है तथा सदा महोत्सव होते रहते हैं परन्तु अशुभ निमित्तों में कोई काम नहीं करना चाहिए और एक पद भी आगे नहीं बढ़ाना चाहिए।

तन्मध्ये तथा धानं शकुनानि न लक्षयेत् ।
चेष्टायुक्तिसमाख्यातं तत्फलं शकुनोत्तमैः ॥ 3 ॥

उन निमित्तों के मध्य में तो उस धान अर्थात् स्थान का शकुन आदि का भी देखना उचित नहीं अस्तु, केवल चेष्टा युक्ति के रूप में प्रसिद्ध प्रयोग मात्र ही किए जाने चाहिए, इन्हीं को उत्तम शकुन और उनकी फलश्रुति के रूप में जानना चाहिए।

आचार्यप्रशंसाह —

आचार्यः सूत्रधारैश्च यजमानैश्च संयुतः ।
त्रयश्च साधकैश्चैव कर्मकारादिसंयुताः ॥ 4 ॥

आचार्य, सूत्रधार और यजमान अर्थात् गृहकर्ता के साथ-साथ कर्मकर या अन्य कार्य करने वाले आदि जन (वास्तुकार्य में) जुड़ते हैं।

आचार्यश्च स्वयं ब्रह्मा शिल्पी चैव जनार्दनः ।
यजमानस्तु शक्रः स्यात् त्रिभिः कर्म प्रवर्तते ॥ 5 ॥

वास्तुकर्म में प्रमुख आचार्य स्वयं ब्रह्मा रूप है और शिल्पी जनार्दन विष्णुरूप है तथा यजमान स्वयं इन्द्र स्वरूप में होता है; इन तीनों के समन्वय से ही सभी कार्य आगे बढ़ते हैं।

---

1. मत्स्यपुराण और विष्णुधर्मोत्तरपुराण सहित बृहत्संहिता आदि में इन उत्पातों का वर्णन आया है। अद्भुतसागर और कृत्यकल्पतरु का शान्तिकाण्ड इन उत्पातों की शान्तियों पर ही लिखे गए बृहत्संग्रह हैं।

भूमि परीक्षा की एक अन्य विधि इस प्रकार है— उस खात, खड्डे को पानी से भरपूर भर दें और शिल्पी सौ कदम तक चलें। उतने समय में देखें कि यदि उसमें पानी घट कर आधा तक रह गया है तो उस भूमि को कनिष्ठ समझे, यदि पानी पूरा का पूरा भरा रहे तो समझे कि भूमि श्रेष्ठ, उत्तम है और यदि पानी पौन भाग तक ही उतर पाए तो उस भूमि को मध्यमा समझना चाहिए।

अन्यदप्याह —

पुण्योदकैर्भृतं खातमूर्ध्वं बाणं समुत्क्षिपेत्।
भृते मही चोत्तमा स्यान्मध्यमाङ्गुलहीनतः॥ 10॥
द्व्यङ्गुलोने कनिष्ठा स्यात् त्रिविधं भूमिलक्षणम्।
अल्पोदकेऽतिहीना स्याद्वर्जयेदधमाधमम्॥ 11॥

इसी तरह एक और विधि से भी भूमि परीक्षा की जाती है— इसमें खात अर्थात् खड्डे को पवित्र जल से पूरा भरकर तत्काल खात से ऊपर एक बाण छोड़े और बाण पुनः भूमि पर आकर गिरे, उतने समय में यदि खात में पानी पूरा का पूरा भरा पाया जाए तो समझें कि वह भूमि उत्तम है, यदि खात में भरा पानी उतने समय में एक अङ्गुल प्रमाण से घट जाय तो उस भूमि को मध्यमा समझे और यदि उतने समय में ही खात का भरा पानी दो अङ्गुल प्रमाण से घट जाए तो उस भूमि को कनिष्ठा समझें। इस तरह ये तीन अन्य प्रकार से भी भूमि परीक्षा के कहे हैं और यह भी देखें कि उस खात में पानी यदि बहुत थोड़ा रह जाए उतने ही समय में तो उस भूमि को अति हीना समझें, ऐसी भूमि को अधमाधम समझकर पूरी तरह त्याग देनी चाहिए।

ततः सम्पूरयेद्वत्स सुदिने सम्प्रधार्यते।
परीक्षयेच्च भूम्याद्यं वर्णगन्धैश्च स्वादतः॥ 12॥

इसके उपरान्त, हे वत्स! अच्छा दिन देखकर उस खड्डे को वापस भर दें, खुला न छोड़ें और भूमि की वर्ण, गन्ध और स्वाद से भी तीन प्रकार की परीक्षा करें।[1]

अथ प्लवानुसारेण गुणदोषादीनां —

भूमीनामष्टप्लवादि गुणदोषान् ब्रवीमि ते।
पूर्वप्लवा धरा श्रेष्ठा ह्यायुः श्रीबलवर्द्धिनी॥ 13॥

---

1. इसके बाद का वर्णन श्लोक 49 के बाद प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके बीच के श्लोक प्रक्षिप्त हैं, अथवा कोई सूत्र बीच में जोड़ा गया है क्योंकि 49वें श्लोक के बाद पुनः श्लोक 1 से गणना आरम्भ हो जाती है। वैसे इस सूत्र के नामकरण में भी इस विषय का उल्लेख नहीं है। किन्तु, 'न' मातृका में भी आगे श्लोकों के क्रम में अन्तर नहीं है।

हे वत्स! अब मैं तुम्हें भूमि के आठ प्रकार के प्लव के गुण-दोष के बारे में कहता हूँ। पूर्व प्लवा भूमि अर्थात् पूर्व की ओर ढलान वाली भूमि श्रेष्ठ होती है, उसे आयु, श्री-सम्पति और बल को बढ़ाने वाली समझें।

सर्वसम्पत्करी पुंसां प्रासादानां विभूतिदा।
राज्यपूज्या सदानन्दा प्राक्प्लवाचेद्भवेन्मही॥ 14॥

इसी प्रकार लोगों के लिए सभी सम्पतियों को दिलाने वाली और प्रासादों, मन्दिरों के निर्माण में भी विभूति या महिमा को बढ़ाने वाली, राजाओं द्वारा पूज्या, सदा आनन्द प्रदान करने वाली कही गई है। इस तरह पूर्व दिशा के प्लव वाली भूमि के गुण बताए गए हैं।

आग्नेयप्लवभूमिफलमाह —

आग्नेयप्लवका भूमिरग्निदाहभयावहा।
शत्रुसन्तापदा नित्यं कलिदोऽग्निप्लवः स्मृतः॥ 15॥

परन्तु, जो भूमि आग्नेय कोण की ओर ढलान वाली होती है, वहाँ अग्निदाह का भय रहता है, वहाँ शत्रुओं से सन्ताप मिलता रहता है। आग्नेय प्लव वाली भूमि नित्य ही कलह कराने वाली बताई गई है।

दक्षिणप्लवाफलं —

नश्यन्ति पुरुषास्तत्र देवता च प्रणश्यति।
धनहानिकरो नित्यं रोगकृद् दक्षिणः प्लवः॥ 16॥

अब दक्षिण में प्लव या ढलान वाली भूमि को लें, ऐसी भूमि पर देवता और पुरुष नाश को प्राप्त होते हैं और उन्हें प्राणों का भय बना रहता है। वह नित्य रोग बढ़ाने वाली और धन की हानि कराने वाली होती है।

नैर्ऋतिप्लवाफलं —

प्रवर्तयेद् गृहे पुंसां रोगांश्च मृत्युदायकान्।
धनहानिं तथा नित्यं कुरुते नैर्ऋतिप्लवा॥ 17॥

इसी तरह नैर्ऋति दिशा में ढलान वाली भूमि भी वहाँ बनने वाले घरों में रहने वाले लोगों में रोगों को बढ़ाने वाली तथा मृत्युदायक कष्टों से भरी तथा नित्य धन हानि कराने वाली होती है।

पराप्लवाफलं —

पश्चिमप्लवका भूमिर्धनधान्यविनाशिनी।

शोकदाह्यं कुलं तत्र यत्र भूः पश्चिमप्लवा॥ 18॥

अब पश्चिमी दिशा में ढलान वाली भूमि को देखें जो धन-धान्य का विनाश करने वाली होती है। ऐसी भूमि में शोक, दाह आदि गृहकर्ता के कुल में बने ही रहते हैं जो पश्चिम की ओर प्लव वाली होती है।

वायव्यप्लवाफलमाह —

शत्रुकर्त्री विरागा च गोत्रक्षयकरी तथा।
गृहे च कन्यकाहन्त्री सदा दुःखभयावहा॥ 19॥

अब वायव्य कोण की ओर ढलान वाली भूमि के दोषों को देखें। ऐसी भूमि शत्रुओं को बढ़ाने, वाली वैराग्य बढ़ाने वाली, गोत्र के परिजनों का क्षय करने वाली और ऐसे घरों में रहने वालों की कन्याओं को हनन करने वाली तथा सदा दुःख और भय देने वाली होती है।

भुक्तं न जीर्यते तस्य मह्यां तत्र तु यो वसेत्।
एतान् दोषानावहति दोषदा वायुदिक्प्लवा॥ 20॥

इस भूमि पर जो भी बसता है, उसका खाया-पीया कभी नहीं पचता। इतने दोष इस वायव्य की ओर ढलान वाली भूमि के कहे हैं।

उत्तरप्लवाभूफलं —

पूज्या लाभकरी नित्यं पुत्रपौत्रविवर्धिनी।
कामदा भोगदा चैव धनदा चोत्तरप्लवा॥ 21॥

इन सबके विपरीत देखें कि उत्तर में प्लव या ढलान वाली भूमि कितनी शुभ होती है। ऐसी भूमि पूज्या होती है, नित्य लाभकारी होती है। वहाँ रहने वालों के परिवार में पुत्र-पौत्रों की वृद्धि होती है। यह भूमि सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है और इसमें सभी प्रकार के भोग उपलब्ध होते रहते हैं।

ईशानप्लवाभूफलं —

नरसौख्यसतीसत्यसौभाग्यादिविवर्द्धिनी।
धनार्थैश्वर्यसम्पन्ना धर्मदेशानकप्लवा॥ 22॥

इसी प्रकार ईशान कोण की दिशा में ढलान वाली भूमि भी बहुत ही शुभ मानी गई है। यह भूमि अपने यहाँ रहने वाले लोगों में सुख, सत्, सत्य और सौभाग्य बढ़ाने वाली होती है। इसमें धन, अर्थ, ऐश्वर्यों से सम्पन्नता प्रदान करने वाली, धर्म भावना बढ़ाने वाली सभी प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं।

पुनरपि प्राक्प्लवाभूमिप्रशंसामाह —

सा विद्या धनसम्पन्ना सर्वलोकहितावहा।
विनयाचारसम्पन्नपुत्रपौत्रादिसङ्कुला ॥ 23 ॥

परन्तु, इन सब में पूर्व दिशा की ओर प्लव, ढलान वाली भूमि तो बड़ी ही शोभना कही गई है क्योंकि इस भूमि में रहने वालों को धन-सम्पन्नता, सर्व लोकहितकारी भावना, विनयपूर्वक आचार की भावना, पुत्र-पौत्रादि की बहुलता होती है।

नीरोगा दानशीला च विशिष्टजनसेविता।
पर्वप्लवा तु या भूमिः शोभना सा प्रकीर्तिता ॥ 24 ॥

यहां के निवासी सदा निरोग, दानशील और सम्माननीय, विशिष्ट जनों की सेवा करने वाले होते हैं।

गृहप्रासादोचितभूमिलक्षणं —

गृहप्रासादयोर्भूम्याः कथ्यतेऽनुक्रमोऽधुना।
मध्यप्लवा निकृष्टा स्यात् कनिष्ठा मध्यवर्तका ॥ 25 ॥
सर्वनाशकरी पुंसां सा भूमिस्तु निवासिनाम्।
वर्जयेद्विद्रुमां क्ष्मां तु करालां मस्तकोन्नताम् ॥ 26 ॥

अब गृह और प्रासादों अर्थात राजमहलों, देवालयों आदि के लिए जो भूमि काम में ली जाती है, उनके बारे में क्रमपूर्वक कहने जा रहा हूँ। ध्यान रहे कि जो भूमि मध्य प्लवा है अर्थात् जो स्वयं खड्डे में है और चारों ओर का पानी उसमें आकर एकत्र होता है, वह भूमि कार्य या आवास के लिए निकृष्ट अर्थात् बिल्कुल गई बीती और व्यर्थ होती है। ऐसी 'मध्यवर्तका' भूमि कनिष्ठ कहलाती है जो वहाँ के लोगों के लिए और निवासियों के लिए सर्वनाशकारी होती है। इसी तरह यह भी ध्यान रखने की बात है कि जो भूमि पेड़ों से रहित हो अर्थात् उजाड़ हो और बड़ी कराल, कठोर ऊँचाई से युक्त हो अर्थात् जिसका मस्तक भाग बीच में उन्नत हो, ऐसी भूमि भी वर्जित कही गई है।

चौरेभ्यो भयदा नित्यं द्रव्यनाशकरी स्मृता।
उच्छिन्ना च देवभूमी [1]ऊर्ध्वंचा अधोगन्तव्यहीनः ॥ 27 ॥

क्योंकि, ऐसी भूमि पर चौरों का भय बना रहता है और इसके रखरखाव में भी

1. 'ऊर्ध्वसार्धस्यतव्यही ?' इति प्रकाशितपाठः।

बहुत द्रव्य का नाश होता है। ऐसी उच्छिन्ना भूमि (ऊँची भूमि) या ऊँची देवभूमि ऊपर चढ़ने और पुनः उससे नीचे उतरने योग्य नहीं होती है।

अजोष्ट्रखरसंसेव्यां वर्जयेत्तादृशीं महीम्।
सशल्या बहुभक्ता च ह्यूषरा शोककारिका॥ 28॥

जिस भूमि में अज-बकरी, ऊँट और गधे विचरण करते हों, जो भूमि शल्ययुक्त (हड्डियों वाली) हो, कण्टीली हो, जगह-जगह कटी-फटी और ऊसर भूमि हो, वे सब शोककारक होती हैं। अस्तु, ऐसी सभी भूमियाँ गृह के लिए वर्जनीय कही गई है।

त्रिविधा स्फुटिता मृद्वी वृष्टिशुष्का रिक्ताङ्गिका।
कप्पिलः[1] भ्रमगम्भीरा घटिका त्र्यक्षसिद्धिदा॥ 29॥

जो भूमि वर्षाजल रिक्त हो जाने पर, कीचड़-मिट्टी के सूख जाने से तीन प्रकार से स्फुटित हो गई है अर्थात् मिट्टी फट गई हो, भूरे वर्ण की हो और उसमें गम्भीर भ्रमघटिका अर्थात चक्र बने पाए जाए, तो ऐसी भूमि त्र्यक्ष (शिव, त्रयम्बक) की सिद्धि कराने वाली मानी जाती है।

द्रुमानुसारेणभूगुणदोषं —

वेणुगुल्मलताच्छाया द्विगुणां मध्यदूषिता।
त्रिगुणा पुन्नागवृक्षैः क्षीरवृक्षैश्चतुर्गुणा॥ 30॥

अब घर पर वृक्षों की पड़ने वाली छाया के दोष बताए जाते हैं। बांसों के झुरमुट से पड़ने वाली छाया भवनों के लिए दुगुनी मध्य दूषिता कही गई है। पुन्नाग अथवा सुपाड़ी के वृक्षों की छाया तिगुनी और दूध वाले वृक्षों की छाया चतुर्गुणी दूषिता है।

पञ्चधाश्वत्थवृक्षैश्च षड्धा धात्री महीरुहैः।
सप्तधा पूर्णवृक्षैश्च लिङ्गच्छाया तथाष्टधा॥ 31॥

अश्वत्थ वृक्ष की छाया वाली भूमि पाँच गुणी दूषित है। इसी तरह आँवले के पेड़ की छाया छह गुणी, पूर्ण वृक्ष की छाया वाली सात गुणी और शिवलिङ्ग की भवन पर पड़ने वाली भूमि आठ गुणी हानिकारक है।

एताश्च्छायाः परित्यज्य वेश्म कुर्यादथाभयम्।
वृक्षप्रासादयोश्च्छायां गृहे त्यक्ता शुभप्रदा॥ 32॥

---

1. 'कापादैः ?' इति प्रकाशित पाठः। 'काकपदै' या 'कप्पिलः' पाठ स्यात्।

अस्तु, इन छाया से भयभीत रहते हुए ही, इन छायाओं को छोड़कर ही घर बनाएँ क्योंकि यह एक ध्रुव सत्य मानकर चलें कि वृक्षों की और देव मन्दिरों की छाया घरों पर नहीं पड़े। यही शुभप्रद है। ऐसे में छायाओं को त्यागकर ही घर बनाएँ।

द्वयोः प्रहरयोश्च्छाया वृक्षप्रासादगुल्मजा।
हर्म्यगृहे तथैवं स्यादधःस्तान्नैव निन्दिता॥ 33॥

जिन वृक्षों, प्रासादों और गुल्मों से दोपहर में होने वाली छाया हवेलियों और घरों पर पड़ती है, वह अवश्य ही त्याज्य है परन्तु जो छाया उन घरों और हवेलियों से नीचे ही रह जाती है, वह निन्दित नहीं समझी जाती है।

अका अशोका अश्वत्थाः केतकीबीजपूरकाः।
यस्मिन् गृहे प्ररोहन्ति तद् गृहं नैव वर्द्धते॥ 34॥

जिस घर में आक, अशोक, अश्वत्थ, केतकी, बीजोरा (बीजपूरक, जम्बीर) के वृक्ष उगते हैं, उस घर में कभी भी वृद्धि, सम्पन्नता, सुख आदि नहीं बढ़ते।

दाडिमं च हरिद्रां च श्वेतां च गिरिकर्णिकाम्।
यदीच्छेदात्मनः श्रेयो गृहद्वारे न रोपयेत्॥ 35॥

दाड़िम, हल्दी, श्वेता, गिरिकर्णिका आदि वृक्षों को अपनी भलाई चाहने वाले व्यक्ति कभी भी अपने गृह के द्वार के पास रोपण न करें।

त्यक्त्वा चोग्रतमं वृक्षं कटुकं कण्टकान्वितम्।
अपि सौवर्णिकान्वृक्षान् गृहाश्रये न रोपयेत्॥ 36॥

इसी तरह उग्रतम समझे जाने वाले वृक्ष, कड़वे वृक्ष, काँटों वाले वृक्ष, सुनहरे पुष्पों वाले, कनेर के वृक्ष भी घर के पास नहीं रोपण करें।

न्यग्रोधोदुम्बरप्लक्षांस्तथा वै कार्मुकादिकान्।
वर्जयेद् गृहमाश्रित्य हर्म्यवृद्धिर्न विद्यते॥ 37॥

बरगद, उदुम्बर, पलाश और सुपाड़ी के वृक्ष घरों के पास हों तो वे भी वर्जनीय है क्योंकि इनके रहते हवेली और घरों में सम्पन्नता की वृद्धि नही होती है।

खर्जूरी दाडिमी रम्भा कर्कन्धू बीजपूरिका।
यस्मिन् गृहे प्ररोहन्ति तद् गृहं नैव वर्द्धते॥ 38॥[1]

---

1. तुलनीय— बदरी कदली चैव डाडिमी बीजपूरिका। प्ररोहन्ति गृहे यत्र तद् गृहं न प्ररोहति॥' (वृक्षायुर्वेद : सुरपालकृत, सम्पादक - श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा, वाराणसी, 2004, 29, समराङ्गणसूत्रधार 48, 131)

खर्जूर, दाड़म, केला, कर्कन्धू (करौन्दा) और बीजोरा जिन घरों में उगते हैं, वे कभी वृद्धि नहीं पाते हैं।

अथ भूमिस्थनिधिसाधनं —

नकुलश्चोरगो यत्र क्रीडतः स्नेहत उभौ।
तत्रस्थाने महीं खात्वा द्रव्यं तिष्ठति निश्चयम्॥ 39॥

अब भूमि में गड़े धन आदि द्रव्यों को जानने के लक्षण बताये जा रहे हैं— जिस स्थान में नेवले और सर्प आपस में दोनों स्नेहपूर्वक क्रीड़ा करते पाए जाएँ ऐसे स्थान की भूमि को खोदने पर निश्चय ही द्रव्य, धन होने का पता लगता है।[1]

बिडाला मूषकाः स्नेहाद्रमन्ते च परस्परम्।
तत्र स्थाने महीं खात्वा द्रव्यं तिष्ठति निश्चयम्॥ 40॥

जिस स्थान पर बिल्लियाँ और चूहे आपस में, परस्पर स्नेहपूर्वक रमण करते हों, उस स्थान की भूमि खोदने पर भी निश्चय ही धन और द्रव्य मिलता है।

सर्पाश्च मूषकाः स्नेहात् क्रीडन्त्यानन्दरूपकाः।
तत्र स्थाने महीं खात्वा द्रव्यं तिष्ठति निश्चयम्॥ 41॥

इसी तरह जिस स्थान पर सर्प और चूहे भी प्रेमपूर्वक और आनन्द में क्रीड़ा करते पाए जाएँ, उस स्थान में भी भूमि खोदने पर निश्चय ही धन और द्रव्य की प्राप्ति होती है।

---

1. भूमिगत द्रव्य या दफीनों की खोज का बहुत रोचक विषय रहा है। प्राचीन भारत में तान्त्रिकों ने इस प्रकार की विधियों के अनुसन्धान में ही अपने को लगाए रखा है। रुद्रादि यामलों, स्वरशास्त्रों में भी इस विषय का वर्णन मिल जाता है। 'नरपतिजयचर्यास्वरोदय' में यह वर्णन आया है। वराहमिहिर, मेघमालाकार ने काकाण्ड, खञ्जनदर्शन आदि का वर्णन करते हुए निधि प्राप्ति का वर्णन किया है जिसे मुहूर्ततत्त्वकार केशव दैवज्ञ ने भी दिया है। अपराजितपृच्छा के इस विषय के श्लोकों को सूत्रधार मण्डन ने वास्तुमण्डनम् के पहले अध्याय में उद्धृत किया है। कौतुकचिन्तामणि में भी उड़ीसा के राजा प्रतापरुद्रदेव ने इस विधि को दिया है।

   'न' पाठ में इसके बाद श्लोक इस क्रम से मिलते हैं— नकुलोरुद्रभोश्च क्रीडास्ते हिस्तिजोत्तमा। सूत्रस्थाने मर्हयित्वा द्रव्यं तिष्टन्ति निश्चय॥ 38॥ यत्र ना द्रश्यते शल्यं द्रव्यं वामं च योच्यते। सूत्रस्थाने महर्षित्वा द्रव्यं तिष्ठन्तिनिश्चयम्॥ 39॥ द्वारमध्ये कृतिकाश्च भरणीविशाखयो। शेषं पूर्वं विधातव्यं सनन्द सर्वकामयम्॥ 40॥ इति मन्दवेदयुगैका वेदाश्च गर्भस्फुरितरा। स्वकौद्वौभित्तिभ्रमयुक्ता च पदैकैका प्रकल्पयेत्॥ 41॥ द्विभागं कर्णमित्युक्तं भागद्वे तु च कर्णिका। प्रतिरथं सार्धभागं निर्गमं विस्तरं तथा॥ 42॥ पुनकरगी अर्धभागं त्रिभागं अर्द्धविस्तरम्। निर्गमं भागंमेकेन शिखराधो समुद्भवेत्॥ 43॥ वेदासभद्रविस्तारं तद्द्वित्तु विनिर्गमम्। चन्द्रावलोकनं कुर्याद् छाद्यघण्टा समन्वितम्॥ 44॥ शेषं पूर्वं विधातव्यं पीषदेछाद्यके कथम्। नागरोक्तं विधमानं च प्रयक्तं वास्तवेदिभिः॥ 45॥ ('न' संज्ञक मातका पत्र 51)

यत्र ना दृश्यते शल्यं द्रव्यं तत्र तथोच्यते।
तत्र स्थाने महीं खात्वा द्रव्यं तिष्ठति निश्चयम्॥ 42॥

जिस स्थान में किसी भी प्रकार का शल्य न पाया जाए तो समझो कि वहाँ भी द्रव्य है। अत: उस स्थान पर भी भूमि को खोदने पर धन, द्रव्य निश्चय ही मिलता है।

अथाहिबलचक्रम् —

अष्ट$_{8}$ पूर्वायता रेखा भिन्नाः पञ्च$_{5}$ समुद्धरेत्।
पदैरष्टाविंशति$_{28}$भिर्ऋक्षसङ्ख्या तथैव च॥
द्वारमध्ये कृत्तिका च शाखयोर्भरणीमघे॥ 43॥

(भूमिस्थनिधि के अवलोकन के लिए अहिचक्र की विधि कही जा रही है) इसके लिए सर्वप्रथम पूर्वापर आठ रेखाएँ खींचनी चाहिए और तिर्यक् या आड़ी पाँच रेखाएँ डालें। यह रचना इस प्रकार से की जाए कि अन्दर 28 कोष्ठक बन जाएँ। इन पदों में (अभिजित सहित) सभी 28 नक्षत्रों का इस प्रकार से न्यास किया जाना चाहिए कि द्वार के मध्य में कृतिका नक्षत्र और दोनों शाखाओं में मघा और भरणी नक्षत्र आ जाए।

चन्द्रे द्रव्यं तथा सूर्ये शल्यं चैव विनिर्दिशेत्।
अहिबलचक्रे प्रोक्ता [1]सारोधृत्यां च केवली॥ 44॥

इस प्रकार केवली के स्वरशास्त्र में कहे गए अहिबल चक्र में विन्यसित नक्षत्रों में चन्द्रमा के नक्षत्रों से द्रव्य और सूर्य के नक्षत्रों से शल्य का ज्ञान करना चाहिए।

अश्विन्यादि त्रिकं$_{3}$ चैव आर्द्रादि पञ्चकं$_{5}$ तथा।
पूर्वाषाढा चतुष्कं$_{4}$ च रेवती चोत्तरात्रयम्॥ 45॥
शशिभानि किलैतानि शिष्टानि रविभानि च।[2]

---

1. 'स्वसरो धृत्याश्च केवली ?' प्रकाशित पाठः। 'स्वरोधृत्यां च केवली' सुझाव पाठः।
यहाँ ग्रन्थकार ने सारोद्धार नामक स्वरशास्त्र के साथ ही 'केवली' का उल्लेख किया है। बहुत सम्भव है कि यह केवली कवि नरपति हो। नरपति का नरपतिजयचर्या नामक ग्रन्थ स्वरशास्त्रों में बहुत प्राचीन और महत्वपूर्ण माना जाता है जिसका रचनाकाल शङ्करबालकृष्ण दीक्षित (भारतीयज्योतिष, पृष्ठ 624) ने विक्रम संवत् 1232 (शकाब्द 1097 तद्नुसार 1175 ई.) माना है। नरपति को जैन मतावलम्बी कहा गया है, इसलिए भुवनदेव ने सम्भवत: उन्हें केवली कहा हो। वे अन्हिलपट्टन के थे और उनके पिता आम्रदेव धारानगरी में रहते थे। इस ग्रन्थ को सारोद्धार भी कहा जाता है— पुस्तकेन्द्रं पटौकश्रीदर्पणं ज्योतिपार्णवम्॥ सारोद्धारं प्रवक्ष्यामि...। प्रस्तुत वर्णन नरपति के आधार पर किया गया प्रतीत होता है।
2. सूत्रधारमण्डनकृत वास्तुमण्डनम् में ये श्लोक इस रूप में आए हैं—अश्विन्यादित्रिकं$_{3}$ चैव आर्द्रायाश्चैवपञ्चकम्$_{5}$। पूर्वाषाढाचतुष्टं$_{4}$ च उत्तरारेवतीद्वयम्$_{2}$॥ एतानि शशिधिष्ण्यानि शेषानि रविभानि च। (वास्तुमण्डनम् 1, 160-161)

अश्विन्यादि तीन (अश्विनी, भरणी व कृत्तिका), आर्द्रा आदि पाँच (आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा व मघा), पूर्वाषाढादि चार (पूर्वाषाढा, उत्तराषाढ, अभिजित् व श्रवण) तथा रेवती और उत्तरात्रय नक्षत्रों को मिला कर कुल सोलह नक्षत्र चन्द्रमा के नक्षत्र होते हैं और शेष नक्षत्र (रोहिणी, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, धनिष्ठा, शतभिषा) सूर्य के हैं।

चन्द्रर्क्षे च स्थिते सूर्ये चन्द्रे सूर्यर्क्षसंस्थिते ॥ 46 ॥
तत्र शून्यं भवेत्स्थानं द्रव्यशल्यविवर्जितम्।

जब चन्द्र के नक्षत्र सूर्य के नक्षत्र में और सूर्य के नक्षत्र चन्द्र में समागत हों, ऐसे योग में उक्त स्थान पर कुछ भी नहीं होता है, न द्रव्य और न शल्य ही मिलता है।

द्रव्यशल्यविना त्वेतं [1]शल्यद्रव्यं विनिर्दिशेत् ॥ 47 ॥
चन्द्रः पूर्व परं भानुस्तत्र शल्यं विनिर्दिशेत्।
भानुः पूर्व परं चन्द्रस्तत्र शल्यं विनिर्दिशेत् ॥ 48 ॥[2]

किन्तु यदि सूर्य व चन्द्रमा अपने अपने-अपने नक्षत्र में हों तो वहाँ धन व शल्य दोनों ही कहना चाहिए। गणना से यह ज्ञात करें कि यदि चन्द्र पूर्व नक्षत्र में और सूर्य परवर्ती नक्षत्र में हो तो उस भूमि में हड्डी होती है और सूर्य पूर्व तथा चन्द्रमा परवर्ती नक्षत्र में स्थित हो तो भी वहाँ शल्य बताना चाहिए।[3]

नरपति में यह श्लोक इस प्रकार है जिसका आशय है कि अश्विनी से तीन, आर्द्रा से पाँच एवं पूर्वाषाढ़ा से चार व रेवती-पूर्वाभाद्रपद- ये चन्द्रमा के नक्षत्र है और शेष सूर्य के नक्षत्र हैं—अश्वीशपूर्वाषाढादित्रिं पञ्च चतुष्टयम्। रेवती पूर्वाभाद्रेन्दोर्भानि शेषाणि भास्वतः ॥ (नरपति. नाडीचक्रप्रकरणम् 1, 9)
नरपति ने सम्पूर्ण चक्र इस प्रकार बताया है— अहिचक्रं प्रवक्ष्यामि यथा सर्वज्ञभाषितम्। द्रव्यं शल्यं तथा शून्यं येन जानन्ति साधकाः॥ निधिर्निवर्तनैकस्थः सम्भ्रान्तो यत्र भूतले। तत्र चक्रमिदं स्थाप्यं स्थानद्वारमुखस्थितम्॥ ऊर्ध्वरेखाष्टकं लेख्यं तिर्यक् पञ्च तथैव च। अहिचक्रं भवेत्येवमष्टाविंशति कोष्ठकम्॥ तत्र पौष्णाश्वि याम्यर्क्षं कृत्तिकापितृभाग्यकम्। उत्तराफाल्गुनी लेख्यं पूर्वपङ्क्त्यां भसप्तकम्॥ अहिर्बुध्न्याजपादर्क्षं शतभं ब्राह्मसार्पभम्। पुष्यं हस्तं समालेख्यं द्वितीयां पङ्क्तिमास्थितम्॥ विधिविष्णुर्धनिष्ठाख्यं सौम्यरौद्रंपुनर्वसू। चित्राभं च तृतीयायां पङ्क्तौ धिष्ण्यस्य सप्तकम्॥ विश्वर्क्षं तोयभं मूलं ज्येष्ठा मैत्रविशाखिके। स्वाती पङ्क्त्यां चतुर्थ्यां च कृत्वा चक्रे प्रस्तारः प्रन्नगाकृतिः। द्वारशाखामघायाम्ये द्वारस्था कृत्तिका मता॥ (नरपति. पूर्वोक्त 1, 8)

1. 'शल्यद्रव्यादि कथ्यते?' प्रकाशित पाठः।
2. वास्तुमण्डनम् में उक्त श्लोक इस रूप में मिलते हैं— चन्द्रधिर्ष्णेस्थितेसूर्ये सूर्यचन्द्रसमागते॥ तत्र शून्यं भवेस्थानं द्रव्यशल्य विवर्जितम्। द्रव्यशल्यविना ह्येवशल्यद्रव्यं विनिर्दिशेत्॥ चन्द्रपूर्वापरोभानुस्तत्र शल्यं विनिर्दिशेत्। भानुपूर्वापरश्चन्द्रस्तत्र द्रव्यां विनिर्दिशेत्॥ (वास्तु. 1, 161-163)
3. उक्त प्रसङ्ग में नरपति. का मत विचारणीय है चन्द्र व सूर्य के नक्षत्र को जानकर देखें कि दोनों अपने नक्षत्र में हैं अथवा दूसरे के नक्षत्र में, यदि चन्द्रमा के नक्षत्र में सूर्य व चन्द्रमा दोनों हों तो उस स्थान में निश्चय ही द्रव्य होता है। सूर्य के नक्षत्र में दोनों हों तो शल्य होगा और कोई पदार्थ नहीं। यदि दोनों

सूत्र-५१

सूर्यचन्द्रनक्षत्रसाधनम् —

गतघटि ऋक्षभघ्ना:$_{27}$ (हता: ?) षष्ठिहते$_{60}$ च शेषकम्।
रविशशिभुक्तकालं रविचन्द्रर्क्षलग्नकम्॥ 49॥

भूमिस्थ निधि प्राप्ति के लिए प्रश्न की गत घटियों को 27 से गुणा करें और उसमें 60 का भाग दें तो प्राप्त फल सूर्य व चन्द्रमा का भुक्तकाल होगा और यही सूर्य व चन्द्रमा के नक्षत्रों से लग्न होगा। (यदि प्राप्त नक्षत्र की संख्या में अश्विन्यादि गत नक्षत्र जोड़ा जाएगा तो अश्विन्यादि क्रम से चन्द्रमा के नक्षत्र का पता चलेगा।)[1]

अपने-अपने नक्षत्र में हों तो दोनों पदार्थ होंगे व इनके विपरीत हो तो कुछ नहीं होता है। नवांश के अनुमान से भूमि का अनुमान किया जाना चाहिए। यदि चन्द्रमा क्रूर ग्रह से युक्त हो तो द्रव्य नहीं मिलता है। पूर्ण चन्द्रमा हो तो पूर्ण द्रव्य, क्षीण चन्द्रमा हो तो अल्पद्रव्य होता है। ग्रह दृष्टि के अनुरूप द्रव्य नव प्रकार का होता है। सूर्यादि ग्रहों का क्रम से स्वर्ण, रजत, ताम्र, पित्तल, रत्न, काँसा, लोहा, शीशा और नाग। चन्द्रमा को जो ग्रह देखता है उसके अनुसार द्रव्य होता है। मिश्र ग्रह देखते हैं तो मिश्रद्रव्य होगा।

यथा— चन्द्रऋक्षे यदाऽर्केन्दू तत्रास्ति निश्चितं निधि:। भानुऋक्षे स्थितौ तौ चेत्तदा शल्यं च नान्यथा। स्वस्वभे द्वितयं ज्ञेयं नास्ति किञ्चिद्विपर्यये। नवांशकानुमानेन भूमानं तस्य कल्पयेत्। स्थितं न लभते द्रव्यं चन्द्रे क्रूरग्रहान्विते॥ पुष्टे चन्द्रे भवेन्मुद्रा क्षीणे चन्द्रेऽल्पको निधि:। ग्रहदृष्टिवशात्सोपि विज्ञेयो नवधा बुधै:॥ हेम तारं च ताम्रारं रत्नं कांस्यायसं त्रपु। नागं चन्द्रे विजानीयाद्भास्करादिगृहेक्षिते॥ मिश्रैर्मिश्रं भवेद् द्रव्यं शून्यं दृष्टिविपर्यये। सर्वग्रहेक्षिते चन्द्रे निर्दिष्टोऽसौ महानिधि:॥ शुभक्षेत्रगते चन्द्रे लाभ: स्यान्नात्र संशय:। पापक्षेत्रे न लाभो हि विज्ञेय: स्वरपारगै:॥ हेमं तारं च ताम्रं च पाषाणं मृन्मयायसम्। सूर्यादिगृहगे चन्द्रे द्रव्यभाण्डं प्रजायते॥ भुक्तराश्यंशमानेन भूमानं काम्बिकै: करै:। नीचे द्विघ्नं परं नीचे जलस्थोऽसौ भवेन्निधि:॥ स्वोच्चस्थे भूर्ध्वगं द्रव्यं नवांशक क्रमेण च। परमोच्चे परे तुङ्गे भित्तिस्थमृक्षसङ्क्रमे॥ (नरपति. वही 11-21)

1. वास्तुमण्डनम् और नरपतिजयचर्या में आया है कि निधि की प्राप्ति के लिए प्रश्नकालिक नक्षत्र में उदय से जितनी घड़ी बीत गई हो अर्थात् भयात घटिकाओं को 27 से गुणाकर 60 से या भभोग से भाग देने पर लब्धि नक्षत्र, घटीपल मिलें, उस नक्षत्र की संख्या में अश्विन्यादि गत नक्षत्र की संख्या को जोड़ने पर अश्विन्यादि क्रम से चन्द्रमा के स्पष्ट नक्षत्र का ज्ञान होता है। मूल श्लोक में ग्रन्थकार 60 की कल्पना भभोग के स्थान पर करता है किन्तु टीकाकार ने भभोग से ही भाजित करना उचित माना है। नाक्षत्रीय साठ घटिकात्मक चक्रानुसार नक्षत्रों का परिभ्रमण ध्यान में रखकर उक्त प्रकार से ही गणना की जानी उचित है— उदयादिगता नाड्यो भघ्ना: षष्ट्याप्तशेषके। दिनेन्दुर्भुक्तियुक्तोऽसौ भवेत्तात्कालचन्द्रमा:॥ (वास्तु. 1,164 एवं नरपति. वही 10)

जिस तरह चन्द्र नक्षत्र के भयात भभोग से स्पष्ट चन्द्रमा का साधन कहा गया, उसी प्रकार इष्ट समय में नक्षत्र स्थित सूर्य का साधन किया जाना चाहिए। अर्थ यह है कि जिस नक्षत्र में सूर्य हो, उसमें सूर्य के प्रवेश काल से इष्टकाल तक गत दिनादि को सूर्य सम्बन्धी भयात माने और आगे के नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश दिन से पूर्व तक भभोग दिन समझकर क्रिया कनी चाहिए। फिर यह देखना चाहिए कि ये दोनों अपने-अपने नक्षत्र में अथवा भिन्न-भिन्न नक्षत्र में हैं— चन्द्रवत् साधयेत् सूर्यमिष्टर्क्षं चेष्टकालिकम्। पश्चाद्विलोकयेत्तौ चेत्स्वर्क्षे वा चान्यभे स्थितौ॥ (वास्तु. 1, 165, एवं नरपति. वही 11)

इत्यमनन्तर वर्णानुसारेणयोग्यायोग्यभूमिलक्षणं —

श्वेता च ब्राह्मणी भूमी रक्ता वै क्षत्रिया स्मृता।
पीतवर्णा भवेद्वैश्या शूद्री तु कृष्णवर्णिनी॥ 1॥[1]

अब रङ्ग, वर्ण के अनुसार भूमि के लक्षण कहते हैं। जो भूमि श्वेत वर्ण की हो, वह ब्राह्मणी भूमि होती है, रक्तवर्णा क्षत्रिया, पीतवर्णा वैश्या तथा कृष्णवर्णा भूमि शूद्री होती है।

गन्धानुसारेणभूमिलक्षणं —

घृतगन्धा भवेद्विप्री राज्ञी रक्तानुगन्धिनी।
क्षारगन्धा भवेद्वैश्या शूद्री विष्ठानुगन्धिनी॥ 2॥

जिस भूमि से घी जैसी गन्ध आए, वह भूमि विप्रा होती है, रक्तगन्धा भूमि राज्ञी या क्षत्रिया, क्षारगन्धा भूमि वैश्या तथा विष्ठानुगन्धिनी भूमि शूद्री होती है।

स्वादानुसारेणभूमिः —

ब्राह्मणी मधुरास्वादां कषाया क्षत्रिया तथा।
क्षारास्वादा भवेद्वैश्या शूद्री स्यात्कटुका तथा॥ 3॥
एवं परीक्षयेद् भूमिं वर्णैर्गन्धैश्च स्वादतः।
गोमयेन समालिप्य नन्द्यावर्तं तु स्वस्तिकम्॥ 4॥

ऐसी भूमि जो चखने पर मधुर स्वाद वाली हो, वह ब्राह्मणी भूमि होती है, कषाय स्वाद वाली भूमि क्षत्रिय, क्षार स्वाद वाली वैश्या तथा कटु स्वाद वाली भूमि शूद्री होती है। इस प्रकार भूमि का वर्ण, गन्ध और स्वादानुसार परीक्षण किया जाना चाहिए। इसके बाद उस भूमि को गोबर से लीप कर उस पर नन्द्यावर्त स्वस्तिक बनाएँ।

स्थापयेदामघटं वर्धमानेन संयुतम्।
घृतेन ज्वालयेद्वर्तीश्चतस्त्रश्च चतुर्दिशम्॥ 5॥

फिर उस स्वस्तिक पर कच्चा घड़ा और उस पर बीजोरा या ढक्कन रखा हुआ हो, ऐसा रखें तथा उस घट पर चारों ओर चार दिशाओं में जलने वाली बातियाँ रखे और उन्हें घी से जलाएँ, दीपक बनाएँ।

आद्योद्भवे यथा वर्तिस्तद्वर्णा सा मही मता।
सूत्रधारस्य हस्ते तु कुद्दालं तु तथोत्तमम्॥ 6॥

---

1. यहाँ से इसी सूत्र के 12वें श्लोक के बाद का विषय पुनः आरम्भ होता है। 'न' मातृका में इस क्रम से उक्त श्लोक नहीं मिलते हैं।

इस अवसर पर देखें कि जो वर्तिका पहले ऊँची जलती दीखे, उसी के अनुसार उस भूमि का वर्ण निश्चय करें, और तब सूत्रधार के हाथ में उत्तम कुदाली दें।

स्थित्वा पूर्वाभिमुखतः शुचिः स्नातो जितेन्द्रियः।
शुक्लोम्बरधरो नित्यं शुक्लमाल्यानुलेपनः॥ 7॥
प्रहारं दापयेत्तत्र लक्षयेद्रेणुमुच्छ्रितम्।
पूर्वापरयाम्योत्तरं वर्णैः प्राच्यादिशस्तकम्॥ 8॥

सूत्रधार जो कि पवित्र हो, स्नानादि से शुद्ध हो, जितेन्द्रिय, श्वेत वस्त्रधारण किए हो और नित्य श्वेतपुष्पों की माला पहनकर श्वेत चन्दन का अनुलेप तिलक आदि करता है, पूर्वाभिमुख स्थित होकर उस कुदाल से प्रहार करें और जो मिट्टी उस प्रहार से निकले, उसे ध्यानपूर्वक देखें कि वह किधर अधिक गिरती है— पूर्व की ओर या पश्चिम या दक्षिण अथवा उत्तर की ओर? इसी के अनुसार पूर्वादि दिशा क्रम से भूमि का वर्ण निश्चित करें जो शास्त्रसम्मत माना जाता है।

ततो वास्तुं च सम्पूज्य तत्तत्क्षेत्रेषु कल्पितम्।
पुष्पाक्षतैः समालिख्य निलयाधः प्रमाणतः॥ 9॥

इसके उपरान्त ही वास्तु का पूजन करें और उस क्षेत्र के नक्शे के अनुसार डाकवेल या आकार कल्पित करें तथा पुष्प, अक्षतादि से समस्त निलयों (कमरों) को प्रमाणानुसार अङ्कित कर दें।

सूत्रधारो महाप्राज्ञं शुक्लोम्बरधरः शुचिः।
करे गृहीत्वा कुद्दालं दृढश्चैकाग्रमानसः॥ 10॥
तूरवादित्रनिर्घोषैर्मङ्गलैः शब्दसङ्कुलम्।
प्रहारं दापयेत्तत्र तत्कुक्षौ वह्निगोचरे॥ 11॥

पुनः कहते हैं कि श्वेत वस्त्रधारी, पवित्रभाव वाले सूत्रधार महाप्राज्ञ को चाहिए कि वह दृढ़ और एकाग्रमन से कुदाल को ग्रहण करें और गाजे-बाजे के साथ उच्च मङ्गल गीतों के गान, कोलाहल के बीच कुदाल के प्रहारों से उस भूमि के कुक्ष को खोदकर बाहर निकाल कर दिखाएँ।

दिशानुसारेण रेणुपतनफलं —

उद्धृते चैव कुद्दाले ततो रेणुं निरीक्षयेत्।
उत्तरे तु भवेत्क्षेमं पश्चिमे पुत्रपौत्रकम्॥ 12॥

और, कुदाल से निकाली गई मिट्टी का पुनः ठीक-ठीक ढँग से निरीक्षण करें कि उक्त मिट्टी यदि उत्तर की ओर गिरे तो क्षेम-कुशल होता है और पश्चिम में गिरे

तो पुत्र-पौत्र की वृद्धि होती है।

पूर्वे तथोत्तमं विद्यादीशाने मोक्षदायकम्।
इतरासु चतुर्दिक्षु सर्वदोषसमुद्भवः॥ 13॥

पूर्व की ओर से सर्वोतम जाने और ईशान की ओर गिरे तो मोक्षदायक मानें। इनके अलावा चारों दिशाओं में जो इतर रह जाती है, सभी प्रकार के दोषों को उत्पन्न करने वाली है।

कीलकरोपणविचार —

आनीय कीलकं सूत्रं रोपयेच्च चतुर्दिशम्।
कीलकस्य च सूत्रस्य वर्णभेदांश्च लक्षये॥ 14॥

अब कीलक के वर्ण भेद बताते हैं— पहले कीलक को लाकर स्थापित करें और उस पर चारों ओर सूत्र लपेटें। इससे कीलक और सूत्र के वर्ण भेद देखे जाते हैं।

प्रशस्यन्ते ब्राह्मणानां कीला आश्वत्थकीलकाः।
उदाहृता क्षत्रियाणां खादिरा रात्कचन्दनाः॥ 15॥

ब्राह्मणों के लिए अश्वत्थ का कीलक प्रशस्त है और क्षत्रियों के लिए खदिर और रक्त चन्दन के कीलक शुभ हैं।

शिरीषशालतालानां वैश्यजातेः प्रकीर्तिताः।
सर्जकार्जुनयोस्त्वेवं शूद्राणां च सुखावहाः॥ 16॥

वेश्यजनों के लिए शिरीष, शाल और ताड़ के कीलक शुभ कहे गए हैं और शूद्र समुदाय के लिए सर्जक और अर्जुन वृक्ष के कीलक सुखदायक होते हैं।

कीलकस्य आयामप्रमाणं —

द्वात्रिंशदङ्गुलो$_{32}$ विप्रे चाष्टाविंशतिः$_{28}$ क्षत्रिये।
चतुर्विंशाङ्गुलो$_{24}$ वैश्ये शूद्रे विंशाङ्गुलो$_{20}$ भवेत्॥ 17॥

अब कीलकों की लम्बाई के बारे में कहते हैं— ब्राह्मणों के लिए 32 अङ्गुल लम्बे कीकल, क्षत्रियों के लिए 28 अङ्गुल लम्बे, वैश्यों के लिए 24 अङ्गुल लम्बे और शूद्रों के लिए 20 अङ्गुल के कीलक प्रशस्त कहे गए हैं।

चतुरश्रो भवेद् विप्रे चाष्टाश्रः क्षत्रिये मतः।
षोडशाश्रस्तु वैश्ये स्याद् वृत्तः शूद्रे प्रकीर्तितः॥ 18॥

इसी तरह ब्राह्मणों के कीलक चतुरस्त्र (चौकोर) हो, क्षत्रियों के कीलक अष्टाश्र (अष्टकोणीय), वेश्यों के कीलक षोडशास्त्र (सोलहकोणीय) हो और शूद्रों के लिए कीलक गोलाकार होने चाहिए।

सूत्रलक्षणं —

विप्रस्य दर्भजं सूत्रं मौञ्जं तु क्षत्रियस्य च।
कासजं तु भवेद् वैश्ये शाणं शूद्रस्य कीर्तितम्॥ 19॥

अब सूत्र के बारे में कहते हैं— यदि ब्राह्मण हो तो उसको दर्भ या दाभ का सूत्र काम में लेना चाहिए, क्षत्रिय हो तो मूँज का, वैश्य हो तो कास अर्थात् कपास का बना हुआ तथा शूद्र हो तो शण का बना हुआ सूत्र काम में लिया जाना चाहिए।

न काष्ठलोहाङ्गारैश्च नखपादैरुद्घाटनम्।
शस्त्रे शस्त्रभयं विन्द्यात् सूत्रछेदे तु मृत्युदम्॥ 20॥

कभी भी केवल काष्ठ, केवल लोह, अङ्गारों, नखों, पाँवों, शस्त्रों और सूत्रच्छेद से भी भूमि का उद्घाटन अर्थात् खुदाई कार्य उचित नहीं है क्योंकि शस्त्र से शस्त्र भय और सूत्रच्छेद से मृत्यु की आशङ्का रहती है।[1]

सूत्रपातनमाह —

आलिख्य होमशालायां धर्मकामार्थसाधकम्।
कृत्वा पुष्पाक्षतं पात्रे जलरेखां समुद्धरेत्॥ 21॥

इसके बाद, नक्शे के अनुसार जहाँ होमशाला बनाने का विधान हो, उस भूभाग पर धर्म-काम आदि की साधक होमशाला के लिए निशानदेही (डाकवेल) डालकर लिख दें और पात्र में पुष्पाक्षतयुक्त जल से उसके चारों और जलरेखा बना दें।

बलिं दद्याद्यथान्यायं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
आफालयेत् ततः कीलं प्रथमं वह्निगोचरम्॥ 22॥

फिर वहाँ शास्त्रीय दृष्टि अनुसार कर्म करके यथान्याय बलि प्रदान करें और प्रथम कील को अग्निकोण में गाड़ना चाहिए।

नैर्ऋत्यान्ते द्वितीयं च वायव्यं तदनन्तरम्।
ईशान्यां च पुनर्दद्यात् सूत्रं यावच्चवह्निगम्॥ 23॥

दूसरी कील को नैर्ऋत्य कोण में गाड़े और उसके बाद की कील वायव्य कोण में गाड़े और बाद में ईशान कोण में गाड़े। इस प्रकार अग्निकोण की कील से बाँधा

---

1. इस सम्बन्ध में कई शास्त्रीय प्रमाण है। यथा— नखान्न खादयेच्छिन्द्यान्न तृणं न महीं लिखेत्॥ न श्मश्रु भक्षयेल्लोष्टं न मृद्नीयाविचक्षणः। (विष्णुपुराण तृतीयांश, 12, 10-11) तुलनीय : लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः। स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च॥ (मनुस्मृति 4, 71) तथा : लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः। नित्योच्छिष्टः शङ्कुशुको नेहायुर्विन्दते महत्॥ (महाभारत शान्तिपर्व 193; अनु. 104, 15)

गया सूत्र इन सभी कीलों के चारों ओर लिपटता हुआ पुनः अग्निकोण की कील में ले जाकर बाँध दें।

गृहीत्वा मुद्गरं शिल्पी प्रहारांस्त्रीन् प्रदापयेत्।
चतुर्थांशे गते कीले सा मही चोत्तमा मता॥ 24॥

इसके बाद, शिल्पी अपने हाथ में हथौड़ा (मुद्गर) लेकर तीनों कीलों पर प्रहार करें और परीक्षा करें कि यदि कीलें भूमि में केवल चतुर्थांश तक ही गड़ी हों तो उस भूमि को उत्तम भूमि समझें।

मध्यमा स्यात्त्रिभागेन कनिष्ठार्धेन च स्मृता।
अत ऊर्ध्वं गते कीले विद्यान्न शिवमालयम्॥ 25॥

यदि कीलें तीसरे भाग तक गड़ गई हों, तो उस भूमि को मध्यमा समझें तथा यदि कील आधे तक गड़ गई हो, तो उस भूमि को कनिष्ठा समझें और आधे से ऊपर तक यदि कील भूमि में गड़ जाए तो समझ लें कि वहाँ भूमि शिवालय के निर्माण योग्य नहीं है।

हन्यमानो यदा कीलो नमितः कां दिशां प्रति।
तन्माहात्म्यमथाख्यास्ये नमिते कीलके फलम्॥ 26॥
प्राच्यां स्यादर्थसम्पत्तिः सन्तापो ह्यग्निगोचरे।
दक्षिणे विपुला भोगा नैर्ऋत्ये कलहः सदा॥ 27॥

अब हम कील को प्रहार करते समय वह जिस दिशा की ओर झुक जाए तो उसका फल बताते हैं और उसके नमित होने या झुक जाने का माहात्म्य भी बताते हैं। यदि कील पूर्व दिशा की ओर झुक जाय तो अर्थ, धन-सम्पति की प्राप्ति होती है परन्तु कील यदि अग्निकोण की ओर नमित हो जाए तो सन्ताप का कारण बनती है। वही कील यदि दक्षिण की ओर नमित हो जाए तो शुभ है और विपुल भोगों की देने वाली सिद्ध होती है परन्तु, नैर्ऋत्य कोण की ओर नमित कील से तो महान कलह सदा ही बना रहता है।

वारुण्यां धनधान्यं च वायव्यां स्त्रीप्रदूषणम्।
उत्तरे सर्वभद्राणि हीशाने मरणं ध्रुवम्॥ 28॥

इसी प्रकार यदि कील वारुणी (पश्चिम) दिशा की ओर नमित हो जाए तो धन-धान्य का भरपूर लाभ देती है परन्तु यदि कील वायव्य कोण की ओर नमित हो जाए तो समझो कि घर की स्त्रियों में दूषण अर्थात् दुराचार होने का भय उत्पन्न होगा। इसी तरह उत्तर दिशा की ओर यदि कील नमित हो जाए तो सभी ओर से

लाभ और शुभ की ही सम्भावना रहती है और यदि कील ईशान कोण की ओर नमित हो जाए तो निश्चित ही मृत्यु की आशङ्का बन जाएगी।

प्राञ्जलः सिद्धिदः प्रोक्तोऽन्यथा चैवमसिद्धिदः।
भग्नश्च मृत्युदः प्रोक्तः कीलकस्य महात्म्यकम्॥ 29॥

यदि कील प्रहार के साथ ही सरलता से भूमि में गड़ जाए तो वह सिद्धि देने वाली होती है, अन्यथा वह सिद्धि देने वाली नहीं कही जाती। इसी तरह यदि कील हथौड़े से प्रहार के समय भूमि में गड़ने के समय टूट जाए तो उसको अवश्य ही मृत्युदायक कष्टपूर्ण समझें। इस तरह यहाँ मैंने कीलक के माहात्म्य को बताया है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां भूपरिग्रहकीलकारोपणाधिकारो नामैकपञ्चाशं सूत्रम्॥ 51॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में भू परिग्रह, कीलक आरोपण अधिकार नामक इकावनवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 51॥

कूर्मप्रमाणपदप्रतिष्ठा नाम द्विपञ्चाशं सूत्रम्॥ 52॥

विश्वकर्मोवाच —

शस्ते मासे सिते पक्षे ह्यतीते चोत्तरायणे।
ताराचन्द्रबले चैव योगे चामृतसम्भवे॥ 1॥
सूत्रपातस्तु कर्त्तव्यः प्राची साध्या ततो भवेत्।

विश्वकर्मा ने कहा कि शुभ माह में, शुक्ल पक्ष हों और उत्तरायण का अतीत हो चुका हो, उस समय ताराबल और चन्द्रबल देखकर और अमृतयोग आने पर कार्य का सूत्रपात करना चाहिए। ऐसा करते समय प्राची-दिक्साधन का अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

दिग्मूढनिषेधमाह —

चतुरश्रं समं कृत्वा दिग्मूढं परिवर्जयेत्॥ 2॥
पूर्वपश्चिमदिग्मूढं वास्तु स्त्रीनाशकं स्मृतम्।
दक्षिणोत्तरदिग्मूढं सर्वनाशकरं भवेत्॥ 3॥

भूमि के चतुरस्र बनाते समय कभी दिग्मूढ़, दिशाओं में मूल न आने देना चाहिए। जो वास्तु पूर्व-पश्चिम दिशा में दिग्मूढ़ होता है अर्थात् गलत दिक्साधनयुक्त होता है, उसका फल स्त्रीजन के नाश का कारण बनता है। इसी तरह दक्षिण-उत्तर में जो वास्तु दिग्मूढ़ हो, वह भी सर्व नाशकारक होता है।

विसूत्रं च भवेत्तच्चेत् सूत्रसन्तापकारकम्।
प्रासादस्य प्रमाणेन सूत्रैः क्षेत्रं प्रसाधयेत्॥ 4॥
प्रासादे भित्तिसंयुक्तो गृहे भित्तिस्तु बाह्यतः।
कर्त्तव्यो मण्डपैर्युक्तो जगत्यायाम एव च॥ 5॥

और जो वास्तु विसूत्र हो, सीधवत सूत्र में न होकर टेढ़ा-मेढ़ा हो, वह सूत्रधार को सन्तापकारक होता है। अतः प्रासाद, मन्दिर के प्रमाणानुसार ही सूत्रधारों को उस भूमि क्षेत्र की ठीक-ठीक साधना चाहिए। यह ध्यान रहे कि प्रासाद, मन्दिरों में भित्ति से संयत अर्थात भित्ति के नाप के साथ ही मण्डप का नाप और जगती, पीठिका का नाप होता है, परन्तु मकानों, भवनों में भित्ति के नाप के बाहर मण्डप का नाप और जगती पीठ का नाप होता है।

अथ जीर्णप्रासादलक्षणं —

अथाख्यास्ये पुनश्चान्यद् जीर्णप्रासादलक्षणम्।
भग्नं द्रव्यादिकं वाऽपि उद्धारेऽष्टगुणं फलम्॥ 6॥

अब हम पुनः दूसरे जीर्ण प्रासादों के लक्षण कहते हैं जिनके द्रव्यादिक अङ्ग-उपाङ्ग भग्न हो गए हो, उनका पुनः उद्धार करने अर्थात् जीर्णोद्धार करके पुनः नवीन करने का फल नवीन निर्माण किए गए से आठ गुणा अधिक पुण्य होता है।

पूर्वमानप्रमाणं च कारयेत्तद्विचक्षणः।
तद्रूपं तत्प्रमाणं च पूर्वसूत्र च चालयेत्॥ 7॥

जिन-जिन भग्न वस्तुओं का जीर्णोद्धार किया जाए, उनमें विचक्षण सूत्रधार या गजधर को चाहिए कि उन वास्तुओं का पहले का मान-प्रमाण नींव-सीम से वैसा ही सही रखें, उन्हे तद्रूप और तत्प्रमाण रखते हुए पूर्व के सूत्र में, सूत-सावल में अन्तर नहीं आने दें।

चलिते चालिते वापि दिग्मढे स्थानवास्तुषु।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूर्वसूत्रं च चालयेत्॥ 8॥
चलिते चालिते चैव सूत्रस्थाने च विग्रहम्।
हीने हानिं प्रकुर्वीत चाधिके स्वजनक्षयम्॥ 9॥

क्योंकि, सूत्र प्रमाण में न्यूनाधिकता, हेर-फेर से उस सूत्रस्थान में विग्रह खड़े हो जाते हैं, जैसे कम रखने पर हानि होती है और वेशी रखने पर अपने ही परिवार जनों का क्षय होता है।

भूपरिग्रहणे चैव वास्तुविद्याविशारदैः।
वास्तुस्थानं पुरा ज्ञात्वा खनेच्चैवं प्रदक्षिणम्॥ 10॥

भूमि का परिग्रहण करते समय भी सभी वास्तुविद्या विशारद सूत्रधार, गजधरों को चाहिए कि वे उस वास्तु-स्थान की पहले की पुरानी जानकारी अच्छी तरह कर लें, उसके बाद ही उसकी प्रदक्षिणा करके खुदाई आरम्भ करें।

मर्मवेधविचार —

पिता माता च पुत्राश्च नाशं गच्छन्ति मस्तके।
पृष्ठे चात्मविनाशश्च देशत्यागश्च जायते॥ 11॥

क्योंकि, यदि पुरानी जानकारी न की जाए और उस वास्तु-स्थान में मर्मवेध रह जाए तो बड़ा अनर्थ हो जाता है। जैसे— मस्तक की ओर मर्मवेध रह जाए तो उस गृहपति के माता-पिता व पुत्रों का नाश हो जाता है तथा यदि पीठ की ओर मर्मवेध रह जाए तो स्वयं गृहस्वामी का ही नाश हो जाता है अथवा उसे देश त्याग करके जाना पड़ सकता है।

स्त्रीस्वगोत्रविनाशश्च चतुःपादेषु वै क्रमात्।
जायते धननाशश्च मर्मवेधे कृते सति॥ 12॥

और, इसी क्रम में स्त्री, स्वगोत्र बन्धुजन, चौपायों और धन का भी विनाश हो जाता है— यदि मर्म वेध बने रहे तो ऐसा फल जाने।

शुभं पुत्रो धनं धान्यं ज्ञात्वा कुक्षिं यदा खनेत्।
कृत्वा प्रदक्षिणं कुम्भं गृहीत्वा स्थापितं ततः॥ 13॥
कुक्षिं चातोदकैर्भृत्वा शान्तिमुच्चार्यशोभनाम्।
तथोदकैर्वन्दनीयं वास्तुदेवं विसर्जयेत्॥ 14॥

इसलिए यदि पुत्र, धन, धान्यादि के लिए शुभ मुहूर्त निकलवाकर शुभ, मङ्गल जान लिया जाए तभी नींव-कुक्षी को खोदना चाहिए। इसके लिए हाथ में कुम्भ लेकर उस स्थान की प्रदक्षिणा करके उस कुम्भ को उस स्थान पर स्थापित करें। तदोपरान्त नींव की खुदाई को कुम्भ के जल से भरकर, बड़े प्रेम से शान्तिपाठ का उच्चारण करें और इस प्रकार जल को वन्दन करके वास्तुदेव का विसर्जन करें।

विदिक्षु दिक्षु खातानि प्राच्यादिषु प्रदक्षिणम्।
तथा घटोदकैर्भृत्वा वन्दयेच्छान्तिपाठकैः॥ 15॥
इत्यन्तं तु समुद्दिष्टं वास्तुस्थानविसर्जनम्।

इसी तरह विदिशाओं और दिशाओं के नींवों के खात को भी पूर्व दिशा से

प्रारम्भ करते हुए प्रदक्षिण क्रम से आगे करते जाए और घड़ों में जल भर-भरकर शान्ति पाठ के साथ वन्दन करते जाए। इस प्रकार वास्तुस्थान का विसर्जन बताया गया है।

खातपूर्वकशल्यादीनोद्धारनिर्देशं —

शिलान्तं वा जलान्तं वा खात्वा शल्यं समुद्धरेत्॥ 16॥

नींव की खुदाई करते समय ध्यान रखें कि उसकी खुदाई करते-करते या तो नीचे नींव में कठोर शिला आ जाए अथवा खुदाई करते भूमि में जल का स्रोत आ जाए, वहाँ तक उसे खोदते जाए। खोदते समय जो भी शल्य (अस्थि, केश, कोयला आदि) मिलते जाएँ उन्हें भी निकालते जाना चाहिए।

जलान्तेषु यदा खातो गोविप्रोदक ? पालनम्।
वास्तु पूजां ततः कृत्वा मध्ये कूर्मं तु स्थापयेत्॥ 17॥

अब नींव के खात की भराई के बारे में कहा जा रहा है। जो नींव की खुदाई जलान्त अर्थात जल आ जाने तक की गई हो, वह उत्तम होती है और गो, ब्राह्मण को पालने वाली कही गई है। अस्तु, वास्तुपूजा करके उसके मध्य में कूर्म की स्थापना करनी चाहिए।

तत्र कूर्मलक्षणं —

हिरण्मयो भवेत्कूर्मो वास्तुविस्तारधारणः।
उरोरत्नैर्नेत्ररत्नैः पृष्ठरत्नैश्च शोभितः॥ 18॥
समुपेतैः सर्वगात्रे रौप्यपादोपशोभितः।
एवं वै सूत्रितं सर्वं रत्नकाञ्चनरूप्यकम्॥ 19॥
तत्रैव स्थापिताः सूत्र पर्वता द्वीपसागराः।
शिलाभिरिष्टिकाभिश्च ततः खातं प्रपूरयेत्॥ 20॥

वह कूर्म सोने का बना हो। वह वास्तु के पूरे विस्तार को धारण करने वाला होता है। उस कूर्म की छाती पर, नेत्र पर, पीठ पर रत्न जड़े हुए शोभायुक्त हों। इसी तरह वे बताए गए सभी रत्नों से, सोने से और चाँदी से बने हुए पर्वत, सागर द्वीपादि भी वहाँ सूत्रधार, गजधर के द्वारा ठीक तरह से स्थापित किए जाने चाहिए। इस सबके बाद ही शिलाओं से और ईंटों से उस खात की भराई आरम्भ की जानी चाहिए।

इष्टकाचयनं कृत्वा पूरयेच्च स्तरं स्तरम्।
कपिशीर्षे च पाषाणे मृगश्चाष्टाङ्गुला दहेत्॥ 21॥

इस तरह नींव के खात मुहूर्त की समारोह पूर्वक भराई हो जाने पर जब नींव की ईंटों से चुनाई की जाए, तो ध्यान रखें कि भित्ति की चुनाई की पूर्ति स्तरवार हो अर्थात् पूरी नींव की एक स्तर चुनाई हो जाए। उसके बाद ही उसके ऊपर के दूसरे स्तर की चुनाई करनी चाहिए। इस चुनाई कार्य में काम आने वाले पाषाणों का आकार कपिशीर्ष के समान (बन्दर के कपाल के बराबर) टुकड़ों में होना चाहिए और इनकी चुनाई करते समय जिस मिट्टी में इनकी चुनाई की जाए, उसका स्तर भी लगभग आठ अङ्गुल का हो और उस मिट्टी में ये पाषाण पूरी तरह से गच्च करके चुने जाएँ ताकि कहीं से भी खाली स्थान नहीं रहे और वे पाषाण हिले-डुले नहीं।.

जलेन प्लावितास्ताश्च मुहूरस्या हनेत्ततः।
पालाशस्वस्थसम्भूतैर्हनेत्ताः सुदृढं ततः॥ 22॥

फिर, चुनी गई दीवार पर किनारी बनाकर उस पर जल भर दें ताकि दीवार पूरी तरह से तर रहे और बाद में उसे ठोस रूप देने के लिए मोहरी, घूँसे से कूटते जाए और इसके उपरान्त उस दीवार को पलाश (खाखरे) की स्वस्थ, हरी-भरी शाखाओं कामड़ियों से तड़ा-तड़ पीट-पीटकर सुदृढ़ बनाएँ।

पादोनं पूरयेत्प्रान्तं तत्घनं च प्रादायिकम् ?।
ह्रस्वं ह्रस्वं तु कर्तव्यं प्रासादस्य तलं तथा॥ 23॥

प्रासाद के नींव के प्रान्त भाग को एक चतुर्थांश पूरा हो जाने पर उसे घन के द्वारा धीरे-धीरे कूटते जाना चाहिए जिससे प्रासाद का तल भाग पक्का, दृढ़ हो जाए।

इत्यमनन्तर प्रासादस्य कूर्मलक्षणं —

एक हस्ते तु प्रासादे कूर्मः स्याच्चतुरङ्गुलः।
अर्धाङ्गुला भवेद्वृद्धिः प्रतिहस्तं दशावधि॥ 24॥

(अब प्रासाद की नींव रचना के समय रखे जाने वाले कूर्म के बारे में पूरी जानकारी दी जा रही है) इस नियम को सदा ही ध्यान में रखें कि यदि प्रासाद की ऊँचाई 1 हाथ की अर्थात् एक गज (चौबीस अङ्गुल) हो, तो उसके प्रमाणानुसार कूर्म का आकार 4 अङ्गुल का होना चाहिए। इसके उपरान्त ज्यों-ज्यों प्रासाद की ऊँचाई की वृद्धि होती जाए, तो दश हाथ (दस गज) की वृद्धि तक प्रति हाथ (प्रति गज) के प्रमाण में कूर्म का प्रमाण भी आधा अङ्गुल बढ़ाते जाएँ। इस तरह एक हाथ से दस हाथ तक बढ़ते कूर्म का प्रमाण 4 अङ्गुल के बाद और साढ़े चार अङ्गुल बढ़ जाएगा अर्थात् दस हाथ के प्रासाद का कूर्म साढ़े आठ अङ्गुल का हो जाएगा।

पादवृद्धिः पुनः कुर्याद्विंशतिहस्ततः करे।
ऊर्ध्वं वै त्रिंशद्धस्तान्तं वसुहस्तैकमङ्गुलम्॥ 25॥

इसके बाद, प्रासाद की ऊँचाई 11 से 20 हाथ (गज) तक बढ़ती जाए तो कूर्म का प्रमाण प्रति गज चतुर्थांश अङ्गुल की वृद्धि पाता जाए अर्थात् अगले दस हाथ, गज की ऊँचाई प्रासाद की बढ़ने पर कूर्म के प्रमाण में ढाई अङ्गुल और जुड़ जाएँगे और कूर्म का प्रमाण साढ़े आठ से बढ़कर 11 अङ्गुल हो जाएगा और 20 हाथ (गज) से 30 हाथ (गज) तक प्रासाद के बढ़ने तक हर आठवें गज पर एक अङ्गुल प्रमाण कूर्म में वृद्धि होगी।

ततः परं शतार्धान्तं सूर्यहस्तैकमङ्गुलम्।
अनेन क्रमयोगेन मन्वङ्गुलं$_{14}$ शतार्धके॥ 26॥

इससे भी ऊपर, यदि प्रासाद 31 हाथ से 50 हाथ (गज) की ऊँचाई तक बढ़े तो कूर्म का प्रमाण प्रति 12 हाथ (गज) पर मात्र एक अङ्गुल प्रमाण ही बढ़ेगा। एक तरह से इस क्रम योग से 50 हाथ तक के प्रासाद के लिए कूर्म का प्रमाण 14 अङ्गुल का होगा।

कनिष्ठादित्रिविधकूर्मप्रमाणं —

कनिष्ठं पादहीनं च ज्येष्ठं पादाधिकं तथा।
साधारणमिदं मानं त्रिविधं कूर्ममानतः॥ 27॥

इस तरह कूर्म के मान-प्रमाण को देखें तो 14 अङ्गुल में चतुर्थांश अङ्गुल की कमी वाला कूर्म कनिष्ठ माना जाएगा, 14 अङ्गुल से एक चतुर्थांश अङ्गुल अधिक वाला कूर्म ज्येष्ठ माना जाएगा और 14 अङ्गुलमान का कूर्म प्रमाण साधारण माना जाएगा। इस तरह कूर्म का यह तीन तरह का मान प्रमाण बताया गया है।

धात्वानुसारेणकूर्मफलं —

हैमो रौप्यश्च कर्त्तव्यः सर्वपापप्रणाशनः।
इत्थं कूर्मं यः करोति सर्वयज्ञफलं भजेत्॥ 28॥

अब विविध धातुओं से बनने वाले कूर्मों के फल बताते है। सोने और चाँदी से बने हुए कूर्म सभी प्रकार के कोपों का शमन करते हैं। जो व्यक्ति ऐसे सोने-चाँदी के कूर्म बनवाते हैं, उनको सभी प्रकार के यज्ञों का फल मिल जाता है।

स्नानं पञ्चामृतैः कार्यं कूर्मस्य च यथाविधि।
अर्चयित्वा प्रयत्नेन धूपयित्वा सुगन्धिना॥ 29॥

तिलैर्यवैस्तथा होमं कुर्यात् पूर्णाहुतिं तथा।
निवेशयेदिमं कूर्मं वेद-वादित्र-मङ्गलैः॥ 30॥

ऐसे बने हुए कूर्म को यथाविधि पञ्चामृतादि से स्नान कराएँ और प्रयत्नपूर्वक अर्चना करके सुगन्धित द्रव्यों से धूप दें। फिर, तिलों से, यवों से होम करके बाजे-गाजे के साथ वेदपाठ (स्वस्तिवाचन[1]), मङ्गलगान करते हुए पूर्णाहुति देने के साथ ही कूर्म को भी वहाँ निवेश करवाना चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्त श्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
कूर्मप्रमाणपदप्रतिष्ठाधिकारो नाम द्विपञ्चाशं सूत्रम्॥ 52॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में कूर्मप्रमाण पद प्रतिष्ठा अधिकार नामक बावनवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 52॥

देवासुरसङ्ग्रामादिवास्तूद्भवो नाम त्रिपञ्चाशं सूत्रम्॥ 53॥

अथ पुराख्यानं कथ्यते —

गन्धमादनपृष्ठेऽथ शैलराजमहोत्सवे।
सुरविद्याधरै रम्भे ऋषिसङ्घसमाकुले॥ 1॥
सिद्धचारणसङ्गीते ह्यप्सरोगणसेविते।
दिग्विदिग्वासिभीरम्ये सरिताद्वयसङ्गमे॥ 2॥

पूर्वकाल में गन्धमादन पर्वत पर देवताओं, विद्याधरों तथा ऋषि सङ्घों की भीड़-भाड़ में आयोजित होने वाले सुन्दर 'शैलराज महोत्सव' में सिद्ध चारणों के सङ्गीत और अप्सराओं के नृत्य-गान से सेवित दिग्दिगन्त के निवासी वहाँ प्रवहमान

---

1. मयादि शास्त्रों में भी भूपरिग्रहावसर पर वेदपाठ या स्वस्तिवाचन करते हुए मङ्गल स्वरोच्चार करने पर जोर दिया है। भूमिपूजन के लिए शास्त्रों में निम्न मन्त्र आता है— समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पुण्यकर्म समारभे॥ स्वस्तिवाचन वैदिक परम्परा है। अनेकत्र स्वस्त्ययन का निर्देश मिलता है। यह पाठ इस प्रकार किया जाना चाहिए— 'ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह:॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्ति सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥' सुशान्तिर्भवतु॥ (यजु. वाजसनेयी. 25,6-12)

सुन्दर, दोनों सरिताओं के सङ्गम स्थान में एकत्र हुए थे।

तत्रस्थं च सुखासीनं विश्वकर्ममहौजसम्।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम्॥ 3॥
शिरसा प्रणिपत्याथ जानुभ्यां धरणीगतः।
दण्डवच्चाग्रतो भूत्वा पप्रच्छ त्वपराजितः॥ 4॥

उसी काल में वहाँ पर वेद-वेदाङ्ग के तत्त्व को जानने वाले और सभी शास्त्रों के विशारद महान् तेजस्वी भगवान् विश्वकर्मा सुख से विराजमान थे। उनको अपराजित ने दण्डवत प्रणाम किया, धरती पर अपने घुटने टेककर प्रणिपत्य होकर, सिर झुकाकर प्रणिपात् होकर प्रश्न किया।

अपराजित उवाच —

कथं वास्तु समुत्पन्नं निर्मितं वा कुतः कदा।
वास्तोरुत्पत्तिस्तात देवादेश्च निघण्टुकम्॥ 5॥
एकपादादिकं वास्तु यावत्पदसहस्रगम्।
मर्मोपमर्मवंशांश्च रेखासन्धिसुरादिकम्॥ 6॥

अपराजित बोले— हे तात! यह वास्तु कैसे समुत्पन्न हुआ, कब और कहाँ निर्मित हुआ, वास्तु की उत्पति, उसके सम्बन्धित निघण्टु (कोश) आदि के बारे में हे देव! आदि से बताएँ। एकपद से आरम्भ होकर जब तक एकसहस्र पद तक जाएँ उतने वास्तु के पद, मर्म, वंश, रेखा, सन्धि और सुरादिकों के विषय में भी कहें।

बलिकर्मविधिं चैव वास्तुपादनिवासिनाम्।
एतत्सर्वं प्रयत्नेन कथयस्व जगत्पते॥ 7॥

हे जगत्पते! इसी प्रकार बलिकर्म विधि, वास्तु पदानुसार विन्यसित होने वाले सभी दैवतगणों के बारे में भी प्रयत्नपूर्वक मुझ पर कृपा करके कहिए।

देवासुरमहाघोरसङ्ग्रामवर्णनं विश्वकर्मोवाच —

शृणु वत्स महाप्राज्ञ यत्त्वया परिपृच्छितम्।
कथयामि न सन्देहो वास्तोरुत्पत्तिलक्षणम्॥ 8॥

विश्वकर्मा बोले कि हे वत्स! महाप्राज्ञ जो कुछ तुमने पूछा है उसे कहता हूँ जिसे सुनो जिससे वास्तु की उत्पति के लक्षणों के बारे में कोई सन्देह न रहे।

पूर्वं देवासुरे युद्धे महाघोरे सुदारुणे।
सङ्कटे नरसङ्कीर्णे श्रोणीगात्रैः परस्परम्॥ 9॥

पूर्वकाल की बात है। महाघोर व सुदारुण रूप देव और असुरों में युद्ध छिड़ा। वहाँ मनुष्यों के बड़े-बड़े सङ्घट्टों की भीड़-भाड़ हुई जिसमें सभी परस्पर युद्ध में रत होने से अपने शरीरों को रक्त से लथपथ किए हुए थे।

महारौद्रैः कटाक्षैश्च शस्त्रघातैः परस्परम्।
महाबलोत्कटा वीराः सङ्ग्रामे हेतिकाङ्क्षिणः ॥ 10 ॥

वे महान् रौद्र रूप में, कटाक्षपूर्वक एक दूसरे पर बारम्बार शस्त्राघात कर रहे थे। वे महान् उत्कट वीर थे और संग्राम में एक दूसरे को जीतने की आकांक्षा लिए हुए थे।

निर्जिताश्च ततो देवा दैत्येन्द्राः प्रबलाः स्थिताः।
तथा किलकिलायन्ति पूर्वदेवात्मसम्भवाः ॥ 11 ॥

उस युद्ध में दैत्येन्द्रगण प्रबल पड़ते थे और देवतागण हार गये थे। पूर्वदेवा अर्थात् दैत्यगण अपनी जीत की खुशी में किल-किली मारते हुए उछल रहे थे।

भूमिकम्पं प्रकुर्वन्ति ह्यचाल्याः पर्वता इव।
अनन्तरं सुरा इन्द्रो मन्त्रयित्वा परस्परम् ॥ 12 ॥

इससे इतना भूमिकम्प हुआ कि मानो पर्वत ही चलायमान हो गए हैं। इसके बाद, देवराज इन्द्र ने देवताओं को आमन्त्रित किया और परस्पर विचार-विनिमय किया।

ततः स्मृत्वात्मशक्तीश्च ज्ञानदेहसमुद्भवाः।
त्रयस्त्रिंशत्कोटयश्च सुरास्ते च महोत्कटाः ॥ 13 ॥

इन्द्र ने यह कहकर उन सभी देवताओं में बड़े उत्साह से उनमें अपनी ज्ञान देह से समुद्भव होने वाली आत्मशक्ति की स्मृति जगाई कि 'हे देवगणो! यह न भूलो कि तुम तैंतीस कोटि संख्या के महोत्कट योद्धा हो जिस पर सुरों को गर्व है।

पुनरायेज्यसङ्ग्रामं दैत्येन्द्रैश्च परस्परम्।
सकोपाश्चैव सङ्ग्रामे सुरासुरमहोत्कटाः ॥ 14 ॥

इसलिए निराश मत हो वो और पुनः संग्राम का आयोजन करें।' और, दैत्येन्द्रों से परस्पर सकोप संग्राम करके सभी सुर-असुर इस महोत्कट युद्ध में कूद पड़े।

निर्जिता असुरा युद्धे देवाश्च प्रबलाः स्थिताः।
तदाव्याप धरास्वेवं सुरराज्यं महोत्सवम् ॥ 15 ॥

इस तरह उत्साहवर्धन से देवताओं की स्थिति प्रबलतर हो गई और असुरगण उस युद्ध में हार गए। तभी से इस धरा पर यह 'सुरराज्य महोत्सव' गन्धमादन पर्वत पर मनाया जाता रहा है।

शैलेन्द्रात् दैत्येन्द्रागमनं —

अनन्तरं महाभूता दैत्याश्चैव महोत्कटाः।
(अ)वतरिताः शैलेन्द्रेषु दैत्येन्द्राश्च महोत्कटाः ॥ 16 ॥

इसके अनन्तर, महाभूता विशालकाय प्राणियों के रूप में महान्, उत्कट विकराल दैत्यगण उस पर्वतराज शैलेन्द्र से अवतरित होकर महोत्कट दैत्येन्द्र आए।

शैलरूपैश्च सम्भूय सपक्षाः क्रोधपर्वताः।
तथा पतन्त्युत्पतन्ति यत्र भूर्जनसङ्कुला ॥ 17 ॥

वह सभी पहाड़ों के रूप धारण किए हुए थे और उनके पङ्ख थे जिनसे ये पर्वत क्रोध करके उड़ते रहते और जहाँ कहीं भी भूमि पर लोगों की भीड़ या समूह होता उन पर बार-बार घड़ाघड़ गिर पड़ते।

निर्दहन्ति धराधार्य खेटग्रामपुरादिकम्।
नरोरगसुरेन्द्राश्च पर्वतैर्भस्मसात्कृताः ॥ 18 ॥

और, इस तरह भूमि का आधार ही आग से जला देते जिससे खेट, ग्राम, पुर आदि सभी आ जाते और उन स्थानों में रहने वाले नर, उरग और सुरेन्द्र आदि उन पर्वतों से चकनाचूर हो जाते और भस्मसात् हो जाते।

ततो देवादिकाः सर्वे मरुत्वत्पुरमाश्रिताः।
व्यज्ञापयन् सहस्राक्षं धराधरविनाशिनम् ॥ 19 ॥

इससे समस्त देवादिकों ने मरुतवत पुरमाश्रित होकर अर्थात् हवा की-सी शीघ्रता का आश्रय लेकर हजार आँखों वाले इन्द्रदेव को जाकर निवेदन किया कि ये धराधर अर्थात् पहाड़ विनाश करने पर उतारु हो गए हैं, उनसे हमें प्राण दिलाएँ।

क्रोधादिन्द्रेण वज्रेण स्थापिता भुवि पर्वताः।
छेदिताश्च ततः पक्षा अचला यत्र संस्थिताः ॥ 20 ॥

इन्द्र ने क्रोधावेश में आकर इन पर्वतों पर वज्र से प्रहार किया और उनके पङ्खों को काट गिराया जिससे वे इधर-उधर उड़कर उत्पात नहीं मचा सके और उन्हें जहाँ के तहाँ अचल होकर रहना पड़ा।[1]

गङ्गायमुनयोर्मध्ये प्रारब्धो यज्ञ उत्तमः।
निर्जिताश्च सुरैर्यज्ञरक्षा वज्रायुधैः कृता ॥ 21 ॥

---

1. इन्द्र द्वारा पर्वतों का संहार करने का वर्णन ऋग्वेद और श्रीमद्भागवतपुराण में आया है। देवराज इन्द्र का नाम शक्र इसलिए पड़ा।

पर्वतों के पङ्ख काटकर उन्हें अचल करने का यह यज्ञ गङ्गा-यमुना नदियों के मध्य के भूभाग में आरम्भ हुआ था[1] जिसमें वज्रायुध के प्रयोग से सुरों ने यज्ञ की रक्षा की और दैत्यों को जीता।

असुराश्च ततः सर्वे चिन्तातुरतया स्थिताः।

नैर्ऋत्ये कुण्डसम्भूतं [2]भार्गवोरुशक्त्यात्मकम्॥ 22॥

दैत्यों और असुरगण भी सभी चिंतातुर होकर नैर्ऋत्य कुण्ड से सम्भूत होने वाले उशना पुत्र भार्गव की शरण में गए।

दुर्जयं दुर्निरीक्षं च महोघोरं सुदारुणम्।

स्फुरन्तं विद्रुमाकारं लोचनैरग्निसन्निभैः॥ 23॥

उन असुरों की पुकार और दुर्जय दुर्निरीक्षा अर्थात् देवताओं को जीतना कठिन देखकर भार्गव को महाघोर क्रोधावेश हुआ। वह महादारूण, भयानक रूप में फुफकारने लगे और अपनी आँखों में क्रोधाग्नि से मानो लाल चिनगारियाँ-सी निकालने में लगे।

हुताशनगर्भसम्भूतं प्रलयान्तसमप्रभम्।

स्फुरत्स्फुलिङ्गं ज्वलन्तं दुर्निरीक्ष्यं भयप्रदम्॥ 24॥

उस समय उनका यह भयप्रद रूप ऐसा लग रहा था मानो अग्नि के गर्भ से ही प्रलयाग्नि के समान प्रभावाली जलती मशाल से उठती हुई स्फुलिंगों, चिनगारियाँ को देखना भयभीत होने का कारण बनता है।

त्रिनेत्रं विकृतं रौद्रं जटिलं वाललोहितम्।

दंष्ट्राकरालमत्युग्रं मुखे दावाग्निसन्निभम्॥ 25॥

उस समय भार्गव का विकराल रूप, त्रिनेत्र, संहारक शिव के त्रिनेत्रों के समान रौद्र और जटिल तेज लाल वर्ण वाला होकर अति उग्र कराल दाँतों-दाढ़ों वाला था और मुख से दावाग्नि की ज्वालाएँ निकलती थीं।

कृतान्ततुल्यं दशनैश्चण्डोष्ठकपुटान्तरे।

भूतलान्ते तलं तस्य आलोके बाहुपञ्जरम्॥ 26॥

उनके दाँत यमराज की दाढ़ों की भाँति भयानक थे जो होठों की विशालता में और भी भयानक लग रहे थे। उनकी काया इतनी विशाल हो गई थी कि उनके पाँव

---

1. गङ्गा-यमुना के मध्य में यज्ञ होने की अवधारणा शतपथ ब्राह्मण सम्मत है। कभी इस क्षेत्र में बहुत-से पेड़ थे जिनका संहारकर भूमि को यज्ञकर्म योग्य बनाया गया था।
2. 'भार्गवा रूशनात्मकं' पाठ स्यात्। 'भागीवेषु शक्त्यात्मकम्' मिति 'न' पाठः।

के तलवे भूमि के पाताल तक और उनके हाथों और शरीर का पञ्जर आसमान को स्पर्श करता-सा लग रहा था, जो तीनों लोकों तक फैल गया।

स्कन्धग्रीवाकरा व्योम्नि ब्रह्माण्डे च गतं शिरः।
तेजोरूपं स्फुरन्तं च प्रलये भैरवं यथा॥ 27॥

उनका कन्धा, ग्रीवा और हाथ आसमान को छू रहे थे और उनका सिर ब्रह्माण्ड की ऊँचाई तक जा लगा था और उनका तेजोमय रूप ऐसा विकराल चमक रहा था जैसे प्रलयकाल में भैरव का विकराल तेजोमय रूप हो।

निनदन्तं महाभीमं मन्ये कल्पान्तगर्जितम्।
त्रस्तास्तु देवताः सर्वा रूपं दृष्ट्वा सुदारुणम्॥ 28॥

उनकी आवाज इतनी घोर निनादयुक्त थी मानो महाभीम कल्पान्त की गर्जना हो रही हो। इस तरह का बहुत दारूण रूप देखकर भार्गव से सभी देवता त्रस्त या भयभीत हो गए थे।

ध्यानयुक्ताश्च चलिताः भयभीता महोरगाः।
दिक्पाला लोकपालाश्च प्रणश्यन्ति महासुराः॥ 29॥

जो सदा ध्यान युक्त रहते थे, वे भी इस भय से विचलित हो गए थे और जो महान् उरग थे वे भी भयभीत थे। दिक्पालगण, लोकपालगण आदि समस्त महान् सुर देवता भय से मरणासन्न थे।

ब्रह्मराक्षसवैताला आश्रयन्ति महेश्वरम्।
आदित्याद्या ग्रहाः सर्वे आश्रयन्ति जनार्दनम्॥ 30॥

इस बीच, ब्रह्मराक्षस और वैतालादि भय के मारे भगवान शिव के आश्रय में जा बैठे और आदित्यादि सभी ग्रह भी भयातुर होकर जर्नादन भगवान् विष्णु की शरण में चले गए।

देवराजः सुरैर्युक्तः समुपास्ते जगत्पतिम्।
दुर्निरीक्ष्यं दुराराध्यं कालानलसमप्रभम्॥ 31॥
तं दृष्ट्वाद्भुतरूपं च विरञ्चिरपि विस्मितः।

इसी प्रकार देवराज इन्द्र भी सभी देवताओं के साथ जगत्पिता ब्रह्मा की पर्युपासना में लग गए। ऐसे दुनिरीक्ष्य भयानक और दुराराध्य महाकालाग्नि के समान, अद्भुत रूप को देखकर विरञ्चि भगवान् ब्रह्मा भी विस्मित हो गए थे।

दुर्जयं दुर्निरीक्ष्यं च महोघोरं सुदारुणम्॥ 32॥
स्फुरन्तं विद्युदाकारं लौचनैरपि सन्निभः।

भूः क्रान्ता पादतलतो ब्रह्मलोकं गतं शिरः ॥ 33 ॥

वे सोचने लगे कि यह दुर्जय और दुर्निरीक्ष्य, महाघोर दारुण भयानक रूप, जो बिजली के समान चमकते व कड़कते नेत्रों वाला है और इसका पदतल भूमि से भी क्रान्त, अतिक्रमण कर रहा है और सिर ब्रह्मलोक तक जा पहुँचा है।

तस्य रूपभयाद्भीताः त्रिदशासुरराक्षसाः।
नष्टाश्च ऋत्विजो ब्रह्मा शक्राद्या द्वारपालकाः ॥ 34 ॥

उसके ऐसे रूप से सभी देवता, राक्षस और असुरगण भी भयभीत है और सभी ऋत्विजगण, ब्रह्मा, इन्द्रादि सभी द्वारपाल नष्ट प्रायः हो गए।

तत्र देवा द्विजा राजा आश्रयन्ति महेश्वरम्।
'रक्ष रक्ष महादेव-भयभीतान् जगत्प्रभो ॥ 35 ॥

यह सब विचित्रता देखकर सभी द्विज और राजा भी भगवान् महेश्वर के आश्रय में जा पहुँचे और पुकार करने लगे कि हे महादेव! जगत्प्रभो!! हम भयभीत लोगों की रक्षा कीजिए।

महद्भूतं मर्त्यलोके यज्ञे च रिपुक्रोधजम्।
सुरराजद्विजानां च भूमौ रक्षाकरो भवान् ॥ 36 ॥

(सभी ने कहा कि) हे प्रभु! मृत्युलोक में यज्ञों में महान् क्रोध से रिपु द्वारा महान् सङ्कट उत्पन्न कर दिया गया है। अस्तु, सुरराज इन्द्र और ब्राह्मणों की तथा इस भूमि की आप रक्षा कीजिए।

प्रत्यक्षं भव ईशान सुरार्थे द्विजभूपते।
महद्भूतं महादेवं दैत्यानां दहनं परम् ॥ 37 ॥

हे ईशान! महादेव शिव!! कृपा करके आप देवताओं, ब्राह्मणों और भूपति राजाओं के लिए प्रत्यक्ष प्रकट होकर हे महद्भूत महादेव! आप दैत्यों का पूर्ण दहन कर दीजिएगा।

ललाटनेत्रसङ्क्रुद्धं कालरूपमिवापरम्।
वलोकितो भवो भद्रे असाध्ये वृद्धताङ्गतः ॥ 38 ॥

आपके ललाट के तीसरे नेत्र के संक्रुद्ध होने पर तो महाकालरूप से भी परम भयानक दृष्टि के सामने असाध्य भी भद्र होकर वृद्धि को प्राप्त करने लगते हैं।

मूलकल्पोद्भवं यत्र निग्राह्यमस्तकोभवम्।'
वलोकितं तदा चक्रं त्रिषु लोकेषु मध्यतः।
लीयते शिवदेहे तु यत्र स्यात्सुरसम्भवः ॥ 39 ॥

मूलकल्प से उत्पन्न इस आपत्ति को निग्रह करके उसको अस्तगत कर दीजिए। तब तीनों लोकों के मध्य में इस चक्र को देखकर भगवान् शिव ने अपनी शिवदेह में लीनकर लिया और तब से देवताओं का जीवन पुनः सम्भव हो सका।[1]

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां देवासुरसंग्रामादिवास्तूद्भवाधिकारो नाम त्रिपञ्चाशं सूत्रम् ॥ 53 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में देवासुरसंग्रामादि वास्तु उद्भव अधिकार नामक तिरपनवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 53 ॥

वास्तूत्पत्तिर्नाम चतुःपञ्चाशत्तमं सूत्रम् ॥ 54 ॥

रुद्र उवाच —

भो भार्गव महावीर कस्मात्स्थानादुपागतः ।
कृतं त्वया त्वद्भुतं हि धराधर्मविनाशनम् ॥ 1 ॥

(पूर्व सूत्रानुसार) रुद्र बोले कि हे भार्गव महावीर! आप कहाँ से आए हैं और आपके द्वारा किया गया यह धराधर्म का विनाश कार्य भी बहुत ही अद्भुत है।

---

1. एष वास्तुपुरुषकथावस्तुसङ्क्षेपः— पुरा किल देवासुरे युद्धे विष्णुसाह्येन पराजितानां स्वशिष्याणां विजयाय सलक्षणम् छागमभिचारविधानेन जुह्वतः शुक्रस्य स्वेदाम्भःकणिकायामग्नौ पतितायां तत एको महासुरोऽतिभीषणाकारः समुदभूत्। छागाननत्वाच्छागासुर इति प्रख्यातः स चासुरसम्राट स्वपितुः शुक्रस्याज्ञया देवान् भुजबलेन विद्राव्य तदाश्रयाणां लोकानामपि महत् कदनमुपजनयन्नवर्तत। अथ शुक्रतपःप्रभावात् क्षणे-क्षणे वर्धिष्णुनामुना वीर्योत्सिक्तेन महासुरेण बहु कदर्थिता देवाः कालपर्ययात् किञ्चिदपि प्रतिकर्तुमपारयन्तो दुष्टदमनदीक्षितं भगवन्तं त्रिपुरान्तकं शरणमापुः। ततः स्वभक्तेभ्यो द्रुह्यतेऽस्मै क्रूराय क्रुध्यन् कृपानिधिर्महादेवोऽस्य प्रशमनाय स्वतृतीयनेत्रात् सर्वसंहारक्षमं प्रलयानलमुत्थाप्य तमभि प्राहिणोत्। ज्वालामालया व्याप्तदिगन्तराले तस्मिंश्च कालानले त्रिलोकीं भ्रमन्तमपि तमभिद्रुत्य दग्धुमुपस्थिते स छागासुरो भीतभीतः प्रशान्तमनाः शरणकामनया तनीयसीं तनुमाश्रित्य महेश्वरस्योदरं प्रविवेश। तेन तुष्टो भगवानप्यस्मै अभयं प्रदाय शुक्ररूपेण स्वोदरात् तं निर्गन्तुमाज्ञापयत्। तथा निर्गतत्वात् तदाप्रभृति शुक्र इति प्रथितः स भगवन्तं दण्डवत् प्रणत एव सन् क्षोणीतले वस्तुं, स्वशरीरे ब्रह्मादिका नवस्थापयितुं च वरमयाचत। तदनुसारेण भगवानपि— 'वस्तुं वरं त्वया। वृतोऽहं यत् ततो नाम्ना वास्तुकोऽसि तथास्तु ते। वसन्तु च त्वयि प्रीताः शतानन्दादिदेवताः॥ अद्यप्रभृति भूलोके दैवं वान्यच्च मानुषम्। कुर्वते वास्तु वासार्थं प्रथमं त्वां यजन्तु ते॥ पुष्पैश्च धूमदीपैश्च बलिभिश्च विलक्षणैः। त्वं च त्वद्देहसंस्थाश्च पूज्याः स्युर्देवताः क्रमात्॥ एवं मयैव विहितं कुर्वतां वास्तुपूजनम्। तदायतनवेश्मादौ वसतां सन्तु सम्पदः॥ अकृत्वा वास्तुयजनं प्रासादभवनादिकम्। कृतं तदासुरं सर्वं भूयात् तत्र च यत् कृतम्॥' (ईशानशिवगुरुदेवपद्धति क्रियापाद, उत्तरार्ध 26, 117-123) इति तस्मै वरं दत्तवान्। तच्छरीरे वस्तुं देवान् न्ययोजयच्च। तेन स महेशं प्रणत एवाद्यापि क्षोणीतले शेत इति। एषा च कथा शैवसम्प्रदायप्रवृत्तानां गुरुदेवादीनां मतमनुसृत्य विवृता।

सामर्थ्यतो विसृजता पुरुषं यज्ञध्वंसकम्।
इन्द्राद्या असुरपार्श्वे निग्राह्य इति निश्चयात्॥ 2॥

इस यज्ञध्वंक्ष कार्य को पुनः सुधारने में समर्थ जो इन्द्रादि देव और असुरगण हैं, वे भी तुम्हारे पास में निश्चय ही निग्रहावस्था या कैदी तुल्य हो चुके हैं।

शुक्र उवाच —

पुरा चाऽऽराधितो दिव्यं वर्षसहस्त्रकम्।
तदाज्ञया मया लभ्या विद्यामरत्वदायिनी॥ 3॥

इन्द्र ने कहा कि पूर्वकाल में जिस देवता की मैंने सहस्त्र दिव्य वर्ष तक आराधना की थी, उसी की आज्ञा से मुझे अमरत्वदायिनी विद्या का लाभ हुआ है।[1]

रुद्र उवाच —

दिव्यं वर्षसहस्त्रं च तपः कृत्वा सुदारुणम्।
तोषितोऽहं तथा विष्णुः शुक्रेण मुनिना त्वया॥ 4॥

रुद्र ने कहा कि हजारों दिव्य वर्षों तक का जो इतना कठोर तप है, शुक्र मुनि आपके द्वारा किया गया है। उससे मैं और भगवान विष्णु भी बहुत ही सन्तुष्ट और प्रसन्न हुए हैं।

त्वया लिङ्गोद्भवे[2] व्योम्नि तुष्टो देवो जगत्पतिः।
ध्यानं मन्त्रजपं कृत्वा प्रीणय त्वं परेश्वरम्॥ 5॥

तुम्हारे द्वारा व्योम तक उद्भव को प्राप्त लिङ्ग स्वरूप जगत्पति देव तुष्ट हुए हैं और ध्यान तथा मन्त्र जाप करके तुमने परमेश्वर की प्रसन्नता प्राप्त की है।

प्रासादान्मान्त्रिकी विद्या सप्ताक्षर्यथ संहिता।
तुष्टेन कथिता विद्या सर्वकर्मानुसारिणी॥ 6॥

और, उस प्रसन्नता के फलस्वरूप ही तुम्हें यह 'प्रासादमान्त्रिकी विद्या' और 'सप्ताक्षर्य संहिता' मिली है। यह 'सर्वकर्मानुसारिणी विद्या' भी उनकी प्रसन्नता से, तुष्टि मिलने के कारण ही तुम्हें कही गई है।

साधयामि यत्कृते च सर्वदेवभयङ्करम्।
मन्त्रैः स्तुत्या च युद्धैश्च दायं दास्यन्ति देवताः॥ 7॥

---

1. इत्यमनन्तर 'सदा च भवतुष्टित वेष्ट्य तदधासुरासुरैश्च। आज्ञालोपं भव प्रभो तवशास्त्रमयोच्छेद। उदेकस्या प्रीतप्रियते अग्रिमध्ये समुत्पन्नां आबाधादेवदानवैः॥' इत्यादयो...'न' पाठः।
2. 'जरा? लिङ्गोद्भवे' इति प्रकाशित पाठः। न पाठे नोपलभ्यते।

परन्तु, हे सर्वभयङ्कर देव! मैं तुम्हारे द्वारा किए गए विनाश को सुधारने हेतु मन्त्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति की साधना करके अथवा तुमसे साक्षात् युद्ध करके देवताओं का दायभाग उन्हें वापस दिलाऊँगा।

अहो ये मुनः सर्वे रुद्रेशं पुरुषोत्तमम्।
उपाश्रयन्ति देवेशं भयं जयन्ति निर्जराः ॥ 8 ॥

देखो, ये सभी मुनिगण भी भय से परास्त होकर पुरुषोत्तम भगवान रुद्र देवेश के उपाश्रय में आ गए हैं।

पद्मासन शृणु त्वं च विष्णुर्वचनमब्रवीत्।
न त्वया वध्यते साधो अस्माभिर्न च दैवतैः ॥ 9 ॥

तब भगवान शिव की युद्ध से या आराधना से शुक्राचार्य को जीतने की यह प्रतिज्ञा सुनकर भगवान विष्णु ने इन वचनों को कहा— 'हे पद्मासनस्थ, आप यह ध्यान देकर सुने कि न तो यह साधु शुक्राचार्य तुमसे वध को प्राप्त हो सकते हैं न मुझसे और न ही अन्य देवताओं से इनका वध हो सकता है।

मन्त्रमूर्तिरियं वास्तू रुद्रदेहसमुद्भवः।
इदं तु वास्तुरूपं च दुर्धरं च पुनः शिवात्॥ 10 ॥

'क्योंकि, ये स्वयं मन्त्रमूर्ति रूप में वास्तु है, जो रुद्र भगवान् शिव की देह से समुद्भूत हुए हैं। इसलिए अब तो ये वास्तु रूप होकर स्वयं भगवान् शिव से भी पुनः अधिक दुर्धर, असाध्य और अजेय हो गए हैं। अतः शिव भी इन्हें नहीं जीत सकते।'

इदं च वचन श्रुत्वा पद्मभूः पुरुषोत्तमात्।
शरणं वद देवानां विष्णुरद्भुतविक्रमः ॥ 11 ॥

भगवान् विष्णु के ये वचन सुनकर पद्मभूः ब्रह्मा ने देवताओं को कहा कि अब तो तुम सब अद्भुत विक्रमी भगवान विष्णु की ही शरण में जाओ।

रुद्रलोके ततो गत्वा ध्यात्वा देवं महेश्वरम्।
अद्भूतं भूतमभ्यर्च्य भूतं दृष्ट्वा च भूतले॥ 12 ॥

तब वे सभी देवगण रुद्रलोक में पहुँचकर भगवान् महेश्वर का ध्यान करने लगे और भूतल पर भूतों को देखकर सब से अद्भुत भूत भगवान् रुद्र की अभ्यर्चना करने लगे।

यदा सत्त्वं भवेद् ज्ञानं [1]भवेत्तुष्टिभवोऽवृथा।
तदा सुरासुरैर्वध्य आज्ञालोपो भवेत्प्रभोः ॥ 13 ॥

---

1. 'भवेत्तुष्टिर्भवो ? वृथा' प्रकाशित पाठः।

वे कहने लगे कि हे प्रभु! यदि आप हम पर तुष्ट हो गए हो तो कृपा करके आप सत्य रूप में प्रकट होकर हमें ऐसा ज्ञान दें, जो अवृथा हो, अचूक हो। तभी सुर और असुरों के द्वारा वध्य होने की आज्ञा का लोप हो सकता है।

शास्त्रच्छेदो न च भवेत् म्रियते न तथोदके।
अग्निदेवात्समुत्पन्नो ह्यवन्ध्यो देवदानवैः ॥ 14 ॥

तब न तो कोई शस्त्र से छेदन या मारण होगा न ही जल में डुबोकर मारना सम्भव होगा क्योंकि अग्निदेव से समुत्पन्न होने से देव-दानव सभी से अवध्य ही है।

ईश्वर उवाच —

शृणु भार्गव दैत्येन्द्र विद्याप्रस्तारनिर्णयम्।
त्रिषु स्थानेषु प्रस्तार्य्य गुरुस्थाने नियोजितः ॥ 15 ॥

ईश्वर ने कहा कि हे भार्गव दैत्येन्द्र सुनो! हमारा विद्या प्रस्तार निर्णय यह है कि तीन स्थानों में प्रस्तार करके हम तुम्हें गुरु स्थान में नियोजित करते हैं।

अविद्यागुरुलब्धाङ्गदोषपापानुसङ्ग्रहे।
ज्ञानोन्मीलनं तद्भक्त्वा विद्यासिद्धिश्च वृद्धतः ॥ 16 ॥

अविद्यागुरु, लोभी-अङ्गदोषी और पाप की कमाई से संग्रह करने वाले इन तीन प्रकार के गुरुओं से ज्ञान उन्मीलन होगा तब तुम्हारी भक्ति से विद्यासिद्धि भी बढ़ेगी।

भार्गव उवाच —

इयं विद्या च देवेश सर्वपुण्यानुचेतसा।
पुण्ये न सूक्ष्मतां याति प्रकाशात् पापविग्रहौ ॥ 17 ॥

भार्गव बोले कि हे देवेश! इस विद्या से सभी लोगों में पुण्य की भावना का उदय होता है और (पुण्येन) पुण्य से उनके विचारों में सूक्ष्मता आती है जिसके प्रकाश से पाप, विग्रह आदि स्पष्ट होते हैं।

पुण्यस्थानानि सर्वाणि यानि कुर्वन्ति भूतले।
पृथगेकैकसंस्थाने पूजा चाऽस्य प्रदीयते ॥ 18 ॥

अस्तु, भूतल पर जितने भी पुण्य स्थान किए जाए, उनमें एक स्थान में इस विद्या को भी रखना व पूजा जाना चाहिए।

प्रतिष्ठा सप्तपुण्याह शान्तिकानि चतुर्दश।
समस्तपुण्यस्थानेषु पूजा चास्य प्रदीयते ॥ 19 ॥

पुण्य प्रतिष्ठावसर सात प्रकार के हैं[1] और शान्तिकर्म भी चौदह प्रकार के हैं[2] अस्तु, समस्त पुण्यस्थानों में इस विद्या की भी पूजा होनी चाहिए।

एषां वृद्धिं च सन्त्यज्य ? ततो यान्ति स सूक्ष्मतः ?।
ब्रह्माद्याश्च सुराः सर्वे निवसन्त्यस्यदेहके ॥ 20 ॥

इसकी अच्छी प्रकार पूजा करके (संपूज्य ?) वृद्धि को प्राप्त करके फिर वह सूक्ष्म दृष्टि युक्त होता है अथवा (धीमतः ?) बुद्धिमान होता है जिससे ब्रह्मा से लेकर सभी देवता उसके देह में आकर निवास कर लेते हैं।

यदा विमुक्तो देवैस्तु अस्य पूजा न दीयते।
ततः काले समुद्भूतः सुरासुरभयङ्करः ॥ 21 ॥

यदि इस विद्या को पूजा न दी जाए और व्यक्ति देवों से भी विमुक्त हो जाए तो ऐसी दशा में भयङ्कर सुर-असुरों का समुद्भव हो जाता है।

देवतागृह आद्यानां[3] शिवः साक्षाद्भृगूदितः।

---

1. प्रासादमण्डनम् में कहा गया है कि इस प्रकार देवालय के निर्माणारम्भ से लेकर निर्माणोपरान्त देवप्रतिष्ठा तक सात कर्म होते हैं जिन्हें यथा विधि, निर्देश पूरा करना चाहिए। ये कर्म हैं— 1. कूर्म स्थापना, 2. द्वार स्थापना, 3. पद्मशिला स्थापना, 4. प्रासादपुरुष की स्थापना, 5. कलश, 6. ध्वजारोहण तथा 7. देवप्रतिष्ठा। इन सभी अवसरों पर वास्तुपूजन आवश्यक है। इससे कार्य निर्विघ्न, निरापद सम्पन्न होता है। कूर्मसंस्थापने द्वारे पद्माख्यायां तु पौरुषे। घटे ध्वजे प्रतिष्ठायां एवं पुण्याहसप्तकम्॥ (प्रासाद. 1, 36 एवं 8, 37)
इसी प्रकार अपराजित. के मिश्रकप्रासादसप्तपुण्याहमाहात्म्यसूत्र में भी इस सम्बन्ध में निर्देश किया गया है— कृते कूर्मप्रतिष्ठायाः खाते पूर्णे च संस्थितौ। भूमिलोके तथा राज्यं सर्वजन्मसु शाश्वतम्॥ प्रतिष्ठायां शिलायास्तु दैवज्ञैस्सत्यमुच्यते। इच्छास्थाने स्वर्गलोके राज्यं जन्मनि जन्मनि॥ द्वारे प्रतिष्ठामाने तु स्तम्भोच्छ्रयसमन्विते। महापुरं च लभते काञ्चनं शतयोजनम्॥ पद्मशिला प्रतिष्ठायां शिवालये भूमस्तके। एकच्छत्रं महाराज्यं जनलोके च प्राप्नुयात्॥ पुरुषे स्थाप्य मानेत्वागमोक्तमन्त्रतस्तथा। तपालोके ब्रह्मलोके क्रीडति त्रिदशैः सह॥ प्रस्थाप्यमाने कलशे क्षीरार्णवसमुद्भवे। काञ्चने पुष्पविमाने सत्यलोके स गच्छति॥ कृते महाध्वजारोपे पताकाध्वजचामरैः। स गच्छेद् ज्ञानलोके तु यत्र शम्भुश्च देवता। बलीवर्दाः कर्मकरा अपराश्च शिवालये। ते यान्ति परमं लोकं यत्र देव उमापतिः॥ मृत्काष्ठलोहशैला वा ये लग्नाश्च शिवालये। दिव्यमूर्तिधराः सर्वे शिवलोक व्रजन्ति ते॥ (अपराजित. 114, 11-19)
2. शान्तिपूजादि के चौदह चरण निम्न हैं— 1. भूम्यारम्भ अथवा भूमि का चयन, 2. कूर्मन्यास, 3. शिलान्यास, 4. सूत्रपात या आरेखन, 5. खुरशिला स्थापना, 6. द्वार, 7. कुम्भ या स्तम्भ स्थापना, 8. पट्यारोहण, 9. पद्मशिला, 10. शुकनासिका, 11. प्रासादपुरुष की स्थापना, 12. घण्टिका या आमलक, 13. कलश स्थापना और 14. ध्वजारोहण, ये चौदह अवसर है, जबकि स्थापक को शान्तिकर्म का विधान अवश्य ही करना चाहिए— भूम्यारम्भं तथा कूर्मे शिलायां सूत्रपातने। खुरे द्वारोच्छ्रये स्तम्भे पट्टे पद्मशिलासु च॥ शुकनासे च पुरुषे घण्टायां कलशेस्तथा। ध्वजोच्छ्रायेण कुर्वीत शान्तिकानि चतुर्दश॥ (प्रासाद. 1, 37-38)
3. 'देतागृहवावाद्यां ?' इति प्रकाशित पाठः। 'देवतागृहवावाद्या शिवसाक्षात्भृगोदित। सांकल्पपुण्यस्थानानि पूजा चास्य निवेदितम्' इति न पाठः।

सङ्कल्पुण्यस्थानानि पूजा चास्य निवेदिता ॥ 22 ॥

देवतागृह, प्रासाद-मन्दिर और गृह आदि को स्वयं शिव ने साक्षात् देकर भृगु में वास्तुविद्या के प्रकाश से उदित किया है जिससे पुण्य स्थानों की सङ्कल्पना हुई और उनकी पूजा के साथ यह विद्या (वास्तुविद्या की पूजा) निवेदित की गई।

तदा तत्सूक्ष्मतां याति विद्यारूपं महासनम्।
सुरैराक्रम्यते स्मैवमधोवक्त्रं निपातितम् ॥ 23 ॥

(यहाँ वास्तु की उत्पति कही जा रही है) इसके बाद, सूक्ष्मता से यह विद्या विस्तृतविद्या का स्वरूप धारण कर सकी। इस विद्या पर देवताओं ने आक्रमण करके इसे औंधे मुख गिरा दिया।

संस्थाप्य मध्यपाताले सुहितैः सुरसङ्घटैः।
तद्वच्च संस्थिताः पूज्या ब्रह्माद्या देवतास्तथा ॥ 24 ॥

और, इसे मध्य पाताल में स्थापति करके देवताओं के समूह एवं संगठन का सुहित, भलाई, साधी परन्तु वहाँ संस्थित करके भी इसे ब्रह्मादि सभी देवताओं द्वारा पूज्या ही माना जाता रहा।

शिरस्तस्यैवमीशाने पादौ नैर्ऋत्यगोचरौ।
अग्निकोणे च वायव्ये प्रकोष्ठजानुसंस्थितिः ॥ 25 ॥

इस वास्तु का शिर ईशानकोण में और पाँव नैर्ऋत्य कोण में और अग्निकोण और वायव्यकोण में इसकी कमर कोहनी और जङ्घाएँ स्थित हैं।

पञ्चचत्त्वारिंशद्देवा$_{45}$ देव्यष्टकमथापि$_{8}$ च।
त्रिपञ्चाशच्च$_{53}$ त्रिदशाः पूज्यास्तत्र क्रमोदिताः ॥ 26 ॥

इसके देह में पैंतालीस देवता और आठ देवियाँ स्थित हुईं। इस प्रकार कुल तिरेपन देवताओं की क्रमोदित पूजा इसमें उदित हुई।[1]

इस श्लोक में भृगु के वास्तुशास्त्र का सङ्केत आया है। मत्स्यपुराण में भृगु के वास्तुशास्त्र का विवरण है— भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा। नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः ॥ ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च। वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती ॥ अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशका। (मत्स्य. 252, 2-4) शुक्रनीति से यह विवरण मिलता है, किन्तु वह परवर्ती ग्रन्थ है।

1. वास्तुपुरुष की उत्पति और उसके पूजा विधान की आवश्यकता पर उपरोक्त प्रकाश पड़ता है। मत्स्यपुराण में आया है कि अन्धकासुरवध के समय शिव के ललाट से गिरे स्वदेबिन्दु से विकराल मुख वाले उत्कट प्राणी की उत्पत्ति हुई। उसके क्षुधातुर होने पर शिव ने उस पर अनुग्रह किया। उक्त प्राणी भूमण्डल और आकाश को अवरुद्ध करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा, देवताओं ने उसे स्थम्भित किया और जो देवता जहाँ था, वहीं पर उस प्राणी की देह पर स्थित हो गया— स्वदेहानान्तरिक्षं च रुन्धानं

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां महेश्वरशुक्रसंवादे वास्तूत्पत्त्यधिकारो नाम चतुःपञ्चाशंतमं सूत्रम्॥ 54॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में महेश्वर-शुक्र संवाद में वास्तु उद्भव अधिकार नामक चौपनवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 54॥

वास्तूत्पत्त्यधिकारे देवतान्यासो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमं सूत्रम्॥ 55॥

विश्वकर्मोवाच —

ईशस्तु संस्थितो मूर्ध्नि पर्जन्यः कर्णयोर्दितिः।
जयादिती स्कन्धयोश्च ह्युभयोर्वामदक्षिणम्॥ 1॥

(अब वास्तुपुरुष पर देवताओं की न्यास स्थिति बताई जा रही है) विश्वकर्मा बोले कि वास्तुपुरुष के मुँह पर ईश, कानों पर दिति और पर्जन्य तथा दोनों ही वाम- दक्षिण कन्धों पर अदिति और जयादिति का निवास कहा गया है।

आपस्तथा च गलके आपवत्सो हृदि स्थितः।
मरीचिः पृथ्वीधरश्च संस्थितौ स्तनयोर्द्वयोः॥ 2॥

गले में आप और हृदय स्थान में आपवत्स तथा दोनों स्तनों पर मरीचि और पृथ्वीधर का निवास है।

नाभिमध्ये स्थितो ब्रह्मा नाभिपृष्ठानुसंस्थितौ।
सावित्री कुक्षिमध्ये तु रुद्रदासो द्वितीयके॥ 3॥

नाभि के मध्य में ब्रह्मा और नाभि के पीठ पर सावित्री तथा काँखों के मध्य रुद्र और रुद्रदास का निवास है।

इन्द्र इन्द्रजयश्चैव श्रोणीमध्ये तु संस्थितौ।
अङ्गुष्ठाग्रे च पितरौ गुल्फे दौवारिको मृगः॥ 4॥

इन्द्र और इन्द्रजय कुल्हों के मध्य में, अँगूठों के अग्रभाग में पितरगण और टखनों पर दौवारिक का निवास है।

अन्तरीक्षः कूर्परागे्र नागश्चैव द्वितीयके।
वामे जानौ स्थितो रोगो दक्षिणे चाग्निदेवता॥ 5॥

प्रपतद् भुवि॥ भीतभीतैस्ततो देवैर्ब्रह्मणा चाथ शूलिना। दानवासुररक्षोभिरवष्टब्धं समन्ततः॥ येन यत्रैव चाक्रान्तं स तत्रैवावसत् पुनः। निवासात् सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते॥ अवष्टब्धेन तेनापि विज्ञप्ताः सर्वदेवताः। प्रसीदध्वं सुराः सर्वे युष्माभिर्निश्चलीकृतः॥ (मत्स्य. 252, 12-15)

एक कोहनी पर मृग, अन्तरिक्ष और दूसरी कोहनी पर नाग, बाँयें घुटने पर रोग और दाहिने घुटने पर अग्नि देवता का निवास है।

महेन्द्रादित्यसत्यादि भृशान्ता दक्षिणे भुजे।
मुख्यभल्लाटसोमादि गिर्यन्ता वामके भुजे॥ 6॥

महेन्द्र, आदित्य, सत्य, भृशान्तगण दाहिनी भुजा पर तथा मुख्य, भल्लाट, सोम, गिर्यन्तगण (शैल) बाँयी भुजा पर वास करते हैं।

सविता याम्यतो बाहौ रुद्रश्चैव द्वितीयके।
मित्रश्च वामत ऊरौ विवस्वांश्चैव दक्षिणे॥ 7॥

सविता बायीं बाँह पर और रुद्र दूसरी दायीं बाँह पर तथा मित्र बायें उरु भाग पर और विवस्वान दायें उरु भाग पर निवास करते हैं।

सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च वरुणासुरशोषकाः।
पापयक्ष्मा षडेते वै नलके वामके स्थिताः॥ 8॥

सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शोषका और पापयक्ष्मा— ये छहों बायें नलके में स्थित कहे गए हैं।

पूषा च वितथश्चैव गृहक्षतयमो तथा।
गन्धर्वभृङ्गा देवाः षड् दक्षिणे नलके स्थिताः॥ 9॥

इसी प्रकार पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्ग देवता— ये छहों दक्षिण नलके में अवस्थित हैं।

ईशोर्ध्वे चरकीं विद्यात् पावकोर्ध्वे विदारिकाम्।
निर्ऋत्यूर्ध्वे पूतनां च रोगोर्ध्वे पापराक्षसीम्॥ 10॥

ईश के ऊपर (बाहर) चरकी और अग्नि के ऊपर विदारिका, नैर्ऋत्य के ऊपर पूतना और रोग के ऊपर पापराक्षसी का निवास है।

प्राच्यां तु पिलिपिच्छां स्याज्जृम्भा स्याद्याम्यतो दिशि।
वारुण्यां विन्यसेत्स्कन्दामर्यमा चोत्तरस्थिता॥ 11॥

पूर्व दिशा की ओर पिलिपिच्छा एवं पश्चिम दिशा में जृम्भा, वारुणी दिशा में स्कन्द तथा उत्तर दिशा में अर्यमा का निवास है।

नास्ति चासां पदविधिः पूजां गृह्णन्ति केवलम्।
निवासः सर्वदेवानां वास्तु वै स्थानतो विदुः॥ 12॥

इन सभी बाह्य देवताओं की कोई पद विधि नहीं है, ये केवल पूजा ही ग्रहण

करते हैं। इस तरह विद्वान् लोग वास्तुपुरुष में सभी देवताओं के निवास स्थान को जानते हैं और उनमें उनका निवास मानते हैं।

अङ्गं सन्धि च सूत्रादिं विद्यात्पश्चाच्च वास्तुनः।
समस्तपुण्यस्थानानि वास्तुपूजासु वै विदऊः॥ 13॥

अङ्ग, सन्धि, सूत्रादि जानने के पश्चात् ही वास्तु के समस्त पुण्यस्थानों की वास्तुपूजा विद्वान् लोगों को करनी चाहिए।

द्व्यष्टसन्धि तथाष्टाङ्गं द्व्यष्टसूत्रं तथैव च।
पञ्चक्षेत्रमिदं वास्तु स्वरूपं पुरुषाकृति॥ 14॥

सोलह सन्धि तथा आठ अङ्ग, सोलह सूत्र वाले वास्तु के पाँच क्षेत्र है और इनका स्वरूप पुरुषाकृति का है।

वास्तोत्पत्ति अङ्गमाह —

वास्तोत्पत्तिः पूर्वमङ्गं यक्षोत्पत्तिर्द्वितीयकम्।
चतुर्थकं तथा सूत्रं तृतीयं भूपरिग्रहः॥ 15॥
पञ्चमं वेश्माधिकारं षष्ठं च सुरसद्मकम्।
सप्तमं लिङ्गमूर्त्याद्यं प्रतिष्ठाविधिष्टमम्॥ 16॥

पहला अङ्ग वास्तु की उत्पत्ति है, दूसरा अङ्ग यक्ष की उत्पत्ति है, तृतीय अङ्ग भूपरिग्रह है और चौथा अङ्ग सूत्र है, पाँचवाँ अङ्ग वेश्माधिकार है, छठा अङ्ग सुरसद्म, मन्दिरादि है और सातवाँ अङ्ग लिङ्ग-मूर्त्यादि है और उनकी प्रतिष्ठा विधि ही वास्तु का आठवाँ अङ्ग है।

इमान्यष्टाङ्गसूत्राणि वास्तुवेदोदितानि च।
वास्तुवेदोद्भवं चाद्यं समस्तं सूत्रनिर्गतम्॥ 17॥

ये आठों ही अङ्गसूत्र वास्तुवेदोदित या वास्तुशास्त्र में कहे गए हैं। अस्तु, वास्तु वेद से ही आद्यादि समस्त सूत्रों का निकास हुआ है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां वास्तूत्पत्त्यङ्गे देवतान्यासाधिकारो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमं सूत्रम्॥ 55॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में वास्तु उत्पत्ति, अङ्ग अधिकार नामक पचपनवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 55॥

वास्तुदेवतानिघण्टुर्नाम षट्पञ्चाशत्तमं सूत्रम् ॥ 56 ॥

विश्वकर्मोवाच —

निघण्टुः प्रोच्यते नानावास्तुपदनिवासिनाम्।
ईशादीनां च देवानां प्रदक्षिणमनुक्रमम् ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा ने कहा कि वास्तुपदों के निवासी नाना देवताओं के वास्तुपद के निवास को ईशादि देवताओं के प्रदक्षिणा क्रम से निघण्टु को कहा जा रहा है।

ईशश्च शङ्करो देवः पर्जन्यो वृष्टिकारकः।
जयन्तः काश्यपो देवः स्वयं [1]वृष्टिकरो मुनिः ॥ 2 ॥

(निघण्टु के अनुसार) ईश शङ्कर देव है; पर्जन्य वृष्टिकारक देव है; जयन्त काश्यपदेव भी स्वयं वृष्टिकर्ता मुनि है।

महेन्द्रश्च सुराधीश आदित्यश्च प्रभाकरः।
सत्यश्चैव स्वयं धर्मो भृशो मन्मथ उच्यते ॥ 3 ॥

महेन्द्र सुराधीश इन्द्र है और आदित्य प्रभाकर (सूर्य) है; सत्य तो स्वयं धर्मराज ही है तथा भृश को मन्मथ कामदेव कहते हैं।

नमोऽन्तरीक्ष आकाशमग्निस्तेजः समुद्भवः।
पूषा मातृगणाश्चैव चाधर्मो वितथाभिधः ॥ 4 ॥

नम, अन्तरिक्ष, आकाश तथा अग्नि को तेज समुद्भव भी कहते हैं; पूषा को मातृगण और अधर्म को वितथ नाम दिया गया है।

गृहक्षतो बुधश्चैव यमः प्रेताधिपस्तथा।
गन्धर्वो नारदः प्रोक्तो भृङ्गीराण् निर्ऋतेः सुतः ॥ 5 ॥

गृहक्षत को बुध तथा यम को प्रेतों का राजा या प्रेताधिप भी कहते है; गन्धर्व को नारद व भृङ्गिराट् को निर्ऋति सुत कहा है।

मृगोऽनन्तः स्वभूर्धर्मो विश्वेदेवास्तु पितरः।
दौवारिको भवेन्नन्दी सुग्रीवो मनुदेवता ॥ 6 ॥

मृग को अनन्त; स्वभूः को धर्म; विश्वदेवों को पितर, दौवारिक को नन्दी, सुग्रीव को मनु देवता कहा है।

---

1. 'सृष्टिकरो मुनिः' स्यात्। विष्णुमार्कण्डेय प्रभृति पुराणान्तर्गते काश्यपीयसृष्टिसर्गादिवर्णनं मिलितौ। कतिपय आलोचकों ने वास्तु के अनेक देवताओं को प्रचलित देवताओं के नामों के अनुसार नहीं मानते हुए कल्पितभर कहा है, ऐसे में यह सूत्र उनके वास्तविक स्वरूप-मान्यताओं को परिभाषित करता है।

महाजवः पुष्पदन्तो वरुणः सलिलाधिपः।
असुरो राहुराख्यातः शोषः सौरिः शनिश्चरः॥ 7॥

महाजव को पुष्पदन्त; वरुण को सलिलाधिप तथा असुर को राहु कहा है और शोष को सौरि या शनिश्चर भी कहते हैं।

पापयक्ष्मा क्षयः प्रोक्तो ज्वरो रोगश्च दूषकः।
नागस्तु वासुकिः प्रोक्तो मुख्यस्त्वष्टा च विश्वकृत्॥ 8॥

पापयक्ष्मा को क्षय; ज्वर को रोगदूषक, नाग को वासुकी और मुख्य त्वष्टा को विश्वकृत कहा गया है।

भल्लाटश्चन्द्र इत्युक्तः सोमश्चैव कुबेरकः।
गिरिश्च हिमवान् शैलो ह्यदितिः श्रीः प्रकीर्तिता॥ 9॥

भल्लाट को चन्द्र कहा है और सोम को कुबेर बताया गया है; गिरि को हिमवानशैल तथा अदिति को श्री के रूप में जानना चाहिए।

वृषध्वजो दितिः शर्व आपश्चैव धरार्णवः।
आपवत्स उमापत्यं ह्यर्यमा स्यात्तु भास्करः॥ 10॥

दिति को वृषध्वज शर्व, आप को पृथ्वीपर का सागर कहा है; आपवत्स को उमापति और अर्यमा को भास्कर सूर्य कहा है।

सविता जाह्नवी गङ्गा सावित्री वेदमातृका।
विवस्वांस्तु भवेन्मृत्युरिन्द्र उक्तोऽमराधिपः॥ 11॥

सविता को जाह्नवी, गङ्गा और सावित्री को वेदमाता तथा विवस्वान को मृत्यु कहा है। इन्द्र को अमरों (देवताओं) का राजा, अमराधिप कहा है।

कालानल इन्द्रजयो मित्रश्च बलभद्रकः।
रुद्रं तथेश्वरं विद्याद्रुद्रदासस्तदात्मजः॥ 12॥

कालानल को इन्द्रजय; मित्र को बलभद्रक; रुद्र को ईश्वर जानो और रुद्रदास को रुद्र का पुत्र समझना चाहिए।

पृथ्वीधरो भवेत् विष्णुर्हेमगर्भः पितामहः।
द्वादश$_{12}$ ब्रह्मपरिधौ द्वात्रिंशद्$_{32}$ बाह्यतस्ततः॥ 13॥

पृथ्वीधर को विष्णु और हेमगर्भ को पितामह ब्रह्मा समझो। ये द्वादश तो ब्रह्मा की परिधि पर और बत्तीस परिधि के बाहर रहते हैं।

चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी।
पिलिपिच्छा तथा जृम्भा स्कन्दार्यमा दिशां प्रति॥ 14॥

चरकी, विदारी, पूतना, पापराक्षसी, पिलिपिच्छा तथा जृम्भा, स्कन्द एवं अर्यमा, दिशा के प्रति,

विदिक्षु दिक्षु संस्थाने ह्यष्टौ कुर्याच्च शासनीः।
आसां पदविधिर्नास्ति पूजां गृह्णन्ति केवलम्॥ 15॥

विदिशा और दिशा के संस्थानों में— ये आठों ही शासन करते है। इनकी कोई पद विधि (इसके अतिरिक्त) नहीं है; ये केवल पूजा ही ग्रहण करते हैं।

इत्येवं च समाख्याता देवतानामनुक्रमात्।
निघण्टुपरिभाषाश्च वास्तुवेदसमुद्भवाः॥ 16॥

इतने में ही सब देवताओं के अनुक्रम से निघण्टु परिभाषा वास्तुवेद से समुद्भव होने वाली के बारे में कह दिया गया है।[1]

एतान् वास्तुपुरुषस्य अङ्गपदेनदेवताः।
इत्यमनन्तर ब्रूमोऽथ वास्तुक्षेत्रामरायनम्॥ 17॥[2]

ये समस्त वास्तुपुरुष के अङ्गीय पदों पर स्थापित होने वाले देवताओं का रहस्य है। इसके बाद, मैं वास्तुक्षेत्र में देवतायतन के विषय में कहता हूँ।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
वास्तुदेवतानिघण्ट्वधिकारो नाम षट्पञ्चाशं सूत्रम्॥ 56॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में
वास्तुदेवता निघण्टु अधिकार नामक छप्पनवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 56॥

---

1. यह वास्तुनिघण्टु समराङ्गणसूत्रधार से प्रेरित है। इन श्लोकों में भी पर्याप्त समानता है। यथा— योऽयं वह्निरिहोक्तः स सर्वभूतहरो हरः। पर्जन्यनामा यश्चायं वृष्टिमानम्बुदाधिपः॥ जयन्तस्तु द्विनामाख्यः कश्यपो भगवानृषिः। महेन्द्रस्तु सुराधीशो दनुजानां विमर्दनः॥ आदित्यं पुनरिच्छन्ति विवस्वन्तमहस्करम्। सत्यो भूतहितो धर्मो भृशः कामोऽथ मन्मथः॥ योऽन्तरक्षिः स्मृतो देवस्तत्रभः समुदाहृतम्। मारुतो वायुरुद्दिष्टः पूषा मातृगणः स्मृतः॥ अधर्मो वितथाख्यः स्यात् कलेरप्रतिमः सुतः। गृहक्षतः पुनर्योत्र स चन्द्रतनयो बुधः॥ प्रेताधिपो मतः श्रीमान् यमो वैवस्वतश्च सः। गन्धर्वो भगवान् देवो नारदः परिकीर्तितः॥ भृङ्गराजमिहेच्छन्ति राक्षसं निर्ऋतेः सुतम्। यो मृगोऽस्मिन्ननन्तः स स्वयंभूर्धर्म इत्यपि॥ आदिः प्रजापतिः स्रष्टा मनुः सुग्रीव ईरितः। पुष्पदन्तस्तु विनतातनयः स्यान्महाजवः॥ वरुणः पाथसां नाथो लोकपालः स कीर्तितः। असुरो राहुर्केन्दुमर्दनः सिंहिकात्मजः॥ शोषस्तु भगवानेपु सूर्यपुत्रः शनैश्चरः। पापयक्ष्मा क्षयः प्रोक्ता रोगस्तु कथितो ज्वरः॥ भुजङ्गमानामधिपः श्रीमान् नागस्तु वासुकिः। त्वष्टा स्यान्मुख्यसंज्ञोऽत्र विश्वकर्माभिधश्च सः॥ चन्द्रो भल्लाट इत्युक्तः कुबेरः सोमसंज्ञितः। चरको व्यवसायाख्यः श्रीरिहादितिसंज्ञिका॥ दितिरत्रोच्यते शर्वः शूलभृद् वृषभध्वजः। हिमवानाप इत्युक्त आपवत्स उमा स्मृता॥ आदित्यस्त्वर्यमा वेदमाता सावित्र उच्यते। देवी गङ्गात्र विद्वद्भिः सवितेति प्रकीर्तिता॥ मृत्युः शरीरहर्तासौ विवस्वानिति स स्मृतः। जयाभिधस्तु वज्रीति स्यादिन्द्रो बलवान् हरिः॥ मित्रो हलधरो माली रुद्रस्तूक्तो महेश्वरः। राजयक्ष्मा गुहः प्रोक्तः क्षितिध्रोऽनन्त उच्यते॥ चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी। रक्षायोनिभवा ह्येतो देवतानुचरीर्विदुः॥ इत्येषु वास्तुदेवानां निघण्टुः परिकीर्तितः। (समराङ्गण. 14, 14-31)
2. प्रकाशितपाठे नोपलभ्यते।

वास्तुक्षेत्रात्मकं सप्तपञ्चाशं सूत्रम् ॥ 57 ॥

अथैकादशवास्तुपदानि। विश्वकर्मोवाच —

स्वस्तिकं पुष्पकं नन्दं षोडशाक्षं चतुर्थकम्।
पञ्चमं कुलतिलकं सुभद्रं षष्ठमेव च॥ 1 ॥
सप्तमो मरीचिगणो भद्रकं स्यात्तथाष्टमम्।
नवमं कामदं प्रोक्तं दशमं भद्रमुच्यते॥ 2 ॥
सर्वतोभद्रनामाख्यमतऊर्ध्वं न कारयेत्।
वास्तून्येकादशैव स्युः प्रोक्तानि परमेश्वरैः॥ 3 ॥

(अब वास्तुपद के ग्यारह भेदों को कहा जा रहा है) (1.) स्वस्तिक, (2.) पुष्पक, (3.) नन्द, (4.) षोडशाक्ष, (5.) कुलतिलक (6.) सुभद्र, (7.) मरीचिगण, (8.) भद्रक, (9.) कामद, (10.) भद्र और (11.) सर्वतोभद्र। इन ग्यारह वास्तुपदों से ऊपर कोई पद नहीं करने चाहिए[1] क्योंकि इन्हीं एकादश वास्तुपदों को परमेश्वर द्वारा कहा गया है।

पदमेकं स्वस्तिकं स्यात्पुष्पकं पच्चतुष्टयम्।
नन्दं नवपदं प्रोक्तं षोडशं षोडशपदैः॥ 4 ॥

इनमें से स्वस्तिक एक पद का होता है। पुष्पक पाँच पद तथा नन्द नव पद का कहा है और षोडश पदवास्तु सोलह पदों का होता है।

---

1. वास्तुशास्त्रों में मय ने बत्तीस वास्तुपदों का उल्लेख किया है। वास्तु उपयोगी पदों में क्रमशः 1. सकल पद विन्यास, 2. पेचक, 3. पीठ, 4. महापीठ, 5. उपपीठ, 6. उग्रपीठ, 7. चण्डित (स्थण्डिल का नाम), 8. मण्डूक, 9. परमशायिक, 10. आसन, 11. स्थानीय, 12. देशीय, 13. उभयचण्डित, 14. भद्र महासन, 15. पद्मगर्भ, 16. त्रियुत, 17. व्रतभोग, 18. कर्णाष्टक, 19. गणित, 20. सूर्य विशालक, 21. सुसंहित, 22. सुप्रतिकान्त, 23. विशाल, 24. विप्रगर्भ, 25. विश्वेश, 26. विपुलभोग, 27. विप्रतिकान्त, 28. विशालाक्ष, 29. विप्रभक्ति, 30. विश्वेशसार, 31. ईश्वरकान्त और 32. इन्द्रकान्त पद विन्यास कहा गया है—सकलं पेचकं पीठं महापीठमतः परम्॥ उपपीठमुग्रपीठं स्थण्डिलं नाम चण्डितम्। मण्डूकपदकं चैव पदं परमशायिकम्॥ तथासनं च स्थानीयं देशीयोभयचण्डितम्। भद्रं महासनं पद्मगर्भं च त्रियुतं पदम्॥ व्रतभोगपदं चैव कर्णाष्टकपदं तथा। गणितं पादमित्युक्तं पदं सूर्यविशालकम्॥ सुसंहितपदं चैव सुप्रतीकान्तमेव च। विशालं विप्रगर्भं च विश्वेशं च ततः परम्॥ तथा विपुलभोगं च पदं विप्रतिकान्तकम्। विशालाक्षपदं चैव विप्रभक्तिकसञ्ज्ञकम्॥ पदं विश्वेशसारं च तथैवेश्वरकान्तकम्। इन्द्रकान्तपदं चैव द्वात्रिंशत् $_{32}$ कथितानि वै॥ (मयमतम् 7, 1-7) मानसार (7, 1-25), शिल्परत्न (पूर्वभाग 6, 1-7) में भी इतनी ही संख्या है। समराङ्गणसूत्रधार में 81 पद, 100 एवं 64 पदीय वास्तु का वर्णन है जो कि प्रधानभेद कहा गया है— एकाशीतिपदो यः स्यात्तथा शतपदश्च यः। चतुःषष्टिपदो यश्च वास्तुरत्नः त्रिधोदितः॥ (समराङ्गण. 13, 1)

पञ्चविंशतिभिः कुलं षट्त्रिंशद्भिः सुभद्रकम्।
एकोनपञ्चाशत्पादैर्मरीचिगण उच्यते॥ 5॥

कुलतिलक पच्चीस पदों का और सुभद्रक छत्तीस पदों का तथा मरीचिगण उनचास पद का कहा गया है।

भद्रकं तु चतुः षष्ठिरेकाशीतिश्च कामदम्।
शतपदैस्तु भद्राख्यं सहस्त्रैः सर्वतोद्भवम् (सर्वतोभद्रकम्)॥ 6॥

भद्रक चौसठ पद का और कामद इक्यासी पद तथा सौ पद का भद्र संज्ञक और सर्वतोभद्र पदवास्तु हजार पदों का होता है।

इत्यमनन्तर वास्तुस्थानमाह —

पदसङ्ख्यास्तु कथिता वास्तुस्थानानि वच्म्यहम्।
स्वस्तिकं पदसंस्थाने ध्रुवतः कथ्यते बुधैः॥ 7॥

इस प्रकार उपर्युक्त प्रकार से इन वास्तुओं की पद संख्या के बारे में बताया गया। अब इन वास्तुओं के स्थानों के बारे में कहता हूँ। स्वस्तिक के पदस्थान को ध्रुवतः विद्वान लोग कहते हैं।

श्रीधरं राजगेहानां हर्म्यादीनां ध्रुवं यथा।
चतुष्की देवताग्रे या विद्यारम्भे तत्स्वस्तिकम्॥ 8॥

श्रीधर (एक प्रकार के भवन की कोटि या माड) में, राजभवनों में, हर्म्यादि या हवेलियों में भी यही ध्रुव जैसे होता है, वैसे ही देवताओं के आगे रखी जाने वाली चतुष्की बजोट में तथा विद्यारम्भ के समय भी इसी स्वस्तिक को पदस्थान देना चाहिए।

दीक्षा विविधयात्रासु कन्यालग्ने च पुष्पकम्।
नन्दं प्रपूजयेद्वास्तु वनयात्रादिशोभनम्॥ 9॥

दीक्षा के प्रसङ्ग में, विविध यात्राओं के प्रसङ्ग, कन्या लग्न के प्रसंग में पुष्पक का पदस्थान तथा वनयात्रादि नन्द पदस्थान की वास्तुपूजा शुभ है।

लतिने रुचकादीनां मण्डपेषु गृहादिके।
जगती वसुधायुक्तं षोडशाख्यं तु पूजयेत्॥ 10॥

इसी तरह लतिन में, रुचकादि में, मण्डपों और गृहादिकों में जगती वसुधा युक्त में षोडशाख्य अर्थात् षोडश पदवास्तु की पूजा की जानी चाहिए।

दक्षिणोत्तरषट्काद्यं [1]शक्रध्वजऽब्जोद्भवम्।

---

1. 'शक्राद्यं ? कमलोद्भवम्' इति प्रकाशित पाठः।

श्रीमात्रादिषु दीक्षासु तिलकं तु प्रपूजयेत्॥ 11॥

दक्षिणोत्तर तथा षट्काद्य में और शक्रध्वज (इन्द्रध्वजोत्सव) में, कमलोद्भव ब्रह्मा के लिए श्रीमात्रादिकों में और दीक्षा के अवसर पर तिलक वास्तु की पूजा करनी चाहिए।

सुकर्मणि च प्रस्थाने सुभद्रगं च प्रशस्यते।
समस्तजीर्णोद्धारेषु मरीचिगणमर्चयेत्॥ 12॥

इसी प्रकार से अच्छे कार्यों के लिए, प्रस्थान करते समय भी सुभद्र वास्तु का पूजन प्रशस्त कहा गया है। समस्त जीर्णोद्धार, पुनर्संस्कार के कार्य हो तो मरीचिगण वास्तुपद की अर्चना करनी चाहिए।

ग्रामखेटपुरादा च कूपे च कर्वटादिके।
तथा राजनिवेशे च भद्रकं पूजयेत्सदा॥ 13॥

इसी तरह जब ग्राम, खेट, पुर, कूप, कर्वट तथा राजभवन का काम हो तो उसमें भद्रक वास्तु का पूजन करना चाहिए।

गृहादिषु समस्तेषु तृणपट्टच्छन्दादिषु।
पाण्ड्वश्वपूर्णखण्डेषु कामदं वास्तु पूजयेत्॥ 14॥

सभी गृहों के कार्यों में, तृण से, पट्ट से, छादन से पाण्डवाश्व के पूर्ण खण्डों में कामद वास्तु का पूजन करें।

प्रासादा विविधाश्चैव विविधश्चात्र मण्डपाः।
जगतीलिङ्गपीठे च भद्राख्यं, राजवेश्मनि॥ 15॥

विविध प्रकार के प्रासादों में, मन्दिरों में, विविध प्रकार के मण्डपों तथा जगती, पीठ, लिङ्गादि में भद्र नामक वास्तु का पूजन करना चाहिए।

प्रासादाश्च व मेर्वाद्या लिङ्गं षट्करतः परम्।
महार्था देशराष्ट्रे च सर्वतोभद्रमर्चयेत्॥ 16॥

इसी प्रकार राजभवनों में, मन्दिरों में, मेरु आदि प्रासादों में तथा छह हाथ से ऊपर तक के लिङ्गों में, महा अर्थों में, देश एवं राष्ट्रों में सर्वतोभद्र वास्तुपद की अर्चना करें।

अधस्तात् सर्वतोभद्राद् भद्राख्योपरि वास्तुकम्।
मध्ये च द्वाविंशतिभिर्गुणिता पदकल्पना॥ 17॥

सर्वतोभद्र से नीचे के समस्त वास्तुओं में भद्राख्य, वास्तु के ऊपर तक के मध्य में जो भी वास्तु है उनमें 22 से गुणा करके पदों कल्पना की गई है।

षट्क्षेत्राणिवर्णनम् —

षट्क्षेत्राणि प्रवक्ष्यामि वास्तुपदनिवासिनाम्।
संस्थानोन्मानसूत्रं च वास्तुवेद समुद्भवम्॥ 18॥

अब इन वास्तुपद निवासी देवों के छह क्षेत्रों के बारे में कहता हूँ, उसके संस्थानोन्मान सूत्र को भी कहता हूँ जो कि वास्तु वेद से समुद्भूत स्वीकार्य है।

चतुरश्रमायतं च वृत्तं वृत्तायतं तथा।
अष्टाश्रं चार्धचन्द्रं च वास्तुसूत्रं तु षड्विधम्॥ 19॥

1. चतुरस्र, 2. आयत, 3. वृत्त, 4. वृत्तायत, 5. अष्टाश्र और 60 अर्धचन्द्र— ये छह प्रकार के वास्तुसूत्र कहे गए हैं।

प्रासादेषु गृहाद्येषु पुरग्रामनिवेशने।
क्षेत्राणि चतुरश्राणि चतुरश्रं समर्चयेत्॥ 20॥

इनमें कौन कहाँ उपयुक्त हैं, उनके बारे में बताते हैं। प्रासादों, मन्दिरों में गृहादिकों में, पुर और ग्राम के आवास गृहों में तथा चौकोर क्षेत्रों में चतुरश्र वास्तु सूत्र की अर्चना करनी चाहिए।

तथायताश्च प्रासादाः पुष्पाक्षकुलसम्भवाः।
यथायतानि क्षेत्राणि पूजयेच्च तथायतम्॥ 21॥

आयत, प्रासाद मन्दिरों में, पुष्पाक्ष कुल से उत्पन्न होने वाले आयत क्षेत्रों में आयत वास्तु सूत्र से पूजन करना चाहिए।

वापीकूपक्षेत्रकाणि वृत्तानि प्रतिमास्तथा।
कैलासच्छन्दोद्भवाश्च सर्वे वृत्ताः प्रकीर्तिताः॥ 22॥

इसी प्रकार वापी या बावड़ी, कूप कुई जैसे क्षेत्रों में वृत्त वास्तुसूत्र, प्रतिमाओं में तथा सभी कैलाश छन्दोद्भव रचनाओं में वृत्त वास्तुसूत्र से पूजन करना चाहिए।

वृत्तायताश्चमणिका अष्टशाला अष्टाश्रकाः।
तडागेषु समस्तेषु ह्यर्धचन्द्रं प्रपूजयेत्॥ 23॥

मणिका को वृत्तायत वास्तुसूत्र से तथा अष्टशाला को अष्टाश्रक वास्तुसूत्र से पूजन करना चाहिए। समस्त तालाबों को अर्धचन्द्र वास्तुसूत्र से पूजन करना चाहिए।

क्षेत्रषट्कात्मके वास्तौ बाणवेदाश्च$_{45}$ देवताः।
त्रयोदशे$_{13}$ स्थिता मध्ये द्वात्रिंशद्$_{32}$ बाह्यतस्तथा॥ 24॥

इस तरह छह क्षेत्रात्मक वास्तु में पैंतालीस देवता हैं, जिसमें तेरह तो मध्य में स्थित हैं और बत्तीस इन क्षेत्रों के बाहर अवस्थित हैं।

सूत्रबाह्योऽष्टदेव्यश्च ईशादिषु प्रदक्षिणम्।
तासां पदविधिर्नास्ति केवलं पूजनं स्मृतम्॥ 25॥

वास्तुसूत्र के बाहर आठ देवियाँ भी ईशानकोण से प्रदक्षिण क्रम से अवस्थित हैं उनकी कोई पदविधि नहीं है, उनके लिए तो केवल पूजन ही बताया गया है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां वास्तुक्षेत्राधिकारो नाम सप्तपञ्चाशत्तमं सूत्रम्॥ 57॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में वास्तुक्षेत्र अधिकार नामक सत्तावनवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 57॥

वास्तुपददेवताभिधाननिर्णयो नामाष्टपञ्चाशं सूत्रम्॥ 58॥

विश्वकर्मोवाच —

स्वस्तिकं च प्रवक्ष्यामि तच्चैकपदसंश्रितम्।
त्रयोदश सुरा मध्ये द्वात्रिंशद् बाह्यतः स्थिताः॥ 1॥
तथा कूटं त्रिभिः कृत्वा मध्ये ब्रह्मा नवांशके।
तृतीयांशेष्वर्यमाद्या त्र्यंशेषु कर्णदेवताः॥ 2॥
तासामूर्ध्वं बाह्यतश्च द्वात्रिंशत्परिधौ क्रमात्।
इदं च स्वस्तिकं प्रोक्तं सर्वशान्तिकरं नृणाम्॥ 3॥

इति स्वस्तिकवास्तु।

अब मैं एक पद वाले स्वस्तिक वास्तु के बारे में कहता हूँ इसके मध्य में तेरह देवता वास करते हैं और बत्तीस देवता इसके बाहर की ओर स्थित रहते हैं। इसमें तीन कूट बनाएँ और नवांश के मध्य में ब्रह्मा तथा तृतीयांश में ईश्वर अर्यमा आदि और तृतीयांश में कर्ण देवताओं को रखें और उनके ऊपर की ओर, बाहर की तरफ बत्तीस देवताओं को परिधि पर क्रमानुसार स्थित करें। इस तरह स्वस्तिक वास्तु को सभी लोगों के लिए सर्वप्रकार की शान्ति के लिए उपयुक्त कहा गया है।

अथातः पुष्पकं वक्ष्ये वेदाश्रं च चतुष्पदम्।
ब्रह्मणः पदमेकं तु तत्पादेष्वर्यमादयः॥ 4॥
अर्यम्णः पदमानेन चाष्टौ ताः कर्णदेवताः।

मूलपदषोडशांशे शेषा बाह्ये प्रकीर्तिता: ॥ 5 ॥

इति पुष्पकवास्तु।

अब पुष्पक वास्तु के बारे में कहता हूँ जो चार भुजाओं वाला एवं चतुष्पद वाला होता है। इसके एक पद में ब्रह्मा और एक बाद में ईश्वर अर्यमा आदि स्थित होते हैं। अर्यमा के पद के मान के अनुसार ही आठों कर्ण देवता वहाँ होते हैं। मूल पद षोडश अंश का और शेष बाहर की ओर कहे गये हैं।

नन्दे ब्रह्मा पदं चैकं त्रह्मत्र्यंशेन चार्यमा।
तत्र्यंशैः कर्णदेवाश्च द्वात्रिंशच्च तदर्धतः ॥ 6 ॥

इति नन्दवास्तु।

अब नन्द वास्तु के बारे में कहता हूँ। नन्द वास्तु के एक पद में ब्रह्मा और ब्रह्मा के पद के तृतीयांश में अर्यमा और उसके भी तृतीय अंश में कर्ण देवता और बत्तीस देवता उससे आधे आधे भाग में होंगे।

षोडशाख्ये पदं ब्रह्मा ह्यर्यमार्धे तु कर्णगाः।
कर्णार्धे बाह्यतो देवास्तदर्धार्धे कर्णाष्टकम्॥ 7 ॥

इति षोडशाख्यवास्तु।

षोडशाख्य वास्तु में एक पद का ब्रह्मा और आधे भाग में अर्यमा कर्ण देवता स्थित होते हैं। कर्णार्ध के बाहर देवता उससे भी आधे-आधे भाग में आठ कर्ण देवता होते हैं।

ब्रह्मार्यमैकैकपदं तदर्ध कर्णषोडश।
चतुर्थांशपदाः सर्वे तद्वास्तु तिलकं भवेत्॥ 7 ॥

इति कुलतिलकवास्तु।

ब्रह्मा का एक पद और उसका आधा सोलह कर्ण देवता के लिए ये सभी चतुर्थांश पद वाले होते हैं। यह तिलक वास्तु होगा।

चतुष्पदो भवेद् ब्रह्मा द्विपदाश्चार्यमादयः।
कर्णाश्चार्धपदाः सर्वे त्र्यंशोनेषु च शेषकाः ॥ 9 ॥

इति सुभद्रवास्तु।

चार पद में ब्रह्मा और दो पदों में अर्यमा आदि देवता कर्ण देवता आधे पद वाले और अन्य सभी शेष देवतागण तृतीयांश के होते हैं। यह सुभद्र वास्तु के लक्षण हैं।

चतुष्पदो भवेद् ब्रह्मा त्रिपादा अर्यमादयः।
कर्णाः सपादाश्चैकोनं कर्णबाह्येऽर्धपादकाः॥ 10॥
षडंशोनपदाः शेषाश्चतुर्विंशतिसङ्ख्यया।
मरीचिगणमित्युक्तं सप्तसप्तपदात्मकम्॥ 11॥

चार पाद के ब्रह्मा, तीन पाद का अर्यमादि देवता, कर्ण देवता सवाये पद के और कर्ण देवता के बाहर के देवता आधे पद के, षडंश कम एक पाद के शेष सभी चौबीस संख्या के मरीचिगण सात सात पद वाले कहे गये हैं।

चतुः षष्टिपदं वक्ष्ये वास्तु पुरनिवेशने।
विभक्तिपदसंस्थानं देवतानामनुक्रमात्॥ 12॥
चतुष्पदो भवेद् ब्रह्मा तत्समा अर्यमादयः।
अर्यमार्धे कर्णगाश्च कर्णार्धे चतुर्विंशतिः॥ 13॥
बाह्यकर्णे स्थिताश्चाष्टौ लाङ्गले पदमर्धकम्।
ईदृशं भद्रकं प्रोक्तं चतुःषष्टिपदस्थितम्॥ 14॥

इति भद्रकवास्तु।

वास्तु पुर निवेशादिक के चौंसठ पदों के बारे में कहता हूँ। उनके देवताओं के नाम भी विभक्ति पद संस्थानों को क्रम वर्ग कहता हूँ। चार पदों में ब्रह्मा और उसी के समान चार पदों में अर्यमादि और अर्यमा से आधे पद के कर्णदेवता और कर्णदेवता के आधे पदों में चौबीस देवता तथा कर्णे देवता के बाहर की और आठ लाङ्गल आधे पद के स्थित करें। इस तरह चौंसठ पद वाला भद्रक वास्तु कहा गया है।

ब्रह्मा नवपदो मध्ये षट्पदा अर्यमादयः।
द्विपदा मध्यकर्णाद्या द्वात्रिंशदेकपादकाः॥ 15॥

इति कामदवास्तु।

ब्रह्मा मध्य के नव पदों में और छह पदों में अर्यमादि दो पदो के मध्यमें कर्णादि और अन्य बत्तीस देवता एक पद वाले कहे गए हैं। ऐसा कामद वास्तु होता है।

ततः शतपदं वक्ष्ये पूज्यं प्रासादमण्डपे।
ब्रह्माद्याः सकलाश्चैवाष्टपादा अर्यमादयः॥ 16॥
द्विपदा ब्रह्मकर्णेऽष्टौ बाह्येऽष्टौ सार्धपादकाः।
शेषाश्चैकपाद ज्ञेयाश्चतुर्विंशतिसङ्ख्यया॥ 17॥

इति शतपदं भद्राख्यवास्तु।

अब इसके बाद शतपद वास्तु के बारे में कहता हूँ जो प्रासाद मन्दिरों और मण्डपों में पूज्य होता है। इसमें ब्रह्मादि सभी आठ पद वाले अर्यमादि दो पदों वाले तथा ब्रह्म कर्ण देवता आठ और बाहर के आठ देवता आधे पद के, शेष सभी एकपद वाले चौबीस संख्या में होते हैं।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वात्रिंशद्भिर्विभाजिते।
षट्पञ्चाशत्पदैर्युक्तान्येकादश शतानि हि॥ 18॥

चौकोर किये गये क्षेत्र को बत्तीस खण्डों में विभाजित करें। इसी तरह चौकोर किए गए अन्य क्षेत्र को छप्पन खण्डों में तथा एक अन्य को ग्यारह सौ खण्डों में (क्रमशः 32, 56, 1100) विभाजित करें।

मध्यस्थाने लिखेत् पद्मं वेदगर्भ इति स्मृतम्।
ब्रह्मान्ते च भवेद्वीथी चत्वारिंशत्पदैः क्रमात्॥ 19॥

इस क्षेत्र के मध्य में पद्म का चित्र बना दें। इसे वेदगर्भ या ब्रह्मस्थल कहा गया है। ब्रह्म के अन्त में चालीस पदों की एक वीथी क्रम से बनाएँ।

अर्यम्णोऽन्ते भवेद्वीथी शतं च द्वादशोत्तरम्।
वीथीकर्णे समस्तैवं पदमुक्तिः क्रमोदिता॥ 20॥
सप्तदशमण्डलेषु चाद्ये पद्मं निपायेत्।
तदनन्तरपङ्क्तौ च ब्रह्मा षण्णवतिपदः॥ 21॥

अर्यमा के अन्त में भी एक सौ बारह खण्डों की वीथी बनाएँ और वीथी के समस्त कर्णों पर पदमुक्ति क्रमवार बनाएँ। सत्रह मण्डलों में आदि से पद्म बनाएँ इसके बाद अन्तर पंक्तियों में छानवें पदों में ब्रह्मा बना दें।

तदन्ते वीथिका कार्या चत्वारिंशत्पदान्विता।
अशीतिभिश्च चत्वारोऽर्यमाद्याश्च चतुर्दिशम्॥ 22॥
चत्वारिंशत्पदैरर्धैरष्टौ स्युर्ब्रह्मकर्णतः।
तदन्तर्वीथिका कार्या शतं च द्वादशोत्तरम्॥ 23॥

इसके अन्त की चालीस पदों की वीथिका बनाएँ तथा अस्सी पदों की भी बनाएँ जिसमें चारों अर्यमादि चारों दिशाओं में बनाएँ। चालीस पदों के अर्धे में आठों ब्रह्मा कर्ण पर बनाएँ। इसके अन्तरवीथिका एक सौ बारह पदों की बनाएँ।

तद्बाह्ये च भवेद्वीथी द्वात्रिंशदधिकं शतम्।
कोणे लोप्याश्च षट्पादाश्चतुर्षु चतुर्विंशतिः॥ 24॥

उसके बाहर की जो वीथी हो वह एक सौ बत्तीस पदों की हों तथा चारों कोणों

पर छह पदों का लोप करके— इस तरह चौबीस पदों का लोप कर दें।

ईशाद्या रुद्रदासान्ता लता वीथ्यन्तरे गताः।
एवं पदानि जायन्ते षट्त्रिंशदधिकं शतम्॥ 25॥
बाह्यकर्णे तु चत्वारः प्रस्थाप्या नवभिः पदैः।
सप्त सप्त तदाश्रिता योज्या अष्टाष्टभिः पदैः॥ 26॥
तन्मानानुक्रमाद्योज्याः शेषा अष्टपदास्तथा।
एवं सहस्रपदैर्युक्तं सर्वतोभद्रलक्षणम्॥ 27॥

इति सहस्रपदं सर्वतोभद्रवास्तु।

ईशादि से रुद्रदासान्त तक इन वीथियों के अन्तर में लता जाती है। इस प्रकार एक सौ छत्तीस पद बनते हैं। चारों बाह्य कर्णों पर नव पदों की प्रस्थापना करें तथा उनके अश्रित आठ-आठ पदों की सात-सात ओर प्रस्थापित करें। उन्हीं के मानानुक्रम से शेष आठो पदों को भी जोड़े इस तरह हजार पदों वाला सर्वतोभद्र लक्षण का वास्तु बनता है।

ईशस्तथा च पर्जन्यो जयो माहेन्द्र एव च।
आदित्यः सत्यभृशौ चाऽन्तरक्षान्ताऽष्ट पूर्वतः॥ 28॥
अग्निः पूषा च वितथो गृहक्षतो यमस्तथा।
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगान्ताश्चाष्ट दक्षिणे॥ 29॥
पितरो दौवारिकश्च सुग्रीवः पुष्पदन्तकः।
वरुणश्चासुरः शोषः पापयक्ष्मा तु पश्चिमे॥ 30॥
रोगोनागस्तुमुख्यश्च भल्लाटः सोम एव च।
गिर्यदितिर्दितिश्चैवाष्टावुत्तरदिशि क्रमात्॥ 31॥

इसी प्रकार ईश, पर्जन्य, जय, महेन्द्र, आदित्य, सत्य, भ्रश और अन्तरिक्ष— ये आठों पूर्व दिशा की ओर; अग्नि, पूषा, वितथ, गृहक्षत, यमगन्धर्व, भृङ्गराज और मृग— ये आठों दक्षिण दिशा की ओर; पितर, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शोष और पापयक्ष्मा पश्चिम दिशा की ओर; रोग, नाग, मुख्य, भल्लाट, सोम, गिरि, अदिति, दिति— ये आठों क्रम से उत्तर दिशा की ओर होती हैं।

ब्रह्मकर्णे तथा चाष्टावीशान्यादि क्रमेण तु।
आपश्चैवापवत्सश्च ईशकर्णे तु संश्रितौ॥ 32॥
सविता चैव सावित्री आग्नेय्यां तु समाश्रितौ।
इन्द्र इन्द्रजयश्चेव नैर्ऋत्यां ब्रह्मणः स्थितौ॥ 33॥

ब्रह्मकर्ण पर इसी तरह अट्ठाईस क्रमवार इस तरह बनाएँ— ईशान कोण पर आप और आपवत्स संश्रित हों। आग्नेयकोण पर सविता और सावित्री समाश्रित हों। ब्रह्मा की नैर्ऋत्य कोण में इन्द्र और इन्द्रजय स्थित हों।

रुद्रश्च रुद्रदासश्च संस्थितौ वायवीदिशि।
मरीचिश्च विवस्वांश्च मित्रश्च पृथिवीधरः ॥ 34 ॥
पूर्वादिक्रमयोगेन **संस्थिताश्च** चतुर्दिशम्।
एवमादिक्रमयोगः **सर्वेषां** वास्तुमण्डले ॥ 35 ॥

वायव्य कोण की दिशा में रुद्र और रुद्रदास संस्थित हों। इसी तरह मरीचि, विवस्वान, मित्र और पृथ्वीधर भी पूर्वादि क्रम से योग बनाते हुए चारों दिशाओं में संस्थित हों। इस प्रकार सभी वास्तुमण्डलों में आदि क्रम योग होता है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां वास्तुपददेवताभिधाननिर्णयाधिकारो नामाष्टपञ्चाशत्तमं सूत्रम् ॥ 58 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में वास्तुपद देवता अभिधान निर्णय अधिकार नामक अठावनवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 58 ॥

वास्तुमर्मोपमर्मनिर्णयो नामैकोनषष्टितमं सूत्रम् ॥ 59 ॥

विश्वकर्मोवाच —

चतुःषष्टिपदैः$_{64}$ क्षेत्रे पुरवास्तु प्रकल्पयेत्।
मर्मोपमर्मसन्धींश्च वास्तुदेहसमुद्भवान् ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा ने कहा कि चौंसठ पद वाले क्षेत्र में पुर-वास्तु की कल्पना करें तथा उसी में मर्म[1], उपमर्म, सन्धि आदि को वास्तुदेह से समुद्भव होता हुआ देखें।

अथ वास्तुमर्मस्थानज्ञानफलयोर्विशेषमाह —

पूर्वापरायता वंशा उपवंशाः प्रभेदतः।
मर्माणि वंशसम्पाता उपमर्माणि मध्यतः ॥ 2 ॥

पूर्व-पश्चिम की ओर आयत में वंश और उपवंशों को उनके भेदों सहित मर्मों, वंश-सम्पातों आदि को उपमर्मों सहित उनके मध्य देखें।

इन्द्रादित्यतस्त्रिरेखा वरुणपुष्पदन्तगाः।
एते वंशाः समाख्याता उपवंशा याम्योत्तराः ॥ 3 ॥

---

1. यहाँ मर्म विषय पर पुरुषाकारवास्तुरूप की परिकल्पना की गई है।

इन्द्र आदित्य तक तीन रेखा, वरुण, पुष्पदन्त तक जाती हुई हों, वे सब वंश के नाम से समाख्यात है और उपवंश उत्तर-दक्षिण आयत में होते हैं।

सोमभल्लाटतस्तिस्त्रो गृहक्षतयमान्तगाः।
पूर्वापरायता रेखाः पुनिर्भिन्नाश्च तिसृभिः ॥ 4 ॥

सोम, भल्लाट, तिस्र, गृहक्षत, यम के अन्त तक जाने वाली, पूर्व से पश्चिम की ओर आयत रेखा पुनः तीनों को भिन्न करती अर्थात् काटती हुई होगी।

ईशब्रह्मपितृतश्च शिरा रोगाग्निमध्यतः।
शिरास्त्वेवं विकर्णस्था ईशाग्निपितृरोगतः ॥ 5 ॥

ईश, ब्रह्म और पितृ तक शिरा; रोग, अग्नि के मध्य तक ये शिराएँ— इस प्रकार विकर्ण ईश, अग्नि, रोग तक जाती हैं।

जयगन्धर्वसुग्रीवगिरिभिश्च प्रभेदिताः।
सत्यमुख्यायता रेखा वितथाच्चासुरान्तगाः ॥ 6 ॥

और, जय, गन्धर्व, सुग्रीव, गिरि आदि को भेदती जाती है तथा सत्य और मुख्य की ओर की आयत रेखा वितथ और असुर के अन्त तक जाने वाली होती है।

एते च सूत्रसम्पाता महामर्माणि कीर्तिताः।
सूत्रसम्पाताग्रपङ्क्तिषट्कं लाङ्गलमुच्यते ॥ 7 ॥

ये सभी सूत्र सम्पात महामर्म नाम से जाने जाते हैं तथा सूत्र सम्पात के आगे की छह पङ्क्तियाँ- पङ्क्ति षट्क 'लाङ्गल' कहलाती है।

शिरासूत्रपातषट्कं तच्चापि लाङ्गलं स्मृतम्।
चतुर्विंशति लाङ्गलानि पदार्धेषु [1]त्रिकर्णगा ? ॥ 8 ॥

शिरा सूत्रपात षट्क को भी लाङ्गल कहा जाता है। इस तरह के चौबीस लाङ्गल पदों के आधे भाग करते हुए विकर्ण की ओर जाते हैं।

ब्रह्मणश्च चतुःपार्श्वेष्टवष्टसूत्राणि पद्मकम्।
पक्षेषु लाङ्गलं द्वन्द्वं षड्रेखाभिर्विधीयते ॥ 9 ॥

ब्रह्मा के चारों ओर आठ सूत्रों के पद्मक होते हैं और दोनों पक्षों में दो-दो लाङ्गल षड् रेखाओं से बनते हैं।

चतुःकर्णेषु शूलानि षडरेखाभिश्च वज्रकम्।
त्रिशूललाङ्गलपद्म शिरानाडिविवर्जितम् ॥ 10 ॥

चारों कर्णों में शूल तथा षड्रेखाओं में वज्र और त्रिशूल लाङ्गल पद्म शिरा, नाड़ी वर्जित होते हैं।

उपवंशादीनां मर्मफलमाह —

बन्धूच्छेदश्चोपवंशे मर्मणि स्यात्कुलक्षयः।
वज्रे च वज्रपाताः स्युस्त्रिशूले **च** रिपोर्भयम्॥ 11॥

उपवंश के प्रभावित होने पर बन्धुओं में विरोध-विच्छेद तथा मर्मों में कुलक्षय और वज्र में वज्रपात की आशङ्का रहती है और त्रिशूल मर्म हो तो शत्रुओं से भय बना रहता है।

पद्मे पतिविनाशश्च लाङ्गलेषु **प्रजाक्षयः**।
कर्णशिरा स्त्रीविनाशः **सम्पाते** चाग्रजातके ॥ 12॥

पद्म से पति का विनाश और लाङ्गल से प्रजा, बाल-बच्चों की क्षय होता है। कर्ण शिरा से स्त्री का विनाश होता है और सम्पात मर्म दोष से अग्रज की मृत्यु होती है।

ब्रह्मकर्णेषु महामर्ममाह —

चतुर्षु ब्रह्मकर्णेषु **महामर्म** सुकीर्तितः।
धनधान्यविनाशश्च सर्वनाशस्तथैव **च**॥ 13॥

ब्रह्मा के चारों कर्णों पर महामर्म विख्यात है जिनका वेध होने से धन-धान्य के विनाश के साथ ही सर्वनाश तक हो जाता है।

पदव्यास[1]**षोडशांशो भागो द्वादशकः पुनः**।
बालाग्रं सन्धिसम्पाते **वर्ज्यते** मर्मशिल्पिभिः॥ 14॥

पदव्यास के षोडशांश भाग तथा पुनः बारह भाग— ये सब बालाग्र, सन्धि सम्पातों में शिल्पियों ने वर्ज्य माने हैं।

अष्टवर्गाः समाख्याताः कर्णपार्श्वाश्च **कीर्तिताः**।
ब्रह्मकर्ण **च पद्मान्ते**[2] महामर्मचतुष्टयम्॥ 15॥

कर्णों के पार्श्व भाग के अष्टवर्ग नाम से कहे जाते हैं। ब्रह्म कर्ण और पद्म के अन्त में महामर्म चतुष्टय होता है।

मर्मोपमर्मणी **रक्ष्ये** महादोषभयावहे।
वंशोपवंशौ **सन्धिश्च** रेखाषट्कं **च** लाङ्गलम्॥ 16॥

---

1. 'पदन्यास' स्यात्।
2. 'ब्रह्मकर्णे त्रिपद्मान्ते' इति प्रकाशित पाठः।

अस्तु, मर्म, उपमर्मों से सदा रक्षा करनी चाहिए क्योंकि ये महादोष और भय के कारक होते हैं।[1] इसी तरह वंश, उपवंश, सन्धि, रेखापट्टक और लाङ्गलों को भी बचाकर न्यास करना चाहिए।

वास्तुपुरुषस्य शिरोखातफलमाह —

भूपरिग्रहो वास्तुश्च मर्मादि कथितं तव।
पित्रोर्घातो भवेच्चैवं कृते शिरसि खातके॥ 17॥

(हे अपराजित! इस प्रकार से) मैंने तुम्हें भूमि परिग्रह करते समय के वास्तु के मर्मों के बारे में सब कह दिया है। अब वास्तुपुरुष के अङ्गों पर खात के विविध भयों को कहता हूँ। वास्तुपुरुष के शिर पर खात, खनन करने से पितृ घात होता है।

भुजे स्कन्धे बन्धुनाशो हृदये च महाभयम्।
धनधान्यसमृद्धिश्च जायते कुक्षिखातके॥ 18॥

और, उसकी भुजाओं पर खनन करने पर बन्धुनाश होता है। उसके हृदय पर खनन करने से महान् भय उपस्थित हो जाता है जबकि कुक्षि पर खनन से धन-धान्य और समृद्धि प्राप्त होती है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
वास्तुमर्मोपमर्मनिर्णयोधिकारो नामैकोनषष्टितमं सूत्रम्॥ 59॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में
वास्तुमर्मोपमर्म निर्णय अधिकार नामक उनसठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 59॥

---

1. समराङ्गणसूत्रधार में आया है कि महावंशों के अतिक्रमण से निश्चय ही स्वामी का वध होता है। वंशों के निपीड़न से वर्षा त्रास व ताप का भय जानना चाहिए। उपमर्मों के निपीड़न से रोग व मर्मों के पीड़न ने अचानक कुल की हानि होती है। शिरा के उत्पीड़न से उद्वेग और अनर्थ उत्पन्न होता है। सन्धि व अनुसन्धियों के पीड़न ने कलह होता है, ऐसा जाने। इस प्रकार इन दोष-फलों को जानकर वास्तुपुरुष के शरीर के शिराओं-अनुशिराओं-नाडियों, वंशों-अनुवंशों व मर्मों को समझकर उन्हें पीड़ित न कर वास्तु का निवेशन किया जाना चाहिए क्योंकि वेध रहित निर्माण नित्य निरापद होता है— महांवशसमाक्रान्तौ भवेत् स्वामिवधो ध्रुवम्॥ वर्षेण तपनाद्भीतिं वंशानां पीडनाद्विदुः। उपमर्माणि रोगाय मर्माणि कुलहानये॥ उद्वेगायार्थनाशाय सिराश्च स्युः प्रपीडिताः। कलिः स्यात् सन्धिविद्धेषु पीडितेष्वनुसन्धिषु॥ तस्मादेतानि सर्वाणि पीडितान्युपलक्षयेत्। ज्ञात्वा सिराः सानुसिराश्च नाडीर्वंशानुवंशानपि वास्तुदेहे। यत्नेन मर्माणि फलानि चैषां वेधं त्यजेद्वास्तमुपैति नापत्॥ (समराङ्गण.

दिक्पालादिवास्तुदेवपूजाबलिकर्मयुक्तिर्नाम षष्ठितमं सूत्रम् ॥ 60 ॥

विश्वकर्मोवाच —

अत ऊर्ध्वं पुनश्चान्यत् प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम्।
वास्तुदेहे स्थिता देवाः सम्पूज्या वृद्धये तथा ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि इसके उपरान्त पुनः अन्य विधि क्रम से बताता हूँ जिससे पूजा करने पर वास्तु के देह में स्थित देवताओं की वृद्धि अर्थात् वे प्रसन्न होकर गृही के लिए अभिवृद्धिकारक होते हैं।

घृताक्षतानमीशाने पर्जन्ये चोत्पलोदकम्।
जये पीताम्बरं चैव वज्रं पिष्टमयं त्वथ ॥ 2 ॥
माहेन्द्रे सर्वरत्नानि सूर्ये धूम्रवितानकम्।
गोधूमाः सघृताः सत्ये भृशे मत्स्यांस्तु दापयेत् ॥ 3 ॥
सङ्कुलिं चान्तरिक्षे तु शुचिं दद्याद्धुताशने।
धान्यकल्कं तथा पूष्णि वितथे चणकौदनम् ॥ 4 ॥
गृहक्षते गोरोचनं शमीपत्रं यमे तथा।
गन्धर्वे शतपत्रं च भृङ्गराजे तु पीठकम् ॥ 5 ॥

(वास्तुपूजा के अन्तर्गत) ईशान देव की पूजा घृत और अक्षतों से, पर्जन्य की पूजा कमल के फूलों से, जय की पूजा पीताम्बर से और वज्र की पिष्टमय अन्न अर्थात् आटे से करें। महेन्द्र की पूजा सभी प्रकार के रत्नों से, सूर्य की पूजा धूम्रवितान अर्थात् धूप से, सत्य की पूजा घृत युक्त गेहूँ से और भृश की पूजा मछली भेंट कर करें। अन्तरिक्ष की पूजा सङ्कुलि से, हुताशन (अग्नि) की पूजा शुचि की भेंट, पूष्णि की पूजा धान्य के आटे से और वितथ की पूजा भापे गए चने (वरवा) से करें। गृहक्षत देव की पूजा गोरोचन से, यम की पूजा शमीपत्र, गन्धर्व की पूजा शतपत्र और भृङ्गराज की पूजा पीठक से करनी चाहिए।

अन्य देवताः —

मृगे नीलयवं ख्यातं पितृषु गुलमोदकाः।
दौवारिके मातुलिङ्गं सुग्रीवे विविधं फलम् ॥ 6 ॥
शतपत्रं पुष्पदन्ते पद्मं स्यादब्धिनायके।
असुरे तु सुरा देया शोषे तैलं तिलस्तथा ॥ 7 ॥
पक्वमांसं राजयक्ष्माभिधे रोगे तथौषधम्।

नागे चैव क्षीरपानं श्रीखण्डं तु विश्वाधिपे॥ 8॥
भल्लाटे काञ्चनं देयं सोमे दद्याच्च मण्डकान्।
गिरौ तु सक्तुतोयं तु चादितौ लपिकां तथा॥ 9॥

मृग की पूजा नीलयव से, पितृ की पूजा गुलमोदक, दौवारिक की पूजा मातुलिङ्ग अथवा बिजौरा, सुग्रीव की पूजा विविध फलों, पुष्पदन्त की पूजा शतपत्र, अब्धिनायक वरुणदेव की पूजा पद्म, असुर की पूजा सुरा और शोष की पूजा तिल के तेल से करनी चाहिए। राजयक्ष्मा की पूजा पक्वमांस से, रोग की पूजा औषध, नाग की पूजा क्षीरपान कराकर तथा विश्वाधिप की पूजा श्रीखण्ड से करें। भल्लाट की पूजा स्वर्णदान से, सोम की पूजा कसार अथवा फुलका या पतली रोटी से, गिरि की पूजा सक्तु के जल से और अदिति की पूजा लपसी से करनी चाहिए।

तथा चान्य देवता: —

दितौ कम्बलयुग्मं च ह्यापे दद्यात्तु मालती:।
तथा गोदध्यापवत्से त्वर्यम्णि रक्तचन्दनम्॥ 10॥
शतपत्रं सवितरि सावित्रे सर्वपुष्पकम्।
विवस्वति मोदकानि हीन्द्रे स्यात्पुष्पमालिका॥ 11॥
चम्पकानि त्विन्द्रजये मित्रे स्यात्तु घृतोदनम्।
रुद्रे गन्धः गुग्गुलानां सिद्धान्नं रुद्रदासके॥ 12॥
पृथ्वीधरे रत्नमाला ब्रह्मण्यमृतकुम्भकम्।
फलपुष्पयवाक्षतैः पञ्चगव्यैः पुनर्युतम्॥ 13॥

इसी प्रकार दिति की पूजा कम्बल की जोड़ी से, आप की पूजा मालती पुष्पों, आपवत्स की पूजा गाय के दही तथा अर्यमा की पूजा रक्तचन्दन से करें। सविता की पूजा शतपत्र-कमल से, सावित्री की पूजा सभी प्रकार के पुष्पों, विवस्वान की पूजा मोदकों तथा इन्द्र की पूजा पुष्पमालाओं से करनी चाहिए। इन्द्रजय की पूजा चम्पक पुष्पों से, मित्र की पूजा घृतोदन या घी मिश्रित खिचड़ी, रुद्र की पूजा गुग्गुलु की धूप तथा रुद्रदास की पूजा पके हुए अन्न से करें। पृथ्वीधर की पूजा रत्नमाला से, ब्रह्मा की पूजा अमृतकुम्भ, क्षत की पूजा फलपुष्प से तथा पुनर्युत की पूजा पञ्चगव्य से करें।

चरक्यादीनामष्टदेव्यां पूजासम्भाराह —

चरक्यां चैव दातव्या अस्थिमांससुरास्तथा।
पीतौदनं पक्वमांसं विदारीपिलिपिच्छयोः॥ 14॥

मद्यं मांसं च जृम्भायां पूतनायां रक्तौदनम्।
अर्यम्णि चास्थिमांसं चास्थिमांसं **पापराक्षसी ॥ 15 ॥**
स्कन्दायां **च पशुं मद्यं देव्योऽष्टौ** सुप्रदक्षिणाः।
आसां पदविधिर्नास्ति **पूजां गृह्णन्ति केवलम् ॥ 16 ॥**

(इसके अनन्तर बाह्यदेवियों में) चरकी की पूजा अस्थि-मांस-सुरा से तथा विदारी और पिलिपिच्छा की पूजा पीले भोजन और पक्वमांस से करें। जृम्भा की पूजा मद्य और मांस, पूतना की पूजा रक्त और खिचड़ी, अर्यमा की पूजा अस्थि व मांस और पापराक्षसी की पूजा भी इसी प्रकार अस्थि-मांस से करें। स्कन्द की पूजा पशु और मद्य से करें। इन आठों ही देवियों की पूजा भली प्रकार से प्रदक्षिणतः करें। इन देवियों का कोई पद विधान नहीं होता (ये वास्तुपद के बाहर होती है अतः) ये केवल पूजा ही ग्रहण करती हैं।

दिक्पालक्षेत्रपालश्च बलिं —

आच्छाद्यन्ते वस्त्रयुग्मैरम्बिका भद्रकुम्भके।
दिक्पालेभ्यो बलिं दद्यात्क्षेत्रपेभ्यो विशेषतः ॥ 17 ॥

अम्बिका और भद्रकुम्भ को दो अलग-अलग वस्त्रों से ढँककर दिक्पालों को बलि प्रदान करें। इसी तरह क्षेत्रपालों को भी बलि प्रदान करनी चाहिए।

प्राचीं इन्द्रपूजानिर्देशमाह —

ॐ पूर्वायां दिशापते वज्रहस्त महाबल।
ऐरावतस्कन्धारूढ **इन्द्रदेव यथाविधि ॥ 18 ॥**
आवाहनमन्त्रैः **पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।**
अष्टगजारूढ क्षेत्रपालैः परिवेष्टित सुराधिराज नमोऽस्तुते ॥ 19 ॥

इन क्षेत्रपालों में पूर्व दिशा के अधिपति इन्द्रदेव जो महाबली है और अपने हाथ में वज्र धारण करते है तथा ऐरावत के स्कन्ध पर सवारी करते हैं, की यथाविधि पूजा करनी चाहिए। इन्द्रदेव के आवाहन का मन्त्र है— हे आठ गजारुढ़ क्षेत्रपालों से परिवेष्टित सुराधिराज इन्द्रदेव! हम आपको नमस्कार करते हैं और आपका आवाहन करते हैं कि आप हमारी प्रदत्त बलि पूजा को ग्रहण करें, ग्रहण करें — स्वाहा।

आग्नेयां अग्निदेवपूजानिर्देशमाह —

ॐ आग्नेय्यां दिशापते श्रुवाहस्त महाबल।
मेषं चैव समारूढ अग्निदेव यथाविधि ॥ 20 ॥

आवाहनमन्त्रैः पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।
अष्टमेषारूढ क्षेत्रपालैश्च परिवेष्टित प्रेतराज नमोऽस्तुते॥ 21॥

इसी प्रकार यथाविधि पूजा-बलि-आवाहन अग्निदेव का भी करें जो आग्नेय कोण के अधिपति है। जो महाबली है और जो अपने हाथ में यज्ञ का स्रुवा धारण किए हुए है और मेष पर सवार हैं। आवाहन मन्त्रों से की गई पूजा और बलि को आप अष्ट मेषारूढ़ क्षेत्रपालों से परिवेष्ठित हे प्रेतराज! आपको नमस्कार है और आप हमारी प्रदत पूजा-बलि को ग्रहण करें, ग्रहण करें— स्वाहा।

दक्षिणदिशायां यमदेवपूजानिर्देशमाह —

आँ याम्यायां तु दिशापते दण्डहस्त महाबल।
महामहिषामरूढ यमदेव यथाविधि॥ 22॥
आवाहनमन्त्रैः पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।
अष्टमहिषारूढ क्षेत्रपेश्च परिवेष्टित प्रेताधिराज नमोऽस्तुते॥ 23॥

दक्षिण दिशा के अधिपति, महाबलवान, हाथ में दण्ड धारक, महामहिष पर आरूढ़ यमराज भी यथाविधि आवाहन मन्त्रों से 'पूजा-बलि ग्रहण करें, ग्रहण करें' ऐसे निवेदन करते हुए कहें कि 'हे प्रेताधिराज आप आठ महिषारूढ़ क्षेत्रपालों से परिवेष्टित होकर हमारी पूजा ग्रहण करें स्वाहा, आपको हमारा नमस्कार है।'

नैर्ऋत्यायां पूजानिर्देशमाह —

आँ नैर्ऋत्या च दिशापते खड्गहस्त महाबल।
प्रेतस्कन्धसमारूढ बलिदेव यथाविधि॥ 24॥
आवाहनमन्त्रैः पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।
अष्टप्रेतारूढ क्षेत्रपालैश्च परिवेष्टित प्रेताधिराज नमोऽस्तुते॥ 25॥

और, नैर्ऋत्य के दिशाधिपति, महाबलवान, हाथ में खड्ग धारण करने वाले प्रेतों के कंधों पर सवारी करने वाले बलिदेव की भी यथाविधि पूजा करें। कहें कि 'हे! अष्टप्रेतारूढ़ क्षेत्रपालों से परिवेष्टित प्रेताधिराज! आपको हमारा नमस्कार है; हम आपकों आवाहन मन्त्रों से पूजा-बलि निवेदित कर रहे है; इसे ग्रहण करें, ग्रहण करें, स्वाहा।'

परदिशायां जलेश्वरपूजानिर्देशमाह —

आँ पश्चिमायां दिशापते पद्महस्त महाबल।
नक्रं चैव समारूढ जलेश्वर यथाविधि॥ 26॥

आवाहनमन्त्रैः पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।
अष्टनक्रसमारूढ क्षेत्रपैः परिवेष्टित जलाधिराज नमोऽस्तुते॥ 27॥

और, पश्चिम दिशाधिपति, महाबलवान, हाथ में कमल धारण करने वाले, मगर पर सवारी करने वाले जलेश्वर वरुणदेव की भी यथाविधि पूजा करें। कहें कि 'हे आठ नक्रों-मगरों पर समारूढ़ क्षेत्रपालों से परिवेष्टित जलाधिराज वरुणदेव! हम आवाहन मन्त्रों से आपको बलि-पूजा निवेदित करते हुए नमस्कार करते हैं कि आप इसे ग्रहण करें, ग्रहण करें, स्वाहा।

वायव्यकोणयां वायुदेवपूजानिर्देशमाह —

ॐ वायव्यां तु दिशापते ध्वजहस्त महाबल।
मृगपृष्ठसमारूढ वायुदेव यथाविधि॥ 28॥
आवाहनमन्त्रैः पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।
अष्टमृगारूढ क्षेत्रपालैश्च परिवेष्टित पवनाधिराज नमोऽस्तु ते॥ 29॥

इसी प्रकार वायव्य दिशाधिपति, महाबलवान, हाथ में ध्वज धारण करने वाले तथा मृगारूढ़ वायुदेव की भी यथाविधि पूजा करें। कहें कि 'हे आठ मृगारूढ़ क्षेत्रपालों से परिवेष्टित, पवनाधिराज वायुदेव आपको नमस्कार है। हम आवाहन मन्त्रों से आपको बलि-पूजा निवेदन करते हैं, इसे ग्रहण करें, ग्रहण करें, स्वाहा।

उत्तरदिशायां निधिराजपूजानिर्देशमाह —

ॐ उत्तरस्यां दिशापते निधिहस्त महाबल।
हस्तिस्कन्धसमारूढ निधिराज यथाविधि॥ 30॥
आवाहनमन्त्रैः पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।
अष्टगजारूढ क्षेत्रपालैश्च परिवेष्टित निधिराज नमोऽस्तु ते॥ 31॥

और, उत्तर दिशा के अधिपति, महाबलवान, हाथों में निधि धारण किए हुए, हाथी के कन्धे पर सवारी करने वाले निधिराज कुबेर की भी यथाविधि पूजा करें। कहें कि 'हे आठ गजारूढ़ क्षेत्रपालों से परिवेष्टित निधिराज कुबेरदेव आपको नमस्कार है, आपको हम आवाहन मन्त्रों के साथ बलि-पूजा निवेदन करते हैं, उसे आप ग्रहण करें, ग्रहण करें, स्वाहा।

ईशान्यां रुद्रदेवपूजानिर्देशमाह —

ॐ ईशान्यां तु दिशापते शूलहस्त महाबल।
वृषपृष्ठसमारूढ रुद्रदेव यथाविधि॥ 32॥

आवाहनमन्त्रैः पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।
अष्टवृषारूढ क्षेत्रपालैश्च परिवेष्टित भूतराज नमोऽस्तु ते॥ 33॥

और, ईशानकोण की दिशा के अधिपति, महाबलवान, हाथ में शूल को धारण करने वाले और बैल की पीठ पर सवारी करने वाले रुद्र देव की भी यथाविधि पूजा करे। कहें कि 'हे अष्टवृषारूढ़ क्षेत्रपालों से परिवेष्टित भूतराज रुद्रदेव! आपको नमस्कार है; हम आपको आवाहन मन्त्रों से बलि-पूजा निवेदित करते हैं; इसे ग्रहण करें, ग्रहण करें, स्वाहा।'

अधस्तात्तु विष्णुदेवपूजानिर्देशमाह —

आँ अधस्तात्तु दिशापते चक्रहस्त महाबल।
गरुडं च समारूढ विष्णुदेव यथाविधि॥ 34॥
आवाहनमन्त्रैः पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।
अष्टगरुडस्थ क्षेत्रपालैश्च परिवेष्टित जगत्पते नमोऽस्तु ते॥ 35॥

इसी प्रकार अधस्तात्तु (नीचे स्थित) दिशाधिपति, महाबलवान, हाथ में चक्र को धारण करने वाले गरुड़ की सवारी करने वाले विष्णुदेव की भी यथाविधि पूजा करे। इस अवसर पर कहें कि 'हे आठ गरुड़ों पर सवारी करने वाले क्षेत्रपालों से परिवेष्टित जगत्पते! आपको नमस्कार है; हम आवाहन मन्त्रों से पूजा-बलि आपको निवेदित करते हैं; इसे आप ग्रहण करें, ग्रहण करें, स्वाहा।'

अथोर्ध्वायां ब्रह्मदेवपूजानिर्देशमाह —

आँ ऊर्ध्वायां तु दिशापते अक्षहस्त महाबल।
हंसे चैव समारूए ब्रह्मदेव यथाविधि॥ 36॥
आवाहनमन्त्रैः पूजा बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।
अष्टहंसारूढ क्षेत्रपालैश्च परिवेष्टित सृष्टिराज नमोऽस्तु ते॥ 37॥

और, ऊर्ध्व दिशा के अधिपति, महाबलवान, हाथ में अक्षमाला धारण करने वाले और हंस सवार ब्रह्मदेव की भी यथाविधि पूजा करें। कहें कि 'हे आठ हंसारूढ़ क्षेत्रपालों से परिवेष्टित सृष्टिराज-ब्रह्मदेव! आपको नमस्कार है, हम आपको आवाहन मन्त्रों से बलि-पूजा निवेदन करते हैं; इसे ग्रहण करें, ग्रहण करें, स्वाहा।'

अन्यदप्याह —

स्थानदेवा जलदेवाः स्थलदेवास्तथैव च।
तथाऽन्तरिक्षदेवाश्च भूमिदेवास्तथैव च॥ 38॥

तथा पातालदेवाश्च अमृतवृक्षदेवताः।
तथा प्रासाददेवाश्च गृहदेवास्तथैव च॥ 39॥
बृहद्देवाः क्षेत्रदेवा दद्यादेभ्यो बलिं बुधः।
क्षमापयेन्नमस्कृत्य तथैव सर्वदेवताः॥ 40॥

(इसके अनन्तर इसी क्रम में) स्थानदेव, जलदेव, स्थलदेव, अन्तरिक्षदेव, भूमिदेव, पातालदेव, अमृतवृक्षदेवता, प्रासाददेव, गृहदेव, बृहद्देव, क्षेत्रदेव आदि समस्त देवताओं को समझदार लोगों को बलि प्रदान करते हुए नमस्कार और क्षमा प्रार्थना करनी चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां दिक्पालादिवास्तुदेवपूजाबलिकर्मयुक्त्यधिकारो नाम षष्टितमं सूत्रम्॥ 60॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में दिक्पालादिवास्तुदेव पूजा-बलिकर्मयुक्त अधिकार नामक साठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 60॥

आचार्यसूत्रधारपूजानिर्णयो नामैकषष्टितमं सूत्रम्॥ 61॥

विश्वकर्मोवाच —

आचार्यं पूजयेत्तत्र वस्त्रालङ्कारभूषणैः।
स्वर्णपट्टैः कुण्डलाभ्यां कण्ठाभरणकङ्कणैः॥ 1॥
रत्नयुक्तमुद्रिकाभिः कटिसूत्रादिकैस्तथा।
पादाभरणकैश्चैव हवेन्द्र [1]साङ्गमालिकाः॥ 2॥

विश्वकर्मा बोले कि वास्तुपूजावसर पर आचार्य की वस्त्र, अलङ्कार, आभूषण, स्वर्णपट्ट, कानों के कुण्डलों, गले के आभरण और हाथों के स्वर्ण कङ्कणों, रत्नयुक्त अङ्गूठी, कमरबन्द करधनी, पाँवों के गहने, हवि वस्तु और समस्त अङ्गों में धारण हो सके—ऐसी मालाओं को प्रदान कर पूजन करना चाहिए।

परीपट्टैरूर्णवस्त्रैः [2]शिखिरोमाश्च छत्रकैः।
वाहनैर्युक्तमेवाथ यानझम्पानकोत्तमैः॥ 3॥
अश्वो गजो रथो वापि दातव्या भूमिसम्युताः।
ग्रामो देशाः पृथगुक्तं गुरुपत्नीं विशेषतः॥ 4॥

---

1. 'साङ्गमात्रिकाः' इति प्रकाशित पाठः।
2. 'शिखरो मात्र? छत्रकैः' इति प्रकाशित पाठः।

भूमिस्थानगेहदानमाचन्द्रार्कं च तत्फलम्।
वस्त्रालङ्करणैर्युक्तं गुरुं शिष्यस्तु भक्तितः॥ 5॥

इति गुरुपूजा।

इसी तरह सुन्दर रेशमी और ऊनी वस्त्रों से तथा मोरपङ्खों से बने हुए छत्रक, पङ्खों से युक्त वाहनों से, गाड़ी, ऐसे उत्तम यान झम्पानक अर्थात् जिन यानों से आसानी से किसी बाधा को छलाङ्ग लगाने में सफलता मिलती है; अश्व, गज, रथ, बावड़ी आदि भूमि सहित देनी चाहिए। ग्राम, देश आदि गुरु पत्नी को भी अलग से देने चाहिए। भूमि स्थान, ग्रह दानों को आचन्द्रार्क देना चाहिए अर्थात् ऐसा दान हो जो सूर्य-चन्द्र जब तक रहें तब तक के लिए देने चाहिए, वे वापस नहीं लिए जाए— तभी उनका पुण्यफल मिलता है। इसी तरह गुरु के शिष्य को भी भक्तिपूर्वक वस्त्रालङ्करण युक्त भेंट करनी चाहिए।

सूत्रधारप्रशंसामाह —

भूमेस्तले सूत्रधारो विश्वाधिपो द्वितीयकः।
वेदवेदाङ्गसम्भूतो हविष्याशी [1]क्षिते द्विजः॥ 6॥

इस भूमितल पर सूत्रधार एक प्रकार से दूसरा विश्वाधिप है। वह वेद-वेदाङ्ग से सम्भूत हविष्य को भोग करने वाला क्षिति पर रहने वाला द्विज है।

सूत्रधारं ततः प्राज्ञः सर्वसूत्रादिबन्धकम्।
वास्तुवेदप्रववतारं शास्त्रज्ञं प्रियवादिनम्॥ 7॥
माधुर्यालापनोपेतं संसारमोहमुद्रकम्।
यस्य नाशात्परे साध्यं धर्मार्थकाममोक्षकम्॥ 8॥
तं शिल्पिनं पूजयेत आर्यदेशसमुद्भवम्।
आर्यालापबालबोध्यं संसारार्णवतारणम्॥ 9॥
वाग्मिनं च तथा हेतुज्ञानातर्कितकौशलम्।
सर्वशास्त्रज्ञानवन्तं विज्ञानादिसमन्वितम्॥ 10॥

इस तरह सूत्रधार सभी प्रकार के सूत्रादि बन्धयुक्त प्राज्ञ एवं वास्तुवेद का प्रवक्ता तथा शास्त्रज्ञ और प्रियवादी होता है। वह मधुर वाणी में बातचीत करने वाला और संसार के मोह की मुद्रा का नाश करना इसके लिए परम साध्य है जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कारक है। ऐसे ही शिल्पी की पूजा करनी चाहिए

---

1. 'धिते ?' इति प्रकाशित पाठः।

जो आर्यदेश (भारत) में उत्पन्न हुआ हो क्योंकि आर्यों की बोली में बातचीत बालक भी सरलता से समझ सकते है, वह बोली बड़ी सरल एवं संसार सागर से तारने वाली है। ऐसे आर्य देशोत्पन्न शिल्पी वाग्मिन या बृहस्पति के समान वाक्पटु, बुद्धिमान और हेतुज्ञान से तार्किकता के कौशल को जानने वाले, सभी शास्त्रों में ज्ञानवान्, विज्ञानादि से समन्वित होते हैं।

शिल्पिनसम्मानाह —

पूजयेद् दिव्यवस्त्रैश्च दिव्यालङ्कारभूषितैः।
पृष्ठपट्टैर्नेत्रपट्टैः सुवर्णैर्दशाङ्ग[1]मालिकाः॥ 11॥
पुत्रकलत्रसंयुक्तं भ्रातृयुक्तं तथोत्तमम्।
सभृत्यं बलयुक्तं च शैलकर्माधिकारकम्॥ 12॥

ऐसे योग्य शिल्पी को दिव्य वस्त्रों, दिव्य अलङ्कारों और आभूषणों से भूषित करें। पीठ वाला पट्ट, महीन रेशमी कपड़ा (नेत्रपट्ट), सुवर्ण की बनी हुई दशाङ्ग मालाएँ आदि उनके पुत्र-पत्नी तक और भाइयों तक को तथा उनके उत्तम भृत्यबलों तक भी और पाषाण कर्माधिकारी, सलाट, तक्षक गणों को भी भेंट-पूजा करें।

कुटुम्बगृहचिन्ताश्च खाद्यपेयादिकोद्भवाः।
वस्त्रताम्बूलादि चिन्ता गृहेषु या भवन्ति च॥ 13॥
ताश्चापहारणीया वै कर्मचिन्ता यथा भवेत्।
ग्रामं वा भोग्यभूमिं वा कर्मकारोचितं यथा॥ 14॥
बलीवर्दाश्च वाहिनीयानझम्पानकादिकम्।
हलं सकूपं क्षेत्र च पुष्पोद्यानं फलैर्युतम्॥ 15॥
गृहं दिव्यं च भुवनं पञ्चभूम्यादिकं गृहम्।
ध्वजाकलशसंयुक्तं कर्त्तव्यं शिल्पिने तथा॥ 16॥

इसी प्रकार खाद्य, पेय आदि के कारण होने वाली कुटम्ब-गृहचिन्ता, घरों में आवश्यक वस्त्र ताम्बूलादि की चिन्ता जो प्रायः घर-घर होती है, उन सब चिन्ताओं का जो कर्मकारों में भी होती है— उन चिन्ताओं के निवारण हेतु उन कर्मकारों के लिए उचित ग्राम या भोगभूमि, खेती के लिए वलीवर्द अर्थात् बैल, गाड़ी, वाहन, यानादि झम्पादि से युक्त तथा हल[2] प्रमाण वाली ऐसी भूमि जो कूप, फल-पुष्पोद्यान

---

1. 'मात्रिकाः ?' इति प्रकाशित पाठः।
2. यहाँ हल से आशय हल के प्रमाण की भूमि से प्रतीत होता है। हल भू-माप की इकाई के रूप में स्वीकृत है। एक हल से जोती गई भूमि के माप को हल-माप कहा जाता है। वासिष्ठीपुत्र पुलुमवि के

युक्त हो देनी चाहिए। इसी प्रकार गृह, भुवन दिव्यस्वरूप के, यहाँ तक कि पाँच तलों तक के भवनों, गृहों को ध्वजा-कलश से युक्त सजावट के साथ शिल्पियों के लिए प्रदान करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

पादापत्यददे तस्या प्रेक्षनादिक्ष सन्तता: ?।
तेन तत् ह्रियते चैव गृहचिन्तादि बाह्यतः ॥ 17 ॥
एकचित्ते समाधिष्ठे प्रासादकर्मकौशलम्।
परब्रह्मानुष्ठानवत् लीयमानो यथा भवेत्॥ 18 ॥
तस्याहाय्यं वृद्धिहेतु प्रारब्धकृतनिश्चयम्।
तेनासौ लभते सिद्धिमिहलोके परत्र च॥ 19 ॥

इसी प्रकार उनके लिए (आपदाओं का निवारण करने वाले निरीक्षक पदादि की व्यवस्था करें) ताकि वे गृह विषयक चिन्ताओं को बाहर ही त्याग दें और एकचित से अर्थात् एकाग्र मन से प्रासाद कर्म कौशल दिखाने में समाधिष्ठ हो सकें। उनकी सांसारिक चिन्ताओं को दूर करने पर वे अपने कर्म-कौशल में इतने लीन हो जाएँ मानों वे परब्रह्मानुष्ठान में ही लीयमान हो गए हों। यह स्मरणीय है कि उन शिल्पियों के कर्म-कौशल दिखलाने में उनकी सहायता में वृद्धि हेतु ही उपर्युक्त तरीकों के प्रारब्ध के उपायों का कृतनिश्चय अर्थात् पूरी व्यवस्था की गई है, जिससे कि ये इस लोक और परलोक में भी सिद्धि का लाभ पा सके।

सूत्रधारसम्मुखे प्रार्थनानिवेदनम् —

सूत्रधारं तथाचार्यं बद्धहस्तः क्षमापयेत्।
पिता च मम त्वष्टा च इह लोके भवान् मतः॥ 20 ॥

यजमान को चाहिए कि इस सब भेंट-पूजा-सम्मान के बाद वह सूत्रधार तथा आचार्य से हाथ जोड़कर क्षमा याचना करें और कहे कि 'आप ही हे त्वष्टा! मेरे

द्वितीय शती के नासिक गुहाभिलेख में यह माप पहली बार देखने में आया है। (सेलेक्टेड इन्सक्रिप्शंस फ्रॉम महाराष्ट्र : एम. जी. दीक्षितार, पूना 1947 ई., भाग 1, पृष्ठ 208) ऐसी भूमि करमुक्त होती थी। कृष्णा-गुण्टूर (आन्ध्रप्रदेश) से प्राप्त तीसरी व चौथी शताब्द के एक अभिलेख से हलवाहा द्वारा हल से जोते जाने योग्य कर-मुक्त भूमि भिक्षुओं को पुण्यवृद्धि के प्रयोजन से दान में दिए जाने का उल्लेख मिलता है— ...हल सतस पदायिस...। (तत्रैव पृष्ठ 238) इतिहासकारों के अनुसार हल का वास्तविक भू-माप क्षेत्र निर्धारित करना कठिन है किन्तु अभिलेखों के अनुसार यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कृषि योग्य भूमि की, एक हल द्वारा वर्ष पर्यन्त जोती गई सारी भूमि का माप 'एक हल भूमि' से लगाया जा सकता है। डॉ. गोपीनाथ शर्मा का मत है कि मेवाड़ में भूमि का माप बीघा व हल से होता आया है जो छोटे और बड़े नाप थे। एक हल में 50 बीघा का प्रमाण होता था। बीघा साधारणतः 25 से 40 बाँस तक आंका जाता था। (राजस्थान के इतिहास के स्रोत, जयपुर 1982 ई. पृष्ठ 237)

पिता है इस लोक में — ऐसा मेरा मत है।

परत्र च स्वयं स्रष्टा तथा मम भवान् गुरुः।
त्वं माता च पिता चैव त्वं च पितृपितामहः॥ 21॥
संसारपाशच्छेदं च त्वं कुर्या मम योगतः।
भूषणार्थैः पूजनीया वस्त्रैश्च खातकारकाः॥ 22॥

आप ही स्वयं सृष्टा है तथा आप ही मेरे गुरु है; आप ही माता और आप ही पिता तथा आप मेरे पितृ, पितामह ही हैं। सुयोग से कृपा करके आपने मेरे संसार पाश रूपी फँदे को काट दिया है और मुझ से बन पड़ी, उतनी मैंने भूषण से, अर्थ और वस्त्र से हे खातकारकगणो! मैंने आपकी पूजा की।

विश्रामस्तद् दिने वास्तो सर्वविघ्नोपशामकः।
दीनान्धयाचकेभ्यस्तु तुलादानं समर्पयेत्॥ 23॥

अस्तु, आज के दिन अब आप विश्राम करें; आज के दिन को विश्राम का दिवस समझें जिससे वास्तु सर्व विघ्नों को शमन करने वाला सिद्ध हो सके।' इसके बाद यजमान दीनों को, अन्धों, याचकों को तुलादान[1] की सामग्री को समर्पित कर दें।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छा-
यामाचार्यसूत्रधारपूजानिर्णयाधिकारो नामैकषष्टितमं सूत्रम्॥ 61॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में आचार्य-
सूत्रधार पूजा निर्णय अधिकार नामक इकसठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 61॥

वास्तुपरिभ्रमणादिगुणदोषनिर्णयो नाम द्वाषष्टितमं सूत्रम्॥ 62॥

विश्वकर्मोवाच —

अतः परं प्रवक्ष्यामि ज्ञानं च धर्मदुर्लभम्।
वास्तुविद्यापूर्वकं च सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि इसके आगे मैं वास्तुविद्यापूर्वक सर्व सिद्धि देने वाले धर्म हेतु परम दुर्लभ ज्ञान के विषय में कहता हूँ।

---

1. तुलादान की सामग्री का वर्णन मत्स्यपुराण, लिङ्गपुराण व अग्निपुराण में आया है। मत्स्यपुराण में तुलापुरुषदान की विधि आई है। आरोहणकाल में राजा खड्ग, ढाल, कवच एवं अन्य समस्त आभरणों से भूषित रहे एवं स्वर्ण निर्मित सूर्य सहित धर्मराज को बँधी मुट्ठी वाले दोनों हाथों से पकड़कर विष्णु के मुख की ओर देखता हुए स्थिर रहे— सखड्गचर्मकवचः सर्वाभरणभूषितः॥ धर्मराजमथादाय हैमं सूर्येण संयुतम्। कराभ्यां बद्धमुष्टिभ्यामास्ते पश्यन् हरेर्मुखम्॥ (मत्स्य. 274, 65-66)

वास्तुदिशामुक्तिमानं रव्यानुसारेण वास्तुमुखस्थितिं —

ज्योतिःशास्त्रप्रणेतारं सर्वकामफलप्रदम्।
प्रणम्यं तं च पुरुषं राशिमध्ये तथा स्थितम्॥ 2॥
रवौकन्यातुलालौच पूर्वे शिरः समाश्रितः।
धनोश्च मकरे कुम्भे दक्षिणे तु व्यवस्थितः॥ 3॥
मीने मेषे वृषे चैव पश्चिमे तु समाश्रितः।
मिथुने सिंहकर्के च ह्युत्तरेण व्यवस्थितः॥ 4॥
सर्वकालक्रमोऽयं च राशिमध्ये ह्यतः शृणु॥
देवताश्च क्रमयोगेन स वास्तुः सरते महीम्॥ 5॥

यह ज्ञान ज्योतिष शास्त्र के जानकारों के लिए सर्वकाम फल प्रदान करने वाला है। अतः राशियों के मध्य स्थित रहने वाले पुरुष को प्रणाम करें। वृश्चिक, कन्या, तुला (के सूर्य में) पूर्व की ओर सिर रखे हुए; धनु, मकर कुम्भ को दक्षिण की ओर सिर किए हुए; मीन, मेष और वृष को पश्चिम की ओर सिर किए हुए; मिथुन, सिंह और कर्क का उत्तर दिशा की ओर सिर किए हुए— इस समस्त काल क्रम को राशियों के मध्य चलता हुआ समझें। अतः इसके बारे में सुनें कि देवता भी अपने क्रमानुसार ही इस भूमि पर वास्तु में आते हैं।

यत्र भानुस्तत्र शिरं लक्षितव्यं रविक्रमात्।
अन्यथा कुरुते दुःखं शिरो वास्तावलङ्कृतम्॥ 6॥

उक्त विधि से जहाँ सूर्य की स्थिति हो वहीं वास्तु का सिर लक्षित करके सूर्य के ही क्रम से वास्तु का अलङ्करण करना चाहिए, यदि वास्तु के सिर का इसके अतिरिक्त अलङ्करण किया जाएगा तो दुःख का कारण बनेगा।

देवागारं गृहं यत्र न कुर्याच्छिरः सन्मुखम्।
मृत्युरोगभया नित्यं शस्तं च कुक्षिसन्मुखम्॥ 7॥

वहाँ देवागार, देवता के मन्दिर तथा घर वास्तुपुरुष के सिर के सम्मुख कभी भी नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर नित्य ही रोग और मृत्यु का भय बना रहता है अस्तु, वास्तुदेव की कुक्षि के सन्मुख ही देवागार, गृहादिक बनाने चाहिए, यही प्रशस्त माना गया है।

इत्यमनन्तर एषां फलमाह —

कन्यातुलावृश्चिके च भास्करो यदि संस्थितः।
पूर्वे मुखं न कर्त्तव्यं गृहं भवति निष्फलम्॥ 8॥

यदि सूर्य कन्या, तुला और वृश्चिक राशि पर हो तब कभी भी घरों को पूर्व की ओर मुख किए हुए नहीं बनाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर ये भवन गृह निष्फल हो जाएंगे।

मकरे चैव धनुषि कुम्भे वा च दिवाकरे।
याम्यादिशि मुखं कुर्याद्राजचौराग्निजं भयम्॥ 9॥

यदि सूर्य धनु, मकर, और कुम्भ राशि पर स्थित हो तो भवनादिक का मुख दक्षिण दिशा की और नहीं बनाएँ क्योंकि ऐसा करने पर राज्य की ओर से, चोर-तस्कर तथा अग्नि से होने वाला भय बना रहेगा।

मीने मेषे वृषे चैव पश्चिमा दिग् च दूषिता।
स्त्रीणां रोगं महाघोरं भवति ह्यतिदारुणम्॥ 10॥

यदि सूर्य मीन, मेष और वृष राशि पर स्थित हो तब भवनादिक का मुख पश्चिम दिशा की और नहीं रखें क्योंकि ऐसा करने पर घर की स्त्रियों में महाघोर रोग अतिदारुण रूप से बढ़ने का भय बना रहता है।

मिथुने सिंहकर्के च वेश्म नैवोत्तराननम्।
दोषशोकभयं तत्तु न कुर्याच्च विचक्षणैः॥ 11॥

इसी प्रकार यदि सूर्य मिथुन, सिंह और कर्क राशिस्थ हो तो घरों को उत्तराभिमुखी कभी नहीं बनाएँ। इसे विद्यावान् लोगों ने दोषपूर्ण बताया है और शोक तथा भय का कारक कहा है।

तत्र ना सर्पति वास्तु [1]भ्रमतेरग्निमध्यतः।
पूर्वदक्षिणतश्चैव पश्चिमोत्तरतो मुखम्॥ 12॥

अग्नि कोण के मध्य से सर्प-वास्तु नहीं चलता है अथवा नहीं फिरता। अस्तु, पूर्व-दक्षिण तथा उत्तर-पश्चिम की ओर मुख से भवन बना सकते हैं।

शिरो नेत्रे च बाहू च उदरं कटिजङ्घया।
वेधयन्ते गृहे मर्म पूजाहानिर्महद्भयम्॥ 13॥

यदि वास्तुपुरुष के सिर, नेत्र, बाहू, उदर, कटि, जङ्घा को गृह के मर्म वेधते हों तो पूजा की हानि और महद्भय की उत्पत्ति होगी।

कन्यादिसङ्क्रान्तियोगे प्राच्यादिक्रमतो दिशि।
न कुर्वीतं शिरो वास्तोर्न कार्यं तन्मुखं गृहम्॥ 14॥

---

1. 'भ्रमणै ?' इति प्रकाशित पाठः।

कन्यादि संक्रान्ति योगों में प्राच्यादि दिशा क्रम से वास्तु का सिर नहीं करना चाहिए और उस सिर की ओर गृह का मुख भी नहीं रखना चाहिए।

क्षपाकरेणैव गृहं पुरस्तात् कुर्यान्न वास्तु न च यातु कर्ता।
पतन्ति खन्या न च दृष्टिसंस्थिता तस्मात्प्रयत्नेन त्विदं विचिन्त्यताम् ॥ 15 ॥

इति वास्तुदिशामुक्तिमानम्।

पिशाचों (प्रवृत्तिवालों या चन्द्रमा) के अनुसार गृह नहीं बनवाएँ क्योंकि उनके बनाए गए गृह, वास्तु तथा वे पिशाच वास्तुकर्त्ता[1] सभी खड्डे में पड़ते हैं परन्तु जिनके सही-सही शास्त्र बुद्धि की आँखें हैं, वे खड्डे में नहीं पड़ते। अतएव इस बात पर पूरे प्रयत्न के साथ ध्यान देना और इनको हमेशा मनन करते रहना चाहिए।

अथ दिग्विदिक् वास्तुवेधमाह —

दिशायां विदिशायां च वास्तुवेधविशोधनम्।
जीर्णे नवतरे वापि वेधदोषं विवर्जयेत् ॥ 16 ॥

दिशाओं और विदिशाओं में जो वास्तुवेध पड़ते हों, उनका विशोधन अवश्य करना चाहिए परन्तु जीर्ण वास्तु को पुनः उद्धार करके नवीन बनाया जाता हो तो कोई वेध दोष का चिन्तन नहीं करें।

वेधा नः कथिता पूर्वं दोषांश्चैव ततः शृणु।
एकपादादिकं वास्तु पर्यन्तं सहस्रान्तिकम् ॥ 17 ॥

अब तक मैंने वेधों के बारे में नहीं कहा है। अस्तु, अब वेधों के दोषों को सुनो जो एक पादादिक वास्तु से सहस्र पादादिक वास्तु पर्यन्त पाए जाते हैं।

सुरस्थानं यदा शून्यं पदं पूजां विना यदा।
विघ्नोत्कटं महाघोरं कुरुते दारुणं भयम् ॥ 18 ॥

जिस वास्तु में यदि सुरस्थान बिना पूजा के और बिना पद के शून्य ही रह जाए तो ऐसे वास्तु को 'विघ्नोत्कटवास्तु' कहते है जो महाघोर दारुण भय कारक बनता है।

वीथिकान्तरबाह्येषु पदमेकं सुरैर्विना।
विरोधं गोत्रकलहं मुक्तकोणस्य तत्फलम् ॥ 19 ॥

---

1. पिशाच से आशय सम्भवतः पिशाचपद भी हो सकता है। मयमतं में पैशाचपद का वर्णन हुआ है। नारदसंहिता में भी पिशाचांश का वर्णन है। इक्यासीपद वास्तुचक्र में मध्य के नौ कोष्ठक ब्रह्मस्थान के होने से त्याज्य हैं, चक्र के चारों ही ओर 32 कोष्ठकों को छोड़कर समीप के 24 कोष्ठक पिशाचांश कहे जाते हैं। इसमें यदि गृहारम्भ, शिलान्यासादि किया जाता है तो दुःख, शोक तथा भयप्रद होता है— मध्ये नवपदं ब्रह्मस्थानं तदतिनिन्दितम्। द्वात्रिंशदंशाः प्राकाराः समीपांशाः समन्ततः॥ पिशाचांशा गृहारम्भे दुःखशोकभयप्रदाः। शेषास्युर्गृहनिर्माणे पुत्रपौत्र धनप्रदाः॥ (नारद. 31, 20-21)

जिस वास्तु की वीथिका अन्दर और बाहर की ओर से सुरों के बिना हो तो ऐसे वास्तु को 'विरोधवास्तु' (मुक्त कोण) कहते हैं। इसका फल यह होता है कि अपने ही गोत्र में कलह उत्पन्न होता है और बिखराव उत्पन्न करता है।

अन्यपृष्ठे यदा चान्यं प्रासादं पुरमन्दिरम्।
खादकं नाम तद्वास्तु परस्परविरोधकृत्॥ 20॥

जिस वास्तु में प्रासाद मन्दिर आदि एक के पीछे एक बने हों तो ऐसे वास्तु को 'खादक' नाम दिया जाता है जो आपस में विरोध उत्पन्न कराता है।

कुक्षिद्वारं गृहे वापि कुर्याद्वा सुरसद्मनि।
विभ्रमं नाम तद् वास्तु विभ्रमेत गृहाधिपम्॥ 21॥

यदि देवता के मन्दिर का या गृह का कोई भीतरी द्वार (कुक्षि द्वार) बना हो तो ऐसे वास्तु को 'विभ्रम' नामक वास्तु कहते हैं। उसके गृहस्वामी को सदा ही भ्रम बना रहता है।

कुक्षिभागे यदा चान्यं गृहं च सुरसद्म वा।
कुक्षिदं नाम तद्वास्तु विभ्रमेनैतद् दृश्यत॥ 22॥

यदि इसी तरह देवता के मन्दिर के या गृह के भीतरी भाग (कुक्षिभाग) में कोई अन्य देव मन्दिर या अन्य गृह बना हो तो उसे 'कुक्षिदवास्तु' नाम दिया गया है। इसे देखते ही विभ्रम उत्पन्न होने लगता है।

अग्रे द्वारोन्नतं गेहं निम्नगं मध्यसंस्थितम्।
उच्छ्रितं नाम तद् वास्तु वृद्धिपूजादिकं हनेत्॥ 23॥

जिस गेह के आगे का द्वार उन्नत हो और मध्य का द्वार नीचा हो उस वास्तु को 'उच्छ्रितवास्तु' नाम दिया गया है। ऐसे वास्तु वृद्धि, पूजादिक में हानि पहुचाते हैं।

समगृहं समरूपं द्वारमध्ये पट्टाग्रजम्।
बिन्दूकं नाम तद् वास्तु हनेच्च सन्तत्यादिकम्॥ 24॥

समान रूप वाले दो समान गृहों के मध्य का द्वार यदि चौकी युक्त हो तो ऐसे वास्तु का नाम 'बिन्दूकवास्तु' नाम दिया गया है। यह दोष सन्तानादि की मृत्यु का कारण बनता है।

अन्यान्य दोषमाह —

गृहव्यासकर्णायतं त्रिपञ्चहस्तमुच्छ्रितम्।
द्रव्यादिकं बहुकाष्ठं शाश्वतं न भवेद् गृहम्॥ 25॥

जिस गृह का व्यास कर्णायत हो और वह पन्द्रह हाथ (गज) ऊँचा हो उसको 'द्रव्यादिकवास्तु' कहते है। ऐसा बहुत से काष्ठ से बनता है, इसलिए यह गृह शाश्वत अर्थात् चिरस्थायी नहीं होता है।

कर्णशाला यदा लग्ना आग्नेय्यां दिशि संश्रिता:।
अग्निदं नाम तद्वास्तु कुरुतेऽग्निभय ध्रुवम्॥ 26॥

यदि किसी गृह की कर्णशाला (कोने में निकला हुआ कक्ष) आग्नेय दिशा से लगी हुई हो तो ऐसे वास्तु को 'अग्निद' नाम दिया गया है। ऐसे वास्तु से निश्चय ही अग्निभय बना रहता है।

नैर्ऋत्ये च यदा लग्नाः शालाश्च वास्तुबाह्यतः।
नैर्ऋत्यं नाम तद्वास्तु व्याध्याधिक्यं तु मृत्युकृत्॥ 27॥

यदि किसी गृह की नैर्ऋत्य दिशा से लगी हुई कोई शाला बाहर की ओर बनी हुई हो तो उसे 'नैर्ऋत्य वास्तु' नाम से कहा है। उसमें इतनी व्याधियाँ आती है कि जिनसे मृत्यु का सङ्कट ही उत्पन्न हो जाता है।

वायव्ये तु यदा लग्नाः शालाश्च गृहबाह्यतः।
वायव्यं नाम तद् वास्तु गृहे वायुभयं भवेत्॥ 28॥

इसी प्रकार से गृह की वायव्य दिशा से लगी हुई कोई शाला बाहर की ओर बनी हो तो ऐसे वास्तु का 'वायव्य' नाम दिया गया है, ऐसे घर में वायु (अन्धड़, प्रभञ्जनादि) से भय सदा बना रहता है।

ईशाने तु यदा लग्नाः शालाश्च गृहबाह्यतः।
देवकं नाम तद्वास्तु देवदोषः सदा भवेत्॥ 29॥

यदि किसी गृह के ईशान कोण से लगी हुई कोई शाला बाहर की ओर बनी हुई हो तो ऐसे वास्तु को देवक वास्तु कहते हैं। इसमें सदा ही देव दोष बने रहते हैं।

अधोभम्यां तु ये दोषास्तथैव चोर्ध्वमादिशेत्।
ऊर्ध्वभूमिदिशाश्रं चैतद्गुणं दोषमादहेत्॥ 30॥

मकानों, घरों में अधो भूमि (नीचे के तल) में जो-जो दोष बताए गए हैं, वे ही दोष ऊपर के तलों में भी उसी प्रकार होते है, ऐसा समझे। अस्तु, ऊँचे तल या मंजिलों की दीवारों (अश्र) की दिशाओं के भी यह गुण-दोष दु:खदायी होते हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
वास्तुपरिभ्रमणादिगुणदोषनिर्णयाधिकारो नाम द्वाषष्टितमं सूत्रम्॥ 62॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में
वास्तुपरिभ्रमणादि गुण-दोष निर्णय अधिकार नामक बासठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 62॥

स्पष्टार्थ चक्र[1]

चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्र	आश्विन	कार्तिक	मार्ग	पौष	माघ	फाल्गुन	मास
शो.	धन प्रा.	मरण	पशु हा.	पशुवृद्धि	शून्य	कलह	मृत्यु नाश	धान्य	धा.	अग्निभय	श्री	फल

अथ तिथ्यानुसारेणगृहारम्भफलमाह —

तृतीदया पञ्चमी चैव सप्तमी नवमी तथा।
एकादशीत्रयोदश्यौ तिथयश्च सुखावहा: ॥ 5 ॥

इसी तरह तिथियों के बारे में भी विचार किया जाता है कि तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, नवमी, एकादशी और त्रयोदशी तिथियाँ शुभ और सुखदायी हैं।

बलादीनां विचारमाह —

चन्द्रताराबलं भर्तू राजमानं हि शस्यते।
सूर्यपाततिथिं दद्याद् विष्टिगण्डान्तवर्जितम्॥ 6 ॥

चन्द्र और ताराबल देखकर निकाला गया मुहूर्त भर्ता को राजा से सम्मान दिलाने वाला, शुभ होता है। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उस समय कोई सूर्यपात तिथि[2], विष्टिकरण (भद्रा)[3], गण्डान्त[4] आदि न हो।

---

1. श्रीपतिभट्टाचार्य का मत है— शोको धान्यं मृतपशुहृतीं द्रव्यवृद्धिर्विनाशो युद्धं भृत्यक्षतिरथ फलं श्रीश्च वह्नेर्भयं च। लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति भुवनारम्भकर्तुः क्रमेण चैत्रादूचे मुनिरिति फलं वास्तुशास्त्रोपदिष्टम्॥ (ज्योतिषरत्नमाला 17, 14)
2. महेश्वरोपाध्याय ने ज्योतिषवृत्तशतं में त्याज्य विषयों को लिखा है। यथा— नक्षत्रादि न संयुता तिथिद्दतीद्वैकोनविंशाष्ट दिक्त्रि:सप्ताङ्गतित च शैल विकृती: वर्हत्प्रसङ्ख्येषु च। धिष्ण्येब्दिन्दु युतेषु दण्डकमुखायोगा भवन्ति क्रमात त्याज्या: कर्मसु शोभनेषु सुधियो सर्वेषु देशेषु वै॥ वाराणां त्रितयं तिथि: स्पृशति या वारस्तिथीनां त्रयं त्याज्योर्यम्णइने दिने तु हिमगौब्राह्मयस्तथा राक्षस:। पित्र्यस्यो क्षितिजे बुधे चभिजितोरक्षोभसोर्वाक्पतौ तिथ्यांशो पितृवेधसोभृगुसुतो- युषोशयो: सूर्यजे॥ (ज्योतिषवृत्त. 1, 5-6)
3. मास के शुक्लपक्ष में चतुर्थी, अष्टमी, एकादशी एवं पूर्णिमा तथा कृष्णपक्ष में एक-एक तिथि पूर्व अर्थात् तृतीया, सप्तमी, दशमी और चतुर्दशी को भद्रा की पुच्छ होती है। यह उक्त तिथियों में क्रमश: आठवें, पहले, छठे, तीसरे, सातवें, दूसरे, पाँचवें और चौथे प्रहर के अन्त में तीन-तीन घटी तक होती है। उक्त तिथियों में उक्त अवधि को ही शुभ जानना चाहिए, शेष अवधि शुभ कार्यार्थ त्याज्य होती है। इसी प्रकार चन्द्रमा और खलग्रहों (सूर्य, मङ्गल, शनि, राहु व केतु व इनसे युक्त बुध एवं क्षीण चन्द्रमा) का लग्न और नवांश भी त्याज्य है जैसा कि बृहस्पतिसंहिता में भी आया है— सिते चतुर्थ्यामन्त्यार्धमष्टम्याद्यार्धमेव च। एकादश्यां परार्धे तु पूर्वार्धे पूर्णशीतगौ॥ कृष्णे तृतीयान्त्यार्ध हि सप्तम्याद्यार्धमेव च। दशम्यामुत्तरार्धं तु चतुर्दश्यर्धमादित:। विष्ट्याख्योऽयं महादोष: कथितोऽत्र समस्तग:। तदानीं कृतसत्कर्मकर्त्रा सह विनश्यति॥ (पीयूषधाराटीका 1, 43 पर उद्धृत)
4. त्रिविध गण्डान्त के विषय में ज्योतिष की मान्यता यह भी है कि नक्षत्र, तिथि व लग्न या राशि संज्ञक तीनों ही गण्डान्त का त्याग करना चाहिए। नक्षत्र गण्डान्त में नौ 2 के अन्त में 2 घटी, तिथि में पाँचवीं 2 के बाद 1 घटी तथा लग्न या राशि गण्डान्त में चौथी 2 के अन्त वाली घटी का त्याग किया जाना

इह वै सूत्रपातैश्च क्रियाः प्रासादकर्मणि।

कार्याः पुरनिविशे तु प्रारम्भे भवनस्य च॥ 7॥

भवन, प्रासादों के निर्माण के सूत्रपात के आरम्भ अर्थात् डाकवेल डालने (चूर्णादि डालकर या डोरी आदि बाँधकर भूमि चयन) तथा पुर निवेश, भवनादि के प्रारम्भ करने की यही विधि है।

भूम्यारम्भे शिलान्यासे द्वारस्तम्भोच्छ्रयादिषु।

आदित्ये चोत्तरस्थे च शोभने लग्न एव च॥ 8॥[1]

इत्यारम्भादिशस्तमासादीनाः।

भूमि चयन के आरम्भ में, शिलान्यास के अवसर पर, द्वार तथा स्तम्भों को खड़ा करते समय सदा ध्यान रखें कि सूर्य की स्थिति उत्तरायण में हो और लग्न भी शुभ और शोभन हो।

निर्माणोपरान्त प्रासादप्रतिष्ठाविधिं —

प्रतिष्ठाद्यं प्रवक्ष्यामि प्रोक्तं यत्परमेश्वरैः।

अहं तत्कथयिष्यामि प्राग्दैवज्ञैश्च भाषितम्॥ 9॥

अब जबकि भवन, प्रासादिक बनकर तैयार हो जाए तब उनकी प्रतिष्ठा होना भी परम आवश्यक है, उसके बारे में परमेश्वर ने जो प्रतिष्ठा विधि कही है, उसे मैं भी वैसे ही पुनः कहता हूँ, जैसे पहले के देवज्ञों, ज्योतिषियों ने कही थी।

दीक्षा च सर्वकालेषु प्रतिष्ठा पञ्चमासिकी।

चैत्रश्रावणवैशाखे शिवरात्रौ च कीर्तिके॥ 10॥

यह ध्यान में रखने की बात है कि दीक्षा और प्रतिष्ठादि सभी का समय पाँच मास का होता है। ये हैं— चैत्र, श्रावण, वैशाख, शिवरात्रि और कार्तिक मास।

दीक्षाश्च द्वादश$_{12}$ प्रोक्ता मासे मासे च शाश्वताः।

चाहिए। आश्लेषा, मूल एवं गण्डान्त की निवृत्ति के लिए अपने निमित्त शुभैच्छु जनों को विधिपूर्वक सूतकान्त में तीसरे मास में अथवा वर्ष के अन्त में, उसी जन्म नक्षत्र में उसकी शान्ति शास्त्रोक्त विधि से करवानी चाहिए, ऐसा वशिष्ठ का मत है— नैर्ऋत्य भौजङ्गमगण्डदोषनिवारणायाभ्युदयाय नूनम्। पितामहोक्तां रुचिरां च शान्तिं प्रकुर्याद्वंशस्य हिताय नूनम्॥ शास्त्रोक्तरीत्या खलु सूतकान्ते मासे तृतीयेऽप्यथ वत्सरान्ते। कुर्याच्छान्तिं तदृक्षे वा तद्दोषस्यापनुत्तये॥ (वशिष्ठसंहिता 42, 22 एवं 27-28)

1. उक्त श्लोक समराङ्गण. से तुलनीय है— द्वितीया पञ्चमी मुख्या सप्तमी नवमी तथा। एकादशीत्रयोदश्यस्ति (श्यौ ति) थयः स्युः शुभावहाः॥ चन्द्रताराबलं भर्तुरनुकूलं च शस्यते। इयं हि सूत्रपाताख्या क्रिया प्रासादकर्मणि॥ कार्या पुरनिवेशे च प्रारम्भे भवनस्य च। शिलानिवेशने द्वारस्तम्भोच्छ्रायादिकेषु च॥ आद्रियेत सिते पक्षे शोभने लग्न एव हि। (समराङ्गण. 26, 5-8)

धर्मार्थकाममोक्षाश्च शिष्यैर्वै गुर्वनुग्रहात् ॥ 11 ॥

दीक्षा भी बारह कही गई है जो प्रति मास शाश्वत रूप से धर्म, काम, मोक्ष के हेतु से शिष्यों को गुरु के अनुग्रह से प्रदान की जाती है।

फाल्गुने वाऽथ चैत्रे वा माघे वैशाख उत्तमा।
ज्येष्ठे मासे तथाऽऽषाढे आदित्ये चोत्तरस्थिते ॥ 12 ॥

इसके लिए फाल्गुन, चैत्र, माघ, वैशाख, ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मास सूर्य के उत्तरायण में स्थिति में होने से उत्तम मानी गई है।

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी चाऽथ सप्तमी।
दशम्येकादशी रम्या पूर्णिमा च त्रयोदशी ॥ 13 ॥

इसी तरह तिथियों में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी और पूर्णिमा बड़ी ही रम्य सुन्दर शुभ मानी गई हैं।

उत्तरात्रयरोहिण्य आर्द्रा चैव पुनर्वसू।
पुष्यानुराधाश्रवणं मृगस्वात्यौ च हस्तकम् ॥ 14 ॥
मूलं च नक्षत्राणि हि गृहे विष्टिविवर्जितम्।
एतत्प्रोक्तं प्रतिष्ठादौ देवानां देववेश्मनाम् ॥ 15 ॥

इसी तरह शुभ नक्षत्रों का भी ध्यान रखना चाहिए जो इस प्रकार है— तीनों उत्तरा (उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपद), रोहिणी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा, श्रवण, मृगशिरा, स्वाती, हस्त और मूल— ये नक्षत्र गृह निर्माण के लिए ठीक हैं, इनमें यही ध्यान रखना आवश्यक है कि उस समय विष्टिकरण या भद्रा नहीं हो। यही समयादि देवताओं के मन्दिरों की प्रतिष्ठा में भी उपयुक्त कहा गया है।

नक्षत्रफलमाह —

उत्तरायां सदा वृद्धिर्हस्ते सिद्धिर्यथेप्सिता।
ज्ञानलाभश्च श्रवणे मूले नन्दन्ति मन्त्रिणः ॥ 16 ॥
आर्द्रायां चैव सौभाग्यं रोहिण्यां न च संशयः।
स्वातिः शान्तिप्रदा नित्यमनुराधा वरप्रदा ॥ 17 ॥
पुनर्वस्वोः प्रजावृद्धिः पुष्ये नीरोगिताश्रियौ।
एतावन्त्येव लग्नानि यानि पूर्वोदितानि च ॥ 18 ॥

इति द्वादशप्रतिष्ठाः।

(अब इन नक्षत्रों में कार्यारम्भ के फल कहते हैं) उत्तरा नक्षत्र में कार्यारम्भ करने पर सदा वृद्धि होती है; हस्त में भी जैसी चाहो वैसी सिद्धि प्राप्त होती है;

श्रवण में ज्ञान लाभ होता है और मूल में मन्त्रिगणों में आनन्द होता है। आर्द्रा में सौभाग्य और रोहिणी में भी निश्चित सौभाग्य मिलता है; स्वाती में शान्ति प्राप्त होती है और अनुराधा नक्षत्र में किया गया कार्य सदा वरद होता है। पुनर्वसु में प्रजावृद्धि होती है और पुष्य में निरोगता और श्रिय, सम्पत्ति आदि इन नक्षत्रों में आने वाले लग्नों के पूर्व में उदित होने पर मिलते हैं।

अथ प्राचीमतमाह —

प्राचीमतः प्रवक्ष्यामि दिङ्मूढभ्रान्तिनाशिनीम्।
सा च पञ्चविधा उक्ता कथये यामनुक्रमात्॥ 19॥

अब मैं प्राची साधन-मत के बारे में कहता हूँ, (प्राच्यादि दिशाओं के साधन के अभाव में) भवन या प्रासाद के दिङ्मूढ़ होने की भ्रान्ति का विनाश हो जाता है। यह प्राची साधन भी पाँच प्रकार का कहा गया है जिसे मैं अनुक्रम से कहता हूँ।

राश्यानुसारेण शङ्कुच्छायाविचारः —

दिनादौ मेषतुलयोः कृत्तिकाश्रवणोदये।
चित्रास्वात्यन्तरे चेव शङ्कुच्छाया ध्रुवेषु च॥ 20॥

दिवस के आरम्भ के समय तो मेष और तुला राशि का, उदय के पश्चात् कृतिका व श्रवण नक्षत्र का चित्रा व स्वाती नक्षत्र के अन्तर पर शङ्कु की छाया ध्रुव की ओर पड़ती है।

नक्षत्रवेधवशाद्दिक्साधनम् —

कृत्तिकोदये या प्राची सा प्राची श्रवणोदये।
चित्रास्वात्यन्तरे प्राची तत्र सूत्रान्तरोत्तरा॥ 21॥
ध्रुवशङ्कोद्भवा प्राची सूत्रसूत्रान्तरोत्तरा।
दिनादौ मेषतुलयोः सूर्यसूत्रान्तरोत्तरा॥ 22॥

कृतिका नक्षत्र के उदय होने पर जो प्राची (पूर्व) होती है, वही प्राची श्रवण नक्षत्र के उदय होने पर होती है और जो प्राची चित्रा और स्वाती नक्षत्र के अन्तर पर होती है और वहाँ उत्तरोत्तर सूत्र-सूत्र का अन्तर हो जाता है।[1] ध्रुव शङ्कु के

---

1. कात्यायन शुल्बसूत्र में कहा गया है कि कृतिका, पुष्य, श्रवण और चित्रा स्वाती का अन्तर प्राची दिशा का रूप है अर्थात् कृतिका वेध की भाँती पुष्य व श्रवण का भी वेध करके प्राची या पूर्व दिशा का ज्ञान करना अपेक्षित होता है। यह साधन युगमात्र या 86 अङ्गुल नक्षत्रोंके ऊपर चढ़ने पर किया जाता है— कृतिका श्रवणं पुष्यं चित्रास्वात्योर्यदन्तरम्। एतत्प्राच्या दिशो रूपं युगमात्रोदिते पुरे॥ (कात्यायन. 34) यह मत है कि उज्जयिनी से दक्षिण में रहने वालों को चित्रा व स्वाती के अन्तर से पूर्वा-पर दिशा का ज्ञान करना चाहिए

उद्भव से प्राची सूत्र-सूत्रान्तर जाने, वहाँ दिन के आरम्भ में मेष और तुला राशि में सूर्य का भोग एक मार्गतः होता है।

स्यात्पलत्रयतो वृद्धिर्ह्रस्वे ह्रस्वानुवर्धयेत्।
ह्रासवृद्धीअर्बुदार्द्धमयनं दक्षिणोत्तरम्॥ 23॥

वह तीन-तीन पलों से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ थोड़ा-थोड़ा अनुवर्धन प्राप्त करता जाता है। यह ह्रास-वृद्धि दिन के अर्बुदार्ध अर्थात् मध्याह्न सूर्य की ऊँचाई तक आते-आते दक्षिण और उत्तर दिशा का सूत्रक हो जाता है।

समक्षित्योपायमाह —

जलाग्रमस्तकभवा साधने स्यात् समक्षितिः।
साधनीया क्षमा त्वेवं शङ्कुमूर्ध्वे च स्थापयेत्॥ 24॥

(अब भूमि समतल करने के लिए उपाय बताए जाते हैं, इसे अंग्रेजी में लेवल करना कहते हैं) इस कार्य के लिए मस्तक तक जल से भरे समतल पात्र का साधन काम में लेते है जिससे भूमि की समक्षिति जानी जाती है और इस प्रकार भूमि को पानी की सहायता से समतल साधनीय करके उस पर शङ्कु की स्थापना करनी चाहिए।[1]

शङ्कुलक्षणमाह —

भ्रमसिद्धाः समतला निर्व्रणा दोषवर्जिताः।
द्वादशपर्वोद्भवाश्च शङ्कूच्छायाश्च पर्वभिः॥ 25॥

शङ्कु जिसे भ्रमसिद्धा भी कहा है, कहीं से भी बाँका-टेढ़ा न हो, समतल हो अर्थात् वह चारों ओर से एक रूप तल का हो, वह निर्व्रणा अर्थात् खड्डे-खोचर वाला न हो तथा अन्य कोई भी दोष भी उसमें नहीं हो। शङ्कु पर 12 पर्व-चिह्न बने हों और प्रत्येक पर्व पर शङ्कु की छाया बनती हो।[2]

अर्थात् दृष्टि को स्थिर करे और पहले नलिका द्वारा चित्रा नक्षत्र का वेधकर नलिकाग्र से समतल भूमि पर लम्ब डाले। इन दोनों लम्ब मूलों में सूत्र को बाँधे, यही पूर्वा-पर दिशा होगी। जो लोग उज्जयिनी से उत्तर में रहते हैं, उनको कृतिका के वेध से प्राची दिशा को जानना चाहिए— चित्रास्वात्यन्तरे श्रोणादक्षिणापथवासिनाम्। प्राची तु कृतिका ज्ञेया उत्तरापथवासिनाम्॥ (वास्तुरत्नाकर 2, 5)

1. सिद्धान्तशिरोमणि में दिक्साधनप्रकार इस प्रकार से आया है— वृत्तेऽभःसुसमीकृते क्षितिगते केन्द्रस्थशङ्कोः क्रमाद् भाग्रं यत्र विशत्यपैति च यतस्तत्रापरैन्द्र्यौ दिशौ। तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णमित्याहताल्लम्बज्यासमिताङ्गुलै- रयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता। तन्मत्स्यादय याम्यसौम्यककुभौ सौम्याध्रुवे वा भवेदेकस्मादपि भाग्रतो भुजमितां कोटमितां शङ्कुतः। न्यस्येद्यष्टिमृजुं तथा भुवि यथा यष्ट्यग्रयोः संयुति कोटिः प्राच्यपरा भवेदिति कृते बाहुश्च याम्योत्तरा॥ (सिद्धान्त. 3, 8-9)
2. गोलयन्त्राध्याय में शङ्कु के लक्षण इस प्रकार दिए गए हैं— समतलमस्तकपरिधिर्भ्रमसिद्धो दन्तिदन्तजः शङ्कुः। तच्छायातः प्रोक्तं ज्ञानं दिग्देशकालानाम्॥ (सिद्धान्त. गोलयन्त्राध्याय ९)

द्वादश दशाष्टाभिश्च त्रिभिर्वृत्तं क्षिमाङ्कितम्।
शङ्कुच्छायस्त्रिगुणतो **द्विपर्व**[1]**युक्तिको समा॥ 26॥**

उस समतल भूमि पर 12, 10 और 8 शङ्कु के पर्वों की लम्बाई के नाप से क्रमशः तीन वृत अङ्कित करें। भूमि में क्षिप्त अर्थात् खुदाई करके— इस तरह दो-दो पर्व समान युक्ति से शङ्कु की छाया पथ 12 पर्व के वृत्त पर, दूसरा छायापथ 10 पर्व के वृत्त पर और तीसरा छायापथ 8 पर्व के वृत्त पर देखा जा सकेगा।

परिधौ बाह्यवृत्तस्य **व्यासे** शङ्कुतुल्योत्तमा।
कूलवंश पूर्वा छाया [2]**शङ्कुश्चरण आश्रितैः॥ 27॥**

यह तो स्पष्ट ही है कि बाह्य वृत की परिधि तो शङ्कु के तुल्य 12 पर्वों के व्यास से बनी है। इन के वृत्तों के किनारे की छाया (कूलवंश) पूर्व की ओर से आती है, जो शङ्कु के ऊपर चलने से आती है।

छायाग्रे वृत्ततुल्या **च छाया** पूर्वापरोद्भवा।
प्रवेशे निर्गमे छाया याति सूत्रं सदा भवेत्॥ 28॥

यह शङ्कु की छाया पूर्व से पश्चिम की ओर पड़ती हुई उद्भव होती है और छायाग्र वृत्त के तुल्य बनती जाती है अर्थात् बारह पर्व की छाया बड़े वृत्त पर, दश पर्व की छाया मध्यम वृत्त पर और आठ पर्व की छाया कनिष्ठ वृत्त पर होगी। इस तरह छाया का प्रवेश और छाया के निर्गम से वृत्तों पर ध्यान देने से याति सूत्र सदा बनता रहता है।

याम्योत्तरं सूत्रपाते मत्स्यमुखं पुच्छाग्रसूत्रे ?।
याम्योत्तरोदूगतं सूत्रं विकर्णैः कर्णसाधनम्॥ 29॥

दक्षिण और उत्तर के सूत्रपात से (चुम्बकीय विधि से, कुतुबनुमा की सुई से?) मत्स्य की पुच्छ और मुख सीध में होते हैं। इस दक्षिण उत्तर से बनने वाले सूत्र से ही विकर्ण का कर्ण साधन बनता है।

निशाकाले ध्रुवसाधनमाह —

अथ रात्रौ ध्रुवमसाध्यं दक्षिणोत्तरम्।
मण्डलोभयपक्षे च मध्ये स्थाप्यं त्रिदीपकम्॥ 30॥

अब रात्रि में ध्रुव साधन की विधि कहते हैं। रात्रि में ध्रुव का अक्ष सीधा,

---

1. 'युक्तिकोत्तमा?' इति प्रकाशित पाठः।
2. 'शङ्कुश्चरुणाश्रितैः?' इति प्रकाशित पाठः।

हमेशा दक्षिण उत्तर की दिशा की सूचक है। उस शङ्कु मण्डल के घेरों पर दोनों ओर एक मध्य में तीन दीपक रखें।

एकसूत्रे यदा त्रीणि दीपशिखाग्रकाणि **च।**
पूर्वसंस्थं ध्रुवसाध्यमपरस्थं **च दोषकृत्?॥ 31॥**

जब तीनों दीपकों का शिखाग्र एक सूत्र में आ जाए, तो पूर्व की तरह की ध्रुव साध्य हो जाता है। इसमें अन्य अन्तर रह जाए तो दोषपूर्ण माना जाता है।

शस्तं तु मीनपातैश्च पूर्वापरादिसाधनम्।
विकर्णकर्णगा **साध्या** ध्रुवशङ्कुप्राच्युद्भवः **॥ 32॥**

(अब यह सिद्ध हो गया है कि ध्रुवार्थ चुम्बक विधि से) मत्स्यपातानुसार देखा गया पूर्वा-पर दिक् साधन प्रशस्त है अर्थात् ठीक-ठीक है तथा विकर्ण और कर्ण की ओर जाने वाली दिशा-रेखाएँ इससे साध्य हैं, वैसे ही जैसे ध्रुव शङ्कु से प्राच्युद्भव छाया से साध्य होती है।[1]

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां गृहारम्भप्रतिष्ठादिनमासनिर्णयाधिकारो नाम त्रिषष्टितमं सूत्रम्॥ 63॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में गृहारम्भ, प्रतिष्ठा दिन मास निर्णय अधिकार नामक तिरसठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 63॥

आयाधिकारो नाम चतुःषष्टितमं सूत्रम्॥ 64॥

विश्वकर्मोवाच —

आयव्ययांशका ऋक्षं ताराचन्द्रबलं गृहे।
जीवितं मरणं ज्ञेयं वास्तुविज्ञानपूर्वकम्॥ 1॥

विश्वकर्मा ने कहा कि गृहों के आय-व्यय, अंशक, नक्षत्र, ताराबल, चन्द्रबल,

---

1. ग्रन्थकार यहाँ दिक्सूचकयन्त्र की प्रशंसा करता ही प्रतीत होता है। वैसे दिक्सूचकयन्त्र बहुत पहले ही प्रयोग में आ चुका था। ज्योतिषियों ने भी इसकी प्रशंसा में कहा है कि शिल्पीगण चुम्बकीय यन्त्र से भी दिशा का ज्ञान करते हैं, पूर्वा-पर का जो ज्ञान किया गया, वह सममण्डलीय है, इससे सूर्य के उदयास्त, पूर्वा-पर और अर्ध्यादि उदित और अन्यत्र अल्प अन्तरादि को समझा जा सकता है — सच्चुम्बकादेव सुशिल्पविज्ञाः कुर्वन्ति दिग्ज्ञानमितोऽन्यथैव। पूर्वापरा याऽत्र कृता प्रकारैर्ज्ञेया बुधैः सा सममण्डलीया॥ अर्कोदयास्तजे पूर्वापरे तेऽर्घ्यादिपूदिते। अन्यत्राल्पान्तरात् केचिदुदङ्मेरुं ततो जगुः॥ (सिद्धान्ततत्त्वविवेक : कमलाकर भट्ट, परिष्कर्ता : पं. सुधाकर द्विवेदी व पं. मुरलीधर शर्मा, ब्रजभूषणदास एण्ड कंपनी, बनारस, द्वितीयावृत्ति, 3, त्रिप्रश्नाधिकार 378-379, पृष्ठ 302-303)

उनका जीवन और मरण वास्तुविज्ञान के अनुसार ठीक-ठीक से जानना चाहिए।[1]

वास्तुदण्डाह —

नगरे वा पुरे चैव मानं दण्डैर्विधीयते।
वास्तुदण्ड इति प्रोक्तः सोऽत्र वै हस्तसङ्ख्यया॥ 2॥
चतुर्हस्तं च यत्क्षेत्रमङ्गुलैश्च फलप्रदम्।
वस्वङ्गुलैश्च क्षेत्रं तु पादैर्वा प्रतिशोधयेत्॥ 3॥

नगर और पुर आवासों का लम्बाई-चौड़ाई के माप के मान को दण्ड विधि से करना चाहिए। इसे 'वास्तुदण्ड' कहते है। उसकी हस्त संख्या (गज की संख्या) लम्बाई हेतु इस प्रकार समझें— चार हाथ के गज का जो क्षेत्र हो उसका उतने ही अङ्गुल माप का फल होता है। आठ अङ्गुल का क्षेत्र होने पर उसमें एक पाद से शोधन करना चाहिए।

तत्क्षेत्रं तु यथाकारमश्मकार्ये विशोधयेत्।
यत्र हस्तमितिः क्षेत्रे तद्गृहं हस्तसङ्ख्यया॥ 4॥
क्षेत्रालाभे तु तत्रैव स्यात्स्वदेहाङ्गुलैर्गृहम्।
अङ्गुलैः क्षेत्रमाने च अङ्गुलैस्तदलाभतः॥ 5॥

उस क्षेत्र के आकार के ही पाषाण कार्य का शोधन करना चाहिए। जहाँ हस्त (गज) के नाप में क्षेत्र आते हों उन गृहों में हस्त-गज की संख्यानुसार क्षेत्रलाभ में वहाँ अपनी ही देह के अङ्गुल प्रमाण का गृह होता है तथा अङ्गुलों के क्षेत्रमान के अनुसार अङ्गुलों को उसका लाभ माने।

पादैर्वापि यवैर्वापि गृहक्षेत्रानुसारतः।
तृणच्छन्दे स्वामिहस्तैर्हर्म्यादौ कर्मिहस्ततः॥ 6॥

(इसके अभाव में या वैसा सम्भव नहीं हो तो) गृहक्षेत्रानुसार पादमान से या यवमान लें। तृणछन्दों में तो गृहस्वामी के हाथ (गज) के अनुसार और हवेलियों आदि में कर्मिहस्त अर्थात् शिल्पी के हस्त (गज) अनुसार माप का मान लेना चाहिए।

राजवेश्मपुरादीनां वापीकूपादिकस्य च।
प्रासादेषु च देवानां शास्त्रहस्तेन केवलम्॥ 7॥

---

1. आचार्य श्रीपति का मत है— आयव्याक्षांशकचन्द्रताराबलानि शास्त्रादवलोक्य सम्यक्। आयुर्धनाऽऽरोग्ययशोभिवृद्ध्यै गृहं गृहस्थो हि निधापयीत्॥ (ज्योतिषरत्नमाला 17, 1)

इसी तरह राजाओं के महल, पुर आदि तथा कूपादिक और प्रासाद, देवमन्दिरों तथा देवों के लिए केवल शास्त्रविहित हाथ (गज) ही मान्य है।

अथायानयनमाह —

दैर्घ्यं हन्यात्पृथुत्वेन हरेद्भागं ततोऽष्टभिः।
शेषमायं चैव विद्याच्छास्त्रदृष्टं ध्वजादिकम्॥ 8॥

लम्बाई से चौड़ाई के माप को गुणा करके प्राप्त गुणनफल में 8 का भाग दें, जो शेष आएगा, उसे ध्वजादिक आय को शास्त्रीय दृष्टि से समझना चाहिए।

विधि — लम्बाई × चौड़ाई / 8 = क्रमशः 1 से 8 तक ध्वजादि आय।

आयनामानि —

ध्वजो धूमश्च सिंहश्च श्वानो वृषखरौ गजः।
ध्वाङ्क्षश्चैति समुद्दिष्टाः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणाः॥ 9॥

इन आयों के नाम हैं- 1. ध्वज, 2. धूम, 3. सिंह, 4. श्वान, 5. वृष, 6. खर, 7. गज और 8. ध्वांक्ष। इनको सदा प्राच्यादि, प्रदक्षिणतः क्रम में लेना चाहिए।

अन्योऽन्याभिमुखास्ते च क्रमच्छन्दानुसारतः।
पूर्वं च ये समुद्दिष्टाः आयुवृद्धिविधायकाः॥ 10॥

ये परस्पर आमने-सामने हो सकते हैं, छन्द-क्रमानुसार हो सकते हैं, ऐसा पूर्व में (मनीषियों द्वारा) कहा गया है। गृह में ये आयु की वृद्धि के विधायक अर्थात् लाभदायक व अनुकूल होते हैं।

आय प्रयोजनमाह —

ध्वजः सिंहो वृषगजौ शस्यन्ते सुरवेश्मनि।
अधमानां खरध्वजाङ्क्षधूमश्वानः सुखावहाः॥ 11॥

देववेश्म अर्थात् मन्दिरादि में ध्वज, सिंह, वृष और गजाय प्रशस्त मानी गई है। इनको ही उचित मान कर ग्रहण किया गया है, परन्तु इन से कम के लिए खर, ध्वांक्ष, धूम और श्वानाय सुखप्रद होती है।

युगादिपरत्वेन ग्राह्याया: —

ध्वजः प्रायः कृतयुगे त्रेतायां सिंह एव च।
द्वापरे वृषबाहुल्यं गज एव कलौ युगे॥ 12॥

ध्वज आय प्रायः सतयुग में तथा सिंह आय त्रेतायुग में और वृष बाहुल्य से वृष आय द्वापर युग में तथा गज आय कलियुग में मान्य कही गई है।

विप्रादिजातिपरत्वेन ग्राह्याया: —

कल्याणं कुरुते सिंहो नृपाणां च विशेषत:।
ध्वज: प्रशस्यते विप्रे वृषो वैश्ये उदाहृत:॥ 13॥

सिंह आय विशेषकर राजा लोगों का कल्याण करती है जबकि ध्वजाय विप्रों के लिए लाभकारी शुभ है और वृष आय वैश्यों के लिए उचित कही है।

उत्तरोत्तरमाख्याताश्चतुर्वर्णफलप्रदा:।
ध्वजे चैवार्थलाभ: स्याद् धूमे सन्ताप एव च॥ 14॥

इस तरह ये आय चारों वर्णों के लिए उत्तरोत्तर कही गई है, जो उनके लिए शुभ फलदात्री है। (अब इन के लाभ हानि भी देखें) ध्वज आय आने पर धन की प्राप्ति होती है, अर्थ लाभ होता है परन्तु धूमाय आने पर सन्ताप का कारण बनता है।

सिंहे च विपुला भोगा: कलि: श्वाने सदा भवेत्।
धनधान्यं वृषे चैव स्त्रीदूषणं च रासभे॥ 15॥
गजे भद्राणि पश्यन्ति ध्वाङ्क्षे च मरणं ध्रुवम्।

इसी तरह सिंह आय आने पर विपुल भोग उपलब्ध होते हैं परन्तु श्वान आय आने पर सदा कलह होता रहता है। वृष आय आने पर धन-धान्य की प्राप्ति होती है परन्तु खर आय आने पर स्त्रीवर्ग में दूषण फैलने की आशङ्का होती है। गज आय से भला, सुन्दर होता है परन्तु ध्वांक्ष आय से निश्चित मरणान्तद कष्ट होता है।

अथ प्रशस्तऽऽयोच्यते —

प्रासादप्रतिमालिङ्गे जगतीपीठमण्डपे॥ 16॥
वेदीकुण्डशुचिष्वेवं पताकाछत्रचामरे।
वापीकूपतडागानां कुण्डानां च जलाशये॥ 17॥
ध्वजोच्छ्रयस्य संस्थाने ध्वजं तत्र निवेशयेत्।

(अब प्रशस्त आय कहाँ, कैसी हो उसके बारे में कहता हूँ) प्रासाद, प्रतिमा, लिङ्ग, जगती, पीठ, मण्डप, वेदी-कुण्ड, शुचि, पताका, छत्र, चामर, वापी, कूप, तड़ाग, कुण्ड, जलाशय और ध्वजा की ऊँचाई के स्थापन पर हमेशा ध्वज आय का प्रयोग करना चाहिए।

आसने देवपीठेषु वस्त्रालङ्कारयोजने॥ 18॥
केयूरमुकुटाद्ये च वेशयेच्च ध्वजं शुभम्।

इसी तरह आसन, देवपीठ, वस्त्रालङ्कार के नियोजन में, केयूर, मुकुट आदि वेशों में भी ध्वज आय शुभ होती है।

अग्निकर्मसु सर्वेषु होमशालामहानसे ॥ 19 ॥

धूमोऽग्निकुण्डसंस्थाने होमकर्मगृहेऽपि वा।

सभी प्रकार के अग्नि सम्बन्धी कार्यों में, यज्ञ-होमशाला, रसोईघर, अग्निकुण्ड संस्थान में, होम करने के गृह में धूम आय देनी चाहिए।

आयुधानां समस्तानां नृपाणां भवनेषु च ॥ 20 ॥

नृपासने सिंहद्वारे सिंहं तत्र निवेशयेत्।

समस्त आयुधों के निर्माण, राजाओं के महलों में, राजा के सिंहासन तथा राजप्रासाद के सिंहद्वार पर सिंह आय देनी चाहिए।

श्वानश्च म्लेच्छजातौ च गेहे श्वानोपजीविनाम् ॥ 21 ॥

तथा चाऽशुद्धसंस्थाने प्रशस्तः श्वानको मतः।

म्लेच्छ जाति के लोगों के घरों में, श्वान पालने वाले लोगों के घरों में तथा सभी अशुद्ध संस्थानों में श्वान आय ही प्रशस्त कही गई है।

वणिक्कर्मसु सर्वेषु भोज्यपात्रेषु मण्डपे ॥ 22 ॥

वृषस्तुरङ्गशालायां गोशालायां च गोकुले।

सभी वणिक कर्मों (व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, शोरूम, दुकानादि के कलम, फर्नीचर) में, खाने-पीने के पात्रों में, मण्डपों में, घुड़साल में, गोशाला में, गोकुलों में वृष आय प्रशस्त कही गई है।

ततविततादिस्वरे वादित्रे विविधे तथा ॥ 23 ॥

कुलालरजकादीनां खरो गर्दभजीविनाम्।

तत् वाद्य में, वितत् वाद्य में, अन्य तरह-तरह के वाद्यों (सुषिर, घनादि[1]) में, कुलाल-कुम्भकारों के यहाँ, रजकों (धोबी) और गधों द्वारा जीविका चलाने वालों (ओड्रादि) के यहाँ खर आय प्रशस्त कही गई है।

गजश्च गजशालायां यानझम्पानयो रथे ॥ 24 ॥

शय्यायां शिविकायां च गजमुद्रा चतुष्कतः।

अन्तःपुरे गृहे प्रोक्तः पिण्डांवास्यादिकोद्भवः ? ॥ 25 ॥

अन्योपस्करकादौ च मदनागारके गजः।

इसी प्रकार गजशाला में, यान, झम्पान में, रथों में, शय्या में, शिबिका, तम्बू-

---

1. वाद्यों का वर्णन अपराजित. में 237वें सूत्र में आया है। नाट्यशास्त्र, सङ्गीतरत्नाकर आदि ग्रन्थों में भी यह वर्णन हुआ है। यथा— वाद्यतन्त्रीततं वाद्यं सुषिरं मतम्॥ चर्मावनद्धवदनमवनद्धं तु वाद्यते घनो मूर्तिः साभिघाताद् वाद्यते यत्र तद्घनम्॥ (सङ्गीतरत्नाकर 6, 5-6)

डेरों (शिविर) में, गजमुद्रा की चौकी पर, अन्तःपुर में, पिण्ड आवास आदि गृहों में, अन्य उपकरणों में भी, मदनागार अर्थात् रतिगृहों में, शीशमहल में गज आय प्रशस्त होती है।

तथाऽरहट्टयन्त्रेषु जिनशालादिकेषु च ॥ 26 ॥
ध्वाङ्क्षः कल्याणकृच्चैवं शिल्पकर्मोपजीविनाम्।

अरहट्ट यन्त्रों अर्थात् जलोत्थान के लिए प्रयोक्तव्य रहटों में और जिनालयों में ध्वांक्ष आय देना शिल्प कर्मोपजीवियों के लिए कल्याणकारक है।

स्वके स्वके वै स्थाने च सर्वे कल्याणकारकाः ॥ 27 ॥
मित्रस्नेहानुगाश्चैव ते सर्वे हितकामदाः।

इस प्रकार जिस-जिस स्थान के लिए जो-जो आय कही गई है, उन आयों को अपने-अपने स्थान पर देना कल्याणकारक है। जो मित्रों के स्नेह के अनुसार चलती है, वे भी सभी हितकारी व कामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है।

परस्परदेय आयानि —

वृषस्थाने गजं दद्यात् सिंहं वृषभहस्तिनोः ॥ 28 ॥

वृष के स्थान पर गज आय दी जा सकती है और सिंह के स्थान पर वृष आय और गज आय दी जा सकती है।

ध्वजः सर्वेषुदातव्यो वृषो नाऽन्यत्रदीयते।
गजाभिद्दष्टिः सिंहः स्याद् वारुणाभिमुखो ध्वजः ॥ 29 ॥
वृषभः प्राच्यभिमुखो गजो वाम्युमुखस्तथा।
सन्मुखा याम्योत्तराश्च अशस्ताः पृष्ठातोमुखाः ॥ 30 ॥
स्वके स्वके वै स्थाने च प्रशस्ताश्च त्रिदिक्षु च।

ध्वज आय सभी स्थानों पर दी जा सकती है, परन्तु वृष आय को अन्यत्र कहीं भी नहीं देना चाहिए। गज के सम्मुख सिंह आय हो, वारुणाभिमुख ध्वज आय हो, वृषभ आय पूर्वाभिमुख हो, गज आय दक्षिणमुखी हो और ये सभी सम्मुख, दक्षिण-उत्तर की ओर की तथा पृष्ठतोमुखी आए तो ठीक नहीं, अशस्त कही गई है। अपने-अपने स्थान पर तो ये तीनों दिशाओं से प्रशस्त ही होती है।

अथाऽऽयस्वरूपाणि —

ध्वजः पुरुषरूपश्च सिंहः सिंहस्वरूपकः ॥ 31 ॥
वृषो वृषभरूपाढ्यो गजो हस्तिस्वरूपकः।
धूमो मार्जाररूपश्च श्वानः श्वानाधिरूपकः ॥ 32 ॥

खरो गर्दभरूपाढ्यो ध्वाङ्क्षः काकस्वरूपकः।

(अब आयों के स्वरूप के विषय में कहा जा रहा है) ध्वज आय का पुरुष रूप है। सिंह आय का सिंहरूप, वृष आय वृषभरूप है और गज आय हाथी का रूप है। धूम आय मार्जार या बिलाव रूप और श्वान आय श्वान रूप है। खर आय गर्दभ रूप है और ध्वांक्ष आय काकस्वरूपी है।

सर्वे च वृषभारूढाः [1]पुरुषाकारमुदराः॥ 33॥

तद्रूपकाश्च हस्ताभ्यां पादाभ्यां विहगानुगाः।

ग्रीवया सिंहरूपाश्च प्रबलाश्च महोत्कटाः॥ 34॥

इन सभी आयों का आकार पुरुष जैसा, पेट भी वैसा ही होता है, वे वृषभारूढ़ हैं। उनके हाथ भी पुरुष के हाथों जैसे है परन्तु उनके पाँवों का आकार पक्षियों के पंजों जैसा होता है। उनकी ग्रीवा बड़ी प्रबल, महोत्कट और सिंह की गर्दन के आकार की होती है।

महागणेश्वराः प्रोक्ता अष्टदिक्क्षेत्रपालकाः।

वास्तुकर्मसु सर्वेषु आया दिक्पतयोऽष्ट हि॥ 35॥

इन आयों को ही महागणेश्वर और अष्टदिक्-क्षेत्रपाल कहा गया है अस्तु, सभी वास्तुकर्मों में ये आय आठों दिक्-क्षेत्रपाल ही है।

पूजिताः पूजयन्त्येव निघ्नन्ति चापदस्थिताः।[2]

साध्यक्षेत्र च त्रिपुटं प्रभिन्नं च नवांशकः॥ 36॥

इनकी पूजा करते रहने से, ये अपने पद पर स्थित रहते हुए निर्विघ्न कार्य करवाते हैं। इनके साध्य क्षेत्र त्रिपुट वाले है और इनके भाग नवांशक होते हैं।

अष्टौ तथाऽऽयस्थानानि मध्ये स्यात्कुलदेवता।

गृहस्याऽभिमुखाः शस्ताः मध्यमाश्च पराङ्मुखाः॥ 37॥

इन आठों आय स्थानों के मध्य में कुल देवता का वास है। अस्तु, सभी आय गृहों के सम्मुख शुभ होती है और विपरीत मुख वाली मध्यम होती है।

नगरभिमुखाः शस्ताः पुरबाह्ये तु देवताः।

देवानां प्रतिमा आया दिशापाला इति स्मृताः॥ 38॥

---

1. 'पुरुषाकारमुद्गला?' इति प्रकाशित पाठः। तुलनीय— मुखैः स्वनामसदृशा नराकारकरोदराः। हस्ताभ्यां तद्रूपाढ्याः पादाभ्यां विहगाकृतिः॥ सर्वेषां सिंहवद्ग्रीवा प्रबलाश्च महोत्कटाः। (ज्ञानप्रकाशदीपार्णव 1, 35-36)

2. तुलनीय— महागणेश्वराः प्रोक्ताः क्षेत्रपाश्च दिशाष्टसु॥ वास्तुकर्मसु सर्वेषु आयादिक्पतयोऽष्ट हि। पूजिताः पूजयन्त्येव निघ्नन्ति च पदे स्थिताः॥ (दीपार्णव 1, 36-37)

पुर के बाहर के जितने भी देव मन्दिरादि हों, वे नगराभिमुख ही शुभ होते हैं। देव प्रतिमा की आय ही दिशापाल कही गई है, ऐसा जानें।

वसवः प्रतिदेवाश्च शिवयोगसमुद्भवाः।
यावत्तु शिवदेवत्वं यावच्चन्द्रार्कमेदिनी।
तावच्च वास्तुशास्त्रोक्ता **आयाश्च** समुदाहृताः॥ 39॥

प्रत्येक देवता का आवास स्थान मन्दिरादि शिव के योग से ही समुद्भूत है। अस्तु, इस जगत में जब तक सूर्य और चन्द्र रहेंगे और जब तक शिव का देवत्व रहेगा तब तक ये वास्तुशास्त्रोक्त आय गण भी स्थिरता से विद्यमान रहेंगे।

साध्यक्षेत्रगुणाकारैरायाश्चैव **प्रतिष्ठिताः**।
यावत्तु क्षेत्रभक्तिश्च **तावदायः** प्रपालयेत्॥ 40॥

आय जानने के सरल उपाय में है, साध्यक्षेत्र के गुणाकार ले आने के बाद आयों से भाग देकर यवादि की सूक्ष्मता तक आयों को शुद्ध करके ग्रहण करना चाहिए।

खण्डितं स्फुटितं जीर्णं विशीर्णं स्फुटस्फोटितम्।
त्यक्त्वा च वास्तुदेवाद्यमायास्तेषु विवर्जिताः॥ 41॥

परन्तु, जो वास्तु खण्डित हो गया हो, फूट गया हो, फट गया हो, जीर्ण हो चुका हो, विशीर्ण या विकृत हो गया हो, फूटकर बिखर गया हो और जिसको वास्तु देवता भी छोड़कर चले गए हो— ऐसे भवनों, मन्दिरों या प्रासादों के (पुनर्संस्कार) प्रसङ्ग में आय निकालना स्पष्टतः वर्जित है।[1]

अपदं तस्य संस्थानं मासान्ते सन्धिशोधितम्।
दिनाष्टके प्रलिप्ताङ्गं वर्जयन्ति च नित्यशः॥ 42॥

ऐसे जीर्ण संस्थानों को (वैसे ही या गिरे जानकर) मासान्त में सन्धियों को शोधित करके जोड़कर ठीक करके आठवें दिन लीपते-पोतते रहें, प्रतिदिन नहीं।

भानूदये मण्डलं च पुष्पप्रकरसङ्कुलम्।
उदुम्बरोत्तरङ्गाढ्यं जलकुम्भादिपूजनम्॥ 43॥

ऐसे जीर्णोद्धार वाले भवन में सूर्योदय के समय प्रातःकाल ही मण्डल बनाकर एक समूह में आकर तथा हाथों में पुष्पों के भार लिए हुए मन्दिर द्वार के उदुम्बर से लेकर उत्तरङ्ग तक जल कुम्भादि से पूजन (प्रक्षालादि) करें।

---

1. इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी सूत्रधार गोविन्दकृत 'वास्तु उद्धारधोरणी' (सम्पादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा, बनारस, 2008 ई.) नामक ग्रन्थ का अवलोकन करना चाहिए।

गृह्णाति [1]हुताशन्नं स्वस्तिकैश्च महोत्सवैः।
एवं वास्तावायाद्यं च श्रियं चिन्तति नित्यशः॥ 44॥

इसी प्रकार अन्नादि से हवनादि करें जिससे अग्निदेव उस पूजा को ग्रहण करें। स्वस्तिवाचन पूर्वक महोत्सव मनाते हुए उस जीर्ण भवन को पुनः निर्मित करें जिससे सदा कल्याण बना रहे, श्रिय की प्राप्ति नित्य होती रहे।

अन्यदप्याह —

शिवस्य पुष्पैश्चरणौ सुपूजितौ वराङ्गनासेवनमल्पभोजनम्।
अनग्रशायित्वमपर्वमैथुनं चिरप्रनष्टां श्रियमानयन्ति॥ 45॥

शिव के चरणों की पुष्पों से पूजा करें, वराङ्गना का सेवन नहीं करें, अल्पभोजन करें, अनग्र रहकर ही सोएँ, अपर्व में ही स्त्रीसङ्ग करें, पर्वों[2] में करे तो पहले के प्रनष्ट हुए जीर्ण भवनों में भी जीर्णोद्धार के बाद लक्ष्मी का आगमन हो जाता है, श्री वृद्धि होती है और वे घर पुनः श्री सम्पन्न हो जाते हैं।

इति सूत्रसन्तागुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छाया-मायाधिकारो नाम चतुःषष्टितमं सूत्रम्॥ 64॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में आयाधिकार नामक चौसठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 64॥

नक्षत्रराशिचन्द्रमैत्र्यनुक्रमो नाम पञ्चषष्टितमं सूत्रम्॥ 65॥

विश्वकर्मोवाच-

आयानां यत्तुक्षेत्रं च गुणितव्यं प्रतिष्ठयेत्।
तत्क्षेत्रस्य फलं साध्यं गुणितं दैर्घ्यविस्तरैः॥ 1॥
फले चाष्टगुणे तस्मिन् सप्तविंशतिभाजिते।
यच्छेषं लभ्यते तत्र नक्षत्रं तद्गृहस्य च॥ 2॥

विश्वकर्मा बोले कि जो भी क्षेत्र हो उनकी गुणित कर करके प्रतिष्ठा कर दें। उस क्षेत्र का फल साधने के लिए उसके दैर्घ्य-लम्बाई और विस्तार-चौड़ाई को

---

1. 'हुताशनं?' इति प्रकाशि पाठः।
2. अनग्रशयन व स्नान का धर्मशास्त्रों में निर्देश है— 'स्वप्तव्यं नैव नग्नेन' (महाभारत अनु. 104, 67); न कदाचिद्रात्रौ नग्नः स्वपेत् (गौतमधर्मसूत्र 1, 9, 60); पर्वतिथियाँ क्रमशः 14, 8, 15, 30 व संक्रान्ति मानी गई हैं— चतुर्दश्यष्टमी चैव ह्मावस्या च पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसङ्क्रान्तिरेव च॥ तैलस्त्रीमांससम्भोगी

गुणा करें। इससे क्षेत्रफल (लम्बाई × चौड़ाई = क्षेत्रफल) निकल जाता है। उस फल को 8 से गुणा करके जो राशि आए उसमें 27 का भाग दें और उस भागफल में जो शेष बचे, उसे गृह की नक्षत्र संख्या समझनी चाहिए।[1]

त्रिविध नक्षत्रगणमाह —

देवनृराक्षसानां च नक्षत्राणां त्रिधा गणः।
यस्य यस्याऽनुगा मैत्री वैरं स्याच्च परस्परम्॥ 3॥
स्वगणे परमा प्रीतिर्मध्यमा दैवमानुषे।
मर्त्यराक्षसयोर्मृत्युः कलहो देवरक्षसोः॥ 4॥

गणानुसार नक्षत्रों के तीन प्रकार के गण होते हैं— देवगण, मनुष्यगण और राक्षसगण। जो नक्षत्र एक से गण वाले है, उनमें आपस में मैत्री होती है जबकि अन्य में साथ होने पर वैर होता है। स्वगण के साथ तो परम प्रीति होती है, देव और मानुष गण में मध्यम प्रीति होती है और मनुष्य और राक्षस गण में तो मृत्यु ही समझें जबकि देव और राक्षस गण में सदा कलह रहता है।

नव देवगणाः प्रोक्ता मानुषा नव कीर्तिताः।
नव रक्षोगणाश्चैव नक्षत्राणां त्रिधा गणः॥ 5॥

(कुल 27 नक्षत्रों में) नौ देवगण, नौ राक्षसगण और नौ ही मनुष्यगण कहे गए है, इस तरह नक्षत्रों के तीन प्रकार के गण होते हैं।

कृत्तिका मघा विशाखा आश्लेषा शततारका।
चित्रायुक्ता धनिष्ठा च ज्येष्ठा मूलं च राक्षसाः॥ 6॥
मृगोऽश्विनी रेवती च हस्तः स्वातिः पुनर्वसू।
पुष्यानुराधाश्रवणमेते देवगणः स्मृतः॥ 7॥
तिस्रः पूर्वाश्च भरणी आर्द्रा वै रोहिणी तथा।
उत्तरात्रयसम्युक्तः कीर्तितो मानुषो गणः॥ 8॥[2]

इति नक्षत्राधिकारः।

---

1. उदाहरण — क्षेत्र की लम्बाई 6 गज 1 अङ्गुल; क्षेत्र की चौड़ाई 6 गज 1 अङ्गुल। इनके अङ्गुल बनाए— 145 × 145 = 21025 अङ्गुल फल। इस फल को 8 से गुणा करके उसमें 27 का भाग देने पर, गणितानुसार 21025 × 8 / 27 शेष रहे 17 जो अश्विनी नक्षत्र से गिनने पर 17वाँ अनुराधा नक्षत्र आया जो कि उस गृह का नक्षत्र समझना चाहिए।
2. समराङ्गण. के श्लोक तुलनीय है— मृगाश्विरेवतीस्वात्यो मैत्रं पुष्यपुनर्वसू॥ हस्तः श्रवण इत्येष देवाख्यो नवको गणः। विशाखा कृत्तिकाश्लेषा नैऋतं वारुणं मघा॥ चित्रा ज्येष्ठा धनिष्ठेति नवको राक्षसो गणः॥ आर्द्राभरण्यौ रोहिण्या तिस्रः पूर्वास्तथोत्तराः॥ इति नक्षत्र नवकं विज्ञेयं मानुषे गणे। (समराङ्गण. 26, 45-48)

राक्षसगण के अन्तर्गत— कृत्तिका, मघा, विशाखा, आश्लेषा, शतभिषा, चित्रा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र परिगणित है। देवगणान्तर्गत— मृगशिरा, अश्विनी, रेवती, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा व श्रवण ये नौ नक्षत्र होते है। इसी प्रकार मनुष्यगण में— तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाभाद्रपद), भरणी आर्द्रा, रोहिणी और तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र आते हैं।

अथ नक्षत्रात्राश्यानयनमाह —

अथ राशीः प्रवक्ष्यामि लब्ध्या क्षेत्रफलेषु च।
तदनुक्रमयुक्तीश्च कथये तव साम्प्रतम्॥ 9॥

अब प्राप्त क्षेत्रफल के आधार पर राशि जानने की विधि कहता हूँ। उस विधि को पूरे अनुक्रम के साथ बता रहा हूँ।

गृहक्षेत्रेषु यद्दक्षं पञ्चत्रिंशशताहतम्।
षष्टिभिश्च हरेद्भागं भुक्तघट्यस्तु शेषतः॥ 10॥
ऋक्षभुक्तिक्रमयुक्ता स्वस्वराशिकसंज्ञिताः ?।
स्युर्मेषाद्या राशयश्च अश्विन्यादिक्रमेषु च॥ 11॥[1]

गृहक्षेत्र का जो नक्षत्र आए, उसकी संख्या को 135 से गुणा करके जो फल आए, उसको 60 से भाजित करे और जो शेष बचे वह क्रमयुक्त नक्षत्रभुक्ति होगी, उनकी अपनी राशि बनेगी जो मेषादि राशि होगी जबकि अश्विन्यादि नक्षत्र क्रम होगा।

---

1. पाठ शङ्कास्पद है, स्पष्ट न होने से इसे अन्य ग्रन्थों में देखना चाहिए। नक्षत्र से राशि जानने की विधि 'शिल्परत्नाकर' में इस प्रकार कही है— गृहक्षेत्रेषु यद्दक्षं षष्टिघ्न खशरोनितम्। पञ्चत्रिंशतशतैर्भक्ते शेषं वै मेषकादयः॥ (शिल्प. 1,125)

उदाहरण— माना कि क्षेत्र का नक्षत्राङ्क 5 (मृगशिरा है), उसको 60 से गुणा करने पर 60×5 = 300 आया। इस 300 से 50 घटाने पर 300-50 = 250 आया शेष। इस शेष को 135 से भाग देने पर 250/135 = 1 और शेष बचे 115 इस राशि को अङ्क 1 माने। उसे लब्धाङ्क 1 में जोड़े 1+1 = 2 तो अङ्क 2 आया। यह 2 अङ्क या वृष राशि को बताता है। अस्तु, गृह की राशि वृष है।

यही बात ज्ञानप्रकाशदीपार्णव में इस प्रकार दी है— गृह क्षेत्रस्य यद्दक्षं षष्टिभिर्गुणितं तथा। पञ्चत्रिंशच्छतं भक्तं शेष मुक्तिरजादयः॥ (दीपार्णव 1, 54)

उदाहरण—गृह के नक्षत्र (5) को 60 से गुणा करें (5 × 60 = 300) फिर उसे 135 से भाग दें जो लब्धि आए उसे गत राशि और शेष रहे उसे चालू राशि जाननी चाहिए, 300 / 135 = 2, 30 / 135 अर्थात् लब्धि 2 से वृष राशि पूरी व शेष 30 से चालू राशि आई। मिथुन (शेष को 1 मानकर लब्ध 2 में जोड़ें तो 2+1 = 3) मिथुन राशि। लगता है दीपार्णवकार ने 300 से 50 नहीं घटाया, इसी से यह अन्तर आया है। यथा 300-50 = 250 / 135 गत राशि लब्धि 1 आती है शेष वृष हुई।

वास्तुचक्रादिचक्रेषु ग्रहवेधविशोधनैः।
अष्टाविंशतिरेवं च साभिजित् कृत्तिकादयः॥ 12॥

वास्तु चक्रादि चक्रों को और ग्रह वेध के शोधन के लिए अभिजित् नक्षत्र के साथ कृत्तिकादि अट्ठाईस नक्षत्र इस प्रकार लाने चाहिए।

वर्णानुसार प्रशस्तराशयः —

चातुर्वर्ण्यप्रशस्तांश्च राशीनथ वदाम्यहम्।
तत्र त्रयस्त्रयः प्रोक्ता विप्रशूद्रान्तमार्गतः॥ 13॥
वृश्चिकः कर्कटो मीनो ब्राह्मणाः परिकीर्तिताः।
धनुर्मेषस्तथा सिंहो राजन्याश्च शुभाः स्मृताः॥ 14॥
वृषः कन्या च मकर एते वैश्या उदाहृताः।
मिथुनं च तुला कुम्भस्त्रयः शूद्राः प्रकीर्तिताः॥ 15॥

अब मैं चारों वर्णों के लिए जो-जो प्रशस्त राशियाँ हैं, उनके बारे में कहता हूँ। ये तीन-तीन कही गई है जो कि विप्र से शूद्र वर्ण तक है। ब्राह्मण की राशियाँ वृश्चिक, कर्क और मीन को कही है। क्षत्रिय या राजन्य की धनु, मेष तथा सिंह राशि कही गई है। वैश्य के लिए वृष, मकर और कन्या राशि शुभ है और शूद्र वर्ण के लिए मिथुन, तुला और कुम्भ राशियाँ शुभ कही गई हैं।

भवेद् द्वादशभिर्विप्रः क्षत्रियो नवभिस्तथा।
षड्राशिभ्यो भवेद् वैश्यस्त्रिभिः शूद्रः प्रशस्यते॥ 16॥

इनमें 12 राशियाँ ब्राह्मण के लिए, 9 राशियाँ क्षत्रिय के लिए, 6 राशियाँ वैश्य और 3 राशियाँ शूद्र के लिए प्रशस्त जाननी चाहिए।

चातुर्वर्णान्तरभेद एवमुक्तोऽपराजित।
प्रीत्यर्थं च पुनर्भेदं कथये तव साम्प्रतम्॥ 17॥

हे अपराजित! तुम्हें यह चातुर्वर्णान्तर भेद इस प्रकार से कहा गया। अब मैं पुनः तुम्हारे स्नेह के कारण इनके भेद पूरी तरह कहता हूँ।

अथ षड्ष्टकादीनां —

षडष्टके ध्रुवं मृत्युः प्रीतिः स्यात् समसप्तमे।
अनिष्टं पञ्चनवमे पुष्टिर्दशचतुर्थके॥ 18॥

इन राशियों में षडाष्टक (छठे-आठवें) होने पर निश्चय ही मरणान्तक पीड़ा होती है परन्तु एक दूसरे के सम-सप्तम राशि होने पर प्रीति भी गाढ़ होती है।

राशिक नवपञ्चक होना अनिष्ट का सूचक है और चतुर्थ-दशम होना पुष्टिकारक होता है।

तृतीयैकादशे मैत्री [1]द्वितीयद्वादशे रिपुः।
राशयः षड्विधा एवमन्योन्यं पतिवेश्मनोः॥ 19॥

राशि का तृतीय-एकादश होना मैत्रीकारक है परन्तु द्वितीय-द्वादश होना शत्रुता का कारक है। इस तरह छह प्रकार से राशियों व गृहस्वामियों का अन्योन्य सम्बन्ध बताया गया है।

चन्द्रस्थितिफलमाह —

गृहाग्रे च यदा चन्द्रो क्षयं वेश्म करोति हि।
रात्चौराग्निभयं घोरं चन्द्रे वै पृष्ठमागते॥ 20॥
धनधान्यक्षमारोग्यं कुरुते दक्षिणस्थिते।
श्रीस्त्रीपुत्रा उत्तमाश्च चन्द्रे वै उत्तरे स्थिते॥ 21॥

अब चन्द्र की स्थिति अनुसार फल देखते हैं। यदि गृह के आगे चन्द्र रहता है तो गृह की क्षति करता है और चन्द्र पीछे रहता है तो रात्रि में चोरादि और अग्निभय घोर होता है। चन्द्रमा यदि दायें हो तो धन-धान्य भूमि, आरोग्य प्रदाता होता है और यदि चन्द्रमा उत्तर दिशा में स्थित हो तो स्त्री-पुत्रादि के लिए सर्वोत्तम होता है।

इत्यमनन्तर सप्तशलाकयचक्रमाह —

सप्तोर्ध्वे स्थापयेद्रेखाः पुनर्भिन्नाश्च सप्तभिः।
रेखाः प्रोक्तानि साभिजिन्नक्षत्राण्यष्टविंशतिः॥ 22॥
कृत्तिकादशमीशान्यां शेषर्क्षाणि प्रदक्षिणे।
हक्षेत्रोक्तमृक्षं च तत्र चन्द्रमुदीरयेत्॥ 23॥

(सप्तशलाका चक्र के लिए) सात ऊर्ध्व रेखाएँ बनाएँ और सात ही इनको काटती हुई आड़ी रेखाएँ बनाएँ। इस तरह अभिजित् सहित 28 नक्षत्रों की ये रेखाएँ बनती हैं। कृत्तिकादि को ईशानकोण से आरम्भ करते हुए प्रदक्षिण क्रम में एक-एक रेखाग्र पर नक्षत्रों के नाम लिखते जाएँ। इस क्षेत्र के इन नक्षत्रों पर चन्द्रमा की स्थिति देखनी चाहिए।[2]

---

1. मुद्रितपुस्तके 'तृतीयद्वादशे' इति पाठः। ज्योतिष की मान्यताओं में दो-बारह या बीया-बारहवाँ होना वैरभाव का सूचक माना जाता है।
2. यह सप्तशलाका चक्र नक्षत्रों का वेध जानने हेतु बनाया गया है। आमने-सामने के नक्षत्रों का सप्तशलाका वेध होता है। इनमें भी पाप ग्रह से वेध हो तो सम्पूर्ण नक्षत्र को त्यागना चाहिए और शुभ

ग्रहराश्यादि मैत्रीविचार: —

वेश्मपत्योर्भवेच्चैव गृहमैत्री परस्परम्।

द्वादशङ्गोक्ता राशयश्च नवैव च ग्रहास्तथा॥ 24॥

गृह और गृहस्वामी की परस्पर ग्रह मैत्री हो, इन बारह राशियों और नवग्रहों की भी ग्रह मैत्री होनी चाहिए।

तथैकराशिकाः केचित् केचिच्चैव द्विराशिकाः।

तदनुक्रमकं वक्ष्ये यदुक्तं परमेश्वरैः॥ 25॥

कोई ग्रह एक राशि के स्वामी होते है और कोई ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी होते हैं, मैं यहाँ उनका अनुक्रम कहता हूँ, जैसा परमेश्वर ने पहले बताया था।

भौमस्य वृश्चिको मेषो भार्गवस्य तुला वृषौ।

बुधस्य कन्यामिथुने सोमस्यैवं तु कर्कटः॥ 26॥

सिंहः सूर्यस्य क्षेत्र स्याद् धनुर्मीनौ तथा गुरोः।

शनेश्च कुम्भमकरौ गृहक्षेत्राधिपा इति॥ 27॥

मङ्गल की वृश्चिक और मेष राशि, शुक्र की तुला और वृष राशि, बुध की कन्या व मिथुन राशि, चन्द्रमा की कर्क राशि, सूर्य की सिंह राशि, गुरु की धनु व मीन राशि, शनि की कुम्भ और मकर राशि है— इसे ही गृह व गृहस्वामी के प्रसङ्ग में भी समझें।

न पीडयन्त्यात्मक्षेत्रं स्नेहिनः क्षेत्रपालकाः।

रिपुगृहं पीडयन्ति भस्मीकुर्वन्ति विग्रहे॥ 28॥

ये सभी क्षेत्रपाल राशिपति अपने स्वक्षेत्र को कभी हानि नहीं पहुँचाते और अपने स्नेही मित्रों के क्षेत्र में होने पर भी हानि नहीं पहुँचाते परन्तु शत्रु के क्षेत्र में आने पर ये ग्रह पीड़ाकारी हो जाते हैं और विग्रह कराते हैं।

स्यात्सूर्यमन्दयोर्वैरं तथा च कुजमन्दयोः।

गुरुशुक्रयोः स्याद्वैरं चन्द्रेण च बुधस्य तु॥ 29॥

ग्रह से वेध हो तो केवल चरण वेध ही त्याज्य होता है। ऐसा नारदीय सूत्र का वचन है- 'पदभेवशुभैर्विद्ध अशुभैर्नैव कृत्स्नजः।' मुहूर्ततत्त्वं में इसकी विधि आई है—सात रेखाएँ तिर्यक् और सात ही रेखाएँ ऊर्ध्व रूप से खींचने पर सप्तशालाका चक्र बनता है। इसमें रुद्र अथवा ईशान की रेखा पर कृत्तिका नक्षत्र लिखें और बाद में शेष नक्षत्रों का क्रमशः न्यास करें। यह न्यास अन्तिम सिरे तक किया जाएगा और प्रत्येक रेखा के आमने-सामने नक्षत्र न्यास होगा। इन नक्षत्रों पर जो कोई ग्रह होगा तो उसका सामने वाले नक्षत्र से वेध जानना चाहिए। यह वेध विवाहादि माङ्गलिक कार्यों के अतिरिक्त अन्यत्र स्वीकार्य है। (मुहूर्त. 1, 5)

रवेरङ्गारकस्यैव मैत्री च गुरुचन्द्रयोः।
एषां त्रयाणां वै मैत्री अन्येषां तु न विद्यते॥ 30॥

सूर्य और शनि ग्रह में परस्पर वैर है। इसी तरह मङ्गल और शनि में भी वैर है। गुरु व शुक्र का वैर है और चन्द्र व बुध का भी वैर है। सूर्य और मङ्गल की मैत्री है। गुरु और चन्द्र की मैत्री है। इनकी तीनों में भी मैत्री है। अन्यों में यह मैत्री नहीं है।

स्पष्टार्थचक्र

राशि	ग्रह	मित्रभाव	शत्रुभाव	समभाव
सिंह	सूर्य	चन्द्र गुरु मङ्गल	शुक्र शनि	बुध
कर्क	चन्द्र	सूर्य बुध	-	गुरु शुक्र मङ्गल शनि
मेष, वृश्चिक	मङ्गल	सूर्य चन्द्र गुरु	बुध	शुक्र शनि
मिथुन, कन्या	बुध	सूर्य शुक्र	चन्द्र	मङ्गल गुरु शनि
धन, मीन	गुरु	सूर्य चन्द्र मङ्गल	बुध शुक्र	शनि
वृषभ, तुला	शुक्र	बुध शनि	सूर्य मङ्गल	चन्द्र गुरु
मकर, कुम्भ	शनि	बुध शुक्र	सूर्य चन्द्र मङ्गल	गुरु

ग्रहाश्चत्वार एकत्र त्रय एकत्रसंस्थिताः।
उभयोरन्तरं घोरं कालानल इवाऽपरः॥ 31॥

यदि चार ग्रह एकस्थान पर एकत्र हो जाए या तीन ग्रह एक स्थान पर स्थित हो जाए अथवा इन दोनों के अन्तर की स्थितियाँ हो तो घोर विपत्ति (काल-अग्नि जैसी परिस्थितियाँ) होती है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
नक्षत्रराशिचन्द्रमैत्र्यनुक्रमो नाम पञ्चषष्टितमं सूत्रम्॥ 65॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में नक्षत्र-राशि-चन्द्र-मैत्री अनुक्रम नामक पैसठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 65॥

व्ययांशकताराग्रहजीवमृत्युसर्वबलं षट्षष्टितमं सूत्रम्॥ 66॥

अथ व्ययानयनं विश्वकर्मोवाच —

नक्षत्रे वसुभि₈र्भक्ते यच्छेषं व्ययमादिशेत्।
अष्टौ व्ययास्तथाप्रोक्ता आयेष्वष्टसु योजिताः॥ 1॥

विश्वकर्मा ने कहा कि नक्षत्र को 8 से भाजित करें, जो शेष रहे उसे 'व्यय' कहा जाता है। व्यय भी आठ कही गई है, जो आठ आयों के साथ योजित होती है।

आयाश्च कथिताः पूर्वं व्ययानां लक्षणं शृणु।
एकैका यस्य संस्थाने व्ययाश्च त्रिविधाः स्मृताः ॥ 2 ॥

आयों के बारे में तो पहले कहा जा चुका है। अब तुम इन व्यय के लक्षणों के बारे में सुनो। एक-एक व्यय अपने संस्थान में तीन (पिशाच, राक्षस व यक्ष) प्रकार की होती है।

समो व्ययः पिशाचश्च राक्षसस्तु व्ययोऽधिकः।
व्ययो न्यूनो यक्षश्चैव धनधान्यकरः स्मृतः ॥ 3 ॥

पिशाचों का व्यय समान होता है; राक्षसों का व्यय अधिक होता है और यक्षों का व्यय न्यून होता है। इसलिए इनका व्यय धन-धान्यकर कहलाता है।

अनायव्यये कर्तरि आयहीने व्यये तथा।
व्ययाधिक विनश्यन्ति अचिरैणै सर्वदा ॥ 4 ॥

अनाय से व्यय छुरी या कैंची (कर्तरीदोष) का काम करता है। आय हीन से भी व्यय होता है और व्यय अधिक होने पर तो शीघ्र और सदा-सर्वदा के लिए विनाश हो जाता है।

ध्वजादिष्वष्टस्वायेषु अष्टौ शान्तादिका व्ययाः।
प्रत्येकव्ययसंस्थाने आयो न्यूनेत्तरः स्मृतः ॥ 5 ॥

ध्वजादि आठों आयों में आठों ही शान्तिकादिक व्यय हैं। अस्तु, प्रत्येक व्यय के संस्थानों में आय बहुत ही कम होती है।

व्ययनामानि —

शान्तः पौरः प्रद्योतश्च श्रियानन्दो मनोहरः।
श्रीवत्सो विभवश्चैव चिन्तात्मा च व्ययाः स्मृताः ॥ 6 ॥

1. शान्त, 2. पौर, 3. प्रद्योत, 4. श्रियानन्द, 5. मनोहर, 6. श्रीवत्स, 7. विभव और 8. चिन्तात्मा— ये आठ व्यय कही गई हैं।

प्रशस्ताप्रशस्त व्ययमाह —

आयस्थाने व्ययो योज्यो ह्यप्रशस्तो व्ययोऽधिकः।
व्ययो न्यूनस्तथा श्रेष्ठो धनधान्यकरः स्मृतः ॥ 7 ॥

आय स्थान में व्यय को लगाना अप्रशस्त अर्थात् ठीक नहीं है, क्योंकि व्यय अधिक है। व्यय तो न्यून ही श्रेष्ठ होता है जो धन-धान्यकारक माना जाता है।

स्मृतो ध्वजे शुभः शान्तः नित्यं कल्याणकारकः।
भोज्यं पूजाफलं शान्तिर्नृत्यं गीतं सुरालये ॥ 8 ॥

ज्ञातव्य है कि ध्वज आय के साथ शान्त व्यय दिया जाना शुभ और नित्य कल्याणकारक होता है तथा इससे भोज्य पदार्थ, पूजा के फल, शान्तिक नृत्य, गीतादि मन्दिरों में बने रहते हैं।

धूमस्थाने यदा शान्तो हेमरत्नादिसम्भवः।
अग्न्युपजीवकानां च धातुद्रव्यफलप्रदः॥ 9॥

धूम आय के साथ यदि शान्त व्यय हो तो सोना-चाँदी रत्नादि सम्भव हो जाते हैं जो अग्नि से उपजीविका चलाने वालों के लिए और धातु-द्रव्यों में फलप्रद है।

सिंहस्थाने च पौरश्चेत् सिंहवच्च पराक्रमैः।
निहन्ति रिपुसैन्यानि ह्यात्मस्थाने महोत्सवाः॥ 10॥

सिंह आय के स्थान पर पौर व्यय सिंह के समान ही पराक्रमी होता है, ऐसे योग के फलस्वरूप रिपुओं के सैन्य दल स्वयं अपने स्थानों में मारे जाते हैं और महोत्सव होते हैं।

प्रद्योतः श्वानसंस्थाने नित्यं भोगसुखावहः।
शय्यासु वेश्मनि तथानेकभोगादिकामदः॥ 11॥

श्वान आय के स्थान में प्रद्योत व्यय दिए जाने से नित्य भोग और सुख देने वाला होता है। इससे गृह में विविध शय्या-सुख और ऐसे ही अनेक भोगादि से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

श्रियानन्दो वृषस्थाने नित्यं श्रीसुखशान्तिदम्।
व्यवहारोपस्करं च गुरुदेवार्चने रतिम्॥ 12॥

वृष आय के स्थान में श्रियानन्द व्यय होने पर नित्य ही सुख और शान्ति बनी रहती है। इससे व्यवहार में आने वाले सभी उपस्कर अर्थात् साधन सुलभ होते हैं और गुरुदेव के पूजन-अर्चन में भी रुचि और प्रेम बना रहता है।

मनोहरः खरे युक्तः सर्वमनोरथप्रदः।
समस्तभोगयुक्तानां तीर्थयात्राप्रकाशकः॥ 13॥

खर आय के साथ मनोहर व्यय होने पर सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध होते रहते हैं। इससे समस्त भोगयुक्त साधन सुलभ होते हैं और तीर्थयात्रा का सौभाग्य भी प्रकट होता है।

श्रीवत्सो गजसंस्थाने स्त्रीणां क्रीडात्मनः स्मृताः।
शृङ्गारभोगयुक्तानां बलपुष्टिप्रदायकः॥ 14॥

गज आय के संस्थान पर श्रीवत्स व्यय होने पर स्त्रियों में क्रीड़ा, आमोद-प्रमोद

का और शृङ्गार-भोग आदि के योग बनते है। अस्तु, ऐसा संयोग भी बल-पुष्टि प्रदायक होता है।

विभवो ध्वाङ्क्षसंस्थाने शिल्पिनां हितकामदः।
सूत्रशास्त्रर्थसम्पन्ना भोगशृङ्गारनि**श्चला**: ॥ 15 ॥

ध्वांक्ष आय के संस्थान में विभव व्यय होने पर शिल्पियों के हित और कामनाओं की पूर्ति होती हैं। इससे वे सूत्रशास्त्रार्थ सम्पन्न होते है और उन्हें भोग-शृङ्गार की उपलब्धि निश्चल बनी रहती है।

सर्वेषु शान्त आयेषु प्रशस्तः सर्वकामदः।
षट्सु सिंहादिषु **शुभः पौरो** धूमध्वजौ **विना** ॥ 16 ॥

सभी आयों में शान्त व्यय प्रशस्त और सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। सिंहादि से छह आयों में पौर व्यय शुभ है, इनमें धूम, ध्वज ये दो आय नहीं होनी चाहिए।

ध्वजे धूमे तथा सिंहे प्रद्योतादीन् विवर्जयेत्।
शेषाणां सुप्रशस्ताश्च तथा स्थानेषु पञ्चसु ॥ 17 ॥

ध्वज आय में धूम आय में तथा सिंह आय में प्रद्योतादि व्यय विवर्जित है, शेष पाँच स्थानों में ये सुप्रशस्त हैं।

खरे वृषे श्रियानन्दो **गजे ध्वाङ्क्षे च शोभनः।**
मनोहरं त्यजेत्सोऽथ खरे ध्वाङ्क्षे गजे शुभः ॥ 18 ॥

खर आय और वृष आय स्थान पर श्रियानन्द व्यय, इसी तरह से गज आय और ध्वांक्ष आय के साथ भी श्रियानन्द व्यय शोभन, लाभप्रद है परन्तु खर आय, ध्वांक्ष आय और गज आय— तीनों में मनोहर व्यय को त्यागना ही शुभ है।

श्रीवत्सश्च गजे ध्वाङ्क्षे विभवो ध्वाङ्क्षके शुभः।
व्ययो न्यूनतरः श्रेष्ठो ह्यधिकश्चैव राक्षसः ॥ 19 ॥

गज आय, ध्वांक्ष आय के स्थान पर श्रीवत्स व्यय शुभ है। ध्वांक्ष आय के स्थान पर विभव व्यय भी शुभ है। अस्तु, व्यय सदा न्यूनतम रहना ही श्रेष्ठ है। अधिक व्यय तो राक्षसों का होता है।

चिन्तात्मकं व्ययं चापि आयेष्वष्टसु **वर्जयेत्।**
पिशाचकमायसमं न कुर्याच्छुभकर्मसु ॥ 20 ॥

इति व्ययाधिकारः।

इसी प्रकार आठों आयों के स्थान पर कभी भूल से भी चिन्तात्मक व्यय नहीं

आने देना चाहिए, इसे वर्जनीय कहा है। इसी तरह सम आय-व्यय भी पिशाचों की होती है। अस्तु, इसे भी शुभकर्मों में त्यागना समुचित है।

अथांशकाधिकार: —

शृणु वत्स यथा चांशो वास्तुवेदे त्रिधा स्मृत:।
एकैकक्रमयोगो वै शुभश्चाशुभ उच्यते॥ 21॥

हे वत्स सुनो! अंश भी वास्तु वेद में तीन प्रकार के होते है। ये सभी क्रम योग से एक-एक शुभ और अशुभ कहलाते हैं।

यदुक्ता मूलराशो च आयार्थेषु फलं कृतम्।
तत्र राशौ व्यये मिश्रे गृहनामाक्षराणि च॥ 22॥
गुणैर्भक्ते व्यये शेषं अंशकं त्रिविधं विदु:।
इन्द्रौ यमश्च राजा च त्रिभिर्नामभिरंशका:॥ 23॥[1]

जैसे कहा गया है कि मूल राशियाँ आयों के लिए फल निकालने में काम में ली जाती है, वहाँ राशियों के साथ व्ययों को मिलाने से गृहों के नामाक्षरों से गुणा करके व्यय का भाग दें, जो शेष बचे उनके 'अंशक' तीन प्रकार से जाने। ये क्रमश: 1. इन्द्र, 2. यम और 3. राजा— तीनों अंशों के ये तीन नाम हैं।

प्रासाद-प्रतिमा-लिङ्गे-जगतीपीठ-मण्डपे।
वेदी-कुण्डश्रुक्षु चैव इन्द्रश्चैव ध्वजादिषु॥ 24॥
क्षेत्रपाल[2] नागेन्द्रे गणाध्यक्षे च भैरवे।
ग्रहमातृगणे देव्यामादित्ये च यमांशक:॥ 25॥

प्रासाद, प्रतिमा, लिङ्ग, जगतीपीठ, मण्डप, वेदी-कुण्ड, श्रुवा के निर्माणादि में इन्द्र व्यय ध्वजादि आय के साथ दें। क्षेत्रपाल, नागेन्द्र या गजराज, गणाध्यक्ष, भैरव, ग्रह-मातृगण, देवियों, आदित्य में यमांशक व्यय देते हैं।

पुर-प्राकार-नगर-खेट-कूटे च कर्वटे।
हर्म्ये च राजवेश्मादौ शस्तो राजा तथा मत:॥ 26॥

इसी प्रकार पुर, प्राकार-परकोटा, नगर, खेट-खेड़ा, कूट, कर्वट, हर्म्य, राजवेश्म आदि में राजा अंशक देना प्रशस्त मत है।

---

1. तुलनीय— व्ययं क्षेत्रफले क्षिप्त्वा गृहनामाक्षराणि च॥ भागं त्रिभिर्हरेत् तत्र यच्छेषु सोंऽशको भवेत्। चतुरङ्गो यथा मन्त्रो मुख्यो लग्ने नवांशक:॥ तथा गृहादिषु प्रोक्तं मुख्यत्वेनांशकत्रयम्। इन्द्रो यमश्च राजा च त्रयो नामाभिरंशका:॥ स्वनामतुल्यफलदा विज्ञातव्यास्त्रयोऽपि च। (समराङ्गण. 26, 37-39)
2. 'क्षेत्राद्विसंक्षा?' इति प्रकाशित पाठ:।

स्वर्गादिभोगयुक्तानां नृत्यगीतमहोत्सवे।
प्रजावने च पाण्डित्ये इन्द्रांशश्चोत्तमो मतः ॥ 27 ॥

स्वर्गादि भोगों से युक्त प्रतीति देने वाले नृत्य-गीत महोत्सवों में, प्रजावनों, पाण्डित्य प्रदर्शक कार्यों के मंत्रों में भी इन्द्रांशक को ही प्रशस्त माना गया है।

विविधं च वणिक्कर्म मद्यमांसादिकं तथा।
इत्युक्तं क्रमतश्चेत्थं प्रशस्तं च यमांशके ॥ 28 ॥

इसी प्रकार विविध प्रकार के वणिक् कर्मों में, मद्य-मांसादिकों में यमाशंक को ही प्रशस्त कहा गया है।

गजाश्वरथक्रीडायां यानजम्भानकादिके।
स्वर्गादितुल्यभोगाश्च राजांशक उदाहृताः ॥ 29 ॥

गज, अश्व, रथ, क्रीड़ा में, यान, जम्भानादिक (पालकी आदि) एवं स्वर्ग के समान भोगों में राजांशक को प्रशस्त कहा गया है।

त्र्यक्षराणि त्रिभेदाश्च त्रिदेवास्त्रिहुताशनाः।
त्रयः कालास्त्रिसन्ध्याश्च रजः सत्वतमस्त्रयम् ॥ 30 ॥

तीन ही अक्षर (ओ, ऊ, म्), तीन भेद (स्वजातीय, स्वगत, विजातीय), तीन देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश), तीन अग्नि (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि), तीन काल (भूत, भविष्य, वर्तमान), तीन सन्धियाँ (स्वर, व्यञ्जन, विसर्ग या प्रातः अपराह्न, सायंकाल) और (गुण भी) रज, सत्व और तम तीन है।

प्रमाणत्रयमेवं च ज्येष्ठमध्याधमैः क्रमात्।
त्र्यंशकं तु समानीय वास्तुवेदभवं ततः ॥ 31 ॥

इत्यंशकाधिकारः।

इस प्रकार के प्रमाणत्रय— ज्येष्ठ, मध्यम और अधम के क्रम से अंशकों को भी लाकर वास्तुवेद बनता है।

अथ ताराधिकारः —

गणयेत्स्वामिनक्षत्राद्यावद्दक्षं गृहस्य च।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषास्ताराः प्रकीर्तिताः ॥ 32 ॥

स्वामी के नाम-नक्षत्र से लेकर गृह के नक्षत्र तक गणना करें और उसमें 9 का भाग दें तो जो शेष रहे उसे 'तारा' कहा जाता है।

तारानामानि सफलं —

शान्ता मनोहरा क्रूरा विजया कलिका तथा।

पद्मिनी राक्षसी वीरा ह्यानन्दा नवमी स्मृता ॥ 33 ॥

1. शान्ता, 2. मनोहरा, 3. क्रूरा, 4. विजया, 5. कलिका, 6. पद्मिनी, 7. राक्षसी, 8. वीरा और 9. आनन्दा— ये नौ ताराओं के नाम है।[1]

शान्ता शान्तिकरी नित्यं मनोह्लादा मनोहरा।
क्रूरा प्रवर्जिता प्राज्ञैश्चौराग्न्यादिभयङ्करी ॥ 34 ॥

शान्ता तारा सदा शान्तिकारक होती है, मनोहरा तारा मन में आह्लाद उत्पन्न करती है। क्रूरा तारा प्राज्ञों-विद्वानों के लिए वर्जित है और अग्नि आदि के भय उत्पन्न करने वाली है।

विजया जयकल्याणा कलिका कलहप्रदा।
पद्मया प्राप्यते सौख्यं महत्तीर्थफलं तथा ॥ 35 ॥

विजया तारा विजय और कल्याण देने वाली तथा कलिका तारा कलह कराने वाली है। पद्मिनी तारा से सुख मिलता है जैसे महान् तीर्थ का फल।

राक्षसी च तथा घोरा निशायां भयदायिनी।
वीरा सौम्या भोगदा च ह्यानन्दानन्दकारिणी ॥ 36 ॥

राक्षसी तारा भयङ्कर है और रात्रिकाल में भयोत्पादक है। वीरा तारा सौम्य है और भोगों को देने वाली है तथा आनन्दा तारा आनन्द करने वाली है।

एवं नवविधाकारा निराकारा हि तारकाः।
क्षीणश्चन्द्रो यदा वारे भवेत्तारा बलप्रदा ॥ 37 ॥

इस प्रकार ये निराकार तारका नव प्रकार के आकार वाली है। जब चन्द्रमा क्षीण होता है, तब उस वार के दिन तारा बलवान होती है।[2]

---

1. ताराओं के नामादि को लेकर शास्त्रों में दो रूप मिलते हैं। समराङ्गण. में कहा गया है—गणयेत् स्वामिनक्षत्राद् यावत् स्याद् भवनस्य भम्॥ नवभिर्भाजिते तस्मिन् शेषं तारा प्रकीर्तिता। जन्मसम्पद्विपत्क्षेमपापसाधकनैधनीः॥ मैत्रीपरममैत्र्यौ च प्राहुः सञ्ज्ञाः समाः फले। त्रिसप्तपञ्चमीर्भर्तुर्गृहतारा विवर्जयेत्॥ आद्याद्वितीयाष्टम्यस्तु ताराः स्युरिह मध्यमाः। तथा ऋक्षेऽपि चानिष्टे चन्द्रेऽष्टमगतेऽपि च॥ नयते दुरितं तारा चतुःषण्णवती नृणाम्। (समराङ्गण. 26, 40-44) इस प्रकार यहाँ 1. जन्म, 2. सम्पद, 3. विपत्, 4. क्षेम, 5. प्रत्यरि, 6. साधक, 7. बध, 8. मित्र व 9. परममित्र नाम से ताराओं की गणना हुई है। यही मत नारदसंहिताकार का है किन्तु जन्म सहित तीसरी, पाँचवीं व सातवीं तारा को अशुभद बताया है— जन्मसम्पद्विपत्क्षेम प्रत्यरिस्साधको वधः। मित्रं परममित्रं च जन्मभाच्च पुनः पुनः॥ जन्मत्रिपञ्चसप्ताख्या तारा नेष्टफलप्रदाः। (नारद. 13, 3-4)
2. कृष्ण पक्ष में चन्द्रबल की अपेक्षा ताराबल की प्रधानता होती है। क्षीण चन्द्रमा होने पर तारा वैसे ही बलवान होती है जिस प्रकार पति के परदेश में होने पर पत्नी ही गार्हस्थ्य का सारा दायित्व निभाती है— न खलु बहुलपक्षु शीतरश्मेः प्रभावः कथितमिह हि तारा वीर्यमार्यैः प्रधानम्। अतिविकल शरीरे प्रेयसि

क्रूरा च कलिका चैव राक्षसी तु तृतीयका।
क्रूराद्या इति वै तिस्रो वर्जयेच्छुभकर्मसु॥ 38॥
शान्ता मनोहरा चैव विजया पद्मिनी तथा।
वीरा नन्देति षट्तारा नित्यं कल्याणकारिका:॥ 39॥

इति ताराधिकारा:।

उक्त ताराओं में पहली क्रूरा, दूसरी कलिका और तीसरी राक्षसी ताराओं को 'क्रूराद्यातिस्र' कहते हैं। इन्हें शुभ कर्मों में कभी नहीं लेना चाहिए, ये वर्जित हैं परन्तु शान्ता, मनोहरा, विजया, पद्मिनी, वीरा, आनन्दा— ये छह ताराएँ नित्य ही कल्याण करने वाली होती हैं।

अथाधिनायकमाह —

कर$_2$राशि$_{12}$हतोत्था ये भागैर्हृष्टं$_8$ तथोऽष्टभि:$_8$।
आधिपत्यं भवेच्छेषं नाम्ना च सदृशं फलम्॥ 40॥

(अब अधिनायक के विषय में कहा जा रहा है) आधिपत्य ज्ञात करने के लिए दो और बारह को गुणा कर (2 ×12 = 24), इनका चौंसठ (8 × 8 = 64) में भाग दें तो जो शेष रहेगा, वह 'अधिपति' कहलाता है। जिस अधिपति का जो नाम है, तदनुसार ही उसका फल जानना चाहिए।

अधिपतिनामानि —

विकृत[1] कनकश्चैव धूम्रको विजय: स्वर:।
बिडालविजयौचैव दन्त: कान्तस्तथा मृग:॥ 41॥

अधिपतियों के नाम हैं— विकृत, कनक, धूम्रक, विजय, स्वर, विडाल, विजय, दन्त, कान्त और मृग।[2]

प्रोषिते वा प्रभवति खलु कर्तुं सर्वकार्याणि योषा॥ (ज्योतिषरत्नमाला 11, 5) लल्लाचार्य का भी यही मत है— न कृष्णपक्षे शशिन: प्रभावो ताराबलं तत्र शुभं प्रदिष्टम्। देशान्तरस्थे विकले च पत्यौ सर्वाणि कार्याणि करोति नारी॥ अत्रापि तारापतिवीर्यमेव वदन्ति पक्षद्वितयेऽपि केचित्। केचिच्च तासां बलयुक्तमिन्दोर्बलं सदा देयमिति ब्रुवन्ति॥ (ज्योतिर्निबन्ध में उद्धृत पृष्ठ 49, श्लोक 8-9)

1. 'वित्तत्य?' इति प्रकाशित पाठ:।
2. यह पाठ त्रुटित जान पड़ता है। ज्ञानप्रकाशदीपार्णव में इसका पाठ मिलता है जो समझने योग्य है। दीपार्णवकार का कहना है कि बुद्धिमान शिल्पी को गृह के उदय क्षेत्रफल के अङ्क के साथ गुणा करते जो अङ्क आए उसे 8 से भाग करते जो शेष रहे, उसे अधिपति जाने और जो अधिपति सम हो वह शुभ है। इनके नाम हैं—1. विकृत, 2. कर्णक, 3. धूम्रद, 4. वितथस्वर, 5. विडाल, 6. दुन्दुभि, 7. दान्त, 8. कान्त—गेहस्योदयकं क्षेत्रफलेन गुणयेद् बुध:। अष्टभिस्तु हरेच्छेषं शुभ: सोऽधिपति: सम:॥ विकृत:

विषमआया भवेत्सप्त, आयहीना व्यया: शुभा:।
आधिपत्यं सम्मं शान्तं शुभदं सर्वदा नृणाम्॥ 42॥

इत्याधिपत्यम्।

विषम आय सात हैं और आयहीन व्यय शुभ होते हैं। आधिपत्य सम संख्यक हो तो व्यक्ति के लिए सदा ही शान्त व शुभ होते हैं।

अथायुष्यत्थाविनाश: —

अष्टभिश्च$_{8}$ हते क्षेत्रे फले षष्टि$_{6}$ विभाजिते।
लब्धे दशगुणे जीवो मृत्युर्वै भूतभाजिते॥ 43॥[1]
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव **च।**
पञ्च तत्त्वानि प्रोक्तानि विभक्तानि स्युरन्तके॥ 44॥

जो क्षेत्रफल हो उसको 8 से गुणाकर जो फल आए उसे 60 की संख्या से विभाजित करने पर जो अङ्क आए, उससे 10 को गुणा करें। इस लब्धि तक उस वास्तु के जीवन-मृत्यु या आयुष्य को जानना चाहिए। साठ की संख्या से भाग करने पर जो शेष रहे, उसे 5 से भाजित करने पर पञ्चतत्त्वों को जाना जा सकता है, इसके अनुसार ही गृह के अन्त का कारण जानना चाहिए।[2] पृथ्वी, आप या जल, तेज या अग्नि, वायु, आकाश— इनको पञ्चतत्व कहा गया है इनको अन्त में विभक्त किया गया।

कर्णकश्चैव धूम्रदो वितथस्वर:। विडालो दुन्दुभिश्चैव दान्त: कान्तोऽधिनायक:॥ (दीपार्णव 1, 10-11) अधिपति की गणित की दूसरी विधि के अनुसार आय और व्यय के अङ्क को जोड़कर उसके 8 से भाग करने से जो शेष बचे, उसे अधिपति जाने। वह अधिपति अगर विषम अङ्की हो तो वह भय उत्पन्न करता है—यदायव्ययसंयोगे यदैक्यं वसुभिर्जजेत्। शेषस्त्वधिपति: केचिद् विषम: सभयावह:॥ (दीपार्णव 1, 12)

1. धाराधिप भोज का प्रकारान्तर से मत है— हतेऽष्टभि:$_{8}$ क्षेत्रफले ख$_{0}$नेत्र$_{2}$शशि$_{1}$भाजिते। शेषं जीवितमेतस्मिन् पञ्च$_{5}$भक्ते भवेन्मृति॥ (समराङ्गण. 26, 53)
2. उक्त पाँच से भाग देने पर यदि एक शेष रहे तो पृथ्वी तत्त्व (भूकम्पादि से), दो शेष हो तो जल (प्लावन), तीन शेष हो तो अग्नि (आगजनी), चार शेष रहे तो वायु (आंधी या प्रबल पवन) तथा पाँच शेष रहे तो आकाश तत्त्व (वज्रपात, उल्का पिण्डादि का पतन) को विनाश का हेतु जानना चाहिए अथवा गृह शून्य रहता है। इस प्रकार पाँचों तत्त्वों से वास्तु के अन्तकाल को समझा जा सकता है। सूत्रधार मण्डन का मत है— हनेद् वृद्धिभिक्षेत्रं फलं षष्ठी विभाजित्तात्। लब्ध्वां सदशगुणं जीवो शेषाङ्के भूतभाजिते॥ पृथ्व्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च। पञ्चतत्त्वे तथा मृत्यु अन्तकाले प्रभेदित:॥ (आयतत्त्वं 1, 74-75) तुलनीय— हनेदष्टभि: क्षेत्रं च फले षष्ठिविभाजिते। लब्धं दशगुणं जीव: शेषांक भूतभाजितम्॥ पृथिव्यापस्तथा तेजी वायुराकाशमेव च। पञ्चतत्त्वे भवेन्मृत्युरन्तकाले प्रभेदिते॥ (दीपार्णव. 1, 88-89) तथा : गुणयेदष्टिभि: क्षेत्रफलं षष्ठिविभाजितम्। लब्धं दशगुणं जीवंच्छेषं भूत समाहृतम्॥ पृथ्व्यापस्तथा तेजोवायुराकाशमेव च। पञ्चतत्त्वानि जानीयादन्तकाले प्रभेदने॥ (क्षीरार्णव 1, 48-49)

अप्सु चाद्भिर्भवेन्मृत्युस्तेजस्यग्निबलं भवेत्।
वायुर्वायुकरो देहे त्वाकाशे शून्यता भवेत्॥ 45 ॥

(पृथ्वी से चलन होने पर विनाश) आप से जल या वृष्टि के कारण विनाश, तेज से अग्निकाण्ड से विनाश, वायु देह में वायुविकार की भाँति है जबकि आकाश से शून्यता होती है।

धनधान्येषु नष्टेष देहः पतति जर्जरः।
इत्थं मृत्युः प्रभवति पञ्चतत्त्वविनाशतः ॥ 46 ॥

जब धन-धान्य नष्ट हो जाए व देह जर्जर हो जाए और गिर पड़े तो इस प्रकार की अवस्था को मृत्यु कहते हैं यह पञ्चतत्त्वों के नष्ट होने से होती है (वैसे ही वास्तु के सन्दर्भ में भी विचार करना चाहिए)।

अन्यदप्याह —

आयव्ययांशनक्षत्रं ताराचन्द्रमैत्र्यादिकम्।
प्रीतिरायुश्च मृत्युश्च चिरं नन्दति चेच्छुभाः ॥ 47 ॥[1]

(इस प्रकार उपर्युक्त) आय, व्यय, अंशक, नक्षत्र, तारा, चन्द्र की मैत्री आदि, प्रीति, आयु, मृत्यु आदि के लक्षण यदि शुभ हो तो चिरकाल तक आनन्द देते हैं।

तथा च शुभानि —

त्रिभिः श्रेष्ठैस्तु श्रेष्ठं स्यात् पञ्चभिश्चोत्तमोत्तमम्।
सप्तभिः सर्वकल्याणं नवभिर्जयसम्पदा ॥ 48 ॥

इसमें से तीन के श्रेष्ठ होने पर सब कुछ श्रेष्ठ होता है, पाँच के श्रेष्ठ होने पर उत्तमोत्तम माना जाता है और यदि नौ ही तत्त्व-निर्देश श्रेष्ठ हो तो जय एवं सम्पदा मिलती है।

वास्तुकर्मे अशुभानि —

न षट्काष्टकं त्रिकोणं द्वादशी द्वितीयाष्टमी।
न चाष्टद्वादशे शशी तारा त्रिपञ्चसप्तमी ॥ 49 ॥
न द्वितीयांशकं कुर्यात् तथा चाष्टममायकम्।[2]

---

1. तुलनीय— आयव्ययांशनक्षत्रं ताराचन्द्रमैत्रादिकम्। प्रीतिआयुष्य मृत्युश्च शुभं नन्दति चच्चिरं॥ (दीपार्णव 1, 91) तथा च— आयऋक्ष चन्द्रगण व्ययतारांशक राशयः। राशिमैत्री ग्रहमैत्री नाडीवेधाधिपतिः॥ लग्नतिथिर्वारोत्पत्ति अधिपति वर्गवैरकं। योनिवैरं ऋक्षवैरं स्थितिर्नाशैक विंशतिः ॥ (तत्रैव 1, 51-52)
2. समराङ्गण में आया है— आयो व्ययश्च योनित्वं ताराश्च भवनांशकाः ॥ गृहनामेति चिन्त्यानि करणानि गृहस्य षट्। त्रिभिः शुभैः शुभं वेश्म द्वाभ्यामेकेन चाशुभम्॥ करणैश्चतुराद्यैस्तु शुभैरतिशुभं भवेत्। न समायव्ययं वेश्म नाव्ययं नाधिकव्ययम्॥ न द्वितीयांशमसदृग्योनिभं च न कारयेत्। भर्तृतुल्याभिधानं च

न पृष्ठतस्तथा चन्द्रं नववास्तुककर्मणि॥ 50॥

नए वास्तुकर्म के प्रसङ्ग में न षडाष्टक, न त्रिकोण, न द्विद्वादशक, न द्विष्टमक योग को लेना चाहिए। इसी प्रकार आठवाँ, बारहवाँ चन्द्रमा भी न लें; न ही तीसरी, पाँचवीं और सातवीं तारा को ग्रहण करें। न द्वितीय अंशक (यमांश) ले न आठवीं आय (ध्वांक्ष) में कार्य करे। इसी प्रकार पृष्ठ का चन्द्रमा[1] भी नहीं लेना चाहिए।

नाधिकस्तु व्ययः कार्यो न वेरा [2]विषमाग्रहा।
न स्वकुल अतिरिष्टं(?) न राशिवर्णबाह्यतः॥ 51॥

इसी प्रकार निर्माण कार्य में क्षेत्र को जानकर आय से अधिक व्यय को न रखें और न विषम ग्रहों के वैर रखें। न एक ही कुल के अति अरिष्टों को ले और न राशि को वर्ण के बाहर से लें।

पदे पूज्याः स्थिताः सर्वे हिंसन्ति त्वपदे स्थिताः।
ग्रहा गावस्तथा विप्राः शापानुग्रहकारकाः॥ 52॥

पद पर होने पर सभी पूज्य होते हैं और पदच्युत होने पर सभी उसकी हिंसा-निन्दा करते हैं। ग्रह, गाय और विप्र सदा ही शाप और अनुग्रह के कारक बनते हैं।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
व्ययांशकताराग्रहजीवमृत्युसर्वबलाधिकारो नाम षट्षष्टितमं सूत्रम्॥ 66॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में व्यय-अंशक-तारा-ग्रह-जीव-मृत्यु, सर्वबलाधिकार नामक छासठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 66॥

गृहं दूरात् परित्यजेत्॥ समसप्तकमेकर्क्षं तृतीयैकादशं तथा। चतुर्थदशकं चेति कर्तव्यं मन्दिरं सदा॥ षट्कोष्ठकं त्रिकोणं च वर्ज्यं द्विर्द्वादशं तथा। षट्कोष्ठके मृतिर्दैन्यं वियोगश्च भवेद् गृहे॥ त्रिकोणे वसतां दुःखं वैधव्यं च प्रजायते। द्विर्द्वादशे पुत्रपौत्रगुरुबन्धुधनक्षयः॥ (समराङ्गण. 26, 49-55) इस प्रकार समराङ्गणसूत्रधार में इन अङ्गों को करण कहा गया है। यह मान्यता वशिष्ठसंहिता के निकट है जिसमें योनि, तारा, व्यय, गृहांशक, आय व नाम इन छहों को करण नामाभिधान देते हुए गृहस्थ को इन पर विचार करने को कहा है— त्वं योनित्वं तथा तारा व्ययोऽथ भवनांशकं आयोऽथ गृहनामानि करणानि षडेष्वहि। गृहस्यैतानि चिन्त्यानि प्रयत्नेन च धीमता... (वशिष्ठसंहिता 39, 75)

1. ज्योतिष व अन्य वास्तुग्रन्थों में कहा गया है कि आगे का चन्द्रमा आयु का हरण करता है व पृष्ठचन्द्र धन का क्षय करता है, चन्द्रमा वाम-दक्षिण का हो तो धन-धान्यकर्ता है। तथापि यदि देवप्रासाद व राजगृहादि का प्रसङ्ग हो तो आगे का चन्द्रमा दिया जाए अन्यत्र नहीं— अग्रतो हरते आयु पृष्ठतो हरते धनं। वामदक्षिण तो चन्द्रो धनधान्य करस्मृताः॥ (क्षीरार्णव 1, 19)
विशेषोच्च— अग्रतो हरते ह्यायुः पृष्ठतो हरते धनम्। वामदक्षिणयोश्चन्द्रो धनधान्यकरः स्मृतः॥ प्रासादे राजगेहे च चन्द्रं दद्यात् सदाग्रतः। अन्येषां तु न दातव्यं श्रीमन्तादिगृहेषु च॥ (दीपार्णव 1, 58-59)
2. 'विमलाग्रहा ?' इति प्रकाशित पाठः।

शास्त्रच्छन्दनिर्णयोनाम सप्तषष्टितमं सूत्रम् ॥ 67 ॥

अपराजित उवाच —

छन्दश्च क्रमतः प्रोक्तं शाश्वतं शास्त्रकौशलम्।
तदनुक्रमयुक्तीश्च कथयस्व प्रसादतः ॥ 1 ॥

अपराजित बोले कि हे प्रभु! कृपा करके शाश्वत शास्त्र कौशल में बताए गए सभी छन्दों को क्रमवार बताएँ और उनकी अनुक्रम से युक्ति भी कहें।

विश्वकर्मोवाच —

एकाक्षरा क्षरे भिन्नं व्याप्तं चैतच्चराचरम्।
त्रैलोक्यस्योत्पत्तिकरं छन्दो मेरुसृष्ट्युद्भवम् ॥ 2 ॥

विश्वकर्मा बोले कि एक तो अक्षर और दूसरे क्षर इन भिन्न-भिन्नों से चराचर व्याप्त है। इनसे तीनों लोकों की उत्पति करने वाले सभी छन्द मेरुसृष्टि से उद्भूत हैं।

तथा शम्भुश्च-मेरुश्च-चिन्तामणि-र्वृत्तार्णवः।
चतुर्विधं छन्दशास्त्रमेकाद्यक्षरतः क्रमात् ॥ 3 ॥

अस्तु, एक छन्दशास्त्र से, एकाक्षर से क्रमानुसार चार प्रकार के छन्द उत्पन्न हुए यथा, 1. शम्भु, 2. मेरु, 3. चिन्तामणि और ४. वृत्तार्णव।

एकाक्षरोद्भवः शम्भुस्तथामेरुश्च युग्मतः।
चिन्तामणिस्त्रिभिश्चैव वेदैर्वृत्तार्णवः स्मृतः ॥ 4 ॥

एकाक्षर से उत्पन्न मेरु तथा शम्भु का युग्म तथा चिन्तामणि तीन से और वृत्तार्णव चार अक्षर से बने माने जाते हैं।

छन्दश्चतुर्विधमाह —

छन्दाश्चतुर्विधाः प्रोक्ता वेदान्ताश्चैकतः पृथक्।
गुरुलघूद्भवा मात्रा प्लुतह्रस्वादिसञ्ज्ञकाः ॥ 5 ॥

छन्द भी चार प्रकार के कहे गए हैं। एक से चार तक अलग-अलग इनकी गुरु [ऽ] और लघु मात्रा [।] को प्लुत और ह्रस्व संज्ञा दी गई है।

सानुस्वारा विसर्गान्ता वेदान्तोद्भवकल्पना।
भिन्नाभिन्नास्तथानेके भेदाश्च्छन्दसमुद्भवाः ॥ 6 ॥

अनुस्वार से विसर्गान्त तक चार प्रकार की उत्पत्ति की कल्पना की गई है। इनको भिन्न-भिन्न स्थान पर रखते जाने से कई भेदों की उत्पति होती है।

एकाक्षरो द्रुतमात्रो भेदः सूर्यः स उच्यते।
निबन्धपादाः पङ्क्तौ च वेदसङ्ख्याः प्रकीर्तिताः ॥ 7 ॥
कलिकादिकवृत्तानां त्र्यष्टकं प्रोच्यते तथा।

एकाक्षर और द्रुत मात्रा होने से उसे 'सूर्य' भेद (बारह) कहते हैं। निबन्ध पादपङ्क्तियों (दस) को 'वेदसंख्या' भेद (चार) तथा कलिकादिक वृत्तों को 'त्र्यष्टक' भेद (तियासी) कहते हैं।

तेषां अभिधानपङ्क्तिमाह —

तदभिधानपङ्क्तिं च कथयिष्याम्यनुक्रमात् ॥ 8 ॥

अब मैं इनकी अभिधानपङ्क्ति को भी अनुक्रम से कहता हूँ।

कलिकाविकास्यवज्राः कुमारललितानुष्टुप्।
अक्षमश्चैव प्रणम्योपेन्द्रवज्राजलानि च ॥ 9 ॥
करणराज्यं वसन्ततिलका चैव मालिनी।
तिलगर्जितं चाद्भुता तथा च गिरिकर्णिका।
शार्दूलविक्रीडितं च तथा चैवातिवृत्तकम् ॥ 10 ॥
स्रग्धरा मदना मदनलता च मधुकरा।

कलिका विकास्य, वज्रा, कुमारललिता, अनुष्टुप, अक्षम और प्रणम्य, उपेन्द्रवज्रा, जलवृत्त और करणराज्य, वसन्ततिलका, मालिनी और तिलगर्जित अद्भुता, गिरिकर्णिका, शार्दूलविक्रीडित, अतिवृत्तक, स्रग्धरा और मदना तथा मदनलता मधुकरा।

अथ निबन्धमाह —

निबन्धश्चाथ गोविन्दः प्रोक्ता मुक्ताफला तथा ॥ 11 ॥
शुद्धसमो विषमश्च विषमसमकस्तथा।
समस्तुल्यपदैः ख्यातो विषमो विषमैः पदैः ॥ 12 ॥
विषमाक्षरगस्त्वेवं समवर्णगतस्तथा।
विषमसमसञ्ज्ञश्च दशभेदाः$_{10}$ क्रमोदिताः ॥ 13 ॥

इसके अतिरिक्त निबन्ध, गोविन्द, मुक्ताफल, शुद्धसम, विषम, विषमासम व समतुल्यपद के कारण और विषम-विषम पदों के कारण ख्यात हैं विषमाक्षरों में गए हुए भी ऐसे ही है, समवर्णगत की तरह विषमसम संज्ञा वाले— ऐसे दस भेद क्रमोदित हैं।

अथ गुणाः —

शान्तिः कर्णश्च सम्पातः सिंहो बाणश्च पल्लवः।

कर्णकारः शुक्रः शङ्कुस्तथाधर्मो गुणा दश॥ 14॥

शान्ति, कर्ण, सम्पात, सिंह, बाण, पल्लव, कर्णकार, शुक्र, शङ्कु और धर्म— ये दस गुण कहे गए हैं।

जयमाला तथा नन्दा मेघा च सिंहगर्जना।

तथा कल्लोलतरङ्गा रत्नावली पुष्पोद्गिरा॥ 15॥

पत्रोद्भवा अत्युद्भुता अतिच्छन्दा दशोदिताः।

एते दशाभिधानाश्च विषमा वाद्यकन्दतः ?॥ 16॥

जयमाला, नन्दा, मेघा, सिंहगर्जना, कल्लोलतरङ्गा, रत्नावली, पुष्पोद्गिरा, पत्रोद्भवा, अत्युद्भुता और अतिच्छन्दा— ये दश, इतने दशाभिधान है।

अथार्याच्छन्दोद्भूत छन्दं —

शान्ताद्भुता मुख्या सौम्या रम्या च रमणी पुरा।

मुखोद्गीर्णा चपलाख्या भैरवी भुवनोत्तमा॥ 17॥

शृङ्गारी हास्यकरणी तिलकारा पद्मोद्भवा।

विकारास्या प्रज्ञावती प्रबला वीरसम्भवा॥ 18॥

प्रकारणाक्षसम्भूतिर्विकास्याथ प्रभामला।

चतुर्विंशतिरार्याणां छन्दसां च समुद्भवाः॥ 19॥

(पूर्व श्लोकानुसार) विषमा, शान्ता, अद्भुता, मुख्या, सौम्या, रम्या, रमणी, पुरा, मुखोद्गीरा, चपला, भैरवी, भुवनोत्तमा, शृङ्गारी, हास्यकरणी, तिलकारा, पद्मोद्भवा, विकारास्या, प्रज्ञावती, प्रबला, वीरसम्भवा, प्रकारण, अक्षसम्भूति, विकास्या और प्रभामला— ये चौबीस आर्या छन्दों से सम्भूत है।

प्रकरणादीनां —

प्रकरणसूत्रसन्धिपरिच्छेदाध्यायास्तथा।

अङ्ककाण्डसर्गखण्डवर्गाद्या ग्रन्थसम्भवाः॥ 20॥

(ग्रन्थ रचना में विषय-वस्तु के विभाजन के लिए) प्रकरण, सूत्र, सन्धि, परिच्छेद, अध्याय, अङ्क, काण्ड, सर्ग, खण्ड, वर्ग (विरचन, उल्लास) आदि से ग्रन्थ रचना सम्भव होती है।

अङ्गाष्टमाह —

स्वयंभूक्तं तलकीर्णं शान्ते च मनुमन्दिरः ?।
प्रभामणिश्च ह्लादश्च ह्यङ्गाष्टकमुदाहृतम् ॥ 21 ॥

स्वयंभुक्त, तलकीर्ण, शान्त, मनु, मन्दिर, प्रभा, मणि, ह्लाद— इनको अङ्गाष्टक कहा गया है।

क्षराक्षरापदादीनां —

एकाक्षरपदं चैव वृत्तं वेदाक्षरं भवेत्।
चतुरक्षरपादं तु वृत्तं वै षोडशाक्षरम् ॥ 22 ॥

एकाक्षर, पद, वृत्त, चार अक्षरों का पद और चार अक्षरों के चरण से वृत्त के सोलह अक्षर होते हैं।

कलिकासञ्ज्ञकं वृत्तं षोडशाक्षरमुच्यते।
चतुरक्षरपादस्याष्टाक्षराण्यर्धसञ्ज्ञकम् ॥ 23 ॥

कलिका वृत्त के सोलह अक्षर कहे गए हैं। चार अक्षर पाद के आठ अक्षरों को अर्ध कहा जाता है।

अक्षरानुसारेण नानावृत्तनामाह —

पञ्चाक्षरं विकास्याख्यं तदर्धं तु दशाक्षरम्।
विंशत्यक्षरवृत्तं च विकास्याभिधमुच्यते ॥ 24 ॥

पाँच अक्षरों के पद वाले विकास्य नामक वृत्त का आधा दशाक्षर और इस तरह से बीस अक्षर वाले वृत्त को विकास्याभिध कहा जाता है।

पदं षड्भिरक्षरैश्च वृत्तं वज्रकमुच्यते।
कुमारलतिका सप्तभिरष्टभिरनुष्टुपः ॥ 25 ॥

छह अक्षरों वाले पद से जो वृत्त बनता है उसे वज्र कहते हैं तथा सात अक्षरों वाले पद से कुमारलतिका वृत बनता है। आठ अक्षरों वाले पद से अनुष्टुप वृत्त बनता है।

नवारक्षैररक्षमं च प्रणम्यं च दशाक्षरैः।
उपेन्द्रवज्रैकादशाक्षरैर्द्वादशभिर्जलम् ॥ 26 ॥

नौ अक्षरों के पद से अक्षम वृत्त बनता है और दस अक्षर के पद से प्रणम्यवृत्त बनता है। इसी तरह ग्यारह अक्षरों के पद से उपेन्द्रवज्रा वृत्त बनता है और बारह अक्षरों वाले पद से जलवृत्त बनता है।

त्रयोदशा कर्णराज्यं वसन्ततिलकेन्द्रतः।
मालिनी पञ्चदशतः षोडशतिलगर्जितम्॥ 27॥

तेरह अक्षर वाले पद से कर्णराज्य वृत्त बनता है। चौदह अक्षरों के पद से वसन्ततिलक वृत्त बनता है। पन्द्रह अक्षर वाले पद से मालिनी वृत्त बनता है। सोलह अक्षरों वाले पद से तिलगर्जित वृत्त बनता है।

अद्भुतं सप्तदशभिर्गिरिरष्टादशाक्षरैः।
शार्दूलादि दिगङ्कैश्च विंशत्याश्चातिवृत्तकम्॥ 28॥

इसी प्रकार सत्रह अक्षरों वाले पद से अद्भुत नामक वृत्त बनता है और अठारह अक्षर वाले पद से गिरिकर्णिका वृत बनता है। इसी में दिशा के अङ्क या उन्नीस अक्षरों वाले पद से शार्दूलविक्रीडित वृत्त और बीस अक्षरों वाले पद से अतिवृत्तक बनता है।

स्रग्धरा चैकविंशत्या मदना द्वाविंशतिभिः।
त्रयोविंशत्या मदन-लता मधुकरोऽर्कयोः॥ 29॥

इक्कीस अक्षरों वाले पद से स्रग्धरा वृत्त बनता है और बाईस अक्षरों वाले पद से मदना वृत्त बनता है। तेईस अक्षरों वाले पद से मदन-लता वृत्त बनता है। चौबीस अक्षर वाले पद से मधुकर वृत्त बनता है।

निबन्धः पञ्चविंशत्या गोविन्दश्च षड्विंशत्या।
सप्तविंशतिभिर्मुक्ताफलेत्थं वृत्तकानि च॥ 30॥

पच्चीस अक्षरों के पद से निबन्ध वृत्त बनता है। छब्बीस अक्षरों के पद से गोविन्द वृत्त बनता है। इसी तरह से सत्ताईस अक्षरों वाले पद से मुक्ताफल वृत्त बनता है— इतने सब वृत्त कहे गए हैं।

इत्यमनन्तर गणश्च्छन्दमाह —

मयौ रसौ तजौ भो नो गणाश्चाष्टौ लघुर्गुरुः।
छन्दस्सुदशकं चेति प्रोक्तं वै शास्त्रकौशलैः॥ 31॥

अब मैं गण और छन्द के बारे में कहता हूँ। गण आठ होते है उनमें लघु और गुरु दो भेद हैं। (म-य-र-स-त-ज-भ-न ये आठगण हैं। यथा— मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण और नगण)।[1] इसी तरह छन्द दस कह गए हैं, शास्त्र के कुशल जानकारों द्वारा ऐसा कहा गया है।

---

1. छन्दोमञ्जर्यामप्येवमुक्तम्— मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः। जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥ गुरुरेको गकारस्तु लकारो लघुरेककः। क्रमेण चैषां रेखाभिः संस्थानं दर्श्यते यथा॥ गण पहचानने का सरल सूत्र है 'यमाताराजभानसलगा' इस सूत्र में

समविषमवृत्तानि —

समारक्षरपदं वृत्तं यत्तच्छुद्धसमं भवेत्।
असमाक्षरपादं च भवेद् विषमसञ्ज्ञकम्॥ 32॥

समान अक्षरों वाले चारों पाद के जो वृत्त हैं, उन्हें शुद्ध सम वृत्त कहते हैं। असमानक्षरों वाले पद के वृत्तों को विषम वृत्त नाम दिया गया है।

समपादं तु पूर्वार्द्धमुत्तरार्द्धं च वृद्धिगम्।
समविषमं तु तन्नाम अन्तपादोऽधिको भवेत्॥ 33॥
पूर्वार्द्धे च भवेद् वृद्धिः समवच्चोत्तरं समम्।
पूर्ववच्चान्यविषमं विषमविषमं च तत्॥ 34॥
आदिस्तृतीयो विषमां द्वितीयो वा चतुर्थकः।
एकवर्णगतावेवं सम्पुटं च दिशन्ति तत्॥ 35॥

यदि पहला पाद तो सम अक्षरों वाला हो और उसका उत्तरार्ध पाद अधिक अक्षरों वाला हो तो उसे समविषम वृत्त नाम दिया गया है, जिसका अन्त पाद अधिक होता है। परन्तु, जिस वृत्त के पूर्वार्ध में अक्षर अधिक हो और उत्तरार्ध में समान अक्षर हो तो उसे समवच्चोत्तर समवृत्त कहते है। जिस वृत्त में पहला पद भी विषम हो और उत्तरपद भी विषम हो, दूसरा पद विषम हो या चौथा पद विषम हो— ये एक वर्णगत इस तरह होने पर सम्पुट और दिशन्ति कहलाते हैं।

अष्टाविंशत्यक्षरतः सप्तत्रिंशत्तथान्ततः।
भवत्यक्षरवृद्ध्या तद् गद्यानां दशकं तथा॥ 36॥

अट्ठाईस (28) अक्षरों से लेकर सैंतीस (37) अक्षरों के अन्त तक अक्षर वृद्धि होते-होते उस गद्य को (पद्य को?) दशक नाम दिया गया है।

आर्यावृत्तनाह —

यदा वृत्तेषु पूर्वार्द्धमुत्तरार्द्धसमं न हि।

ह्रस्व-लघु (ल या।), दीर्घ अथवा गुरु (ग या ऽ)। इससे इनको बनाना आसान हो जाता है। उदाहरण— यगण (।ऽऽ), मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), रगण (ऽ।ऽ), जगण, (।ऽ।), भगण (ऽ।।), नगण (।।।), सगण (।।ऽ)। इन्हीं गणों को पहचानने का अन्य सूत्र इस प्रकार है— आदि मध्या वसानेषु यरता यान्ति लाघवम्। भजसा गौरवं यान्ति मनो तु गुरु लाघवम्॥ अर्थात्— यगण (।ऽऽ) में आदि, रगण (ऽ।ऽ) रगण में मध्य, तगण में (ऽऽ।) में अन्त में लघु रहता है। भगण (ऽ।।) जगण में (।ऽ।), सगण में (।।ऽ) क्रमशः गुरु रहता है तथा मगण (ऽऽऽ) और नगण (।।।) पूरे गुरु और पूरे लघु युक्त होते हैं। छन्दशास्त्रों में यह वर्णन विशिष्ट रूप से मिलता है। विशेष जानकारी के लिए पुराणों में नारदपुराण, अग्नि और गरुडपुराण में छन्दशास्त्र द्रष्टव्य है।

आर्याभिधानकं तच्च भिन्नं वृत्तं च पादतः ॥ 37 ॥

जव वृत्तों का पूर्वार्ध उत्तरार्ध के समान नहीं होता, तो उसे 'आर्या' नामक वृत्त कहते है क्योंकि उसके पाद भिन्न-भिन्न अक्षरों में होते हैं।

कलिकाद्ये च नवमं मुक्ताफलकमन्ततः।
त्यक्त्वा समानाक्षराणि शेषवृत्तानि सन्ति च ॥ 38 ॥
एतानि वर्णवृत्तानि मात्रावृत्तं तु शेषकम्।

नवें कलिकादि से लेकर मुक्ताफल तक के छोड़कर शेष वृत्त समान अक्षरों के होते हैं। इतने वर्णिक वृत्त हैं, मात्रिक वृत्त शेष होते हैं।

द्विमात्रको गुरु ज्ञेय एकमात्रो लघुर्भवेत् ॥ 39 ॥
सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्तः परश्च यः।
गुरुर्वा तु पदान्तस्थो द्विमात्रश्च लघुस्तथा ॥ 40 ॥

दो मात्रा को गुरु (ऽ) एक मात्रा को लघु (।) कहते हैं। अनुस्वार सहित विसर्ग के अन्त तक के स्वर दीर्घ (ऽ) कहे जाते हैं। पदों के अन्त में दो मात्रा गुरु या लघु होते हैं।

गुरोर्लघुगता मात्रा सूर्यभेदसमुद्भवा$_{12}$।
एवं छन्दोगणाः प्रोक्ताः विज्ञेयाः शास्त्रकोविदैः ॥ 41 ॥

गुरु और लघु मात्रा के बारह प्रकार होते हैं। इस तरह छन्दों और गणों को शास्त्रकोविद् पण्डितों ने जाना और कहा है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां शास्त्रच्छन्दनिर्णयाधिकारो नाम सप्तषष्टितमं सूत्रम् ॥ 67 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में शास्त्रच्छन्दनिर्णयाधिकार नामक सड़सठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 67 ॥

गृहप्रासादसम्भूतच्छन्दभेदो नामाष्टषष्टितमं सूत्रम् ॥ 68 ॥

अपराजित उवाच —

छन्दश्च कथितं देव सर्वशास्त्राद्यसम्भवम्।
अन्यत्र छन्दभेदांश्च कथयस्व परमेश्वर ॥ 1 ॥

अपराजित बोले कि हे देव! आपने सर्वशास्त्रों के आदि में सम्भव होने वाले छन्दों के बारे में अब तक कहा। अब हे परमेश्वर! अन्यत्र छन्दभेदों को भी कहिए।

गृहप्रासादसम्भूताश्छन्दाः षटसञ्ज्ञकाः स्मृताः।
कथयस्व प्रसादेन तेषां निर्णयमादितः ॥ 2 ॥
मेरुश्च खण्डमेरुश्च पताका सूचिका तथा।
उद्दिष्टं नष्टमित्युक्ताश्छन्दाः षड्बुधसम्मिताः ॥ 3 ॥

गृह-प्रासाद के बनने के छह प्रकार की संज्ञा के छन्द कहे गए हैं। अस्तु, कृपा करके आप उनका निर्णय आरम्भ से ही कहिए। वे छन्द क्रमशः 1. मेरु, 2. खण्डमेरु, 3. पताका, 4. सूचिका 5. उद्दिष्ट तथा 6. नष्ट छन्द— छह प्रकार के बुद्धिमानों ने स्वीकृत किए हैं।

एषां प्रस्तारसन्दोहं मम भ्रान्तिहरं परम्।
त्वत्प्रसादेन देवेश छन्दशास्त्रसमुद्भवम् ॥ 4 ॥

हे देवेश! इस सब का प्रस्तार-सन्दोह (प्रस्तार समुच्चयक्रम) बताकर मेरी परम् भ्रान्ति का निवारण आप छन्दशास्त्र का उद्भव बताकर कृपापूर्वक कीजिए।

विश्वकर्मोवाच —

प्रोक्ता भेदाश्छन्दसां षट् रिपुरान्तवेदोद्भवाः(?)।
भेदे शून्यं त्रयशून्यं वेदाशू [1]उपाङ्गषड्ध्वः ॥ 5 ॥
खशून्या भवेदमुक्ता सङ्ख्यामिति छन्दोद्भवा ?।
प्रयुक्तशास्त्रछन्देषु भेदाश्च षड्विधाः क्रमात् ॥ 6 ॥

विश्वकर्मा बोले कि छन्दों के छह भेद कहे गए हैं। (आगे का अनुमानित अर्थ है कि षट्रिपु— काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य है, भेद से शून्य, तीन से शून्य, वेद के उपरान्त उपाङ्गों और षड्ध्व हैं— कलाध्व, तत्त्वाध्व, भुवनाध्व, वर्णाध्व, पदाध्व तथा मन्त्राध्व; वैसे ही शून्य या आकाश से उत्पन्न स्वर-संख्या से निष्पन्न छन्दों के) शास्त्र में प्रयुक्त छन्दों के क्रमशः छह प्रकार के भेद होते हैं।

लक्षणालङ्कारयुता भिन्ना अर्थार्थतस्तथा।
भिन्नास्तथैकाक्षरत इत्थं छन्दसमुद्भवः ॥ 7 ॥

लक्षण अलङ्कारों से युक्त और अर्थ भिन्न-भिन्न अर्थों युक्त— इस तरह एक अक्षर से लेकर भिन्न तरह-तरह के छन्द निर्मित करते हैं।

श्रुतिस्मृतिपुराणानि मन्त्रमुद्राक्षराणि च।
मेरुच्छन्दसमुत्पन्नमाब्रह्मभुवनान्तकम् ॥ 8 ॥

---

1. उपाङ्गवध्रकशवः ? इति प्रकाशित पाठः।

श्रुतियों में, स्मृतियों में, पुराणों में, मन्त्रों में व मुद्राओं में मेरुछन्द से उत्पन्न हुए छन्द पूरे ब्रह्म और भुवनों अर्थात् चौदह भुवनों के अन्त तक भी व्याप्त है।

माड-मौड-शुद्ध-शृङ्ग-तुङ्गार-सिंहकादिकाः।
प्रोक्ता च राजवेश्मादौ मेरुच्छन्दसमुद्भवाः॥ 9॥

उनके विविध नाम हैं— माड, मौड़, शुद्ध, शृङ्ग, तुङ्गार, सिंह आदि। अब मेरु छन्द से बनने वाले राजवेश्म अर्थात् राजभवनों, महल व प्रासादों के बारे में सबसे पहले कहता हूँ।

आनकणाभि सङ्घाटा गृहमालाकूटपञ्जरम्।
सम्भूता मेरुच्छन्दाच्च गृहा हर्म्यादिसञ्ज्ञकाः॥ 10॥

आणक या सेना के काम आने वाले दुन्दुभि नगाड़े, घण्टादिकों की जोड़ी तथा सैनिकों के छावनी- गृहमाला के कूट, किले पञ्जर आदि और हर्म्यादि नाम के भवन सभी मेरुछन्द से ही बने हैं।

तृणपट्टवाजिपूर्णखण्डपाण्डव एव च।
प्रयुक्ता मेरुच्छन्दादौ वास्तुविद्भिरुदाहृताः॥ 11॥

इसी तरह वास्तुविदों ने मेरुछन्द के प्रयोग से तृण, पट्ट, वाजि (बाण या अश्व), पूर्ण, खण्ड, पाण्डव आदि भेद भी बनाएँ।[1]

लतिना नागरा भौमा द्राविडाश्च विराटका।
सावन्धारा विमानाख्या मेरुच्छन्दसमुद्भवाः॥ 12॥

इन्ही की तरह लतिन, नागर, भौम, द्राविड़, विराट, सावन्धार, विमान के नाम की निर्मितियाँ भी मेरुछन्द से समुद्भूत है।

स्तम्भगर्भतीर्यमाना खण्डा वेणुकलादिकम्।
मेरुच्छन्दोद्भवा रेखाः प्रोक्ताश्च सुरवेश्मनाम्॥ 13॥

स्तम्भ गर्भ से निकलने वाली खण्ड, वेणु-पर्व, कलादि भी मेरु छन्दोद्भव ही है जो रेखा देव मन्दिरों के शिखरों पर बनती है।

---

1. वास्तुमण्डनम् में कहा गया है कि पट्टछन्द के अनुसार विविध भेदों वाली शालाएँ व अलिन्दादि होते हैं तथा इसके विपरीत तृणछन्द से सोलह अन्य भेद होते हैं। जिसमें उदयमान न्यून होता है उसकी संज्ञा पाण्डु हैं तथा इनमें वाजन विस्तृत होता है। इसी प्रकार जिसमें फलक के अंत का उच्छ्रेय चार हाथ तक हो, वह शेष छन्द होता है— पट्टच्छन्दे यथा भेदा शालाऽलिन्दादिका मताः। विपरीतास्तृणछन्दे षोडशैवं प्रकीर्त्तिताः॥ हीनोदयाः पाण्डुसञ्ज्ञा वाजिनस्तु ब्रुयेऽधिकाम्। फलकान्ते चतुर्हस्ता शेष छन्देषुवोच्छ्रयः॥ (वास्तुमण्डनम् 6, 6-7)

तथैक-त्रि-पञ्च-सप्त-नवशाखसमुद्भवम्।
प्रयुक्तं द्वारविधानं वास्तूपदेशका विदुः ॥ 14 ॥

प्रासादों के द्वार पर बनने वाली रेखाएँ एक, तीन, पाँच, सात, नौ शाखा तक बनती है, ऐसा विद्वान वास्तुशास्त्रोपदेशकों ने द्वार-विधान में प्रयुक्त किया है।

अथ मण्डपानि —

गूढो नृत्यश्चन्द्रालोको भद्रावलोकनादिकाः।
चतुःषष्टिः$_{64}$ समाख्याता मण्डपा मेरुछन्दतः ॥ 15 ॥

अब मण्डपों के बारे में कहता हूँ जो गूढ मण्डप, नृत्य, चन्द्रावलोकन, भद्रावलोकन आदि नामों से चौंसठ प्रकार के मेरुछन्द से बनने वाले कहे गए हैं।

वितानानि —

पद्मनाभिसभामार्गमन्दारभिन्नमिश्रकम्।
षड्विधं च वितानं स्यान् मेरुच्छन्दादुहाहृतम्॥ 16 ॥

इसी तरह सभामण्डपों के वितान भी यथा— पद्म, नाभि, सभा-मार्ग, मन्दार, भिन्न, मिश्रक ये छह प्रकार के वितान मेरुछन्दानुसार बनते हैं।

शाला नामानि —

कर्णजा भ्रमजाश्चैव भद्रजा गर्भजास्तथा।
मध्यजाः पार्श्वजाः ख्याताः शालाश्च मेरुछन्दतः ॥ 17 ॥

कर्णजा, भ्रमजा, भद्रजा, गर्भजा, मध्यजा, पार्श्वजा नाम वाली शालाएँ भी मेरुछन्द से बनती हैं।

पीठानि —

वेदीबन्धं श्रीबन्धाख्यं पङ्कजं भद्रकं तथा।
सुभद्रं तारकं पीठं मेरुच्छन्दोविनिर्गतम्॥ 18 ॥

इसी प्रकार वेदीबन्ध, श्रीबन्ध, पङ्कज, भद्रक, सुभद्र और तारक इन नामों की पीठ भी मेरुछन्द से ही निकली हुई है।

विविध लिङ्गनामानि —

सुरार्चितं चाद्यनादि स्वभु बाणं चतुर्थकम्।
शक्त्याख्यं वर्धमानं च लिङ्गं मेरुविनिःसृतम्॥ 19 ॥

सुरार्चितलिङ्ग, आद्यनादिलिङ्ग, स्वभुलिङ्ग, बाणलिङ्ग, शक्त्यालिङ्ग और वर्धमानलिङ्ग नाम के लिङ्ग भी मेरुछन्द से बने हैं।

वेदाश्रादि पीठिका: —

वेदाश्रा वर्तुलाख्या त्रिकोणा तु षडंशका।
वेदिका पद्मिका चैव पीठिका मेरुच्छन्दत: ॥ 20 ॥

चतुरस्र, वर्तुल, त्रिकोण, षट्कोण, वेदिका, पद्मिका जैसी पीठिकाएँ भी मेरुछन्द से चली हुई हैं।

अथार्चा —

सीमा गर्भस्तथा **द्वारं** तलकोर्ध्वविभक्तिकम्।
अर्चा च षड्विधा **प्रोक्ता** मेरुच्छन्दसमुद्भवा ॥ 21 ॥

सीमा, गर्भ, द्वार, तलक, ऊर्ध्व, विभक्तिक— ये अर्चा भी छह प्रकार की कही गई हैं जो मेरुछन्द से ही बनती हैं।

नगरादीनां —

नगरं च पुरं ग्राम: खेट: कूटश्च कर्व्वट:।
एते च षड्विधा **ज्ञेया** मेरुच्छन्दविनिर्गता: ॥ 22 ॥

इसी प्रकार नगर, पुर, ग्राम, खेट, कूट, कर्व्वट— ये छहों भी मेरुछन्द से बने कहे गए हैं।

जलस्रोतादीनां —

वापीकूपतडागं **च** रथयन्त्रचक्रादिकम्।
प्रयुक्तं मेरुच्छन्देषु वास्तुविद्भिरुदाहृतम् ॥ 23 ॥

वापी, कूप, तड़ाग, रथ, यन्त्र, चक्रादिक— ये भी सब छहों वास्तुविदों ने मेरुछन्द से ही बने कहे हैं।

वेदीसिंहासनं **छत्रं** शय्याकवचमायुधम्।
वास्तुवेदे **समाख्यातं** मेरुच्छन्दसमुद्भवम् ॥ 24 ॥

वेदी (बाजोट), सिंहासन, छत्र, शय्या, कवच, आयुध— इन छहों को भी वास्तुवेद में मेरुछन्द से बने कहा गया है।

रथवीथ्यन्तरमार्गाश्च षट् पन्थान एव च।
प्रयुक्ता वास्तुविद्भिश्च मेरुच्छन्दसमुद्भवा: ॥ 25 ॥

इति छन्दादिनिकाशसङ्ख्याधिकार:।

रथवीथिका, अन्तरमार्ग और अन्य षट् पन्थान (भ्रमर, पुर, प्राकार, तोरण, अट्ट, अट्टालक व संवाध- ये षट्पद) आदि भी वास्तुविदों ने मेरुछन्द से बने कहा है।

मेरुच्छन्दवर्णनं —

पृथ्व्याकारो यथा छन्दो मेर्वाकारसमुद्भवः।

षड्विधं मेरुच्छन्दश्च षडत्रिंशच्छन्दभेदकाः$_{36}$ ॥ 26 ॥

पृथ्वी के आकार का जो छन्द है वह भी मेरु के आकार से ही बना है। इस तरह मेरुछन्द छह प्रकार का होता है जिसके भी छत्तीस भेद के छन्द होते हैं।

भेदैस्तत्र त्र्यष्टशतैर्दशभिर्गुणितैस्ततः।

चतुर्विंशत्सहस्राणि छन्दभेदाश्च सङ्ख्यया ॥ 27 ॥

इन भेदों से भी चौबीस सौ के दशगुणे अर्थात् चौबीस हजार (24000) छन्दों के भेदों की संख्या बन जाती है।

इन्द्रोद्भवक्ष्मावृद्धी भूतकोणान्तमध्यमैः ?।

इषु प्राणेषु भक्षन्ती प्रत्येकविषमेपदम् ? ॥ 28 ॥

इन्द्रोद्भव, क्षमावृद्धि, पञ्चकोण, अन्त और मध्यम पञ्चप्राणों (संभवतः 14 से आरम्भ कर एक की शुद्धि करते हुए ?) से भक्षण.. प्रत्येक विषम पदस्थ होने पर ?

षड्भिर्नभशब्दैः[1] कोटिर्मेरुच्छन्दे तु सङ्ख्यया।

तत्रोक्तमेवप्रमाणं सृष्टाऽम्भोजप्रकाशिना ॥ 29 ॥

नाभिकमल से उद्भूत सृष्टा ब्रह्माजी ने तीन सौ साठ कोटि (षड्भि$_6$र्नभ$_0$शब्दैः$_3$ कोटिर्मेरु ?) मेरुछन्द संख्या वाले ये सब प्रमाण सहित प्रकाशित किए हैं।

मेरुर्मेरूपमः कार्यः शरावस्येव चाकृतिः।

सृष्टिस्तदुद्भवा सूत्र पात्रे पात्रमिवापरम् ॥ 30 ॥

मेरु को मेरु रूप में ही करना चाहिए। उसकी आकृति शराव (सकोरे) के समान होती है। सारी सृष्टि उसी मेरु से उत्पन्न हुई है और ऐसे प्रतीत होती है जैसे कि घड़े पर घड़ा रखा गया हो।

षट् छन्दभेदाः —

मेरुश्च खण्डमेरुश्च पताका सूचिका तथा।

उद्दिष्टं नष्टमिति षट् छन्दांसीह प्रचक्षते ॥ 31 ॥

परम्परा में 1. मेरु, 2. खण्डमेरु, 3. पताका, 4. सूचिका, 5. उद्दिष्ट और 6. नष्ट—ये छह छन्द कहे गए हैं।[2]

---

1. 'षड्भिर्नभशद्वैः' इति प्रकाशित पाठः। यहाँ ब्रह्मा के किसी आद्यशास्त्र का वर्णन है। बृहत्संहिता के वास्तुविद्याध्याय में वराहमिहिर ने 'कमलभवान्मुनिपरम्परायातम्' कहकर इसकी ओर सङ्केत किया है।
2. नारदपुराण के पूर्वभाग के द्वितीय पादस्थ अध्याय 57 और गरुडपुराण के 212वें अध्याय में छन्दशास्त्र

छन्दस्य पुराख्यानमाह —

मृत्युभीतैः पुरा देवैरात्मनश्छन्दनायकः।

संस्मृतानीह छन्दांसि छादितैस्तैस्ततो [1]मही: ॥ 32 ॥

पूर्वकाल में मृत्यु के भय से आक्रान्त देवताओं ने अपने छन्दनायक के पास जाकर इन छन्दों का स्मरण दिलाया था। तब उसने इनको छाया देकर इस भूमि पर रहने के योग्य बनाया।

छन्दे-छन्दं समुद्दिष्टं वाससी कृतिरेव च।

छन्दोभिरावृतं सर्वं वन्द्यं सर्वत्र नान्यथा ॥ 33 ॥

तब छन्दों में छन्दों का प्रयोग करते हुए भवनों का निर्माण करके उन्हें उन्नत किया। अस्तु, सर्वत्र वे सभी छन्दों से आवृत्त होकर वन्दनीय बन गए, इसमें कोई भी बात अन्यथा नहीं है।

व्योम्नः पतते बिन्दु ?पतितो स बिन्दुगर्भतो भवेत्।

गुरुर्लघुर्लतायाश्च तस्य चाष्टौ समुद्भवाः ॥ 34 ॥

व्योम से जो बिन्दु भूमि पर गिरता है, वह बिन्दु भी गर्भ बन जाता है, उससे गुरु और लघुतादि आठों की उत्पत्ति होती है।

अथ प्रस्तारक्रमाह[2] —

आद्यगुरोरधोह्रस्वं पुनः शेषं यथोपरि।

के अनुसार प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एकद्व्यादिगलक्रिया, संख्या तथा अध्वयोग- ये छह प्रणालियां बताई गई है। वास्तुशास्त्र में मेरु, खण्डमेरु, पताका, सूचिका, उद्दिष्ट और नष्ट- इन षट्च्छन्दों का वर्णन है। प्रस्तार विषयक श्लोक इस मातृका सहित अपराजितपृच्छा के प्रकाशित पाठ में भी त्रुटित अधिक हैं इसलिए पुराणमत और समराङ्गणसूत्रधार के अनुसार इन पर विमर्श किया जा सकता है। समराङ्गण के 26वें अध्याय में उक्त श्लोक 60वें क्रम पर है। मेरु प्रस्तार के अनुसार किसी छन्द में कितने लघु, कितने गुरु तथा एकाक्षरादि छन्दों में कितने वृत्त होते हैं, इसका ज्ञान होता है, ऐसा छन्दशास्त्रविदों का कथन है। मेरुप्रस्तार में नीचे से ऊपर की ओर आधा-आधा अङ्गुल विस्तार कम होता जाता है, छन्द की संख्या को दूनी करके एक-एक घटा दिया जाए तो उतने ही अङ्गुल का उसका अध्वा अथवा प्रस्तारदेश होता है। शिल्पियों से चर्चा में ज्ञात हुआ कि यह ईंटों-पत्थरों को जमाकर उठाने की विधि है और इसी से शिखर तक पहुँचने और उसकी सुदृढ़ता की स्थिति रहती है। मेवाड़-मालवा और गुजरात के शिल्पी प्रस्तार छन्द को पग-बाँधना और शिखरोर्ध्व को माथा-बाँधना नाम से कहते आए हैं।

1. 'महा: ?' इति प्रकाशित पाठः।
2. छन्दशास्त्र की भांति ही वास्तुशास्त्र में छन्द मत स्वीकार्य है। इच्छित वास्तु के लिए सम्पूर्ण गुरु अक्षर वाले पाद में प्रथम गुरु के नीचे लघु लिखना चाहिए, तदोपरान्त दाहिनी ओर की पङ्क्ति को ऊपर की पङ्क्ति के समान भरें अर्थात् शेष स्थानों में ऊपर के अनुसार गुरु-लघु लिखें। इस क्रिया को लगातार करें। इसे करते हुए ऊनस्थान अर्थात् बायीं ओर के शेष स्थान में सब गुरु ही लिखें और तब तक लिखें कि जब तक सभी लघु न आ जाएँ, इसे प्रस्तार कहा जाता है।

अङ्कभिः पूरयेत् पश्चाद् यावत् सर्वहतं पदम्॥ 35॥

पहला गुरु है। उसके नीचे ह्रस्व या लघु हो, पुनः जो शेष बचे वह ऊपर हो, इनको अङ्कों से बाद में पूरा करें जब तक कि सभी पद गुणित न हो जाए।

गुरोरधस्ताच्च गुरुं निधाय शेषं समानं परिलक्ष्य सम्यक्।
खण्डं प्रकुर्याद् गुरुपूरणार्थं यावत्पदं सर्वलघुस्थमेते॥ 36॥

गुरु के नीचे गुरु रखें, शेष को ठीक तरह से समान परिलक्ष्य करें। गुरु पूरण हेतु उसके खण्ड करते जाएँ जब तक कि सभी लघुत्व तक न पहुँच जाएँ।

भवन्ति प्रस्तारगताश्च [1]एते षट् सप्तमीप्रत्यय वै गृहाणाम्?।
ये नैव जानन्ति गुरुपदिष्टान् ते सूत्रधारा रिपवः प्रजानाम्॥ 37॥

इस तरह प्रस्तार करते जाने से— (छियोत्तर प्रत्यय?) गृहों के बनते हैं, इस गणित को जो गुरु के उपदेश से नहीं जानते, उन सूत्रधारों को प्रजाजनों का शत्रु ही मानना चाहिए।

एकाद्येकोत्तरान् कोष्ठान् विन्यसेदिच्छयात्मनः।
आद्यादारभ्य तद्वृद्धिर्यथास्यात्पार्श्वयोः समम्॥ 38॥

एक से एक उत्तर कोष्ठों को अपनी इच्छानुसार न्यसित करें। पहले से आरम्भ करके फिर उसे बढ़ाते हुए सभी दोनों पास वालों को एक जैसा समान बनाएँ।

मेरोरेकाधिका सङ्ख्या शरावस्येव चाकृतिः।
प्रथमे कोष्ठके रूपमन्तं यावच्च पार्श्वयोः॥ 39॥

मेरु की एक से अधिक संख्या होती है और उनकी आकृति शराव (सकोरे) के समान है। प्रथम कोष्टक का जो स्वरूप है, वह अन्त तक होगा और इसमें पार्श्ववर्ती के आकार को भी वैसा ही करना चाहिए।

आसनोर्ध्वस्थयोर्न्यस्येन्मध्ये सङ्कलितं पृथक्।
तस्मिन्निष्टविकल्पानां सङ्ख्या स्यादन्त्यपङ्क्तिगा॥ 40॥

इति मेरुछन्दः।

यह स्मरणीय है कि ऊर्ध्वस्थित इन दोनों के मध्य में अलग सङ्कल्पित स्वरूप

---

1. यह श्लोक ग्रन्थान्त के 236वें सूत्र में त्रुटितपाठ के रूप में जुड़ गया है : (चत्वार आद्यास्सुरवेश्मनां च) कर्तारएवामरवेश्मनां च दक्षाअपि प्रत्ययकान् षडेतान्। ये वै न जानन्ति गुरुपदिष्टास्ते सूत्रधारा रिपवः प्रजानाम्॥ यह माना जाए कि इन छन्दों में से आरम्भ के चार छन्द देवताओं के लिए मंदिरों हेतु होते हैं। कर्ता को इन छहों की गणित में दक्ष होना चाहिए। गुरु के उपदेश से जो इनका ज्ञान नहीं रखते, वे मानों जनता के वैरी ही सिद्ध होते हैं।

हो जाता है, पुनः इच्छित क्रिया-परिकल्पनाओं की वैकल्पिक संख्या अन्त की पङ्क्ति में मिल जाती है।[1]

अथ खण्डमेरु वर्णनं —

खण्डमेरुं तु विन्यस्येत् तद्वदेवैकपार्श्ववतः।
प्रवृद्धैः कोष्टकैस्तत्राप्यङ्काः प्राग्वत् फलं यथा॥ 41॥

अब खण्डमेरु के लिए कहते हैं कि उसी प्रकार से पार्श्व से खण्डमेरु का विन्यास करना चाहिए। उसके कोष्ठक प्रवृद्ध हों और अङ्क दूसरी पङ्क्ति में छोर तक, पहलों में शून्य रखें और अन्य कोष्ठों में भी पूर्व की भाँति, फल में भी वैसा ही करें।

तथा चान्यं खण्डमेरु (पताकाच्छन्दश्च) —

अथापरः खण्डमेरुः कोष्ठांस्तत्रेष्टसङ्ख्या।
कृत्वैकापचितान् वामविभागापचितानधः॥ 42॥

इसके उपरान्त, दूसरे खण्डमेरु के विषय में कहा जा रहा है। वहाँ पर कोष्ठों को आठ की संख्या में रखना चाहिए। इस प्रकार इसमें नीचे से ऊपर कोष्ठ आठ होते हैं। इसके बाद (सम्भवतः पताका छन्दार्थ) एक-एक कम करते हुए नीचे के बायें भागों में भी कमी करते जाएँ।

एकाद्येकोत्तरानङ्कानाद्यपङ्क्तौ निवेशयेत्।
अन्यासु पङ्क्तिष्वाप्रान्तं शून्यानाद्येषु कल्पयेत्॥ 43॥
द्वितीयेषु च कोष्ठेषु तासामेकैक साधयेत्।
द्वितीयायां तृतीयादिकोष्ठकेषु यथाक्रमम्॥ 44॥
विकर्णयोगजानन्यानूर्ध्वाधोयोगसम्भवान्।
फलं विकर्णयोगात्थमेकस्मिन् परिकल्पयेत्॥ 45॥[2]

---

1. यह मत समराङ्गणसूत्रधार से प्रेरित है। इसे इस तरह भी स्पष्ट किया जा सकता है—आगे से आगे एक एक कोष्ठों को इच्छानुसार विन्यसित करें, आदि से प्रारम्भ कर तदनन्तर बढ़ते जाएँ, जब तक दोनों पार्श्वों का एक समान सम्पादन हो जाए तब मेरुछन्द निष्पन्न होता है। मेरु की एक से अधिक संख्या होती है और शराव के सदृश्य उसकी आकृति होती है। प्रथम कोष्ठ का जो रूप होता है, वही पार्श्वों का रूप बन जाता है। ऊर्ध्वस्थित इन दोनों के मध्य में पृथक् सङ्कल्पित रूप हो जाता है, दुबारा इच्छित क्रिया कल्पनाओं की संख्या अन्तिम पङ्क्ति से संयुक्त हो जाती है— एकाद्येकोत्तरान् कोष्ठान् विन्यसेदिच्छयात्मनः। आद्यादारभ्य तद्वृद्धिर्यथा स्यात् पार्श्वयोः समम्॥ मेरोरेकाधिका सङ्ख्या शरावस्येव चाकृतिः। प्रथमे कोष्ठके रूपमन्तं यावच्च पार्श्वयोः॥ आसनोर्ध्वस्थयोर्न्यस्येन्मध्ये सङ्कलितं पृथक्। तस्मिन्निष्टविकल्पानां सङ्ख्या स्यादन्त्यपङ्क्तिगा॥ (समराङ्गण. 26, 61-63)
2. ये श्लोक ज्यों के त्यों समराङ्गण. में आए हैं— खण्डमेरुं तु विन्यस्येत् तद्वदेवैपार्श्वतः। प्रवृद्धैः कोष्टकैस्तत्राप्यङ्काः प्राग्वत् फलं तथा॥ अथापरः खण्डमेरुः कोष्ठांस्तत्रेष्टसङ्ख्यया। कृत्वैकापचितान्

इति खण्डमेरुः ?।

एक से आरम्भ करके उनके बाद के अङ्कों को पहली पङ्क्ति में रखें, दूसरों को पङ्क्ति के किनारे आदि से शून्यों की कल्पना करें। दूसरे कोष्ठक में भी उनको एक-एक करके, दूसरे को तीसरे कोष्ठक में क्रमशः रखते जाएँ। अब विकर्ण का योग जानने हेतु और ऊपर नीचे के योग लाने के लिए विकर्ण योग के फल को एक जगह कल्पित कर लेना चाहिए। इसका आशय है कि एक जिनके आरम्भ में है और एक ही जिनके अन्त में है, इस प्रकार के अङ्कों की पहली पङ्क्ति में रखें। इसमें भी यही क्रिया करें, पुनः तृतीय आदि कोष्ठकों में क्रमशः विकरण-योग से उत्पन्न या ऊर्ध्वाध योग से उत्पन्न अन्य अङ्कों का विन्यास करें। पुनः विकरण-योग से उत्पन्न फल की एक कोष्ठ में प्रकल्पना करें।

एकाधिकानभीष्टायाः सङ्ख्यायास्तिर्यगालिखेत्।
कोष्ठोनेतांश्च रूपादींस्तन्मध्ये द्विगुणोत्तरान्॥ 46॥
एकोनं पृष्ठतस्तेषामेकं द्विगुणमग्रतः।
नातिक्रमेत् परां सङ्ख्यां पताकाछन्द उच्यते।[1]
गृहमालायुक्ताक्ष्यातं पताकानामकं विदुः॥ 47॥

इति पताकाछन्दः।

एक से अधिक जब अभिष्ट हो तो उन संख्याओं को तिरछे लिखें। इन कोष्ठों को रुपादि मध्य दुगुणे करते जाएँ, एक के पीछे एक रखते हुए आगे वालों को दुगुना करते जाए। अब संख्या का अतिक्रमण न करें तो इसे 'पताका' छन्द कहते हैं। इसी को विद्वज्जन 'गृहमाला' नाम से भी पताका छन्द कहते हैं। आशय यह है कि अभीष्ट संख्या को एक से अधिक तिरछे लिखें। मध्य में दुगुने-दुगुने अन्तः कोष्ठ-रूपादि का न्यास करें। उनमें से पीछे एक संख्या कम करें और अग्रतः एक को दुगुना कर यदि परा संख्या का अतिक्रमण न हो तो पताका-छन्द होता है।

वामविभागाचितानधः॥ एकाद्येकोत्तरानङ्कानाद्यपङ्क्तौ निवेशयेत्। अन्यासु पङ्क्तिष्वाप्रान्तं शून्यान्या(ना)द्येषु कल्पयेत्॥ द्वितीयेषु च कोष्ठेषु तासामेकैकमावयेत्। द्वितीयायां तृतीयादिकोष्ठकेषु यथाक्रमम्॥ विकर्णयोगजानन्यानूर्ध्वाधोयोगसम्भवान्। फलं विकर्णयोगोत्थमेकस्मिन् परिकल्पयेत्॥ (समराङ्गण. 26, 64-68)

1. ये श्लोक ज्यों के त्यों समराङ्गण. में आए हैं— एकाधिकानभीष्टयाः सङ्ख्यायास्तिर्यगालिखेत्। कोष्ठानेकांच (तांश्च) रूपादींस्तन्मध्ये द्विगुणोत्तरान्॥ एकोनं पृष्ठतस्तेषामेकं द्विगुणमग्रतः। नातिक्रामेत् परां सङ्ख्यां पताकाछन्द उच्यते॥ (समराङ्गण. 26, 69-70)

अथ सूचीछन्दः —

तद्विनेष्टाद्यगा सङ्ख्यत्येकाद्यैस्तैस्ततो गृहे।
न्यताङ्कसङ्ख्याः सङ्ख्याः [1]गुरुलघ्वाद्यैः प्रकल्पिताः ॥ 48 ॥

अब सूचीछन्द के विषय में कहा जा रहा है। इसी प्रकार नेष्टाद्य संख्या को भी एक के बाद एक गृह में रखते जाए, उन अङ्क संख्या के न्यस्त रखने पर संख्या गुरु और लघु आदि प्रकल्पित होती है।

एकैकमिष्टस्थानेषुः लिखेत् सैकेष्वतः(सैकेश्वतः!) परम्।
अन्त्याद्दते पूर्वपूर्वयुक्तेनायोजयेत् परम्॥ 49 ॥

एक-एक को इष्टस्थान पर लिखते जाए और एक से आगे अन्त तक पहली-पहली युक्ति अनुसार जोड़ते जाए अर्थात् पुनः अन्त की छोड़कर पहले-पहले वाली को दूसरी-दूसरी से मिलाएँ।

अन्त्यादारभ्यं तद्वानावेकाद्येषु च पर्ययात्।
अलिन्दादिषु यत्र स्यात् सङ्ख्या सूचीं तु तां विदुः ॥ 50 ॥[2]

इति सूचीछन्दः।

इसी प्रकार अन्त से पुनरारम्भ कर पीछे लौटे, जहाँ पर पर्याय से अलिन्द आदि की रचना में यह संख्या निकले, उसे विद्वानों ने सूचीछन्द कहा है।

अथोद्दिष्टछन्द नष्टच्छन्दश्च —

उद्दिष्टे स्थापयेत् सङ्ख्यामुद्दिष्टां सम्भजेच्च ताम्।
दलयेद् रूपयुक्तां तु दलयेन्नाम सम्भवेत्॥ 51 ॥
लघुस्वरूपदलने सैकार्धे करणे गुरुः।
यावदिष्टपदाप्तिः स्याल्लघवोऽलिन्दकोदयः ॥ 52 ॥[3]

---

1. समराङ्गण में यहाँ पाठ है—'स्युलिन्दाद्यैः प्रकल्पिताः।' इसका आशय होगा कि उसको छोड़कर पहली आदि इष्ट संख्याओं से अंक-विन्यास वाली संख्याओं को अलिन्दों से प्रकल्पित कर एक-एक को इष्ट स्थानों में रखें।

2. ये श्लोक भी ज्यों के त्यों समराङ्गण. में मिलते हैं—तद्विनेष्टाद्यगा सङ्ख्येत्येकाद्यैस्तैस्ततो गृहे। न्यस्ताङ्कसङ्ख्याः सङ्ख्याः स्युरलिन्दाद्यैः प्रकल्पिताः॥ एकैकमिष्टस्थानेषु लिखेत् सैकेश्वतः परम्। अन्त्याद(द्द)ते पूर्वपूर्वयुक्तेनायोजयेत् परम्॥ अन्त्यादारभ्य तद्वनावेकाद्येषु च पर्ययात्। अलिन्दादिषु यत्र स्यात् सङ्ख्या सूचीं तु तां विदुः॥ (समराङ्गण. 26, 71-73)

3. ये श्लोक भी समराङ्गण. में इसी रूप में हैं—उद्दिष्टे स्थापयेत् सङ्ख्यामुद्दिष्टां सम्भवे (जे)च्च ताम्। दलयेद् रूपयुक्तां तु दलयेन्नाम सम्भवेत्॥ लघुस्वरूपदलने सैकार्धे करणे गुरुः। यावदिष्टपदाप्तिः स्याल्लघवोऽलिन्दकोदयः॥ (समराङ्गण. 26, 74-75)

इसी प्रकार उद्दिष्टछन्द के क्रम में इष्ट संख्या को स्थापित करें, पुनः उसको समान रूप से विभाजित करे। रूप वाली संख्या लघु स्वरूप के दलन में आधे सहित एक में जब गुरु बन जाए और इष्टपद की प्राप्ति हो जाए और सारे लघु हो जाए तब अलिन्द का उदय होता है अर्थात् लघु स्वरूप में बाँटने पर आधे गुरु करते हुए जब तक इष्ट पद न आए तब तक लघु अलिन्द बनते जाएँगे।

कृत्वा छन्दः समुद्दिष्टं तदन्ते लघुनि द्विकम्।
न्यसेदेकं गुरूणां च द्विगुणं द्विगुणं ततः ॥ 53 ॥
व्यत्ययाल्लघुनः स्थाने द्विगुणादेककं गुरोः।
कुर्यात् तमाद्यस्थानाङ्कसङ्ख्यं नष्टे गृहं भवेत्॥ 54 ॥[1]

इत्युद्दिष्टनष्टछन्द।

इसी प्रकार चाहा गया छन्द करके उसके अन्त में दो लघु रखें फिर एक गुरु रखे फिर उनको दुगुना-दुगुना करते जाए। फिर लघु के स्थान पर दुगुने युक्त को परस्पर रखे फिर उसको आद्य संख्या स्थान तक ले तो इसे नष्ट गृह कहते हैं। आशय यह है कि छन्द को समुद्दिष्ट करके अन्त लघु में एक जोड़ा न्यस्त करें, फिर दुगुना-दुगुना गुरुओं को विन्यास कर फिर इस क्रिया को पलट दे, लघु के स्थान में एक गुरु रखे तो नष्ट में आदि संख्या वाला गृह कहलाता है।

प्राप्तस्यैकं कोष्ठमेकैकवृद्ध्या न्यस्येदूर्ध्व पङ्क्त्यो यावदिष्टाः।
इष्टानेकादींल्लिखेदानुपूर्व्या कर्णेनाधः शून्यरूपे च दद्यात्॥ 55 ॥

कोष्ठक में एक रखकर एक-एक कोष्ठक में वृद्धि करते जाए; यह ऊपर की पङ्क्ति में रखते जाएँ जब तक की इष्ट की प्राप्ति न हो जाए, एकादि से इष्टों को लिखकर अनुपूर्व कर्ण के नीचे शून्य रूप में लिखें।

कर्णस्थाङ्कश्लेषतोऽङ्के भवेद् यस्तं विन्यस्येत् कोष्ठकेषु क्रमेण।
उद्दिष्टाङ्को भद्रसङ्ख्यानि मध्ये याभ्यः कर्णश्लेषतो मूषिकास्ताः ॥ 56 ॥
एकादिषु द्विगुणितेष्विहः यावदिष्टमूषाक्रमव्युपहितेष्वथ तेषु विद्यात्।
उद्दिष्टवेश्मकृतनिर्गममार्गमूषासत्काङ्कसैकयुतिनिर्मितसङ्ख्यमोकः ॥ 57 ॥[2]

---

1. तुलनीय— कृत्वा छन्दः समुद्दिष्टं तदन्ते लघुनि द्विकम्। न्यसेदेकं गुरूणां च द्विगुणं द्विगुणं ततः॥ व्यत्ययाल्लघुनः स्थाने द्विगुणादेककं गुरोः। कुर्या तमाद्यस्थानाङ्कसङ्ख्यं नष्टे गृहं भवेत्॥ (समराङ्गण. 26, 76-77)
2. ये श्लोक समराङ्गणकार के हैं। तुलनीय— प्राप्तस्यैकं कोष्ठमेकैकवृद्ध्या न्यस्येदूर्ध्वं पङ्क्तयो यावदिष्टाः। इष्टानेकादींल्लिखेदानुपूर्व्या कर्णेनाधः शून्यरूपे च दद्यात्॥ कर्णस्थाङ्कश्लेषतोऽङ्के भवेद् यस्तं विन्यस्येत् कोष्ठकेषु क्रमेण। उद्दिष्टाङ्को भद्रसङ्ख्यानि मध्ये याभ्यः कर्णश्लेषतो मूषिकास्ताः॥ एकादिषु द्विगुणितेष्विह

कर्णस्थ अङ्कों के श्लेष से जो अङ्क बने उसको क्रमवार कोष्ठक में लिखे। चाही गई अङ्क संख्या भद्र संख्या के मध्य में इनको रखने से कर्ण श्लेष से मूषिका न आ जाए, इस प्रकार एकादि और द्विगुणादि अंक संख्याओं से मूषाक्रम विन्यास का बोध होता है। इच्छित भवन के आने-जाने के मार्ग की मूषा के अङ्क से एक युति निर्मित संख्या बनती है। इसका यह आशय भी है कि इस रचना में मात्र अलिन्दों का ही ज्ञान नहीं होता है अपितु गृह में मूषा अर्थात् अवलोकन, गवाक्षों का अवबोध भी होता है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां षट्छन्दनिर्णयाधिकारो नामाष्टषष्टितमं सूत्रम्॥ 68 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में षट्छन्द निर्णय अधिकार नामक अड़सठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 68 ॥

गृहोत्पत्तिहर्म्यादिराजप्रासादनिर्णयो नामैकोनसप्ततितमं सूत्रम्॥ 69॥

विश्वकर्मोवाच —

अथर्दानीं प्रवक्ष्यामि गृहस्योत्पत्तिलक्षणम्।
उत्पद्यते यथात्वाद्यं गृहादीनां तु सम्भवम्॥ 1॥

विश्वकर्मा ने अपराजित से आगे कहा कि अब मैं यहाँ गृहोत्पति के लक्षण कहता हूँ। अस्तु, गृहों के निर्माण की, सभी उत्पत्तियों को आदि से कहता हूँ।

घटिकान्नादोत्पत्ति प्रसङ्गं —

आचार्यैर्दिव्यज्ञानैश्च पूर्वानतपद्मासनैः।
षडिका (घटिका ?) याम्यहस्तेषु त्रिपातहस्तोधृता ?॥ 2॥
षडिका संस्थिता पृथ्वी तत्र नाद्यबिन्दूद्भवाः ?।
बिन्दुलया शिखा ज्ञेया सा सृष्टिश्चैवमुद्भवः ?॥ 3॥

पूर्वकाल में पद्मासन में बैठे हुए आचार्य ने दिव्यज्ञान को प्राप्त किया था। उन्होंने बायें हाथ में घटिका ली और उसे नीचे से हाथ धर के ऊपर को उठाया? जब घटिका भूमि पर रखी तो नादबिन्दु उपजा। उस बिन्दु लय को शिखा कहते हैं, वही सृष्टि के समुद्भव का कारण है?

यावदिष्टमूषाक्रमव्युपहितेष्वथ तेषु विद्यात्। उद्दिष्टवेश्मकृतनिर्गममार्गमूषासत्काङ्कसैकयुतिनिर्मित-सङ्ख्यमोक॥ (समराङ्गण. 26, 78-80)

बिन्दु वामा कृता रेखा वामावर्ते पूर्वोदिता:।
पूर्वापरगतास्त्वेवं सृष्टिसञ्ज्ञाविधानकम्?॥ 4॥

इस नादबिन्दु के बायीं और होती हुई पूर्व से आरम्भ होने वाली रेखा को पूर्व से पश्चिम जाने से सृष्टि संज्ञा विधान अर्थात् सृष्टि नाम दिया गया।

आश्रमवास्तु —

ऐशान्या अग्निपर्यन्तमाश्रमं [1]वस्तुसम्भवम्।
आश्रयन्ति समस्ताश्च जीवा महितचेतस:॥ 5॥

ईशान कोण से अग्नि कोण तक 'आश्रम' नामक वास्तु बनता है। वहाँ समस्त जीव आश्रय ग्रहण करते हैं और निश्चित होकर अपने हित का चिन्तन करते हैं।

अथालयमाह —

आग्नेयां निर्ऋतिर्यावत् सदा सृष्टिर्विनश्यति।
इत्थमालयसञ्ज्ञा स्यात् सृष्टितोऽयं समुद्भव:॥ 6॥
आलय: सर्वसत्त्वानां सर्वभूतात्मनां हित:।
तदेवं लीयते सर्वमालयादिसमुद्भवम्॥ 7॥

अब आग्नेय कोण (पूर्व-दक्षिण) से नैर्ऋत्य कोण (दक्षिण-पश्चिम) तक सदा सृष्टि का विनाश होता है। इनको 'आलय' नाम दिया गया है, जो यहाँ सृष्टि में उत्पन्न होता है। यह आलय भी सभी प्राणियों, सभी सत्वों और उनके हितों की रक्षा करता है, उसी तरह से सभी आलय आदि में सब लीन हो जाते हैं।

कोष्ठका —

नैर्ऋत्यनिलसम्भूता सृष्टिस्त्वेवं समुद्गता।
कोष्ठकाभिधानमेतत् चतुरश्रीकृतं शुभम्॥ 8॥

इसके बाद, नैर्ऋत्य से लेकर वायव्य दिशा तक जो सृष्टि बनती है उसका नाम 'कोष्ठका' है, वह चौकोर और शुभ है।

छाद्यकं —

आच्छादितं तथा चोर्ध्वं तच्च कोष्ठभिधानकम्।
कोष्ठकं चतुर्हस्तान्तमाच्छाद्यं छाद्यकं विदु:॥ 9॥

---

1. मय ने वास्तु की अपेक्षा 'वस्तु' नामाभिधान ही दिया है। वस्तु ही मूल है। वस्तु से होने वाला पदार्थ वास्तु कहा जाता है। पृथ्वी प्रथम वस्तु है। इसके बाद प्रासाद, यान व शयनादि भी वास्तु की श्रेणी के अन्तर्गत है— अमर्त्याश्चैव मर्त्याश्च यत्र यत्र वसन्ति हि। तद्वस्त्विति मतं तज्ज्ञैस्तद्भेदश्च वदाम्यहम्॥ भूप्रासादयानानि शयनं च चतुर्विधम्। भूरेव मुख्यवस्तु स्यात्तत्र जातानि यानि हि॥ (मयमतम् 2, 1-2)

उस कोष्ठका (कोठे) में ऊपर से छत की छवाई कोठे के चार हाथ तक अर्थात् चार गज तक की जाए, उस छवाई को विद्वज्जन 'छाद्यक' कहते हैं।

आच्छाद्यं तु यदा क्षेत्रमेकहस्ताच्छतार्धतः।

आवेष्टितं खलीपाटं **फलकं स्याद्** गृहाङ्गणम्॥ 10॥

परन्तु, जब उसे एक हाथ से (गज माप से) लेकर पचास गज तक छवाई कर दें तो खलीपाट से आवेष्टित गृह के आङ्गन में फलक बन जाता है।

प्राकारमाह —

एक-द्वि-त्रिसहस्त्रैश्च हस्तैर्मानसमन्वितम्।

नगरेषु तथावेष्टकूटप्राकारसञ्ज्ञितम्॥ 11॥

यदि छवाई मान, माप एक, दो या तीन हजार गजों का हो तो उन नगरों में 'तथावेष्टकूट' प्राकार नाम दिया जाता है।

अथ गृहं —

चतुर्हस्तादितः **क्षेत्रं** शिरश्छाद्यं **समोदये।**

पूर्वे चैकद्वारयुतं गृहसञ्ज्ञं तदुच्यते॥ 12॥

चार गज तक के क्षेत्र को सिर की छवाई तक ऊँचा रखें, उसमें पूर्व की ओर एक द्वार रखें तो उसे 'गृह' नाम दिया गया है।

एकद्वारं भवेद्वेश्म पूर्वापरद्वार **निलयः।**

त्रिद्वारं करणं प्रोक्तं चतुर्भिश्चातुरं भवेत्॥ 13॥

एक द्वार वाले गृह को 'वेश्म' कहते हैं। इसी तरह यदि वेश्म में तीन द्वार हो तो उसे 'करण' कहते हैं और यदि वेश्म के चार द्वार हो तो उसे 'चातुर' नाम दिया जाता है।

षड्जात्युत्पन्नच्छन्दा भैदैर्भिन्ना द्विरष्टभिः$_{16}$।

इत्युक्तकमरूपाढ्या गृहसङ्ख्या त्वनेकधा॥ 14॥

इस तरह छह प्रकार के जातियों से उत्पन्न गृहों के भिन्न-भिन्न सोलह भेद होते हैं। इस प्रकार के क्रम से गृहों के रूपों से अनेक संख्या में गृह बनते हैं।

तृणपट्टौ छादने स्तः वाजिच्छन्दः शिलामयः।

खण्डच्छन्दो गृहमध्ये पूर्णच्छन्दो ह्यधोगृहम्॥ 15॥

तृण पट्टिका से छवाई वाले गृह को 'छादन' तथा शिलापट्टी से छवाई वाले गृह को 'वाजिछन्द' तथा गृह के मध्य भाग की छवाई वाले गृह को 'खण्डछन्द' तथा ऊपर नीचे तक की छवाई वाले गृह को 'पूर्णछन्द' नाम दिया जाता है।

पाण्डुच्छन्दस्तथाचैव भूम्यूर्ध्वं शैलजाश्रितः।
षण्णां तु छन्दसां प्रोक्तः सृष्टिकाले समुद्भवः॥ 16॥

यदि गृह भूमि से ऊँचाई पर अर्थात् पहाड़ों पर बना हो तो उसे 'पाण्डुछन्द' नाम से जाना जाता है। इस तरह सृष्टि के समय छह प्रकार के छवाई या छादन बताए हैं।

अथ हर्म्यादीनां —

एकभौमं द्विभौमं वा हर्म्य स्याद्वा त्रिभौमकम्।
पट्टच्छन्दादिका भेदा हर्म्यादिवेश्मसञ्ज्ञकाः॥ 17॥

अब हर्म्य के बारे में कहता हूँ। हर्म्य अर्थात् हवेलियों के भवन, एक मंजिल से लेकर दो, तीन मंजिल वाले तक होते हैं। इनके पाटने और छवाई के भेद हर्म्यादि वेश्म नाम से कहे गए हैं।

शालालिन्दक्रमच्छन्दे भेदा भिन्नास्तु षोडश।
चतुरुत्तरशतानि ह्येकशालप्रकारकाः॥ 18॥

शाला, आलिन्दों के क्रम भेद से सोलह प्रकार के भिन्न-भिन्न भेद होते हैं। एकशाल प्रकार से इनके एक सौ चार भेद हैं।

गुणितास्ते दशशतैर्लक्षमेकमतः परम्।
चत्वारि च सहस्राणि एकशालादिषु क्रमात्॥ 19॥

उनको दस सौ (1000) से गुणित करने पर एक लाख से भी परे तक हो जाते हैं। एकशाल से क्रमिक वृद्धि करते-करते चार हजार तक के प्रकार हो जाते हैं।

पट्टच्छन्दे यथा भेदाः शालालिन्दादितस्तथा।
विपरीतास्तृणच्छन्दे षोडशैव प्रकीर्तिताः॥ 20॥

पटछन्दों अर्थात् पटावों के जितने भेद है और शाला तथा अलिन्दों के जितने भेद हैं, उनके विपरीत ही तृणछन्दों के पटाव भी सोलह प्रकार के कहे गए हैं।

वाजिच्छन्दोऽधिकोच्छ्रायः पाण्डुर्हीनोदयात्मकः।
चतुर्हस्तं फलकान्ते शेषच्छन्दाः प्रशंसिताः॥ 21॥

वाजिछन्द नामक पटाव अधिक ऊँचा होता है, पाण्डुहीन पटाव उससे कुछ नीचा होता है; अन्य शेष पटाव सामान्यतः चार गज की ऊँचाई तक (फलकान्त) होते हैं, जो प्रशंसित माने गए हैं।

द्विपञ्चाशद् द्विशालानां प्रत्येकं द्विसहस्रतः।
स चतुःसहस्रं लक्षं द्विशालानां प्रकीर्तितम्॥ 22॥

बावन प्रकार की द्विशालाओं के प्रत्येक के दो हजार तक भेद होते हैं। इसी तरह की चार हजार लाख द्विशालाओं के भेद होते हैं।

द्विसप्ततित्रिशालानां प्रत्येकं त्रिसहस्रतः।
लक्षद्वयं त्रिशालानां तथा द्व्यष्टसहस्रकम्॥ 23॥

बहत्तर त्रिशालाओं के भी प्रत्येक के तीन-तीन हजार भेद होते हैं और त्रिशालाओं के दो लाख सोलह हजार भेद होते हैं।

चतुःशालगृहाणां षट्पञ्चाशच्च शतद्वयम्।
प्रत्येकं चतुःसहस्रगुणितं च भवेदिदम्॥ 24॥
चतुर्विंशतिसहस्रोत्तरं च दशलक्षकम्।
चतुःशालकभेदे तु हर्म्याणि च भवन्ति हि॥ 25॥

चतुःशाल गृहों के भेद भी दो सौ छप्पन होते हैं। इनमें प्रत्येक को हजार से गुणित करे तो ये दस लाख चौबीस हजार होते हैं। इस तरह से चतुःशाल भेद इन हवेलियों, हर्म्यों के होते हैं।

चतुर्दशलक्षाण्यष्टचत्वारिंशत्सहस्रतः।
मेरुसङ्ख्या तथा चेत्थं हर्म्यादिगृहेषु च॥ 26॥
तत्राष्टाष्टगता भेदा एकैकस्य तथैव च।
कोटिः पञ्चदशलक्षा वेदाशीतिसहस्रकम्॥ 27॥

इसी तरह से चौदह लाख अड़तालीस हजार संख्या भेद मेरु हर्म्यादि गृहों के होते हैं। इनके भी आठ-आठ भेद से अलग-अलग प्रकार से वे सब एक करोड़ पन्द्रह लाख चौरासी हजार हो जाते हैं।

एवं हर्म्यादिगृहाणां मेरुच्छन्दात् समुद्भवः।
इषुच्छन्दोद्भवाश्चान्ये तत्तुल्याश्चैव सङ्ख्यया॥ 28॥
इत्युक्तं हर्म्यादिवेश्म प्रासादानामतः परम्।

इस प्रकार हर्म्यादि गृह मेरुछन्द से बनते हैं और पाँच-पाँच छन्दों में और भी अन्य उतनी ही संख्या के बन जाते हैं। इस तरह अब तक हर्म्यादि वेश्म, भवनों के विषय में कहा गया।

प्रासादसञ्ज्ञक हर्म्यवर्णनं —

प्रासादा देवभूपानामन्येषां हर्म्यमुच्यते॥ 29॥

अब मैं प्रासाद नामक भवनों के बारे में कहता हूँ। राजाओं और देवताओं के

आवास को तो 'प्रासाद' और अन्य बड़े लोगों के आवास को 'हर्म्य' कहते हैं।[1]

माडश्च मौडः शुद्धश्च शिखरं च चतुर्थकम्।
तुङ्गारः सिंहकश्चैव षड् भेदा राजवेश्मनाम्॥ 30॥

राजभवनों के 1. माड, 2. मौड, 3 शुद्ध, 4 शिखर, 5 तुङ्गार, 6 सिंहक— इस तरह से छह भेद कहे गए हैं।

छाद्यघण्टाकूटैर्माडो मौडश्चोर्ध्ववरण्डिकः।
वरण्डिकाः सर्वभूषु शुद्धो बाह्यचतुष्कतः॥ 31॥

छाद्य या पटाव, घण्टा या घूमट, कूट कंगूरों से युक्त भवन को 'माड' कहते हैं; जिसके ऊपर की ओर ऊँची वरण्डिका अर्थात् दीवार या बरामदा हो उसे 'मौड' कहते है। जिसके चारों तरफ बरामदा अर्थात् वरण्डिका हो और बाहर से भी चौकोर हो उसे 'शुद्ध' नाम दिया गया है।

माडच्छन्दोद्भवे भद्रे भूमिशृङ्गाणि सन्ति चेत्।
तच्च मौडाभिधानं स्यात् प्रशस्तं राजवेश्मनि॥ 32॥

यदि माडछन्द से बनी हुई भद्रों में अर्थात् दीवारों में भूमिशृङ्ग हो तो अर्थात् कंगूरे हो तो उसको 'मौड' नाम से प्रशस्त राजभवन कहा है।

शिखरं शिखराकारं सुरसद्मादिसम्भवम्।
भद्रे भद्रे तवङ्गानि तुङ्गारा द्विगुणं गता॥ 33॥

जो पहाड़ी की चोटी, शिखराकार के भवन हैं जैसे सुर सद्मादि सम्भव अर्थात् मन्दिरों की आकृति वाला हो तो उसे 'शिखर भवन' कहते हैं। जिसकी हर एक दीवार पर तवङ्ग बने हों और ऊँचे-ऊँचे गुम्बज हो और जो दुगुनी ऊँचाई लिए हुए हो, उसे तुङ्गार भवन कहते हैं।

सिंहावलोकनं कुर्यात् सिंहकर्णैर्विभूषितम्।
एवं वै षड्विधं प्रोक्तं राजवेश्म सुखावहम्॥ 34॥

जिसके कोनों पर सिंहकर्ण-सी आकृति हो अर्थात् बड़े-बड़े कंगूरे हो, उसे 'सिंहावलोकन' भवन कहते हैं। इस तरह सुखदायी राजभवनों के छह प्रकारों के बारे में कहा गया।

मालिकानि कथ्यते —

मालिकानि यथोक्तानि कथयामि समासतः।

---

1. 'हर्म्यादि धनिनाम् वासः प्रासादो देव भुर्भुजाम्' इति अमरकोष (पुरवर्ग. 2,9)।

द्विशतहस्तविस्तीर्णं पञ्चषष्टिकरोच्छ्रयम्॥ 35॥

द्वारं सप्तदशहस्तं मध्यमं रङ्ग [1]सत्वरम्।

याम्येपरे उत्तरेषु उच्छ्रयति विंशतिकरैः ?॥ 36॥

अब मैं मालिकाओं यानी महलों के बारे में संक्षेप में कहता हूँ। दो सौ हाथ अर्थात 200 गज की चौड़ी और 65 गज ऊँची और जिसके द्वार भी 17 गज ऊँचे हों और मध्य में रङ्गशाला हो तथा उभयपार्श्व से 20 गज की ऊँचाई से युक्त हो (वे मालिका कही जाती है, मेवाड़ में 'महल-मालिया' शब्द व्यवहृत है)।

राजा वा चक्रवर्ती वा खण्डजा मण्डलाधिपाः।

मुकुटध्वजा भूपालाः सामन्ता लघवस्तथा॥ 37॥

राजा हो, चक्रवर्ती हो, खण्डजा या खण्डपति हो, मण्डलाधिप हो, मुकुट-ध्वजाधारी भूपाल हो अथवा छोटे सामन्तगण हों।[2]

छत्रधासः प्रतीहाराः खड्गधराश्चतुर्वराः।

वंशोपानद्धराश्चैव अङ्गरक्षा[3]चतुष्किका॥ 38॥

छत्रधारी स्तर का हो, प्रतिहार पद का हो, खड्गधारी पद का, चतुर और श्रेष्ठ पदधारक हो, पानधरा या पाणेरी वंश[4] का हो, अङ्गरक्षकों के या चौकीदारी पद पर हो।

सुभट्टैरभिभज्यन्ते साधु साधुजनाकुलैः।

राजगृहं सदासेव्यमीशस्य चामरैर्यथा॥ 39॥

महान् वीर हो, अभिजात्य वर्ग में अभिनन्दित हुए हों, साधुजनों में भी साधु मान्य हो अर्थात् बहुत ही सज्जन हो, सदा राजगृह की सेवा में रहते आए हों, अपने स्वामी के चामरधारी रहे हों।

दासीदासाः सूपकाराश्छत्रधाराश्चव्यञ्जनाः।

महिषी कुरुते देवी चामरधारी त्वमासन्ना॥ 40॥

तथा च केशबन्धाश्च जातीचम्पकग्रन्थिकाः।

कुङ्कुमश्रीखण्डहस्ता उद्वर्तनोत्तरिनायिकाः॥ 41॥

---

1. 'सत्करम् ?' इति प्रकाशित पाठः।
2. यहाँ राजाओं की विविध कोटियाँ आई हैं। ग्रन्थकार ने आगे 81वें सूत्र में श्लोक 2 से 12 तक इनका विस्तार से वर्णन किया है। सूत्रधार मण्डन ने भी इसी को आधार बनाया है। (राजवल्लभ 5, 2-4)
3. 'चतुलिका' इति प्रकाशित पाठः।
4. 'पाणेरी' जैसे व्यक्ति का वर्णन अर्थशास्त्र में आया है, मेवाड़ में राजदरबार में जलप्रबन्धक के लिए पानेरी पद रहा है। आज भी पानेरी नामधारी लोग इसी मान्यता की पुष्टि करते हैं।

जिनके दासी-दास और रसोइयों की पूरी व्यवस्था हो, छत्र और व्यञ्जन-पङ्खे धारण करने का अधिकारी हों, जिनकी महिलाओं को महिषी की पदवी हो, जिनके पार्श्व में चामरधारी चलें— ऐसे अधिकार प्राप्त हो तथा जो केश के शृङ्गार में चमेली, चम्पक आदि पुष्पों की माला-गजरे आदि केश विन्यास के प्रसाधन प्रबन्धक के पद पर हो, जो शृङ्गारादि के लिए चन्दन लेप, कुङ्कुमादि तथा उबटन, उत्तरीय आदि के रखने की नायिकाएँ हो, उस पद पर काम करने वाली पदाधिकारी हो (इनके लिए मालिका गृह उपयोगी है)।

अक्षौ च त्रीमुने सै सर्वे नेन्द्रीपञ्चिचोरका।[1]
इष्टराज्ञीं सदा ध्यात्वा मुनिषोडशां तथा ?॥ 42॥

(वहाँ पर) अक्षक्रीड़ा[2] अर्थात् पाशों का खेल, इक्कीस (त्रीमुने) घरों वाला खेल, नयनबन्दी[3], पञ्चिचोरका[4] जैसी क्रीड़ाएँ हों और अपनी इष्ट रानी का सदा वैसे ही ध्यान रखें जैसे कि मुनियों की भी षोडशी युवती के प्रति कामुक दृष्टि बनी रहती है।

त्रिभूमिमध्यकर्त्तव्या मालिका क्रमतः स्थिता।

मालिका अर्थात् महलों को सदा त्रिभूमि मध्य अर्थात् तीन चौक पार करने के बाद क्रमवार, मध्य में बनाना चाहिए।

सूर्यवंशोद्भवाः शैवा वतरन्ति यदा महीम्॥ 43॥
तेषां वेश्मानि कार्याणि नान्येषां तु कदाचन।
एवं तु राजवेश्मानि कर्त्तव्यानि च सर्वदा॥ 44॥

---

1. 'अक्ष्णौ ? च त्रीमुने सै सर्वे नेन्द्रीप्रतिचोरका ?' इति प्रकाशित पाठः।
2. 'अक्षक्रीड़ा' में तीस पाशकों या सारिकों का प्रयोग होता जिसमें 15 श्वेत व 15 चित्रित पाशे होते थे— दशपञ्च सितास्तत्र दशपञ्च विचित्रता। त्रिंशदेताः समाख्याता.... पाशककेलिषु॥ (मानसोल्लास 5, 13, 705)
3. 'दृङ्मीलन' नाम से इस खेल का उल्लेख शार्ङ्गधरपद्धति में हुआ है जिसमें परस्पर अचानक आँखें बन्द कर दी जाती थी— इत्थं बालतया सखीभिरसकृद्दृङ्मीलनाकेलिषु व्याषिद्धा रजनीमुखे च नयने स्वे गर्हते कन्यका॥ (शार्ङ्गधर. श्लोक 3942) सोमेश्वर ने दिखाई नहीं देने वाले स्थान में ऐसी ही तिमिर क्रीड़ा का वर्णन किया है जो राजा अपनी प्रेयसियों के साथ करता था— तथाविधं तमः कुर्याद्यत्र किञ्चिन्न लक्ष्यते। (मानसो. 5, 17, 935)
4. 'पञ्चिका' क्रीड़ा में राजा स्वयं स्त्रियों के साथ भाग लेता जो रूपसियाँ, प्रेमभाव से पूर्ण, विलास-विभ्रम से युक्त, परिहार रस को प्रसारित करने वाली व चतुर होती थीं— तरुणी रूपसम्पन्ना प्रेमभावसमन्विता। विलासविभ्रमे युक्ता परिहासरसप्रिया॥ आहूय चतुराःकान्ताः पञ्चीक्रीडाविशारदाः। ताभिः सह महीपालः पञ्चिक्रीड़ां समाचरेत्॥ (मानसो. 5, 16, 885-886) यदि यहाँ 'प्रतिचोरका' शब्द माने तो भागवत में निलयन क्रीड़ा का वर्णन हुआ है जिसमें एक जना चोर बनकर अन्य को ढूँढ़ता था। (भागवत. 10, 38, 27)

इस पृथ्वी पर जो सूर्यवंश में उत्पन्न होने वाले और शैवोपासक राजा हों[1], उनके लिए ऐसे सर्वाङ्ग वेश्मों का निर्माण करना चाहिए। किसी अन्य के लिए कभी ऐसे उन्नत महल नहीं बनाएँ, क्योंकि यह खानदान और उच्चकुल की मर्यादा रखने की बात है, अतएव ऐसे भवन सदा राजाओं के ही बनाने चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां गृहोत्पत्तिहर्म्यादिराजप्रासादनिर्णयाधिकारो नामैकोनसप्ततितमं सूत्रम् ॥ 69 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में गृहोत्पत्ति हर्म्यादि राजप्रासाद निर्णय अधिकार नामक उनसठवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 69 ॥

भूधरादिब्रह्मनगरं सप्ततितमं सूत्रम् ॥ 70 ॥

विश्वकर्मोवाच —

गृहाणि नृपदेवानां स्वर्गपातालवासिनाम्।
ब्राह्मणानां हितार्थाय नगरं वच्मि सम्प्रति ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं राजाओं और देवताओं, स्वर्ग व पाताल के निवासियों तथा ब्राह्मणों के हित के लिए रहने योग्य आवासीय नगरों के बारे में कहता हूँ।

---

1. ग्रन्थकार का यह सङ्केत सम्भवतः मेदपाट-मेवाड़ के सूर्यवंशी राजकुल की ओर है जो शैवोपासक हैं। सूर्यवंशी यह कुल गुजरात के आनन्दपुर से उठा हुआ है और गुहदत्त से चला है। एकलिङ्गनाथ इनके परमेश्वर और आराध्य है। यह मन्दिर कैलाशपुरी-उदयपुर में बना हुआ है। यहाँ से प्राप्त 971 ई. के शिलालेख में इसे प्रथम तीर्थ कहा गया है और उसमें मेवाड़ राज्य के संस्थापक बप्पा और नरवाहन के प्रबल प्रताप का यशोगान है। (जर्नल ऑफ बॉम्बे एशियाटिक सोसायटी, जिल्द 22, पृष्ठ 166-167, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 1, पृष्ठ 256-259) राजप्रशस्ति नामक शिलोत्कीर्ण 17वीं सदी के अभिलेख में इस वंश की सूर्य, मन्वादि क्रम से परम्परा दी गई है। कर्नल जेम्स टॉड ने भी यह वंशावली दी है। यह भी एक महत्वपूर्ण सङ्केत है कि यह ग्रन्थ किसी सूर्यवंशी राजा के आश्रय में ही लिखा गया हो। इसी वंश में 'अपराजित' नामक राजा हुआ है जिसका अभिलेख कुण्डा नामक ग्राम से प्राप्त हुआ है। यह प्रशस्ति मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी, तद्नुसार 2 नवम्बर 661 ई. की है। वह शिवभक्त था किन्तु उसका सेनापति विष्णुभक्त था। उसकी पत्नी यशोमति ने कुण्डेश्वर के निकट विष्णु का मन्दिर बनवाया। (एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द 4, पृष्ठ 31)
अपराजित के काल से ही मेवाड़ में स्थापत्य के स्थायी कार्यों की शृङ्खला दिखाई देती है। नागदा गाँव में तो 999 मन्दिरों की घण्टियाँ एक साथ बजती थीं— ऐसी अनुश्रुति चली आती है। सम्भव है कि उन स्थितियों को अङ्गीकार करके भुवनदेवाचार्य ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया हो, तब तक मेवाड़ में समराङ्गणसूत्रधार का भी पर्याप्त प्रचार हो चुका था। भोज ने नागदा-कैलाशपुरी के पास जलाशय खुदवाया, चित्तौड़गढ़ पर समीधेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया। इन स्थितियों और इस अर्थ में अपराजितपृच्छा पर समराङ्गण. का प्रभाव इस क्षेत्र में इस ग्रन्थ के प्रणयन का आधार बताता है। उक्त रचनाकार मरुभूमि और गुर्जरत्रा की परम्पराओं का भी अच्छा जानकार था।

भूधरं हेमकूटं च रत्नकूटं तृतीयकम्।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं पूज्यं सुरनरोरगैः ॥ 2 ॥

इनमें भूधर, हेमकूट, रत्नकूट प्रकार के ये तीनों लोकों में देवताओं, मनुष्यों और नागों में पूज्य हैं।

सहस्त्रैरधमं हस्तैर्मध्यं सार्धसहस्त्रकैः।
द्विसहस्त्रैर्भवेज्जयेष्ठं **त्रिविधं** हस्तसङ्ख्यया ॥ 3 ॥

जो नगर हजार गज के हों उन्हें अधम, डेढ़ हजार गज के हों उन्हें मध्यम और दो हजार गज के हो उन्हें ज्येष्ठ कहा जाता है। इस तरह गज संख्या के अनुसार तीन प्रकार के अधम, मध्यम और ज्येष्ठ नगर होते हैं।

कनिष्ठं चाष्टभागैश्च **मध्यं च** दशभागतः।
ज्येष्ठं द्विरष्टभागैश्च पदसङ्ख्या त्रिधोदिता ॥ 4 ॥

कनिष्ठ नगर के आठ भाग, मध्यम के दस भाग और ज्येष्ठ के सोलह भाग के अनुसार पद संख्या भी तीन तरह की होती है।

चतुःषष्टिः कनिष्ठं च शतं मानं तु मध्यमम्।
द्विशतं तु भवेच्छ्रेष्ठं षट्पञ्चाशत्पदायतम् ॥ 5 ॥

इस तरह कनिष्ठ नगर के चौंसठ पद, मध्यम नगर के सौ पद और ज्येष्ठ नगर के दो सौ छप्पन पद का आयतन, विस्तार होता है।

द्वात्रिंशद्धस्तमधमं द्विचत्वारिंशद्भिर्मध्यम्।
ज्येष्ठं द्विपञ्चाशद्धस्तं **गृहाणां तु प्रमाणतः** ॥ 6 ॥

इसी तरह बत्तीस गज को अधम, बयालीस गज को मध्यम और बावन गज को ज्येष्ठ गृह का प्रमाण है।

कनिष्ठं पञ्चशतकं **मध्यं** सार्धसप्तशतम्।
सहस्त्र तु भवज्ज्येष्ठं **गृहसङ्ख्या यथाक्रमात्** ॥ 7 ॥

कनिष्ठ पाँच सौ का, मध्यम साढ़े सात सौ का और ज्येष्ठ एक हजार गज का— इस क्रमानुसार तीनों गृहों की संख्या होती है।

कनिष्ठे नवमांश्च मध्यमे च त्रयोदश।
कुर्याज्ज्येष्ठे सप्तदश मार्गसङ्ख्या **प्रकीर्तिता** ॥ 8 ॥

कनिष्ठ नगर के नौ मार्ग होते हैं, मध्यम नगर के तेरह और ज्येष्ठ नगर के सत्रह मार्ग संख्या कही गई है।

एक-द्वि-त्रिक्रमात्प्रोक्ताश्छन्दाश्च विबुधैर्युताः।
मर्त्यलोकेषु सम्प्राप्ताः स्वर्गपातालभूषणाः ॥ 9 ॥

एक, दो और तीन क्रम से विद्वान शिल्पशास्त्रियों ने छन्द कहे हैं जो मृत्युलोक, स्वर्गलोक और पाताललोक में भूषण रूप में माने गए हैं।

चतुरश्रं समं क्षेत्रमायव्ययविशोधितम्।
आदिगर्भ प्रकुर्वीत भुजकर्णविशोधितम्॥ 10 ॥

चौकोर क्षेत्र को समतल करके उसके आय और व्यय को शोधित करें, फिर भुजाओं के कोनों से शोधित कर्ण रेखाओं से आदिगर्भ निश्चित करें।

भाजयेदष्टभागंस्तु आयामं विस्तरं समम्।
एकांशं च त्रिधा कृत्वा चोभयोश्च समन्ततः॥ 11 ॥

तदनन्तर आयाम को आठ से भाग दें और उसी के समान विस्तार को भी आठ से भाग दें। फिर, जो एकांश आए उन्हें तीन-तीन भागों में दोनों के रख दें अर्थात् आयाम के तीन और विस्तार के तीन भाग होंगे।

मध्यकोष्ठं परित्यज्य अष्टसद्मैश्च जायते ?।
पूर्वापरे च द्वाराणां याम्यकौबेरसंस्थितौ ?॥ 12 ॥

इस तरह मध्य कोष्ठ को छोड़ने पर आठ घर बन जाते हैं जिससे पूर्व-पश्चिम के द्वार और उत्तर-दक्षिण के द्वार बन जाते हैं।

सर्वेषामीदृशं छन्दश्चतुःषष्टिदेषु च।
ब्रह्मस्थाने गृहाश्चेव पादानां च चतुष्टये॥ 13 ॥

इसी तरह चौंसठ पदों के छन्दों में भी ऐसे ही बनते है, केवल उनके गृहों के ब्रह्मस्थान में चार पाद होते हैं।

गृहाणां गृहसङ्ख्या च द्वात्रिंशद्भिः करैर्मता।
ब्रह्मवंशयोर्द्वयोश्च चतुर्थांशकराः स्मृताः॥ 14 ॥

उनमें गृहों की बत्तीस गज की गृह संख्या बनती है और ब्रह्म अंश के दो पद चतुर्थांश गज माने गए हैं।

चत्वरे द्वादशमार्गाश्चत्वरे षोडशान्विताः।
नवमार्गकृता सङ्ख्या निर्मिता विश्वकर्मणा॥ 15 ॥

इनके चारों ओर बारह मार्ग और चारों और सोलह मार्ग या चारों और नौ मार्ग रखना चाहिए—इस संख्याक्रम को विश्वकर्मा ने निर्धारित किया है।

सीमा करसहस्त्रं तु आयामो विस्तरः समः।
चतुःषष्टिपदं कुर्याद् ब्रह्मरन्ध्रप्रमाणतः॥ 16॥

यदि क्षेत्र की सीमा एक हजार गज हो और आयाम भी उसके ही समान एक हजार गज का हो तो उसको भी चौंसठ पदों में विभाजित करें और उसमें भी ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् मध्य का रिक्त भाग प्रमाणानुसार ही रखें।

नगरस्य केन्द्रे ब्रह्मप्रासादं —

चतुर्मुखं चतुर्द्वारं चतुर्वक्त्रं पितामहम्।
कुर्यान्नगरकेन्द्रे च प्रासादं कमलोद्भवम्॥ 17॥

इस तरह का क्षेत्र विभाजन करके नगर के केन्द्र में कमलोद्भव ब्रह्मा का प्रासाद, मन्दिर को बनाएँ जिसके चारों और चार द्वार हो जो ब्रह्मा के चारों मुखों के दर्शन सुलभ करा सकें।

चतुरो वरुणाद्यांश्च चतुर्दिक्षु यथाक्रमम्।
महास्थानेषु चत्वाराश्चतुःकर्णेषु संस्थिताः॥ 18॥

इसी तरह उस नगर के चारों दिशाओं में वरुणादि चारों देवों को स्थिति दें और क्रम से चारों कोनों के महास्थान में भी देवताओं के मन्दिर बनाएँ।

सीमान्तेषु च सर्वेषु चतुःषष्ट्यादिसाधिते।
प्राकार उत्तमः कार्यो नवहस्तैः समुच्छ्रितः॥ 19॥

नगर के सभी सीमान्त भागों पर चौंसठ पदों के साधने के पश्चात् नौ गज ऊँची उतम दीवार या प्राकार बनाएँ।

द्विहस्तोच्छ्रिता च कार्या त्रिगूढा कण्डवारणी।
तत्तुल्योदयमाना कपिशीर्षैघनाकुला॥ 20॥

उस प्राकार के ऊपर भी दो गज की ऊँचाई की त्रिगूढ़ा कण्डवारणी अर्थात् तीन खण्डो की डोली बनाएँ। उसमें दो गज की ही ऊँचाई के कंगूरे पास-पास बनाएँ।

कर्णे कर्णे तु कर्त्तव्या वृत्ताट्टालकशोभना।
(त्रि)सहस्त्रान्ते पुनः कुर्याद्योधविद्याधरीं तथा॥ 21॥

इस परकोटे के प्राकार के प्रत्येक कोने के भाग में गोलाकार गुम्बद युक्त अट्टालिका शोभायमान करें। इसी तरह प्राकार के प्रति तीन हजार गज की दूरी पर पुनः योध विद्याधरी अर्थात बारहदरी बनाएँ।

तत्तद्भागप्रमाणेन कुर्यात् सिंहावलोकनम्।
प्रतोलीनां तु चत्वारि चक्रद्वाराणि कल्पयेत्॥ 22॥

उस बारहदरी में भी उसके उचित भाग प्रमाण से सिंहावलोकन अर्थात् गोखड़े, झरोखें बनाएँ। उस नगर की प्राकार में चार बड़ी-बड़ी पोलें बनाएँ। उनके सुदृढ़ चक्रद्वार अर्थात् घूमने वाले किंवाड़ बने हुए हों।

अष्टौ सटक्क्या द्वाराणि प्रशस्तानि शुभानि च।
खटक्की सर्वद्वारेषु कुर्यात् सोपानसञ्चयम्॥ 23॥

इसी तरह प्रत्येक पोल के अलावा प्राकार के चारों दिशाओं में दो-दो खिड़की द्वार अर्थात् छोटे आवागमन के द्वार— इस तरह चारों और आठ द्वार भी बनाएँ जो प्रशस्त और शुभ माने गए हैं। साथ ही यह भी ध्यान रखें कि इन सभी खिड़की द्वारों में छोटी खिड़की भी अवश्य रखें जिसमें से निकलने के लिए सीढ़ियाँ बनी हों ताकि उन पर चढ़कर खिड़की से आवागमन हो सके।

रथमार्गोद्भवं शस्तं प्रतोलीषु प्रवेशनम्।
कपाटाः सर्वद्वारेषु दृढार्गलयुतास्तथा॥ 24॥

बड़े-बड़े यानों के मार्ग 'रथमार्ग अथवा राजमार्ग सदा पोलों से होकर ही जाने वाले प्रशस्त कहे गए हैं। साथ ही ध्यान रखें कि इन पोलों के कपाट अर्थात् किंवाड़ भी दृढ़ हो और उन्हें बन्द करने के बाद उनकी दृढ़ता के लिए उनके भीतर से अर्गला आगलों की वल्लियों को खिसकाने (अर्गलक्रिया, आगलकिया) की भी व्यवस्था हो।

प्रोक्तस्तम्भ च कीर्तिस्तम्भं —

विस्वाद्विपेषुरा सर्वमाज्ञातं सांशुभः निद्वौ ?।
प्रोक्तस्तम्भो ध्वजास्तम्भः कीर्तिस्तम्भो महान्तथा॥ 25॥

प्रत्येक प्रतोली द्वार पर सबको सूचित करके दो-दो शुभ हाथियों को बसाने की सुविधा करें ? तथा हर एक पोल के पास 'प्रोक्त स्तम्भों' अर्थात् सूचनापट्ट आदि लगाने के स्तम्भों की व्यवस्था हो। हर एक पोल पर ध्वज स्तम्भ की व्यवस्था भी हो। इसी प्रकार बृहद् कीर्तिस्तम्भों की भी व्यवस्था हो जिससे राज परिवार, नगर के कीर्तिमान गणों, घटनाओं और गौरव की जानकारी भी समस्त आने-जाने वाली जनता को मिलती रह सके।[1]

---

1. कालिदास ने जयस्तम्भ का वर्णन किया है। विजय मनाने के लिए बनाया गया स्तम्भ जयस्तम्भ कहा जाता है- निचखान जयस्तम्भान् गङ्गास्रोतोऽन्तरेषु सः। (रघुवंशम् 4, 36)

षड्विधं तदधः पीठं मालिकास्त्वेकविंशतिः$_{21}$।
तन्मध्ये देवताः सर्वे स्वर्गपातालवासिनः ॥ 26 ॥

उस कीर्तिस्तम्भ के अधःपीठ की रचना छह प्रकार की कही है। उस पर बनी हुई मालिकाएँ इक्कीस बनाई जाए और उन इक्कीस मालिकाओं में समस्त स्वर्ग, पाताल निवासी देवताओं की स्थापना करें।

महाराणा कुम्भा ने कीर्तिस्तम्भ निर्माण पर 'स्तम्भराज' ग्रन्थ का प्रणयन किया है। चित्तौड़गढ़ पर कुम्भा का बनवाया कीर्तिस्तम्भ वर्तमान है। यहाँ लगी प्रशस्ति में इसका वर्णन है— कीर्तिस्तम्भमकारयेत्सरणधीरभ्रंलिहाग्रं समाधीशासर्वसुपर्वराजहरिति क्रीडानिवासं श्रियः। यत्रागत्यसुराङ्गनाः सकलभूसाम्राज्यलीलानिधेरस्येन्द्रस्य नितम्बिनीजनकृतान् पश्यन्ति लीलारसान्॥ इसी की एक शिला पर स्तम्भराज को उत्कीर्ण किया गया था। देश में यह एकमात्र शिलोत्कीर्ण वास्तुशास्त्र है। इसमें कई देवी-देवताओं को समर्पित स्तम्भों के निर्माण की विधियाँ दी गई हैं। इसके प्रारम्भ में वनावली में सङ्गीत साधिका भगवती सरस्वती की आराधना करते हुए लक्ष्मी के हृदय निवासी विष्णु का स्मरण है। तदनन्तर विश्वकर्मीय योगदान का सन्दर्भ देते हुए कुम्भा स्तम्भों के लक्षणों को कहते हैं, जैसा कि जय ने कहा था। जय और अपराजित ने भी अपने विद्याभ्यास में इन लक्षणों को तीन प्रकार से बताया। ये स्तम्भ क्रमशः इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु के लिए बनाए जाते थे। इन्द्र के लिए कीर्तिस्तम्भ की ऊँचाई 65 गज, विष्णु के लिए 108 और ब्रह्मा के लिए कीर्तिस्तम्भ का उदयमान इन्द्र व विष्णु के स्तम्भ का मध्यमान वाला होगा। इस प्रकार कीर्तिस्तम्भ उत्तम, मध्यम और निम्न मान का बनता है किन्तु जो भी कीर्तिस्तम्भ शास्त्रोक्त विधि से बना हो, वह उत्तम होता है। इसको 14 भागों में विभाजित किया गया है। इसको तारकाकार पीठ पर बनाने का सङ्केत है जो अपराजित. में भी आया है। यह मेरुच्छन्द में बनाया जाता है।

इस खण्डित अभिलेख का आरम्भ इस प्रकार है—स्वस्ति। श्रीमत्सकलकविताकदलीकदम्बबन्धुःकोमुल्लासः स्फुरतु सुकवेश्चारु सङ्गीतदेव्याः। सान्द्रानन्दं दिशतु शोचिश्च वि...क मूर्तिर्लक्ष्मीवक्षस्थल कमलिनी कोशदेश द्विरेफः॥ 1॥ श्रीविश्वकर्मा(ख्य)महार्यवीर्यमाचार्यमुत्पत्तिविधावुपास्य। स्तम्भस्य लक्ष्मातनुते नृपालः श्रीकुम्भकर्णे जय भाषितेन॥ 2॥ जयपराजित मुखैर्भणितस्य त्रिधा यथा। इन्द्रस्य ब्रह्मणाश्चापि विष्णोर्नामभिरङ्कितः॥ 3॥ पञ्चषष्टि करोच्छ्रयः शक्रस्तम्भो विधीयते अष्टोत्तरं शतं हस्ता विष्णुस्तम्भसमुच्छ्रय... द्वयोर्मध्यमं मानं ब्रह्मस्तम्भस्य तन्मत्रम् उत्तमादिभिदायोगात्स प्रत्येकं त्रिधा भवेत्। (...) उत्तमं भेदामारूढो ब्रह्मस्तम्भोयमिष्यते। अमुष्योत्तमता प्रोक्ता मुख्यमान समाश्रयात्॥ 4॥ मे(घ)मानं विभजेच्चतुर्दश विभा(जयेत् तथा?)। एक भागमितं पक्षे चेकस्मिन्पीमा(न् भवे?)त॥ 5॥ चतुर... स्थिरं तारकासंज्ञकं तस्या तत्रैव ... रपत्रीत्यनुक्रमात्। विमान छन्दसा....यां दिशि तद्वारमाद्य भूपो प्रकल्पये... भाग.... क॥ 8॥ भमन्ते नमितंत्यमद्ये.......... कर्म्म मनोहरम्॥ 9॥ मेरो पृ... (हैण्डबुक टू विक्टोरिया हॉल म्यूजियम उदयपुर, राजस्थान राज्य पुरातत्वविभाग, जयपुर 1961, पृष्ठ 11 क्रमांक 38 व शिलालेख संख्या 10)

इसके कुछ और अंश प्राप्त हुए हैं जिनके श्लोकों में वही मत है जो कि 'अपराजितपृच्छा' और 'ज्ञानप्रकाशदीपार्णव' के स्तम्भ निर्माण निर्देशों के सम्बन्ध में कहा गया है। बहुत सम्भव है कि जयता अथवा मण्डन ने ही इस ग्रन्थ का प्रणयन किया हो और इसको नृपैच्छा से उत्कीर्ण किया गया हो। इसका उत्कीर्णकर्ता पोमा रहा होगा जिसकी मूर्ति कीर्तिस्तम्भ के पञ्चमखण्ड में इस अभिलेख के साथ विद्यमान है— 'स्वस्ति श्री संवत् 1510 वर्षे श्रावणसुदि सोमवारे कीर्तिस्तम्भ राणा कुम्भकरणं कारापितं सूत्रधार जइता पत्र नापा भमि चथी।'

मेरुच्छन्दभवः स्तम्भो ब्रह्माण्डसदृशः पुरः।
तदुपरि शिवमूर्तिः शक्तिस्त्रिज्योतीरूपिणी॥ 27॥

इसी तरह जो कीर्तिस्तम्भ बनेगा, वह मेरुछन्द का बना हो और पूरे ब्रह्माण्ड के सदृश हों अर्थात् उसमें समस्त सृष्टि की रचना मूर्तिकलारूप में प्रदर्शित हो। उस कीर्तिस्तम्भ के ऊपरी भाग में तीन ज्योति रूपिणी शक्तियों के साथ शिवमूर्ति की स्थापना करें।

तदर्थे मेरुच्छन्दमाह —

मेरुच्छन्दः समाख्यातः विभागान् शृणु साम्प्रतम्।
चतुरश्रं समं कृत्वा तारकं पीठमुत्तमम्॥ 28॥

अब मेरुछन्द के विभागों के बारे में कहता हूँ, उसे सुनो। चौकोर क्षेत्र को समतल करके उत्तम तारक-पीठ बनाएँ।

उक्ताश्च चतुरशीतिः कीर्तिस्तम्भा विभागशः।
समस्ता उत्सेधभागाः शतमष्टोत्तरं स्मृताः॥ 29॥

उस पीठ पर चौरासी प्रकार के कीर्तिस्तम्भ विविध विभागों के अनुसार बनते हैं। उन सभी की ऊँचाई के भाग एक सौ आठ कहे गये हैं।[1]

---

1. वास्तुविद्या और ज्ञानप्रकाशदीपार्णव में पाँच प्रकार के ही कीर्तिस्तम्भों का वर्णन आया है। उक्त पाठ भी प्रासङ्गिक है — कीर्तिस्तम्भलक्षणम्— अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कीर्तिस्तम्भस्थ लक्षण। पुराण भूषणार्थाय राज्ञादि विजया यत्र॥ 1॥ वापिकूपतडागानां कुण्डानां पुष्करादिनाम्। ध्वजास्तत्रैव कर्तव्या सर्वमानेन लक्षयेत्॥ पुरे च नगरे चैव कूटं कुर्यात् ध्वजरुहा। गजगृहे रथो वापि ध्वजास्तत्रैव कारयेत्॥ कण्टका सफलतव्यज्ञै महाराज ध्वजेद्भवा। यत्र गजा ध्वजास्तत्र अनेकाकार रूपिणिम्॥ विधातव्या पताकैश्च राज्ञा च मानया। सङ्ग्राम रोहणे पताका गजारोहे मनोरमा॥ वसन्तादिकोत्सवेषु ध्वज सर्वेषु शोभना। नगरे पुरे ग्रामादौ होलिकायां महोत्सवे॥ राज प्रवेशे नगरेषु नृत्यमाण्डो महोत्सवे। दिव्य वस्त्र पताका च तोरणैर्युस्वसम्भवे॥ ततस्ता वाद्यभवने कोटे नित्यं तथैव च। कपिशीर्षान्तरे कुर्यात् त्रिपञ्चैकमथोच्यते॥ प्रतोल्याद्यालयालादि प्राकारे सर्वस्तथा। ध्वजामाला कुलसिद्धि कुर्यात्कैलाशोभवा॥ अर्क युद्धोद्भव स्थाने पुण्यप्राकार सङ्कुले। अष्ट$_{8}$ द्विष्ट$_{16}$ द्वात्रिंश$_{32}$ दिव्यवस्त्रोद्भवा ध्वजा॥ ध्वजास्तम्भोद्भवा कार्यां कीर्तिपताकश्च हस्तिपु। जयन्तश्च प्रतापख्य कीर्तिनन्दो महोत्सव॥ एकेच्छत्रस्तथा कार्यां कीर्तिस्तम्भाश्च पञ्च हि। एकविंशति$_{21}$ यदा हस्तौ जयन्तो नाम नामत॥ प्रतापाख्यस्तत् कुर्यात् त्रयचत्वारि$_{43}$ हस्तकम्। पञ्चषष्टिः$_{65}$ यदा हस्त स एव कीर्तिनन्दन॥ सप्ताशिति$_{87}$ हस्तान्तं तु महोत्सवै कीर्तितम्। नवोत्तरशतं$_{109}$ हस्तै एकछत्रोद्भवास्तथा॥ एवं पञ्च महास्तम्भा महाराज्ञीद्वा पुरे। पृथुत्वे चतुर्थांशेन तत्षडांशे न चोर्ध्वत्॥ पञ्चमांशे नाऽधः कुर्यात पडांशोच्छ्रय मानतः। ऊर्ध्वेषु माऽमर्ध्वतु त्रिचतुष्टय भूमिकम्॥ (तत् षडांशेन ऊर्ध्वेषु ऊर्ध्वमानं त्रिभूमिकम्)। वृत्ताकारं प्रकर्तव्य घण्टा कलश संयुतम्। दक्षिणे कीर्तिपताका वामे कीर्तिस्तदर्ध्वत्॥ एवं त्रिभूमोद्भवमाड धर्म कीर्ति यशोद्भवम्। पीठबन्धस्तत कुर्यात् ऊर्ध्वे तस्य मेखला॥ दिक्पाल लोकपालाश्च वसन्तानां च महोत्सवे। चतुःषष्टिश्च देवानां स्वर्गिणात्वेकविंशति॥ मौढपरि

तेन भागप्रमाणेन **विस्तारः** स्याच्चतुर्दश $_{14}$ ।
तत्त्वभागैश्च भद्रार्ध कर्णश्चैव द्विभागकः ॥ 30 ॥

उन भाग प्रमाणों के अनुसार उनकी चौड़ाई अर्थात् कीर्तिस्तम्भों की विस्तार चौदह भागों का हो तथा उनके भींत का भद्र अर्ध भाग तत्व अर्थात् पाँच भाग का और कर्ण दो भाग के होंगे।

पूर्वभद्रे भवेद् ब्रह्मा दक्षिणे तु जनार्दनः ।
अनन्तः पश्चिमे भद्रे रुद्रश्चोत्तरतो दिशि ॥ 31 ॥

पूर्व की दिशा के भद्र अर्थात् दीवार पर ब्रह्मा की मूर्ति हो, दक्षिण दिशा की भद्र अर्थात् दीवार पर जनार्दन, पश्चिमी भद्र पर अनन्त और उत्तरी भद्र पर रुद्र की प्रतिमा स्थापित करनी चाहिए।

कोणे भद्रे तथा स्तम्भे सप्तभागसमुच्छ्रिते।
महाश्रृङ्गाणि **चाष्टैव** मेघाकाराणि **तानि च ॥ 32 ॥**

अब कोणों की दीवार के तथा स्तम्भों की भद्र दीवार के सात भाग की ऊँचाई तक मेघाकार अर्थात् विशाल महाश्रृङ्गों की रचना करें जितनी संख्या प्रतिकोण दो के अनुसार से चारों कर्णभागों पर कुल आठ महाश्रृङ्ग बुर्ज बनेंगे।

सार्ध भागं तु परिधौ त्यजेच्छृङ्गक्रमेण **वै।**
तदूर्ध्वे दशभागा **च इल्लका** तौरणैर्युता ॥ **33 ॥**

इन बुर्जों की परिधि के डेढ़ भाग को छोड़ने के बाद उसके ऊपर के दस भागों में तोरणयुक्त इल्लका बनाएँ अर्थात् आने-जाने के लिए रोस निकला हुआ बनाएँ जिस पर तोरण अर्थात् छज्जा हो।

कोणे भद्रे तथा श्रृङ्गे यक्षगन्धर्वपन्नगाः ।
भवन्ति ते स्वेच्छया च देवा वा दैत्यदानवाः ॥ 34 ॥

इन कीर्तिस्तम्भों के कोणों पर भद्र अर्थात् दीवारों पर, श्रृङ्ग अर्थात् कंगूरों पर यक्षों, गन्धर्वों, नागों, देवों, दानवों व दैत्यों के अपनी-अपनी इच्छानुसार कृत्तियों में रचना करके सज्जित करें।

ध्वजाकार्यां दण्ड पताक मर्कटिम्। एवं विधेय कर्तव्य इति कीर्तिस्तम्भलक्षणम्॥ तडागं च महायज्ञे ध्वजास्तम्भ समोद्भवा। आनन्दो दुन्दुभि कान्तं श्रीमुख सुमनोहरम्॥ नव हस्तो भवेदाद्य सप्तदशकरोन्नतम्। तदग्रे कलश कुर्याद् ध्वजावंश समन्तितः॥ वापिषु दक्षिणे द्वारे ध्वजस्तम्भ प्ररोपयेत्। पीठबन्ध सुकर्त्तव्या एकद्वित्रिकरोन्नतम्॥ त्रिहस्त पञ्चसप्त समुन्नत तदूर्ध्वे कलशं दिव्य। कुण्डेषु पुष्करे कूपे ध्वजास्तम्भ समुद्भवेत्॥ त्रिपञ्चसप्त हस्तान्ते उदकान्तर? शतशुभम्। तथा प्राचिमिशान मध्ये विभज्ये नवभागत्। वामे त्रयं परित्यजे दक्षिणे च त्रयत्यनेत्॥ (दीपार्णव उत्तरार्ध 23, 1-25)

परिधौ मत्स्यादिदेवाश्च तथैकादशरुद्रका।
शिवशक्तयोऽनेकाश्च रूपभेदेन संस्थिता: ॥ 35 ॥

परिधि को विष्णु के मत्स्यावतार आदि देवताओं तथा एकादश रुद्रावतार और अनेकों शिव-शक्तियों के विविध रूप-भेद से बनी मूर्तियों से अलंकृत करें।

सागरा: पर्वता द्वीपा समस्ता भोगरूपका।
समुद्रशैलवसना पृथ्वी च सप्तमातर: ॥ 36 ॥
भूपालाश्च तथा कल्पवृक्षाश्च मुनिसत्तमा:।
वायुश्च सूर्यचन्द्राद्या: सनक्षत्रा: सराशय: ॥ 37 ॥

इसी क्रम में समस्त सागरों के मूर्त रूप, पर्वतों के मूर्तरूप, द्वीपों के मूर्तरूप और समस्त भोग सामग्रियों के भी मूर्तरूप बनाएँ। इस समुद्र-शैल रूपी वस्त्रों को धारण करने वाली पृथ्वीमाता का मूर्तरूप तथा सप्तमातृकाओं के मूर्तरूप, कल्पवृक्षों के मूर्तरूप, मुनीश्वरों के मूर्तरूप, समस्त उनचास प्रकार के पवनों के मूर्तरूप और सूर्य-चन्द्रादि ग्रहों से लेकर समस्त नक्षत्रों व राशियों के मूर्तरूप भी अलङ्करणार्थ लगाएँ।

इन्द्रो रुद्रस्तथोपेन्द्रो ब्रह्मा विष्णुस्तथैव च।
शैलेयी (पञ्चलीलया) शङ्करश्च सदाशिव: ॥ 38 ॥
शान्ता ... शान्तातीता याति योत्परती तव।
[1]तापर तपस्विनां कुर्यु कीचकं तस्योपरि ॥ 39 ॥

इसके अतिरिक्त इन्द्र, रुद्र, उपेन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शैलेधीश्वरी, पञ्चलीला, शङ्कर, सदाशिव, शान्ता, ...शान्तातीता के अतिरिक्त तपस्वी और उन पर कीचकमुख बनाएँ।

प्रतिष्ठापनावसरेकर्त्तव्यं —

पूर्वद्वारे ध्वजस्थानं कीर्तिस्तम्भं तथोत्तमम्।
तदूर्ध्वं च प्रतिष्ठाप्या कीर्तिर्हस्तपताकिका ॥ 40 ॥

नगर प्राकार के पूर्व द्वार पर ध्वजस्थान और कीर्तिस्तम्भ को बड़ी उत्तम विधि से स्थापित करके उसके ऊपर कीर्तिहस्तपताकिका की प्रतिष्ठा करें।[2]

---

1. 'तापर तस्वपेता काच त्योपरि ?' प्रकाशित पाठ:।
2. वास्तुविद्या में आया है— शुद्धभूमिं तले स्तम्भ: कीर्ति कर्त्तव्य ज्ञायते। भूमितोऽकुरपात्राद्यै श्रेष्ठतिश्चामलैरिभै ॥ नटै नाटिकरूपैश्च रूपिणी शत संयुते। द्रव्यपाषाणसम्पन्नरंशेर्नाना विधैयुते ॥ प्रभाभूषित शक्तिनां मध्यकोणतां मुख्यकम्। भद्रकर्णविकर्णाद्य वक्ष्ये वास्तुविचारिन् ॥ प्रासादाग्रेऽगणवारे स्थापितो

शिलोलूखलयन्त्राणि शय्यासनानि पट्टकाः।
नित्यकर्मस्थानस्थानं सन्ध्यावन्दनकुण्डिकाः॥ 41॥
सर्वं गृहोपस्करं च आयसं काष्ठकादिकम्।
द्विजदेवेषु दातव्यमात्मार्थे तु सनन्दनम्॥ 42॥

इसी तरह प्राकार रक्षक अधिकारियों के सुख सुविधा के साधन रूप में शिलानिर्मित ऊखल यन्त्रों, शय्या, खाट, कुर्सी मोढ़े आदि आसन, पाटले, नित्यकर्म पूजा-सन्ध्यादि के पूर्व किए जाने वाले स्नान के लिए स्नानघर, सन्ध्या वन्दन के समय हवनादि के उपयोगार्थ हवन-कुण्ड आदि और घर के काम-काज में आने वाले सभी उपकरणों आयस अर्थात् लोहादि धातुओं से अथवा काष्ठ से निर्मित हो, ये सब द्विज देवों को उनके कार्य में आने हेतु सनन्दन अर्थात् भवन सहित दान में देना चाहिए।

भूमिदानं गजाश्वाश्च देशा ग्रामं च पत्तनम्।
मयूरलाक्षभिच्छत्रं हेमरत्नादिभूषणम्॥ 43॥

उन द्विज-देवों को भूमिदान, माफी पट्टे, हाथी, घोड़े, ग्राम, देश पतन, मयूर के लक्षणों से चित्रित छत्र चन्दोवे आदि और सोने व रत्नो के अनेक आभूषणों का दान करें।

पूजयेत्सपत्नीकान् विप्रान् पूर्वे देषु पूजिताः ?।
इन्द्रतुल्योद्भवं राज्यं स्वर्गे वा भूमिशासने॥ 44॥

इन ब्राह्मणों की सपत्नी के उसी तरह से इस कार्य में पूजा करनी चाहिए जिस तरह से इसके पहले उनके पूर्वजों को पूजा जाता रहा है, तभी उस नगर का राजा अपने को इन्द्रतुल्य राजा मान सकेगा और इस भूमि को स्वर्ग के समान बना कर शासन करके राजेन्द्र कहा जा सकेगा।

अन्यदप्याह —

क्रमोऽयमत्र विप्राणां कथयामि द्विजोत्तम।
वंशावंशेस्तदेवा ? इन्द्राद्या ईशकोणतः॥ 45॥
विष्णुदेवधान्याविप्रा पूर्वदेशे तां स्थापयेत् ?।
निगमं[1] पूजयन्ति विप्रा दक्षिणां दिशं द्विजोत्तमाः ?॥ 46॥

1. 'जिगमं ?' इति प्रकाशित पाठः। मयमतम् में निगम का वर्णन है। यह भी कहा है कि वास्तुक्षेत्र में ब्राह्मण और देवता की स्थापना की जानी चाहिए— एतस्याभ्यन्तरे विप्रदेवता स्थापनं भवेत्। (9, 64) [illegible]

अब मैं यहाँ ब्राह्मणों के उत्तमोत्तम वंशों के, उनके देवों के क्रम को कहता हूँ। इन्द्रादि देवताओं को ईशान कोण से आरम्भ करके पूर्व दिशा में विष्णु देव, धान्य, विप्रादि की स्थापना करे? निगमों के पूजन करने वाले ब्राह्मणों (देशिक, तांत्रिक) को दक्षिण दिशा की ओर स्थापित करें।

नैर्ऋत्यां दिशि पितृश्च प्रावृषे पौरुषं तथा।
उत्तरे पुनराचार्य ईशं च प्रतिपूजयेत्?॥ 47॥

नैर्ऋत्य दिशा की ओर पितरों को, वर्षा करने वाले देवों को, पौरुष अर्थात् बल या धूपघड़ी को भी स्थापित करें। उत्तर की दिशा में पुनः आचार्य और ईश अर्थात् महादेव शङ्कर का पूजन करें।

कनिष्ठं च समाख्यातं नगरं नाम भूधरम्।
देवलोकेषु विख्यातं पूज्यं सुरनरोरगैः॥ 48॥

ऐसे ही जो कनिष्ठ नगर होते हैं उनका नाम भूधर कहा गया है जो सुर, नर और नागों के द्वारा देवलोकों में पूजा जाता है और विख्यात है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तपराजितपृच्छायां भूधरादिब्रह्मनगराधिकारो नाम सप्ततितमं सूत्रम्॥ 70॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में भूधरादि ब्रह्मनगर अधिकार नामक सित्तरवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 70॥

हेमकूटाख्यनगरप्रमाणमेक-सप्ततितमं सूत्रम्॥ 71॥

अपराजित उवाच—

चित्रकूट-त्रिकूटादिनगराणां च सर्वशः।
प्रमाणं गुणदोषांश्च कथयस्व प्रसादतः॥ 1॥

अपराजित ने कहा कि हे तात्! अब आप सभी चित्रकूट, त्रिकूट[1] आदि नगरों के प्रमाण, गुण और दोषों को कृपाकर कहिए।

है— तत्रागते नगर्यन्तं यदि विष्णवालयं भवेत्। राजधानीति तन्नाम विद्वद्भिर्वक्ष्यते सदा॥ (मानसार 10, 23-24)

1. ग्रन्थकार के रचनाकाल तक चित्रकूट के रूप में चित्तौड़गढ़ और त्रिकूट के रूप में नागदा नगर अस्तित्व में थे। ये दोनों ही मेवाड़ की राजधानियाँ रहे हैं। तेरहवीं-चौदहवीं सदी के शिलालेखों और 15वीं सदी के 'एकलिङ्गमाहात्म्य' में ये नाम आए हैं। हालांकि शिवपुराण में भी चित्रकूट-त्रिकूट का नाम है— क्षणं तु गिरिवत्तस्थौ चित्रकूटत्रिकूटकः (शतरुद्रसंहिता 15, 48) किन्तु, मेवाड़ के इन पर्वतों

गृहाश्च कतिः सङ्ख्याता मार्गाश्च कतिधा स्मृताः।
श्रेष्ठा वा निन्दिता वाथ प्रतोलीपरिखादिकाः॥ 2॥

वहाँ गृह कितनी संख्या में होते हैं और उनके मार्ग कितने प्रकार के होते हैं? उनके श्रेष्ठत्व को और निन्दित को, प्रतोली अर्थात् पोल व परिक्खा अर्थात् प्राकार के बाहर बनने वाली खाई आदि के बारे में भी अवश्य कहिए।

कतिः स्थानानि देवानां कतिदेवाश्च संस्थिताः।
एतत्सर्वं प्रयत्नेन तथा जनपदादिकम्॥ 3॥

किन-किन स्थानों में किन-किन देवताओं की स्थापनां की जाए— ये सभी प्रयत्नपूर्वक कहें।

भोगाय भूमिपालानां भोगिनां चैव सर्वदा।
विश्रामो वनितानां च यथा चेन्द्रपुरी तथा॥ 4॥

इसके साथ ही जनपद के निवासी लोगों के भोग के लिए तथा भूमि विश्राम करने हेतु और रमणियों के सदा आवास हेतु इन्द्रपुरी स्वर्ग के समान सुखदायी भवनों के बारे में भी कहिए।

विश्वकर्मोवाच —

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नगराणां च लक्षणम्।
हेमकूटाभिधानं च विश्रुत भुवनत्रये॥ 5॥

विश्वकर्मा ने कहा कि अब मैं तीनों लोकों में विख्यात् हेमकूट नामक नगरों के लक्षणों को ठीक प्रकार से कहता हूँ।

पदादीनां विन्यासमाह —

चतुरश्रं समं कृत्वा भुजकर्णविशोधितम्।
भाजयेद् द्वादशांशैर्वा न्यूनाधिकपदैस्तथा॥ 6॥

(इनके निवेशार्थ सर्वप्रथम) भूमिक्षेत्र को समतल करके चौकोर बनाएँ और उसकी भुजाएँ और कोनों को भी सही-सही देख लें। इसके उपरान्त उसे बारह अंशों में विभाजित करें अथवा कुछ न्यूनाधिक पदों में विभाजित करें।

और उन पर विद्यमान नगरों के रूप में चित्तौड़गढ़ व नागदा अनुमित किया जाना समीचीन है। चित्रकूट की स्थापना चित्रङ्गदा मौर्य ने 7वीं सदी में और नागदा की स्थापना गुहिल राजाओं ने आठवीं सदी में की थी। अपराजित यहाँ का शासक रहा था। जैसा कि 69वें सूत्रान्त पर टिप्पणी में कहा गया है नागदा के पास ही स्थित कुण्डेश्वर से अपराजित का 661 ई. का अभिलेख मिला है। इस सूत्र में प्रश्न के विपरीत विश्वकर्मा ने हेमकूटादि नगरों की रचना के विषय में कहा है।

ब्रह्मस्थानेषु सङ्गृह्य ह्येकांशं वामदक्षिणम्।
द्विधा तथा पुनस्त्रीणि द्वे द्वे त्रीणि द्वयं तथा॥ 7॥
इन्द्रयाम्यापरसौम्ये विभज्य पदसङ्ख्यया।
जायन्ते तत्र सद्मानि ख्यातानि वसुधातले॥ 8॥

उस क्षेत्र के ब्रह्मस्थान अर्थात् मध्य भाग के बायें और दायें एक अंश को अर्थात् एक-पद भाग को दो प्रकार से तथा पुनः तीन को दो-दो प्रकार से और तीनों तथा दोनों को पूर्व से पश्चिम तक भली प्रकार से पद संख्या में विभाजित करके वहाँ भवन निवेश किए जाते हैं, जो कि पृथ्वीतल पर सुख्यात हैं।

वसति मार्गादीनां न्यासक्रमाह —

निवसन्ति च सीमान्ते चतुर्वर्णा यथाक्रमम्।
द्वादशाथमार्गाश्च द्वौ त्रयः सद्मनां तथा॥ 9॥

इन नगरों के सीमान्त में चारों वर्ण के लोग यथाक्रम निवास करते हैं। दो-दो या तीन-तीन घरों को छोड़कर ऐसे नगर में बारह मार्ग बनाए जाते हैं।

अन्तरे कर्णभुजयोर्मार्गसङ्ख्या त्रयोदश।
सद्ममानं समाख्यातं चत्वारिंशत्सहस्त्रकम्॥ 10॥

कर्णभुज के अन्तर पर जाने तक मार्ग संख्या तेरह भी हो जाती है। इसमें भवनों की संख्या का प्रमाण चालीस हजार तक का कहा गया है।

ब्रह्मरन्ध्रप्रमाणं च शतमष्टोत्तरं शुभम्।
कर्णगर्भान् विजानीयाच्छतमष्टोत्तरं मतम्॥ 11॥

इसी तरह ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् मध्य का भाग रखते हुए एक सौ आठ पद भागों का क्षेत्र भी शुभ होता है तथा कर्णगर्भ भी एक सौ आठ माने गए हैं।

चतुर्वक्त्रं महापद्मं प्रासादं सुरवल्लभम्।
स्थापयेद् ब्रह्मकेन्द्रे च ब्रह्माणं तु पितामहम्॥ 12॥

ब्रह्म केन्द्र में अर्थात् नगर के मध्य भाग में चौमुखा, महापद्म नामक देवताओं को प्रिय लगने वाला प्रासाद बनाएँ और उसमें पितामह ब्रह्मा की मूर्ति की स्थापना करें।

चत्वारः कर्णप्रासादाः कर्णगर्भे च संस्थिताः।
आयान्तस्तु व्ययं कुर्यात् क्षेत्रमानानुसारतः॥ 13॥

कर्णगर्भ के चारों ही कोनों पर भी कर्णप्रासाद चार की संख्या में बनाएँ। उसके लिए आय और व्यय क्षेत्र मानानुसार ही शोधित करने चाहिए।

हस्तसङ्ख्याप्रमाणं च शतानां दशपञ्चतः।
वेश्म सङ्ख्याप्रमाणं च सार्धसप्तशतानि च॥ 14॥

गज की संख्या प्रमाण से इन नगरों में गृहों की संख्या एक सौ पन्द्रह से लेकर साढ़े सात सौ तक हो सकती है।

प्रासादोपस्करं सर्वं प्रतोल्यादिसमन्वितम्।
कीर्तिस्तम्भादिकं चैव कथितं पूर्वमेव हि॥ 15॥

इति हेमकूटनगराभिधानम्।

इन नगरों के अन्य प्रासादों और उपकरणों, प्रतोली आदि से समन्वित कीर्ति स्तम्भादिक के बारे में तो पहले ही (70वें सूत्र में) कहा जा चुका है।

अथ रत्नकूट नगरादीनां लक्षणं —

अतः परं प्रवक्ष्यामि नगराणां च लक्षणम्।
नाम्ना तु रत्नकूटं तद् विज्ञातं वसुधातले॥ 16॥

इनके बाद, अब मैं उन नगरों के लक्षणों के बारे में कहता हूँ जो रत्नकूट नाम से वसुधातल पर पूर्णतः विख्यात है।

चतुरश्रं समं क्षेत्र भुजकर्णविशोधितम्।
भाजयेद्वा षोडशांशैर्विविधैर्वा पदैस्तथा॥ 17॥

इनके लिए समचौरस क्षेत्र हो और भुजाओं तथा कर्णों को पूर्णतः शोधित करके सोलह अंश पदों में विभाजित करें या विविध अंशों के पदों में विभाजित करें।

ब्रह्मस्थानं तु सङ्गृह्य चैकाशं वामदक्षिणम्।
तच्चैकं तु त्रिधा कृत्वा पुनर्द्वौ चैकमेव हि॥ 18॥

इसके ब्रह्म भाग अर्थात् मध्य के पदों के बायें-दायें एक के तीन भाग करके पुनः उनके दो-दो भाग करें।

द्वौ द्वौ तु भागसंस्थाने च्चैकद्वयं त्रयं तथा।
चत्वारश्च चतुर्दिक्षु पदसङ्ख्यां विभाजयेत्॥ 19॥

इन दो-दो भागों के स्थानों पर एक, दो, तीन तथा चार भागों में चारों ओर के पदों की संख्याओं को विभाजित करें।

गृहाणां जायते सङ्ख्या त्वेकमेव सहस्रकम्।
पदांशषट्कविस्तारं तदंशं निर्गमं विदुः॥ 20॥

इससे गृहों की संख्या एक से लेकर हजार तक हो जाएगी; उन भवनों में छह-छह पदों के अंश पर अर्थात् छह गृहों को छोड़कर उतने ही अर्थात् छह-छह निर्गम मार्गों की रचना करें।

चतुर्दिक्षु विधातव्यं भद्रस्थानं मनोहरम्।
चतुःकर्णास्तु प्रासादे मार्गाः सप्तदश स्मृताः ॥ 21 ॥

इस प्रकार से रचे गए नगर के भवनों की दीवारों को चारों ओर से मनोहर रूप दें और चारों कोणों पर प्रासाद, मन्दिरादि बनाएँ और सत्रह मार्ग आवागमन हेतु बनाएँ।

द्विपञ्चाशत् सप्तहस्ता ज्ञातव्या अत्र पण्डितः।
द्वात्रिंशन्मध्यवंशे तु चत्वारः षोडशान्विताः ॥ 22 ॥

इन मार्गों में भी बावन मार्गों की चौड़ाई तो सात गज की हो, ऐसा शिल्पशास्त्र के पण्डितों ने बताया है और बत्तीस मार्ग मध्य में, आने-जाने वाले चार-चार सोलह गज की चौड़ाई वाले कहे गए हैं।

सीमान्ते कर्णकर्णेषु चतुर्विंशतिकाः स्मृताः।
अष्टौ मार्गा द्वादश च हस्तसङ्ख्या निगद्यते ॥ 23 ॥

वहाँ पर कोनों से कोनों तक के सीमान्त पर चौबीस मार्ग हों, इनमें आठ मार्ग बारह गज की चौड़ाई वाले होंगे।

चत्वारिंशच्च चत्वारो द्विशतं गर्भमध्यतः।
कर्णे कर्णे च सीमान्ते शेषा विंशतिकान्विताः ॥ 24 ॥

क्षेत्र के नगर के मध्य से चारों ओर दो सौ मार्ग चालीस गज की चौड़ाई के तथा कोनों से कोनों तक के सीमान्त के शेष मार्ग बीस गज की चौड़ाई के कहे हैं।

नामपादप्रमाणं च संस्थानोन्मानलक्षणम्।
सर्वेषामीदृशं मानं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ 25 ॥

भगवान् आद्य विश्वकर्मा ने इन नगरों के नाम, पाद प्रमाण, संस्थानों के मान, उन्मान के लक्षण आदि सभी मानों को इस प्रकार निश्चित किया है।

चतुर्द्वारं तु कैलासं चतुर्दृष्ट्य[1] समन्वितम्।
स्थापयेद् ब्रह्मकेन्द्रेषु ब्रह्माणं च पितामहम् ॥ 26 ॥

कैलास नगर के चार द्वार चारों ओर दृष्टि किए हुए (वातायन सहित) हों—ऐसे मध्य ब्रह्मकेन्द्र के भाग में पितामह ब्रह्मा की मूर्तियुक्त मन्दिर की स्थापना करें।

---

1. 'चतुत्र्यष्ट ?' इति प्रकाशित पाठः।

सरस्वतीं तथेशान्यां वायव्यां तु जनार्दनम्।
नैर्ऋत्ये च सहस्राक्षमाग्नेय्यां तु गणाधिपम्॥ 27॥

इसके ईशान कोण में सरस्वती मूर्ति सहित मन्दिर, वायव्य में जनार्दन मूर्ति मन्दिर, नैर्ऋत्य में सहस्राक्ष मूर्ति मन्दिर और आग्नेय दिशा में गणपति मूर्ति मन्दिर स्थापित करें।

सर्वेषामीदृशं स्थानं ज्येष्ठमध्यकनिष्ठकम्।
कुर्यात् कनिष्ठके प्राज्ञो मध्यस्थाने चतुष्टयम्॥ 28॥
ज्ञात्वा नगरचिह्नानि द्विरष्टकैकेन ? शिल्पिभिः।
न्यूनाधिकं च द्वाराणां सूत्र सम्बोध्य बोधकम् ?॥ 29॥

यह ज्ञातव्य है कि ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ— सभी नगरों का इसी व्यवस्था से निवेशन करें। कनिष्ठ नगर के मध्य स्थान (ब्रह्मस्थल) में चारों पदों में नगर चिह्नों के जानकर सोलह शिल्पीगणों के द्वारा न्यूनाधिक द्वारों की रचना हेतु (सूत्र सम्बोध्य बोधकम्) कोई सूत्र ढूँढने पर विचार-विमर्श किया जाए।

रत्नकूटाभिधानं च गृहसङ्ख्या सहस्रतः।
ज्येष्ठनागरमानं च सूत्रे चैव प्रसारिते॥ 30॥
द्वारप्राकारकाद्यं च गृहोपस्करमेव च।
पूर्वोक्तं तु विधातव्यं द्विजदेवालयस्तथा॥ 31॥

ऐसे रत्नकूट नामक नगर के अन्तर्गत गृहों की संख्या हजारों तक हो सकती है। इसी तरह के कार्य के लिए ज्येष्ठ नागर मान लगाकर ऐसा ही सूत्र प्रसारित करके निवेशन किया जाना चाहिए। नगरों में द्वार तथा प्राकार, गृह उपस्कर-उपकरणों सहित वहाँ बसने वाले द्विजों, देवालयों के विषय में पूर्व में कहा जा चुका है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां हेमकूटाख्यनगरप्रमाणसूत्राधिकारो नामैकसप्ततितमं सूत्रम्॥ 71॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में हेमकूट नामक नगर व प्रमाण सूत्र अधिकार नामक इकत्तरवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 71॥

महाराजाधिराजपुरनिवेशो नाम द्वासप्ततितमं सूत्रम्॥ 72॥

अथ विविधपुरस्य प्रमाणं। विश्वकर्मोवाच —

चतुर्भिस्तु सहस्रैश्च कनिष्ठं विस्तृतं पुरम्।
मध्यमं चाष्टसाहस्रं हस्तानां मानतः स्मृतम॥ 1॥

द्वयष्टसाहस्रहस्तं च व्यासे ज्येष्ठं पुरं मतम्।
चतुरष्टद्विरष्टं वा त्रिविधं चोदितं क्रमात्॥ 2॥

विश्वकर्मा बोले कि (अब महाराजाधिराज के पुर निवेश के लिए कहता हूँ। इनमें) पहले कनिष्ठ पुर का विस्तार 4 हजार गज का होता है और दूसरे मध्यम पुर का विस्तार मान 8 हजार गज का रखा गया है। तीसरे, ज्येष्ठ पुर का व्यास 16 हजार गज का माना गया है। इस तरह चार, आठ और सोलह हजार गज के विविध क्रमों में कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ नगरों के मान क्रमशः कहे हैं।

कनिष्ठज्येष्ठयोर्मध्ये सहस्रवृद्ध्यैकादश।
चतुर्धापुनरेकैकं कनिष्ठं मध्यमुत्तमम्॥ 3॥

उक्त कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ पुर में भी हजार गज की वृद्धि अनुसार क्रमशः 11 भेद बनते हैं। उनके भी फिर, एक के चार भेद कनिष्ठ, मध्यम, और ज्येष्ठ नाम से होते हैं।

साष्टमांशं सपादं वा सार्द्धं वास्तु समायतम्।
कुर्यादिकैकमिश्रं च चतुरश्रीकृतं शुभम्॥ 4॥

अष्ठमांश युक्त ($1^{1/8}$), सपाद युक्त ($1^{1/4}$) या अर्ध युक्त ($1^{1/2}$) वास्तु समायत होते हैं और इनको भी एक-एक से मिलाकर शुभ चतुरस्र बनाए जाते हैं।

वेदाश्रं वेदभक्तं च वेदापर नृपवेश्मने ?।
समस्तनृपगेहानां वेदवत् संस्थिता स्थितिः॥ 5॥

इन क्षेत्रों के पार्श्व में चार (वेदाश्र) और चार भाग से चार ही राजमहल— इस तरह समस्त राजमहलों की स्थिति भी वेदवत् अर्थात चार-चार कही गई है।

एकस्यां द्वित्रिभिर्वशास्त्रिधा पञ्चपदान्तगाः।
प्रसिद्ध राजमार्गाच्च षट् पन्थानो नवांशकाः॥ 6॥

पाँच-पाँच पद अर्थात् पाँच भाग के एक, दो और तीन अंशों वाले तीन विधियों के प्रसिद्ध राजमार्ग तथा छह पन्था, पैदल मार्ग नौ अंश के होंगे।

इत्यनुक्रमवंशाश्च यानमार्गप्रभेदतः।
पुरान्तेषु समस्तेषु घण्टामार्गप्रसिद्धितः ?॥ 7॥

इन अनुक्रम अंशों में यान-मार्गों के भेद बनते है जिन्हें समस्त नगरों के अन्त तक घण्टा मार्ग नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है। इन्हें नगर की मुख्य सड़क (घण्टा मार्ग या घण्टा पथ) राजमार्ग भी कहते हैं।

प्राकारोच्छ्रयमाह —

सूर्यषोडशविंशत्य: प्राकारोर्ध्वं त्रिधोदितम्।
द्वादशाष्टौ दश वापि प्राकारस्कन्धविस्तृतिः ॥ 8 ॥

अब नगर के प्राकारों की तीन प्रकार की ऊँचाई के अनुसार बताते हैं कि यह ऊँचाई 12, 16 और 20 गज की क्रमशः कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ होती है। इन प्राकारों के ऊपर के स्कन्धों की चौड़ाई भी क्रमशः 8, 10 और 12 गज उपयुक्त कही गई है।

सप्तादशकरोच्छ्रिता [1]प्राकारं द्विहीनाधिकम् ?।
द्विकराधिकैर्मध्यं च चोच्छ्रिता कण्डवारणी ॥ 9 ॥
कण्डवारणी स्थिता च पृथूदये च शिरोवापि ?।
घनानि कपिशीर्षाणि ह्यष्टाङ्गुल्यन्तराणि ॥ 10 ॥

इसके साथ ही 17 गज की ऊँचाई वाले प्राकार-परकोटे के दो कम दो अधिक गज तक की छूट समझें। प्राकार के स्कन्ध पर बने चौड़े मार्ग पर सुरक्षा के लिए उसके एक ओर दो गज के आसपास की ऊँचाई की कण्डवारणी अर्थात् डोली बनानी चाहिए (कण्ड = रक्षा करना, बचाना; वारणी = प्रतिरक्षा करने वाली) अर्थात् डोली-भित्ति। यह कण्डवारणी पर्याप्त ऊँची होनी चाहिए और उसके सिर पर घनानि (पास-पास) कपिशीर्ष या कंगूरे 8-8 अङ्गुल के अन्तर पर बनाने चाहिए।

प्राकारान्ते रथाः कार्या दिग्भास्वच्छक्रविस्तरः।
चत्वारिंशस्त्रिंशमध्यं शाश्वतं च रथान्तरम्॥ 11 ॥

प्राकार के अन्त में रथमार्ग करने चाहिए जो स्वच्छ विस्तार युक्त दश गज तक की चौड़ाई के होंगे और इन रथमार्गों के मध्य का अन्तर 20 या 30 गजों को आस-पास शाश्वत कहा गया है।

प्रवेशद्वारलक्षणं —

उत्सङ्गः पूर्णबाहुश्च हीनबाहुस्तथापरः।
प्रतिकायमिति प्रोक्तं प्रवेशानां चतुष्टयम्॥ 12 ॥

अब चार प्रकार के नगर प्रवेश द्वारों के बारे में कहता हूँ— 1. उत्सङ्ग, 2. पूर्णबाहु, 3. हीनबाहु और 4. प्रतिकाय— ये चार प्रवेश द्वारों के नाम कहे गए हैं।

---

1. 'प्रासादं ?' इति प्रकाशित पाठः।

आनन्दश्च तथोत्कण्ठो जयन्तो रिपुमर्दनः।
कर्णालयश्च चत्वारो वृत्ताकारेण संस्थिताः ॥ 13 ॥

इन द्वारों में भी 1. आनन्द, 2. उत्कण्ठ, 3. जयन्त और 4. रिपुमर्दन नगर के चारों कोनों पर गोलाकार निर्मितियाँ अच्छी तरह से बनाई जाती हैं।

सिंहावलोकनाश्चैव योधविद्याधरीयकाः।
एकान्तरप्रभेदेन क्रमेवापि सुसंस्थिताः ॥ 14 ॥

इन सभी द्वारों के ऊपर की ओर सिंहावलोकन अर्थात् विशाल गोखड़े-झरोखे और योध विद्याधरी अर्थात् बारहदरी[1] एक-एक के अन्तर पर क्रम से ठीक तरह बनी होती है अर्थात् झरोखों के बाद बारहदरी और बारहदरी के बाद पुनः अन्तराल पर झरोखे आदि क्रमानुसार बनाए जाते हैं।

चत्वरे *देवस्थानानि —*

षट्त्रिंशत्तश्च षड्वृद्धौ विदुरष्टोत्तरं शतम्।
पुरे प्रासादसङ्ख्याभिर्देवस्थानानि चत्वरे ॥ 15 ॥

इसके अतिरिक्त 36 से आगे 6-6 की वृद्धि करते हुए 178 संख्या हो जाए, उतनी संख्या नगरों के प्रासादों अर्थात् मन्दिरों की और देवता के स्थानों की होती है जो कि चौराहों (चत्वर) के साथ बनते हैं।[2]

पुर्मानानि द्वादशैव चत्वरं देवसङ्ख्यया।
अनुक्रमेण कर्त्तव्यं पुरच्छन्दानुरूपतः ॥ 16 ॥

पुरों के मान भी बारह है जो चौराहों पर स्थापित देवताओं की संख्या जितने ही हैं। इनको भी पुरों के छन्दों के अनुरुप ही अनुक्रम से निवेशित करना चाहिए।

देवस्य मुखस्थितिं —

नोत्तराभिमुखाः कार्या न देवा दक्षिणमुखाः।
पूर्वापरमुखाः कार्या वास्तुशास्त्रेषु गीयते ॥ 17 ॥

पुरों में देवताओं को न तो कभी उत्तराभिमुखी करें न दक्षिणाभिमुखी क्योंकि

---

1. सूत्रधार मण्डन ने कहा है— प्राकारेऽपि च कोष्ठका दशकराः सूर्येन्द्रहस्तास्तथा प्रोक्तास्तेन समैव कोणसहिता विद्याधरी मध्यगाः। (राजवल्लभ. 4, 15)

2. सूत्रधार मण्डनकृत वास्तुमण्डनं में कहा गया है कि दुर्ग, देवस्थान व चत्वर या चबूतरों पर यदि 36 हाथ की चौड़ाई हो तो वहां की लम्बाई छह हाथ अधिक रखनी चाहिए। इस प्रकार सौ पर अनुपाततः बारह हाथ अधिक रखना चाहिए—षट्त्रिंशत् प्रथमे दुर्गे देवस्थानानि चत्वरेषण्णाम्। (वि)वृद्ध्या क्रमेणैव द्वादशेह्यऽधिकशतम्॥ (वास्तुमण्डनम् 3, 13)

वास्तुशास्त्रों में यह कहा गया है कि देवता सदा पूर्वाभिमुखी अथवा पश्चिमाभिमुखी ही स्थापित होते हैं।

पुरप्राकारबाह्ये तु देवा यत्र च संस्थिताः।
नगराभिमुखास्त्वेव मध्यमे च पराङ्मुखाः॥ 18॥

पुर की दीवार या प्राकार के बाहर जो देव मन्दिरादि बनाए जाएँ उनके मुख सदा नगराभिमुखी होने चाहिए और पुर के मध्य में जो देवता मन्दिर बने हैं उनको बाह्यमुखी बनाएँ।

पराङ्मुखा स्थिता ये तु शिवः सूर्यो विधिर्हरिः।
हन्यते तत्पुरं राष्ट्रं राज्यध्वंसश्च जायते॥ 19॥

यदि शिव, सूर्य, विधि और हरि की मूर्तियाँ नगर के पराङ्मुख अर्थात् उलटी हुई या पीठ पीछे की हुई बनाई जाएंगी तो नगर, उस पुर, या राष्ट्र का हनन होगा और राज्य विध्वंस तक हो जाएगा। अस्तु, इन देवों की स्थापना नगर की ओर मुख किए हुए ही करनी चाहिए जो शुभफलदायी होती है।[1]

प्राकारान्तरे परिखप्रमाणादीनां —

प्राकारोच्छ्रयाद् द्विगुणं तदन्ते परिखात्रयम्।
अम्भो ? विमार्गशस्तादिग्विदिक्षु च जलाश्रयाः॥ 20॥

अब प्राकार के बाहर परिखाओं, खाइयों के बारे में कहता हूँ। प्राकार अर्थात् नगरकोट जितने हाथ गज ऊँचा हो उतने से दुगुने गजों की दूरी रखते हुए बाहर की ओर तीन परिखा अर्थात् खाइयाँ खोदी जाए। उनको पर्याप्त जल से पूरित कर दें और उनके द्वारा दिशा और विदिशाओं में आने-जाने के मार्ग भी जल के आश्रय के बने हों अर्थात् जल से भरी हुई खाइयों के आर-पार जाने के साधन या तो जलाश्रयी नावें हो या काष्ठ निर्मित उठाऊ पुलिया बनी हुई हों जो आवश्यकता के अनुसार आवागमन के लिए लगाई जा सके और रोकने के लिए हटाई जा सके जिससे खाई के जल को पार न किया जा सके।

कनिष्ठे च पुरे पादात् मध्यमे च पदार्धतः।
षोडशांशात् पुरे ज्येष्ठे ह्यतिरिक्ते च बाह्यतः॥ 21॥

कनिष्ठ पुर में एक चौथाई, मध्यम पुर में आधा और ज्येष्ठ पुर में पूरा ही बाहर की ओर अतिरिक्त भाग रखें।

---

1. राजवल्लभ में भी यही मत है— ब्रह्मा विष्णुशिवेन्द्रभास्करगुहाः पूर्वापरास्याः शुभाः प्रोक्तौ सर्वदिशामुखौ शिवजिनौ विष्णुर्विधाता तथा। चामुण्डा ग्रहमातरो धनपतिर्द्वैमातुरो भैरवो देवा दक्षिणदिङ्मुखाः कपिवरो नैर्ऋत्यवक्त्रो भवेत्॥ (राजवल्लभ. 4,13) अग्निपुराण में भी मंदिर नगरोन्मुखी बनाने का उल्लेख है।

प्रतोली राजगेहाग्रे राजमार्गस्तदग्रतः।

विस्तीर्णा विंशतिकरैर्द्विरष्टद्वादशाधमा॥ 22॥

राजभवन के आगे बनी प्रतोली अर्थात् बड़ी पोल से जाने वाला राजमार्ग आगे से 20 गज चौड़ा हो तो ज्येष्ठ, 16 गज चौड़ा हो तो मध्यम और 12 गज चौड़ा हो तो कनिष्ठ कहा गया है।

हट्टश्रेणिस्ततः कार्या षोडशांशेन मार्गतः।

बलिकर्मसमस्तानां हट्टोपरि गृहोत्तमम्॥ 23॥

इसके बाद, राजमार्ग पर दुकानों की कतारें बनानी चाहिए जो राजमार्ग के 16वें भाग की चौड़ाई जितनी सड़क से दूरी पर हों। इन हाटों अर्थात दुकानों के ऊपरी भागों पर समस्त कर्मों के लिए उत्तम गृहों (कार्यशालाएँ) को बनाएँ।

विदिशासु पुरं कार्यं जगत्यस्त्रिगुणं शुभम्।

युग्मगृहाश्च कर्त्तव्याः पक्षयोश्चैव सन्मुखाः॥ 24॥

पुर अर्थात नगर की विदिशाओं में इससे भी अर्थात् सोलवें भाग की चौड़ाई से भी तीन गुणी चौड़ाई की शुभ जगती अर्थात् चबूतरियाँ बनाएँ जिनके दोनों पक्षों पर अर्थात आजू-बाजू पर, आमने-सामने युग्म भवन होने चाहिए।

प्रासादस्य प्रमाणेन पादोनेनाथवोच्यते।

प्रासादार्धात्तु कर्तव्या ज्येष्ठ-मध्य-कनिष्ठिकाः॥ 25॥

प्रासाद अर्थात् भवन के प्रमाणानुसार उन्हें प्रासाद के प्रमाण के बरावर ज्येष्ठ, प्रासाद के प्रमाण के एक पाद कम अर्थात् पौन भाग मध्यम और प्रासाद प्रमाण का आधा कनिष्ठ को रखें।

एकभौमा द्विभौमा वा शाला निर्गमभूषिता।

मत्तवारणसंयुक्ता निर्गताश्चित्रशालिकाः॥ 26॥

जगत्यग्रे वामनं स्याद् भिट्टं तद्भुवि संस्थितम्।

महोत्सवे च वासन्ते कुर्याद्धिन्दोलकं त्विह॥ 27॥

इन भवनों में भी एक मंजिला, दो मंजिला भवन और शाला निर्गम अर्थात रोस भी बनाएँ जिससे आने-जाने की सुविधा रहे। उस रोस पर छाया के लिए मत्तवारण भी बना हो अर्थात छज्जे हों। उन भवनों के बाहर की ओर चित्रशाला बनाएँ अर्थात् दीवारों पर चित्र बने हों।[1] जगती के आगे उससे लगी हुई छोटी भिट्ट अर्थात् भींत

---

1. प्राचीन भवनों में ऐसे चित्र आज भी देखे जा सकते हैं। चित्तौड़ दुर्ग पर कुम्भा महल, जयमल-पत्ता की हवेलियों पर इस प्रकार का चित्राङ्कन कार्य अद्यावधि शेष है। नाथद्वारा में महुआगढ़, मोतीमहल आदि

बनाएँ और किसी महोत्सव या त्योहारों के लिए आमोद-प्रमोद हेतु वहाँ हिन्दोलक[1] अर्थात् हिन्दे-झूले, डोलर इत्यादि लगाएँ (अथवा हिण्डोलक तोरण बनवाएँ)।

नृत्यशालिका: —

देवस्य परतः कार्या निगूढा नृत्यशालिकाः।
पूर्वस्यामथवाग्नेय्यां वायव्ये वारुणे शुभम्॥ 28॥

देव मन्दिर के सामने बड़ी गहरी नृत्यशालिका बनानी चाहिए। इनकी स्थिति पूर्व में, अग्निकोण में वायुकोण में या वारुण अर्थात् पश्चिम दिशा में उचित होती है।

मठस्थानं —

शेषासु ह्यप्रशस्ताश्च आग्नेय्यां सत्रमण्डपम्।
वास्तुवेदीसंस्थितं तन् मठः स्थाप्यस्तु दक्षिणे॥ 29॥

अन्य दिशाएँ उक्त नृत्यशाला के लिए अप्रशस्त कही गई है। आग्नेय कोण में यज्ञादिक सत्रों के लिए मण्डप बनाने चाहिए। जहाँ वास्तु की यज्ञ वेदी बनी हुई हों और उस के सञ्चालन का मठ अर्थात् याजक ब्रह्मचारियों के पढ़ने-रहने के आवास दक्षिण की दिशा में बनाएँ।

गृहं पञ्चारिकायुक्तं मैत्रस्थानसमाश्रितम्।
यतिध्यानालयं कुर्यात् [2]प्रलीना यत्र शासने॥ 30॥

वहाँ गृह पञ्चारिका युक्त अर्थात् उपयुक्त आकार का पञ्चायत घर बनाएँ तथा वह मैत्र स्थान या पद के समाश्रित कहा है अर्थात् नगर की चौपाल (मैत्रस्थान) से लगा हुआ हो; वहीं आस-पास यतियों, साधु-महात्मा के लिए एकान्त ध्यानार्थ उपयुक्त, शान्त वातावरण वाला ध्यानालय भी बनाएँ जो शासन के प्रबन्ध से चलाया जाए।

पुरसीमान्तप्राकारे प्रतोलीहट्टमार्गयोः।
जलाश्रयं जगत्यन्ते(यत्रे!) घटिमालासमुद्भवम्॥ 31॥

और उदयपुर में बागोर की हवेली और अन्य हवेलियों के हाथी-घोड़े, छड़ीदार, वरयात्रा, कलशधारिणी रमणियों आदि के चित्राङ्कन मनोहारी दिखाई देते हैं।

1. भूलोकमल्ल सोमेश्वर ने हिन्दोलक क्रीड़ा का वर्णन किया है। अजन्ता के चित्रों में हिण्डोल क्रीड़ा के चित्र बने हैं। ये वसन्तोत्सव की वेला में होती थीं— ऋतुराजे परिप्राप्ते वसन्तेति मनोहरे। आन्दोलने प्रकुर्वीत पृथुसम्बद्ध्यान्विताम्॥ महता तूर्यघोषेण वन्दीवन्देन वन्दितः। गीतवाद्यविनोदेन विप्राशीर्भिरष्टुतः॥ आरोहेच्चतमान्दोलनं प्रेयसीभिः समन्वितः॥ स्तूयमान्वस्तदा राजा राजते देवराजवत्। सन्तर्प्य प्रियै (मुखे ताम्बूलं) वस्त्रविभूषणैः॥ ब्राह्मणान्गायकादींश्चैतत् सर्वान्वितसर्जितः। ततः कान्ताजनैः सार्ध क्रीडादान्दोलकैर्नृपः॥ (मानसो. 5, 3, 183-187)
2. 'प्रलीना' जिसमें घला मिला हो; 'यत्र' जहाँ शासन भी हो।

इसी तरह शासन की ओर से और भी व्यवस्थाओं का वर्णन है। नगर के सीमान्त या दीवारों, परकोटों के पास, प्रतोली या पोलों-दरवाजों के पास, हट्टमार्गयो- बाजारों के मार्गों के पास जगत्यन्ते- चबूतरी के अन्त में जलाश्रय बनाए जाने चाहिए और उन पर जलोत्थान के लिए घटिमाला[1] (रहट अथवा नेज-डोरी गिरगिड़ी) की व्यवस्था होनी चाहिए।

तत्र मण्डपिकादीनां —

क्रय्यवस्तुयुतौकश्च तदग्रे विक्रयादिकम्।
यतश्चागम्यते लोकैर्वर्तते जनसङ्कुलम्॥ 32॥

(अब व्यापार मण्डी की व्यवस्था के बारे में कहते हैं) जहाँ मण्डियों में क्रय वस्तु अर्थात् सामान के क्रय-विक्रय के निमित्त लोगों का आना-जाना लगा रहे और भीड़-भाड़ बनी रहती हो [वहाँ उपर्युक्त जलस्रोतादि के प्रबन्ध में कमी नहीं रहनी चाहिए]।

स्वर्णकारं सुगन्धं च गन्धिकं च तृतीयकम्।
दन्तकर्म धान्यगृहमेतत्कुर्यात्तु पूर्वतः॥ 33॥

इसी तरह मण्डी की व्यवस्थाओं में स्वर्णकारों-सर्राफों की दुकानें, तथा

---

1. उपनिषदों में रहट का वर्णन मिलता है, 906 ई. के आसपास हुए सिद्धर्षि ने 'उपमितिभावप्रपञ्चकथा' में रहट का वर्णन किया है तथा 10वीं सदी में ही जालोर में लिखित 'कुवलयमाला' में रहट का उल्लेख मिलता है, वहां जन्मचक्र को रहट के उपमान के साथ समझाया गया है। आद्य शङ्कराचार्य ने छान्दोग्योपनिषद के भाष्य और अज्ञानबोधिनी ग्रन्थ में 'घटीयन्त्रकूपे' लिखकर इस यन्त्र के आठवीं सदी में प्रचारित होने का सङ्केत दिया है। 'प्रबन्धचिन्तामणि' में अरघट्टघटीयन्त्र नाम से उल्लेख मिलता है। रहट का प्राचीनतम विवरण विनयपिटक पर समन्तपादिका टीका में उपलब्ध होता है, जबकि चुल्लवग्ग में तुलम्, करकटकम्, चक्कवट्टकम् नाम से सिंचाई के यन्त्रों का सङ्केत मिलता है। दूसरी सदी में हुए विष्णु शर्मा ने 'पञ्चतन्त्र' तथा इसके प्राचीन पाठ 'तन्त्राख्यायिका' में भी रहट का वर्णन एक मेंढक व सांप के आख्यान के साथ हुआ है। बारहवीं में पूर्णभद्र द्वारा लिखित 'पञ्चाख्यानक' में भी रहट का जिक्र है, यह ग्रन्थ मेवाड़ में लोकप्रिय था और महाराणा उदयसिंह के शासनकाल में चित्तौड़ में इसकी प्रतिलिपि तैयार हुई थी। इसी प्रकार हर्षचरित, कादम्बरी में क्रमशः उद्घाटघटी, चूनम नाम से रहट का उपयोग हुआ है, ये मालवा-मेवाड़ में लोकप्रिय थे। 'विक्रमाङ्कदेवचरित' में 'घटियन्त्रगुणोपम' कहकर इसे उपमेय रूप में दर्शाया गया है। हलायुध के 'अभिधानरत्नमाला' में नहरों के पानी का उत्थान करने वाले एक साधन के रूप में रहट का उल्लेख किया गया है जिस पर शब्दकोशकार मोनियर विलियम ने अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया है। मेवाड़ की सीमा पर मन्दसौर में यशोधर्मन के 510 ई. के अभिलेख में वहाँ खुदवाए गए कूप पर निरन्तर जलोत्थान के लिए प्रयुक्त यन्त्र के रूप में मालाकार जलयन्त्र का प्राचीनतम उल्लेख है जबकि रहट के साथ खेतों के दान का प्रथमतः उल्लेख वीरपुरा, उदयपुर के 1185ई. के ताम्रपत्र में है जिसमें गुजरात के भीमसिंह के सामन्त अमृतपाल द्वारा लसाड़िया गाँव में अरहट के साथ भूमिदान का अहद है। (कला की कालकथा : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', रहट प्रकरण)

गन्धी- अत्तारों की दुकानें और गन्ध-मसालों की दूकानें, हाथी-दांत के कारीगर, चूड़ीगरों आदि की दुकानें, धान्यगृह अर्थात अनाज, गेहूँ, तिलहन-दलहन आदि जिंसों के भण्डारों की व्यवस्था भी जरूरी है। वहाँ भी पहले बताई, वैसी ही जल आदि की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

ताम्बूलफलसङ्कीर्णं पुष्पमालादिसङ्कुलम्।
राजद्वाराग्रतश्चैव यतः स्याच्च जनाकुलम्॥ 34॥

इसी प्रकार राजद्वारों के आगे भी जहाँ लोगों की भीड़-भाड़ बनी रहती है, वहाँ भी पनवाड़ियों-तम्बोलियों की दुकानें, फल वाले, पुष्प-मालादि के लिए मालियों की दुकानों का सङ्कुल अर्थात् समूह रूप में विपणन केन्द्र होना चाहिए।

मञ्जिष्ठरङ्गशोभाढ्यं नारिकेलसमाकुलम्।
त्रिगणोपस्कराद्यं च राजद्वारोत्तरे शुभाः॥ 35॥

इसी तरह राजद्वार के उत्तर की दिशा में में मञ्जिष्ठ या मंजिठे के रंग बनाने वाले रङ्गरेजों, नारियल के भण्डारों के व्यापारी तथा सांसारिक जीवन में धर्म, अर्थ और काम— त्रिगणों के काम में आने वाले पदार्थ, उपस्करों की दुकानों की व्यवस्था भी शुभ कही है।

आयसोपस्करं सर्वं शस्त्रादि विविधं तथा।
व्यजनच्छत्रमायूरं शाश्वतं दक्षिणे शुभम्॥ 36॥

इसी तरह राजद्वार के दक्षिण की ओर के विपणन केन्द्र में लोहादि धातु के उपकरणों, वस्तुओं के व्यापारियों की दुकाने और सभी प्रकार के विविध शास्त्रादि के व्यापारियों की दुकानें— व्यजन, पङ्खे-बीजणे, छत्र, चामर, मक्खी-मच्छर हटाने की चँवरियाँ आदि के विक्रेताओं की स्थायी दुकानें बनी हुई शुभ होती हैं।

ईशाने च वस्त्रहयं पट्टिनेत्रपट्टाद्यकम्।
स्वल्पवस्त्राद्याग्नेय्यां च वस्त्रबन्धस्तदग्रतः॥ 37॥

राजद्वार के ईशान कोण की ओर के विपणन केन्द्र में कपड़े के व्यापारियों या बजाजों की दुकानें और घोड़े के गजगाव-झूल, झीण आदि वस्त्र और काठी तथा लगाम, (पट्टिनेत्रपट्टदिकं) की दुकानों के व्यापारियों की स्थिति उचित है। राजद्वार के आग्नेय दिशा की ओर छोटे वस्त्रों की व्यापारियों तथा वस्त्रों की-बन्धनी के रङ्गरेज-बनारा आदि और दर्जी आदि की दुकानें होनी चाहिए।

रक्तकाद्युत्तरे शस्तं कृष्णरङ्गादि दक्षिणे।
पूर्वतः श्वेतवस्त्राद्यं राजवेश्माग्रकल्पितम्॥ 38॥

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि राजद्वार के उत्तर की ओर लालरङ्ग से कपड़ों की रङ्गाई करने वालों के मोहल्ले या दुकानें होना ठीक है और काले रङ्ग से कपड़ों की रङ्गाई करने वालों के मोहल्ले व दुकानें दक्षिण दिशा में प्रशस्त मानी है। सफेद वस्त्रों के व्यापारियों के बाजार, मोहल्ले व दुकानें पूर्व दिशा में होना प्रशस्त कहा है, जिसे राजभवन के आगे की ओर कल्पित किया जाएगा।

अष्टादशानां धान्यानां सर्वदिक्षु च विक्रयः।
ताम्बूलानां च पूगानां विक्रयो देवताग्रतः ॥ 39 ॥

नागरिकों के लिए अठारह प्रकार के धान्यों के क्रय-विक्रय की दूकानें नगर की सभी दिशाओं के बाजारों में, सर्वत्र होनी चाहिए। पान वालों या पनवाड़ियों-तम्बोलियों की दूकानें व सुपाड़ी बेचने वाले की दुकानें देवताओं के मन्दिरों के आगे लगे बाजारों में होनी चाहिए।

(तां)दलांक्ष ?[1] चित्रलेखाद्या गृहेषु पुरवासिनाम्।
छिंपिका रजकास्त्रैणाः स्वदेवादिपुरे स्थिताः ॥ 40 ॥

पुरवासियों की सुविधा के लिए (तलारक्ष या लक्षकार-लखारे), चित्रकार-चितारे, छीपा, रजक-धोबी आदि की दुकानें उनके अपने-अपने (पुरे) मोहल्लों में ही उनके देवालयों सहित होनी चाहिए।

वर्णादीनां निवेशनं —

ब्राह्मणाः पूर्ववास्तव्याः क्षत्रियाश्चैव दक्षिणे।
प्रशस्ताश्चोत्तरे शूद्रा वैश्या मध्ये च सङ्कुलाः ॥ 41 ॥

नगर में चारों वर्ण के समाजों की बस्तियों की भी समुचित व्यवस्था होनी ही चाहिए जैसे- ब्राह्मणों की ब्रह्मपुरी राजभवन के पूर्व दिशा के नगर भाग में हो, क्षत्रियों की हवेलियाँ दक्षिण के नगर भाग में, शूद्रों के मोहल्ले उत्तर के भाग में बसाने चाहिए और वैश्यों के आवास नगर के भीड़ भरे मध्य भाग में निवेशित करने चाहिए।

पुरे पुरे च विप्राक्ष क्षत्रिया वैश्यशूद्रकाः।
तद् बाह्यतस्तथा चान्यास्तथा स्थपतिसङ्कुलाः ॥ 42 ॥

---

1. 'तलारक्ष' इति स्यात्। इस ग्रन्थ की रचना के समय तक नगरों में तलारक्ष का पद होता था। चीरवा के 1273 ई. के अभिलेख में तलारक्ष के रूप में योगराज के पुत्र पमराज का नाम आया है, योगराज का चौथा पुत्र क्षेम चित्तौड़दुर्ग का तलारक्ष था : श्रीपद्मसिंह भूपालयोगराजस्तलारताम्। नागह्रदपुरे प्रापपौर प्रीति प्रदायकः॥ क्षेमस्तु निर्मित क्षेमाश्चित्रकूटे तलारताम्। राज्ञः श्रीजैत्रसिंहस्य प्रासादादापदुत्तमात्॥ (वियना ऑरियण्टल जर्नल जिल्द 21, पृष्ठ 155-162 एवं एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द 27, पृष्ठ 285-292) इसी शिलालेख में भुवनदेव का नाम भी आया है।

अलग-अलग मोहल्लों में (यथा- गुर्जरपुरा, तेलीपुरा आदि) ब्राह्मणों की, क्षत्रियों की, वैश्यों की और शूद्रों की बस्तियाँ साथ हो परन्तु इन मोहल्लों से बाहर अन्य स्थपति सङ्कुल अर्थात् कारीगरों के समूह व कारखाने होंगे।

विप्र-क्षत्रिय-वैश्यानां प्राकारा वै निवासिनाम्।
वणिक् कर्मकराणां च मध्यानां च सुखावहा: ॥ 43 ॥

नगर व्यवस्था में यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि विप्र, क्षत्रिय और वैश्यों की बस्तियाँ नगर के परकोटे की तरह बनी हो और वणिकों की तथा कारीगरों की बस्तियाँ इनके बीच में बनी हो तो सुखदायी होती है।

विदिक्षु दिक्षु वै कार्या नगरस्वस्तये यथा।
अष्ट$_{8}$ द्विरष्ट$_{16}$ द्वात्रिंश$_{32}$ दधमा मध्यमोत्तमा: ॥ 44 ॥
चतुर्वर्णाश्च प्रकृतीरेकैकेषु पुरेषु च।
सर्वत्र वासयेच्चैव नागरांश्च सुखावहान्॥ 45 ॥

इन सभी बस्तियों को सभी दिशाओं और विदिशाओं में निर्देशानुसार ही नगर के स्वस्ति अर्थात् भलाई के लिए बसाना आवश्यक है। नगर में चारों वर्णों के पुर अर्थात् मोहल्ले भी क्रमशः आठ-आठ की संख्या में हो तो अधम, सोलह-सोलह हो तो मध्यम और तीस-तीस हो तो उत्तम माने जाते हैं। इस प्रकार से वर्णानुसार बस्तियों का निवेशन नागरिकों के लिए सुखद होता है।

पूर्वे ब्राह्मणलोकाश्च क्षत्रियाश्चैव दक्षिणे।
निवश्याश्चौत्तरे शूद्रा: पश्चिमे तु जलाश्रया: ॥ 46 ॥

ब्राह्मणों की बस्तियाँ पूर्व की ओर, क्षत्रियों की बस्ती दक्षिण, शूद्रों की बस्ती उत्तर की ओर हो तथा पश्चिम दिशा की ओर जलाशय बनाएँ।

पूर्वयाम्योत्तरे शस्तं हट्टमार्गादिचत्वरम्।
ईशाने शिल्पिन: सर्वे रजकाश्छिंपका: परम्॥ 47 ॥

पूर्व दिशा, दक्षिण दिशा और उत्तर दिशा की ओर हाट-बाजार व मार्ग, चत्वर-चौक आदि प्रशस्त माने गए हैं। ईशान कोण की दिशा में समस्त शिल्पियों की, धोबियों, रङ्गरेजों, छीपों की बस्तियाँ ठीक रहती हैं।

चर्मकाराश्च वरुटा आग्नेया दिशमाश्रिता:।
नैर्ऋत्ये शोण्डिका ज्ञेया वायव्ये तन्तुवायका: ॥ 48 ॥

इसी प्रकार चर्मकारों और मोचियों की तथा वरुटा-म्लैच्छ जातियों के लोगों की बस्तियाँ अग्नि कोण में बसाई जानी चाहिए। नैर्ऋत्य कोण में कलालों या शराब

बनाने-बेचने वालों की बस्तियाँ व वायव्य कोण में बुनकर-जुलाहों-सालवियों की बस्तियाँ बसानी चाहिए।

पुरसुरक्षार्थं प्राकारोपरि यन्त्रनिवेशनं —

> **पुरमध्ये च सर्वत्र प्राकारस्य तथोपरि।**
> **स्थापयेत्सूत्रयन्त्रं च विविधं कर्मरौद्रकम्॥ 49॥**
> **यन्त्राणि चित्ररूपाणि विश्वकर्मेरितानि च।**

अब नगर की सुरक्षा व्यवस्था के बारे में कहता हूँ। नगर के मध्य में तथा परकोटे के ऊपर भी सर्वत्र तरह-तरह के भयानक, रुद्र कर्म करने में समर्थ सूत्र यन्त्र अर्थात् गोफण अथवा यन्त्रों के सूत्र में रखना अर्थात् परकोटे आदि पर क्रमबद्ध रखना चाहिए। तरह-तरह के विचित्र रूप के यन्त्र विश्वकर्मा ने बनाए हैं।[1]

नाना यन्त्रनामानि —

> **तेषां नामानुक्रमं च कथये तव साम्प्रतम्॥ 50॥**
> **प्रथमं भैरवं यन्त्रं द्वितीय चैव भास्करम्।**
> **गौरीयन्त्रं चतुर्थस्यात्तृतीयं महिषासुरम्॥ 51॥**
> **वाराहं पञ्चमं चैव महायन्त्रं च षष्ठकम्।**

अब मैं उन यन्त्रों के नामों को अनुक्रम से कहता हूँ। जो परकोटे पर नगर सुरक्षा में बड़े महत्व के हैं इनमें प्रथम है भैरव यन्त्र, द्वितीय भास्कर यन्त्र, तृतीय महिषासुर यन्त्र, चतुर्थ गौरी यन्त्र, पञ्चम वाराह यन्त्र और षष्ठ महा यन्त्र है।[2]

---

1. मत्स्यपुराण में कहा गया है— यन्त्रायुधाट्टालचयोपपन्नं समग्रधान्योषधिसम्प्रयुक्तम्। वणिग्जनैश्चावृतमावसेत दुर्गे सुगुप्तं नृपतिः सदैव॥ (मत्स्य. 217, 87) तुलनीय— दुर्गे च यन्त्राः कर्तव्या नाना प्रहरणान्विताः। सहस्रघातिनो राम तैस्तु रक्षा विधीयते॥ (विष्णुधर्मोत्तर 2, 26, 27) राजवल्लभ. में कहा गया है— यन्त्राः पुराणामथ रक्षणाय संग्रामवह्न्यम्बुसमीरणाख्याः। विनिर्मितास्ते जयदा नृपाणां भवन्ति पूज्याः सुरया च मांसैः॥ (राजवल्लभ. 4, 21)
   पूर्वकाल में विश्वकर्मा के बनाए यन्त्रों का वर्णन वास्तुमण्डनम् में आया है। प्राचीनकाल में जबकि देवताओं और असुरों के बीच सङ्ग्राम हुआ, देवताओं के विजय के लिए शङ्कर ने जिन यन्त्रों का प्रयोग किया, वे विश्वकर्मा ने बनाए थे। रक्तबिन्दु ने जब पाषाण यन्त्रों से देवसेना को छिन्न-भिन्न करने का प्रयास किया तब देवताओं ने उक्त शिवोक्त विश्वकर्मणीय यन्त्रों का प्रयोगकर दैत्यों पर विजय को प्राप्त किया था। ये यन्त्र चौरासी प्रकार के हैं। इनमें से वायव्य और जलयन्त्रों के नौ-नौ भेद हैं। अग्नियन्त्र के छह भेद है जबकि संग्राम यन्त्र के साठ भेद, इस प्रकार कुल चौरासी प्रकार के यन्त्र कहे गए हैं— देवाऽसुरेणे दैत्यैः प्रबलैर्निर्जिताः सुराः। ततो यन्त्राः गिरीशेनगदिता विश्वकर्मणेः॥ भिन्नास्ते यन्त्रं पाषाणै रक्तबिन्दु विवर्जिताः। छातुनरहिता दैत्यास्तदा देवैर्विनिर्जिता॥ चतुरशीति यन्त्रेषु नव वायोर्जलस्य च। अग्नियन्त्रस्य षड्भेदाः षष्टि सङ्ग्रामयन्त्रजाः॥ (वास्तुमण्डनम् 3, 37-39)
2. आकाशभैरवकल्प में दुर्ग की दीवारों को नाभिमात्र गहरा छिद्र कर पङ्क्तिवार क्रमशः इसकी शिलाओं पर

अचिन्त्यमुद्गराघातं ज्वालावलि शराकुलम्॥ 52॥

ये सभी छह प्रकार के यन्त्र बड़े ही अकल्पनीय आघात करने वाले मूसल, मुद्गर या गोलों को शरयुक्त[1] शृङ्खलाबद्ध अग्नि विस्फोटों और ज्वालाओं के साथ छोड़ने वाले भयानक हथियार हैं।[2]

भैरव यन्त्र, नाग यन्त्र, त्रिशूल यन्त्र, रज्जु यन्त्र, मौसल यन्त्र, विषकण्टक यन्त्र, शूलमुख यन्त्र और धनुर्यन्त्रादि को स्थापित करने का उल्लेख है— नाभिमात्रे ततस्सालवलये पङ्क्तिशः क्रमात्। शिलासु भैरवयन्त्रं नागयन्त्रञ्च मौसलम्॥ विषकण्टकयन्त्रञ्च शुक्लं शूलमुखं तथा॥ धनुर्यन्त्रादियन्त्रादि व्यस्तमिति यन्त्रकम्॥ (आकाश. साम्राज्यदीपिका, अष्टविध सालदुर्गकथनं, 17-19) सूत्रधार मण्डन ने आठों यन्त्रों के नाम बताए हैं जो क्रमशः भैरव यन्त्र, चन्द्र यन्त्र, सूर्य यन्त्र, भीमगज यन्त्र, युग्म यन्त्र, शिखी यन्त्र, यमदण्ड यन्त्र व महाभैरव यन्त्र है। इनका प्रमाण इस प्रकार होगा— हस्ता अष्ट च भैरवो नवकरश्चान्द्रो दशाढ्यो भवेद् रुद्रोर्भीमगजोऽपि भास्करकरैर्युग्मं च विश्वैः शिखी। प्रोक्तोऽसौ यमदण्ड एव मुनिभिस्तिथ्या महाभैरवो ...॥ (राजवल्लभ. 4, 22)

1. कुम्भाकाल में अग्निवर्षक बाणों का उल्लेख इतिहास में आया है। वर्ष 1446-68ई. में मालवा में खिलजी शासन में लिखित 'मआसिरे-महमूदशाही' में बान नामक आग्नेयास्त्रों का वर्णन मिलता है। माण्डलगढ़ के निकट कुम्भा की सेना व सुल्तान महमूद खिलजी की फौजों के बीच 1443ई. में जो मुठभेड़ हुई, उसमें कुम्भा ने नैफ्ता की आग 'आतिशे-नफ्त' और तीरे हवाई का प्रयोग किया था। ऐसा ही एक उल्लेख इन दोनों फौजों के बीच 1456-57ई. में हुए एक और टकराव के दौरान भी मिलता है। (मआसिरे-महमूदशाही पृष्ठ 57-58)

   इस समय प्रचलित आतिशे नफ्त और तीरे-आतिशी सम्भवतः यहां वर्णित अग्नियन्त्र ही थे। इनका विस्तार से वर्णन वास्तुमण्डनं के तीसरे अध्याय में आया है। (विशेष द्रष्टव्य- कला की कालकथा में तीर से तोप तक के यन्त्रों का वर्णन)

   ऐसे अग्निवर्षक बाणों का उल्लेख आकाशभैरवकल्प में आया है जो आकाश में भयङ्कर गर्जना अग्नि की चिनगारियाँ छोड़ते थे। (आकाश. साम्राज्यलक्ष्मीपीठिक पटल 107, 29-31) इसी प्रकार मनु ने धर्मयुद्ध में अग्नि लगाने वाले बाणों के प्रयोग का निषेध किया है। (मनु. 10, 83)

2. यहाँ ग्रन्थकार ने निश्चय ही आग्नेयास्त्रों का वर्णन किया है और बारुदी प्रयोग का सङ्केत भी है। तोप को परवर्ती यन्त्र कहा जाता है, इतिहासकारों की यह धारणा अब मिथ्या सिद्ध हो चुकी है कि बारुद का आविष्कार 14वीं सदी में बर्थोल्ड श्वार्ज नामक पादरी ने किया था। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में कहा है कि बारुद का आविष्कार सम्भवतः चीन अथवा भारत में हुआ। (एनसाइक्लोपीडिया. पृष्ठ 5) यह मान्यता भी है कि तोप शब्द संस्कृत की तुप तुफ़ पीडार्थक धातु से निष्पन्न है और उसका भारतीय नाम नालिकास्त्र रहा है और बारुद को भारतीय ग्रन्थों में अग्निचूर्ण (शुक्रनीति), शुष्कमदिरा (शतघ्न्या शुष्कमदिरागोलकेन समन्विता। गर्गसंहिता 10, 33, 38-39 व 50), रञ्जक (वाशिष्ठ धनुर्वेद श्लोक 75) और जामदग्न्य चूर्ण (राजराजेश्वर परशुराम ग्रन्थ में उद्धृत जामदग्न्य धनुर्वेद) मानसोल्लास में पाषाण वर्षक व अग्नि लगाने वाले यन्त्रों से आक्रमण करने का निर्देश मिलता है— आरभेत ततो युद्धं यन्त्रपाषाणपातकैः। अनलं चानुकूलेन वायुना समुदापयेत्॥ पाषाणपातिभिर्यन्त्रैर्दाहनाद् दहनेन वा॥ (मानसो. 1, 2, 20, 1070-73) इसी प्रकार भुवनदेव के मुख्य उत्सकारक समराङ्गणसूत्रधार में कहा गया है कि दुर्ग की रक्षा के लिए अग्नि इत्यादि की सहायता से धनुष, शतघ्नी और उष्ट्रग्रीवादि यन्त्रों का निर्माण करना चाहिए— ये चापाद्या ये शतघ्न्यादयोऽस्मिन्नुष्ट्रग्रीवाद्याश्च दुर्गस्य गुप्त्यै। ये क्रीडाद्या क्रीडनार्थं च राज्ञां सर्वेऽपि स्युर्योगतस्ते गुणानाम्॥ (समराङ्गण. 31, 10)

अक्षयं च दृढं युक्त्या नैकढिल्लिकसङ्कुलम्।
एभिर्यन्त्रैः समायुक्तं प्राकारं भीमरूपकम्॥ 53॥

ये इतने दृढ़ और अक्षय है कि इनकी गर्जना अनेक ढोलों की गर्जना से भी अधिक घनघोर (सङ्कुल) होती है। अस्तु, इन जैसे यन्त्रों से, तोपों से सुसज्जित प्राकार अर्थात् नगर परकोटा बहुत ही भयानक परिदृश्य उत्पन्न करने वाला ही सिद्ध होता है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्त श्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां महाराजाधिराजपुरनिवेशाधिकारो नाम द्वासप्ततितमं सूत्रम्॥ 72॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में महराजाधिराज पुर निवेश अधिकार नामक बहत्तरवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 72॥

पुरलक्षणं त्रिसप्ततितमं सूत्रम्॥ 73॥

विश्वकर्मोवाच —

वक्ष्ये पुरस्य चाकारं साम्प्रतं लक्षणं पुनः।
प्रशस्तं दोषरहितं पुरनामानि विंशतिः$_{20}$॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं उन पुरों, नगरों के आकार और लक्षणों के बारे में कहता हूँ जो प्रशस्त है और दोष रहित हैं, उनके बीस नाम हैं।

विंश पुरनामानि —

माहेन्द्रं सर्वतोभद्रं सिंहावलोकवारुणे।
नन्द्यावर्तं च नन्दाख्यं पुष्पकं चैव स्वस्तिकम्॥ 2॥
पार्श्वदण्डं जयन्तं च श्रीपुरं रिपुमर्द्दनम्।
स्त्राहं दिव्यमुत्तरं च धर्मं कमलशक्रदे॥ 3॥
महाजयं पौरूषं च साम्प्रतं कथितं बुधैः।
पुराणां विंशतिश्चैव ख्याता भुवनमण्डनम्॥ 4॥

इन पुरों में (1.) माहेन्द्र, (2.) सर्वतोभद्र, (3.) सिंहावलोकन, (4.) वारुण, (5.) नन्द्यावर्त, (6.) नन्द (नन्दाक्ष), (7.) पुष्पक, (8.) स्वस्तिक, (9.) पार्श्वदण्ड, (10.) जयन्त, (11.) श्रीपुर, (12.) रिपुमर्दन, (13.) स्त्राह, (15.) दिव्य, (15.) उत्तर (16.) धर्म, (17.) कमल (18.) शक्रद, (19.) महाजय और (20.) पौरुष— ये नाम विद्वानों ने अब तक कहे हैं। इस तरह से पुरों की

विंशति भुवन मण्डल स्वरूप में विख्यात है।[1]

नामस्य स्वरूपाणि —

माहेन्द्रं चतुरश्रं च सर्वतोभद्रमायतम्।
सिंहावलोकनं वृत्तं वृत्तायतं च वारुणम्॥ 5॥

इनमें से माहेन्द्र नामक नगर चौकोर होता है और सर्वतोभद्र आयत रूप में होता है। सिंहावलोकन पुर वृत्तरूप में होता है और वारुण पुर वृत्तायत रूप का होता है।

मुक्तकोणं च नन्दाक्षं(ख्यं!) नन्द्यावर्तं च स्वस्तिकम्।
पुष्पकमष्टदलाख्यं स्वस्तिकं तु चाष्टाश्रकम्॥ 6॥

नन्दाक्ष पुर मुक्तकोण युक्त होता है और नन्द्यावर्त पुर, स्वस्तिक पुर, पुष्पक पुर, आठ पंखुड़ियों वाला और स्वस्तिक पुर आठ भुजाओं वाला होता है।

यवाकृति जयन्तं च दण्डं स्यादतिदीर्घकम्।
श्रीपुरं चैकप्राकारे द्वाभ्यां तु रिपुमर्द्दनम्॥ 7॥

इसी प्रकार जयन्त पुर का आकार यव की आकृति जैसा होता है। जयन्त पुर

---

1. मयमतं, मानसारादि में भी नगरों का वर्णन है। मानसार का नगरादि वर्णन तुलनीय है—नगरादि संग्रामं च प्रोक्तदुर्ग च सत्तमम्। राष्ट्रमध्ये नदीतीरे बहुपुण्यजनावृतम्॥ मध्ये राजयुतं चैव नगरं कृतमिष्यते। तत्रागते नगर्यन्तं यदि विष्ण्वालयं भवेत्॥ राजधानीति तन्नाम विद्वद्भिर्वक्ष्यते सदा। चतुर्दिक्षु चतुर्द्वारं गोपुरैश्य समन्वितम्॥ रक्षागृहैः समाकीर्ण विष्वक्सेनालयान्वितम्। वणिग्भिश्च समाकीर्णमापणैश्च समावृतम्॥ अन्तर्बहिर्जनैः पूर्ण नानादेवालयैरपि। केवलं नगरं प्रोक्तं य तत् तन्त्रपारगैः॥ काननोद्यानसंयुक्तं नानाजनगृहान्वितम्। क्रयविक्रयविद्भिश्च वैश्यरवेण संयुतम्॥ देवसप्तसमायुक्तं पुरमेतत्प्रकथ्येते। अस्यान्ते राजनिलय नगरीति तदिष्यते॥ नदीपर्वतत्प्रान्ते च शूद्रालय समन्वितम्। महाप्रावृतसंयुक्तं खेटमुक्तं पुरातनैः॥ परितः पर्वतैर्युक्तं नानाजातिगृहैर्वृतम्। सर्वप्रचारसंयुक्तमेतत् खर्वटमीरितम्॥ खेटखर्वटयोर्मध्ये सर्वमर्त्यालयान्वितम्। वप्राभावस्वत्वे तु तत्तु कुब्जकमुदाहृतम्॥ अब्धितीरप्रदेशे तु नानाजातिगृहैर्वृतम्। वणिग्जातिभिराकीर्ण क्रयविक्रयपूरितम्॥ रत्नैर्द्वीपान्तरानीतैः क्षौमैः कर्पूरकादिभिः। एतत्पत्तनमाख्यातं वप्रायतसमन्वितम्॥ अन्यभूपालभूम्यन्ते युद्धारम्भक्रियान्वितम्। सेनानामयुतानां च पृतनाभिः समन्वितम्॥ तदेतच्छिविरं प्रोक्तं तन्त्रविद्भिः पुरातनैः। नानाजनैश्च सम्पूर्ण भूपहर्म्येण संयुतम्॥ बहुरक्षसमोपेतमेतत्सेनामुखं भवेत्। नदीपार्श्वाद्रिसंयुक्तं भूपालालय संयुतम्॥ बहुतक्षमायुक्तं नित्यं सनृपसंयुतम्। स्थानीयं सर्वविद्वद्भिः प्रोक्तं बहुसुखावम्॥ समुद्रतटिनीयुक्तं तटिन्या दक्षिणोत्तरे। वणिग्भिः सह नानाभिर्जनैर्युक्तं जनास्पदम्॥ नगरस्य प्रतितटे ग्राहकैश्च समावृतम्। क्रयविक्रयसंयुक्तं द्रोणान्तरमुदाहृतम्॥ महाग्रामसमीपे तु क्षुल्लकग्रामसंयुतम्। तन्नगरं स्यादाश्रयाद ग्रहोरोपजीविनाम्॥ तस्मात्तु तत्र विद्वद्भिः संविद्ध तदुदीरितम्। महाराजस्य मध्ये तु गृहं तत्कोलकात्मकम्॥ द्विजाति चतुर्वर्णैर्वर्णान्तरजनैर्वृतम्। बहुकर्मकरैर्युक्तं निगमं तदुदाहृतम्॥ नद्यादिकाननोपेतं बहुतीरजनालयम्। राजमन्दिरसंयुक्तं स्कन्धावारमुदाहृतम्॥ पार्श्वे चान्यद्विजातीनां गृहं तश्चैरिकमत्तकम्। (मान. 10, 22-43)

और दण्डपुर अतिदीर्घ होते हैं। श्रीपुर के एक प्राकार, एक परकोटा होता है जबकि रिपुमर्दन पुर के दो प्राकार या दो परकोटे होते हैं।

शैलकुक्षौ तथा स्राहं दिव्यकं शैलमस्तके।

नद्युत्तरे च सौम्याख्यं सरिद्याम्ये तु धर्मकम्॥ 8॥

स्राह पुर पहाड़ी के तले में होता है और दिव्य पुर पहाड़ी के सिर पर होता है। सोम नामक पुर नदी के उत्तर की ओर तथा धर्म पुर नदी के दक्षिण में होता है।

कमलं पश्चिमे नद्या नद्याः पूर्वे तु शक्रदम्।

पौरुषं पुरुषाकारं नद्योश्चैवं महाजयम्॥ 9॥

कमल नामक पुर नदी के पश्चिम में और शक्र नामक पुर नदी की पूर्व दिशा में होता है। पौरुष नामक पुर पुरुषाकृति का और महाजय पुर नदियों के मध्य में स्थित होता है।

पुरस्य फलाफलमाह —

पुरं विंशतिसङ्ख्याकं रम्यं सुरनरोरगैः।

स्वस्तिशान्तिकरं नित्यं गो-ब्राह्मण-धराभुजाम्॥ 10॥

ये विंशति संख्यात्मक पुर सुर-नर और नाग जाति के लोगों को शान्ति और खुशहाली लाने वाले हैं और नित्य गौ, ब्राह्मण और राजाओं को सुखप्रद हैं।

माहेन्द्रं चतुरश्रं च प्रतापकीर्तिवर्द्धनम्।

वृद्धिदं सर्वतोभद्रं नित्यं तद्भद्रदशान्तिदम्॥ 11॥

सिंहावलोकनं रम्यं हरे (ते) रिपुरिषाव (त) धी(वी) ?।

वारुणे तु प्रजावृद्धिर्नन्दाख्ये नन्दनं चिरम्॥ 12॥

इनमें माहेन्द्र नामक पुर चौकोर होता है और वह वहाँ रहने वाले लोगों की कीर्ति में अभिवृद्धि का कारक होता है, उनके यशः प्रताप को बढ़ाने वाला होता है। सर्वतोभद्र नामक पुर भी सदैव शुभ होता है और रिपुओं का नाश करने वाला तथा वारुण नामक पुर प्रजा वृद्धिकारक, और नन्द नामक पुर सदा आनन्ददायी होता है।

नन्द्यावर्तं मङ्गलाख्यं त्रिदशानां च पुष्पकम्।

स्वस्तिकृत्स्वस्तिकं प्रोक्तं जयन्तं च जयावहम्॥ 13॥

नन्द्यावर्त पुर मङ्गलकारी है और पुष्पक संज्ञक पुर देवताओं को भी मङ्गलकारी कहा गया है। स्वस्तिक पुर सदा स्वस्तिकारक होता है और जयन्त नामक पुर सदा जय कराता है।

वृद्धिदं पार्श्वदण्डं च श्रीपदं श्रीपुरं तथा।
रिपुमर्द्दनं रिप्वन्तं स्राहं चैवाभयप्रदम्॥ 14॥

पार्श्वदण्ड पुर वृद्धिकारक होता है और श्रीपुर नामक तो धनलक्ष्मी श्रीप्रद ही है। रिपुमर्दन पुर शत्रुओं का नाश करता है। स्राह नामक पुर भी अभय दिलाता है।

दिव्यकं देवभवनमुत्तरं चोत्तमोत्तमम्।
धर्मं धर्मकरं नित्यं कमलं शान्तिदायकम्॥ 15॥

दिव्य पुर देव मन्दिरों-सा सुख और उत्तर नामक पुर सदा उत्तम से उत्तम सुख देता है। धर्म नामक पुर नित्य धार्मिक भाव बढ़ाता है और कमल नामक पुर शान्तिप्रद होता है।

इन्द्रराज्योद्भवं शक्रं पौरुषं भीमविक्रमम्।
महाजयं पुरं नाम सर्वदानन्दकारकम्॥ 16॥

शक्र नामक पुर इन्द्र के स्वर्ग-सा सुखदायी और पौरुष नामक पुर बड़ा पराक्रम प्रदर्शित करवाता है। महाजय नामक पुर भी सर्वदा आनन्ददायक होता है।

इत्थमाकृतयो गुणाः कथितास्तव मयाधुना।
शुभानां सुप्रशस्तानां पुराणां विंशतिस्तथा॥ 17॥

इति पुरगुणाधिकारः।

इतनी इन पुरों की आकृतियों की गुण-गाथा मैंने अभी तुमसे कही, इस तरह पुरों की यह विंशति शुभ की और सुप्रशस्तियों की वृद्धि करने वाली होती है।

इत्यमनन्तर अशुभ पुराकृतिमाह —

अग्निदं वायवं चैव शकटं युग्मशाकटम्।
वज्रं त्रिशूलमाख्यातं कर्णिकं चैव सप्तमम्॥ 18॥
एताः सप्तपुरश्चैव महोदोषभयावहाः।
तासां रूपं तथाकारं कथये तव साम्प्रतम्॥ 19॥

अब कुछ अशुभ आकृतियों के पुरों को भी बताता हूँ। इनमें 1. अग्निद, 2. वायव, 3. शकट, 4. युग्मशाकट, 5. वज्र, 6. त्रिशूल, और 7. कर्णिक— ये सातों पुर महादोष, भयकार है। इनके रूप तथा उनके आकार अब तुम्हें कहता हूँ।[1]

---

1. इसी प्रकार कहा गया है— विस्तीर्णं समाभागञ्च संस्थितं परिकीर्तितम्। चतुरस्रं चतुष्कोणं समभागं विभागतः॥ वृत्तमेतत् समाख्यातं वास्तुलक्षण कोविदैः। चतुर्भिर्विभजेत् कोणैस्तद्वास्तुवृत्तमुच्यते॥ आयतं चतुरस्रं च मध्यकोष्ठे भवेत् फलम्। यदि वर्तुलपीताभं स्थानं भद्रासनं विदुः॥ चक्रवक्रसमाकारे विजयं निम्नतोन्नतम्। निम्नता चापकृष्टा च शक्रचापस्य कीर्तिता॥ त्रिकोणं शकटाकारं तद्वास्तुकृदिहोच्यते।

अग्निदं च त्रिकोणाख्यं षट्कोणं चैव वायुवम्।
शकटं शकटाकारं युग्मं द्विशकटाकृति॥ 20॥

अग्निद नामक पुर त्रिकोणाकृति का होता है। वायुव छह कोणों की आकृति वाला होता है। शकट पुर गाड़ी के आकार का होता है जबकि युग्मशाकट पुर दो गाड़ियों की जोड़ी के आकार वाला होता है।

वज्रकं वज्रसङ्काशं त्रिशूलं त्रिशूलाकृति।
कर्णिकारं विकर्ण तु चाकाराः कथितास्तव॥ 21॥

वज्रक पुर वज्र जैसा कठोर दुःखदायक होता है और त्रिशूल पुर त्रिशूल की आकृति में बसाया हुआ होता है। कर्णिकपुर बिना कोणों का होता है— इतने इन सभी पुरों के आकारों को तुम्हें कह दिया है।

तस्य फलोच्यते —

अग्निदेऽग्निभयं घोरं वायुवं बहुक्लेशदम्।
शकटं तु पुरं चैवं प्रजाक्लेशावहं स्मृतम्॥ 22॥

अब उनके गुणों को सुनो— अग्निद पुर में सदा अग्निभय बना रहता है। वायुव पुर बहुत कष्ट देने वाला और शकट पुर में तो वहाँ की निवासी प्रजा क्लेश में बनी रहती है।

पुरे द्विशकटाकारे तस्करादि भयं भवेत्।
वज्राकृति पुरं यत्र वज्रपातस्तदोद्भवेत्॥ 23॥

युग्म शकट पुर में भी चोरों-तस्करों का भय बना रहता है और वज्राकृति पुर में भी सदा वज्रपात होते रहते हैं।

त्रिशूले च पुरे चैव सदा युद्धं समुद्भवेत्।
कर्णिकारे च दुर्भिक्षं प्रजा तत्र न नन्दति॥ 24॥

त्रिशूल पुर में सदा ही युद्ध की स्थिति बनी रहती है और कर्णिकाकार पुर में प्रायः दुर्भिक्ष-अकाल पड़ते रहते हैं और प्रजा दुःखी रहती है।

दीर्घदण्डमिति ख्यातं पवनं पवनात्मकम्॥ मुरजं मुरजाकारं बृहन्मध्यं प्रकीर्तितम्। अश्वत्थपर्णवत् कुम्भो धनुःकोणाकृतिर्धनुः॥ शूर्पं शूर्पनिभं ज्ञेयं गृहं गणितकोविदैः॥ (वास्तुरत्नावली और राजमार्तण्ड में शिल्पशास्त्र के मत से उद्धृत)

समराङ्गण में छिन्नकर्ण, विकर्ण, वज्र, सूचीख्य, वर्तुल, व्यजनाकार, धनुषाकार, द्विगुणायत, शकटद्विसमाकार, कुदिशस्थ, सर्पचक्र जैसे अप्रशस्त पुरों या अगर्हित पुरों का वर्णन मिलता है, जिनके नियोजन-निर्माण का निषेध किया गया है। (समराङ्गण, पुरनिवेश 53-54 व 67)

इत्यादिसप्तदोषांश्च वर्जयेत् पुरदोषदान्।
विंशतिः सुखदाः ख्याता दोषदाः सप्त एव च॥ 25॥

इस प्रकार उक्त सात पुरों के दोष होते हैं। अस्तु, इन आकारों में पुरों का निवेशन वर्जित जानना चाहिए। यहाँ प्रजा हितावह पुरों की विंशति और सात दोषकारक पुरों का वर्णन किया गया।

अथाकारानुसारेण पुरग्रामादीनां प्रमाणमाह —

पुरार्धेन भवेद् ग्रामो ग्रामार्धेन तु खेटकम्।
खेटकार्धेन भवेत् कूटं कूटार्धेन तु कर्वटम्॥ 26॥

अब विविध नामों के आकार प्रमाण कहता हूँ। पुर के आधे भाग पर बसी हुई बस्ती को ग्राम और ग्राम के आधे को खेटक कहा जाता है। खेट के आधे को कूट और कूट का आधा कर्वट कहलाता है।[1]

पुरे सप्दश मार्गा ग्रामो वै नवमार्गतः।
खेटके पञ्च मार्गाः स्युस्त्रिभिर्मार्गैश्च कूटकम्॥ 27॥

पुर नामक बस्ती में 17 सड़कें होती हैं जबकि ग्राम में 9 सड़कें ही होती हैं। खेटक में 5 मार्ग होते हैं और कूट में केवल 3 ही मार्ग होते हैं।

द्वौ मार्गौ कर्वटे ख्यातौ छन्दाः पञ्च प्रकीर्तिताः।
पुर-ग्राम-खेटकं च कूटं च कर्वटाभिधम्॥ 28॥

इसी प्रकार कर्वट में तो 2 मार्ग ही होते हैं। इस तरह इनके ये पाँच छन्द—पुर, ग्राम, खेटक, कूट और कर्वट नाम से बताए गए हैं।[2]

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां पुरलक्षणाधिकारो नाम त्रिसप्ततितमं सूत्रम्॥ 73॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में पुर लक्षण अधिकार नामक तिहत्तरवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 73॥

---

1. अग्निपुराण में ग्राम बस्तियों का विस्तार 100 धनुषों के बराबर कहा गया है। नगर का विस्तार उससे दुगुना अथवा तिगुना माना गया है— धनुः शतं परीणाहो ग्रामस्य तु समन्ततः॥ द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि नगरस्य च कल्पयेत्। (अग्नि. 227, 19-20)
2. समराङ्गणसूत्रधार में कहा गया है— खेटं तदर्धविष्कम्भमाहुर्ग्रामं तदर्धतः। योजनने पुरात् खेटं खेटाद् ग्रामं प्रचक्षते। गव्यूतिपरिमाणेन ग्रामाद् ग्रामं प्रचक्षते॥ द्विक्रोशाद् विषये सीमा तदर्धेन पुरस्य सा। खेटके पुरसीमार्ध ग्रामे खेटार्धतः स्मृता॥ त्रिंशद्धनूंपि विष्कम्भः पुरे दिग्वर्त्मसु स्मृतः। विंशति खेटके मार्गो ग्रामे दश च दर्शितः॥ (समराङ्गण. 10, 79-82)

वापीकूपतडादिनिर्णयो नाम चतुःसप्ततितमं सूत्रम्॥ 74॥

विश्वकर्मोवाच —

पुरस्य बाह्याभ्यन्तरे विविधाः स्युर्जलाशयाः।
वापी-कूप-तडागानि कुण्डानि विविधानि च॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि नगर के बाहर और अन्दर की ओर भी विविध प्रकार के जलाशयों की व्यवस्था होनी चाहिए, क्योंकि जैसा कहा है कि जल ही जीवन है अस्तु, वहाँ वापी, कूप, तड़ाग, कुण्ड आदि विविध प्रकार के जलस्रोत बनाएँ।[1]

दश$_{10}$ कूपाश्चतु$_{4}$र्वाप्यश्चात्वारि$_{4}$ कुण्डकानि च।
तडागाः षड्विधाश्चैवं$_{6}$ कथयाम्यपराजित॥ 2॥

हे अपराजित! अब मैं तुम्हें दस प्रकार के कूप, चार प्रकार की वापियाँ, चार प्रकार के कुण्डों और छह प्रकार के तड़ागों के बारे में कहता हूँ।

दशविध कूपमाह —

श्रीमुखो विजयः प्रान्तो दुन्दुभिश्च मनोहरः।
चूडामणिश्च दिग्भद्रो जयो नन्दश्च शङ्करः॥ 3॥
चतुर्हस्तादितो वृद्धिर्यावद्धस्तस्त्रयोदशम्।
श्रीमुखाद्याः शङ्करान्ता दश कूपाः प्रकीर्तिताः॥ 4॥

(1.) श्रीमुख, (2.) विजय, (3.) प्रान्त, (4.) दुन्दुभि, (5.) मनोहर, (6.) चूड़ामणि, (7.) दिग्भद्र, (8.) जय, (9.) नन्द और (10.) शङ्कर— ये चार गज की चौड़ाई से लेकर क्रमशः एक-एक बढ़ते-बढ़ते तेरह गज की चौड़ाई के श्रीमुखादि से शङ्करान्त दस प्रकार के कूपों के लक्षण बताए गए हैं।[2]

चतुर्हस्तः श्रीमुखः स्याद् विजयः पञ्चहस्तकः।
षड्भिर्हस्तैर्भवेत् प्रान्तो दुन्दुभिः सप्तहस्तकः॥ 5॥
मनोहरश्चाष्टहस्तश्चूडामणिर्नवकरः।
दिग्भद्रो दशहस्तश्च ह्येकादशकरो जयः॥ 6॥

---

1. आदित्यपुराण में आए इसी प्रकार के वचनों को जलाशयतत्त्व में उद्धृत किया गया हैं— सेतुबन्धरता ये च तीर्थशौचरताश्च ये। तडागकूपकर्त्तारो मुच्यन्ते ते तृषाभयात्॥ (शब्दकल्पद्रुम खण्ड 2, पृष्ठ 170) विष्णुधर्मोत्तर में कहा गया है कि जो तडाग, कूप को बनवाता है, कन्यादान करता है, छत्र, उपानह देता है वह व्यक्ति स्वर्ग को जाता है— तडागकूपकर्त्तारस्तथा कन्या प्रदायिनः। छत्रोपानहदातारन्ते नराः स्वर्गगामिनः॥ (तत्रैवोद्धृत)
2. चक्रपाणि मिश्र ने भी कहा है— श्रीमुखो विजयः प्रान्तो दुन्दुभिश्च मनोहरः। चूडामणिश्च भद्रो जयो नन्दश्च शङ्कर॥ आरभ्य यावच्चतुष्करं ते व्यासेक्रमादेकक साभिवर्द्धया। (विश्ववल्लभ 2, 14-15)

नन्दे च द्वादशकराः शङ्करे च त्रयोदश।
एवमादिगुणापेतो वृत्तकूपा दशोत्तमाः ॥ 7 ॥

इति दशकूपाः।

इनमें से श्रीमुख कूप 4 गज का चौड़ा, विजय कूप 5 गज का चौड़ा, प्रान्त कूप 6 गज का, दुन्दुभि 7 गज का, मनोहर 8 गज का, चूड़ामणि 9 गज का, दिग्भद्र 10 गज, जय 11 गज का, नन्द 12 गज का और शङ्कर 13 गज का होता है। इस प्रकार से दस वृत्त कूपों के आदि से गुणों को बताया गया है।[1]

कूपिका सफलमाह —

शेषास्तु कूपिका वत्स त्रिहस्ताश्चादिमादधः।
द्विहस्ता वै प्रशस्ताश्च कर्त्तव्याः सर्वकामदाः ॥ 8 ॥

हे वत्स! शेष तो छोटी कूपिकाएँ (कुइयाँ) कहलाती है जो 3 गज की चौड़ाई से भी कम की होती जाती हैं। इनमें 3 गज वाली, 2 गज वाली आदि कूपिकाओं में दो गज की चौड़ाई वाली कूपिकाएँ सभी काम में शुभ होती हैं। अस्तु, उन्हें कर्तव्य समझ कर बनाएँ।[2]

अथ चतुर्वाप्यः —

नन्दा भद्रा जया चैव चतुर्थी विजया तथा।
एकवक्त्रा त्रिकूटा च नन्दा नाम वरप्रदा ॥ 9 ॥

चार प्रकार की वापी या बावड़ियाँ होती हैं— (1.) नन्दा (2.) भद्रा (3.) जया (4.) विजया। इनमें से 'नन्दा' वापी एकमुखी होती है और तीन ओर से कूट अर्थात् बन्द होती है। इस तरह नन्दा नाम की वापी नामानुसार वरप्रदायक है।

---

1. अल्प विस्तार से जहाँ मण्डलाकृति में भूमि को खोदा जाता है और जिस गर्त में पानी मिलता है, वह चाहे पक्का बन्धा हुआ हो या निर्बन्ध हो, 'कूप' कहा जाता है— भूमौ खातोऽल्पविस्तारो गम्भीरो मण्डलाकृतिः। बद्धोऽबद्धः स कूपः स्यात्तदम्भः कौपमुच्यते॥ (भावप्रकाश) इसी प्रकार राजवल्लभ. में आया है— कूपाः श्रीमुखवैजयोऽपि तदनु प्रान्तस्तथा दुन्दुभिस्तस्मादेव मनोहरश्च परतः प्रोक्तस्तु चूडामणिः। दिग्भद्रो जयनन्दशङ्करमतो वेदादिहस्तैर्मिता विश्रान्तैः क्रमवर्द्धितैश्च कथिता वेदादधः कूपिका॥ (राजवल्लभ : चक्रपाणिमिश्र, 4, 27)
विश्वकर्मीय दीपार्णव में कहा गया है— चतुर्हस्तादिद्वैका यावत् हस्त त्रयोदश। श्रीमुखो विजय चैव प्रान्तो दुन्दुभि श्रीमनोहरः॥ चूडामणि दिग्भद्रो जया नन्दस्तु शङ्करः। श्रीमुखो चतुर्हस्ताद्य शङ्करस्य त्रयोदश॥ एव नामा द्विगुणोपेत वृत्तकूपादशोगमा। सङ्ख्याहस्तद्वयं कुर्यात् कूपिका नामतद्भवेत्॥ (दीपार्णव उत्तर. 18, 2-4)
2. गर्त, कूपिका, कुल्या, आलवाल आदि बिना मान के होते हैं—भवन्ति गर्तानि च कूपिकाश्च कुल्यालवालादि विनैव मानम्॥ (विश्ववल्लभ 2, 15)

द्विवक्त्रा च षट्कूटा भद्रा नाम सुशोभिता।
त्रिवक्त्रा नवकूटा च जया वै देवदुर्लभा॥ 10॥

दूसरी 'भद्रा' नामक वापी के दो ओर मुख होते हैं अर्थात् उसमें दो ओर से आवागमन होता है, उनके छह ओर से रोक होती है— इस प्रकार भद्रा सुशोभित है।[1] तीन ओर के आवागमन या मार्ग के मुखों वाली तीसरी 'जया' नामक वापी के नौ ओर रोक होती है। यह बड़ी ही उत्तम होती है। देवताओं को भी ऐसी वापी दुर्लभ मानी जाती है।

चतुर्वक्त्रा सूर्यकूटा विजया सर्वतोमुखी।
वाप्यश्च कथिता वत्स कुण्डानि शृणु सम्प्रति॥ 11॥

इति चतुर्वाप्यः।

'विजया' वापी के चारों ओर मुख होते हैं अर्थात् आवागमन योग्य सीढ़ियाँ होती हैं जिसके बारह रोक होती है[2]— ऐसे हे वत्स! मैंने बावड़ियों के बारे में कहा। अब तुम कुण्डों के बारे में सुनो।

चतुर्विधकुण्डानि —

भद्रकं सुभद्रकं च नन्दाख्यं परिघं तथा।
कुण्डानि देवताग्रेषु कार्याणि शान्तिमिच्छता॥ 12॥

(1.) भद्रक, (2.) सुभद्रक, (3.) नन्दाख्य व (4.) परिघ— ये चार प्रकार के कुण्ड होते हैं, शान्ति के इच्छुकों को इनको देवमन्दिरों के आगे बनाना चाहिए।[1]

चतुरस्त्रं भद्रकं स्यात् सुभद्रं भद्रसंयुतम्।
नन्दाख्यं प्रतिभद्रेषु परिघं मध्यभिट्टकम्॥ 13॥

भद्रक कुण्ड चौकोर होता है और सुभद्र कुण्ड के चारों ओर दीवारें या भद्र होते हैं। नन्दाख्य कुण्ड के भी प्रतिभद्र होती है और परिघ कुण्ड के मध्य में भिट्ट

---

1. राजवल्लभ. में कहा गया है— भद्राख्यकुण्ड चतुरस्त्रकं च सुभद्रकं भद्रयुतं द्वितीयम्। नन्दाख्यकं स्यात् प्रतिभद्रयुक्तं मध्ये सभिट्टं परिघं चतुर्थम्॥ (राजवल्लभ. 4, 31) दीपार्णव में कहा गया है— कुण्डानां लक्षणं चैव चतुर्विध मुदाहृत:॥ चतुरश्च भद्रकं नाम सुभद्र भद्रसंयुत। नन्दा क्षौ प्रतिभद्रेषु परिघो मध्यभिट्टोद्भवं॥ प्रवेशा निर्गमा चैव कर्तव्यास्तेरनेकधा:। (दीपार्णव 18, 7-9)
2. राजवल्लभ. में कहा गया है—वापी च नन्दैकमुखी त्रिकूटा षट्कूटिका युग्ममुखा च भद्रा। जया त्रिवक्त्रा नवकूटयुक्तास्त्वर्कैस्तु कूटैर्विजया मता सा॥ (वही 4, 28) अपराजित के अनुसार ही दीपार्णव में वापियों के लक्षण व भेद इस प्रकार स्पष्ट किए गए हैं— एक वक्त्रां त्रिकूटाश्चं नन्दा नाम वरप्रदा। द्विवक्त्रा षटकूटाश्च भद्रा नाम सुशोभना॥ त्रिवक्त्रा नवकूटाश्च जयास्तु देवदुर्लभा। चर्तुवक्त्रा द्वादशकूटा विजया सर्वतो मुख॥ चतुर्वापि भवेत्प्राज्ञ नन्दाद्या शुभलक्षणम्॥ (दीपार्णव 18, 5-7)

की रचना होती है।

चतुर्द्वाराणि सर्वाणि सगवाक्षाणि मध्यतः।

गवाक्षमस्तकान्येवं प्रवेशो वाम-दक्षिणे ॥ 14 ॥

इन कुण्डों के चारों और चार द्वार बने होते हैं और उन द्वार पर गोखड़े बने होते हैं। मध्य की ओर तथा उन गवाक्षों-गोखड़ों के मस्तक की ओर से बायें-दायें प्रवेश मार्ग बने होते हैं।

प्रवेशा निर्गमास्तत्र विधातव्या ह्यनेकधा।

कर्णे चतुष्किकाः कार्यास्तवङ्गपट्टशालिकाः ॥ 15 ॥

मध्ये भिट्टं तु कर्त्तव्यं माडं च तद्धि श्रीधरम्।

इसी प्रकार वहाँ, कुण्ड में प्रवेश और निर्गम अनेक प्रकार के बनाने चाहिए। इनके कोनों पर चौकियाँ भी बनानी चाहिए। ये चौकियाँ तवङ्ग एवं पट्टशालिका से युक्त छतरियों के रूप में बनाएँ जिसमें श्रीधर नामक माड की प्रतिष्ठा करें।[1]

तत्रैवार्च्चा निर्देशमाह —

तन्मध्ये जलशायी स्याद् वाराहो वा तथोच्यते ॥ 16 ॥

भद्रे चैकादश रुद्राः प्रशस्ता द्वारके तथा।

दुर्वासा नारदश्चैव विविधा गणनायकाः ॥ 17 ॥

कुण्ड के मध्य में जलशायी वाराह बनाया जाना चाहिए (अथवा जल तक पहुँचने वाली सीढ़ियाँ हों)। कुण्डों के दीवारों (भद्र) पर और द्वारों पर एकादश रुद्र मूर्तियाँ और महर्षि दुर्वासा, देवर्षि नारद व विविध गण नायक देवताओं की मूर्तियाँ प्रशस्त मानी गई हैं।

क्षेत्रपालो भैरवश्च तथा चोमामहेश्वरः।

कृष्णशङ्करः कर्तव्या दण्डपाणिर्विशेषतः ॥ 18 ॥

इन मूर्तियों की शृङ्खला में क्षेत्रपाल, भैरव, उमा-महेश्वर, कृष्णशङ्कर और विशेष करके दण्डपाणि यमराज-धर्मराज की भी स्थापना करनी चाहिए।

कात्यायनी चण्डिका च भल्लस्वामी च भास्करः।

हरिहरपितामहश्चन्द्रादित्यपितामहः ॥ 19 ॥

---

1. राजवल्लभ. में उक्त प्रमाण के साथ ही चारों कोनों में पट्टशाला के निर्माण का निर्देश भी दिया गया है— कराष्टतो हस्तशतं प्रमाणं द्वारैश्चतुर्भिः सहितानि कुर्युः। मध्ये गवाक्षाश्च दिशो विभागे कोणे चतुष्कास्त्वपि पट्टशालाः ॥ (राजवल्लभ. 4, 32)

हरिहरस्वर्णगर्भः पट्टशाला वाराणसी।
तदनुक्रमं वक्ष्यामि यदुक्तं परमेश्वरैः ॥ 20 ॥

इसी तरह कात्यायनी, चण्डिका, मल्लस्वामी, भास्कर, हरिहर पितामह तथा चन्द्रादित्यपितामह, हरिहर स्वर्णगर्भ, पट्टशाला वाराणसी के बारे में भी मैं तदनुक्रम से कहूँगा जैसा कि परमेश्वर ने पूर्व में कहा है।

चतुर्दशेशलिङ्गानि रुद्राश्चैवकादशैव तु।
सर्वे च द्वादशादित्या द्वादशाथ गणाधिपाः ॥ 21 ॥

चौदह ईश अर्थात् महादेव के लिङ्गों को तथा एकादश रुद्रों के लिङ्गों तथा सभी द्वादश आदित्यों और द्वादश गणाधिपों को भी स्थापित करना चाहिए।

पञ्चलीला नवदुर्गा लोकपालाश्च पञ्चधा।
त्रयोऽग्नयश्च दिक्पाला मातृणां च तथाष्टकम् ॥ 22 ॥
अब्धयश्चैव चत्वारो गङ्गा च सरिदुत्तमा।
तन्मध्ये तु प्रकर्तव्या वाराणसी पद्मासने ॥ 23 ॥

इसी प्रकार पञ्चलीलाओं को, नवदुर्गा, पाँच तरह के लोकपालों, तीनों अग्नियों, अष्ट दिक्पालों तथा आठों मातृकाओं, चारों समुद्रों और गङ्गा आदि उत्तम सरिताओं को बनाकर उसके सबके मध्य में वाराणसी को पद्मासन पर विराजमान करना चाहिए।[1]

यच्च वाराणसीवासे तत्पुण्यं नित्यदर्शनात्।
नित्यमेव स्नानपूजा गङ्गास्नानादिकं फलम् ॥ 24 ॥

वाराणसी (काशी या बनारस) में आवास करने का जैसा पुण्य फल वहाँ नित्य दर्शनों से मिलता है, वैसा ही पुण्यफल इस तरह की देवमूर्तियों के कुण्ड की दीवाल पर स्थापित करके गंगा स्नानोपरान्त पूजन-अर्चन करने से मिलता है।

तस्यार्चने भवेन्मोक्षो यथा गङ्गाजलान्मृतौ।
पतन्ति नैव संसारे यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ 25 ॥

उनकी अर्चना से वैसे ही मुक्ति मिलती है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है जैसे कि गङ्गा जल रूपी अमृत से मिलती है। मृतकों और मनुष्य का पुनर्जन्म होकर इस संसार-सागर में जब तक सूर्य-चन्द्रमा-तारागण स्थित हैं, तब तक पतन नहीं होता।

---

1. मण्डन ने देवार्चाओं के सन्दर्भ में यही मत दिया है— गङ्गाद्या रवयो हरेश्च दशकं रुद्रा दशैकाधिका दुर्गा भैरवमातृका गणपतिर्वह्निस्त्रिकं चण्डिका। दुर्वासा मुनिनारदस्तु सकला द्वारावतीलीलिका लोकाः पञ्च पितामहादिविबुधाः स्युर्मध्यदेशे सदा ॥ (राजवल्लभ. 4, 33)

इत्यमनन्तर तीर्थवर्णनं —

कृते च नैमिषं तीर्थं त्रेतायां पुष्करं तथा।
द्वापरे च कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा प्रशस्यते॥ 26॥

अब तीर्थों के बारे में कहता हूँ। सतयुग में नैमिषारण्य की महिमा रही है, त्रेतायुग में पुष्करराज की; द्वापर में कुरुक्षेत्र की महिमा रही और कलियुग में गङ्गा को प्रशस्त तीर्थ माना जाता है।

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥ 27॥

अस्तु, गङ्गाद्वार (गङ्गोत्री), कुशावर्त (द्वारिका), बिल्व, नीलपर्वत (पुरी), कनखल में स्नान करने पर पुनर्जन्म नहीं होता है।

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यतेसर्वपापेभ्यः स्वस्थानेऽपि वसन्नरः॥ 28॥

यहाँ तक कि आदमी कहीं भी स्नान करते हुए भी गङ्गा का नामोच्चारण करता रहे तो गङ्गा से सैकड़ों योजन दूर होने पर भी अपने स्थान पर स्नान करता हुआ समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

या गतिर्योगमुक्तानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
सा गतिः सर्वभूतानामन्तर्वेदिनिवासिनाम्॥ 29॥

जो सद्गति योग से मुक्ति प्राप्त करने वालों को तथा ऊर्ध्वरेतस् मुनियों की होती है, वैसी ही सद्गति अन्तर्वेदी निवासी समस्त प्राणियों की भी होती है।

फलं तस्य दशगुणं प्राप्नोति चैव नित्यशः।
नरोत्तमः स चाप्नोति नित्यं वाराणसीफलम्॥ 30॥

इस प्रकार से बनाए गए कुण्डों में स्नानोपरान्त पूजा-अर्चना से नित्य उससे दश गुना फल मिलता है उतना ही जितना कोई नरोत्तम नित्य वाराणसी में रहकर गङ्गास्नान का फल प्राप्त करता है।

तस्य तुलादिकपुण्यं स्थाने वाराणसी भवेत्।
धर्मार्थकाममोक्षांश्च यथेच्छं प्राप्नुयान्नरः॥ 31॥

इति चतुःकुण्डवाराणसी।

ऐसे व्यक्ति को वाराणसी में होने वाले पुण्य के तुल्य पुण्य उन्हीं कुण्ड स्थानों में स्नान करने से भी मिल जाता है और मनुष्य यथेच्छ धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष

प्राप्त कर लेता है।[1]

अथ सरोवरमाह —

सरो महासरश्चैव भद्रकं च तृतीयकम्।
चतुर्थं यन्मया प्रोक्तं सुभद्राख्यं तदुच्यते॥ 32॥
परिघं युग्मपरिघं तडागं षड्विधं स्मृतम्।

अब सरोवरों के विषय में कहता हूँ—(1.) सर, (2.) महासर, (3.) भद्रक, (4.) सुभद्राख्य, (5.) परिघ और (6.) युग्मपरिघ— इस तरह तड़ाग छह प्रकार के होते हैं।

बकैकस्थलं परिघं युग्मपरिघं तद् द्वितः॥ 33॥

इसमें से वहाँ एक स्थल पर बकादि पक्षियों के बैठने का स्थल और परिघ यदि दो एक साथ हो तो युग्मपरिघ कहलाते हैं।[2]

अर्धचन्द्रः सरः प्रोक्तं वृत्ताकारं महासरः।
भद्रकं चतुरश्रं स्यात् सुभद्रं भद्रसंयुतम्॥ 34॥

इनमें 'सर' अर्धचन्द्राकार तड़ाग होता है। 'महासर' गोलाकार अथवा वृतीय होता है। 'भद्रक' तड़ाग चौकोर और 'सुभद्र' तड़ाग भद्रयुक्त अर्थात् पाल-दीवार युक्त होता है।

---

1. दीपार्णव में कुण्डों पर माड, देवार्चाओं के सन्दर्भ में यही मत पाठभेद से दिया गया है— मध्यभिट्ट कर्तव्या मण्डपे श्रीधरोत्तमम्। तन्मध्ये तु जलशायी वाराह वाथ उच्यते॥ रुद्रएकादशकार्या द्वारिकायां संयुता। दुर्वासा नारदं चैव विघ्नस्य गणनायकम्॥ क्षेत्रपाल भैरवश्च उमा महेश्वरं तथा। कृष्णशङ्कर कर्तव्यं दण्डपाणि महेश्वर॥ कात्यायनि चण्डिका च सौम्यादित्य मेव च। हरिहरपितामह चन्द्रार्कश्चपितामह॥ हरिहरहिरण्यगर्भ पट्टशाला वाराणसि। तस्यानुक्रमं वक्षौ यदुक्तं परमेष्टितम्॥ चतुर्दश लिङ्गानी रुद्रैकादशस्तथा। द्वादशार्क गणनाधिप्यं केशवाश्च द्वादश॥ पञ्चलीला नवदुर्गा लोकपालस्यपञ्चक। तथाग्रिदशदिग्पालो मातृका च तथाष्टकम्॥ द्विविध पतिपातता चैव गङ्गा च सरितोत्तमे। तन्मध्ये च कर्त्तव्या वाराणसी पद्मशाने॥ बहित्रिर्भागे कुण्डस्य चतुर्दश व्यवस्थितम्। ब्रह्माविष्णु शिवादीनां विविध सद्मसुन्दरम्॥ वाराणसि ता यत्पुण्यं नित्यं पुण्ये दर्शनात्। नित्य स्नानादिकं पूजा गङ्गास्नानादिकं फलम्॥ तस्यार्चने भवेत् सौरव्यं गङ्गाते मरणं तथा। तपतेविव संसारे यावच्चन्द्रार्क तारकम्॥ कृते च नैमिषं तीर्थ त्रेतायां पुष्करं तथा। द्वापरे कुरुक्षेत्रे कलो गङ्गा प्रशस्यते॥ गङ्गाद्वारे कुशावर्त बिल्वके नीलपर्वते। स्नानं कनखले तीर्थे न लमेश पुनर्भव॥ याग तीर्थाग मुक्ताना मुनीनामुर्ध्वरितसा। सागरति सर्व भूताना मन्त्रवेध निवासिनम्॥ तस्मादशगुण्यं पुण्यं नित्य प्राप्ताति नित्यस। तस्य तुल्य दिक् पुण्यं कुण्डे वात्र वाराणसि। धर्मार्थकाममोक्षाणां इच्छं प्राप्नोति मानवः॥ (दीपार्णव 18, 10-25)
2. राजवल्लभवास्तुशास्त्र में भी यही वर्णन आया है। वहाँ सुभद्र में पक्षियों के बैठने के स्थान का वर्णन भी किया गया है— सरोऽर्धचन्द्रं च महासरश्च वृत्तं चतुष्कोणकमैव भद्रम्। भद्रैः सुभद्रं परिघैकयुग्मं [illegible]

पालिप्रमाणमाह —

दण्डसहस्रकं ज्येष्ठं मध्यमं च तदर्धकम्।
मध्यमार्धं कनिष्ठं च त्रिविधं पालिदैर्घ्यत: ॥ 35 ॥

इनमें भी हजार दण्ड की लम्बाई वाला तड़ाग ज्येष्ठ, पाँच सौ दण्ड वाला मध्यम और ढाई सौ दण्ड प्रमाण वाला तड़ाग पाल की लम्बाई के अनुसार कनिष्ठ माना जाता है— ये तीन भेद हैं।

पञ्चाशद्धस्तकैर्ज्येष्ठं **मध्यमं च** तदर्धकम्।
कनिष्ठं द्वादशकर: पालिमानं **च विस्तरे** ॥ 36 ॥

तड़ाग के पाल-मान के अनुसार 50 गज की दीर्घता वाली पाल ज्येष्ठ, 25 गज वाली मध्यम और 12 गज वाली कनिष्ठ पाल होती है।

वापीकूपतडागानि **नैकश उदगाश्रया:** ।
जलाश्रयं च सम्पाद्य कुर्यात् पुण्यं महोत्सवम् ॥ 37 ॥

वापी, कूप, तड़ाग इत्यादि अनेकों जलाशय होते हैं। अस्तु, ऐसे कोई भी जलस्रोत का निर्माण कराकर पुण्य महोत्सव मनाना चाहिए।

यस्य गोपदमात्रं **तु ह्युदकं** धारयेन्मही।
वर्षषष्टिसहस्राणि शिवलोकं **स गच्छति** ॥ 38 ॥

यह एक ध्रुव सत्य है कि जो कोई पुण्यार्थी इस धरती पर गाय के खुर प्रमाण का भी जलाशय बनवाता है, वह व्यक्ति साठ हजार वर्षों तक शिवलोक का निवासी होने का पुण्यफल प्राप्त करता है।[1]

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
वापीकूपतडादिनिर्णयाधिकारो नाम चतु:सप्ततितमं सूत्रम् ॥ 74 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में वापी कूप तडागादि निर्णय अधिकार नामक चौहत्तरवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 74 ॥

---

1. भविष्योत्तरपुराण में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा युधिष्ठिर के प्रति जलाश्रयों की महिमा इसी प्रकार कही गई है। जीवन में जलस्रोतों का निर्माण करवाना पुण्यकारक है। तडाग, देवालय, बावड़ी और सघन छायादार वृक्षों के आरोपण से चतुर्थ फल या मोक्ष की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार पुत्र अपने निजी गुणों द्वारा माता का शील स्वभाव प्रकट करता है, उसी प्रकार जल के आस्वादन द्वारा उसके कर्ता का शुभ ज्ञात होता है। अत: शुभ कर्म द्वारा उपार्जित धन तडाग आदि जलाशयों के निर्माण पर खर्च करना उचित ही है— तडाग देवभवनं वापीवृक्षोघनच्छद: ॥ चतुर्थकं फलं प्राप्तं कारितेऽस्मिंश्चतुष्टये। यथा मातु: समाचष्टे पुत्र: शीलं स्वकैर्गुणै: ॥ तथा स्वादेन च जलं कर्तु: सर्वं शुभाशुभम्। अत: शुभागतं द्रव्यं तडागादिषु लापयेत् ॥ (भविष्य, उत्तर 127, 71-73)

शस्त्यावतारो नाम पञ्चसप्ततितमं सूत्रम् ॥ 75 ॥

अथ युगलक्षणं। अपराजित उवाच —

कृते पुण्यमयं सर्वं जगदेतत् चराचरम्।
पुण्यात्मनः प्रजा राजा सुवृष्ट्या शोभना क्षितिः ॥ 1 ॥
पुण्यं त्रिभागं त्रेतायां द्विभागं द्वापरे तथा।
एकभागं कलियुगे मेघाः स्वल्पजलप्रदाः ॥ 2 ॥
सम्प्राप्ते वै कलियुगे पुण्ये च प्रलयं गते।
सर्वार्थनाशतो लोका व्याधिदुःखप्रपीडिताः ॥ 3 ॥

अपराजित बोले कि सतयुग में सारा जगत् चराचर पुण्यमय था तथा राजा और प्रजाजन भी पुण्यात्मा थे। अस्तु, सर्वत्र सुवृष्टि होती रहने से पृथ्वी भी बड़ी शोभायमान थी। इसके बाद, त्रेतायुग में पुण्य तीन भाग; द्वापर युग में पुण्य दो भाग तथा कलियुग में केवल एक भाग ही पुण्य रह गया जिससे मेघ उत्तरोत्तर कम वर्षा करते गए और जब वे कलियुग तक आया तब तो पुण्य तो प्रलय ही हो गया और सर्वार्थों का समस्त लोक में विनाश हो गया और लोग व्याधि, दुःख से पीड़ा भोगने लगे।

त्वं पिता जगतां नाथ प्रभो विश्वस्य पालक।
प्राप्तो कलियुगो घोरः कथं लोकस्तरिष्यति ॥ 4 ॥

हे प्रभु! आप जगत् के परमपिता हैं, कृपया हे प्रभु! विश्व के पालक!! यह बताएँ कि इस घोर कलियुग के प्राप्त होने पर लोग किस तरह उससे तैरकर पार होंगे?

विश्वकर्मोवाच —

अधर्मस्थं शिवो हन्ति सृष्टिस्थितिप्रणाशकृत्।
अधर्मस्य शिवः कालो नित्यं संहारहेतुकः ॥ 5 ॥

विश्वकर्मा बोले कि शिव अधर्म में लगे हुए लोगों का संहार कर-करके सृष्टि की ऐसी स्थिति का नाश कर देंगे क्योंकि अधर्म के लिए तो शिव स्वयं काल-स्वरूप हैं और नित्य उस अधर्म का संहार करने के हेतु लगे हुए हैं।

कलियुगे कृतयुगं शिवपादाब्जसेवनात्।
अन्नं नराणामाधारो वाहनानां तु पोषणम् ॥ 6 ॥

भगवान् शिव के चरण कमलों की सेवा करने से कलियुग में भी सतयुग जैसी प्राप्ति हो जाती है क्योंकि इस कलियुग में भी अन्न ही मनुष्य मात्र का जीवन आधार है और सभी के पोषण का वाहक है।

अथात्र प्रशंसामाह —

अन्नं तत्र दयाहेतु भोगलिङ्गं महीतले।
निग्रहानुग्रहे शक्तः स भवेत् पृथिवीपतिः ॥ 7 ॥

अस्तु, इस महीतल पर जो भी व्यक्ति अन्न का संग्रह करने और उस राशन का अनुग्रहपूर्वक जनता में दया करके भोग कराने में समर्थ होगा, वही यहाँ का पृथ्वीपति अर्थात् राजा के समान माननीय होगा।

गृहे वा नगरे ग्रामे आधिपत्यं च दुर्लभम्।
किं पुना राज्यलब्धौ तु चाधिपत्यं महीतले ॥ 8 ॥

अरे, इस बात को समझो कि जब व्यक्ति को अपने घर में, नगर में या ग्राम में भी आधिपत्य मिलना दुर्लभ है, तो फिर इस भूमि पर महीतल पर राज्य-शासन पाना और आधिपत्य कर पाना कितना महत्त्वपूर्ण है!

राज्यार्थं धार्यते शस्यं शस्यार्थं तु जलाश्रयः।
भूमिर्भागपरीक्षार्थं सूत्रधारं परीक्षयेत् ॥ 9 ॥

अस्तु, ऐसा राज्याधिकार पाने के लिए सदा अन्न संग्रह करके उस पर अधिकार रखना चाहिए और इस अन्नोत्पादन कार्य को बढ़ाने के लिए जगह-जगह जलाश्रयों की व्यवस्था करनी चाहिए। इन जलाशयों के लिए उपयुक्त भूमि भाग की परीक्षा हेतु सदा सूत्रधार शिल्पी, गजधर या शिल्पशास्त्रों के ज्ञान की सेवा लेना चाहिए कि वह सूत्रधार शास्त्र ज्ञान सम्पन्न हैं भी या नहीं?[1]

प्रजाहीनो ध्रुवं वत्स राजा दुःखस्य भाजनम्।
शेषं भुङ्क्ते महादुःखे विषये स्वेऽपराजित ॥ 10 ॥

इस तरह यह पाया गया कि प्रजा का आधार अन्न है और राजा, जलाशय और अन्न— इन तीनों का आधार सूत्रधार का शिल्पज्ञान है जिससे वह भूमिजल को उपलब्ध कराता है। इसके अभाव में राज्य प्रजाहीन हो जाता है। हे वत्स! यह राजा के लिए भी बड़े दुःख की बात होगी और वहाँ रहने वाले जो शेष जन समुदाय होंगे, वे भी महान् दुःख भोगेंगे।

---

1. काश्यपीयकृषिसूक्ति में आया है कि भूमि की शुभाशुभता की परीक्षा के लिए ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किया जाना चाहिए जो कि गुणों, लक्षणों के आधार पर उसका वर्गीकरण करने की पर्याप्त दक्षता रखते हों। भूमिविद् चाहे ब्राह्मण हो, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र हो, उनके लिए यह भी आवश्यक है कि वे भूमिगत जलानुसन्धान की विधियों के ज्ञाता हो और कृषिशास्त्र विशारद भी होने चाहिए— भूपरीक्षाक्रविदो गुणाढ्या नृपचोदिताः ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वापि विशः शूद्रास्तु वा पुनः। दकार्गल प्रमाणज्ञाः कृषिशास्त्रविशारदाः ॥ (काश्यप. 2, 46-47)

लोकमङ्गलमूलमाह —

लोको मूलं भूश्च वृक्षश्चाम्भो भूपालरक्षणम्।
तेनाक्षयं भवेद्राष्ट्रं प्रजावांस्तु चिन्तामणिः ॥ 11 ॥

हे अपराजित! लोगों के मङ्गल का मूल है— भूमि, वृक्ष, जल, भूपाल और सबका रक्षण। अस्तु, यदि इनमें से किसी का भी क्षय होता है तो राष्ट्र और राष्ट्र की प्रजा के लिए बड़ी चिन्तामणि अर्थात् शोचनीय स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सारांश यह कि सूत्रधार का जलशोधन का शिल्पशास्त्रीय ज्ञान सबको चिन्तामुक्त कर सकता है।

बहुपुण्यप्रभावेण प्रसन्नः साम्प्रतं शिवः।
प्रजास्तु पीडिता येन तद्राष्ट्रं गच्छति क्षयम्॥ 12 ॥

यह सब कुछ बहुत पुण्य के प्रभाव से ही सम्भव होता है जिसके कारण शिव तत्काल प्रसन्नता ही समझें। अस्तु, शास्त्रज्ञान से जल की उपलब्धि सर्वोपरि शिव की प्रसन्नता ही समझें। जिस राजा के राज्य में प्रजा को पीड़ा पहुँचती है, उस राष्ट्र का क्षय हो जाता है।[1]

अन्यायद्रव्यनिरता न्यायं त्यक्त्वा तु लोभतः।
कुलमूलविनाशार्थं राजा हन्ति प्रजां समाम्॥ 13 ॥

जिस राजा के राज्याधिकारी अन्याय से धन कमाने में लगे हों, रिश्वत और भ्रष्टाचार से न्यायमार्ग छोड़कर लोभ में पड़ गए हो, ऐसा बेसुध और अयोग्य शासक राजा अपना, अपने कुल और अपनी तमाम प्रजा के भी नाश का कारण बनता है और स्वयं आत्म हन्ता होता है।

वसुधायाः प्रजा मूलं [2]धान्यो यस्तां विशेषतः।
प्रतिपालयते भूपः सर्वकामफलप्रदः ॥ 14 ॥

इसलिए यह बात सदा अपने ध्यान में रखें कि इस पृथ्वी पर उसका मूल प्रजा ही है और उसमें भी धान्यों की अपनी विशेषता है। प्रजा के जीवनाधार के रूप में और जो राजा अपनी प्रजा का धन-धान्य से पालन करता है, जलाशयों की सुख-

---

1. गोस्वामी तुलसीदास ने भी यही बात कही है- जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥ (रामचरितमानस बालकाण्ड, 70, 6)
2. 'धन्यो' इति प्रकाशित पाठः। काश्यप मुनि का मत है कि देवताओं ने पृथ्व्योत्पन्न धान्य, धागे को माङ्गलिक सूत्र कहा है। इस पर होने वाला धान्य एवं शाक जीवनाड़ी अथवा जीवनदायिनी है, वे पृथ्वी पर जीवनतत्त्व का निर्माण करने वाली है— माङ्गल्यसूत्रं च तथा सस्यमाहुर्दिवौकसः। सस्यादिरेव मेदिन्याः जीवनाडी कलात्मिका॥ (काश्यप. 1, 17)

सुविधा का सूत्रधार के शास्त्रज्ञान से प्रबन्ध कराता है, वह सभी कामनाओं को पूरा करने का फल प्राप्त करता है।

वसुधा तु ध्रुवं पुष्पं फल राष्ट्रेषु वै प्रजा।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रजा पाल्या महीभृता॥ 15॥

क्योंकि, यह संमझ लें कि यह वसुधा तो केवल पुष्प मात्र है, यह ध्रुव सत्य है परन्तु वही पुष्प राष्ट्र की प्रजा के रूप में फल बन जाता है, इसलिए राजा को चाहिए कि वह सारे प्रयत्न करके अपनी प्रजा के न्यायपूर्वक पालन-पोषण में वृद्धि करें।

स्वस्थ देशलक्षणं —

यत्र देशे प्रजाः स्वस्थाः सदा च धनिनो जनाः।
तत्र देशे च कल्याणमिच्छासिद्धिर्भवेन्नृपः॥ 16॥

जिस देश की प्रजा स्वस्थ या तन्दुरुस्त है, वहाँ के सभी उद्योग-धन्धे सुचारू रूप से चलते हैं और प्रजा अपने उद्यम व उद्योग से धनवान होती है। ऐसे ही स्वस्थ और धनवान प्रजा वाले देशों में सदा कल्याण बना रहता है और वहाँ के राजाओं को भी सभी इच्छाओं की सिद्धि मिलती रहती है।

यत्र देशे प्रजाः स्वस्था हेमरत्नविभूषिताः।
स देशो दुर्लभो वत्स स्वर्गादिभोगदायकः॥ 17॥

हे वत्स! मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि जिस देश की प्रजा स्वस्थ है और इतनी धनवान है कि सभी लोग सोने-चाँदी-रत्नों आदि के आभूषणों से सुशोभित हो, ऐसा देश इस धरती पर दुर्लभ है और वह स्वर्ग के समस्त भोगों का अधिकारी है।

यत्र देशे प्रजाः स्वस्था उत्तमाधममध्यमाः।
सर्वकार्येषु सोत्साहाः स देशो दुर्लभः सुरैः॥ 18॥

जिस देश की प्रजा—उत्तम, मध्यम और अधमादि रूप से स्वस्थ-सानन्द हैं और सब कामों में सोत्साह लगी रहती है, वह देश तो देवताओं को लिए भी दुर्लभ है अर्थात् देवताओं से भी बढ़-चढ़कर सुखी है।

यत्र देशे प्रजाः स्वस्था दिव्यवस्त्रविभूषिताः।
दिव्यभोगा नष्टरिपुः स देशो देवदुर्लभः॥ 19॥

जिस राज्य अथवा देश की प्रजा स्वस्थ है और दिव्य वस्त्रों को धारण करने वाली सम्पन्नता से युक्त है, जिसको दिव्य भोग प्राप्त हैं और जिसके समस्त शत्रु नष्ट हो चुके है— ऐसा देश देवों को भी दुर्लभ है।

यत्र देशे प्रजाः स्वस्था दिव्यलेपनलेपिताः।

सर्वभोगप्रभोग्यश्च स देशो देवदुर्लभः॥ 20॥

इसी तरह जिस देश की प्रजा स्वस्थ है और दिव्य लेपन से लेपित है अर्थात् अगरु-चन्दनार्चित देह और सभी तरह के भोग भोगने में समर्थ, सम्पन्न हो— वह देश देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, देवता भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते।

सुभिक्षे तु सदा सौख्यं दुर्भिक्षे तत्कथं भवेत्।

यस्य कीर्तिः सुराष्ट्रैश्च नित्यमिच्छन्ति **तं नृपम्॥ 21॥**

यह स्मरणीय है कि सुभिक्ष में सदा सुख रहता है और दुर्भिक्ष में वह कैसे हो सकता है? उसमें तो दुःख ही होता रहेगा। अस्तु, जो राजा अपनी, अपनी प्रजा की और अपने राष्ट्र की सुराष्ट्र के रूप में कीर्ति की नित्य इच्छा रखता है वही वास्तव में नृप कहलाने का अधिकारी है।

लोकाः सुभद्रैर्युक्ताश्च गजैरश्वोष्ट्रवाहनैः।

[1]**(नाना** द्रव्यभोक्ताश्च नित्यानन्दप्रमोदितम्**)॥ 22॥**

ऐसे राजा के राज्य में रहने वालों में समृद्धि होती है और वे हाथी, घोड़े, ऊँट आदि वाहनों को रखने में सक्षम होते हैं। वे नाना द्रव्यों के भोक्ता और नित्य ही आनन्दित, प्रमुदित रहते हैं।

सुभिक्षे[2] तु प्रजाः स्वस्था राजा तत्र प्रमोदते।

प्रजास्वास्थ्ये नृपाः स्वस्था आसमुद्रवसुन्धरम्**॥ 23॥**

सुकाल होने पर प्रजा स्वस्थ रहती है और प्रजा के स्वस्थ रहने से राजा भी प्रमुदित रहता है। प्रजा के स्वास्थ्य से नृप भी स्वस्थ रहते हैं और समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वी भी प्रमुदित रहती है।

दुर्भिक्षे क्षीयते धर्मो धन-धान्यक्षयो भवेत्।

प्रजाराजक्षयश्चैव दुर्भिक्षा द्रक्षति प्रभुः॥ 24॥

इसके विपरीत, जिस राष्ट्र में दुर्भिक्ष, अकाल पड़ जाता है, वहाँ के निवासियों के धर्म, आचार, विचार, धन-धान्य आदि सब क्षय को प्राप्त होते हुए नष्टभूत हो जाते हैं, दुर्भिक्ष से प्रजा व राजा और राजा की प्रभुता भी क्षय को प्राप्त हो जाती है।

प्रजां पोषयते राजा राजानं पोषयेत् प्रजा।

अन्योन्यपोषणान्नित्यं राष्ट्रं नन्दति तच्चिरम्॥ 25॥

---

1. प्रकाशित पाठे नोपलभ्यते।
2. 'दुर्भिक्षे' इति प्रकाशित पाठः। (इस पाठ को स्वीकृत करने पर विपरीतार्थ होगा और व्यंग्योक्ति होगी)।

यह एक शाश्वत नियम समझें कि जो राजा अपनी प्रजा का पोषण करते हैं, प्रजा की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखते हैं, उन राजाओं का प्रजा भी पोषण करती हैं और उन राजाओं का नित्य बल बढ़ाने में तत्पर रहती है। इस तरह से दोनों एक दूसरे का पोषण करते हुए चिरकाल तक अपने राष्ट्र को आनन्दित और सुखी रखते हैं।[1]

प्रजाहानौ ध्रुवं वत्स राजा स्याद् दुःखभाजनम्।
सर्वाङ्गं क्षीयते राष्ट्रं जीवन्तोऽपि मृता नृपाः ॥ 26 ॥

हे वत्स! यह भी ध्रुव सत्य समझ लो कि प्रजा को हानि पहुँचाने वाला राजा भी दुःख का भाजन हो जाता है और ऐसे राजा के सभी विभागों व क्षेत्रों में अव्यवस्था हो जाने से क्षय होने लगता है। इसके चलते ऐसे राजा जीवित होते हुए भी मरे के समान हो जाते हैं।

स्वामी तु निर्दयः कालो दुर्भिक्षं चैव रौरवम्।
अल्पोदकाश्च मेघाश्च अल्पशस्या च मेदिनी ॥ 27 ॥

जिस राज्य, देश, राष्ट्र का स्वामी निर्दयी होता है, वहाँ सदा काल पड़ता रहता है और यह दुर्भिक्ष भी रौरव नरक के समान दुःखदायी हो जाता हैं, वहाँ वर्षा के मेघों में पानी भी कम होता है जिससे धरती भी खेती की धन-धान्य की उपज की कमी वाली हो जाती है।

अपराजित उवाच —

यदा मेघा न वर्षन्ति काले वा फल्गुवर्षणम्।
अनावृष्टौ स्वल्पवृष्टौ कथं लोका भवन्ति ते ॥ 28 ॥
कथं प्रवर्तते राष्ट्रं सुखिनश्च नृपाः कथम्।
कथं च धान्यनिष्पत्तिर्धनादिसुखिनो जनाः ॥ 29 ॥

यह सुनकर अपराजित बोले कि यदि समयोचित वर्षा न हो निस्सार वर्षा हो, अवृष्टि और अनावृष्टि हो अथवा स्वल्प वृष्टि हो तब वहाँ के लोग कैसे रहते हैं? वहाँ सुख कैसे हो? लोग सुखी कैसे हों और राजा भी सुखी कैसे हो? वहाँ धन-धान्य की निष्पत्ति कैसे हो— ताकि वहाँ के लोग धनादि से सुखी हो सके।

---

1. विश्वकर्मीयचित्रलक्षण में आया है कि अधर्मपूर्वक शासन सञ्चालित होने वाले देश में अकाल मौतें होती हैं। जहाँ पर राजा धर्मपूर्वक शासन करता है, उसके राज्य में कभी अकाल मृत्यु नहीं होती है— तव शासनकालेऽस्मिन् देशेऽकालमृतिर्यतः ॥ ततोऽधर्मेण राज्यं तं शाससीदं नृप निश्चितम्। विस्मयो य इतः पूर्वं न जातोऽसौ प्रवर्तते ॥ (चित्रलक्षणम् : नग्नजित्, सम्पादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 2007 ई., प्रथम परिवर्त 20-21)

शस्यहानौ कुतो लोकाः कुतो राष्ट्रं सराजकम्।
कुतः प्रवर्तते सृष्टिर्विश्वेश कथयस्व मे॥ 30॥

हे विश्वेश! अब यह सब मुझे कहने की कृपा करें कि शस्य की हानि होने पर भी लोक और राष्ट्र कैसे सराजक अर्थात् प्रसन्न रह सके?[1]

विश्वकर्मोवाच —

शृणु वत्स महागुह्यं त्वत्पृष्टमपराजित।
वक्ष्यामि दुस्तरे काले तारणं समुदाहृतम्॥ 31॥

अपराजित के प्रश्न पर विश्वकर्मा बोले कि हे वत्स सुनो! तुम्हारा पूछा गया यह प्रश्न महान गुह्य (गोपनीय या अति कठिन) है तथापि दुर्भिक्ष जैसे दुस्तर काल में भी तारण का उपाय ठीक-ठीक तरह से कहता हूँ।[2]

दुर्भिक्षनिवारणोपाय —

यच्छस्यानि प्ररोहन्ति स्वल्पवृष्टौ च पुत्रक।
दुर्भिक्षं न भवेत्तत्र यदुपायेऽपराजित॥ 32॥

हे पुत्र अपराजित! स्वल्प वृष्टि अथवा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में यदि ऐसे शस्य,

---

1. अपराजित का यह प्रश्न मरुभूमि-जाङ्गल प्रदेश की ओर सङ्केत है जहाँ 12-12 वर्ष तक वर्षा नहीं होती आई है। इस प्रदेश की यह विषमता भी है कि लगातार तीसरे वर्ष लघु अकाल और बारह-बारह वर्ष पर महादुर्भिक्ष होता आया है। इस क्षेत्र में जल का सदा ही अभाव रहा है। भुवनदेव ने निश्चय ही अकालजन्य त्रासदियों को देखा है। मौर्य साम्राज्य ने भी बारह वर्ष तक अकाल का सामना किया था। इस ग्रंथ के रचनाकाल के आसपास ही देशभर में जलाशयों की विशेष आवश्यकता समझी गई थी। जगडूचरितम् में इस काल के अकाल का वर्णन है। मालवा, मेवाड़ और गुजरात में 12-13वीं सदी में अनेक जलाशय और बाँध बने और गाँव-गाँव बाँधों को बाँधने की प्रवृत्ति का विकास भी हुआ। मेवाड़ में शासक विस्तृत बाँधों का निर्माण करके अपने नाम के आगे भी समुद्र के पर्याय के रूप में 'रांण' (राणा) या 'महाराणा' जैसे उपाधियाँ धारण करने वाले हुए।
2. चाणक्य का मत है कि दुर्भिक्ष जैसी आपातिक घटनाओं का सामना करने के लिए राजा सर्वप्रथम प्रजा के लिए बीज व खाद्य सामग्री (भक्त) का प्रबन्ध करता। इसके अतिरिक्त वह दुर्ग, सेतु के निर्माणादि से प्रजा को जीविकोपार्जन के साधन प्रदान करता। यदि ऐसा भी सम्भव नहीं होता तो अकाल राहत के रूप में प्रजा को खाद्य सामग्री देता (भक्त-संविभागम्) या कुछ समय के लिए अकाल पीड़ितों को किसी अन्य प्रदेश में भेज सकता है (देशनिक्षेपं वा) अथवा वह अपने किसी मित्र राज्य से सहायता ले सकता है या वह जनसंख्या के व्यवसायहीन लोगों को विदेश भेजकर (निरुपयोग जनानां तत्काले देशान्तर प्रेषणेन अल्पत्व करणम्), जनसंख्या को घटा (कर्षण) कर सकता है या बहुत बड़ी संख्या में अपनी प्रजा को किसी दूसरे समृद्ध देश में भेजने का प्रबन्ध कर सकता है या फिर वह समुद्र के तटवर्ती प्रदेश या किसी ऐसे देश की मदद ले सकता है जहाँ जलाशय हो ताकि वहाँ लोगों को मत्स्यादि आखेट कर उदरपूर्ति का आश्रय मिल सके। (अर्थशास्त्र अधि. 4, 3 तथा राधाकुमुद मुखर्जी : चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृष्ठ 100-101)

धान्यादि की बुवाई करें जो कि अल्पवृष्टि में भी अङ्कुरित होकर बढ़ सके तो इस उपाय से वहाँ दुर्भिक्ष कभी भी नहीं पड़ सकता है।

उत्पद्यते यतः शस्यं नराणां जलसङ्ग्रहात्।
जलाशये बन्धिते च क्षिप्रं शस्यं प्ररोहति॥ 33॥

इसके साथ ही जिन प्रदेशों के लोग खेती के लिए जहाँ कहीं भी जल संग्रह करने में सजग और तत्पर रहेंगे वहाँ भी धान्यों के उपजने में सुविधा होगी क्योंकि जलाशयों के बाँधने से धान्य जल्दी-जल्दी अङ्कुरित होकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

केचिन्महानदीतीरे केचिच्च सरिदाश्रये।
केचित्कूपोदके वत्स अष्टाष्टौ शस्यसम्भवाः॥ 34॥

हे वत्स! सजग रहकर यदि श्रमपूर्वक कतिपय महानदियों या अन्य नदियों के किनारों पर और कुओं के जल से खेती की जाए तो आठ-आठ, कुल सोलहों प्रकार के धान्यों[1] की खेती करना सम्भव हो सकता है।

नगरे च पुरे ग्रामे खेटे कूटे च कर्वटे।
वापी-कूप-तडागानां नदीनां बन्धनादिकम्॥ 35॥

अतएव इस बात को गाँठ बाँध लो कि नगरों में, पुरों में, खेट, कूट और कर्वट में जहाँ भी अवसर मिले वहाँ वापी, कूप, तड़ागों की और नदियों पर बाँध बनाने और जल संरक्षण के लिए सदा तत्परता दिखाएँ।[2]

अरहट्टप्रवाहाणां सारणीनां तथैव च।
सञ्चये सर्वशस्यानि जलं वै भूमिसंस्थितम्॥ 36॥

---

1. पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में विविध धान्यों के नाम आए हैं— श्याम-माष-मसूराश्च धान्य-कोद्रव-सर्षपाः। मुष्टको राजमाषश्च तुमुरो जुमरस्तथा॥ यव-गोधूम-मुद्गाश्च तिलक-ङ्गु-कुलुत्थकाः। गवेधुकाश्च नीवारा आतकश्च कलायकाः॥ माण्डुको वज्रकोरङ्क कीचको वडकस्तथा। तिलकाश्चणकाद्याश्च धान्यानि कथितानि वै॥ (शब्दकल्पद्रुम खण्ड 2, पृष्ठ 792) इसी प्रकार विष्णुपुराण में आया है कि व्रीहि (धान), यव (जौ), गोधूम (गेहूँ), अणव (छोटे धान्य), तिल, प्रियङ्गु (काँगणी), उदार (ज्वार), कोरदूष (कोदो), सतीनक (उनालू ग्वार या छोटी मटर), माष (उड़द), मुद्ग (मूँग), मसूर, निष्पाव (बड़ी मटर), कुलुत्थ (कुलथ), आढक्य (अरहर), चणक (चना) और सन (सण)— ये सत्रह प्रकार की ग्राम्य औषधिवर्ग में हैं जिनमें से सन को छोड़कर सब खाद्याहार है। (विष्णु. 1, 6, 20-22)
2. विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी आया है—उदकेन विना वृत्तिर्नास्ति लोकद्वये सदा। तस्माज्जलाशयाः कार्याः पुरुषेण विपश्चिता॥ अग्निष्टोमसमः कूपः सोऽश्वमेधसमो मरौ। कूपः प्रवृत्तपानीयः सर्वं हरति दुष्कृतम्॥ कूपकृत्स्वर्गमासाद्य सर्वान्भोगानुपाश्नुते। तत्रापि भोगनैपुण्यं स्थानाभ्यासात्प्रकीर्तितम्॥ (विष्णुधर्मोत्तर. 3, 296, 5-7)

इसी प्रकार वहाँ रहट, प्रवाहमार्ग— नाली-धोरे, कुल्या-नहर आदि की व्यवस्था होनी चाहिए[1] ताकि भूमिस्थ जल का सञ्चय हो और वह समस्त प्रकार के धान्यों की निष्पत्ति के निमित्त सिंचाई के कार्य आ सके।

पातालोद्भवा मेघाश्च घटिका [2]मोघधारिणः।
सेतुबन्धभवा नद्याः शस्योभयतटोद्भवाः॥ **37**॥

समझ लो कि भूमिगत जल को (दकार्गल[3] विद्या से) प्राप्त करके एक तरह से हम पातालों में उत्पन्न हुए बादलों से जल प्राप्त करते हैं। वह जल रहट के विज्ञान से अर्थात् रहट की माल के घड़ों में ही बादलों को धारण करके लाने के समान है। इसी तरह नदियों पर भी स्थान-स्थान पर सेतु बाँधकर दोनों तटों की भूमि में भी खेती की जा सकती है।

---

1. मौर्यकाल में नदीपाल नामक अधिकारी की नियुक्ति का विधान किया गया है। चाणक्य ने सीताध्यक्ष के लिए नदी, झील, जलाशय व कूओं के जलद्वारों के नियमन द्वारा पानी के उचित वितरण की व्यवस्था का निर्देश किया है— उद्घाटं उद्घाट्यते निस्सार्यते जल अननति उद्घाटो अरघट्टकादियन्त्रम्॥ (अर्थशास्त्र अधि. 3, 9) काश्यपीयकृषिसूक्ति में आया है कि जलाशयों, जलस्रोतों के अभाव में पेयजल का प्रबन्ध नहीं होगा, जल के अभाव में न तो सांध्यकर्म होगा न ही स्नान हो सकता है फिर भला पौधों की वृद्धि कैसे हो सकती है? इसी कारण मुनियों ने कहा है कि पानी के अभाव में सुख नहीं होता, यह निश्चित है अतः प्रजारक्षा का सङ्कल्प करने वाले शासक को चाहिए कि वह सर्व प्रयत्न पूर्वक जलस्रोतों का भी विकास करें। पुनः कहा गया है कि शासक को चाहिए कि वह ग्राम, देश के वनखण्ड में गम्भीर, वृहदाकार जलाशयों का निर्माण करवाएँ। जलाशयों से नहरों को भी निकाला जाए जो बहुत मजबूत बनी हो और हमेशा उनमें पानी का प्रवाह बना रहे। बड़ी नहरों से जुड़ी अनेक शाखाओं या वितरिकाओं का विस्तार भी किया जाना चाहिए जो अन्तःसम्बद्ध हो। इनका और जलाशयों का निर्माण बहुत मजबूत करवाना चाहिए— जलाशयविहीने तु सुखं नैवोपजायते। न सान्ध्यकर्म न स्नानं वृक्षाणामपि वर्द्धनम्॥ न स्यादित्येव मुनिभिः सौख्यं त्विति विनिश्चितम्। अतः सर्वप्रयत्नेन भूपालो रक्षणव्रती॥ ग्रामेष्वपि च देशेषु वनमध्ये तु वा पुनः। स्थापयित्वा तु गम्भीरं जलाशयमतन्द्रितः॥ कुल्यां दृढतरां नित्यं सुलभोदकनिः स्रवाम्। नानाशाखासमाक्रांतां महाकुल्यायुतां तथा॥ जलाशयेन सहितां स्थापयेत् बहुशोदृढाम्। (काश्यपीय. 3, 107-110 तुलनीय कृषिपाराशर 196-97)
2. मेघ धारिणः स्यात्।
3. दकार्गल विद्या एक प्रकार से भूमिगत पानी के ज्ञान की कुञ्जी मानी जाती है। वराहमिहिर के मतानुसार सारस्वत मुनि ने इस विद्या का सूत्रपात किया। बाद में मनु, बलदेव, काश्यप आदि ने इसे लिखा। वराह ने इसे बृहत्संहिता में आर्यादि विविध छन्दों में निरूपित किया— धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः। पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः॥ एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभोस्तो वसुधाविशेषात्। ननारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव॥ (बृहत्संहिता 54, 1-2) इसके बाद सुरपाल ने वृक्षायुर्वेद में उद्धृत किया और 1577 ई. में चक्रपाणि मिश्र ने इसको पुनः नए अनुभवों के साथ भी लिखा। (विशेष द्रष्टव्य— डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' सम्पादित वृक्षायुर्वेद और विश्ववल्लभ-वृक्षायुर्वेद)

अजलाश्च जलाकीर्णा अवृष्ट्यैकार्णवीकृता।
धर्मस्त्राता च दुर्भिक्षे धर्मराजो महोत्सवः ॥ 38 ॥

उक्त सभी उपायों से जहाँ की भूमि में जल का अभाव देखा गया हो, वहाँ की भूमि जलाकीर्ण अर्थात् जल से लबालब तालाबों वाली हो जाएगी और अवृष्टि होने पर भी चारों ओर सागरों से भरी-पूरी सी होगी क्योंकि दुर्भिक्ष में यही ज्ञान धर्मत्राता बनकर आता है। अस्तु, इस धर्मराज के महोत्सव अर्थात् जल संग्रह के श्रमदान-अनुष्ठान को महोत्सव की तरह मनाकर जल सञ्चय से सुखी होना चाहिए।

सम्प्राप्तो धर्मराजत्वं वरुणस्त्रिदशैः सह।
तं देशं स्वर्गमाख्याति चेन्द्रतुल्यस्य भूपतेः ॥ 39 ॥

इस प्रकार के श्रमदान या धर्म की साधना से धर्मराजत्व की सम्प्राप्ति होती है और वरुण देवता के साथ अन्य देवताओं की कृपा से वह देश स्वर्ग कहलाने लगता है और वहाँ ऐसे जल सञ्चय और संरक्षण करने के उद्योग में लगे रहने वाला राजा भी इन्द्र के समान आदरणीय और सुखी रहता है।

रसो रसायणं ज्ञानं धनधान्यादिसम्भवाः।
सर्वं प्राप्तं फलं तेन येन वै सञ्चितं जलम् ॥ 40 ॥

सभी प्रकार के रसों और रसायनों का ज्ञान भी धन-धान्य सम्भव होने पर ही होता है। अस्तु, जिसने जल सञ्चयन का विज्ञान प्राप्त कर लिया, उसने सभी फलों को प्राप्त कर लिया— ऐसा समझें।

स्वर्णपुष्पफलैर्युक्तो नित्यं स त्वपराजित।
नृपेण सूत्रधारेण महीशस्यादिभूषिता ॥ 41 ॥

हे अपराजित! यह समझ लो कि ऐसे उद्योगों के कर्ता और समझदार राजा ने सूत्रधार के ज्ञान की सहायता से इस भूमि को धन-धान्य से भूषित करके मानों स्वर्ण-पुष्प-फलों की खेती-बाड़ी का अनुष्ठान कर लिया है।[1]

---

1. जिस देश की माटी सोना उगले और जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़ियाँ गीत-गुञ्जार करे— ऐसा खुशहाल देश हो, इसी प्रकार के जल सञ्चय और जल संग्रहण के अनुष्ठान से छोटे-छोटे चेकडेम, एनीकट के प्रयोग जैसे कार्य आज अति आवश्यक है। अपराजित शिल्पशासन ने लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व ऐसे उपाय बताए हैं। इन निर्देशों का मेवाड़ के राजाओं ने सर्वाधिक पालन किया। इस ग्रन्थ के रचनाकाल के आसपास ही, 1265 ई. में घाघसा (चित्तौड़गढ़) गाँव में वापी का निर्माण हुआ था। यहाँ से कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा संवत् 1322 की प्रशस्ति मिली है जिसमें अपराजित के वंशज जैत्रसिंह द्वारा गुजरात के तुरुष्कों व शाकम्भरी के शासकों को पराजित करने का वर्णन है। इसकी रचना आचार्य रत्नप्रभ ने की जो आचार्य भुवनदेव सिंहसूरी का शिष्य था। इस प्रशस्ति के ठीक तीन साल पहले

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तृश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां शस्यावताराधिकारो नाम पञ्चसप्ततितमं सूत्रम्॥ 75॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में शस्यावतार अधिकार नामक पचहत्तरवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 75॥

महाराजनिवेशोनाम षट्सप्ततितमं सूत्रम्॥ 76॥

विश्वकर्मोवाच —

चतुःषष्टिपदैर्भक्ते राजवेश्मनि वास्तुनि।
देववेश्य(?म)राजवेश्म मैत्रपदे समाश्रितम्॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि राजभवन के वास्तु में चौंसठ पद विन्यास के वास्तुमण्डल के अनुसार जो भवन बनाए जाते हैं, वे देववेश्म अथवा राजवेश्म जो भी हों, मैत्रपद के समाश्रित होते हैं।

उच्चरङ्गिका प्रमाणमाह —

प्रदक्षिणान्ते मार्गाच्च निवेशयेत्तु वेश्मनः।
गजस्कन्धसमोत्सेधा प्रथमा ह्युच्चरङ्गिका॥ 2॥

उन वेश्मों अर्थात् भवनों में प्रदक्षिणा के अन्त में मार्गों का निवेश होना चाहिए अर्थात् मार्गों को बनाएँ। उनमें जो पहली उच्चरङ्गिका बनाएँ, उसे हाथी के कन्धे जितनी ऊँचाई की बनाएँ।

अन्य गृहादीनां —

इन्द्रेन्द्रजयोर्मध्ये च राजमातुर्निवेशनम्।
रुद्रे रुद्रदासे चैव वेश्मनः पेटमादिकम्॥ 3॥

इसी प्रकार उसमें इन्द्र और इन्द्रजय पद विन्यास के भाग में राजमाता के लिए भवन बनाना चाहिए। रुद्र और रुद्रदास वाले पद विन्यास में पेटमादिक के भवन बनाने चाहिए अर्थात शृङ्गार-पेटियों और टोकरियों, थैलों का भण्डार गृह बनाना चाहिए।

चौहानवंशी चाचिगदेव द्वारा जोधपुर के निकट सुण्डा या सुगन्धाद्रि पर्वत पर अपराजितेश के मन्दिर के लिए स्वर्ण कलश व ध्वजा बनवाने का वर्णन वहाँ से प्राप्त प्रशस्ति में मिलता है। जयसमुद्र के पास वीरपुरा में रहट सहित कुएँ वाली भूमि का दान हुआ। आहाड़ में भी रहट-हल-निवाण की भूमि का दान [illegible]

वेदाक्षेन्द्रजयोर्मध्ये **भ्रमणी** पदमध्यगा।
राजभुवनस्यार्धे **तु भ्रमणी** मार्गनिर्गता॥ 4॥

उक्त इन्द्र और इन्द्रजय के चारों पद विन्यास के मध्य में पदों के मध्य से गुजरती हुई भ्रमणी बनानी चाहिए। उस राजभवन के आधे से बनने वाली भ्रमणी मार्ग के बाहर की ओर निकलती हुई बनानी चाहिए।

तद्वीथ्यग्रसन्धौ **च प्रतोली**: कारयेच्छुभा:।
कार्याश्च भ्रमणीमध्ये गजशालास्तथोत्तमा:॥ 5॥

उन वीथियों के अर्थात् मार्गों के अग्रभाग की सन्धि पर एक सुन्दर प्रतोली अर्थात् पोल बनाएँ। उन भ्रमणियों के मध्य वाले भाग में उत्तम गजशाला (हाथीखाना) का निर्माण करना चाहिए।

पूर्वार्धे तु त्रिभिर्माडै: पङ्क्तिरेका **तु संस्थिता**।
अपरयाम्योत्तराणि ? शालाकिन **उदाहृता**:॥ 6॥

उसके पूर्वार्ध भाग में तीन-तीन माड़ों की एक कतार बनानी चाहिए और दूसरी पश्चिम और उत्तर दिशा की ओर भी शाला ऐसी ही बनानी चाहिए।

तद्बाह्यतोऽन्त**र्मार्गश्च कर्तव्यं** शुभलक्षणम्।
महिषीगृहाल्पहीनं राजमातुर्गृहं **भवेत्**॥ 7॥

उनमें बाहर जाने और भीतर आने के अन्त:मार्ग भी भली प्रकार आरामदायक बनाए जाने चाहिए। यह भी ध्यान में रखें कि राजमहिषी अर्थात् राजरानी या पटरानी के महल से राजमाता का महल आकारादि में थोड़ा न्यून होना चाहिए।

मैत्रान्ते पुरतो भागे द्वारगर्भस्तथान्तरे।
गोपुराकृति: **कर्तव्यो** दृढार्गलसमन्वित:॥ 8॥

वास्तुपद विन्यास के अनुसार मैत्रान्त तक के पद भाग पर नगर के लिए आगे के भाग में द्वारगर्भ बनाना चाहिए जिसकी आकृति गोपुरम् के आकार की हो। उनमें भी कपाट बन्द होने के बाद सुदृढ़ अर्गला लगाकर सुरक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

तत्सूत्रेण कृतं द्वारं राजमातुर्गृहात्परम्।
मैत्राग्निकर्णे **कुर्याच्च** सभामाडं सुशोभितम्॥ 9॥

इसी द्वार की सीध के सूत्र में राजमाता के गृह का भी द्वार भी उसके परे होना चाहिए और वास्तुपद विन्यास के मैत्राग्निपद कर्ण पर एक सुन्दर सुशोभित सभामाड अर्थात् सभामण्डप बनाएँ अर्थात् मैत्रपद के अग्निकोण वाले भाग पर सभामण्डप बनेगा।

सिंहासनसमायुक्ता याम्यस्था चोत्तरानना।
सिंहावलोकनयुक्ता महाराजसभा भवेत्॥ 10॥

इसी तरह मैत्रपद के पश्चिमी भाग में उत्तराभिमुख सिंहासन से युक्त सजी हुई ऊँचे सिंहावलोकनयुक्त अर्थात् बड़े-बड़े, विशाल झरोखों वाली महाराज सभा का निर्माण कराना चाहिए।

सभामध्ये तु कर्त्तव्यं वेद्यां सिंहासनं महत्।
श्रीधरोद्भवमाडं च सुवर्णरत्नभूषितम्॥ 11॥

सभा भवन के मध्य भाग में ऊँची वेदिका बनाकर उस पर बृहद् सिंहासन की स्थापना करें। उस पर स्वर्ण, रत्नादिकों से भूषित श्रीधर नामक माड़ की रचना होगी।

ब्रह्मस्थानार्धतः स्तम्भैः सिंहद्वारं गर्भोत्तरे।
याम्योत्तरे तु कर्तव्या गजयुधा गजोत्तमाः ?॥ 12॥

इसके बाद, ब्रह्मस्थान के आधे भाग से उत्तर की ओर बीचो-बीच सिंहद्वार, बनाएँ और ब्रह्मद्वार के बने सिंहद्वार के उत्तर-दक्षिण दोनों भागों में अच्छे बलवान हाथियों की लड़ाई करने के गजयुध के अगाड़ बनाए जाए, जहाँ हाथियों की नियमित बल परीक्षा हो सके।

तदग्रे चाट्टालकानि प्राकारे स्याद्रथाकृतिः।
राजगृहाद् द्वे प्रतोल्यौ प्राकारान्तर्विनिर्गते॥ 13॥

उन गजयुधों अर्थात् हाथियों के लड़ाई के अग्गड़-ठाणों के आगे ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ बनाई जाए जिनकी दीवार की आकृति रथ के समान हो अर्थात् उनसे चारों ओर फिर करके हाथियों की लड़ाई देखने का मनोरञ्जन हो सके। उन्हीं अट्टालिकाओं के प्राकारान्त से लगी राजगृह की ओर से आती हुई मार्ग पर दो बड़ी पोलें कुछ आगे की ओर निकली हुई बनानी चाहिए।

राजमातुः पट्टराज्याः प्राकारो गृहतो भवेत्।
सिंहद्वारसमानान्यनेकद्वाराणि कारयेत्॥ 14॥

जहाँ से राजमाता, पटरानियाँ आदि प्राकार, परकोटे पर बने हुए गृहों से सिंहद्वार के समान बने हुए अनेक झरोखों के द्वारों से यह गजयुद्ध का मनोरञ्जन देख सके।

विवस्वत् पृथ्वीधरार्धे प्राकारः पूर्वनिर्गतः।
ब्रह्मणोऽन्ते तु प्राकारो जयद्वारं गर्भोत्तरे॥ 15॥

वास्तुपद विन्यास के भवन निर्माण क्षेत्र के विवस्वत और पृथ्वीधर के भाग के आधे क्षेत्र में पूर्व दिशा की ओर निकलते हुए प्राकार अर्थात् परकोटा बनाएँ। इसी तरह ब्रह्मभाग वाले पद स्थान के गर्भ से उत्तर की ओर परकोटा बनाकर उसके आगे जयद्वार की रचना करें।

तत्प्राकारमध्यकर्णे गजशालावुभौ मतौ।
तस्य बाह्ये गृहमन्यं राजपिण्डपाद्यादिकम्॥ 16॥

उस परकोटे के मध्यवर्ती कोनों पर भी दोनों और हाथियों के ठाण या गजशालाएँ बनाएँ। फिर, उनके बाहर की ओर अन्य कोई गृह निर्माण किया जाए जिसमें राजा के पिण्ड अर्थात् खाद्य और पाद्य अर्थात् पीने की सामग्री के संग्रह की व्यवस्था होगी।

आपवत्समरीच्यर्धे राजवेश्म गृहोत्तमम्।
कपिशीर्षयुतश्चैव प्राकारो वास्तुबाह्यतः॥ 17॥

वास्तुपद विन्यास के आपवत्स और मरीचि पद के क्षेत्र के आधे में उत्तम राजवेश्म या राजमहल बनाए जाएँ जिनके बाहर के परकोटे पर कपिशीर्ष अर्थात् सुन्दर कंगूरे बने हुए हों।

पित्रग्नीशरोगकर्णेष्वट्टालकचतुष्टयम्।
महाप्रतोल्या माहेन्द्रे गिरिसंस्था तथोत्तरे॥ 18॥

इसी तरह वास्तुपद विन्यास के क्षेत्र के पितृ, अग्नि, रोग और ईश— इन चारों कोनों के पद भागों पर चार बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ बनाई जाएँ जिन्हें 'अट्टालक चतुष्टय' नाम दिया गया है तथा वास्तुपद विन्यास के उत्तर भाग में माहेन्द्र, गिरि के स्थान पर एक महा प्रतोली या बड़ी पोल बनाई जाए।

भास्वतो यमदिग्भागे समस्ता च वलूरिका।
राजवेश्मान्तर्भागे च वाद्यशाला तथोत्तरा॥ 19॥

वास्तुपद विन्यास क्षेत्र के दक्षिण दिशा के भाग में सभी प्रकार की वलूरिकाएँ, वनकुञ्ज, पर्णशाला, झुरमुट, निकुञ्ज, बीहड़ क्षेत्र आदि रखे जाएँ। महल की ओर के अन्तरङ्ग भाग में बाद्यशाला का निर्माण अवश्य होना चाहिए जहाँ राजमहल की रमणियाँ, महिलाएँ गाने-बजाने, सङ्गीत का आनन्द ले सकें और आमोद-प्रमोद में अपना रहन-सहन स्थिर कर सके।

वितथे गिरिसंस्थाने रथरन्ध्राणि कारयेत्।
गिरौ काष्ठगृहं चैव वितथे चाम्भसां गृहम्॥ 20॥

वास्तुपद विन्यास के दक्षिण की ओर वितथ, गिरि पद भाग पर रथों (यानों के रखने के) रथखाना आदि बनाने चाहिए। गिरि के भाग में काष्ठगृह (काठ, ईंधन गोदाम, टाल, बाड़ा) बनाएँ, उसके पास के ही वितथ पदभाग में जल भण्डारण (पानी के हौज और सभी प्रकार के जल संग्रह के उपाय) की समुचित व्यवस्था का क्षेत्र बनाएँ अर्थात् जल विभाग के भवनों का निर्माण हो।

सुग्रीवनन्दिसन्धौ च युद्धद्वारं पराङ्मुखम्।
असुरशेषसन्धौ च द्वारमम्भोगृहैर्युतम्॥ 21॥

वास्तुपद विन्यास क्षेत्र के सुग्रीव व नन्दी के पद भाग के सन्धि-स्थल में पश्चिम दिशोन्मुख युद्धद्वार का निर्माण करना चाहिए। इसी तरह असुर व शोष पद भाग के सन्धि-स्थल में पश्चिम दिशा की ओर पानेरा रूपी जल गृहों युक्त द्वार का निर्माण करना चाहिए।

सुग्रीवपुष्पदन्तयोर्वरुणासुरयोस्तथा।
अश्वशाला द्वादशैव कर्तव्याश्च शुभोत्तमाः॥ 22॥

इसी तरह सुग्रीव व पुष्पदन्त के सन्धि-स्थल पद पर तथा वरुण और असुर के सन्धि-स्थल पद पर बारहों प्रकार की अश्वशालाएँ अर्थात् घुड़साल बड़े ही सुन्दर ढंग की, व्यवस्थित बनानी चाहिए।

अर्धे तवङ्गनिष्कास ? सैन्यविस्तरविस्तृतम्।
प्राकारासमुत्सेधानि त्रिमाडानि तदूर्ध्वतः॥ 23॥

जिनके आधे में तवङ्गों का निष्कास होना चाहिए जो सेना के विस्तार के अनुरूप ही विस्तार वाली हो अर्थात् सेना अश्वारोही सैनिकों की समस्त अश्व पूर्ति करने में समर्थ हो। उनके बाहर पर्याप्त ऊँचा परकोटा भी बनाना चाहिए, परकोटे पर ऊपर के भाग में तीन माड भी बनाए जाए।

कार्यं दौवारिके भिट्टं गजस्कन्धसमोच्छ्रितम्।
द्वाराग्रे तु भवेन्माडं मल्लैरग्रे तु युध्यते॥ 24॥

उस परकोटे की भिट्ट पर हाथी के कन्धे के बराबर ऊँचाई वाले द्वारपालों की विशाल मूर्तियाँ भी बनानी चाहिए। दरवाजे के विशाल माड गृह भी बनाने चाहिए जिसके आगे अखाड़े में मल्ल-पहलवान लोग तरह तरह के मल्लयुद्ध का अभ्यास कर सकें।

पूर्वापरद्वारद्वयं द्वात्रिंशत्$_{32}$ स्तम्भभूषितम्।
तद्वृत्तमाडं वृत्तं तु पञ्चविंशतिभिः$_{25}$ करैः॥ 25॥

पूर्व दिशा में और पश्चिम दिशा में ऐसे दो बड़े द्वार हों जिनमें प्रत्येक द्वार बत्तीस

स्तम्भों से विभूषित हों और उनका वृत्त भी पच्चीस गज के विस्तार वाला होगा।

स्तम्भे स्तम्भे पताका च द्विजालोककलोद्भवम्।
रक्तपुष्पसमाकीर्णं द्वारिकं चतुरङ्गुलम्॥ 26॥

उन प्रत्येक स्तम्भ पर पताकाएँ फहराती हुई हो जो (द्विजालोक कलोद्भवं) चार अङ्गुल मोटे लाल पुष्पमालाओं से समाकीर्ण अर्थात् सजे-धजे दो-दो जालोक अर्थात् झरोखों पर उठी हुई शोभायमान होती है।

खड्गविद्याविज्ञयुद्धं छुरिकायुद्धमुत्तमम्।
तथैव मल्लयुद्धं च गात्रभङ्गैरनेकधा॥ 27॥
निरीक्ष्यते यतः सर्वं खड्गाद्यायोधनं तथा।
एवं युद्धोद्भवा राजप्रासादे च महोत्सवाः॥ 28॥

इस प्रकार के द्वारगृहों वाले राजप्रासादों में खड्ग विद्याविज्ञ युद्ध अर्थात् तलवारों से लड़ने के पैंतरेबाज योद्धाओं के अभ्यास, छुरी से लड़ाई के विविध दाँव-पेंच के अभ्यास तथा पहलवानी के कुश्ती के अनेक प्रकार के गात्रभङ्ग अर्थात् दाँव-पेंच, पटखनी देने के तौर-तरीकों के जानकार यहाँ आकर खड्गादि युद्धकला के करतब देखने को आते रहते हैं और ऐसे युद्ध सम्बन्धी महोत्सव भी राजमहल के आङ्गन में समय-समय पर होते रहें।

नियन्त्रितोभयद्वारं माडं रश्माक्ष्यमुन्नतम्।
भिट्टे चापरद्वाराणि कार्याणि चासुरोन्मुखम्॥ 29॥

इन दोनों दरवाजों पर उन्नत ढँग की रस्सियों से नियन्त्रित ऊँचा माड बनाना चाहिए (सम्भवतया यह कनात युक्त तम्बू या छौलदारी की मजबूत रस्सियों वाली व्यवस्था दरवाजों के ऊपर समय-समय पर आवश्यकतानुसार बनाई जाने वाली अस्थायी माड़ के बारे में सङ्केत है)। भिट्ट के अन्य द्वारों को भी वास्तुपद विन्यास के अनुसार असुर पद भाग पर बनाने चाहिए।

बाह्यदेवपङ्क्तिमध्ये राजवेश्मान्तमार्गतः।
मुख्यभल्लाटसौम्येषु गजशालपङ्क्तिद्वयम्॥ 30॥

राजमहलों के अन्त में बाहरी देवपङ्क्ति के मध्य के मार्ग पर वास्तुपद विन्यास क्षेत्र के मुख्य, भल्लाट और सौम्य पद भाग तक उत्तर की दिशा में गजशालाओं की दो पङ्क्तियों को बनाना चाहिए।

याम्योत्तरमुखं कार्यं प्रशस्तं सर्वकामदम्।
सौम्यान्ते हस्तिनीवेश्म तदद्वारमपरोन्मुखम्॥ 31॥

बुधे यमे च गन्धर्वे तद्रूपा च द्वितीयका।
शोषे क्षये च रोगे च कोष्ठागारं तथादिमम्॥ 32॥

जिनका मुख उत्तर-दक्षिण दिशाओं की ओर बनाना प्रशस्त कहा गया है, जो सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है और सौम्य वास्तु पद के अन्त में हस्तिनिवेश अर्थात् गजशाला (हाथी के ठाण) हो और उसके द्वार के परे दूसरी ओर दक्षिण दिशा के वास्तुपद विन्यास के बुध, यम और गन्धर्व पद भाग पर भी वैसा ही दूसरा द्वार भी उसी के अनुरूप बनाए और वास्तुपद विन्यास के शोष, पापयक्ष्मा और रोग के पद भाग पर बड़ा-सा कोठार बनाएँ जो आरम्भ से ही भरा-पूरा भण्डार गृह हो।

पित्रिमृगभृङ्गेषु **च** कोष्ठागारं द्वितीयकम्।
गोष्ठागारं कार्यमित्थं **प्रोक्तं च विश्वकर्मणा**॥ 33॥

इसी तरह से वास्तुपद विन्यास के दक्षिण-पश्चिम कोण में स्थित पितर, मृग, और भृङ्ग पद भाग पर भी दूसरा वैसा ही विशाल कोठार या भण्डारगृह बनाएँ। उसी के पास ऐसा ही गोठ (आमोद-प्रमोद हेतु गोष्ठागार) भी बनाया जाना चाहिए— ऐसा भगवान् विश्वकर्मा[1] ने कहा है।

ईशादितिदितिषु **च** भाण्डागारमापार्धतः।
पुष्पागारं सवित्रर्धे ह्यग्नौ भृत्यान्तरिक्षयोः॥ 34॥
तृणशाला प्रकर्तव्या **प्रशस्ता** शुभकर्मणा।

पूर्वोक्त वास्तुपद विन्यास क्षेत्र के उत्तर-पूर्वी कोण पर स्थित ईश, दिति और अदिति के पद भाग पर बड़ा भाण्डागार अर्थात् भण्डार बनाए जाए। उत्तर-पूर्व कोण पर आप के पद के आधे भाग पर पुष्पागार और दक्षिण-पूर्व के सवित्र-पद के आधे में, अग्नि, भृत्य और अन्तरिक्ष पद भाग पर तृणशाला बनाई जाए, जो सभी शुभ कार्यों में प्रशस्त कही गई है।

पर्जन्ये चाधिकरणं राज्ञः कार्यं पराङ्मुखम्॥ 35॥
शुभा प्रतोली माहेन्द्रे जये श्रीकरणादिकम्।
आदित्ये वप्रकरणं सन्मुखं श्रीकरादिषु॥ 36॥
धर्माधिकरणं **सत्ये कर्तव्यं** चापराङ्मुखम्।

वास्तुपद विन्यास के पूर्व की ओर पर्जन्य के पद पर अधिकरण हो, राजा का कार्य पराङ्मुख होगा। माहेन्द्र पद पर सुन्दर प्रतोली होगी। जय के पदस्थान पर

---

1. यहाँ ग्रन्थकार आद्य विश्वकर्मा के ग्रन्थ का स्मरण करता है। सम्भवतः यह ग्रन्थ विश्वकर्माप्रकाश हो अथवा विश्वकर्मीय शिल्पशास्त्र हो। समराङ्गण. में भी राजनिवेश में ऐसा निर्देश आया है।

राजकार्य के लिए (श्रीकरणादिकं) कार्यालय भवन हो, वप्रकरण व सन्मुख सूर्य पद भाग पर कोशाधिकारी तथा सत्य पद भाग पर धर्माधिकारी का भवन भी दूसरी ओर मुख किए हुए बनाएँ अर्थात् सत्य पद भाग और श्री मन्दिर, परकोटे के साथ न्यायालय के भवन (धर्माधिकरण) बनाएँ जाएँ।

कर्णोर्ध्वे भूमिकाश्चैव तदग्रार्धे चतुष्किका ॥ 37 ॥
जयस्य बाह्यपक्षे तु कुर्यात् कारागृहं तथा।
कात्यायनी च माहेन्द्रे प्रतोल्याः [1]पुरतबुधः ? ॥ 38 ॥

इसके पास ही वास्तुपद विन्यास के कोने के आधे भाग में ऊँची भूमि पर चौकी बनाकर जय पद भाग के बाहर की ओर कारागृह भवनों का निर्माण कराएँ और पूर्व दिशा में (महेन्द्र पद?) प्रतोली या पोल बनाएँ जिसके पास कात्यायनी देवी का मन्दिर भी बनाएँ— ऐसा विद्वानों का मत है।

आदित्याग्रे च बाह्ये तु कुर्याद् द्वयकरणाद्यकम् ?।
रूपकं दुःसाध्यकानां चतुष्कं तु राजादिकम् ? ॥ 39 ॥

इसी प्रकार वास्तुपद विन्यास क्षेत्र के सूर्य पद भाग के बाहर की ओर आगे दोनों कोनों पर दो लेखागार भवन (दस्तावेजों के लिखित प्रमाणीकरण हेतु बनाएँ अर्थात् आधुनिक पञ्जियक कार्यालय भवन की तरह के दो भवन बनाएँ) जिसके चौक में दुःसाध्य को अर्थात् गुण्डे-बदमाशों को राजादिकों अर्थात् राजकर्मचारियों, पुलिस विभाग के अधिकारियों द्वारा बन्दी बनाए और दण्डित करने की अवस्था में बेड़ी, हथकड़ी युक्त दशा में दिखाए जाएँ— ऐसी मूर्तियाँ बनाएँ। ऐसी मूर्तियों से रूपकों से दुःसाहसी गुण्डे बदमाशों में भय उत्पन्न हो सके और राजतन्त्र का दब-दबा प्रकट हो सके।

मरीचिस्थ गर्भोत्तरे देवी राजकुलार्चिता।
पृथ्वीजयाख्यः प्रासादस्तेजःप्रतापवर्धकः ॥ 40 ॥

वास्तुपद विन्यास क्षेत्र के गर्भभाग अर्थात् ब्रह्म क्षेत्र के उत्तर-पूर्व (मरीचिस्थ) भाग में राजकुल की अर्चिता देवी की प्रतिमा स्थापित की जाए। उसका नाम पृथ्वीजय प्रासाद रखें जो राजा के प्रताप और तेज का वर्धक स्वरूप हो।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां महाराजनिवेशाधिकारो नाम षट्सप्ततितमं सूत्रम् ॥ 76 ॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में महाराज निवेश अधिकार नामक छिहत्तवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 76 ॥

---

1. 'पुरतबधुः ?' इति प्रकाशित पाठः।

सभाष्टकवेदीनिर्णयो नाम सप्तसप्ततितमं सूत्रम् ॥ 77 ॥

विश्वकर्मोवाच —

नन्दा-भद्रा-जया-पूर्णा-दिव्या-यक्षी च रत्नजा।
उत्पला तदनुज्ञेया सभा अष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ 1 ॥[1]

विश्वकर्मा बोले कि आठ सभाएँ होती हैं, जिनके नाम हैं— (1.) नन्दा, (2.) भद्रा, (3.) जया, (4.) पूर्णा, (5.) दिव्या, (6.) यक्षी, (7.) रत्नजा और (8.) उत्पला।

सभा निर्माण प्रकारलक्षणञ्च —

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्विरष्टपदभाजिते।
मध्यमपदचतुष्केण चतुष्कोऽलिन्दशेषतः ॥ 2 ॥

सभाओं के लिए किसी चौकोर क्षेत्र को सोलह भागों में विभाजित करें। मध्य के चार पदों की चौकड़ी के बाद शेष चार अलिन्द या चबूतरे हो जाते हैं।

नन्दा नाम समाख्याता सर्वकामफलप्रदा।
चतुष्के भद्रविस्तार एकोभागश्च निर्गमः ॥ 3 ॥

इनमें नन्दा नाम से विख्यात् सभा में चौकड़ी की दीवार का एक भाग निर्गम, द्वार युक्त होता है। यह सभी सर्वकाम फलप्रद करने वाली होती है।

भद्रा त्वेवं समाख्याता तेजःप्रतापवर्धका।
भद्रं भद्रं चतुष्के तु जया नित्यं जयावहा ॥ 4 ॥

इसी तरह भद्रा नाम की सभा भी तेज और प्रताप को बढ़ाने वाली होती है। उसके समान ही जया नामक सभा के भी प्रत्येक दीवार में निर्गम, द्वार होते हैं जो नित्य ही जय कराने वाले कहे गए हैं।

अलिन्दैर्वेष्टितं सर्वं निर्यूहाच्छाद्यकं तथा।
तथा पूर्णा भवत्येवं सर्व कल्याणकारिका ॥ 5 ॥

पूर्णा नामक सभा के सभी ओर के अलिन्दों, बरामदों में निर्व्यूह निकले होते हैं जिन पर छज्जे बने होते हैं। ऐसी सभा भी सर्व कल्याणकारक होती है।

नवांशानुसारेण सुन्दरीशाला: —

चतुरश्रं समं क्षेत्रं विभक्तं च नवांशकैः।
केवला नवशालाश्च दिव्या नामापि सुन्दरी ॥ 6 ॥

---

1. सभादि का वर्णन समराङ्गणसूत्रधार (अध्याय 27, 1) में भी आया है।

(उक्त शालाओं के अतिरिक्त यदि) चौकोर क्षेत्र को नौ भागों में विभाजित किया जाए तो केवल नवशालाएँ बनती हैं। इसका नाम सुन्दरी दिव्या है।

निष्कान्ता च चतुर्भद्रैर्यक्षी कार्या सुशोभना।

भद्रे भद्रे द्विशालानि सा मता रत्नसम्भवा ॥ 7 ॥

यक्षी सभा के चारों ओर की दीवारों में निकलने के लिए सुन्दर सुशोभन द्वार बनाने चाहिए। रत्नसम्भवा नामक सभा की प्रत्येक दीवार से सटी हुई दो शाला अर्थात् कमरे बने हुए होते हैं।

तस्याश्च प्रत्येकशालं प्रतिभद्रविभूषितम्।

उत्पला च समाख्याता महाराजेन्द्रवल्लभा ॥ 8 ॥

उत्पला नामकी सभा की भी प्रत्येक दीवार पर एक-एक शाला (प्रतिभद्र) से शोभा बढ़ाई जाती है, ऐसी सभा महाराजाओं को बड़ी प्रिय लगती है।

लम्बिन्याख्यवितानानि विचित्राणि च मध्यतः।

अनेकाकाररूपाश्च राजक्रीडोचिताः स्थिताः ॥ 9 ॥

इन सभाओं के ऊपर लम्बिनाख्य वितान अर्थात् झालरदार चन्दोवों से छतों की सजावट और बड़े ही विचित्र, विविध प्रकारों से सभा मध्य में की जाती है जिनमें अनेक तरह के रूपाकार जो राजक्रीड़ाओं से सम्बन्धित विषयाधारित होते हैं।

शालभञ्ज्यादि प्रतिमा स्तम्भविमानसम्भवाः।

मुक्तलूमच्छाद्योपरि घण्टाकूटैरलङ्कृताः ॥ 10 ॥

उन सभाओं के स्तम्भों पर शालभञ्जिका (शालद्रुम की शाखा तोड़ती युवती) की मूर्तियों से सजावट होती है। स्तम्भशीर्षों पर विमानों की रचना और छत से लटकती हुई मुक्तलूम अर्थात् मोतियों की मालाओं के लूम-लुम्बक लटकते हुए और घण्टा, घण्टियों के समूह से सजे हुए बनाए जाते हैं।

दिव्यसौवर्णकलशैर्मत्तवारणसम्युताः।

सुरसद्मोपमाश्चैव नृपसद्माग्रमण्डपाः ॥ 11 ॥

इति सभाष्टकम्[1] ।

---

1. समराङ्गणसूत्रधार में आठ सभाओं के नाम आए हैं किन्तु नामों में भेद है, भाविता, दक्षा, प्रवरा व विदुरा— ये चार अन्य नाम हैं और इनमें नन्दादि चार के लिए क्षेत्र को सोलह भागों में और भावितादि के लिए क्षेत्र को छह भागों में विभाजित कर कर्णभित्ति करने विभाजित करने का निर्देश है— नन्दा भद्रा जया पूर्णा सभा स्याद्भाविता तथा। दक्षा च प्रवरा तद्वद् विदुरा चाष्टमी मता॥ चतुरश्रीकृते क्षेत्रे ततः षोढा विभाजिते। मध्ये पदचतुष्कं स्यात् सीमालिन्दस्तु भागिकः॥ तद्बाह्योऽलिन्दकस्तद्वद् भवेत्

उन सभाओं के द्वारों पर चमकदार स्वर्ण के घड़े हुए कलशों से कुम्भों से सजे हुए मत्तवारण शोभायमान होते हैं जिससे ये राजमहलों के आगे बने मण्डप स्वर्ग के सुन्दर मण्डपों की समानता करते हुए उपमा लिए प्रतीति देते हैं।

इत्यमनन्तर वेदीलक्षणं —

तन्मध्ये याम्यभद्रे तु वेदी सिंहासनान्विता।
श्रीधर्याद्या तथा चैव वैराजकुलसम्भवा॥ 12॥

इन सभाओं के मध्य में दक्षिणी भद्र या दीवार से सटी हुई वेदी बनाई जाए जिस पर सिंहासन रखा हुआ हो। ये श्रीधरादि वैराज्यकुल से उत्पन्न होने वाली वेदियाँ कही जाती हैं।

स्वस्तिका भद्रिका चैव श्रीधरी पद्मिनी तथा।
चतुर्विधा भवेद् वेदी सर्वशान्तिकरी नृणाम्॥ 13॥

वेदियाँ चार प्रकार की हैं— (1.) स्वस्तिका, (2.) भद्रिका, (3.) श्रीधरी और (4.) पद्मिनी। ये राजाओं को सभी प्रकार से सुख-शान्ति प्रदान करने वाली हैं।

स्वस्तिका चतुरश्रा स्याद् भद्रिका भद्रसम्युता।
श्रीधरी विंशतिकोणा प्रतिभद्रैर्विभूषिता॥ 14॥
पद्मिनी वै पद्मदला ह्यष्टकोणैर्विभूर्षिता।

इन वेदियों में स्वस्तिका वेदी चौकोर होती है; भद्रिका वेदी भद्रों सहित अर्थात् दीवारों वाली होती है; श्रीधरी वेदी बीस कोणों वाली होती है और उसका प्रत्येक भद्र या दीवार अलंकृत होती है। पद्मिनी वेदी पद्म-कमल की आठ पङ्खुड़ियों के आकार वाली अर्थात् आठ कोणों से अलंकृत होती है।

वर्णानुसारेण वेदीप्रमाणमाह —

विप्राणां सप्तहस्ता$_{7}$ च क्षत्रियाणां तु षट्करा$_{6}$॥ 15॥
[1]वैश्यानां पञ्चहस्ता$_{5}$ च शूद्राणां वेदहस्तिका$_{4}$।

प्रतिसराभिधः। प्राग्ग्रीवाख्यस्तृतीयश्च बहिः क्षेत्राच्चतुर्दिशम्॥ निसृष्टसौर्ध(धे) यैर्वा स्यादेकस्यां वा यदा दिशि। नन्दा भद्रा जया पूर्णा क्रमेण स्युः सभास्तदा॥ षड्भागभाजिते क्षेत्रे कर्णभित्तिं निवेशयेत्। सभा स्याद् भाविता नाम सप्राग्ग्रीवात्र पञ्चमी॥ स्तम्भान् षट्त्रिंशदेतासु पञ्चस्वपि निवेशयेत्। स्तम्भान् प्राग्ग्रीवसम्बद्धान् पृथगेभ्यो विनिर्दिशेत्॥ दक्षेति षष्ठी परितस्तृतीयालिन्दवेष्टिता। प्रवरा सप्तमी द्वारैर्युक्तैषा परिकीर्तिता॥ प्राग्ग्रीवद्वारसंयुक्ता विदुरेत्यष्टमी सभा। सभानामिदमष्टानां लक्षणं समुदाहृतम्॥ इत्यष्टानां लक्ष्म सम्यक् सभानामेतत् प्रोक्तं दिग्भवालिन्दभेदात्। तद्वद् द्वारालिन्दसंयोगतश्च ज्ञातेऽत्र स्याद् भूभृतां स्थानयोगः॥ (समराङ्गण. 27, 1-9)

1. विप्रेषु सप्तहस्ता च षड्ढस्ता क्षत्रियेषु। पञ्चहस्ता भवेद्वैश्ये शूद्रे वेदाः प्रकीर्तिताः॥ इति पाठः।

त्रिहस्ता$_3$ कर्षकाणां च प्रकृतेर्द्व्येकहस्तिका$_1$ ॥ 16 ॥

विप्रों के लिए वेदी सात गज के प्रमाण वाली, क्षत्रियों के लिए छह गज, वैश्यों के लिए पाँच गज, शूद्रों के लिए चार गज और कृषकों के लिए तीन गज की हो किन्तु सामान्य जनों के लिए वेदी दो गज की कही जाती है।

कार्यानुसारेण वेदीप्रयोगमाह —

विवाहेषु च सर्वेषु स्वस्तिका सर्वकामदा।
भद्रा भद्रा नरेन्द्राणां सर्वकल्याणकारिका ॥ 17 ॥
देवतास्थापने चैव स्वस्तिका भद्रा श्रीधरी।
देवानां च प्रतिष्ठादौ पूजायां चैव पद्मिनी ॥ 18 ॥

सभी प्रकार के वैवाहिक और माङ्गलिक कार्यों के लिए स्वस्तिका वेदी समस्त कामनाओं को पूरी करने वाली कही गई है। भद्रा वेदी राजाओं के लिए सर्वप्रकारेण कल्याणकारक है। देवी-देवताओं के स्थापना कार्य में स्वस्तिका, भद्रा, श्रीधरी वेदी उचित रहती है और देवताओं की प्रतिष्ठादि या पूजा का कार्य हो तो पद्मिनी वेदी उचित ही मानी गई है।[1]

सिंहासनं तदूर्ध्वे च भद्रासनमथापि वा।
पट्टप्रस्तारिका चैवं गदिकाद्यं तथोत्तरे ॥ 19 ॥

प्रयोजन के अवसर पर वेदिका के ऊपर सिंहासन अथवा भद्रासन लगाया जाए जिस पर महीन चद्दर से ढकी हुई गद्दी उत्तर मुखी लगी हो।

अन्यदप्याह —

चतुःस्तम्भसमायुक्तं छाद्यत्रयविभूषितम्।
ऊर्ध्वे च घण्टाकलशं मत्तवारणशोभितम् ॥ 20 ॥

वेदी के चारों ओर चार स्तम्भों से युक्त तीन चन्दोवे तने हुए हों जिन पर घण्टा, कलश युक्त मत्तवारणों की शोभा होनी चाहिए।

---

1. सिद्धान्तशेखर में आया है कि वेदियाँ चतुरस्त्र, पद्मिनी, श्रीधरी व सर्वतोभद्रा होती हैं। दीक्षा, स्थापनादि अवसरों पर चतुरस्त्रा का प्रयोग सर्वफलप्रद होता है। तड़ागादि की प्रतिष्ठा के अवसर पर पद्म के आकार वाली पद्मिनी का प्रयोग होगा। राज्याभिषेक के अवसर पर चतुर्भद्रा का प्रयोग होगा, विवाह में श्रीधरी का प्रयोग होगा जो कि बीस कोष वाली, दर्पणोदर जैसी समस्तरीयता लिए होंगी : वेदी चतुर्विधा प्रोक्ता चतरस्त्रा च पद्मिनी। श्रीधरी सर्वतोभद्रा दीक्षासु स्थापनादिषु॥ चतुरस्त्रा चतुःकोणा वेदी सर्वफलप्रदा। तडागादिप्रतिष्ठायां पद्मिनी पद्मसन्निभा॥ राज्ञां स्यात्सर्वतोभद्रा चतुर्भद्राभिषेचने। विवाहे श्रीधरी वेदी विंशत्यस्त्रसमन्विता॥ दर्पणोदरसङ्काशा निम्नोन्नत विवर्जिता। (कुण्डरत्नावली : सम्पादक- मिताली देव, वाराणसी, 2003 ई. पृष्ठ 19)

शुक्लपट्टैश्च शोभाढ्यं पुष्परागविभूषितम्।
इन्द्रनीलसमं कान्त्या हेमरत्नैश्च शोभितम्॥ 21॥

ऐसी वेदी के ऊपर राजा का आसन लगाया जाए जो स्वच्छ, श्वेत, रेशमी चद्दरों से ढका हुआ हो और उस पर पुष्पों की सुगन्ध वाला इत्रादि छिड़का हो। उसकी कान्ति इन्द्रनील के समान और स्वर्ण व रत्नों के जड़ाव का अलंकरण होना चाहिए।

मुक्ताफलैरनेकैश्च सूर्यकान्तिमनोरमैः।
एवं पुष्पकमाडं च वेद्यूर्ध्वं च नृपासनम्॥ 22॥

इसी प्रकार उन पर अनेकों मोतियों की मनोरम मालाएँ सूर्य की प्रभा विस्फारित करती प्रतीत होनी चाहिए, ऐसा पुष्पक माड नामक वेदी के ऊपर नृप के बैठने का स्थान होता है।

उत्तराभिमुखं कृत्वा याम्यायां स्थापयेद्दिशि।
तथाग्रे च समस्ताश्च भक्ता ये स्वामिनः स्थले॥ 23॥

यह आसन उत्तर दिशा की ओर मुख वाला और दक्षिण दिशा की ओर स्थापित होता है और इस वेदिका के आसन के आगे राजा के समस्त भक्त-सेवक अपने स्वामी के स्थल पर सामने ही विराजित होंगे।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां सभाष्टकवेदीनिर्णयाधिकारो नाम सप्तसप्ततितमं सूत्रम्॥ 77॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में सभा अष्टक वेदी निर्णय अधिकार नामक सतत्तरवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 77॥

महाराजाधिकाराजो नामाष्टसप्ततितमं सूत्रम्॥ 78॥

विश्वकर्मोवाच —

सभामध्ये तथा वेदी तत ऊर्ध्वे सिंहासनम्।
पौती[1] पुष्पजाड्यकुम्भं सिंहवक्त्रं कनालिकम्॥ 1॥

---

1. 'पौती ?' इति प्रकाशित पाठः।
पोतिका स्तम्भाङ्ग के रूप में स्वीकृत है। मयमतं, मनुष्यालयचन्द्रिका इत्यादि में बोधिका या पौती जैसे पर्याय इसी सन्दर्भ में आए हैं। पोतिका के विषय में ईशानशिवगुरुदेवपद्धति और वास्तुविद्या प्रभृति ग्रन्थों में विस्तृत उल्लेख पाया जाता है। ईशानशिवगुरुदेवपद्धति में स्तम्भ पर स्थापित की जाने वाली पोतिका के लक्षण बताते हुए कहा गया है कि स्तम्भ के विस्तार से तीन, चार या पाँच गुणा मान प्रमाण वाली पोतिका क्रमशः नीच, मध्यम और उत्तम नाम से जानी जाती है। ये क्रमशः नागवृत्ता, पत्रचित्रा और समुद्रोर्मि संज्ञक होती हैं— तदूर्ध्वं पोतिका स्थाप्या तस्या लक्षणमुच्यते। सा च स्यात्

विश्वकर्मा आगे बोले कि सभा के मध्य में वेदी हो, उस वेदी पर सिंहासन हो और जो कि पोतिका, पुष्प और जाड्यकुम्भ, सिंहमुख और लड़ियों से अलंकृत हो।

गजाश्वनरपीठाढ्यं सिंहव्याघ्रैरलङ्कृतम्।
अनेकसिंहरूपैश्च क्रमतो विकृताननाः ॥ 2 ॥

इस जाड्यकुम्भ के ऊपर के भद्रभाग पर प्रासाद मण्डोवर के अलङ्करण की भाँति ही विविध स्तरों पर गजथर, अश्वथर, नरथर, सिंहथर, व्यालथर (ग्रासमुख) अनेक सिंहों के रूप में विकृत भयङ्कर मुखाकृतियों में बने अलङ्करण हों।

सिंहासने महाराजः शोभते मणिदीप्तिभिः।
यथा शक्रः सुरैर्युक्तो बालार्ककिरणोदितौ ॥ 3 ॥

ऐसे सिंहासन पर महाराज एक प्रकार से अपनी मणिदीप्ति से ऐसे प्रभविष्णुमयता के विराजित हों, मानों स्वयं इन्द्र अपने देवगणों के मध्य में उदित होते हुए सूर्य की लालिमायुक्त किरणों से प्रकाशित हो रहे हों।

चक्रवर्त्यादीनां नृपकोटयः —

चक्रवर्त्यर्धपतिश्च भूत्रिभक्त्या महीपतिः।
एते वै तु महाराजा शेषाश्च मण्डलेश्वराः ॥ 4 ॥

स्तम्भविस्तारात् त्रिगुणं वा चतुर्गुणम्॥ दीर्घा पञ्चगुणं वापि नीचमध्योत्तमा स्मृता। नागवृत्ता पत्रचित्रा समुद्रार्मिश्च पोतिकाः॥ त्रिविधा नामभिर्ज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते। स्तम्भव्याससमोत्सेधविस्तारा श्रेष्ठपोतिका॥ शरांशोना मध्यमा स्यादूनद्व्यंशा कनिष्ठिका। भूतेभमकरव्यालरत्नबन्धविचित्रिता॥ वल्लीचित्राग्रपट्टा च सा ख्याता चित्रपोतिका। केवलं पत्रवल्लीभिर्विचित्रा पत्रपोतिका॥ तरङ्गमात्रचित्रा या पोतिका स्यात् तरङ्गिणी। तरङ्गाश्चात्र वेदर्तुव(स्वा? स्वङ्का)शादिसंख्यया॥ कार्यास्तूभयतस्तुल्याः पट्टिकाच्छत्रमध्यगाः। त्रिभागे पोतिकोत्सेधे सार्धांशेनाग्रपट्टकम्॥ तदर्धार्धेन तदधः क्षेपच्छायान्वितं भवेत्। तदुच्चार्धात् त्रिभिर्वांशैरंशाभ्यां वात्र कल्पयेत्। स्वव्यासार्धात् त्रिपादाद् वा कुर्यात् तास्वग्रमण्डनम्॥

'वास्तुविद्या' में इसका नाम 'बोधिका' है। पोतिका अपने न्यूनाधिक विस्तार के अनुसार तीन नामों वाली होती है। ये भित्ति के स्तम्भाग्र के आधार पर दण्डसंज्ञक, स्तम्भाग्र विस्तार के अनुसार उशन्तिदण्ड और चरणाग्रप्रतान से दण्ड नाम वाली हो जाती है। ग्रन्थान्तर में भी कहा गया है। प्रतिलोम क्रम से इनके नाम होते हैं— अधम प्रकार की त्रिदण्ड पोतिका पत्री कही जाती है। मध्यम प्रकार की चतुर्दण्ड पोतिका चित्री नामक और उत्तम प्रकार की पञ्चदण्ड पोतिका महार्णवी संज्ञक होती है— पोतिका तु त्रिधा ज्ञेया नामभेदेन दैर्घ्यतः। त्रिदण्डा च चतुर्दण्डा पञ्चदण्डा यथाक्रमम्॥ महार्णवी च चित्री च पत्री च प्रतिलोमतः। (वास्तुविद्या : सम्पादक - श्रीकृष्ण 'जुगनू', 8, 44-45) पोतिकेत्यादि। 'बोधिके'ति क्वचित् पाठः। नामभेदेन दैर्घ्यत इति। दैर्घ्यस्य न्यूनत्वाधिकत्वाभ्यां कृतेन नामभेदेनेत्यर्थः। तादृशं दैर्घ्यमेवाह— त्रिदण्डेनत्यादि। इह दण्डप्रमाणं तु 'कुड्यस्तम्भाग्रतारोऽप्यथ तदवयवाकल्पने दण्डसंज्ञः', 'स्तम्भाग्र-विस्तारमुशन्ति दण्डम्', 'चरणाग्रप्रतानो दण्डः' इत्यादि ग्रन्थान्तरोक्तं ग्राह्यम्। त्रिदण्डादीनां संज्ञा आह— महार्णवीत्यादि। प्रतिलोमत इति। प्रतिलोमक्रममनुसृत्येत्यर्थः। तथाच त्रिदण्डा पोतिका पत्री नामधमा। चतुर्दण्डा पोतिका चित्री नाम मध्यमा। पञ्चदण्डा पोतिका महार्णवी नाम उत्तमेति सिद्धम्। (तत्रैव विवृत्ति)

महाराज का विरुद धारण करने वाले राजाओं में चक्रवर्ती अधिपति, भूमि के तीनों भागों को धारण करने वाले (षष्ठांश प्रासकर्ता) महीपति कहलाने के अधिकारी हैं। इनसे अतिरिक्त जो शेष भूपाल हैं, मण्डलेश्वर पद के अधिकारी हैं।

मण्डलीकोऽधिसामन्तः सामन्तो लघुसञ्ज्ञकः।
चतुरंशिकाऽल्पराजाः शेषास्तु राजपुत्रकाः ॥ 5 ॥

इनके नीचे मण्डलीक, उनसे नीचे के सामन्त तथा उनसे नीचे के भी लघु सामन्त कहलाते हैं और चतुर्थ अंश भाग के अधिकारी को अल्पराजा और इनके बाद शेष बचे सभी को केवल राजपुत्रक कहा गया है।

स्वके स्वभुक्तानुसारे राज्यं कुर्वन्ति स्वेच्छया।
अनेकभोगभोक्तारो राजक्रीडामनेकधा ॥ 6 ॥

ये सभी अपने-अपने प्राप्त भाग के प्रदेश पर अपनी इच्छा के अनुसार राज्य करते हैं और अनेक प्रकार के भोग-आनन्द को भोगते हैं तथा नाना प्रकारेण राजक्रीड़ाओं की मौज-मस्ती मनाते हैं।

तपसाराधितः पूर्वं महात्मभिरुमापतिः।
तपसोऽर्थानुरूपैश्च राज्यं कुर्वन्ति भूतले ॥ 7 ॥

इन सभी भाग्यवान् महीपतियों ने अपने पूर्व जन्म में तपस्या से उमापति महादेव की जो आराधना का पुण्य अर्जित किया था, उसी के अनुरूप उनको इस जन्म में यह सौभाग्य मिला और वे इस भूतल पर आज राज कर रहे हैं।

देवपूजार्चनं दानं पूज्यषड्दर्शनादिकम्।
पुराणागमग्रन्थादि राजनीतिरनेकधा ॥ 8 ॥

ऐसे सौभाग्य के लिए अनेक प्रकार की देवपूजा, अर्चन, अनेक प्रकार के दान-पुण्य करने के अवसर, अनेक साधनाओं, षड्दर्शनादि के विधि-विधान, अनेक पुराण और आगम शास्त्र-ग्रन्थादि और अनेक राजनीतिक व्यवस्थाएँ पाई जाती हैं।

राज्योत्पतिमाह —

पञ्चमातृद्भवं राज्यं नैककलादिकौशलम्।
मातु (?) रेकैकोक्तगुणा नटेश्वरसमुद्भवाः ॥ 9 ॥

राज्य की सामान्यतया उत्पति पाँच मातृकाओं से हुई है और उन्हीं से अनेक कला-कौशलों की भी रचना हुई है। ये माताएँ भी अपने एक-एक गुणों के साथ भगवान् शिव-नटेश्वर से समुद्भूत हुई हैं।

बृहच्छुश्रूषया माता द्वितीया पौरुषोद्भवा।
स्त्रीणामङ्गोद्भवा माता गजमाता चतुर्थिका॥ 10॥
पञ्चमी चाश्वमाता च शेषा उपाङ्गवर्त्तिकाः।
पञ्चमात्रद्भवमिति इन्द्रराज्यसमं भवेत्॥ 11॥

इन माताओं के भी विविध नाम हैं— (1.) बृहत् शुश्रूषया माता, (2.) पौरुषोद्भवा माता, (3.) स्त्रीणामङ्गोद्भवा माता, (4.) गज माता और (5.) अश्वमाता। शेष सभी उपाङ्गवर्त्तिका हैं। इस प्रकार यह सब पञ्चमातृकाओं से बना स्वर्ग के इन्द्रलोक के राज्य के समान होता है।

बृहत् शुश्रूषया मातायात् राज्ञो दिनचर्यायाः —

बृहच्छुश्रूषया वक्ष्ये प्रहरादित्र्यार्धकम्।
प्राप्ते प्रत्यक्षप्रहरे शय्यायां रात्रितो गतौ॥ 12॥[1]

अब मैं बृहत् शुश्रूषया माता (आराम देने वाली मातृका, बड़ी तिमारदारी जैसी) के बारे में कहता हूँ जो रात्रि के पहले प्रहर से आरम्भ होकर आधे रात के बीतने तक आराम की नींद निकालने में राजा को सुखदायी होती है। रात्रि के प्रथम प्रहर बीतते ही राजा को शयन के लिए अपनी शय्या पर आराम से नींद लेने हेतु चले जाना चाहिए।

शय्यास्थ उद्भवेद्राजा धर्ममूतिर्भवेत्सदा।
गोदानयुक् स्वर्णपादं निक्षिपेत् प्रतिभूतलम्॥ 13॥

प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में राजा को चाहिए कि वह शय्या से उठ जाए। उस ब्रह्ममुहूर्त काल में जागा हुआ राजा अपनी शय्या से उठकर बैठा हुआ एक प्रकार से धर्ममूर्ति स्वरूप ही होता है। अस्तु, उसे उठते ही सबसे पहला कर्त्तव्य गोदान करना होता

---

1. 'बृहच्छुश्रूषया वक्ष्ये प्रहरादिजयार्धकम्?। प्राप्ते प्रत्यक्षप्रहरे शय्यायां संस्थितो गतौ?' इति प्रकाशित पाठः।
चाणक्य ने राजा की दिनचर्या बड़ी ही जटिल वर्णित की है। प्रशासन के भार को ध्यान में रखकर ही राजा की दिनचर्या निर्धारित करते हुए दिन-रात दोनों को आठ-आठ भागों में बाँट लिया गया था। समय का ध्यान सूर्य द्वारा या समय सूचक जलघड़ी से जाना जाता था। इस प्रकार समय का प्रत्येक विभाजन (नालिका) डेढ़ घण्टे के बराबर होता था। सामान्यतया रात्रि में डेढ़ से तीन बजे तक शयन, तूर्यवादन सुनकर उठना, शास्त्र व अगले दिन के कार्यों पर विचार करना। सुबह तीन से चार बजे तक नीति व योजनाओं का निर्धारण करना और उनके अनुसार अपने गुप्त दूत भेजना। सुबह साढ़े चार से छह बजे तक यज्ञ कराने वाले पुरोहित, राजगुरु व कुलपुरोहित के साथ बैठना, आशीर्वाद लेना इत्यादि...। विष्णुधर्मोत्तरपुराण, मनुस्मृति, शङ्खलिखितस्मृति, वृद्धवशिष्ठस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति आदि में भी इस प्रकार की दिनचर्या का वर्णन हुआ है।

है। इसलिए भूमि पर पाँव रखने से पूर्व उसे गोदान की स्वर्ण मुद्रा भूमि पर भेंट करके उन पर शय्या से उतरते समय अपना पाँव रखना चाहिए।

दन्तकाष्ठादिकं स्नानमौषधादिकसम्भृतम्।
ततो देवार्चनं कृत्वा स्नापनालेप्य पुष्पतः ॥ 14 ॥

अनन्तर राजा को दन्तधावन हेतु (नीम या बबूल) का चाहिए। स्नान के लिए प्रयोजन वाले जल में सुगन्धित द्रव्यों, औषधि चाहिए। इसके बाद राजा को चाहिए कि वह देवार्चन करके अपने शरीर पर देवपुष्पों से केसर, कुङ्कुमादि का लेप करे, तिलक छापा लगाएँ।

गन्ध-धूप-नैवेद्यैश्च पूजां कृत्वा अरार्त्तिकम्।
पुरोहिते ततो दानमपूर्वं [1]स्तुति आदिकम्॥ 15 ॥

गन्ध-पुष्प, धूप, नैवद्य से भगवान् की मूर्ति की पूजा करके आरती उतारें और पुरोहित से दान के पूर्व की स्तुति आदि करवाएँ।

राजा गुरूद्गतं दानं शैवशास्त्रेणपूजनम्।
भटेन स्तुतितो बोध्यं येनान्ते दर्शनं भवेत्॥ 16 ॥

इसके उपरान्त राजा अपने गुरु के सामने दान का सङ्कल्प लेकर गुरु द्वारा प्रदत्त जल को छोड़े, फिर भट अर्थात् पूजा पाठ कराने वाले पण्डित के द्वारा की जाने वाली देवस्तुति को सुनते-समझते हुए साथ-साथ स्तुति करें; उसके बाद ही लोक, प्रजा को दर्शन देवें।

गोपूजां च ततः कृत्वा योगिनीं च कुमारिकाम्।
अनास्तिके कृपादानं शस्त्रार्थे तु निरो(रु!)पणम्॥ 17 ॥

इसी बीच, गोपूजा करके योगिनी और कुमारिकाओं व आस्तिक लोगों पर कृपा करता हुआ शस्त्र धारण करने हेतु अर्थात् तलवार, कमरबन्ध आदि से सुसज्जित होने हेतु अग्रसर हो।

वस्त्रशृङ्गारकं कृत्वा सिंहासनसुसंस्थितः।
चतुष्कतिलकं कृत्वा प्रवृत्तस्तिलकेश्वरः॥ 18 ॥

साथ ही वस्त्रादि से अपना शृङ्गार करके सिंहासन पर जाकर विराजित हो जाए और चौकोर तिलक लगाने के बाद तिलकेश्वर रूप में प्रवृत्त हो जाएँ।

---

1. 'ससवादिकम् ?' इति प्रकाशित पाठः।
   विष्णुधर्मोत्तरपुराण में आया है— स्नानं कुर्यात्ततः पश्चाद्दन्तधावनपूर्वकम्। औषधैर्मन्त्रपूतैस्तु पानीयैर्विविधैः शुभैः॥ सन्ध्यामुपास्य प्रयतः कृतजप्यः समाहितः। (वीरमित्रोदय, राजनीतिप्रकाश पृष्ठ 156)

नरवीरभटाश्चैव प्रणमन्ति महीपतिम्।
धर्मोपदेशं दत्वा च तथा जलसमाकुले॥ 21॥

इस अवसर पर राजा को सभी नरवीर और भटगण (ठाकुर, उमराव, सामन्तादि) प्रणाम करें और अपनी भक्ति-निष्ठा राजा के प्रति व्यक्त करें। इसके बाद, राजा सभी जन समुदाय को धर्मोपदेश (यथोचित आज्ञादि) करें।

शृङ्गारं च ततः कृत्वा दिव्यालङ्कारशोभितम्।
सभामण्डले गवाक्षे महासिंहासने स्थितम्॥ 20॥
चतुष्कावसरे चैव वर्तते जनसङ्कुलम्।
प्रणिपत्य समस्तैश्च मण्डलेश्वरकादिभिः॥ 21॥

राजा को चाहिए कि वह दिव्य अलङ्कारों से विभूषित होकर, शृङ्गार करके सभा मण्डप के झरोखे में रखे हुए सिंहासन पर विराजित होकर गवाक्ष से राजमहल के चौक में एकत्रित प्रजाजनों के सङ्कुल को दर्शन देकर उनका प्रणाम स्वीकार करें, उनमें यदि कई-एक मण्डलेश्वर भी हों तो उनका भी प्रणाम स्वीकारें।

गजयुद्धं मेषयुद्धं विविधं मल्लयुद्धकम्।
विधेयं छुरिकायुद्धं माहिषं कौर्कुटादिकम्॥ 22॥

इसी प्रकार अपने आमोद-प्रमोद के लिए गजयुद्ध, मेंढ़ों की भिड़न्त, तरह-तरह के पहलवानों की कुश्ती, तलवार-छुरी की पैंतरे बाजी, भैंसों की भिड़न्त, मुर्गों-लावकों की लड़ाई जैसे अनुरञ्जनकारी आयोजन करके उत्सव जैसा वातावरण बनाए और जनता सहित स्वानन्द लें।

पौरुषोद्भव मातायात्क्रमाह —

एषा पुरुषजा माता स्वीये स्वीये च राज्यके।
वाटिकां च समाश्रित्य पूर्वाह्णे देवताश्रमम्॥ 23॥

अब पुरुषजा माता के बारे में कहता हूँ। पूर्वाह्ण काल में अपने-अपने राज्यों, ठिकानों से आए समस्त सामन्त-सरदारों, लघु राजा, माण्डलिक बगीचे में बने हुए देवमन्दिर के आङ्गन के आश्रम में एकत्रित हो जाएँ।

गजाश्वरथकोष्ठासिकिरीटच्छत्रसङ्कुलैः।
अलम्बचिह्नपताकैः टका ? स्तम्भैरनेकशः॥ 24॥

उनके साथ आए हुए हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट, तलवारों, मुकुटों, छत्रों के समूहों तथा लम्बी-लम्बी ध्वज-पताकाओं, रेशमी पटकों और नाना स्तम्भों से सज-धजकर महोत्सव आयोजित करें।

प्रतिष्ठाप्य पुरे प्रीत्या राजगेहे उमापतिम्।
कण्ठस्नानादिकं कृत्वा मण्डपे च शनैः स्थितैः॥ 25॥

इसी अवधि में राजा अपने राजमहल में भगवान् उमापति शिव को प्रीतिपूर्वक प्रतिष्ठापित करके कण्ठ तक जल में डुबकी लगाकर स्नान करके धीरे से मण्डप में आकर बैठ जाएँ।

प्रेक्षणीयं देवताग्रे वाद्यगीतनृत्यादिकम्।
आरात्रिकं ततो दृष्ट्वा प्रदक्षिणविसर्जनम्॥ 26॥

इसी बीच, देवता के आगे जो-जो प्रेक्षणीय वाद्य, गीत, नृत्यादि हों उनको करके भगवान् की आरती उताकर दर्शन करें और प्रदक्षिणा कर सभा का विसर्जन करें।

भुक्ताशनः स्थितो राजाऽग्रवृत्त्या जनसङ्कुलैः।
भुक्त्वोत्तरं ततः स्थाने सैन्यावसरवर्त्तनम्॥ 27॥

राजा अपने अग्रवर्ती जनसङ्कुल (सभासद, सामन्तादिगण) आदि के समूह के साथ भुक्तासन में स्थित हों अर्थात् भोजनशाला में जाएँ और पङ्क्ति में बैठकर भोजन करें। इस प्रकार सभी के साथ भोजन ग्रहण कर अपनी सेना के निरीक्षण के लिए सैन्यस्थान या शिविर-छावनी में जाने को (सैन्यावसर वर्त्तन) कार्यक्रम तय करें।

स्त्रीणामङ्गोद्भवा मातायात्क्रमाह —

स्त्रीणामङ्गोद्भवा माता प्रवृत्तं जनसङ्कुलम्।
अबला बाला स्त्रियश्च मुग्धाः प्रौढादिकास्तथा॥ 28॥
एवं शय्यां महाराजः स्त्रीजनैः परिवेष्टितः।
निद्रानन्तरतो वत्स वर्तते जागृती दशा॥ 29॥

(अब मैं स्त्रीणामङ्गोद्भवा माता नामक आराम के विषय में बताता हूँ) इसमें प्रवृत्त होने पर राजा अबला, बाला, स्त्रियां, मुग्धा, प्रौढ़ादि विविध वयी महिलाओं की भीड़, जनसङ्कुलादि से घिरा रहता है और इस प्रकार घिरे-घिरे ही आराम के लिए अपनी शय्या पर लेट जाता है। इस प्रकार निद्रा लेकर हे वत्स! राजा पुनः जागता है।

तत्र रीत्युपयोग्यं च शृङ्गारं क्रियते पुनः।
द्वादशादित्यसङ्काशद्युतितोऽपि महान्परः॥ 30॥

जागने पर वह पुनः राजरीति के अनुसार उपयुक्त शृङ्गार धारण करता है और द्वादशादित्य की ज्योति के समान अपने तेज से प्रकाशित होकर शोभायमान होता है।

सभामध्ये समायातः स्थितः सिंहासने तथा।
सर्वावसरकं तत्र प्रवृत्तं जनसङ्कुलम्॥ 31॥

वह सभा के मध्य में आकर अपने सिंहासन पर विराजमान होकर अपराह्न काल में सर्वावसरक अर्थात् राजकीय सभी अवसरों के कार्यों के निस्तारण के लिए एकत्रित राजसभा के जनसङ्कुल में प्रवृत्त होता है।

राजसभासदवर्णनं —

द्वादशदण्डनायकाः$_{12}$ प्रतीहारद्वयी$_{2}$ तथा।
अमात्यराजकरणाः श्रीकरणा वयस्कराः॥ 32॥

राजा की सभा में, राजा के सामने बारह दण्डनायक, दो प्रतिहारी तथा आमात्य, राज्याधिकारी, कोषाधिकारी व अन्य वयस्क कर्मचारी होने चाहिए।

चत्वारो$_{4}$ मण्डलेशाश्च मण्डलीकाश्च द्वादश$_{12}$।
महासामन्ता द्विरष्ट$_{16}$ सामन्ताश्च युगाष्टकाः$_{32}$॥ 33॥

इसी प्रकार चार मण्डलेश, बारह मण्डलीक, सोलह महासामन्त तथा बत्तीस सामन्त होने चाहिए।[1]

लघवः षष्ट्युत्तरं चतुःशतं$_{460}$ चतुरंशिकाः।
शेषास्तु राजपुत्राश्च असङ्ख्यातास्तथैव च॥ 34॥

इसी प्रकार चार सौ साठ लघु सामन्त जो कि चतुरंशिकाः अर्थात् चौथ जमा कराने वाले या चतुर्थांश के अधिकारी होते और शेष राजपुत्र जिनकी संख्या निश्चित नहीं है, वे इस सभा में आएँगे।

स्वर्णालङ्कारखचितैर्नैकरत्नैस्तु सङ्कुलैः।
दिव्यशृङ्गारकैः सर्वे महाराजप्रत्यात्मिकाः॥ 35॥

ये सभी दरबारी जन स्वर्णाभूषणों से अलंकृत, अनेकों रत्नों से जटित गहनों को धारण करके और दिव्य वस्त्रों से भूषित ऐसे लगते हैं मानों ये सब महाराज के ही प्रतिरूप हों।

अथ गजमातायात्क्रमाह —

गजाः शृङ्गारयुक्ताश्च आनीतास्तु महोत्कटाः।

---

1. मेवाड़ रियासत में सोलह-बत्तीसों की परम्परा रही है। सोलह उमराव और बत्तीस राव सभा में होते थे। इनके ठिकानों को इसी दृष्टि से सम्मान दिया जाता था। महाराणा कुम्भ के काल में यह परम्परा थी। अमरसिंह द्वितीय के शासनकाल में भी इन कोटियों के अधिकार, मर्यादा आदि तय की गई।

युध्यमानास्तथा [1]कुर्य्यान्तरांश्च मारणे रतान्॥ 36॥
गजोद्भवा तत्र माता अश्वमाता सन्धोद्‌गमैः ?।

सभा के अवसर पर राजा व सभासद के सामने निरीक्षण के लिए सजे-धजे, आभरणों से भूषित, महोत्कट गजदलों को लाया जाता है जो युद्ध में लड़ने के निमित्त ही तैयार किए हों तथा नरों को मारने में रत रहने के लिए पूरी तरह से सिखाए गए हों। यह चतुर्थ गजोद्भवा माता के बारे में कहा गया, इसी तरह पाँचवीं अश्वमाता के बारे में भी सन्धिकाल को समझें।

परराष्ट्रोद्भवा ये च समये तत्र दर्शयेत्॥ 37॥
तस्यां ? मनोभवः कम्पः स्वराज्यं च स्वर्गा(?-र्गो)त्पत्तिः।
लघुराष्ट्रोद्भवा ये च प्रसङ्गे दर्शयेदपि॥ 38॥

इस बीच, सभा में कोई परराष्ट्र में जन्मे व्यक्ति तथा राजदूत आदि दिखाई देते हों तो राजा उनके मनोभाव, कम्प-दशा, उनके राज्य के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए भेंट करें, उनके पूर्वजों के बारे में भी जानकारी लें। इसी तरह लघु राष्ट्रों में उत्पन्न कोई लोग इस प्रसङ्ग में दिखाई दें तो उनसे भी प्रेमपूर्वक भेंट का अवसर प्राप्त किया जाए।

महाराजाधिराजश्च परमेश्वरसञ्ज्ञितः।
भुवनैकनाथो महाराजचक्रचूडामणिः॥ 39॥

क्योंकि, यह ज्ञातव्य है कि महाराजाधिराज एक प्रकार से परमेश्वर स्वरूप हैं जो इस पृथ्वी का एकमेव स्वामी है और महाराज चक्रचूड़ामणि हैं अर्थात् एक चक्रवर्ती, एकछत्र महाराजाधिराज है।

भूपालः सर्वकलाकुशलः उमापतिवरलब्धप्रतापतेजाः।
तथाऽन्यनृपाद्यमुखदर्पणो धर्मादिप्रशस्यावतारः॥ 40॥

ऐसा भूपाल सब कलाओं में कुशल और उसे उमापति भगवान् शिव का वरदान प्राप्त है और उसी के प्रताप, तेज से तथा अन्य राजाओं के लिए मुखदर्पण की तरह आदर्श रूप है जो धर्मादि के प्रशस्त-मान्य अवतार स्वरूप ही है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
महाराजाधिराजाधिकारो नामाष्टसप्ततितमं सूत्रम्॥ 78॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में
महाराजाधिराज अधिकार नामक अठहत्तरवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 78॥

---

1. 'कुर्यान्नवांश्च' इति प्रकाशित पाठः।

गजशालाप्रमाणहस्तिलक्षणकमेकोनाशीतितमं सूत्रम् ॥ 79 ॥

अधुना गजशालार्थे क्षेत्रभक्तिविधिं। विश्वकर्मोवाच —

लक्षणं गजशालानां कथयिष्याम्यनुक्रमात्।
षट्त्रिंशद्भिः पदैर्भक्तं क्षेत्रं विंशतिभिः करैः ॥ 1 ॥

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं अनुक्रम से गजशालाओं (हाथी बान्धने के ठाणों, पीलखाना) के बारे में कहता हूँ और उनके लक्षण बताता हूँ। इसके लिए सर्वप्रथम बीस गज के लम्बे चौड़े क्षेत्र को छत्तीस पदों में विभक्त करें।

वेदांशमध्यगर्भाढ्यं गजस्थानं महोत्तमम्।
दृढस्तम्भं भवेन्मध्यं घटैर्नवकरैर्युतम् ॥ 2 ॥

उन छत्तीस पदों में मध्य के चार पदों के गर्भस्थान को महोत्तम गजस्थान अर्थात् गज का ठाण समझें। इस गजस्थान के मध्य में नौ गज के पाषाण के घड़े हुए दृढ़ स्तम्भ अर्थात् खुमाल बनाएँ।

अलिन्दवेष्टितं भागे भागे भित्त्या च संयुतम्।
विस्तरोच्छ्रयतुल्यश्च पट्टानामुदयो भवेत् ॥ 3 ॥

इसके लिए अलिन्द या बरामदा बनाएँ जिसके बाहर भींत बनी हों। उस भींत की ऊँचाई उसके विस्तार के बराबर हो अर्थात् क्षेत्र के दो पद लगभग सात गज (चौदह फीट) हो और उस पर पट्टियों की छवाई की छत बनाई जाएँ।

भित्तित्रयसमायुक्तं द्वारमग्रदिशान्तिके।
छाद्यत्रयं क्रमयुक्तं घण्टाकलशभूषितम् ॥ 4 ॥

तीन ओर तीन भित्ति हो और आगे का भाग द्वार के रूप में खुला छोड़ें और तीन ओर की छत की छवाई पर गुम्बज और कलश बनाकर उसको सुन्दर रचना प्रदान करें।[1]

---

1. अमरकोश में गजशाला को वारी कहा गया है— वारी तु गजबन्धनीयत्यमरः। वराहमिहिर ने योगयात्रा में वारी या गजशाला के निर्माण की विधि इस प्रकार दी है— 150 हाथ लम्बा और 120 हाथ चौड़ी चतुष्कोण या वृत्ताकार हस्तिशाला के लिए वृद्धिकारक होती है। दस हाथ ऊँचा, दस हाथ लम्बा व चौड़ा तथा एक हाथ गहरा हस्तिस्थान बनाना चाहिए। हस्तिशाला का द्वार पूर्व दिशा में होना चाहिए, उत्तर में भी द्वार शुभदायक होता है किन्तु दक्षिण या पश्चिम में कभी द्वार नहीं रखना चाहिए। पूर्व व उत्तर दिशा में द्वार स्तम्भ गाड़ना चाहिए। उसमें सुदृढ काष्ठदण्डों को जोड़ना चाहिए तथा पश्चिम से पूर्व और दक्षिण से उत्तर की ओर अर्गला बनानी चाहिए। द्वार का विस्तार दस हाथ चौड़ा और दस हाथ ऊँचा रखना चाहिए। द्वार स्तम्भ के दोनों ओर चार-चार हाथ गड्ढा खोदना चाहिए। द्वार के स्तम्भ की ऊँचाई चौदह हाथ से अधिक रखनी चाहिए। हस्तिशाला के द्वार के बाद घेरा बनाने में एक बड़े स्तम्भ

दन्तिन्यादि षड्विधा गजशालाह —

दन्तिनी नाम विज्ञेया शाला विघ्नहरी सदा।
अलिन्दयुक्तं भूस्थानं भित्तिर्बाह्ये तु भागिका॥ 5॥
तस्या द्वारप्रदेशे तु कर्त्तव्यौ कूर्परावुभौ।
कर्णप्रासादिका कार्या द्वितीयालिन्दसंयुता॥ 6॥

इनमें 'दन्तिनी' नाम की गजशाला सभी विघ्नों को हरने वाली समझी गई है। यह अलिन्द अर्थात् बरामदा युक्त होती है। इसका भूमि स्थान बाहर की ओर भित्तियुक्त होता है। उसके द्वार के प्रदेश में दो कूर्पर अर्थात् खुमाले बनाए जाए, जो दोनों ओर हों। 'कर्णप्रासादिका' नामक गजशाला दूसरे प्रकार की है जिसके भी आलिन्द बने होते हैं।

द्वे द्वे वातायने कुर्याद् द्विद्विदिक्षु त्रिभित्तिका:।
प्राग्ग्रीवोऽग्रे भवेच्छाला सुभद्रेयमुदाहृता॥ 7॥

इस गजशाला के दो-दो झरोखे, वातायन प्रत्येक भींत में तीनों ओर की दिशाओं में बनाए जाएँ और उसके पूर्व की ओर एक शाला भी बनाएँ जो सुन्दर भद्र या दीवारों युक्त बनी हों।

अस्या एव यदा स्यातां प्राग्ग्रीवौ पार्श्वयोर्द्वयो:।
तदा सुभोगदा नाम तृतीया परिकीर्तिता॥ 8॥

ऐसी ही एक अन्य गजशाला के पूर्व की ओर आगे दोनों पार्श्वों में शाला बनी हो, तो ऐसी गजशाला को 'सुभोगदा' नामक तीसरी गजशाला कहा जाता है।

अस्या एव यदा पश्चात् प्राग्ग्रीव: क्रियतेऽपर:।
भद्रिका नाम शाला सा तदा द्विरदपुष्टिदा॥ 9॥

के बाद पाँच छोटे-छोटे स्तम्भ स्थापित करने चाहिए। उन स्तम्भों को चार-चार हाथ नीचे गाड़ना चाहिए। उन स्तम्भों में क्रम से छह, सात, आठ, नौ और दस छिद्र बनाने चाहिए और मातृका यानी कील छह अङ्गुल की बनानी चाहिए। इनको क्रमश: वेध योग्य छिद्रों में वेधित करना या ठोंकना चाहिए। इस प्रकार हस्तिशाला का सुदृढ़ द्वार बनाना चाहिए —सार्धं हस्तशतं दैर्घ्या सविंश विपुलाशतम्। चतुरस्राऽथवा वृत्ता वारी वारणवृद्धिदा॥ दशावगाहेन करा विस्तीर्णा दश चोपरि। अध: खातस्य पदवी हस्तमात्रा प्रकीर्तिता॥ कर्तव्यं पूर्वतो द्वारमुत्तरं वा शुभावहम्। दक्षिणं पश्चिमं वाऽपि न कर्त्तव्यं कथञ्चन॥ मेढकस्तम्भ मात्तृणां वृक्षाग्रं नावनौ क्षिपेत्। पूर्वाग्राच्चोत्तराग्राच्च संयोज्या नित्यमर्गला॥ दश विस्तारतो द्वारं पार्श्वयोस्तस्य मातृका:। चतुर्दशकरोत्सेधा नि:खात्य चतुर:करान्॥ षट्षण्मेढान्तरस्थाश्च मेढका: पञ्च पञ्च च। चतुर्हस्तनिखातास्ते समुच्छ्रायान्वदाम्यत:॥ षट्सप्ताष्टनवोत्सेधा दश चेति यथाक्रमम्। नव वा दश वा वेधा मातृका या: षडङ्गुला:॥ वेधहान्यावशेषा: स्युर्मातृका: क्रमशोऽपरा:। इति द्वारसमासोऽयं वार्य्यास्सम्परिकीर्तित:॥ (योगयात्रा 10, 2-9)

ऐसी ही एक अन्य गजशाला के पीछे की ओर प्राग्रीव शाला बनी हो तो उसे 'भद्रिका' नामक गजशाला कहते हैं जो हाथियों को पुष्टि देने वाली मानी जाती है। यह चौथे प्रकार की गजशाला है।

पञ्चमी चतुरश्रा स्याद् वर्षिणी नाम पूजिता।
प्राग्ग्रीवालिन्दनिर्यूह-हीना षष्ठी तथा परा॥ 10॥
शाला प्रमारिका धान्यधनजीवितहारिणी।
तदेतां वर्जयेदन्याः कुर्यात्सर्वार्थसिद्धये॥ 11॥

पाँचवें प्रकार की गजशाला का नाम 'वर्षिणी' है जो भी चौकोर आकार वाली होती है। इसी तरह प्राग्रीव, अलिन्द व निर्यूह से रहित छठवें प्रकार की गजशाला भी होती है जिसका नाम 'प्रमारिका' कहा गया है। ऐसी गजशाला धान्य, धन और जीवन का नाश करने वाली होती है। अस्तु, यह वर्जनीय है। इसे न बनाए और अन्य सभी पाँचों प्रकार की गजशालाएँ सर्वार्थ सिद्धिदायक होती है, अतः उन्हें अवश्य बनाएँ।

प्रमाणमिति शालानां हस्तिशालाः क्रमोदिताः।
षड्विधच्छन्दजा उक्ता वित्तजीवितवृद्धये॥ 12॥

इति षड्विधा[1] गजाशालाः।

इस प्रकार मैंने गजशाला का क्रमिक प्रमाण और स्वरूप बताया, जो छह प्रकार के छन्दों में निर्मित होती है और जिनसे धन और जनजीवन की वृद्धि होती है।

अधुना भद्रादीनां चतुर्विधा गजलक्षणमाह —

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हस्तिनां लक्षणं परम्।
गजा भद्रो मृगो मन्द्रः सङ्कीर्णश्च चतुर्विधाः॥ 13॥

अब मैं हाथियों के प्रधान लक्षणों को कहता हूँ। हाथियों के चार प्रकार होते हैं यथा— (1.) भद्र. (2.) मृग. (3.) मन्द्र और (4.) सङ्कीर्ण।

मुखन्ये (स्य) द्विगुणा दैर्घ्यं दीर्घाजे[2] जठरं भवेत्?।
जठरार्द्धं भवेद् गात्रं गात्रार्द्धं करमूलतः॥ 14॥
मूलार्द्धं च भवेदग्रं तत्तुल्या दंष्ट्रिकोत्तमा।
दंष्ट्रास्थौल्यार्द्धनखाश्च क्रमेण परिकीर्तिताः॥ 15॥

---

1. गजशाला का उक्त वर्णन समराङ्गणसूत्रधार से उद्धृत है। (द्रष्टव्य समराङ्गण. अध्याय 32)
2. दीर्घार्द्धे- स्यात्।

हाथी के प्रमाण के लिए उसके मुख को आधार माना गया है। हाथी के मुख से उसकी लम्बाई दुगुणी होती है और लम्बाई का आधा उसका जठर या पेट होता है। जठर का आधा उसका गात्र होता है और गात्र का आधा उसकी सूण्ड का मूल भाग होता है। उसकी सूण्ड के मूल भाग का आधा उसकी सूण्ड का अग्रभाग होता है और उसके बराबर ही उसके दाँत की मोटाई होती है। उसके दाँत की मोटाई से आधा उसका नख भाग होता है, यह सब मैंने क्रमवार बता दिया है।

स्थिरास्थिरैर्न्यतस्यास्ता युग्मं कुम्भानुवृत्तोद्भवा ?।
तस्याधो चाग्रगर्भे तु वायु(त्कं) कुम्भास्तदोर्ध्वतः ?॥ 16 ॥

(पाठ अस्पष्ट है फिर भी) हाथी के स्वभावानुसार अपने सिर को स्थिर व कभी अस्थिर रखता, इधर-उधर झूमता हुआ, सिर पर दो कुम्भों के समान गोल-गोल कुम्भ स्थल उभरे होते हैं। उन दोनों के नीचे की ओर आगे के गर्भ भाग के एक ओर कुम्भाकार उभार होता है, जो हाथी के ललाट का उभरा हुआ भाग होगा।

कुम्भकार[1]ललिताङ्गुष्ठावुभौ दंष्ट्रानुमध्यतः ?।
निम्न निम्ना दीर्घकरैर्भूप्राप्ते कदस्तकुण्डलीकृता ?॥ 17 ॥

इसी तरह हाथी के दाँतों के मध्य भाग में भी दोनों ओर कुम्भ के आकार का उभरा हुआ सुन्दर अङ्ग होता है जो दाँतो के ऊपर होठ का काम करता है और उसके नीचे-नीचे होती हुई एक लम्बी सूण्ड भूमि तक जाती हुई आगे जाकर कुण्डली रूप मे मुड़ जाती है।

पद्मपत्रस्तदा तुष्टं विपुलं कपोलं गम्भीरतः ?।
सौम्यत्तमद गण्डस्थलः श्रवणा शोषपर्णवाकृति ?॥ 18 ॥

उसके बड़े बड़े कमल पत्तों के समान गम्भीर कपोलों से निकले हुए दो कान होते हैं जिनके पास के गण्डस्थल, ललाट भाग से शीतल मद झरता रहता है, उसके कान बड़े पङ्खे की तरह बने होते हैं।

वायुकुम्भोभयपार्श्वे सूक्ष्म पिङ्गलोद्भवाः ?।
हयखुराकारमेतद् दंष्ट्रावर्णश्च चम्पकः ॥ 19 ॥

हाथी के मस्तक के दोनों ओर वायुकुम्भ अर्थात् गलफड़े कुछ-कुछ पीलेपन से युक्त होते हैं जो घोड़े की खुरों के आकार के होते हैं। उनसे ही चम्पक के सफेद रङ्ग के समान रङ्ग वाले दाँत निकले होते हैं।

---

1. 'कुम्भाकार'-इति स्यात्।

अग्रे तु तादिसि पुच्छान्त पृष्ठ अर्धोन्नता।[1]
ग्रीवास्तु ललिताङ्गाश्च वृत्ता [2]**पादपोत्तमा: ॥ 20 ॥**
सुविस्तीर्णा यस्य कुक्षिरर्धचन्द्राकृतिर्नखः।
सामान्यं मेढ्रमूलं च भद्राख्यः सर्वकामदः ॥ 21 ॥

आगे की ओर से पुच्छ के अन्त तक हाथी की पीठ आधे में कुछ उठी हुई होती है और हाथी की ग्रीवा बड़ी सुन्दर अङ्ग की गोल पेड़ के आकार की यानी पादप के गोल स्तम्भ जैसी। हाथी की काँख काफी विस्तीर्ण होती है। पाँवों के नख अर्धचन्द्राकृति के होते हैं। हाथी का मेढ्रमूल (जननेन्द्रिय का मूल) सामान्य होता है— ऐसे स्वरूप या लक्षण वाला 'भद्र' नामक हाथी होता है जो सकल मनोकामना पूर्ण करता है।

वादित्रैश्च समुत्साही सङ्ग्रामे चैव दुर्धरः।
सदानन्दोद्यतकरः प्रकरे सैन्यके पतिः ॥ 22 ॥

भद्र नामक हाथी गाजे-बाजे, नगारे, रणभेरी आदि वाद्यों के बजने पर बड़ा उत्साही हो जाता है और ऐसी स्थिति में संग्राम स्थल में बड़ा दुर्धर या पराक्रमी हो जाता है। सदा वह आनन्द में अपनी सूण्ड को ऊपर उठाए हुए सेना के समूह का नेतृत्व करता है मानो सेनापति स्वयं हो।

अविघ्नाक्षः साधुजने कालः क्रूरजने सदा।
महोत्कटो हस्तिबिम्बे नृपदृष्टेऽतिनन्दकृत् ॥ 23 ॥

यह भद्र हाथी बड़ा ही समझदार होता है। यह सज्जनों को कोई विघ्न नहीं पहुँचाता परन्तु क्रूर और दुष्ट जनों के लिए यह कालरूप बन जाता है— यह उसका सदा का ही स्वभाव है। ऐसे महोत्कट, बलवान और समझदार हाथी का बिम्ब अर्थात् शरीर-स्वरूप राजा की दृष्टि को बड़ा आनन्द पहुँचाने वाला होता है अर्थात् राजा ऐसे गुणवान हाथी को देख-देख कर सदा प्रसन्न रहते हैं।

पूजनीयः सदा राज्ञः तद्दन्तश्रीर्महोत्तमा।
तदेवा नृप सङ्कल्पं[3] **सर्वानन्दकरो भवेत् ॥ 24 ॥**

इसलिए ऐसा भद्रक हाथी राजा के लिए सदा पूजनीय है और उसके दाँतों की शोभा बड़ी महान है और उसी के अनुरूप राजा के सभी सङ्कल्प भी सर्वानन्द करने

---

1. 'अग्रे त चा द्रिसी पुच्छाद्यं पृष्ठ अर्धोन्नता?' इति प्रकाशित पाठः।
2. 'पादकोत्तमा: ?' इति प्रकाशित पाठः।
3. 'तदेवानप सकलापं?' इति प्रकाशित पाठः।

वाले होते हैं।

समुद्रा सवक्त्रा सारी आपसे बालदंष्ट्रिणाम्।

तस्य दन्ता भुजा सञ्ज्ञा धनुर्हस्ताबाणोत्तमैः **॥ 25 ॥**[1]

अपने मुख मुद्रा के ढँग से अर्थात् कठोर दाँतों से युक्त होने से उसके दाँत ही उसकी भुजा का नाम रखने वाले और महत्त्व के होते हैं मानो वे हाथों में धनुष और बाण लिए हुए हो।

रिपुराजनृपाः **सर्वे** चिन्तात्मानो **भयातुराः।**

आयुधत्यक्ताग्रतश्च **स भवेद् भुवनेश्वरः ॥ 26 ॥**

इति भद्रजातिलक्षणम्।

ऐसे बलवान और उत्तम गजराज से सभी शत्रु राजागण सदा चिन्ता में रहकर भयातुर रहते हैं और वे अपने आयुधों को उसके आगे त्याग कर ही (हथियार डालकर) कृपाकांक्षी बने रहकर अपनी भूमि के स्वामी बने रह सकते हैं।[2]

अथ मृगजातिलक्षणमाह —

दीर्घवक्त्रः **श्रीमुखश्चाऽपि** निर्मांसकपोलकः।

सुलोचनश्चलनेत्रः श्रवणद्वयातिक्रमः ॥ 2 ॥

भूम्यन्तं करदीर्घत्वं **दन्तोर्ध्वं** क्षामविस्तरम्।

तनुर्दीर्घोदरं **क्षामं लघुमारः पवनात्मजः ? ॥ 28 ॥**

वातात्मजमहावेगोऽङ्कुशमानयते **क्रमम्।**

उच्चनीचसमान् **भागान् क्रमते** शीघ्रचेतसा **॥ 29 ॥**

द्वितीय मृग जाति का गज लम्बे मुख और सुन्दर मुख वाला होने पर भी निर्मांस कपोल, सुन्दर और चञ्चल नेत्रों वाला, बड़े-बड़े दो कानों वाला, भूमि तक पहुँचती लम्बी सूण्ड वाला होता है। उसके दाँतों का ऊपरिभाग कम विस्तार वाला

---

1. 'समुद्र सवक्त्रा सारी आपसेवालदंष्ट्रिणाम्?। तस्य दन्ता भुजा राज्ञा? धनुर्हस्ताबाणोत्तमैः?॥' इति प्रकाशित पाठः।
2. पालकाप्य के गजशास्त्रम् में हाथियों का वर्णन विस्तार से हुआ है। भद्रादि संज्ञक गजों के लिए कहा गया है— धैर्यं शौर्यं पटुत्वं च विनीतत्वं सुकर्मता। अन्वर्थवेदिता चैव भयरूपेष्वमूढता॥ सुभगत्वं च वीरत्वं भद्रस्यैते गुणाः स्मृता। तेजांशकत्वाद्भद्रस्य नवपूगफलप्रभः॥ कृते कामप्रचारास्तु कामरूपधरा गजाः। त्रेतायां द्वापरेऽन्यत्र वाहनत्वेन योजिताः॥ त्रेतायां तद्गुणे किञ्चिन्मन्दत्वान्मन्द उच्यते। द्वापरे तु युगे सर्वे मृगतां प्राप्य संस्थिताः॥ कलौ तद्गुणसाङ्कर्यात्सङ्कीर्ण इति कथ्यते। कृते भद्रगुणाः सर्वे भवन्ति करिणां यतः॥ ततस्तत्र समुद्भूतो भद्र इत्यभिधीयते। जायते समद्वारः भद्रनामा मतङ्गजः। नवा$_9$ष्ट$_8$सप्त$_7$ चायामो सप्त$_7$पट्$_6$पञ्च$_5$ चोच्छ्रयः। (गज. 8, 1; तुलनीय बार्हस्वत्य संहिता वीर मित्रोदय में उद्धृत)

यानी पतला होता है। उदर पतला और लम्बा होता है। वह लघुमार और फुर्तीला होता है। वह बड़ा वेगवान और कठिनाई अर्थात् धीरे-धीरे अङ्कुश में आता है। उसके लिए उबड़-खाबड़ भूमि कोई मायने नहीं रखती। वह किसी भी प्रकार की भूमि पर बड़ी शीघ्रता से आक्रमण कर सकता है।

वादित्रे रमणीयत्वं समुत्साहेन नन्दति।
सङ्ग्रामे दुर्धरो घोर आरोहे चाऽऽक्रमेन्महीम्॥ 30॥

बाजो-गाजों के बीच रमणीय समारोह में वह बड़े उत्साह से आनन्दित होता है और संग्राम के अवसर पर बड़ा ही दुर्धर हो जाता है तथा घोर आक्रामक होकर भूमि पर आक्रमण के लिए उद्यत होता हुआ आरोही हो जाता है।

शृङ्गारानन्दरूपैश्च करे शृङ्गारकं विना।
मृगस्य लक्षणं चैतत् कथितं त्वपराजित॥ 31॥

इति मृगजातिलक्षणम्।

इस प्रकार के हाथी किसी भी शृङ्गार के बिना भी शृङ्गारानन्द प्रदान करते हैं। ये सब सुन्दर लक्षण हे अपराजित! मैंने तुम्हें मृग संज्ञक हाथी के बताए हैं।[1]

अथ मन्द्रजातिलक्षणमाह —

मन्द्रं च कथयिष्यामि शृणु चैकाग्रमानसः।
सुभरौ कपोलावङ्गं आत्मा गम्भीर एव च॥ 32॥

अब मैं मन्द्र गज के लक्षण कहता हूँ जिसे एकाग्र मानस से सुनो। ऐसा मन्द्र नामक हाथी भरे हुए कपोलयुक्त होता है। उसकी आत्मा भी बड़ी गम्भीर होती है।

बृहच्च जठरं कुक्षी विपुले विस्तृतेऽन्यतः।
रक्ताक्षोऽधोवक्त्रकश्च क्षुद्रदृष्टिनिरीक्षकः॥ 33॥
दुःखितौ च यदा कुम्भौ आद्येकादिषु पते ध्रुवम्?।
मदं विना समोदश्च रतो वै तारकर्मणि॥ 34॥

उसका जठर भी बड़ा होता है। उसकी कमर भी काफी विस्तृत और फैली हुई होती है। उसकी आँखें लाल-लाल होती है और वह सदा नीचे की ओर मुख लटकाए और क्षुद्र दृष्टि अर्थात् आस-पास ही देखता है। यदि इस प्रकार के हाथी

---

1. पालकाप्य का मत है— कृशकरचरणग्रीवाः स्थूलाक्षाः ह्रस्ववालमेढ्रोष्ठाः। संक्षिप्तपृष्ठवंशाः तनुमृगदन्ता मृगा ज्ञेयाः। नाहायामप्रहीणः कृशनिखिलतनुः धूसरच्छायदेहः। जिह्मो ह्युत्तानवेदी चपलगतिमतिः क्रोधनः सिन्धुचारी। स्थूलाक्षो द्वापरस्थः शुभगतिरलसः राजसो ह्रस्ववालः चण्डः पित्तप्रधानो मृग इति कथितो दीर्घदन्तः सुगात्रः॥ (गज. 8, मृग. 3)

के कुम्भ स्थल में कोई दर्द उठता है अर्थात् शिर:शूल होता है अथवा वह बिना किसी मदपान के भी आनन्द में होता है तो वह ऊँची कर्कश आवाज में चिङ्घाड़ने में मस्त हो जाता है।

कृष्णशिराः श्वेतदन्तो न क्षमे ? प्रतिबन्धकः।
वादित्रैर्भक्तिशब्दैश्च किञ्चित्कोपः प्रशाम्यति॥ 35॥

इसकी रक्तवाहिनी शिराएँ काली होती हैं। इसके दाँत श्वेत रङ्ग के होते हैं और यह किसी भी प्रतिबन्धक को सहन नहीं करता है। इसे उत्पात से काबू में लाने के लिए बाजों-गाजों से, मीठे शब्दों से फुसलाकर और बीच-बीच में कुछ-कुछ कोप दिखलाते हुए प्रशमित किया जाता है।

स्वसैन्ये परसैन्ये वा दुधरा रक्तगन्धतः।
एवमादिगुणैर्युक्तो मन्दजातिर्गजोत्तमः॥ 36॥

इति मन्द्रजातिलक्षणम्।

यह हाथी अपनी सेना या शत्रु की सेना में रक्त की गन्ध पाते ही बड़ा दुर्धर और असाध्य हो जाता है। उक्त गुणों से युक्त यह मन्द्र जाति का गज बड़ा उत्तम होता है।[1]

अथ सङ्कीर्णजातिगजलक्षणमाह —

वृत्तकाकारसंयुक्त आपादतलमस्तकम्।
रूपवाँल्ललिताङ्गश्च दृढकायो लघुस्वहृत्॥ 37॥

चतुर्थ प्रकार का गज आपाद मस्तक गोल-मटोल आकार का, भरा-पूरा शरीराङ्ग वाला होता है। यह बड़ा रूपवान, सुन्दर अङ्गों और दृढ़ शरीर वाला होता है।

जनाकुले भीचकितो वादित्रैर्गच्छति ध्रुवम्।
प्रतिबिम्बेन प्रविष्टो दन्तं दत्ते न वै रथे॥ 38॥

यह हाथी भारी भीड़ में भय से चकित हो जाता है और बाजों-गाजों से चमककर भागने लगता है, ऐसा निश्चय समझें। अपना प्रतिबिम्ब देखकर भी यह

---

1. पालकाप्य ने इसके लिए मन्द संज्ञा दी है। उसका मत है— विपुलकरकर्णवदनाः महोदराः स्थूलपेचकविषाणाः। बहुलबललम्बमांसाः हर्यक्षाः कुञ्जराः मन्दाः॥ (गज. 8, 2)
वराहमिहिर ने कहा है कि जिसके छाती और कक्षावलय या देह के मध्य का वलय ढीले हों, उदर लम्बा, चमड़ा स्थूल, कण्ठ, पेट और पूँछ के जड़ा हो और सिंह के समान निगाह हो, वह मन्द संज्ञक होता है— वक्षोऽथ कक्षावलयः श्लथाश्च लम्बोदरस्त्वग्बृहति गलश्च। स्थूला च कुक्षिः सह पेचकेन सैंही च दृङ्मन्दमतङ्गजस्य॥ (बृहत्संहिता 67, 2)

दाँतों से भेंटी मारने पर उद्यत हो जाता है और कभी-कभी रथों, गाड़ियों से भी भड़क जाता है और उन्हें उलटाने लगता है।

अनेकाडम्बरं दृष्ट्वा त्रासमेति निनादतः।
आरेकान्ते पारवश्ये शीघ्रपादगतिक्रमः॥ 39॥

वह अनेक आडम्बरों को देखकर डर जाता है जोर-जोर से चिङ्घाड़ने लगता है और एकान्त की ओर परवश होकर शीघ्रता से भागने लगता है।

भङ्गोन दापयेतस्य दर्धरकारयेत्किलम्।[1]
एभिर्गुणैश्च सम्युक्तो नाम्ना सङ्कीर्णको गजः॥ 40॥

इति सङ्कीर्णजातिलक्षणम्॥

इसको भागते हुए रोकना कठिन होता है, इसको उत्कीलन करना भी निश्चित रूप से दुर्धर होता है। इन गुणों से युक्त यह सङ्कीर्ण जाति का सङ्कीर्ण गज नाम से विख्यात् है।[2]

अथ गजवननिरूपणमाह —

अष्टौ वनानि ज्ञेयानि यतो गजसमुद्भवः।
प्राचीलोहितके चैव पौरकौशलके अपि॥ 41॥
कच्छाख्यं चैव कृष्णाख्यं दाशेरं चैव सप्तमम्।
अष्टमं माणिकं दण्डवनान्यष्टौ भवन्ति हि॥ 42॥

अब हाथियों के उद्भव होने के स्थानों में मुख्य आठ वनों के बारे में कहते हैं— (1.) प्राची, (2.) लोहित, (3.) पौर, (4.) कौशल, (5.) कच्छ, (6.) कृष्ण, (7.) दाशेर और (8.) माणिक। इस तरह हाथियों के दण्डवन आठ होते हैं।[3]

---

1. 'भृङ्गो न दापयेत्तस्य? दुर्धरः कारयेत्कलिम्' इति प्रकाशित पाठः।
2. लक्षणप्रकाश में 'पराशरसंहिता' का मत उद्धृत करते हुए कहा गया है कि सङ्कीर्ण को ही मिश्र कहा जाता है। वह भद्र, मन्द्र, मृग तीनों का मिश्रण होता है— मिश्रस्तु तेषां परस्परसंयोगजः सर्वसङ्कुललक्षण इति। मिश्र एव सङ्कीर्ण इति कथ्यते। विष्णुधर्मोत्तर में आया है— सङ्कीर्णलक्षणो नागः सङ्कीर्णश्च निगद्यते॥ पालकाप्य के एक अन्य पाठ में आया है— बह्वाशी बह्वालीकश्च दन्तपातेषु चाक्षमः। गच्छेत्प्रकृष्टवेगश्च भारं प्राप्यावसीदति॥ कृच्छ्राच्चाप्यायते नागः क्षिप्रं च परिहीयते। कट्वम्ललवणैश्चैव रूक्षैश्चातुरतां व्रजेत्॥ नित्यं च सान्त्वयेदेनं न चैनमभितापयेत्। सर्वेषां लक्षणैः कैश्चिद्युक्तो मिश्रो भवेद्गजः॥ (वीरमित्रोदय, पृष्ठ 352) इसी प्रकार लक्षणप्रकाशकार ने बार्हस्पत्यसंहिता से भी अनेक श्लोक उद्धृत किए हैं।
3. पालकाप्य की संज्ञाएँ किञ्चित् पृथक् हैं— पूर्वं नागवनं प्राच्यं ततश्चेदिकरूषकम्। दशार्णकं ततो विद्यात् ततः स्यादाङ्गेरेयिकम॥ कालिङ्गकं पञ्चमं स्यात षष्ठं स्यादपराजितम। सौराष्ट्रकं सप्तमं स्यात ततः पाञ्चनदं

पूर्वे वेगवती तीरे प्राचीवनसमुद्भवः।

जालन्धरकाश्मीरान्तं **लोहितं** वनमुच्यते॥ 43॥

पूर्व दिशा में वेगवती नदी के किनारे पर 'प्राची' वन नामक प्रदेश है। जालन्धर से लेकर काश्मीर के अन्त तक के भाग को 'लोहित' वन कहते हैं।

वारुणोदधिमासाद्य **वनं** कच्छाभिधानकम्।

गोदावरीदण्डकाख्यं **कृष्णं** तद्वनमुच्यते॥ 44॥

समुद्र के साथ लगा हुआ जो भाग है वहाँ 'कच्छ' वन नामक भूभाग है। गोदावरी नदी के किनारे दण्डक वन नामक स्थान पर 'कृष्ण' नामक वन कहा गया है।

श्रीशैलः स्वामिदेवश्च **मलयो** नीलपर्वतः।

त्रिकूटः पर्वतोश्चैते वनं दाशेरसञ्ज्ञकम्॥ 45॥

श्रीशैल, स्वामीदेव, मलय, नीलपर्वत तथा त्रिकूट पर्वतों के वन को 'दाशेर' वन कहते है।

विन्ध्याख्यास्तु **पर्यन्तं** कलिङ्गरत्नपुरोदः ?।

मणिकदण्डाभिधानं वनानामुत्तमोत्तमम्॥ 46॥

विन्ध्याचल पर्वत से लेकर कलिङ्ग, रत्नपुर तक के भूभाग को 'मणिक' दण्ड वन नाम से वनों में सर्वोतम वन कहा गया है।

चौडबङ्गे **कौशले च पौरे** सौराष्ट्रके **तथा**।

बदरीकोपकण्ठे **च** विदुर्घोरवनानि **च**॥ 47॥

चौडप्रदेश बङ्ग प्रदेश के वनों को 'कौशल' वन नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त सौराष्ट्र प्रदेश में पौर और बदरी के उपकण्ठ प्रदेश के वन को उर्घोरवन नाम से विद्वान लोग वनों को जानते हैं।

परस्पर वनस्थितिं —

प्राचीलोहितयोर्मध्यं **सामान्यं** पौरकौशले।

कच्छे कृष्णो उत्तमं च दाशेर मणिकेऽधिकम्॥ 48॥

अब इन वनों की पारस्परिक तुलना करके देख रहे हैं। प्राची वन और लोहित वन के बीच में पौर और कौशल वन सामान्य कहे गए हैं। कच्छ के वन और कृष्ण वन उत्तम और दाशेर तथा मणिक वन तो इनसे भी अधिक उत्तम कह गए हैं।

परस्पर गजस्थितिं —

सामान्ये चैव सङ्कीर्णो मन्द्रश्चैवं त मध्यमे।

उत्तमे मृगरूपश्च भद्राख्यश्चोत्तमोत्तमे ॥ 49 ॥

अब हाथियों की भी परस्पर तुलना करके देखें। सङ्कीर्ण नामक गज सामान्य होता है। मन्द्र नामक गज मध्यम होता है। मृग नामक गज उत्तम और भद्र नामक गज सर्वोत्तम होता है।

स्वके स्वके वने चैव एकैकं च चतुर्विधम्।
प्रमाणानि ततो वक्ष्ये हस्तसङ्ख्यादितः क्रमात् ॥ 50 ॥
सामान्यस्त्वेव षड्ढस्तो मध्यमः सप्तहस्तकः।
उत्तमश्चाष्टहस्तो नवहस्त उत्तमोत्तमः ॥ 51 ॥

अब अपने-अपने वन के एक-एक के चार प्रकार और प्रमाण तथा उनके क्रम से विस्तार का हस्त संख्या प्रमाण दिया जाता है। सामान्य वन का हाथी 6 गज की लम्बाई वाला, मध्यम वन का हाथी 7 गज, उत्तम वन का हाथी 8 गज तथा उत्तमोत्तम वन का हाथी 9 गज की लम्बाई वाला कहा गया है।[1]

मन्द्रो मृगश्च भद्रश्च सङ्कीर्णश्च चतुर्विधाः।
प्रमाणानि च ख्यातानि कथितान्यपराजित ॥ 52 ॥

इस तरह हे अपराजित! मैंने तुम्हें 1. मन्द्र, 2. मृग, 3. भद्र और 4. सङ्कीर्ण चारों प्रकार के हाथियों के प्रमाण एवं उनकी ख्याति कही है।

अन्यदप्याह —

हस्तिधामश्रयं कुर्यात् पञ्च पञ्च त्रयाङ्कुशाम्।
द्वार समद्रवोक्त्या सङ्ख्याश्च दशमेव च ॥ 53 ॥
पञ्चाश्रयाश्रयी शाला रन्ध सप्तहस्तोद्भवा।
खण्डवार हारत्रयं कार्या सन्ताप शमको विदुः ॥ 54 ॥[2]

(उक्त दोनों श्लोक भ्रष्ट हैं, साधु पाठ कल्पित करने पर निम्न अर्थ होगा) हस्तिधाम अर्थात् गजशाला के आश्रय में पाँच-पाँच त्रयांशक (सम्भवतया त्रिशूल जैसे भाले) जो हस्तिशाला के द्वारों की ऊँचाई के बराबर लम्बे हों और उनकी इस

---

1. उत्पलभट्ट ने इस प्रसङ्ग में पराशरसंहिता का मत उद्धृत किया है— परिणाहौ दशसमो नवायामः स उच्छ्रयः। सप्तज्येष्ठप्रमाणस्य नागस्य समुदाहृतः॥ ज्येष्ठात् सप्तमभागोनो मध्यमो मध्यमाद्गजः। अन्त्यः षड्भागहीनः स्यादतोऽन्यो न स पूजितः॥ मुखादापेचकं दैर्घ्यं पृथुपार्श्वोदरान्तरम्। अनाह उच्छ्रयः पादाद्विज्ञेयो यावदासनम्॥ (बृहत्संहिता 67, 4 पर उद्धृत)
2. 'हस्तिधामत्रयं कुर्यात् पञ्च पञ्च त्रयांकुशाम्?। द्वाद (र) सम (मु) दोक्तव्या वंस्थाश्च दशमेव च?॥ पञ्च (श्चा) श्रम तत्र यतारा गन्ध सप्तविधोद्भवा?। षड्वार हारत्रयकामं सप्तापशमक्तो विदः?॥' इति प्रकाशित

तरह से पाँच-पाँच मिलकर दश संख्या हो जाएगी। इस पाँच आश्रयों—भालों कुन्तलों के आश्रय में रहने वाली यह गजशाला के रन्ध्र-द्वार सात हाथ की ऊँचाई के हों। गजशाला की तीनों दीवारों में खण्डवार तीन द्वार बनाए जाने चाहिए जिनसे कभी कोई सङ्कट की अवस्था में हाथियों को इन त्रिशूलों, कुन्तलों से नियन्त्रण में किया जा सके और सन्ताप का शमन किया जा सके, ऐसा विद्वान् लोग मानते हैं।[1]

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्त श्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां गजशालाप्रमाणहस्तिलक्षणाधिकारो नामैकोनाशीतितम सूत्रम्॥ 79॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में गजशाला प्रमाण, हस्तिलक्षण अधिकार नामक उनासीवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 79॥

अश्वलक्षणशाला नामाशीतितमं सूत्रम्॥ 80॥

विश्वकर्मोवाच —

गजाश्व कथिता वत्स अश्वाख्यानमतः शृणु।
आदितेजोमया अश्वाः पारावारसमुद्भवाः॥ 1॥

1. वराहमिहिराचार्य ने बृहद्योगयात्रा में गजलक्षण इस प्रकार बताए हैं— माभूत् प्रसङ्गादतिविस्तरोऽत्र गजाश्वपुंलक्षणदर्शनेषु। निमित्तमात्रं कथयाम्यतोऽहं प्रयाणकालोपयिकं नृपाणाम्॥ ताम्रौष्ठतालुवदनाः कलविङ्कनेत्राः स्निग्धोन्नताग्रदशनाः पृथुलायतास्याः। चापोन्नतायतनिगूढनिमग्नवंशा स्तन्वेकरोमचितकूर्मसमानकुम्भाः॥ विस्तीर्णकर्णहनुनाभिललाटगुह्याः कूर्मोन्नतैर्द्विनवविंशतिभिर्नखैश्च। रेखात्रयोपचितवृत्तकराः सुवाला धन्याः सुगन्धिमदपुष्करमारुताश्च॥ दीर्घाङ्गुलिरक्तपुष्कराः सजलाम्भोदनिनादवृंहिणः। बृहदायतवृत्तकंधरा धन्या भूमिपतेर्मताङ्गजाः॥ निर्मदाभ्यधिकहीननखाङ्गान् कुब्जवामनकमेष विषाणाम्। दृश्यकोशफलपुष्करहीनान् श्यावनीलशवलासिततालून्॥ स्वल्पवक्त्ररुहमत्कुणखण्डान् हस्तिनीं च गजलक्षणयुक्ताम्। गर्भिणीं च नृपतिः परदेशं प्रापयेदतिविरूपफलास्ते॥ दत्तमूलपरिणाहदीर्घतां द्विः प्रमुच्य परतोऽस्य कल्पयेत्। श्यावपूतिमलरक्तदर्शनं पापसत्त्वसदृशं च पापदम्॥ पार्थिवोपरणाकृतिं यदा चिह्नमुद्वहति कल्पिते रदे। श्रीजयार्थबलवृद्धयस्तदा स्निग्धशुक्लरुचिराश्च शोभनाः॥ दक्षिणे शुभमतीव शोभनं पापमप्यतिविरूपमन्यतः। याप्यता भवति तद्विपर्यये विस्तरोऽन्यमुनिभिः प्रकीर्तितः॥ मूलमध्यदशनाग्रसंस्थिता देवदैत्यमनुजाः क्रमात्ततः। स्फीतमध्य परिपेलवं फलं शीघ्रमध्यचिरकालसम्भवम्॥ दत्तभङ्गफलमत्र दक्षिणे भूपदेशबलविद्रवप्रदम्। वामतः सुतपुरोहिते भयान् हन्ति साटविकदारनायकान्॥ आदिशेदुभयभङ्गदर्शनात् पार्थिवस्य सकलं कुलक्षयम्। सौम्य लग्नतिथिभादिभिः शुभं वर्धतेऽशुभमतोऽन्यथा भवेत्॥ क्षीरवृक्षफलपुष्पपादपेष्वापगातटविघट्टनेन वा। वामध्यरदभङ्गखण्डने शत्रुनाश कृदतोऽन्यथापरम्॥ स्खलिगतितिरकस्मात् त्रस्तकर्णोऽतिदीनः श्वसिति मृदु सुदीर्घ न्यस्तहस्तः पृथिव्याम्। द्रुतमुकुलितदृष्टिः स्वप्नशीलो विलोमो भयकृदहितभक्षी नैकशोऽसृज्छकृत्कृत्॥ वल्मीकस्थाणुगुल्मक्षुपतरुमथनः स्वेच्छया दृष्टिर्यायाद्यात्रानुलोमं त्वरितपदगतिर्वक्त्रमुन्नाम्य चोच्चैः। कक्षासन्नाहकाले जनयति न मुहुः शीकरं वृंहितं

विश्वकर्मा बोले कि हे वत्स! अब तक तो मैंने हाथियों के बारे में कहा था। अब तुम अश्वाख्यान भी सुनो। ये अश्व आदि तेजोमय रूप है और समुद्र से उत्पन्न हुए हैं।

अथाश्वोत्पत्तिदेशा: —

तुरकाद्भवा विख्याता: प्रान्ता दक्षराष्ट्रोद्भवा:।
महावन्तन्तोद्भवा[1] वेण्वा वेगवती तटे॥ 2॥
चञ्चलाश्चाण्डदेशे च डाहाले प्रतिचारका:।
एते चाष्टविधा अश्वाश्चातुर्वर्ण्यं च कथ्यते॥ 3॥

सामान्यतया तुरक देश में उत्पन्न अश्व विख्यात है। दक्षराष्ट्रोद्भव, महावनों के अन्त में उत्पन्न होने वाले, वेणु, वेगवती नदी के तट पर उत्पन्न होने वाले, चञ्चला, चण्ड देश में उत्पन्न होने वाले, डाहाल में प्रतिचार करने वाले— ये आठ प्रकार के अश्व होते हैं। इनमें भी पृथक-पृथक चार वर्ण होते हैं।[2]

अथाश्वाश्चातुर्वर्ण्यमाह —

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा अश्वाश्चत्वार उत्तमा:।

इनमें (1.) ब्राह्मण, (2.) क्षत्रिय, (3.) वैश्य और (4.) शूद्र— ये चार प्रकार के उत्तम अश्व होते हैं।

बहूदके प्रविष्टश्च पिबेत्तोयं शिरोद ये॥ 4॥
स्थिरक्रमाद् गच्छति चाऽऽसने शुद्धमना स्थिर:।
स्वामिनो रोहणे चेत: पश्येद्धृदयचक्षुषा॥ 5॥
शब्दैश्च गर्जनाकारै: सङ्ग्रामे स्वामितारण:।
एभिर्गुणै: समायुक्त: सोऽश्वो वै विप्रजातिक:॥ 6॥

जो गहरे पानी में प्रवेश करके सिर तक डुबकी लगा कर पानी पीते हैं, जो स्थिरतापूर्वक क्रम से चलते हैं, स्वामी के आसन ग्रहण करते समय भी स्थिर चित्त से खड़े रहते हैं, स्वामी की सवारी को मन-ही-मन अनुभव करते हैं यानी मन की

---

1. 'महावनान्तरुद्वेगा?' इति प्रकाशित पाठ:।
2. हमारे यहाँ पर अश्वशास्त्र की विस्तृत परम्परा देखने में आती है। नकुल का अश्वशास्त्र, पराशरसंहिता, वररुचि कृत अश्वविद्या, किल्हण का सारसमुच्चय, गणकृत अश्वायुर्वेद, जयदत्तकृत अश्वायुर्वेद, भोजकृत शालीहोत्रम् आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध है। नकुलकृत अश्वचिकित्सा में चार प्रकार अश्वों का वर्णन है। देश भेद से उत्पन्न अश्वों का वर्णन इस प्रकार आया है— चतुर्धा वाजिनो भूमौ जायन्ते देशसंश्रयात्। ताजिका:

आँख से देखते हैं। इनका हिनहिनाने का शब्द बड़ी गर्जनाकार का होता है और ये इतने स्वामीभक्त होते हैं कि संग्राम में कोई कठिन परिस्थिति आ पड़े तो अपने स्वामी को बचाकर निकल जाते हैं। इन गुणों वाला जो अश्व समझदार और स्वामीभक्त होता है वह विप्र जाति का अश्व माना गया है।

द्रुह्येत्प्रविष्ट उदकेऽन्यशब्दे विद्रुतो भवेत्।
स्वामिनं रोहयेच्छुद्धश्चान्यं तु परिपातयेत्॥ 7॥
सङ्ग्रामे दुर्धरश्चाश्वो जैत्रहारी प्रबुध्यति।
कामातुरश्च शूरश्च जात्या क्षत्रियसञ्ज्ञकः॥ 8॥

जो अश्व पानी में उतरते समय अड़चन करे, विरोध करे, अचकचाए और किसी अन्य व्यक्ति का शब्द सुनके भड़क उठे, चमके तथा अपने स्वामी को पहचान करके उसके अश्वारोहण के समय तो शुद्ध मन से स्थिर रहे परन्तु स्वामी के सिवाय अन्य कोई आरोहण करने की चेष्टा करे तो वह उसे तुरन्त पटक देता हो, ऐसा अश्व संग्राम में बड़ा दुर्धर यानी खतरनाक हो जाता है परन्तु अपने अश्वारोही की लगाम में रहकर उसके सङ्केत को समझता हुआ चलता हो— ऐसा अश्व कामातुर और शूरवीर भी होता है, यह क्षत्रिय जाति के अश्व के लक्षण हैं।

पिबेच्च स्वेच्छया कामं तोयं जानुसमोदके।
स्थिरासनः स्थिरोक्तेश्च स्थिरकायो युधिस्थिरः॥ 9॥
एते अश्वा वैश्यसञ्ज्ञास्स्युः शूद्रसञ्ज्ञानतः शृणु।

जो अश्व अपनी जङ्घाओं तक पानी में उतरकर स्वैच्छा के अनुसार पानी पीता है और वह स्वामी के आरोहण पर स्थिर आसन रहता है, स्थिर ओक्त अर्थात् चुपचाप रहता है, स्थिरकाय अर्थात् बिना हिले-डुले स्थिर खड़ा रहता है और युद्ध में भी स्थिरचित्त रहता है, भयभीत नहीं होता, न कोई चञ्चलता ही दिखाता है, ऐसा अश्व वैश्य जाति संज्ञक होता है। अब आगे शूद्र संज्ञक अश्व के बारे में सुनो।

उदके चाऽप्रविष्टस्तु बाह्यस्थो हि पिबेज्जलम्॥ 10॥

जो अश्व पानी में उतरने से ठिठक जाए, पानी में नहीं उतरे और पानी के बाहर ही खड़ा रह कर पानी पीता है। उस अश्व को शूद्र संज्ञक जाति का समझें।

वैश्ये तु मधुरः शब्दः शूद्रे वै कर्कशः स्वरः।
क्षणं शुद्धासने स्वस्थः सङ्ग्रामे प्राञ्जालः क्षणम्॥ 11॥
क्षणं तथातुरः स्त्रीणां क्षणं स्वस्थानमानसः।
एते चाश्वाः शूद्रसञ्ज्ञाश्चतुर्थज्ञातिका मताः॥ 12॥

वैश्य जाति के अश्वों का स्वर मधुर होता है। इसके विपरीत शूद्र जाति के अश्व का शब्द कर्कश होता है। जो अश्व किसी क्षण में शुद्धासन या आरोहण के समय स्वस्थ, शान्त रहे, संग्राम में भी सावधान किन्तु चञ्चल रहे परन्तु किसी क्षण में घोड़ियों की ओर आकर्षित होकर आतुर हो उठे एवं किसी क्षण पुनः स्वस्थ और शान्तचित्त होकर स्थिर रहे, ऐसे सभी अश्व शूद्र संज्ञक यानी चतुर्थ जाति के माने गए हैं।

इत्युत्तमा मता अश्वाः शेषाः प्रकृतिजातकाः।
इति ज्ञातिप्रभेदाः स्युः प्रमाणं सप्तधोत्तमम्॥ 13॥
सुन्दरश्चाऽथ श्रीवत्स आह्लादश्च मनोहरः।
विजयो विभवः शान्तः सप्ताऽश्वा उत्तमात्तमाः॥ 14॥

उक्त वर्णित उत्तम अश्व माने गए हैं। अन्य शेष को सामान्य प्रकृतिजात अश्व समझें। ये सभी जातिभेद बताए, जिनके प्रमाण भी सात प्रकार के उत्तमोत्तम कहे गए हैं जो इस प्रकार है— (1.) सुन्दर, (2.) श्रीवत्स, (3.) आह्लाद, (4.) मनोहर, (5.) विजय, (6.) विभव और (7.) शान्त— ये सातों प्रकार के उत्तमोत्तम अश्व होते हैं।

तथा चोच्छ्रयादीनां प्रमाणमाह —

षष्ट्यङ्गुलः$_{60}$ सुन्दरः स्याच्छ्रीवत्सश्चतुःषष्टिभिः$_{64}$।
अष्टषष्टिभिराह्लादो$_{68}$ द्वासप्तत्या$_{72}$ मनोहरः॥ 15॥
षट्सप्तत्या$_{76}$ च विजयो विभवोऽशीतिभिस्तथा$_{80}$।
चतुरशीतिभिः$_{84}$ शान्तः प्रमाणं सप्तधा$_{7}$ विदुः॥ 16॥

अब इन घोड़ों के उक्त नामानुसार उनकी ऊँचाई आदि के प्रमाण कहते हैं। सामान्यतया (1) सुन्दर जाति का घोड़ा 60 अङ्गुल ऊँचा होता है, (2) श्रीवत्स जाति का घोड़ा 64 अङ्गुल, (3) आह्लाद जाति का घोड़ा 68 अङ्गुल, (4) मनोहर जाति का घोड़ा 72 अङ्गुल, (5) विजय जाति का घोड़ा 76 अङ्गुल, (6) विभव नाम की जाति का घोड़ा 80 अङ्गुल तथा (7) शान्त जाति का घोड़ा 84 अङ्गुल की ऊँचाई लिए होता है। इस प्रकार विद्वानों ने घोड़ों के सात प्रकार से प्रमाण कहे हैं।

अशुभाश्वलक्षणमाह —

ककुद्मान् कुम्भिकावांश्च कराली कृष्णतालुकः।
हीनदन्तोऽधिकदन्तः षडश्वाः स्वामिघातकाः॥ 17॥

अब अशुभ अश्वों की पहचान कहते हैं। जो घोड़े कूबड़ वाले, कुम्भि वाले,

करालो अर्थात् भयानक दाँत वाले, काले तालु वाले, कम दाँत वाले या अधिक दाँत वाले हो तो ये छह प्रकार के घोड़े स्वामी घातक होते हैं।[1]

अथाश्वशालालक्षणं —

> **अश्वशालां प्रवक्ष्यामि चतुःषष्टिकरायता$_{64}$।**
> शताद्र्धस्ता$_{50}$ **मध्या स्यात्** चत्वारिंशत्करेतरा$_{40}$ **॥ 18 ॥**
> पञ्चदशकरा$_{15}$ **ज्येष्ठा** त्रयोदशकरेतरा$_{13}$।
> कनिष्ठैकादशकरा$_{11}$ **पृथुत्वं त्रिविधं मतम्॥ 19 ॥**

अब अश्वशाला बनाने के बारे में प्रमाण कहते हैं— 1. ज्येष्ठ अश्वशाला 64 गज (हाथ) की लम्बाई या आयत तथा 15 गज की चौड़ाई वाली होती है; 2. मध्यम अश्वशाला 50 गज की लम्बाई और 13 गज की चौड़ाई वाली होती है तथा 3. कनिष्ठ अश्वशाला 40 गज की लम्बाई और 11 गज की चौड़ाई वाली होती है।

तत्रैव कूरार्थपात्रलक्षणमाह —

> **सप्त$_{7}$पञ्च$_{5}$त्रि$_{3}$हस्तं च विस्तरे त्रिविधं स्मृतम्।**
> द्विहस्तमुच्छ्रितं$_{2}$ **कुर्यात् कूरार्थं** लक्षणान्वितम्**॥ 20 ॥**
> **तस्य बाह्ये भवेद्** भित्तिरेक$_{1}$**हस्ता च वेष्टने।**

अब घोड़ों की ठाण में चरने के लिए बनाई जाने वाली कुण्डी के प्रमाणों को कहा जाता है— 7 गज लम्बी 2 गज चौड़ी ज्येष्ठ; 5 गज लम्बी 2 गज चौड़ी मध्यम, और 3 गज लम्बी तथा 2 गज चौड़ी कुण्डी कनिष्ठ कही गई है। ऐसी कुण्डियाँ कूरार्थ अर्थात् घोड़े के लिए चरने, भोजन करने की सामग्री रखने के लिए बनाई जाए। उस कुण्डी की दीवार का घेरा एक गज ऊँचाई वाला बनाएँ।

---

1. विष्णुधर्मोत्तर. में आए श्लोक उक्त श्लोकों से पर्याप्त साम्यता लिए हैं— हीनदन्तोऽधिदन्तश्च कराली कृष्णतालुकः। कृष्णजिह्वश्च यमजो जातमुष्कश्च यस्तथा॥ द्विशफश्च तथा शृङ्गी त्रिकर्णी व्याघ्रवर्णकः। खरवर्णो भस्मवर्णो जातवर्णश्च काकुदी॥ श्वित्री च काकसादी च खरसारस्तथैव च। वानराक्षः कृष्णसटः कृष्णमुष्कस्तथैव च॥ कृष्णप्रोथश्च मूकश्च यश्च तित्तिरसन्निभः। विषमश्वेतपादस्तु ध्रुवावर्तविवर्जितः॥ अशुभावर्त्तसंयुक्तो वर्जनीयस्तुरङ्गमः।
   जयदत्तकृत अश्वायुर्वेद में भी ये ही लक्षण आए हैं। यथा— आवर्तो यस्य ककुदे काकुदी स उदाहृतः। करालाश्चाधरा दन्ता जायन्ते यस्य चोत्तरे॥ स कराली इति प्रोक्तो भर्तुः पुत्रादिभक्षकः॥ चतुर्भिः पञ्चभिश्चैव हीनदन्तः प्रकीर्तितः। सप्तभिष्टाभिर्दन्तैर्जातश्चाधिकदन्तकः। अङ्गुष्ठपर्वसङ्काशं छागशृङ्गोपमं तथा। जम्बूबदररूपं च तथा चामलकोपम्॥ आम्रास्थिसदृशं चापि हरीतक्याः फलोपमम्। दग्धचर्मनिभं चापि वालसंस्थानमेव च॥ कीलं कर्णान्तरे यस्य केशान्ते चापि दृश्यते। धौरेयः सर्वपापानां वाह शृङ्गी स कीर्तितः॥ एवं विधेन शृङ्गे शृङ्गी राष्ट्रे न वासयेत्॥ इत्यादि...। (लक्षणप्रकाश पृष्ठ 483-484 पर उद्धृत)

अश्वशालाप्रमाणं —

[1]पञ्च$_7$हस्तोच्छ्रितां भित्तिरर्द्धपञ्च$_{5॥}$करोऽथवा ॥ 21 ॥
सप्त$_7$हस्तोच्छ्रितं कार्यं द्वाभ्यां$_2$ पक्षस्तम्भकम् ।
तोरणं सप्त$_7$हस्तान्ते उत्तरस्तम्भको भवेत् ॥ 22 ॥
अण्डच्छाद्यत्रयोच्छ्रिता यावत्तोराण्य स्तम्भकम् ।
तत्रान्तरपत्रोच्छ्रिता अङ्गुल्यो द्वादशायतः ॥ 23 ॥
तदूर्ध्वे तु पुनः कुर्यादण्डच्छाद्यत्रयं तथा ।
कलशास्तत्र दातव्याः प्रतिछाद्यमथोपरि ॥ 24 ॥
पूर्वापरमुखा अशस्ता तेजो अर्थप्रतापक्षयः ।
तेजोवृद्धिः क्षीयते च यथा कृष्णो निशाकरः ॥ 25 ॥
दक्षोत्तरमुखाः शस्ताः प्रतापकीर्तिवर्द्धनाः ।
नित्यं कल्याणकारिण्यः सर्वकामफलप्रदाः ॥ 26 ॥

अश्वशाला में भित्ति की ऊँचाई पाँच गज या साढ़े पाँच गज की हो तथा उसके दोनों पक्षों पर सात-सात गज ऊँचे दो स्तम्भ बनाए जाएँ। उन स्तम्भों की ऊँचाई के सात गज के अन्तिम भाग पर तोरण बनाने के लिए उत्तर स्तम्भक बनाए। जहाँ तक तोरण के स्तम्भ बने हुए हों वहाँ तक 3 गज ऊँची अण्डछाद्य अर्थात् अण्डाकार गुम्बज की छत बनाएँ। उसके ऊपर अन्तरपत्र 12 अङ्गुल की ऊँचाई के बनाएँ। फिर, उसके ऊपर अण्डाकार तीन गज ऊँची गुम्बजयुक्त छत बनाएँ और फिर उन छतों पर प्रत्येक पर कलश लगाएँ। इन अश्वशालाओं में पूर्व और पश्चिम दिशोन्मुखी शालाएँ अप्रशस्त मानी गई है। इन पूर्वमुखी-पश्चिममुखी शालाओं को तेज, अर्थ, प्रताप और तेज वृद्धि को क्षय करने वाली माना गया है और कहा गया है कि ऐसी शालाओं से तेज वैसे ही क्षय हो जाता है जैसे कृष्णपक्ष का चन्द्रमा दिन-दिन क्षय को प्राप्त होता हुआ अन्त में अमावस्या को प्राप्त करके पूरा क्षय हो जाता है। (घोड़ों को इस प्रकार से बान्धने से भी यही परिणाम होता है[1]) इसके विपरीत दक्षिणमुखी व उत्तरमुखी अश्वशाला प्रशस्त कही गई है। ये स्वामी के प्रताप और कीर्ति को

---

1. 'पञ्चहस्तोच्छ्रिता भित्तिरर्थपञ्चस्वरोऽथवा ?॥ सप्तहस्तोच्छ्रितं कार्यमुदाढ्या ? पक्षस्तम्भकम्। तोरणं सप्तहस्तान्ते उत्तरस्तम्भको भवेत्॥ दण्डच्छाद्यत्रयोच्छ्रिता यावत्ताराढ्यस्तम्भकम्। तत्रान्तरपत्रोच्छ्रिता अङ्गुल्यो द्वादशाऽन्यतः॥ तदूर्ध्वे तु पुनः कुर्दाद्दण्डच्छाद्यत्रयं तथा। कलशास्तत्र दातव्याः प्रतिक्षणमथोपरि॥ पूर्वापरमुखास्त्रस्तास्तेजोऽर्थप्रतापक्षयः ?। तेजोवृद्धिः क्षीयते च यथा कृष्णे निशाकरः॥ दक्षोत्तरमुखाः शस्ताः प्रतापकीर्तिवर्द्धनाः। नित्यं कल्याणकारिण्यः सर्वकामफलप्रदाः॥' इति प्रकाशित पाठः।

बढ़ाने वाली है तथा नित्य कल्याण करने वाली और सभी कामनाओं को पूर्ण करने में फलदायी हैं।[1]

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छाया-मश्वलक्षणशालाधिकारो नामाशीतितमं सूत्रम्॥ 80॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में अश्वलक्षण, अश्वशाला अधिकार नामक अस्सीवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 80॥

राजालयसिंहासनछत्रप्रमाणमैकाशीतितमं सूत्रम्॥ 81॥[2]

विश्वकर्मोवाच —

राज्ञालयं कथयिष्यामि प्रतापकीर्तिवर्द्धनम्।
लक्षणोच्छ्रितभूमीनां हस्तसङ्ख्या प्रमाणकम्॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि अब मैं प्रताप, कीर्तिवर्धन करने वाले राजालयों, राजमहलों के निर्माण हेतु उनके लक्षण और ऊँचाई तथा भूमि क्षेत्र की विस्तार सीमा की गज की संख्या सप्रमाण कहता हूँ।

नृपस्य कोट्यानुसारेणनिर्माणमाह —

एकच्छत्रप्रभोक्ता यः स भवेत्सर्वं महीपतिः।
शतमष्टोत्तर$_{108}$ हस्तोच्चं कर्त्तव्यं भुवनोत्तमम्॥ 2॥

जो राजा एक छत्रराज का भोक्ता होता है उसे 'महीपति' संज्ञा दी गई है। ऐसे राजा के लिए एक सौ आठ गज विस्तार का भवन उत्तम होता है। अस्तु, उसके लिए ऐसा ही महल बनाना चाहिए।

---

1. मत्स्यपुराण में आया है कि राजमहल के बायीं ओर गौओं व अश्वों के निवास की व्यवस्था होनी चाहिए। अश्वों की पङ्क्ति उत्तराभिमुख अथवा दक्षिणाभिमुखी हो सकती है, अन्य दिशाभिमुखी निन्दित मानी गई है। जहाँ अश्व रखे जाएँ, वहाँ रातभर दीपक जलते रहना चाहिए। अश्वशाला में मुर्गा, बन्दर, मर्कट तथा बछड़े सहित गाय को भी रखना चाहिए। अश्वों का कल्याण चाहने वाला अश्वशाला में बकरियों को भी रखें। गौ, हाथी व अश्वादि शालाओं में उनके गोबर निकालने की व्यवस्था सूर्यास्त हो जाने पर नहीं करनी चाहिए। उन्हीं स्थानों में सारथियों को भी निवास देना चाहिए— गवां स्थानं तथैवात्र तुरगाणां तथैव च। उत्तराभिमुखा श्रेणी तुरगाणां विधीयते॥ दक्षिणाभिमुखा वाथ परिशिष्टास्तु गर्हिताः। तुरगास्ते तथा धार्याः प्रदीपैः सार्वरात्रिकैः॥ कुक्कुटान् वानरांश्चैव मर्कटांश्च विशेषतः। धारयेदश्वशालासु सवत्सां धेनुमेव च॥ अजाश्च धार्या यत्नेन तुरगाणां हितैषिणा। गोगजाश्वादिशालासु तत्पुरीषस्य निर्गमः॥ अस्तं गते न कर्तव्यो देवदेवे दिवाकरे। तत्र तत्र यथास्थानं राजा विज्ञाय सारथीन्॥ (मत्स्य. 217, 19-23)
2. यह सूत्र प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में विद्यमान 'अपराजितपृच्छा' की खण्डित मातृका (संख्या 18078-12) से उद्धृत और तद्नुसार पुनर्सम्पादित किया गया है।

पृथिव्याश्च यदा राजाभुङ्क्तेऽर्द्धं पर मेव च।
तस्य वेश्म प्रकर्त्तव्यं शतं हीनकरद्वयम्$_{98}$ ॥ 3 ॥

जो राजा इससे आधे भूभाग का भोग करने वाला हो उसके लिए राजभवन सौ से दो गज हीन अर्थात् अठानवे गज के विस्तार वाला बनाए।

तथा महीत्रिभागं च भुङ्क्ते यो वै नराधिपः।
अष्टाशीतिकरं$_{80}$ वेश्म महीशानां त्रिधा$_{3}$ मतम्॥ 4 ॥

जो राजा एक तिहाई भूमि का भोक्ता हो, ऐसे राजा के लिए अस्सी गज के विस्तार वाला राजभवन बनाना चाहिए। इस तरह उक्त राजभवनों के तीन प्रकार माने गए हैं।

लक्षग्रामाधिपो यस्तु स महामण्डलेश्वरः।
तस्य वेश्म प्रकर्त्तव्यं द्विहीनाशीतिहस्तकम्$_{78}$ ॥ 5 ॥

जो राजा एक लाख ग्रामों को अधिपति हो, उसकी संज्ञा मण्डलेश्वर होती है। उसका राजभवन अस्सी में दो कम अर्थात् अठत्तर गज विस्तार का होना चाहिए।

लक्षार्द्धं यदा भुङ्क्ते मण्डलीकोऽभिधानतः।
अष्टषष्टिकरं$_{68}$ तस्य कर्त्तव्यं भवनोत्तमम्॥ 6 ॥

जो राजा आधे लाख ग्रामों का भोग करने वाला हो उसका 'मण्डलीक' नाम दिया गया है। उसका राजभवन अड़सठ गज का होना चाहिए॥ ६ ॥

अयुतद्वयग्रामाणां महा सामन्तसञ्ज्ञकः।
तस्य वेश्माऽष्टपञ्चाशत्$_{58}$ करं कामफलप्रदम्॥ 7 ॥

राजा दो अयुत (20 हजार) ग्रामों का स्वामी हो, उसे 'महासामन्त' नाम दिया गया है। उसका राजभवन अट्ठावन गज विस्तार का होना चाहिए, जो उसकी कामना को फलवती बनाता है।

सामन्तसञ्ज्ञकः सोऽत्राऽयुतग्रामाधिपश्च यः।
अष्टचत्वारिंशद्धस्तं$_{48}$ भवनं शोभनम्॥ 8 ॥

जो एक अयुत (10 हजार) ग्राम का अधिकारी हो उसे 'सामन्त' संज्ञा दी गई है। उसका राजभवन अड़तालीस गज के विस्तार वाला होना चाहिए, जो सब तरह से शोभा वाला होता है।

ईशोऽयुतार्द्धग्रामाणां लघुसामन्तक सञ्ज्ञकः।
अष्टत्रिंशत्करैर्युक्तं$_{38}$ भवनं तस्य कामदम्॥ 9 ॥

जो डेढ़ हजार ग्रामों का स्वामी हो उसको 'लघुसामन्त' नाम दिया गया है। उसका राजभवन अड़तीस गज के विस्तार का होना चाहिए, जो उसकी सब कामना को पूरी करता है।

सहस्रमेकं ग्रामाणां भुङ्क्ते स चतुरंशिकः।
अष्टाविंशकरं$_{28}$ कुर्यात् वेश्मशान्तिप्रदं सदा॥ 10॥

जो राजा एक हजार ग्रामों का भोग लेता है वह 'चतुरंशिक' कहलाता है। उसका राजभवन केवल अट्ठाईस गज का शान्ति प्रदान करने वाला होता है।

ग्रामाणां विंशतिं भुङ्क्ते यः पञ्चदशकं तथा।
ग्रामांस्त्रीन्द्वौ तथा चैकं भुङ्क्ते पर्यायसंस्थितम्॥ 11॥

इसी प्रकार जो बीस ग्रामों का या पन्द्रह ग्रामों का भोग करता है अथवा तीन, दो या एक ग्राम का भोग करता है, उनके जैसे भी पर्याय[1] बन जाए, वैसा राजवेश्म उनके लिए बनाना चाहिए।

शतमेकं तु ग्रामाणां स्वल्पराष्ट्रं तु सञ्ज्ञितम्।
अष्टादशकरं$_{18}$ वेश्म कर्त्तव्यं सर्वकामदम्॥ 12॥

एक सौ ग्रामों के समूह के भोगकर्ता को 'स्वल्पराष्ट्र' संज्ञा दी गई है। ऐसे राजा के लिए अठारह गज विस्तार वाला भवन बनाना चाहिए, यह उसके लिए सर्व कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है।

विशेष : राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् (5, 2 व अन्य) में भवनों का प्रमाण इस प्रकार आया है—

क्रम	नृपसंज्ञा	विशेषता/कोटि	गृहप्रमाण (व्यास)
1.	चक्रवर्ती	(सर्वाधिपति)	108 हाथ
2.	नृनाथ	चक्रवर्ती के समान भूमि या तृतीयांश हो	88 हाथ
3.	महामण्डलिक	1 से 2 लाख ग्रामों का अधिपति	78 हाथ
4.	नृपमण्डलिक	50 हजार ग्रामाधिपति	68 हाथ
5.	सामन्तमुख्य	20 हजार ग्रामाधिपति	58 हाथ
6.	सामन्त	10 हजार ग्रामाधिपति	48 हाथ

1. मयमतं में इस प्रकार की विप्रवर्गीय कोटियों का निर्धारिण हुआ है और तद्नुसार ही ग्राम विन्यास का निर्देश दिया गया है। मेवाड़ में भौमिया, गोल, चौथिया ठाकुर आदि कोटियाँ भी निर्धारित की गई हैं।

7.	तृतीय (सामन्त)	5 हजार ग्रामाधिपति	38 हाथ
8.	चतुरंशिक	1 हजार ग्रामाधिपति	28 हाथ
9.	स्वल्पराष्ट्र/सैनिक	100 ग्रामाधिपति	18 हाथ

आरोहणमाह —

करमष्टादशमध्यस्थ कर्त्तव्यं तु क्रमेण तु।
सोपानपङ्क्तिमर्यादा कथिता त्वपराजितम्॥ 13॥

हे अराजित! अब सोपानपङ्क्तिमर्यादा अर्थात् सीढ़ियाँ बनाने का प्रमाण कहता हूँ। सामान्यत: अठारह गज के भीतर ही सीढ़ियाँ क्रम से बनानी चाहिए।

दण्डनायकादीनां भवनप्रमाणमाह —

राज्ञालये च यन्मानं तदर्द्धं दण्डनायके।
दण्डर्द्धे मन्त्रिसंस्थानं मन्त्र्यर्द्धे द्वारपालके॥ 14॥

राजालय का जो मान बताया गया है, उसका आधा दण्डनायक के भवन का मान होना चाहिए अर्थात् राजालय 108 गज का हो तो दण्डनायक का 54 गज विस्तार वाला भवन अपेक्षित है। दण्डनायक के भवन से आधा मन्त्री का भवन अर्थात् 27 गज का हो। मन्त्री के भवन से आधा द्वारपाल, ड्योढ़ी के दरोगा का भवन अर्थात् 13 गज विस्तार का होगा।

तत्समे पुरोहितं ज्ञेयं तदर्द्धं जनसङ्कुले।
अनुक्रमादिदं सर्वं ज्येष्ट-मध्य-कनिष्ठकम्॥ 15॥

राज पुरोहित का भवन भी उसी के बराबर अर्थात् 13 गज विस्तार का द्वारपाल के भवन के समान हो। इनसे भी आधे क्षेत्र विस्तार का अर्थात् 6-7 गज प्रमाण का सामान्य नागरिक का भवन हो। इसी अनुक्रम से ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ भवन समझना चाहिए।

अधुना तलविधानमाह —

अष्टहस्ते$_{8}$ त्वेकभूमिं$_{1}$ द्विभूमं$_{2}$ अष्टदशके$_{18}$।
त्रिभूम$_{3}$मष्टाविंशत्या$_{28}$ष्टत्रिंशद्भि$_{38}$र्वेद$_{4}$भूमम्॥ 16॥

आठ गज के क्षेत्र में जो भवन बने वह एक भूमि अर्थात् एकतलीय या एक मंजिला कहलाता है। अठारह गज का दो भूमि, मंजिला का बनाए। अठाईस गज वाला तीन भूमि का या तिमंजिला तथा अड़तीस गज का क्षेत्र वाला भवन चार भूमि वाला या चार मंजिला होता है।

अष्टचत्वारिंशद्भिः$_{48}$ पञ्चभू$_{5}$ षड्भ्व$_{6}$ष्टपञ्चाशद्भिः$_{58}$ ।
अष्टषष्ट्या$_{68}$ सप्तभूम$_{7}$मष्ट$_{8}$ भ्वष्टसप्ततिभिः$_{78}$ ॥ 17 ॥

इसी प्रकार अड़तालीस गज क्षेत्र वाला भवन पाँच भूमि का अर्थात् पाँच मंजिला होता है। अठावन गज क्षेत्र का छह भूमि वाला अर्थात् छह मंजिला होता है। अड़सठ गज क्षेत्र का भवन सात भूमि का और अठत्तर गज क्षेत्र का भवन आठ तलीय या आठ मंजिला होता है।

अष्टाशीत्या$_{88}$ नवभूमं$_{9}$ दशभ्व$_{10}$ष्टनवतिभिः$_{98}$ ।
भद्रमेकादश$_{11}$ भूममष्टोत्तरशतात्मके$_{108}$ ॥ 18 ॥

अठासी गज की क्षेत्र भूमि का भवन नौ भौमिक अर्थात् नौ मंजिला होता और अठानवे गज क्षेत्र का भवन दस भूमि का यानी दश मंजिला होता है। इसी तरह एक सौ आठ गज क्षेत्र का भवन भद्र जाति का ग्यारह भूमि का अर्थात् ग्यारह मंजिला होता है।

इत्यमनन्तर सिंहद्वारानुक्रमाह —

सिंहद्वारानुक्रमं च कथये त्वपराजित।
उत्तमे च त्रयद्वारं[1] कर्त्तव्यं चक्रवर्त्तिभिः ॥ 19 ॥

अब हे अपराजित! सिंहद्वारों का अनुक्रम कहता हूँ। इस तरह द्वार-त्रय-उत्तम अर्थात् उत्तम त्रिपोलिया द्वार[2] चक्रवर्ती राजाओं के भवनों के लिए बनाना कर्त्तव्य है।

उत्तमं पञ्चदश$_{15}$ च मध्यमं च त्रयोदश$_{13}$ ।
कनिष्ठ रुद्र$_{11}$ हस्तान्तमुच्छ्रयेण तु योजितम् ॥ 20 ॥

इन सिंहद्वारों में उत्तम त्रिपोलिया द्वार की ऊँचाई पन्द्रह गज, मध्यम त्रिपोलिया द्वार की ऊँचाई ऊँचाई तेरह गज और कनिष्ठ त्रिपोलिया द्वार की ऊँचाई ग्यारह गज योजित होगी।

सिंहद्वारमिदं मानं त्रिधा$_{3}$ स्याच्चक्रवर्तिनि।
महाराष्ट्रेश्वरे राज्ञि महामण्डलकेश्वरे ॥ 21 ॥
चक्रवर्तिनि मध्याद्ये कनिष्ठं मण्डलेश्वरे।

ये द्वार मान तीन प्रकार के चक्रवर्ती राजाओं के लिए कहे गए है। महाराष्ट्रेश्वर चक्रवर्ती के पन्द्रह गज की ऊँचाई वाला उत्तम त्रिपोलिया द्वार, महामण्डलेश्वर चक्रवर्ती के लिए तेरह गज की ऊँचाई वाला मध्यम त्रिपोलिया द्वार तथा मण्डलेश्वर

---

1. 'द्वारत्रयन्तूत्तमे' इति प्रकाशित पाठः।
2. प्राचीन राजधानी पुरों, नगरों में त्रिपोलिया द्वार बनते रहे हैं। जयपुर, उदयपुर में भी तीन द्वारों वाले सिंहद्वार की परम्परा देखने में आती है।

चक्रवर्ती राजा के लिए ग्यारह गज की ऊँचाई वाला त्रिपोलिया द्वार विहित है यह कनिष्ठ त्रिपोलिया है।

अनन्तरं कथयिष्यामि सिंहद्वारं यथाक्रमम्॥ 22॥

द्वारयुग्मं तु कर्त्तव्यं महासामन्तके सदा।

द्वारमेकं तु कर्त्तव्यं तथा सामन्तकादिके॥ 23॥

अब इसके बाद, अन्य सिंहद्वारों के बारे में क्रम से कहता हूँ। महासामन्त के भवन में सदैव दो पोल वाला द्वार तथा सामन्त आदि के केवल एक पोल का द्वार बनाना चाहिए।

तोरण प्रयोजनलक्षणञ्च —

अन्येषां स्वल्पराज्यानां ये स्मृताश्चान्यसञ्ज्ञका।

तेषां च तोरणं दद्यात् सिंहद्वारविवर्जितम्॥ 24॥

अन्य छोटे राजा, ठाकुरों आदि के लिए जो केवल अन्य संज्ञक माने जाते हैं, उनके भवन के आगे केवल तोरण ही बनाए, उनके लिए सिंहद्वार का निर्माण करना वर्जित है, उचित नहीं माना गया है।

स्तम्भयुग्मोत्तराङ्गाढ्यं सिंहकर्णैर्विभूषितम्।

नपुंसकं विना कर्णैः स्वल्पराजेषु भाषितम्॥ 25॥

इसलिए ऐसे, लघु राजाओं, ठाकुरों जागीरदारों आदि के भवनों के आगे सिंहकर्ण से युक्त विभूषित दो स्तम्भों पर उत्तरंग अर्थात् छाबना बनाकर नपुंसक जाति का, बिना कर्णों का तोरण बनाया जाए।

स्तम्भयुग्मोर्ध्वतः कुर्यात्पत्रमालात्रयं तथा।

विप्रेषु क्षत्रियोक्ताश्च मालायुग्मं च वैश्यके॥ 26॥

उक्त तोरण के दोनों स्तम्भों के ऊपर तीन पत्रमालाएँ बनाकर उनका सुन्दर अलङ्करण करें। इसके अतिरिक्त विप्रों, क्षत्रियों के लिए भी ऐसे ही अर्थात् तीन पत्रमाला युक्त तोरण बनाए। वैश्यों के भवन के तोरण में दो माला का तोरण अलङ्करण करें।

एकमाला तु शूद्राणां स्तम्भोर्ध्वं वंशकोच्छ्रिताः।

वंशोच्छ्रिता विना स्तम्भैः प्रकृतीनां च सर्वशः॥ 27॥

इसी प्रकार शूद्रों के भवन में एकमाला के तोरण अलङ्करणार्थ बनाए जाए जिनमें स्तम्भ एक बाँस की ऊँचाई के प्रमाण वाले हों। इनके अतिरिक्त सभी

प्राकृतजनों अर्थात् सर्वसामान्य ग्रामीणों और नगरवासियों के घरों के द्वार बिना स्तम्भों वाले ही एक बाँस की ऊँचाई के बनाने चाहिए।

इत्यमनन्तर आसनविधानमाह —

तोरणं कथितं वत्स आसनं शृणु साम्प्रतम्।
आसनं कथयिष्यामि दिव्यमानेन सुव्रत॥ 28॥

अब तक तोरणों के बारे में कहा गया। अब हे वत्स! तुम आसनों के विषय में सुनो। मैं आसनों का दिव्यमान कहता हूँ।

युक्तं च षष्टि$_{60}$ पञ्चाश$_{50}$च्चत्वारिंश$_{40}$द्विरङ्गुलैः।
महाराजेषूचितं वै इत्थं सिंहासनं त्रिधा$_{3}$॥ 29॥

इनमें पूर्वोक्त सुव्रत नाम के उत्तम आसन साठ, पचास और चालीस अङ्गुल मान के होते हैं जो महाराज चक्रवर्तियों के लिए ही उचित है। इस तरह आसन ज्येष्ठ (60 अङ्गुल), मध्यम (50) और कनिष्ठ (40 अङ्गुल) मान से तीन प्रकार के कहे गए हैं।

भद्रासनं महाराष्ट्रे विलासैः पद्मसञ्ज्ञकम्।
विस्तारिका तु सामन्तैः चातुरी मन्त्रिमण्डले॥ 30॥

ऐसे राजगद्दी वाले सिंहासन महाराष्ट्र अर्थात् बड़े महाराजाओं के लिए भद्रासन; विलास के लिए पद्मासन (कमलपीठ) का प्रयोग करें। मन्त्रिमण्डल के लिए चातुरी (चौकी, कुर्सी) और सामन्तों के लिए विस्तारिका (तिपाई) नामके आसन बनाएँ।

अन्येषां स्वल्पराज्यानां दातव्यं तु मसूरकम्।
गदिका पट्टगद्दी च सर्वस्मिञ्जनसङ्कुले॥ 31॥
आसनं सिंहसञ्ज्ञं तु शयनं सुखमुत्तमम्।

अन्य छोटे राजाओं के लिए तो केवल मसूरक ही देना चाहिए अर्थात् उनके लिए केवल तकिया या मोढ़ा-मसन्द ही उचित है। अन्य सभी जन सङ्कुल के लिए तो आसन के रूप में गदरे अथवा पट्टगद्दी, जाजम-बिछात का प्रयोग करना चाहिए। सिंहसंज्ञक जो आसन होते हैं, वे शयन के प्रयोजन से बड़े सुखदायी हैं।[1]

यानं सुखासनं चैव यानं रथ उच्यते॥ 32॥
यानं महागजपृष्ठं यानं विद्याद्विसारयोः।

---

1. सम्भवतः ये आधुनिक सोफासेट की तरह कोमल, गद्दीदार और आरामदायक बनते होंगे और राजा-महाराजा, बड़े लोगों में तब भी प्रयोग में आते ही होंगे। आज भी उसी परम्परा में ड्राइंगरूमों की शोभा बढ़ा रहे हैं।

गजपृष्ठे च यद्वन्द्वं विद्धि तत्सिंह सञ्ज्ञकम्॥ 33॥
व्याघ्ररूपं विद्धि शिखि-कलापकभवं पुनः।
एवं विविधरूपाणि पताका छत्रमण्डलम्॥ 34॥

यान-वाहन, रथों आदि में भी बैठने के सुखासन बनाने चाहिए। जब महागजपृष्ठ अर्थात् हाथी की पीठ को यान बनाना हो तो उस महागज की पीठ पर विसार अर्थात् बड़ा बिछौना, गादी युक्त लगा देना चाहिए (इसे आजकल झूल कहा जाता है)। इसी तरह हाथी की पीठ के ऊपर बान्धकर जो आसन लगाए जाते हैं, उन्हें सिंहासन कहा जाता है (यथा— आधुनिक हौद्दा, ऐसे हौदे कई रूपों से सजाए जाते हैं, उनके पाये तथा दस्ते व्याघ्र के मुख बनाकर अलंकृत किए जाते हैं। कहीं-कहीं तो उन पर मोरपङ्खों के अलङ्करणों की भी साज-सज्जा होती है। उन पर विविध प्रकार की पताका, झण्डियाँ फहराती हैं तथा उन पर छत्र-मण्डल भी बनाए जाते हैं।

अधुना छत्रप्रमाणमाह —

चतुरशीत्यङ्गुलं च व्यासे छत्रं च वृतकम्।
मध्यमं द्विसप्तत्या षष्ट्यङ्गुलं कनिष्ठकम्॥ 35॥

(अब छत्रों के प्रमाण के बारे में क्रमवार कहता हूँ) छत्र के वृत्त अर्थात् घेरे का व्यास चौरासी अङ्गुल (लगभग सात फीट) होना चाहिए जिसे ज्येष्ठ या उत्तम छत्र कहा गया है। जो छत्र बहत्तर अङ्गुल व्यास का अर्थात् लगभग छह फीट का हो, उसे मध्यम छत्र कहा गया है तथा जो छत्र साठ अङ्गुल व्यास का अर्थात् पाँच फीट का हो उसे कनिष्ठ छत्र कहा गया है। (तुलनीय – बृहत्संहिता अध्याय 73)

शतार्धं प्रसाद दाने शेषाः प्रावृट्सु छत्रिकाः।
छत्राभिकल्लरीयुक्तां षोडशाङ्गुल प्रतिष्ठां लम्बिता॥ 36॥

अन्य प्रासादों या मन्दिरों के महोत्सवों आदि में काम आने वाले छत्रों का व्यास पचास अङ्गुल का होना चाहिए जो लगभग चार फीट का होता है। शेष सभी तो वर्षा काल में प्रयोगार्थ छत्रिकाएँ (आधुनिक छाता के समान) होती हैं। इन छत्रों की कल्लरी अर्थात् हाथ में पकड़ने की डण्डी सोलह अङ्गुल लम्बी होनी चाहिए जो लगभग डेढ़ फुट के बराबर लम्बी हो।

कनकजदण्डोर्ध्व कलशं युग्मछत्रं तु भूपति।
महामण्डलेश्वरे तु शिखिकलापशर्करी॥ 37॥

(अब छत्रों की विविध शोभा के बारे में कहा जा रहा है) राजाओं के छत्र युग्म के हेमदण्डों के ऊपर अर्थात् दुहरी छत्रों के सोने के दण्डों के ऊपर सोने के

कलश की शोभा की जाए। महामण्डलेश्वरों के छत्रों पर मोरपङ्खों की शर्करी अर्थात् सजावट की जानी चाहिए।

चामरालङ्कारयुक्तं महाराजेश्वरं विदुः।
इत्येवमुक्तामाला च राज्ञाऽलङ्कारशोभना॥ 38॥

महाराजाओं के छत्रों के साथ चामरों के भी अलङ्करण हों और ऐसे महाराजेश्वरों को मोतियों की मालाओं के अलङ्कार या गहने धारण करके शोभायमान होना चाहिए।

लक्ष्मीश्च रमते नित्यं तथा सा चक्रपाणिना।
तपसार्थयता येन प्रतापकीर्त्तिवर्द्धनम्॥ 39॥

ऐसे चक्रपाणि राजाओं के राज्य में नित्य ही लक्ष्मी का वास होता है और लक्ष्मी के रमते रहने से उनके सभी तपों की सार्थकता प्रकट होती है। उनके प्रताप, कीर्ति का भी नित्य वर्द्धन होता रहता है।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्त्तिप्रकाशप्रोक्तृ श्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृछायां राजालयसिंहासनछत्रप्रमाणाधिकारोनामैकाशीतितमं सूत्रम्॥ 81॥[1]

---

1. जोधपुर भेदपाठः— सामन्तसञ्ज्ञकं नाम ग्रामस्यायुता द्वयम्। अष्ट चत्वारिंशत्करं तद्भवनं कुर्यात् शोभनम्॥ 8॥ अयुतार्द्धग्रामाणां च यश्च लघुसामन्तकः। कराष्ट त्रिंशद्धयक्तं च तद्भवनं अर्थ कामदम्॥ 9॥ सहस्त्रैकं तु ग्रामाणां सभवेच्चतुराशिकः। अष्टाविंश करं कुर्यात् वेश्मशान्ति प्रदं सदा॥ 10॥ विंश ग्रामे यदा भुक्ती ग्रामं तु दशपञ्चकम्। ग्रामे यत्रमेकं तु भुक्ती पर्याय संस्थितम्॥ 11॥ शतमेकं तु ग्रामाणां शल्यराष्ट्रसु सञ्ज्ञकम्। अष्टादश करं वेश्म कर्त्तव्यं सर्व कामदम्॥ 12॥ करमष्टादशमध्यस्थ कर्त्तव्यं कर्त्तव्यंतु क्रमेण तु। सोपान पंक्ति पर्यायः कथितं त्वपराजितम्॥ 13॥ राज्ञालयं तु यन्मानं तदर्द्धे दण्डनायकम्। दण्डार्द्धे मन्त्र संस्थानं मन्त्यर्द्धे द्वारपालकम्॥ 14॥ तत्समं त्रौ हितं ज्ञेयं तदर्द्धे जन सङ्कुलम्। अनुक्रमेमिदं सर्वं ज्येष्ट-मध्यम-कनिष्टकम्॥ 15॥ अष्टहस्तेत्वेकभूमिं द्विभूमं अष्टदशतु। त्रिभूमं अष्टविंशत्यं अष्टत्रिंशैर्वेदभूमकम्॥ 16॥ अष्ट चत्वारिंशे भूपञ्चषड्भूम्याष्ट पञ्चाशकम्। अष्टषष्ट्यासप्तभौमं अष्ट भूम्याष्टसप्ततिः॥ 17॥ अष्टाशीतिनवभूमं च दशभूऽष्टनवत्योत्तमम्। भूमैकादशभद्रां ते अष्टोत्तरशत हस्तकम्॥ 18॥ सिंहद्वारानुक्रमं च कथये त्वपराजित। उत्तरे च त्रयद्वारं कर्त्तव्यं चक्रवर्त्तिभिः॥ 19॥ उत्तमंदश पञ्चाशत्करैर्मध्यम च त्रयोदशं। कनिष्टं भद्रहस्तं तु उच्छ्रायेणतु योजितम्॥ 20॥ सिंहद्वारमिदं मानं चक्रवर्त्तित्वयोदिताः। महाराष्ट्रैश्वरे राज्ञैः महामण्डलेश्वरः॥ 21॥ अनन्तरं कथयिष्यामि सिंहद्वारं यथाक्रमम्॥ 22॥ मध्यमोत्तम चक्रवर्तिश्च कनिष्ठं मण्डलेश्वरः। अष्टरं कथयिष्यामिसिंहद्वार यथाक्रमम्॥ 23॥ द्वारयुग्मं तु कर्त्तव्यं महासामन्तदायकम्। अन्येषां स्वल्पं राजानां ये स्थितामात्य सञ्ज्ञका। तेषां च तोरणं दद्यात् सिंहद्वार विवर्जित॥ 24॥ सिंहायुग्मार्द्धेन कुर्यात् पत्रमाला त्रयोत्तमा। विप्राद्याक्षत्रियायुक्ता वैश्ययुग्ममालास्थिता॥ 25॥ एकमाला तु शूद्राणां स्तम्भो द्विवशोच्छ्रिताः। स्तम्भैर्विनोच्छ्रितो वंशा प्रकृतीनां तु सर्वतः॥ 26॥ तोरणं कथितं वत्स आसनं शृणु साम्प्रतम्। आसनं कथयिष्यामि दिव्यमानेन सुव्रत॥ 27॥ महाराजादि सूचितं त्रिविधं च सिद्धासनम्॥ 28॥ भद्रासनं महाराज्ञे विलासैः पद्मसञ्ज्ञक। विकास्तरिका तु सामन्तैः चातुरी मन्त्रिमण्डलम्॥ 29॥ अन्येषां स्वल्प राजानां दातव्यं तु मस्तूरकम्।

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में राजालय, सिंहासन, छत्र प्रमाण अधिकार नामक इक्यासीवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 81 ॥

राजभुवनं द्व्यशीतितमं सूत्रम् ॥ 82 ॥

विश्वकर्मोवाच —

चतुरश्रीकृते क्षेत्र भजेत्षोडश$_{16}$ भागिकम्।
पदसङ्ख्यामितिः ख्याता षट्पञ्चाशच्छतद्वयम्$_{256}$ ॥ 1 ॥

(चूड़ामणि महाकूट वास्तु के प्रयोजनार्थ) श्री विश्वकर्मा कहने लगे कि चौरस समतल किए गए क्षेत्र को सोलह भागों में विभाजित करें। इस तरह इनसे बनने वाले पदों की संख्या 16 × 16 = 256 होगी।

ब्रह्माऽऽस्ते गर्भमावृत्य षट्त्रिंशत्पदकोष्ठकैः$_{36}$ ।
रुद्र$_{11}$ सङ्ख्यापदैर्युक्ता एकैके अर्यमादयः ॥ 2 ॥

इसमें ब्रह्मा का स्थान गर्भ को घेरकर छत्तीस पद कोष्ठकों वाला होगा। अर्यमादि एक-एक देव रुद्रसंख्या में अर्थात् ग्यारह पदों में न्यसित करें।

चतुष्पदाष्टकर्णेषु द्वात्रिंशत्पदकल्पिताः$_{32}$ ।
बाह्यकर्णे तथा चाऽष्ट द्विपदा भक्तितो मताः ॥ 3 ॥

इसके आठों कोनों पर चार-चार पद कोष्ठकों से बत्तीस कोष्ठक कल्पित किए जाते हैं (अर्थात् 8 × 4 = 32)। बाहरी कोनों पर बने आठ पदों को दो भागों में विभक्त करने चाहिए।

अष्टावष्टपदा ज्ञेयाः शेषास्तु चतुरंशकाः।
जयः सत्योऽथ वितथो गन्धर्वसुग्रीवासुराः ॥ 4 ॥
मुख्यश्चैव गिरिःख्यातः प्रत्येकं चाऽष्टपादकाः।

गदिकापदगर्दी च सर्वेषां जनमण्डलम् ॥ 30 ॥ आसनं सन्ध सञ्ज्ञं तु शयनं सुखमुत्तमम्। यानं सुखासनं प्रोक्तं यानं रथ समुच्यते ॥ 31 ॥ यानं महागज पृष्टे यानं बिम्बादिसारयोः। गजष्टेतु भयविधं सन्धान सञ्ज्ञकम् ॥ 32 ॥ व्याघ्ररूपैविधिं शिखि कलापोद्भवम्। पुनएव तेध रूपाणि पताका छत्र मण्डलम् ॥ 33 ॥ चतुरशीत्यंगुल व्यासं छत्रवृतं उत्तमोत्तमम्। मध्यमं द्विसप्तसत्या षष्ट्ययङ्गुलं कनिष्टकम् ॥ 34 ॥ शतार्द्धे प्रसाद दाने शेषां प्रावृट्सु छत्रिकाः। छत्राभिकल्लरीयुक्तां षोडशाङ्गुल प्रतिष्ठां तालविनाः ॥ 35 ॥ कनकजदण्डोर्ध्व कलशं युग्म छत्रं तु भूपति। महामण्डलेश्वर कुर्यात् शिखिकलापोशर्करी ॥ 36 ॥ चामरालङ्कारयुक्तापि महाराजेश्वरं विदुः। इत्येवं क्रमाद्यो च राजालङ्कारशोभनम् ॥ 37 ॥ लक्ष्मीश्वरते नित्यं यथा सा चक्रपाणिना। तपः समर्थ यते येन प्रतापकीर्त्तिवर्द्धनम् ॥ 38 ॥ (पाण्डुलिप्यात्)।

चूडामणिर्महाकूटो वास्तू राजालयार्थकम्॥ 5॥

इति चूडामणिमहाकूटवास्तुः।

ये आठ-आठ पद कहे गए हैं और शेष जो बचे, वे चतुर्थांश कहे गए है— (1.) जय, (2.) सत्य, (3.) वितथ, (4.) गन्धर्व, (5.) सुग्रीव, (6.) असुर, (7.) मुख्य और (8.) गिरि नाम के सभी प्रत्येक आठ पद कोष्ठकों के होते हैं। इस प्रकार से राजालयों, राजमहलों के लिए चूड़ामणि महाकूट वास्तु बनता है।

शयनभाण्डागारवारीगृहादीनां —

वेश्ममध्यं ब्रह्मस्थानं शयनं च विवस्वतः।
भाण्डागारं क्षितिधरे मैत्रे वै वारिमन्दिरम्॥ 6॥
अर्यम्णि सुरसौधं च कर्णान्तर्गुह्यवेश्मकम्।
आग्नेय्यामनलस्यैवं नैर्ऋत्यां वस्त्रसङ्ग्रहः॥ 7॥

उक्त प्रकार से पद न्यास कर ब्रह्मस्थान के चार पद कोष्ठकों के मध्य के दक्षिण- विवस्वत भाग में शयन स्थान बनाएँ। क्षितिधर और मैत्रेय के पदस्थान पर भण्डार और जलमन्दिर बनाएँ। अर्यमा के स्थान पर देवता का गृह-सुरसौध बनाएँ तथा कोनों पर अन्तर गुह्यगृह कोठार बनाएँ। आग्नेय भाग में, वायु भाग में और नैर्ऋत्य भाग में वस्त्र संग्रह के भण्डार बनाए जाने चाहिए।

वायव्येचाऽष्टधातूनामीशाने शिवभाण्डकम्।
मध्यकर्णे इमे प्रोक्ता बाह्यांश्च शृणु साम्प्रतम्॥ 8॥

इसी तरह वायव्य में अष्टधातु के भाण्ड और ईशान में शिवभाण्ड रखने के भण्डार बनाएँ। अब तक तो ये सब मध्य कर्ण में करने के कार्य बताए, आगे बाह्य भाग में करने के कार्यों के बारे में सुनो।

अर्चनागृहमहासनकोष्ठागारशस्त्रागारमाह —

ईशाने चाऽर्चनावेश्म आग्नेय्यां च महानसम्।
कोष्ठागारं तु वायव्ये नैर्ऋत्ये शस्त्रमण्डपम्॥ 9॥

ईशान कोण में अर्चनावेश्म अर्थात् देवपूजा-अर्चन का स्थान बनाएँ। आग्नेय कोण में महानस अर्थात् बड़ा रसोईघर बनाएँ। वायव्य कोण में कोष्ठागार अर्थात् बड़ा कोठार या समस्त सामग्रियों को रखने का स्थान बनाएँ। नैर्ऋत्य कोण के भाग में शस्त्रागार रखने का शस्त्रमण्डप बनाया जाना चाहिए।

राजपदमकराक्षमाह —

याम्यस्थं वारुणस्थं च सौम्यस्थं चैव लक्षयेत।

इदं स्थानं राजपदं कर्त्तव्यं शान्तिमिच्छता॥ 10॥
यथोत्तरं मकराक्षं निर्गमे मकरान्वितम्।
मत्तवरणछाद्यं च क्षेत्रपादैस्तु निर्गतम्॥ 11॥

शान्ति के आकांक्षी को दक्षिण दिशा में, पश्चिम तथा उत्तर दिशा में कहीं भी लक्ष्य करके या देखकर इन स्थानों में राजपद स्थान बनाना चाहिए। उत्तर दिशा की ओर मकाराकृति युक्त निकले हुए मकराक्ष बनाए, जो क्षेत्र के पदों के बाहर की ओर निकले हुए मत्तवारण युक्त छाजों से बने हों।

सभाष्टकानुसारेण पुष्पकसिंहासनमाह —

सभाष्टकयुक्छन्देषु पूर्ववच्चाग्रनिर्गमः।
वेद्युत्तरमुखं कार्यं पुष्पकं सिंहमासनम्॥ 12॥
सुवर्णस्फटिकोपेतं नैकरत्नैर्विभूषितम्।
पुष्पकं चतुःस्तम्भाढ्यं छाद्यघण्टाद्यलङ्कृतम्॥ 13॥

सभाष्टक के युक्त छन्दों में पहले वर्णन किए गए तरीकों से बाहर की ओर निर्गतम या निकले हुए ढंग में उत्तर दिशा की और मुख किए हुए वेदी बनाएँ और उस पर पुष्पक नाम का सिंहासन लगाएँ, जो सोने और स्फटिक मणियों तथा अनेकानेक रत्नों से विभूषित हो। पुष्पक सिंहासन के चारों स्तम्भाढ्य, विशाल स्तम्भ भी छज्जों, चन्दोवों और घण्ट अर्थात् गुम्बजों से अलंकृत होने चाहिए।

हेमरत्नादिकोपेतं मुक्ताफलविभूषितम्।
राजासनं मध्यपीठं कर्तव्यं शुभलक्षणम्॥ 14॥

ऐसे सिंहासन के मध्य पीठ को सोने, रत्नों और मोतियों से विभूषित, शुभ लक्षणों वाली राजासन से युक्त बनाना चाहिए।

दन्तिशालामाह —

सिंहद्वारं तु तस्याग्रे गजक्रीडा याम्योत्तरे।
सिंहद्वाराग्रतः कार्ये दन्तिशाले तथोभयोः॥ 15॥

इस सभा के आगे सिंहद्वार अर्थात् बड़ी पोल बनानी चाहिए जिसके दायें-बायें अर्थात् दक्षिण और उत्तर दोनों ओर गजक्रीड़ा के योग्य चौगान क्षेत्र बनाने चाहिए।

तदग्रे विजयद्वारं कर्णावुभौ च स्वाग्रतः।
प्रतोल्या च तथोपेतं प्राकारैः परिवेष्टितम्॥ 16॥

इसके लिए सिंहद्वार अर्थात् बड़ी पोल के आगे ही दोनों ओर दो दन्तिशालाएँ (गजशाला. हाथियों के ठाण) बनाने चाहिए। इसके बाद, सभा मण्डप के चौक या

चौगान के उपरान्त, आगे की ओर दोनों कोनों पर और सामने के भाग में विजयद्वार अर्थात् विजय पोल बनानी चाहिए जिनके बाहर प्रतोल्या स्तम्भ युक्त पोलें प्राकार अर्थात् परकोटे से वेष्टित बनाई जाए।

राजवेश्मोभयपक्षे राज्ञीनां भवनादिकम्।
द्विभूमोच्छ्रयहीनानि शेषाणां क्रमयोगतः॥ 17॥

इसी प्रकार राजवेश्म अर्थात् राजा के रहने के राजमहल के दोनों पक्षों में, दोनों ओर रानियों के भवनादि बनाने चाहिए। शेष अन्य सभी के भवन रानियों के भवनों से दो मंजिल या द्वितल कम रखने चाहिए।

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच्छायां
राजभुवनाधिकारो नाम द्व्यशीतितमं सूत्रम्॥ 82॥

इस प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा में राजभुवन अधिकार नामक बयासीवाँ सूत्र पूर्ण हुआ॥ 82॥

एकत्रिपञ्चप्रतोली नाम त्र्यशीतितमं सूत्रम्॥ 83॥

विश्वकर्मोवाच —

प्रतोलीश्च प्रवक्ष्यामि कनिष्ठ-मध्यमो-त्तमाः।
उच्छ्रयस्त्रिविधो वत्स द्वारां प्राकारतोऽपि च॥ 1॥

विश्वकर्मा बोले कि हे वत्स! अब मैं प्रतोली अर्थात् पोलों के बारे में कहता हूँ। ये इनकी ऊँचाई के अनुसार और द्वारों के प्राकार अर्थात् परकोटे के अनुसार भी तीन प्रकार की होती हैं— कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम।

प्रतोल्योच्छ्रयप्रमाणमाह —

प्रतोल्या द्वारउत्सेधः पञ्चदशकरैः$_{15}$ शुभः।
मध्यस्त्रयोदशकरै$_{13}$ रुद्रहस्तैः$_{11}$ कनिष्ठकः॥ 2॥

इन प्रतोलियों में उत्तम प्रतोली के द्वार की ऊँचाई पन्द्रह गज की शुभ कही गई है, मध्यम की तेरह गज और कनिष्ठ की ग्यारह गज की ऊँचाई शुभ है।

कनिष्ठमेकभूमं$_{1}$ च द्विभूमं$_{2}$ चैव मध्यमम्।
उत्तमं च त्रिभूमं$_{3}$ स्यात् त्रिधोदितक्रमागतम्॥ 3॥

इनमें कनिष्ठ पोल या प्रतोली एक मंजिला ही होती है परन्तु मध्यम जाति की प्रतोली दो मंजिला होती है और उत्तम जाति की प्रतोली तो तीन मंजिला होती है। इस तरह क्रम से ये तीन प्रकार की ऊँचाई युक्त बनाई जाती हैं।

तत्रैव विस्तारमाह —

उत्तमं चाऽष्टहस्तैश्च$_8$ सप्तहस्तैश्च$_7$ मध्यमम्।
कनिष्ठं चैव षड्ढस्तैर्विस्तार$_6$स्त्रिविधो$_3$ मतः॥ 4॥

इनमें उत्तम प्रतोली या पोल की चौड़ाई (विस्तार) आठ गज की, मध्यम प्रतोली की चौड़ाई सात गज की और कनिष्ठ प्रतोली की चौड़ाई छह गज की होती है। इस तरह इनकी चौड़ाई भी तीन प्रकार की बताई गई है।

नवहस्तोच्छ्रिताः$_9$ स्तम्भाः कुम्भकैः सुसमन्विताः।
ऊर्ध्वमेक$_1$द्वि$_2$त्रिक्षणा$_3$ मालिकाश्च ह्यनुक्रमात्॥ 5॥

नौ गज ऊँचाई के स्तम्भ कुम्भकों से युक्त हों और उनके ऊपर एक, दो अथवा तीन क्षणामालिका अनुक्रम से बनाई जाए अर्थात् एक, दो या तीन अवसर, खाली स्थान छोड़ते हुए मालिका अर्थात् माल अनुक्रम से बनाएँ।

मदलाःशीर्षस्तम्भिका निर्यूहे मदलाः पुनः।
स्वस्तिकाद्वयं शीर्षोध्व निर्यूहे मदलाः पुनः॥ 6॥

जैसे कि मदल स्तम्भ के शीर्ष पर बनाएँ और फिर निर्यूह (नेजू) बनाकर उन पर पुनः मदल की रचना करें और उनके शीर्ष पर दो स्वस्तिक बनाकर निर्यूह बनाए तथा उन पर पुनः मदल की रचना करनी चाहिए।

शीर्षोर्ध्वे च भवेत्पट्टः शाखाद्यं चोत्तराङ्गकम्।
तुला जयन्ती पीता सा ? निर्मलं कपिशीर्षकम्॥ 7॥

इसके उपरान्त उसके शीर्ष के ऊपर छाबने का पाट धरें जो शाखा से लेकर उत्तरङ्ग अर्थात् छाबना बनें, यह जयन्ती नामक तोरण तुला कहलाती है जो निर्मल है और उसके ऊपर कँगूरे बने होते हैं।

तदूर्ध्वे च पुनर्भूमिश्चतुर्द्वारं तृतीयके।
दृढार्गलाः कपाटाश्चाऽपवरकास्ततः परम्॥ 8॥

इनके ऊपर पुनः तीसरी भूमि अर्थात् तीसरी मंजिल के चार द्वार बनाए जाए जिनके दृढ़ किंवाड़ हों और उनके बन्द करने अर्गला-आगल लगाने की व्यवस्था हो जिससे द्वार के किंवाड़ सुदृढ़ रूप से बन्द रहें तथा उसके परे भी दूसरे द्वार और कपाट अपवरक— इस प्रकार दृढ़तर बनाएँ।

प्रतोलीचतुष्टये मुखद्वारमाह —

वक्त्रद्वाराणि वक्ष्यामि प्रतोलीनां चतुष्टयम्।
अनुक्रमेण कर्तव्यं कथयामि समासतः॥ 9॥

अब मैं प्रतोली चतुष्टय के मुख-द्वारों के बारे में क्रम से निर्माण-विधि संक्षेप में कहता हूँ।

उत्सङ्गः पूर्णबाहुश्च हीनबाहुस्तथापरः।
प्रतिकाय इति प्रोक्तं प्रतोलीनां चतुष्टयम्॥ 10॥

प्रतोली-चतुष्टय में एक द्वार उत्सङ्ग, दूसरा पूर्णबाहु, तीसरा हीनबाहु एवं चौथा प्रतिकाय संज्ञक होता है।

उत्तरामुख **उत्सङ्गः पूर्णबाहुश्च पूर्वतः।**
अपरे हीनबाहुश्च प्रतिकायस्तु दक्षिणे॥ 11॥

इसमें उत्तरामुखी द्वार उत्संग होता है, पूर्णबाहु पूर्व दिशा सम्मत, हीनबाहु पश्चिमाभिमुख एवं प्रतिकाय दक्षिणाभिमुख होता है।

सृष्टिप्रवेश **उत्सङ्गः** प्रतिकायो**ऽपसव्यतः।**
पूर्णबाहुः पूर्ववक्त्रो वामास्यो हीनबाहुकः॥ 12॥

सृष्टि-प्रवेश (सृष्टिक्रम से) द्वार उत्सङ्ग कहा जाएगा, अपसव्य क्रम से प्रतिकाय होगा अर्थात् दायीं ओर होगा। पूर्णबाहु पूर्वमुख होता है और हीनबाहुक दक्षिणमुखी।[1]

वामभागे **दिशि दिशि** वामावर्तोद्भवास्तु **ये।**
द्वारं च दक्षिणावर्तं **कथितं** त्वपराजित॥ 13॥

इसके वाम भाग या बायें भाग में प्रत्येक दिशा में आवर्त (परिक्रमणक) होते हैं। इनके द्वार दक्षिणावर्त होते हैं। हे अपराजित! ऐसा कहा गया है।

पोलसमूहमाह —

एकपोल्यं त्रिपोल्यं वा पञ्चपोल्यमथोच्यते।
एवंविधः प्रकर्तव्यः पोल्यानां तु समुच्चयः॥ 14॥

अब पोल समूह के बारे में कहता हूँ। ये तीन प्रकार की होती है— एक पोल वाली, त्रिपोल्य या तीन पोल वाली तथा पञ्चपोल्य या पाँच पोल वाली।

---

1. यह वर्णन समराङ्गण. में द्वार के प्रसंग में आया है—उत्सङ्गो हीनबाहुश्च पूर्णबाहुस्तथापरः। प्रत्यक्षायश्चतुर्थश्च निवेशः परिकीर्तितः॥ उत्सङ्ग एवदीक्षाभ्यां (?) द्वाराणां वास्तुवेश्मनोः। स सौभाग्यप्रजावृद्धिधनधान्यजयप्रदः॥ यत्र प्रवेशतो वास्तु गृहं भवति वामतः। तद्धीनबाहुकं वास्तु निन्दितं वास्तुचिन्तकैः॥ तस्मिन् वसन्नल्पवित्तः स्वल्पमित्रोऽल्पबान्धवः। स्त्रीजितश्च भवेन्नित्यं विविधव्याधिपीडितः॥ वास्तुप्रवेशतो यत् तु गृहं दक्षिणतो भवेत्। प्रदक्षिणप्रवेशत्वात् तद् विद्यात् पूर्णबाहुकम्॥ तत्र पुत्रांश्च पौत्रांश्च धनधान्यसुखानि च। प्राप्नुवन्ति नरा नित्यं वसन्तो वास्तुनि ध्रुवम्॥ गृहपृष्ठं समाश्रित्य वास्तुद्वारं यदा भवेत्। प्रत्यक्षायस्त्वसौ निन्द्यो वामावर्तप्रवेशवत्॥ (समराङ्गण. 39, 11-17)

एकपोल्यं वक्त्रद्वारं त्रिपोल्यं भ्रमणीद्वयम्।

पञ्चपोल्यं तु चित्राढ्यं कर्तव्यं सर्वकामदम्॥ 15॥

एक पोल का तो मुख्य द्वार एक ही होता है परन्तु त्रिपोलिया में दो भ्रमणी होती है तथा पञ्चपोल्य में तरह-तरह के चित्र अर्थात् मूर्ति अलङ्करणों की आढ्य-भरमार होनी चाहिए जो सर्व कामनाओं को पूर्ण करने वाली है।

तस्य प्रकारलक्षणमाह —

प्राकारादियुक्तभागैर्विस्तरो भागषट्कतः।

निर्गमश्च चतुर्भागैः प्राकारो यत्र वाञ्छितः॥ 16॥

इन पोलों के प्राकार अर्थात् परकोटे भी समुचित भागों के विस्तार वाले होते हुए छह भाग तक होते हैं। जहाँ-जहाँ प्राकार-परकोटा वाञ्छित है, वहाँ-वहाँ उसका निकास-निर्गम चार भागों तक का होना चाहिए।

याम्यपार्श्वे समस्तत्र विस्तरस्तु त्रिभागिकः$_3$।

निर्गमश्च त्रिभागैश्च$_3$ सङ्क्षेपात्कथितं मया॥ 17॥

बायें भाग के समस्त अर्थात् बायीं बाजू के समस्त परकोटे तीन भाग के विस्तार-चौड़ाई वाले होने चाहिए। उनका निकास भी तीन भाग का होना चाहिए। ये सब मेरे द्वारा संक्षेप में कह दिया गया।

अन्यदप्याह —

त्रिभागं दक्षिणे त्यक्त्वा द्विभागं च तथोत्तरे।

शेषा प्रतोली चैकांशा भागं दक्षिणभित्तिका॥ 18॥

तीन भाग दक्षिण की ओर छोड़कर तथा दो भाग उत्तर की ओर छोड़े; एक अंश-भाग प्रतोली की दक्षिणी भित्ति का होता है।

भवेत् भागोत्तरा भित्तिः कर्णान्ते वलणं त्रिभिः$_3$।

दक्षिणे भित्तिपार्श्वेऽग्रे कर्णान्ते वलणं त्रिभिः$_3$॥ 19॥

जो भाग उत्तर की ओर की भित्ति का होता है, उसके कोने तक तीन वलण (घूमाव) होते हैं तथा उसके दक्षिण की भित्ति के पार्श्व में भी आगे की ओर कोने तक तीन वलण होते हैं।

द्विभागं विस्तरं कुर्याद् वक्त्रमार्गप्रवेशनम्।

एकपोल्यमिति ख्यातं सङ्क्षेपात्कथितं मया॥ 20॥

द्वार के मुखमार्ग में प्रवेश करने के लिए दो भाग का विस्तार होना चाहिए। इस

त्रिपोल्यलक्षणमाह —

वामे द्विभागविस्तीर्णे अपरे दशभागिके$_{10}$।
दक्षिणे समभागश्च चतुर्भागं परे हितम्॥ 21॥

इसी प्रकार बायीं ओर का विस्तार दो भाग का और दूसरी ओर दस भाग दक्षिण में भी उतने ही समान भाग का और परे-दूसरी ओर चार भाग रखना उचित है।

त्रिभागे विस्तरं याम्ये अपरेऽस्य [1]समपदम्।
याम्ये कुर्याच्च वेदांशं$_4$ मूलद्वारं तु कारयेत्॥ 22॥

दक्षिण में तीन भाग के विस्तार का और अपरे-दूसरी ओर भी उतने ही समान पद अर्थात् तीन भाग का विस्तार हो तथा दक्षिण ओर का विस्तार चार भाग का हो, ऐसा मूलद्वार बनाना चाहिए।

चतुर्भागाग्रभ्रमणं[2] भागा भित्तिर्याम्योत्तरे।
भागा भित्तिस्तदग्रे च समद्वारं सतोरणम्॥ 23॥

आगे की ओर चार भाग का भ्रमण अर्थात् घूमाव हो जिसके उत्तर दिशा और दक्षिण दिशा में भित्ति हो। उसके आगे की ओर भी एक भाग की भित्ति हो और तोरणयुक्त समान द्वार हो।

पुनर्भ्रमश्चतुर्भागः षड्भागश्चैव विस्तरे।
विधेयं पूर्ववच्छेषं त्रिपोल्यं नाम शोभनम्॥ 24॥

उसके भी पुनः चार भाग का भ्रमण-घूमाव हो जिसका विस्तार छह भाग का हो, शेष सभी अङ्गों का न्यास पूर्व में बताए विधेय के अनुसार ही होगा। इस प्रकार के द्वार का नाम त्रिपोल्य अर्थात् त्रिपोलिया कहा है।

पञ्चपोल्यलक्षणं —

यथा वामे तथा दक्षे भित्तिर्भागा भुजान्ततः।
मध्यभित्तिर्यथा पूर्वं चतुष्काकृति तोरणे ?॥ 25॥

जैसा बायें वैसा ही दायें भित्तियों के भाग एक गज तक के हों। मध्य की भित्ति पूर्व की तरह की हो और चौकोर आकृति का तोरण हो (?)।

द्वारं द्वारस्य सूत्रेण भागिको भित्तिविस्तरः।
पुनरन्ते चान्तरे च द्वारं द्वारतृतीयकम्॥ 26॥

---

1. 'तमपदम् ?।' इति प्रकाशित पाठः।
2. 'चतुर्भागाग्ररमणं' इति प्रकाशित पाठः।

सभी द्वार एक सीध में या सूत्र में बने हों जिनकी भित्ति का विस
हो और उनके पुनः अन्तर-अन्तर पर द्वार तीन-तीन की संख्या में

तद्वत्तल्यानि क्षेत्राणि कार्याणि शोभनानि वै।
पूर्वद्वारानुक्रमेण उभे द्वारे याम्योत्तरे ॥ 27 ॥

उनके अनुरूप ही शोभायुक्त तल क्षेत्रों की रचना करनी चाहिए। प
के अनुक्रम में दोनों द्वार उत्तर दक्षिण में बनाने चाहिए।

वक्त्रद्वारं पुनस्त्वेवं कर्तव्यं दक्षिणोत्तरे।
पञ्चपोल्यमिदं ख्यातं प्राकारः कपिशीर्षतः ॥ 28 ॥

इसी प्रकार पुनः मुखद्वारों को भी दक्षिण-उत्तर की ओर बनाना
र यह पञ्चपोल नामक द्वार उत्तम परकोटे और कपिशीर्ष-कँगूरों

इति सूत्रसन्तानगुणकीर्तिप्रकाशप्रोक्तश्रीभुवनदेवाचार्योक्तापराजितपृच
(एकत्रि)पञ्चप्रतोल्यधिकारो नाम त्र्यशीतितमं सूत्रम् ॥ 83 ॥

प्रकार भुवनदेवाचार्य कृत सूत्रसन्तानगुणकीर्ति प्रकाश या अपराजितपृच्छा
पञ्चप्रतोली अधिकार नामक तियासीवाँ सूत्र पूर्ण हुआ ॥ 83 ॥